सरलरोग विज्ञान

(निदान विषयक अपूर्वग्रन्थ)



लेखक—

रायगढ़ स्टेट के भूतपूर्व गृह चिकित्सक—

राजवैद्य पं० रवीन्द्र शास्त्री, 'कविभूषण'

(कोटपूतली वास्तव्यः)



प्रकाशकः—

चिकित्सक चूड़ामणि पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज,

प्रधान सम्पादक—'अनुभूत योगमाला'

बरालोकपुर-(इटावा)

द्वितीय संस्करण १००० | सन् १९५० ई० | मूल्य ४) रु०

द्वितीय संस्करण

हर्ष है कि आज हम इस महान ग्रन्थ का दूसरा संस्करण कर आयुर्वेद क्षेत्र में रख रहे हैं। यह इस बात का साक्षी है कि पुस्तक उपयोगी है। इतना सकोच अवश्य है कि पुस्तक का दूसरा संस्करण १४ वर्ष के बाद हो रहा है। इतनी उत्तम उपयोगी चिकित्सकों के काम की वस्तु का दूसरा संस्करण इतने दिनों के बाद होना आश्चर्य दिखाता है। इसमें कई कारण हैं हमारा वैद्यसमाज इतना सकुचित हृदय है कि वह पुस्तकों में खर्च करना पाप समझता है और उन्हीं पुरानी पुस्तकों से पुरानी लकीर के फकीर बनने की तरफ ध्यान दिये हुये हैं। इधर इस पुस्तक का प्रचार जैसा अन्य प्रकाशक करते हैं हम कर भी नहीं सकते इससे देरी हुई है। अब इसका प्रचार बढ़ रहा है पुस्तक समाप्ति होते २ सैकड़ों आर्डर हमें रद्दी करने पड़े तब कहीं जैसे तैसे इसके योग्य कागज तलाश किया जो प्रथम से चौगुने मूल्य में प्राप्त हुआ वह भी जैसा कागज हम चाहते थे कंट्रोल की कृपा से न मिल सका इससे विवश हो न्यूज प्रिंट पर ही छापना पड़ा। अब कागज खुल गया है।

इधर कर्मचारियों का वेतन भी दूना हो गया है और हर सामान भीषण तेजी पर है साधारण मनुष्य की ताकत ऐसे समय में पुस्तक प्रकाशन की नहीं। फिर भी आयुर्वेद सेवाव्रत अपने जीवन का लक्ष्य रख इस बृहद ग्रन्थ को चिकित्सकों के लाभार्थ प्रकाशित करने पर विवश होना पड़ा है।

जहां तक बन सका बहुत कुछ संशोधन किया गया है फिर भी अंग्रेजी आदि में स्वभाविक अशुद्धियां रह जाना सम्भव है। दूसरे चिकित्सा को बाहर जाने पर अन्यों द्वारा फार्म संशोधन करने पर भी अशुद्धियां रह जाना सम्भव है उनके लिये क्षमा प्रार्थना है।

उस भगवती की असीम कृपा के हम आभारी हैं जिनकी कृपा से सानन्द यह दूसरा संस्करण पूर्ण हुआ है। सर्वे भवन्तु सुखिन. सर्वेभवन्तु निरामयाः।

श्री कुष्टचिकित्साश्र, आपका—

अनुभूत योगमाला विभाग-बरालोकपुर आ० महामहोपाध्याय प० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज

१ ११ ५०



आ० महामहोपाध्याय चि० चू० प० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज के प्रबन्ध से

श्री हरिहर प्रेस, बरालोकपुर-इटावा में मुद्रित।



प्राक्कथन

धन्वन्तरिः स भगवान् भव्याय भूयात्



स्तक के प्रारम्भ में स्वयं लेखक का भी वक्तव्य होना चाहिये, यह एक प्रथा सी हो गई है, मैं इस प्रथा के उल्लंघन का दोषी नहीं बनना चाहता इस लिये विज्ञ पाठकों के सन्मुख मेरा थोड़ा निवेदन है—

मैं आयुर्वेद का तुच्छ सेवक हूं, आयुर्वेद ही मेरा मूल मंत्र और जीवन का प्रधान अंग है इस में मेरा अपना गौरव भी है। प्राचीन ऋषियों के आयुर्वेदिक साहित्य का अध्ययन करने में मैं अपना सौभाग्य भी समझता हूं। आयुर्वेद स्वयं वेद भगवान का एक अंग है, इसके उपदेष्टा ऋषि महर्षि अतीत भारत के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे और वर्तमान जगत की समस्त चिकित्सा पद्धतियों एलोपैथी, होम्योपैथी हायड्रोपैथी, हिकमत, जल-चिकित्सा, सूर्य रश्मि-चिकित्सा, आदि का यही उद्गम स्थान है। आयुर्वेद के आठों अंगों का विवेचन, जिस गम्भीर शैली और अनुपम पांडित्यपूर्ण प्रतिभा से हुआ है, उसका शतांश भी आधुनिक विज्ञान ग्रन्थों में नहीं है। शल्य तंत्र का लुप्त प्रायः विषय भी, पाश्चात वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य की वस्तु है चरक की चिकित्सा प्रणाली ही संसार के लिये कल्याण जनक है, यह उद्गार भी पश्चिमी विद्वानों के मुख से निकलने लगे हैं, संग्रहणी की चिकित्सा में डाक्टरों ने स्वयं अपनी पराजय स्वीकार करली है।

किन्तु—

बीसवीं सदी के इस कर्मयुग (कलियुग) में केवल प्राचीन ऋषियों का साहित्य ही सब कुछ नहीं हो सकता एक लकीर मात्र को पकड़े रहने से काम नहीं चल सकता सिर्फ सूत्र मात्र निदान ही पर्याप्त नहीं हो सकता।

संसार परिवर्तन शीलता—और सामयिक स्थिति के अनुसार, प्रत्येक विषय में, आवश्यक संशोधन होना चाहिये, यह एक निरपवाद सत्य है।

पन्द्रहवीं सदी का धर्म आज अधर्म बन गया है, १४ वीं सदी का अधर्म आज धर्म बन गया है, समुद्र यात्रा, बाल-विवाह, शुद्धि ये सब इसके उदाहरण हैं। आयुर्वेदिक साहित्य, एक अद्वितीय साहित्य है जरूर, किन्तु यह भी आवश्यक परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। प्राचीन ग्रन्थों में, जो औषध मात्रा २ माशे की है, वह आज २ रत्ती की हो गई है २ माशे तो घातक बन सकती है। जो बातें ऋषियों के समय नहीं थीं वे आज मौजूद हैं और जो उस समय थी वे आज नहीं है। फिरंग रोग का जिक्र भावमिश्र ने १२ वीं सदी में किया है, जब कि पहिले इसका नाम ही नहीं था। प्लेग बिलकुल नई बीमारी है, यद्यपि यह एक औपसर्गिक सन्निपात है, सिफलिस उपदंश से एक दम नया भिन्न रोग है। सुजाक मूत्रकृच्छ्र से जुदा रोग है। प्रमेह के शास्त्रोक्त कारणों के अतिरिक्त और भी कारण आज पैदा हो गये हैं।

कुछ अपरिवर्तनवादी वैद्यों की धारणा के अनुसार ये सब नये रोग केवल नाम से नये हैं लक्षणों से नहीं सिफलिस उपदंश और सुजाक को उष्णवात स्वीकार करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है

नये रोगों की कल्पना उनकी समझ के अनुसार आयुर्वेद की शान के खिलाफ है । ऐसे वैद्यों से चरक के शब्दों में यही निवेदन है—

नहि सर्वं विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः ।
विकार नामा कुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ॥

साथ ही उन्हें यह भी समझना चाहिये, कि आज उन ऋषियों का शान्तियुग नहीं है, शान्ति और सदाचार का साम्राज्य नहीं है, आजकल प्रकृतियों का संघर्षकाल है अशांति और दुराचार का भयानक प्रचार है ।

आयुर्वेदिक निदान प्रायः सूत्ररूप में हैं, जो कुछ आज हमें उपलब्ध है, वह इतना स्पष्ट नहीं है, कि उसके द्वारा हम आधुनिक रोगों का परीक्षा कर सकें । यह सच है, कि त्रिदोष के सम्बन्ध का ज्ञान होने के बाद किसी रोग के नाम की जरूरत नहीं है, किंतु ऐसे त्रिदोष वेत्ताओं की संख्या एक दर्जन भी नहीं है, हृदय, प्लीहा और यकृत् के रोगों का पूर्ण ज्ञान, हमें आयुर्वेदिक निदान से नहीं हो सकता, यह कहने का साहस नहीं करता हुआ, मैं यही कहना चाहता हूं, कि उपरोक्त रोगों का निदान हिकमत में अधिक अच्छा है । दूसरे और रोगों का विवेचन भी, जितना अच्छा हिकमत में है, उतना अन्यत्र नहीं । इस पुस्तक को देखने वाले सज्जन, मेरा समर्थन करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है ।

सारा संसार प्रगतिशील है, सभी जातियां उन्नति पथ पर अग्रसर हैं, सभी देशों में नित्य नयी क्रांतियां होरही हैं, हमारा भारतवर्ष भी तीव्रगति से उन्नति पथ का पथिक बन रहा है । सभी विषयों में, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और राजनीति विषयों में परिवर्तन और परिवर्धन होते जारहे हैं । किंतु हमारे वैद्य बन्धुओं पर इसका कोई खास प्रभाव नहीं है । वैद्य जगत् में अभी तक वही वात, पित्त, कफ वही सोंठ मिर्च, पीपर और वही नाड़ी परीक्षा मौजूद है । जनता, क्यों पराङ्मुख होती जारही है, डाक्टरों की संख्या में क्यों इतनी वृद्धि होती जारही है, विदेशों से आने वाली औषधियों की मात्रा क्यों बढ़ती जारही है, इत्यादि विषयों की तरफ हमारे वैद्य बन्धुओं का ध्यान नहीं है । इसी का यह परिणाम है कि आयुर्वेद पर नित्य नये आक्षेप हो रहे हैं, कोई अवैज्ञानिक कहता है, तो कोई गड़रियों का विज्ञान ।

आवश्यकता इस बात की है, कि अपने आयुर्वेदिक साहित्य की मौलिकता और उपयोगिता का प्रचार किया जाय, तथा सामयिक स्थिति के अनुसार इसे आधुनिक भी बनाया जाय । आठों अंगों पर उपयुक्त पुस्तकों का प्रकाशन होना चाहिये एकअन्वेषक समिति के द्वारा औषधियों का विश्लेषण कराया जावे ।

वैद्य सम्मेलन इस दशा में क्या कर रहा है कुछ पता नहीं । वार्षिक अधिवेशन के अतिरिक्त सम्मेलन के द्वारा क्या होता है यह उसके अधिकारी ही जानें । केवल प्रस्ताव पास कर देने से तो आयुर्वेद का उद्धार नहीं होजायगा ।

वैद्य सम्मेलन के एक प्रस्ताव के अनुसार ही काशी अधिवेशन के समय इस पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है ।

अपनी अल्पज्ञता अपूर्णता को जानते हुये भी मैं क्यों निदान सम्बन्धी पुस्तक लिखने का दुस्साहस कर सका इसके उत्तर में यही निवेदन है, कि आयुर्वेदिक संसार के सम्मुख अपने उद्गारों को

रखने के लोभ का संवरण करना, मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिये असम्भव है यह कोई भी अपराध नहीं है। इस विषय में मुझे और भी निवेदन है।

अपने कलकत्ता के प्रवासकाल में, जब मैं केवल हिन्दी के सामयिक पत्रों में ही अपने लेख लिखता था, 'माला' के प्रधान सम्पादक वैद्यराजजी ने मेरा ध्यान इधर आकर्षित किया और आयुर्वेदिक साहित्य की सेवा की प्रेरणा भी की निश्चय ही इस प्रेरणा के फल स्वरूप ही मैं आयुर्वेदिक पत्रों में अपने विचार प्रकट करने को उत्साहित हुआ था धीरे २ आयुर्वेदिक निदान की सूत्रावस्था और सामयिक अपूर्णता की तरफ भी मेरा ध्यान आकर्षित हुआ, जिसके फल स्वरूप वैद्यराजजी के 'माला' के नव्यरोगांक का सम्पादन मैंने किया। उस सम्पादन काल में वैद्यों की उदासीनता, उनका निदान विषयक अपूर्ण ज्ञान और उनकी सकुचित मनोवृति का भी पर्याप्त परिचय मिला।

हिकमती निदान की विशद व्याख्या और ऐलोपेथिक निदान की विस्तृत वर्णन शैली तथा उसकी उन्नति एक विशुद्ध आयुर्वेद वैद्य के लिये निश्चय ही बड़ी आकर्षक चीज है। वैद्यराजजी की प्रेरणा से जब मैंने हिकमती निदान का अध्ययन किया तो मैं वास्तव में अपने इस लोभ का संवरण न कर सका, कि मैं दूसरे वैद्य बन्धुओं को भी इसका परिचय करा दूँ। अध्ययन के साथ २ मेरी इस लोभ की मात्रा भी बढ़ती गई और मैं कई मास तक केवल निदान ग्रन्थों में ही व्यस्त रहा। होम्योपैथिक निदान के साथ ही ऐलोपैथिक निदान का मनन भी आवश्यक हुआ, फिर आयुर्वेदिक निदान का तुलनात्मक अध्ययन भी जरूरी हो गया।

आवश्यक अध्ययन और मनन के बाद, जब मैं पुस्तक लिखने को तैयार हुआ, तो मुझे रुकना पड़ा। इतने भारी भरकम पोथे को कौन प्रकाशित करेगा, यह समस्या सामने आई। अन्त में माला के सम्पादकमहोदय जब इसके लिये तैयार होगये, तो मैं भी लिखने पर तत्पर हो गया। पुस्तक के लेखनकालमें कितना मुझे परिश्रम करना पड़ा, यह बात तो मैं स्वयं जानता हूं या उन सहवासी मित्रों को मालूम है, जो उस समय मेरे दुस्साहस पर मेरी कलम को शैतानी कलम कहते थे।

लिखने का जितना मुझे नशा है, उतना ही नशा जल्दी घसीट लिखने का भी और यही कारण है, कि इसके लिखने में मुझे ४ महीने से ज्यादा समय नहीं लग सकता जो एक खास अवगुण है।

लेखन काल में—कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक स्व० कविराज श्यामा दासजी महोदय के कृपापूर्ण प्रोत्साहन ने मेरा बहुत उत्साह बढाया। यशस्वी चिकित्सक ज्योतिर्मयसेन जी महोदय ने तो समय२ पर आवश्यक परामर्श दिये, पं०भागीरथजी स्वामी, रसायन शास्त्री, की तो अत्यन्त कृपादृष्टि बनी ही रही। अपने प्रेमी मित्र —बड़ा बजार के प्रसिद्ध चिकित्सक श्री डा० किशोरीलालजी शर्मा डी० टी० एम० और वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक श्री पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री के द्वारा भी मुझे सहायता मिली है, उसके लिये मैं उनकापूर्ण आभारी हूं।

पुस्तक के प्रकाशक चिकित्सक चूड़ामणि पं० विश्वेश्वरदयालुजी द्विवेदी वैद्यराज के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। जो बहुत दिनों से आयुर्वेद की ठोस सेवा कर रहे हैं तथा मेरे जैसे अकिंचनोंके द्वारा आयुर्वेद को जो सेवायें होरही हैं, उसका सारा श्रेय आप ही को है। यह पुस्तक भी आपही की प्रेरणा और प्रोत्साहन से लिखी गई है, यह बात भी सर्वांश में सत्य है। इस जमाने में ऐसे भारी भरकम पोथे को प्रकाशित करने के लिये तैयार होना आप जैसे उदार आयुर्वेद सेवकों का काम था।

पुस्तक कैसी बन सकी है,—इसके लिखने में मैं कहां तक सफल हुआ हूं, यह बात तो समालोचक बतायेंगे, किन्तु यह भी कहना चाहता हूं, कि निदान ग्रंथों की नवीन दिशा में वह एक नया प्रयत्न है, जो भावी लेखकों के लिये पथप्रदर्शक का नहीं तो दिशा सूचक यन्त्र का काम अवश्य देगा। अन्त में— सहायक पुस्तकों के लेखकों के लिये जिनका जिक्र अलग हुआ है, तथा उन सभी प्रेमी मित्रों के लिये जिनके प्रेमपूर्ण प्रोत्साहन से, मैं इसके लिखने में सफल हो सका हार्दिक धन्यवाद देता हुआ, अपने इस वक्तव्य को समाप्त कर देना चाहता हूं।

क्षमा प्रार्थना

पुस्तक के साथ छपने वाली त्रुटियों के लिये सहृदय पाठकों से मैं क्षमा प्रार्थी हूं। प्रेस के कर्मचारियों की कृपा से, साधारण गलतियों के अलावा कुछ बहुत सी बेहूदी गलतियां भी हो गई है। प्रारंभिक फर्मों में गलतियों का इतना आधिक्य है, कि मैं स्वयं भी हैरान हूं। बिना जरूरत के बीच में विराम चिन्हों के दे देने से कहीं अर्थ का भयानक अनर्थ बन गया है और कहीं २ आवश्यक विराम चिन्हों के भी न देने से, पाठकों के लिये कठिन समस्या बन गई है। 'बाकी' को 'वाकी' जाते हैं' को 'जाती है' 'स्थिति' को 'स्थित' 'स्वास्थ्य' को 'स्वस्थ' 'आकृति को आकुति 'शक्ति' को 'शालिनी' 'हैड्क' को हैडक Siuer को 'Fivoı' 'तंतु द्वारा' को 'तत्र द्वारा' और 'कब्ज' को 'कना' इस प्रकार पुस्तक को जो पुरस्कार दिया है, वह बडा ही अरुचिकर बन गया है। रोगों के इंग्रेजी नामों के विषय में तो कहा ही क्या जाय, कुछ का कुछ छपा है, Longs की जगह Congs, Disease के स्थान में Lleasc और Fiver के स्थान पर Eivei

औचित्य की दृष्टि से, इन सब गलतियों का दायत्व तो मेरे ऊपर, या पुस्तक के प्रकाशक पं० विश्वेश्वरदयालु जी द्विवेदी पर ही है, किन्तु मैं यह जानता हूं, कि पुस्तक के प्रेसकाल में ही प्रकाशक महोदय की धर्मपत्नी के अस्वस्थ और स्वर्गीय हो जाने के कारण द्विवेदी जी इस पुस्तक का प्रूफ तक न देख सके, सम्पादन करना तो दूर रहा। प्रेस से बहुत दूर होने के कारण तथा कई सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, मैं स्वयं भी प्रूफ देखने में असमर्थ रहा।

दूसरे संस्करण में इतनी त्रुटियां नहीं होंगी, इसके लिये पाठकों को विश्वास दिलाया जा सकता है।

विनीत—

राजवैद्य पं० रवीन्द्र शास्त्री कविभूषण

कोटपूतली



दो शब्द





जगज्जननी शक्तिरूपा महा माया की असीम दया से आज हम आयुर्वेदीय तिमिराच्छन्न क्षेत्र में एक अलौकिक सूर्यतेज फैलाकर क्षेत्र को चमत्कृत करने में सफल हुये हैं। जिसकी खोज में एक नहीं अनेकों विद्वान बहुत दिनों से प्रयत्नशील थे, कारण कि प्रतिदिन प्रैक्टिश करने वाले वैद्यों के सामने रोग निश्चय समय में यह दो-तीन कठिनाइयां उपस्थित हो जाती थीं वह बिचारे बहुत तड़फड़ाते थे, और उसका उपाय उनके लिये अनिवार्य था कारण ऐसा कोई निदान ग्रंथ ही उपस्थित न था जिससे यह कठिनाइयां दूर की जासकें, सब से बड़ा माधवनिदान ही एक निदान ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है उसकी रचना सूत्ररूप होने से एवं अन्य ढंग की होने से निम्न कठिनाइयां हल नहीं हो सकती थीं।

१—समुपस्थित रोग किस स्थान की विकृति से पैदा हुआ है।

२—इसका स्थान एवं सत्यास्वरूप सप्रमाण क्या है और किस किस प्रकार का हो सकता है।

३—शरीर में कितने रोग हो सकते हैं इसकी पूर्ण तालिका कहीं नहीं थी और नवीन उपाधि का प्रादुर्भाव होते देख दंग रहजाना पड़ता था।

हमें भी जब इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो एक समझदार चिकित्सक के लिये अनिवार्य थीं, तो हमने बहुत बड़ा प्रयत्न किया और सभी पैथियों के निदानों का परिशीलन किया, कुछ निदान अंग्रेजी उर्दू फार्सी आदि भाषाओं में थे उनका संग्रह किया और मनन कर हम इस पथपर पहुंचे जहां समस्त कठिनाइयां हल हो जाती थीं और अपूर्व आनन्द होता था, हमारे पास इतना समय न था कि हम उसका संग्रह कर लेते तब हमने यह भार अपने मित्र रवीन्द्रनाथ शास्त्री को सौंपा और उनको अपना समस्त उद्देश्य समझा दिया, उन्होंने बड़ी योग्यता से इसका संग्रह किया है, यह आप के सन्मुख है। इसके पढ़लेने मात्र से ही रोग निश्चय जैसे महोपकारी विषय का ज्ञान कितनी जल्दी और उसके कारण जो एक सफल चिकित्सक के लिये खास वस्तु है, जिसके जाने बिना वह कुछ भी करने को समर्थ ही नहीं बोध, होजाते हैं—

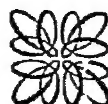
स्थानानुसार रोग वर्णन दिया गया है कि अमुक स्थान की विकृति से विकृति स्थान में अमुक अमुक रोग इन-इन रूपों के प्रकट हो सकते हैं। इससे चिकित्सक को रोग पहिचानने में देर नहीं लगती, फिरतुलनात्मक विवेचन तीनों (आयुर्वेदीय, आंग्ल, यूनानी) पद्धतियों का दिया गया है, कहां तक कहें चिकित्सोपयोगी रोग निश्चयात्मक कोई बात छूटने नहीं पाई है कि जिसका वर्णन इस ग्रन्थ में न किया गया हो ऐसा उत्तम निदान का ग्रंथ किसी भी एक भाषा में कहीं भी उपलब्ध नहीं हुआ है, यह कुष्ठचिकित्साश्रम की ही विशेषता है कि यह सदुपकारी अलौकिक ग्रन्थों के प्रकाशमें ही अपनी सारी शक्तिसेसंलग्न हो आयुर्वेद सेवा में रतहै, भगवती कृपा से उसे सफलता भी वैसी ही मिल रहीहै, सबसे प्रसिद्ध और वृहद् ग्रन्थ निघन्टु आयुर्वेदीयविश्वकोषपर प्रकाशितकिया है जिसके तीन भाग प्रकाशित होकर संसार में चमत्कार प्रदर्शन कर चुके हैं। उसी जोड़का यह निदान ग्रन्थ भी संसार में अपनी अलौकिकता फैलाये बिना न रहेगा, तीसरा ग्रन्थ चिकित्सा ग्रन्थ होगा जिसका संग्रह किया जा रहा है, २–३ वर्ष के अन्दर ही उसका सम्पूर्ण संग्रह हो जाने पर आपके समक्ष होगा, कार्य जारी है, कई एक विद्वान उस तरफ कार्य कर रहे हैं।

आप अद्योपांत इस ग्रन्थ को पढ़ लेंगे तो आपको विदित हो जावेगा कि इससे अधिक रोग स्थान परत्व से अथवा स्थान की अमुक २ विकृतियों से अधिक पैदा ही नहीं हो सकते, इस तत्व पर पहुंच जावेंगे और आप रोग विवेचन की दृढ़ स्थापन कर रोग विवेचना के तत्वज्ञ बन जावेंगे, फिर देखें कौन विशेषज्ञ आपके इन विचारों को डावाडोल कर अपनी धाक जमा आप को पददलित करने का साहस करता है, साथमें अंग्रेजी (एलोपैथिक) निदान का भी वर्णन तुलनात्मक किया गया है, अपनी समझ से इस विषयमें इससे अधिक और कुछ जान कारी नही हो सकती, इसी विषय को सामने रख यह कार्य समाप्त किया हैं। फिर भी यदि किसी को समझ में और कुछ अधिक आवे तो वह सूचित करें ताकि द्वितीय संस्करण में उसे पूरा किया जाय, सम्भव है मानुषी बुद्धि जो सर्वज्ञता का दावा नहीं कर सकती उसके अनुरूप कुछ समझ से बाहर रह गया हो तो वह आप लोगों की सहायता से एकत्रित होकर सम्पूर्णता को प्राप्त हो जावेगा। कुछ भी हो तो भी यह आधुनिक जमाने में अपनी अलौकिकता से एक मान्य ग्रन्थ बनने में पीछे न रहेगा, यदि आप लोगो ने हमारे बहु कालीन श्रम एवं द्रव्य से प्रस्तुत इस ग्रन्थ का आदर कर, अपना ज्ञान वर्धन कर सर्वज्ञोऽस्मि का उच्चारण किया तो हम अपने श्रम एवं व्यय को सार्थक समझेंगे।

पुस्तक लेखक की लेखन शैली इतनी अस्पष्ट और घसीट थी जिसका पढ़ना किसी भी विज्ञ आदमी के लिये असाधारण था इस पर भी प्राचीन प्रूफरीडर का स्थान त्याग और नवीन प्रूफरीडर पद पर विहार प्रांतीय पं० सभाकांत जी का पदार्पण और उसी समय पुस्तक का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया था, इधर हमारी धर्मपत्नी की स्वास्थ्य विकृति और उसी से प्राण त्याग आदि भीषण समस्याओं का सहसा प्रादुर्भाव होना इन कारणों से पुस्तक मे कुछ त्रुटियां अवश्य ही रह गई हैं। क्योंकि एक तो उक्त पं० जी का अंग्रेजी में अनभिज्ञ होना अंग्रेजी जैसीविदेशीय भाषा मे तथा दूसरी घसीट लेख मे भाषा सम्बन्धी त्रुटियों का रहना उनके लिये प्राथमिक कार्य में अनिवार्य था, अवश्य हुईं हे। धीरे धीरे उनका सुधार भी होता गया है अतः प्राथमिक अंश मे ही अधिक त्रुटियां दृगोचर होगी पाठक हमारी अकिञ्चनीय दशा पर विचार करते हुये क्षमा करेंगे और सुधार कर पढेंगे, द्वितीय संस्करण में यह अशुद्धियां भी हटा दी जावेगी और विशेष सुधार जिनका होना इसमें आवश्यकीय था वह भी सम्मिलित कर के इसे और भी विशिष्ट बनाया जायगा, जो जो परिवर्तन आप इसमें और करना अभीष्ट समझते हो उनकी सूचना देना ताकि उनका सन्निवेश अगले अंक में कर दिया जा सके, अकेले असहाय होते हुये भी जो श्रम पं० सभाकान्त झा वैद्य रत्न आयुर्वेद शास्त्री ने कर इसका सम्पादन किया है उसके लिये उन्हे धन्यवाद है।

अनुभूत योगमाला
ग्रन्थमाला विभाग
बरालोकपुर-इटावा
१९-१२-३६

आपका सेवकः—
चि० चू० पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराजः



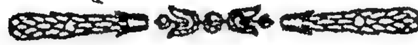
विषय-सूची

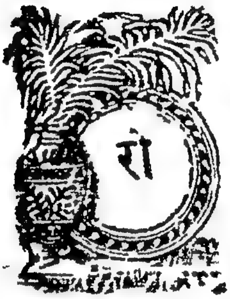




❁ ओ३म् ❁

सरल रोग विज्ञान





रोग परीक्षा के लिए सरल विधियो का उल्लेख कर देना यहां आवश्यक है। डाक्टरो और वैद्यो के लिये तो रोग विज्ञान की विधियो का जानना खास आवश्यक है। साथ में ही साधारण जनता भी इससे बहुत लाभ उठा सकती है। रोग की चिकित्सा बहुत सरल है किंतु उसकी जांच बहुत मुश्किल है। रोग की जाच हो जाने पर चिकित्सा बहुत आसानी से हो जाती है।

डाक्टरोंकी बात छोड़िये, वैद्योंकी रोग परीक्षा तो एक नाड़ी तक ही सीमित है। वे लोग हाथ की नाड़ी देखकर ही रोग की जांच कर लेते हैं, फिर चाहे उन्हें असफलता ही क्यो न हो।

साधारण जनता का भी कुछ ऐसा विश्वास है कि नाड़ी बिना देखे रोग की जांच होती ही नहीं। इसलिये डाक्टर भी रोगी की नाड़ी पकड़ लेते हैं। चाहे वह उसको मानते भी न हों।

प्राचीन आयुर्वेदिक साहित्य में रोग विज्ञान की विधियो का सरल और विस्तृत वर्णन है। सबके सिद्धांत एक ही हो सो बात नहीं है। सबने अलग २ विधि बतलाई हैं। कोई रोग परीक्षा के लिये ८ तरीके बतलाता है तो कोई ६; किसी ने ५ विधि बतलाई हैं तो किसी ने ३ ही।

आयुर्वेद साहित्य के प्रकाशक पण्डित माधव मिश्र ने ५ विधि बतलाई हैं उनके ऊपर एलोपैथिक विद्वान भी विश्वास रखते हैं। पाठको की जानकारी के लिये हम यहां पर उनका उल्लेख किये देते हैं।

माधव मिश्र के पांच तरीके

(१) निदान—Nidan the enquary in to the particular indiscretion leading to the disease.

(२) पूर्वरूप—Purbrup the enquary in to the onest of the disease.

(३) रूप—Rup the enquary in to the indication of sings and symptoms

उपशय—Upashaya Asceretain in the diagnosis by remedical measure in certain case.

(५) सम्प्राप्ति—Samprapti pathologey

इन पांच विधियो के द्वारा रोग परीक्षा हो सकती है। ऐसा माधव मिश्र का विश्वास था, इसलिये अपने निदान ग्रंथ (माधव निदान) में इनका उल्लेख किया है। किन्तु साधारण समाज के लिये ये पांच तरीके उपर्युक्त नही हो सकते। अतः हम इनपर अनावश्यक प्रकाश डालना भी उचित नहीं समझते।

सुश्रुत ने रोग परीक्षा के ६ तरीके वतलाये है।

सुश्रुत के ६ तरीके

षड्विधोहि रोगाणां विज्ञानोपायः।
तद्यथा पञ्चभिः श्रोत्रादिभि प्रश्नेन चेति॥

(१) कान से जो रोग परीक्षा होती है उसे श्रावणी (Consultation) कहते है। फेफड़े हृदय आदि के शब्द कानो से ही सुने जाते है।

(२) नाक से होने वाले रोग–परीक्षा को घ्राण परीक्षा (Examination of Smale) कहते हैं। मलमूत्र और शरीर की गंध का ज्ञान नाक से ही होता है।

(३) आंख से होने वाली रोग परीक्षा को चक्षुर्षा (Enspection) कहतेहै मलमूत्र शरीर आदि का रंग आंखो सेही देखा जाता है। देह की दुर्बलता भी आंखो के विना नहीं देख सकते।

(४) जीभ से होने वाली रोग परीक्षा को रसन-परीक्षा (Examination by taste) कहते हैं। यद्यपि आजकल जीभ से रोग परीक्षा नहीं होती किंतु पहले इसका प्रचार था प्रमेह में। पेशाव की मधुरता आदि का ज्ञान पहले जीभ से ही होता था आजकल रोगी की जीभ देखी जाती है। उससे यह मतलब नहीं है।

(५) चर्म—चमड़ीसे होने वाली रोग परीक्षा को (Palpation including examination of pulse) कहतेहैं। स्पर्शके द्वारा शरीर की सर्दी गर्मी जानी जाती है। उसकी चिकनाई और कठोरता का ज्ञानभी विना छुये नहीं होता।

(६) प्रश्न से होने वाली परीक्षा को (By interrogation) कहते हैं। रोग का इतिहास पाचनशक्ति की दशा आदि वातें विना पूछे नहीं जानी जा सकती।

हारीत के मतमें देखने छूने और पूछनेसे रोग की परीक्षा हो सकती है। चरक के मत में आप्तोपदेश प्रत्यक्ष और अनुमान इन तीन तरीको से रोग की परीक्षा होती है।

हम पाठको को इस झमेले में फसाना नहीं चाहते, रोग-विज्ञान की आवश्यक विधियों का उल्लेख करके हम इस प्रकरण को खतम कर देना चाहते हैं। सुश्रुत में रोग परीक्षा के जो ६ तरीके हैं उनमें नाक, आंख आदि से मतलव नही। वैद्य के कान नाक आदि से हैं। स्पष्ट यों समझिये कि वैद्य अपनी नाक, कान, आंख, जीभ से रोग की परीक्षा करे, स्पर्श से रोगी को देखे और उससे पूछे भी।

आजकल रोगी की जीभ देखी जाती है और उसी से रोग की परीक्षा होती है और चमड़ी भी रोगी की ही देखी जाती है। अस्तु—

साधारण समाजकी सुविधा के लिये हम रोग विज्ञान के ८ तरीके यहां वतलाते है, जिससे वहुत आसानी के साथ रोग की जांच हो जाती है।

रोग परीक्षा के आठ तरीके

[१] पेशाव से रोग परीक्षा।
[२] मल से रोग परीक्षा।
[३] जीभ से रोग परीक्षा।
[४] आंखो से रोग परीक्षा।

[५] शब्द से रोग परीक्षा।
[६] स्पर्श से रोग परीक्षा।
[७] आकृति से रोग परीक्षा।
[८] नाड़ी से रोग परीक्षा।

प्रत्येक का अब खुलासा वर्णन देखिये-यह बात याद रखने की है कि आयुर्वेद में तीन दोष हैं वात, पित्त और कफ इनकी विकारावस्था में ही रोग पैदा होने हैं, साम्यावस्था में नही, तीनों दोषो का विश्लेषात्मक वर्णन भी पाठको की जानकारी के लिये हमने अलगकर दियाहै। मूल मूत्र, जीभ आदि से दोषों की विकृत दशाका परिचय मिलता है। अन्त में श्वास परीक्षा और वक्षःस्थल परीक्षा का भी उल्लेख किया जायगा।

मूत्र परीक्षा

आज कल पेशाब देखने की प्रथा उठ सी गई है वैद्य तो पेशाव परीक्षा करते ही नही, हां डाक्टर कभी कभी पेशाव की परीक्षा किया करते है। वे भी अपनी आंखो से नही आवश्यता होने पर पेशाव को मेडीकल कालेज के मूत्र परीक्षा विभाग में भेज देते हैं, फिर वही से परीक्षा फल आ जाता है।

प्रमेह जैसे रोगी में पेशाव की परीक्षा केवल आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है विना पेशाव देखे मेहका निर्णय नहीं हो सकता। पेशाव परीक्षा की वहुत आसान तरकीव हम पाठकों के सामने रख देना चाहते हैं। इसमें ये खुद ही पेशाव की परीक्षा कर सकेंगे इसके लिये न उन्हे डाक्टर ही के दरवाजे खटखटाने पडेंगे, और न लम्बी फीस ही देनी पडेगी।

परीक्षा के लिये पेशाव हमेशा प्रातःकाल का लेना चाहिये कांच के या चीनी के वर्तन में सुवह का पेशाव रखना चाहिये। हां यह बात ध्यान रखने की है कि पेशाव की पहिली और अन्त की धार उसमें नही मिलाना चाहिये यानी पेशाव की पहिली धार जो शुरू में गिरती है अलग गिरानी चाहिये, फिर वीच की धार वर्तन में। अन्त की धार भी अलग गिरानी चाहिये, कांच की शीशी इसके लिये अच्छी होती है किंतु इनका मुंह तग न होना चाहिये फिर शीशी के मुंह पर काग कर देना चाहिये, जिससे वाहिरी हवा पेशाव में नहीं मिलने पावे।

फिर सूर्य के प्रकाश में उन पेशाव को गौर से देखना चाहिये, डाक्टर लोग प्रकाश के लिये दिन में भी स्पेशल लाइट का प्रयोग करते हैं, और आंखो पर आईग्लास भी लगा लेते हैं, मगर हम इन झमेलो में न फसकर सीधे तरीके से पेशाव परीक्षा की वाते वतलावेंगे, स्वस्थ आखो से पेशाव की खरावी अच्छी तरह समझ ली जाती है और सूर्य के प्रकाश में एलेक्ट्रिक लाइट की भी दरकार नही होती। हां तो—

किस रोग में कैसा पेशाव होता है यह वताने के पहिले यह वताये देतेहैं कि किस दोषकी खरावी में कैसा पेशाव होता है। दोष की खरावी का असर पेशाव पर जरूर होता है वह देखने पर खरावी का पूरा परिचय दे देता है।

वायु की खरावी में —जब कि बिगड़ा हुआ वायु पेशाव की नियमित दशा में परिवर्तन कर देता है तो पेशाव पानी की तरह साफ होता है उसमें कुछ नीली २ झलक भी दिखाई देती है किंतु सफेद होता है। मिकदार में अधिक होता है और रूखा होता है।

पेशाव में जब कफ की खराबी होती है तो एक दम सफेद होता है, गाढ़ा होता है, और चिकना होता है। एक दम गाढ़ा नहीं, किन्तु कुछ गाढा होता है।

पित्त की खरावी में पेशाव—एक दम पीला होता है, कुछ लाल रंग की झलक भी दिखाई देती है, अगर उसको छूकर देखें तो गर्म होता है। मिकदार में पेशाव कम होता है।

किस रोग में कैसा पेशाव होता है

जलोदर—जलन्धर में पेशाव घी के दानो जैसा होता है।

आम वात—में पेशाब माठे जैसा होता है।

अजीर्ण—में पेशाब का रंग सफेद और लाल होता है।

क्षय—में पेशाब काला होता है।

तेज बुखार—में पेशाब लाल किंतु साफ होताहै

सन्निपात में—पेशाब कलौंस लिये होता है।

प्रसूत दोष में—पेशाब ऊपर से पीला, नीचे से काला और बुदबुदे दार होता है।

पेट के बढ़ने पर—पेशाब चिकना होता है।

खून की खराबी में—पेशाब नीचे से लाल और ऊपर से नीला होता है। कभी एकदम लाल होता है।

खूनी वात में—पेशाब एक दम लाल होता है।

रक्त पित्त में—कुसूम के रंग जैसा होता है।

पुराने बुखार में—बकरी का जैसा पेशाब होता है उसमें गंध आने लगती है। बच्चों की यकृत विकृति में भी ऐसी ही होती है कपड़े पर हल्दी जैसा रंग आता है यह बड़ा भयानक होती है।

मूत्रातिसार में—पेशाब के नीचे कुछ २ लाली दिखलाई देती है।

कफवात में—पेशाब कांजी जैसा होता है।

कफपित्त में—सफेदी लिये हुये पीला होता है।

सुजाक में—पेशाब पीलापन लिये होता है। उसमें पीव रहती है और कभी २ गनौरिया का कीड़ा दिखलाई देता है।

सोमरोग में—पेशाब में एलब्यूमिन मिलता है, चर्बी का अंश भी होता है और पेशाब बहुत होती है।

दस्तों में—पेशाब नीचे में लाल होता है।

बहुमूत्र में—पेशाब अधिक और ठंडा तथा साफ होता है।

सर्दीके बुखारमें—केशर जैसा पीला होताहै।

पित्त ज्वर में—पीला और साफ होता है।

कफ ज्वर में—सफेद और गाढ़ा होता है।

मल की अधिकता में—पेशाब पीला और मिकदार में अधिक होता है।

बुखार में—पेशाब का कालापन मौत का चिन्ह है।

रसवृद्धि में—शरीर में रस के बढ़ने पर पेशाब ईख के रस जैसा होता है, तथा सफेद होता है। कई रोगो में पेशाब करने के समय ही पेशाब की परीक्षा होती है-प्रमेहो में-कई प्रमेह ऐसे होते हैं, जिनमें पेशाब करने के समय रोगी को देखना पड़ता है। सुजाक में जलन होना केवल पेशाब दुखने से ही नहीं जाना जा सकता, जब तक कि रोगी से पूछा न जाय, या पेशाब करने के समय उसकी हालत न देखी जाय।

पेशाब की अधिकता की पहिचान भी-केवल एक पेशाब को देखकर नहीं हो सकती। हैजे में भी पेशाब बन्द हो जाता है, मधुमेह में पेशाब पर चींटियां बैठती हैं, जो बिना पेशाब की जगह देखे नहीं मालूम हो सकती। पित्त प्रमेह में पेशाब करते समय रोमाञ्च होता है। यह भी केवल पेशाब को देखकर नहीं जान सकते।

अब हम प्रमेहो में कैसा पेशाब होता है? यह बतलाना चाहते हैं।

प्रमेह को ऐलोपथिक विद्वान शुक्रस्राव कह देते हैं, सुजाक भी कह देते हैं, किंतु प्रमेह दूसरी ही बीमारी है। आयुर्वेद में २० तरह के प्रमेह होते हैं, और उनकी परीक्षा बिना पेशाब के नहीं होती।

१—उदक प्रमेह—पेशाब एकदम सफेद होता है, साफ होता है, छूने में ठंडा होता है, उसमें किसी तरह की गंध नहीं आती, देखने में वह साफ पानी जैसा होता है। गौर से देखने पर कुछ गदलापन और चिकनाहट मालूम होती है। पेशाब करते समय रोगी को ऐसा मालूम होता है मानो लिंग से ठंडा पानी गिर रहा है।

२-इक्षुप्रमेह में—पेशाब ठीक ईख के रस जैसा भरा कुछ २ गाढ़ा और मीठा होता है। जहां रोगी पेशाब करता है वहीं च्योंटियां आजाती हैं। मधुमेह में भी यद्यपि च्योंटियां आती हैं, किंतु इसमें और दूसरे अन्तर हैं।

३-सान्द्र प्रमेह में—पेशाब रख देने पर गाढ़ा हो जाता है, और नीचे गदला पदार्थ जम जाता है

४-सुरा प्रमेह में—पेशाब बोतल में रख कर देखा जाता है तो नीचे से गाढ़ा और ऊपर से पतला होता है, रंग में कुछ ललाई होती है।

५-पिष्ट प्रमेह में—पिसे हुये चावलों के पानी जैसा सफेद और मिकदार में अधिक होता है पेशाब करने के समय रोमें खड़े हो जाते हैं।

६-शुक्र प्रमेह में—पेशाब में वीर्य रहता है, जिससे कुछ गाढ़ापन रहता है, रख देने से पेशाब में वीर्य के कण दिखलाई देते हैं।

७-सिकता मेह—पेशाब के साथ में सफेद रंग की रेत आती है, पेशाब के समय हलका दर्द भी होता है।

८-शीत मेह में—पेशाब एक दम ठंढा हो जाता है मीठा होता है, और पेशाब करते समय रोगी मारे ठंड के कांपने लगता है।

९-शनैः मेह में—पेशाब धीरे २ होता है, और कम होता है, जलन वलन कुछ नहीं होती।

१०-लाला प्रमेह—लार की तरह छोटी धार से होता है; चिकना होता है और लिबलिबा होता है।

११-क्षार प्रमेह में—पेशाब ठीक खारी पानी जैसा होता है, वैसी ही गंध आती है, वैसा ही रंग होता है, छूने पर वैसा ही खरदरापन होता है।

१२-नील प्रमेह में—पेशाब नीले रंग का होता है, या पपैया पक्षी के पंख के रंग जैसा होता है।

१३-काल प्रमेह में—पेशाब काली स्याही की तरह काला होता है।

१४-हारिद्र मेह—पेशाब हल्दी के रंग जैसा पीला होता है, स्वाद कड़वा होता है, और पेशाब करते समय जलन भी होती है।

१५-मजिष्ठ प्रमेह में—देखने में पेशाब मजीठ के काढ़े जैसा होता है उसमें बदबू आती है।

१६-रक्त प्रमेह में—पेशाब खून जैसा लाल, गरम खारी और बदबूदार होता है।

१७-वसा प्रमेह में—पेशाब चर्बी जैसा होता है उसमें चर्बी भी आने लगता है।

१८-मज्जा प्रमेह में—पेशाब मज्जा के जैसा होता है उसमें मज्जा का अंश भी आता है।

१९-क्षौद्र प्रमेह में—पेशाब शहद के रंग का मीठा, रूखा और कसैला होता है इस पर मक्खियां आ बैठती हैं।

२०-हस्ति प्रमेह में—रोगी हाथी की तरह ठहर-ठहर कर मूतता है. पेशाब बार २ और रुक २ कर होता है। और देखने में वह हाथी के मद जैसा होता है।

इन सब प्रमेहों का दादा है मधुमेह। मधुमेह बड़ा खतरनाक रोग है. इसकी भयंकरता का वर्णन हमने प्रमेह प्रकरण में किया है मधुमेह में पेशाब में शक्कर आती है। शक्कर परीक्षा की एक सामयिक रीति यहां बतलाये देते हैं। जिसके द्वारा डाक्टर लोग शक्कर की जांच करते हैं। एक कांच की नली में थोड़ा पेशाब लिया जाताहै फिर पेशाब से आधा 'लाइकर पोटास' उसमें डाल दिया जाता है नली को हलाकर उसे स्प्रिट लैम्प पर गरम करते हैं पेशाब में अगर शक्कर होती है तो पेशाब का रंग पोर्टवाइन के जैसा या एक दम भूरा हो जाता है। शक्कर नहीं होने पर ऐसा नहीं होता।

नोट—स्वाभाविक अवस्था में पूर्ण वयस्क पुरुष करीबन ३ पाउण्ड यानी डेढ़ सेर पेशाब करता है, दिन और रात के २४ घंटों में। अच्छा तो यह है कि मूत्र परीक्षा के समय पेशाब को रख

लिया जाय और २४ घंटे का पेशाब होने पर, से मापने वाली शीशी में मांप लिया जाव। छटांक आध छटांक की कमीवेशी होना कोई बात नहीं है

तेल मैं पेशाब की परीक्षा

पाठकों की जानकारी के लिये एक और मजेदार तरीका यहां लिखा जाता है। यद्यपि आजकल इस परीक्षा का प्रचार नही है, बहुतो को तो इसका परिचय तक नही है, मगर यह है बहुत उपयोगी तरीका, खास खास बातो को हम यहा बतलावेगे। जिन बातो में मतभेद है, उनका उल्लेख करके पाठको को जंजाल में नही फसाना चाहते।

सुबह पेशाब लेके एक खुले मुंह के बरतन में रखना चाहिये। चीनी या कांच का गिलास इसके लिये बहुत उपयुक्त है। फिर पेशाब के बरतन में (पेशाब के ऊपर) एक या दो बूंद तेल डालना चाहिये, एक बूंद पर्याप्त है, दो बूंद डाली जाय तो एक ही जगह डालना अलग २ नही। अब उस बूंद की दशा को देखकर आप दोपो की परीक्षा कर सकते हैं।

बूंद डालते ही अगर एक सांप की तरह लकीर खिच जाती है और वह लकीर तैरती हो, देखने में काली हो तो आप पेशाब में वायु की खराबी समझिये।

बूंद डालते हो पेशाब में बुदबुदे उठने लगें और बूंद गोल तथा फैली हुई हो जाय तो आप पित्त की खराबी समझिये।

बूंद पेशाब में तेल डालने पर अगर गदली कीचड़ के पानी जैसी हो जाती हो और वह पेशाब में मिल जाती हो तो आप कफ की खराबी समझिये।

बूंद डालने पर अगर पेशाब का रंग सरसो के तेल जैसा हो जाता हो तो वात पित्तकी खराबी समझिये। साधारण रूप से दोष की परीक्षा होने पर चिकित्सा में आसानी हो जाती है।

केवल पेशाब के द्वारा रोगों की पहचान हो जाती है अगर आपका ऐसा विश्वास है तो वह सरासर गलत है, केवल पेशाब कुछ भी नहीं कर सकता, दूसरी बातें भी देखी जाती हैं।

हैजे में जब पेशाब होता ही नहीं तब आप क्या हैजे को हैजा नहीं समझेंगे या पेशाब होने तक रोग परीक्षा की प्रतीक्षा में बैठे रहेंगे।

पेशाब की परीक्षा के साथ २ सभी चीजों की परीक्षा करनी चाहिये। हां, पेशाब भी अवश्य देख लीजिये, अच्छी तरह रोग की जांच होने पर इलाज बहुत जल्द हो जाता है, यह बात हम फिर अपने पाठकों को बतला देना चाहते हैं।

एक बात और है—

पेशाब की एकबार परीक्षा करके ही आप किसी रोग को करार मत दीजिये। कभी २ आकस्मिक कारणों से भी पेशाब में परिवर्तन हो जाता है, जो स्वाभाविक नहीं है। २-४ बार पेशाब को देखकर फिर दूसरी चीजों की परीक्षा करके किसी को रोगी बनाइये, अन्यथा नहीं।

मल परीक्षा

Peacl Examination

मल परीक्षा तो आजकल बहुत ही कम नाम सुनने में आता है। डाक्टर भी बहुत कम मल परीक्षा करते है, वैद्य तो इसे आवश्यक ही नही समझतेहैं। किंतु मल-परीक्षा करनेसे रोग की जांच मे सुविधा होती है।

संक्षेप रूप में मल परीक्षा की खास २ बातें यहां बतलाई जाती हैं। मल में भी दोपका हिसाब अवश्य रहता है, दोप के अनुसार ही उसके रंगो में परिवतन होता है, तथा गाढ़ापन और पतलापन रहता है।

वायु की खराबी में-जब कि शरीर में वायु बिगड़ जाताहै तो मल फूटा हुआ, झागदार, रूखा

और देखने में धुयें के रंग का कुछ काला, नीला होता है।

पित्त की खराबी में-मल पीला, पतला, गरम, और कुछ कलौंश लिये होता है।

कफ की बीमारी में-सफेद, गाढ़ा, चिकनाव गीला होता है।

वात कफ की खराबी में—सुर्खी मायल पीला होता है।

वातपित्त की खराबी में—पीला, काला, कभी बंधा हुआ, कभी पतला और कभी बिखरा हुआ होता है।

कफ पित्त की खराबीमें—पीला, सफेद, गीला और गरम तथा चिकना होता है।

त्रिदोष की खराबी में—सफेद, काला, पीला, बंधा हुआ, कभी फुटा हुआ होता है।

अब किस रोग में कैसा मल होता है, यह भी बताया जाता है। सब रोगो में कैसा मल होता है, यह तो बहुत लम्बा विषय हो जायगा, दोषो के अनुसार सभी रोगो मे समझा जा सकता है। हा कुछ रोगो के मल की थोडी बाते बतला देनी आवश्यक है जिससे और रोगो के मल की जांच में सुविधा हो।

संग्रहणी में—कच्चा अन्न बिना पके यो का यो ही निकल जाता है।

हैजे में—पानी जैसे पतले दस्त आते हैं। दस्तो में मल नही रहता, दस्त सफेद होता है।

दस्तो [अतिसार] में—मल पतला होता है।

पेट में कीडे पड़ने पर—मल पतला होता है, साथ में जी मचलाता रहना है। दस्तो [अतिसार] में ऐसा नही होता।

मन्दाग्नि मे—मल पतला होताहै उसका ठीक पाचन नहीं होता. उसमें बदबू भी आती है।

अजीर्ण में—मल बदबूदार और ढीला होता है।

जलन्धर में-एकदम सड़ा हुआ सफेद मल होता है।

क्षय में-मल काला होता है।

पांडु, कामला यकृत की खराबी में—मल प्रथम पीला, हवा लगने पर प्रायः काला हो जाता है।

अम्लपित्त में-प्रथम लाल कलौंस लिये हवा लगने पर हरा हो जाता है।

यकृत की खराबी से दस्त होने पर भी-अम्ल पित्त के समान अधिक गरम और पतला दस्त होता है।

मल में रक्त का आना अर्श या कृमिरोग की सूचना देता है। सम्पादकः—

जीभ परीक्षा

Toungul Examination

स्वस्थ आदमी की जीभ हमेशा गुलाबी और गीली होती है।

वायु की खराबी में—जीभ खुरदरी, सूखी, फटी हुई कुछ हरी होती है। जीभ एकदम तो नहीं कुछ २ सुन्न हो जाती है, गाय की जीभ की तरह खरदरापन दिखाई पडता है और लार बहुत ही बहती है।

पित्त की खराबी में—जीभ के ऊपर कांटे से हो जाते हैं, देखने में लाल और काली होती है। जली हुई सी होती है और उसमें थोड़ी जलन होती है. स्वाद चरपरा हो जाता है।

कफ की खराबी में-जीभ मोटी हो जाती है। सफेद दिखलाई पड़ती है और उसके ऊपर सफेद-सफेद मोटे २ काटे से दिखलाई पड़ते हैं। स्वाद-मीठा खट्टा रहता है, हरदम गीली रहती है, कफ गिरता रहता है।

गले के अंदर प्रदाह होने पर —जीभ काली हो जाती है उसे कोई चीज अच्छी नहीं लगती।

खून की अधिकतामें—जीभ गरम और लाल, हो जाती है, उसके ऊपर भाप सी उठती है।

हैजे में—जीभ नीरस, सफेद और खुरदरी हो जाती है और चटपटी हो जाती है। स्वाद एकदम बिगड़ जाता है।

ज्वर में—जीभ ठण्डी हो जाती है जिस दोष की खराबी होती है उसी के अनुसार रंग हो जाता है।

सन्निपात ज्वर में—जीभ मोटी, रूखी और सूखी हो जाती है, उसका रंग काला होता है।

यकृत्प्रदाह तथा जिगर की दूसरी खराबी में-जीभ हरियाली लिये हुये पीली हो जाती है, उसके ऊपर दोष की भाप रहती है।

कमजोरी और जलन में—जीभ बड़ी होजाती है यही खास पहिचान है।

फुफ्फुस की खराबी में—जीभ में जख्म हो जाता है।

क्षय में-पहले जीभ काली होती है। बाद में उसके ऊपर जख्म भी हो जाता है।

मूर्छा और मृगी में- जीभ ठण्डी हो जाती है व दोष के अनुसार उसपर भाप जम जाती है।

धमनियो में खून सूखने पर—जीभ का रंग काला या बैंगनी हो जाता है।

सन्निपातज्वर में—आंतों की खराबी एवं क्षत हो जाने पर (प्रायः यह सम्रहणी में देखा गया है) जीभ फट जातीहै उसमें सीधी सी दरारें पड़ जाती हैं।

क्षय एवं मारक व्याधि में—जीभ के नीचे की नसें काली पड़ जाती हैं। यह असाध्य सूचक चिन्ह हैं।

आमाशय की खराबी में—मुंह में और प्राय· जीभ पर बार २ छाले पड़ते हैं और फुन्सियां भी होती है।

रक्तदोष या यकृत विकार में-जिह्वा में काले २ निशान भी देखे गये हैं। —सम्पादकः

आंख की परीक्षा

Eye Examination

रोगी को देखते समय डाक्टर लोग अवश्य उसकी आंखों कोभी देख लिया करते हैं। आजकल वैद्य भी कुछ २ आंखें देखने लगे हैं। सच तो यह है कि शारीरिक स्वास्थ्य का आंखों पर बहुत ही असर होता है। आंखें देखने पर रोग की जांच और भी आसान हो जातीहै। आंखों के विषय में आजकल एक गलत अफवाह फैल रही है। प्रत्येक किसी की आंखों की पुतलियों के नीचे जरा सी सफेदी देखकर खून की कमी का सार्टीफिकेट दे देता है यह एक बहुत भद्दी बात है। सभी की आंखें एक जैसी नहीं होती, इससे किसी के दिल में फलतः भ्रम पैदा करना है।

वायु की खराबी में—आंखें धुयें के रंग की कुछ काली पीली हो जाती हैं। कुछ टेढ़ापन भी आ जाता है। कभी आंखें अधिक हरकत करती हैं कभी कम भीतर में कानी दिखलाई पड़ती हैं।

पित्त की खराबी में—आंखें कुछ २ पीली दिखलाई देतीहैं, कुछ २ नीलेपन की व गुलाबीपन की झलक भी दिखलाई देती हैं। एक पहचान यह है कि आंखो का रोशनी अच्छी नहीं लगती, छूने में आंखें गरम रहती हैं।

कफ की खराबी में—आंखें सफेद हो जाती हैं ज्योति मन्द पड़ जाती है, आंखों में भारीपन रहता है, पानी भरा रहता है और कीचड़ बहुत आता है।

मस्तिष्क प्रदाह में-आंखे सुर्ख हो जाती हैं।

खून की अधिकता और खराबीमें-आंखें लाल हो जाती हैं और उनमें जलन होती है।

सन्न्यास में-आंखो के तारे सिकुड़ जाते हैं।

खूनी कै या दस्तो में-अधिक खून निकलने से आंखे गड्ढे में घुसकर रंग मैला हो जाता है।

तेज ज्वर में-आंखो की टकटकी बंध जाती है आंखे पीली, लाल या सफेद हो जाती हैं।

क्षय में-अन्तिम अवस्था में आंखें एकदम श्वेत हो जाती हैं वैसे कुछ २ कलौंस रहती है।

हैजे में-आंखे लाल होकर गढो में घुस जाती हैं रंग मैला हो जाता है।

पीलियां में-आंखे एकदम पीली हो जाती हैं, सब कुछ पीला ही दिखाई देता है।

कामला में-आंखें हल्दी जैसी पीली हो जाती है।

हलीमक में-आंखे हरे रंग की हो जाती हैं।

रक्तपित्त में-आंखे लाल हो जाती है और सब चीज लाल ही देख पड़ती है यह असाध्य के लक्षण हैं।

—सम्पादकः

त्रिदोपकी विकृतावस्थामें-आंखे कभी खुलती हैं, कभी मिचती है कभी खुली ही रहती है, कभी बन्द भी रहती हैं। काली पुतलियां दिखलाई नही पड़ती धुये के रग का बडा तारा जल्दी २ घूमने लगता है, रग कभी लाल हो जाता है कभी पीला और कभी सफेद।

सरदर्द मे-अगर दर्द जोरो से है तो आंखे कुछ २ लाल हो जाती है और उनमे जलन भी होने लगती है।

पेट में यदि सीहा या यकृत में विगाड़ होगा या यह बढ़ गये होंगे तो आखो मे अवश्य पीलापन दिखाई देगा।

क्षय में-आंख के सफेद भाग पर रक्त नसें नही दिखाई देती।

हैजे में-आंखो का गढो में होना, पलको पर कालिमा आ जाती है, रक्त की कमी में पलक के भीतर सफेदी अवश्य हो जाती है। रक्तपित्त में आंखोमें जलन एवं सुर्खी और लालही दीखता है।

—सम्पादकः

शब्द परीक्षा

Sound Examination

आवाज परीक्षा का प्राचीन ग्रन्थो में कोई लम्बा वर्णन नही है। दोप के अनुसार कैसी आवाज होती है यही बतलाया गया है। इससे दोप समझ कर उसका उपचार करना चाहिये।

कफके रोग होने पर-जब कि कफ की खरावी से रोग पैदा होतेहैं, आवाज भारी हो जाया करती है, नियमित दशा से कुछ भारीपन आ जाता है।

पित्त के रोगो में-आवाज साफ होती है।

वादी के रोगो में-आवाज के साथ घर-घर होती है। इसमे स्वरभग होना असाध्य है।

उपदश वाले रोगी तालु गलनेसे नाक के स्वर से बोलते है, प्रतिश्याय से बोल भारी हो जाता है मेदोवृद्धि होने से आवाज कम पड़ जाती है, विष खाने से आवाज वद हो जातीहै तूनी प्रतूनी जिह्वा स्तम्भ में भी वाग्विकृत हो जाता है।

—सम्पादकः

शब्द परीक्षा में कुछ विशेप पहचान नही होती और न आजकल रोग परीक्षा मे इससे कुछ विशेप सहायता ही मिल सकती है। पाठको की जानकारी मात्र के लिये हमने इसका उल्लेख कर दिया है।

स्पर्श परीक्षा

Tuch Examination

स्पर्श के द्वारा चमडी की वाहरी दशाका ज्ञान हो जाता है। चमड़ी को छूकर दोपो की जांच की जा सकती है, थर्मामीटर से शारीरिक ताप का पता लगता है इसका उल्लेख अलग किया जायगा इसके द्वारा टेम्प्रेचर का पता लगता है, किंतु शरीर के चिकनेपन, कड़ेपन आदि का परिचय नही मिलता।

पित्त की खरावी मे-देह गरम रहती है यह खास पहिचान है, यह गर्मी उस गर्मी से अलग है जो ज्वर में होती है।

कफ की खरावी मे-शरीर चिकना, चिपचिपा और ठंडा होता है।

वायु की खरावी में-शरीर ठंडा और खुरदरा होता है, चिकना और चिपचिपा नहीं।

शीतांग सन्निपात में-देह एकदम ठण्डी हो जाती है।

अन्तक सन्निपात में-शरीर आग की तरह दहकता है।

उष्णपाणिपाद ज्वर में-हाथ पैर गरम, शेष सब देह ठण्डी होती है, यह बिना स्पर्श कैसे जान सकते है।

नाड़ी की परीक्षा

Puls Examination

नाडी परीक्षा के विषय मे आजकल बहुत भेद है। डाक्टरो की दृष्टि मे नाड़ी परीक्षा व्यर्थ है, इससे कुछ जांच नहीहोती और वैद्योकी जांच केवल नाडी पर ही निर्भर है। साधारण जनता के विश्वास के अनुसार वैद्य के लिये नाडी का ज्ञान होना केवल आवश्यकही नही वरन् अनिवार्य भी है, कुछ चाल ही ऐसी पड गई है कि रोगी देखने के लिये फौरन ही हाथ बढा देता है, नवीन वैद्य भी नाडी को कम महत्व देते है और डाक्टरी तो कुछ महत्व देती ही नही हा, रोगी हाथ से न निकल जाय इसलिये वैद्यो की देखा-देखी डाक्टर भी हाथ पकड़ने लग गये है।

नाडी परीक्षा महत्वहीन तो कभी नहीं कही जासकती, रोग जांच में इससे बहुत सरलता होती है। हां, केवल नाडी के द्वारा सब बातें नही बतलाई जा सकती। नाड़ी का महत्व तो इसी से समझा जा सकता है कि एलोपैथिक विद्वान भी अब धीरे २ नाडी विज्ञान का अध्ययन करने लगे हैं। मिनिट के हिसाब से अब वे भी नाड़ी की चाल की परीक्षा करने लगेहै। बाज २ डाक्टर तो नाडी देखते समय घडी सामने रख लेते हैं।

यूनानी विद्वान भी नाडी देखते है— और आयुर्वेदिक तो देखते ही हैं, आजकल तो उनका दारोमदार ही नाडी पर है। नाड़ी से दोषो का पता चलता है, धातुओ के बढ़ने और घटने का समाचार नाडी द्वारा मिलताहै हम नाड़ीकी वकालत नही करते अपितु सीधी और खरी बाते अपने पाठको के सामने रखना चाहते है, नाड़ी का ज्ञान हरएक को नही हो सकता, अनुभवी विद्वानो को ही हो सकता है। बीसवी सदी की जनता ही कुछ ऐसी है कि कठिन बातो को गप्प समझकर छोड़ देती है। फिर भारत पाश्चात्य सभ्यता से इतना प्रभावित हुआ है कि वह यूरोप की नकल करने में उससे भी दो कदम आगे बढ़ जाताहै, यह अत्युक्ति नही। अगर कहा जाय कि पश्चिमी विद्वान अभी पूर्ण अवस्था मे नही है, वह अभी खोज में है, इसलिये उसमे नये नये परिवर्तन होते है, भारतीय विज्ञान पूर्ण है, इसमे गुञ्जायश सन्देह की नही, हमारी बुद्धि की है।

यूरोपीय विद्वानो की देखादेखी कुछ भारतीय विद्वान् भी नाड़ी को सारहीन कहने लगेथे लेकिन जब यूरोप कुछ २ नाडी को महत्व देने लगा तो वे भी उसके राग मे राग मिलाने लगे है। अगर नाडी परीक्षा का वैज्ञानिक विश्लेषण की जाय तो यह महत्वपूर्ण ही ठहरेगी कि नाडी परीक्षा में केवल नाडी की परीक्षा होती है सो बात नही है, हृदय की गति का खास सम्बन्ध नाडी से रहता है नाडी की चाल को देखकर हम हृदय की गति का अनुमान कर सकते है।

नाडी की चाल कई तरह कीहोती है, जिसकी जांच के लिये निरन्तर अभ्यास की आवश्यकताहै वर्षो मननपूर्वक जब नाड़ी की चाल का अध्ययन किया जाता है तो सफलता मिलती है।

जिस तरह वैद्य पुरुष के दाये हाथ की नाड़ी देखते है और स्त्री के बायें हाथ की। उसी तरह डाक्टर भी ढोंग रचने के लिये अभिनय करते हैं स्त्री के बांये तथा पुरुष के दाहिने हाथ की नाड़ी

क्यों देखी जाती है इसका रहस्य बहुत कम वैद्य जानते हैं। प्रथा के अनुसार वे भी बेचारे ऐसा ही करते हैं किंतु उस रहस्य की राह तक नही पहुँचते।

नाडियो की जानकारी के थोडे शब्दो में हम रहस्य भी बतलाये देते है।

स्त्रियो और पुरुषो की नाभि में एक कूर्मनाड़ी है जो कछुये की तरह उछलती कूदती है। बहुत से वैद्य कूर्म नाड़ी से मतलब कछुये जैसी नाडी से समझते हैं किंतु यह उनकी साधारण गलती है। यह नाड़ी सभी स्त्री पुरुषो की नाभि में होती है। पुरुषो की नाभि में इस नाडी का मुह नीचे की तरफ है जिससे उसका सम्बन्ध दाये हाथ से हो जाता है और स्त्रियो की नाभि में ऊपर की तरफ जिससे उसकी वास्तविक स्थिति वाये हाथ मे रहती है। मोटी तौर से दोनो हाथो की नाड़ी देखी जा सकती है वही वैद्यलोग देखने भी है।

नाड़ी परीक्षाके खास २ नियमो का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है।

नाड़ी परीक्षा के आवश्यक नियम

स्वाभाविक अवस्था मे नाड़ी का ठीक परिचय मिलता है, हम बता आये है कि हृदय की धड़कन का असर नाडी पर पडता है इसलिये नाड़ीपरीक्षा उस दशा में करनी चाहिये जिस समय आदमी अपनी स्वाभाविक दशा में हो किसी तरह की मेहनत वगैरह न कर चुका हो, कसरत करने पर स्वभाव से ही नाडी जल्द २ चलने लगती है, इस लिये कि उस समय हृदय जल्दी २ खून फेंकता व लेता है। इस दशा में नाडी की जांच ठीक तौर से नही हो सकती। स्त्री से भोग करने पर नाड़ी स्वभावतः जल्द चलने लगती है, यही हाल दौडने में, खाना खाने आदि मे होता है।

कसरत करने के बाद, शरीर में तेल मलने के बाद, खाने के बाद, स्त्री भोग के बाद, टेनिस, हाकी, फुटबाल आदि खेलने के बाद, नीचेसे ऊपर चढ़ने या ऊपर से नीचे उतरने के बाद तथा किसी तरह की मेहनत करनेके बाद नाड़ीकी चाल बदल जाती है अतः उस समय नाड़ी देखने से रोग का पता नही चल सकता और न उसकी स्वाभाविक दशा का ही परिचय मिलता है, भूख लगने पर नाडी सुस्त हो जाती है आग के सामने बैठे रहने से नाड़ी में तेजी आ जाती है और सोते रहने के समय नाडी सुस्त हो जातीहै इसलिये इस अवस्था में भी नाड़ी नही देखना चाहिये किसी मानसिक चिन्ता के होने पर या हर्ष के होने पर नाड़ी ठीक अवस्था का परिचय नहीं दे सकती। मल मूत्र का वेग होने पर तथा स्त्री से भोग की इच्छा होने पर नाड़ी स्वस्थ नही रहती।

नाड़ी परीक्षा के लिये उपयुक्त समय है प्रातः-काल। आवश्यकता के समय किसी भी समय देख सकते है। वैसे सुवह के समय रोग की जांच अच्छी तरह होती है। सुवह के समय भी खाट से उठते ही नही, पाखाना जाने के बाद स्नानादि कर स्वस्थ चित्त हो नाडी परीक्षा करनी चाहिये, रोगी के लिये या जिन्हे रोगकी सम्भावना है उनके लिये यह आवश्यक है कि निश्चित होकर नाड़ी की जांच करवाये।

किसी भी शारीरिक या मानसिक मेहनत के बाद नाडी की परीक्षा नही करानी चाहिये। नाडी परीक्षाका उपयुक्त समयहै, प्रातःकाल। उस समय भी हृदयमें कोई विकार नही होना चाहिये, हार्दिक चिंताओ का प्रभाव नाडी पर अवश्य पडता है।

उन रोगियो के लिये-जो वास्तविक रोगी हैं। क्योकि आजकल सभी अपने आपको किसी न किसी मर्ज का मरीज समझे रहते है। कोई खास नियम नहीहै उनकी नाड़ी किसी भी समयमे देखी

जा सकती है। हां, यह बात भी आवश्यक है कि एक बार नाड़ी देखकर कर्त्तव्य की इतिश्री नही समझ लेनी चाहिये।

नाडी देखने वाले के लिये यह भी आवश्यक है कि वह स्वस्थ चित्त होकर नाड़ी की जांच करे. मानसिक चिन्ता या हर्ष के समय मनोवृत्तियां छिन्न भिन्न रहती है जिससे नाडी की जाचमें असफलता हो सकती है, यह नहीं होना चाहिये कि वैद्य जी को पाखाने की हाजत है और नाडी की परीक्षा कर रहे है। नाडी परीक्षा के समय यह ख्याल भी नही होना चाहिये कि मुझे फलां-फला आदमी देखने है। नाडी देखना कोई हंसी-खेल तो है ही नहीं, जो पकड़ लिया हाथ और सब हाल मालूम हो गया जिनकी मनोवृत्तियां स्थिर नही रहती वे नाडी परीक्षामे कभी भी सफलीभूत नहीं हो सकते, यह एक निरापवाद सत्य है।

परीक्षा करने वाले को एकाग्रचित्त होना चाहिये। नाडी हमेशा चित्तकी स्थिरता (Concentiation of mind) को चाहती है। नाड़ी किस जगह की देखी जाती है, यह सभी जानतेहै। साधारण रूप से पुरुप के दाये और स्त्री के बांये हाथ की नाडी देखी जातीहै। ठीक अगूठे के नीचे टटोलनेसे हमें एक नाडी दिखलाई पडती है आयुर्वेद में उसे जीवसाक्षिणी धमनी कहते हैं। शरीर में तीन दोप होते है अत तीन अगुलियो के द्वारा यह नाडी जाची जाती है। जब हम अंगूठे के नीचे कलाई पर हाथ रखते है (हाथ नही तीन अंगुली) तो पहली तर्जनी के नीचे वायु की चाल और दूसरी मध्यमा के नीचे पित्त की चाल और तीसरी अनामिका के नीचे कफ की चाल मालूम होती है।

तीनो दोपो की अलग २ चालहै इसका वर्णन हम आगे चलकर करे गे। आयुर्वेदमें नाडी-परीक्षा का विपय लम्बा होने के साथ गम्भीर भी है। पहिले हम आजकल के डाक्टरो की नाडी परीक्षा का उल्लेख कर देना चाहते है। डाक्टरो में नाड़ी की चाल का हिसाब लगता है, वह हिसाब सहज ही समझ में आ सकता है। आशा है इससे पाठको का मनोविनोद होने के साथ उनका कुछ उपकार भी होगा। घडी सामने रखकर वे बहुत आसानी से नाडी की जाच कर सकते है किन्तु पूर्वोक्त नियमो का ध्यान इसमे भी रखना चाहिय, स्वाभाविक दशा में जांच अच्छी होती है। यह न भूलना चाहिये।

डाक्टरी से नाड़ी परीक्षा

सबसे पहले एक घडी सामने रखलेनी चाहिये सर्दी होने पर नाडी कम फड़कती है, गर्मी होनेपर अधिक। डाक्टरो की नाडी परीक्षा का मूल तत्व यही है। उम्र के अधिक होने के अनुसार नाड़ी की धडकन कम होती जाती है, यानी ज्यो ज्यो आदमी वयस्क होता है नाड़ी की फड़कन कम होती जाती है। पाठको की सुविधा के लिये हम एक सूची पेश करते है।

स्वस्थ नवयुवककी नाड़ी प्रति मिनट ८० बार फड़कती है अगर उसमें १० अंश गर्मी बडी हुई है तो वह ९० बार फड़केगी यदि १० अंश सर्दी है तो वह ७० बार फडकेगी।

किस अवस्था से	प्रति मिनट	फडकने वाली सख्या
गर्भस्थ शिशु की	१ मि०	१६०
भूमिष्ट शिशु की	,,	१३० से १४०
एक साल के बच्चे की व उससे पिछले	,,	११५ से १००

	१०० से ९९
तीन साल की अवस्था तक "	९० से ९५
सात साल की अवस्था तक "	८० से ८५
चौदह साल की अवस्था तक "	७८ से ८०
तीस साल की अवस्था तक "	७० से ७५
पचास साल की अवस्था तक "	६० से ६२
अस्सी साल की अवस्था तक "	

८० वर्ष के बूढ़े की नाड़ी अगर ७० बार फड़कती है तो समझ लेना चाहिये कि १० अंश गर्मी बढ़ी हुई है। सर्दी गर्मी देखने के लिये आज कल तापमापक यन्त्र—थर्मामीटर की सहायता ली जाती है इससे शारीरिक ताप का पता लग जाता है। डाक्टर लोग तो नाड़ी परीक्षा के झंझट से बचकर इसी के द्वारा टेम्परेचर देखते है वैद्य भी इसका प्रयोग करने लगे है,

थर्मामीटर के विषय की आवश्यक बाते भी यहां लिखी जाती हैं। जिनके पास पैसा हो वे इसे खरीद सकते हैं और समय पर इसका उपयोग कर सकते हैं।

थर्मामीटर से ताप परीक्षा

थर्मामीटर को हिन्दी में तापमापक यन्त्र कहते हैं यह किसी भी प्रतिष्ठित केमिस्ट के यहां मिल जाता है। देखने में थर्मामीटर एक काच की नली है उसके एक तरफ पारा रहता है जो शारीरिक गर्मी से रेखाओं की तरफ बढता रहता है। कोई थर्मामीटर ३ मिनट में चढ़ता है कोई पांच मिनट में और कोई एक मिनट में। जितना मिनट मे पारा चढ़ता है। वह उसके ऊपर लिखा रहता है। शारीरिक गर्मी का असर होते ही पारा चढ़ने लगता है। नियमित समय में ठीक २ बात बतला देता है। अगर थर्मामीटर लिया ही जाय तो अच्छा लिया जाय, जिससे धोखा होने की सम्भावना ही न रहे।

स्वाभाविक ताप देखने के लिये स्वाभाविक दशा में ही थर्मामीटर लगाना चाहिये। थर्मामीटर मुंह में भी लगाया जाता है, और बगल मे भी, आवश्यकता होने पर घुटनो में भी लगा सकते हैं। यह बात ध्यान में रहनी चाहिये कि जिधर पारे की लकीर है. वही हिस्सा मुंह आदि में लगाया जाता है। ९४ डिग्री से ताप चढ़ता है, फिर गर्मी के अनुसार चढ़ता रहता है।

ताप को—टेम्परेचर कहते हैं, यहां हम टेम्परेचर का ही प्रयोग करेंगे।

किस अवस्था में कितना टेम्परेचर रहता है। यह भी ध्यान पूर्वक समझ लेना चाहिये।

किस दशा में	कितना टेम्परेचर रहता है
स्वस्थ दशा में–	९८.४ डिग्री
जुकाम होने पर–	१०० डिग्री
साधारण ज्वर मे–	१०१.२ डिग्री
जोरदार ज्वर में–	१०३.१०४डिग्री
घातक ज्वर में–	१०६.१०७डिग्री
क्षय में–	१०२.१०३डिग्री
कसरत करने पर	९९.४ डिग्री

साधारण रूप से इतनी बातो को समझ लेने पर हर एक ज्वर तथा दूसरे रोगो में ताप परीक्षा की जा सकती है। आजकल के कमजोर आदमियों का टेम्परेचर स्वस्थ दशा में भी ९७ डिग्री रहता है। किसी २ का ९६ और ९५ ही। गर्मी के घटने पर टेम्परेचर घटता है और गर्मी के बढ़ने पर बढ़ता है। हैजे में जब गर्मी घट जाती है तो टेम्परेचर

९०–८५ तक आ जाता है। १०६ के बाद सांघातिक अवस्था हो जाती है। चेचक, मोनी ज्वर जैसे रोगों में टेम्परेचर १०९ डिग्री तक पहुँच जाता है।

टेम्परेचर का बढ़ना भी बुरा है और घटना भी बुरा। अच्छा तो यह है कि बुखार हैजे आदि रोगो में २–२ घटे पर टेम्परेचर देखना चाहिये। शारीरिक गर्मी घटती बढ़ती रहती है। अभी १०२ टेम्परेचर है तो घंटा भर बाद १०० डिग्री हो जाता है या १०५ हो जाता है। रोगी के पास एक ऐसा आदमी होना चाहिये जो प्रति २ घटे या १ घटे में टेम्परेचर देखता रहे। इस समय कितना टेम्परेचर है यह लिख भी लेना चाहिये ताकि बाद में भूल न हो सके। जिनको टेम्परेचर देखना नहीं आता है वे भूलकर भी न देखे। ऊटपटाग बता देने से रोगी को और उसके परिवार को व्यर्थ ही चिंता हो जाती है। जरा सी समझ से सभी इसका हिसाब जान सकते है।

आयुर्वेद से नाड़ी की परीक्षा

नाडी परीक्षाके आवश्यक नियमो का उल्लेख पहिले किया जा चुका हैं अब यहां यह बताना है कि किस अवस्था में कैसी नाडी चलती है यह बताने के पहिले यह बता देना अच्छा है कि किस दोष में नाड़ी कैसी चलती है ?

स्वस्थावस्था में—नाड़ी स्थिर चाल से चलती है, और उसकी धड़कन कमजोर नही होती—बलवान होती है-यानी वह दब के नहीं धडकती।

वायु के बिगड़ने पर—जोक और साप की चाल से टेढ़ी और कुछ ठहर२ कर चलती है। बराबर सीधी और स्थिर नही चलती।

पित्त के कुपित होने पर—कौवे और मेंढक की चाल से कुछ तेज चलती है छूने से कुछ गर्मी मालूम पड़ती है।

कफ के कुपित होने पर—हस और कबूतर की चाल से स्थिर किंतु हलकी चलती है यानी स्वाभाविक दशा में कुछ मन्दी चलती है जैसे हंस अपनी निराली अदा से चलता है वैसे ही नाड़ी भी चलती है। हस गामिनी स्त्री की चाल और नाडी की चाल एक हीं होती है छूने पर कुछ ठडी भी दिखलाई पडतीहै, इतनी ठडीनही, स्वाभाविक गर्मी की अपेक्षा कुछ ठडी।

वायु और पित्त के विगड़ने पर—नाड़ी कभी सांप की तरह टेढी और कभी मेढक की तरह जल्द २ उछल २ के चलती है।

वायु और कफ के विगडने पर—कभी टेढ़ी और कभी हस की तरह हलकी चाल से चलती है।

पित्त और कफ के कुपित होने पर—नाड़ी फुदक २ के मेढक की तरह चलती है, कभी हंस की तरह धीरे २ कदम उठाती हुई चलती है।

क्रोध, डर चिंता और कामुकता के समय—नाड़ी क्षीण चलती है, कुछ मद पड़ जाती है।

पाचन शक्ति की कमजोरी में—नाडी मन्दी चलती है।

गर्भावस्था मे—नाड़ी भारी और वायु की चाल से चलती है।

प्रदर होने पर—नाड़ी एक चाल से किन्तु कमजोर चलती है।

अजीर्ण होने पर—नाड़ी कठिन और भारी हो जाती है।

खून के विगड़ने पर—नाड़ी मे कुछ तेजी रहती है, और वह गरम रहती है।

वीर्य की कमी होने पर—जब हस्त मैथुन, अति मैथुन, प्रमेह आदि से शरीर में वीर्य कम हो जाता है तो नाड़ी की चाल कमजोर हो जाती है, बहुत धीरे २ चलती है।

ज्वर होने पर—नाड़ी जल्दी २ चलने लगती है और गरम हो जाती है।

रक्त पित्त में—नाड़ीकी चाल मन्दी हो जाती है, कठिन हो जाती है और वह सीधी चलती है।

खांसी में—नाड़ी स्थिर और मन्दी चलतीहै।

श्वास में—नाड़ी की चाल तेज रहती है।

हैजे और अतिसार में—हैजे में नाड़ी बहुत धीरे २ चलती है, ठडी पड़ जाती है। साधारण साधारण दस्तों में नाड़ी की चाल साधारण तथा हलकी पड जाती है।

क्षय में—नाड़ी हाथी की तरह झूम झूम के चलती है।

पीलिया में—बडो चञ्चल और तेज हो जाती है।

स्वस्थ दशा में जब कि नाड़ी का स्पन्दन ८० है, एक मिनट मे श्वास की संख्या २० होती है। कसरत करने, दौड़ने और किसी प्रकार की मिह-नत करने पर यह सख्या बढ़ जाती है किन्तु यह स्वाभाविक दशा नही है। स्वाभाविक दशा वही है जब मनुष्य बिना कोई काम किये (ऐसा काम जिसमे मेहनत करनी पड़ती है) रहता है। इस दशा में अगर शरीर आरोग्य है तो प्रति मिनट श्वास की संख्या २० होती है।

शरीर मे वीर्य या खून की कमी होने पर इस संख्या मे कमी आ जाती है। श्वास प्रश्वास की गम्भीर गति अच्छी होती है। बुखार होने पर श्वास की सख्या बढ़ जाती है। एक डिग्री टेम्प-रेचर बढने पर श्वास की गति दो बार बढ़ती है। १०३ डिग्री बुखार मे प्रति मिनट श्वास की संख्या २९ के बराबर पहुँच जाती है।

शरीर में तीन भाग होते है इसी से नाडी तीन अंगुलियो से देखी जाती है। तर्जनी पर तेजी होने से ऊर्ध्वजत्रु के रोग को, मध्यमा के नीचे चलने वाली पेट रोगों को। अनामिका के नीचे चलने वाली नाडी नाभि के नीचे के रोग प्रदर, प्रमेह बतलाती है इस पर बिचार करने से रोग बतलाना सहज होता है।

—सम्पादक

तापश्वास और नाड़ी का सम्बन्ध

इन तीनो का पारस्परिक सम्बन्ध भी समझ लेना चाहिये। जरा अक्ल भिड़ाने से सारा रहस्य समझ मे आ जाता है। पहिले बताया जा चुका है कि प्रति मिनट नाड़ी स्पन्दन की संख्या ८० है।

इस अवस्था में—चूं कि यह आरोग्यावस्था है, शारीरिक ताप ९८.४ रहता है, फिर श्वास की सख्या २० रहती है।

स्वस्थ दशा—

नाड़ी स्पन्दन ८०

शारीरिक ताप ९८.४

श्वास प्रश्वास २०

यह तालिका स्वस्थदशा की है, अब जब कि ताप एक डिग्री बढ़ता है यानी ९९.४ हो जाता है तो नाडी का स्पन्दन ९० बार हो जायगा, एक डिग्री बढ़ने पर स्पन्दन १० बार बढ़ता है, फिर श्वास प्रश्वास २२ हो जायगा। इस तरह सभी जगह समझा जा सकता है। संक्षेप में यही खास बाते हैं, वैसे बहुत लिखा जा सकता है।

वक्षःस्थल परीक्षा

Breasht Examination

यानी छाती की परीक्षा करते हैं। डाक्टर, वैद्य इसके समीप भी नहीं जाते, न उनको इस विषय का कोई वास्तविक ज्ञान ही होता है। डाक्टरो की छाती परीक्षा भी 'स्टेथिस्कोप' तक ही सीमित है।

३ तरीके

[१] दर्शन से

[२] स्पर्श या प्रतिघात से

[३] सुनने यानी श्रवण से

[१] दर्शन से

छाती को देखकर रोगकी जांच बहुत आसानी से की जाती है। देखने का मतलब छाती का रंग देखने से नहीं है उसकी सकोचन शीलता और विकास शीलता के देखने से है उसकी गठन देखने से है, हरएक की छाती बराबर नहीं हुआ करती, किसी की बहुत चौड़ी होती है तो किसी की कम चौड़ी, स्वस्थ दशा में छाती जैसी रहती है वैसी अस्वस्थ दशा में नहीं।

दमे का जोर होने पर जल्दी २ सांस उठने से छाती फूलती भी जल्दीहै और सकुचितभी जल्दी ही होती है। स्वस्थ दशा में छाती दबी हुई नहीं होती उभरी हुई होती है और न कहीं से ऊंची नीचे ही होत है। अस्वस्थ होने पर ऐसा नहीं रहता, फेफडो में अगर सूजन है तो छाती ठीक उसी जगह फूलेगी, जहां कि फेफडे है यही बात दिल की सूजन मे भी समझनी चाहिये। जल्दी २ फूलना और सकुचित होना छाती की अस्वस्थता का परिचायक है। श्वास में रुकावट होने पर छाती नियमित रूप से न सकुचित होती है और न विकसित होती। छाती के देखने से यहभी पता चलता है कि इसकी गठन में अंतर पड़ा है या नहीं।

कमजोरी में छाती की हड्डियां दिखलाई पडती है और सूजन होने पर छाती सूज जाती है। स्त्रियो के स्तनो को भी बोलचाल की भाषा में छाती कहते है, स्तनो की सूजन, उनका घाव, फुन्सियां होना आदि भी दखने की अपेक्षा रखते हैं।

स्पर्श या प्रतिघात

पहले बाँये हाथ की हथेली छाती पर रखना चाहिये फिर बांये हाथ की अगूठे के पास वाली तर्जनी से हथेली पर आघात करना चाहिये। कान भी पासमें कर लेने चाहिये यह क्रिया अपने आप नहीं हो सकती, दूसरे के द्वारा ही हो सकती है। आघात करने पर स्वस्थ दशा में ठन-ठन ध्वनि होती है। अगर छाती के भीतरी यन्त्र आरोग्यावस्था में हैं तो आवाज ठन २ होती है। विपरीत इसके जब फेफड़ो में शोथ या प्रदाह होता है या और कोई बीमारी है तो टप-टप शब्द होता है। जब रोगी दमे का शिकार हो जाता है तो ठन २ ध्वनि होती है।

[३] सुनने से—यह परीक्षा आजकल स्टेथिस्कोप से ही होती है, डाक्टर अपने यन्त्र से यह परीक्षा करते हैं, वैद्य इस विषय में नहीं के बराबर ज्ञान रखते हैं बहुत से तो इस विधि को जानने तक नहीं हैं। स्टेथिस्कोप का जिक्र हम पहले कर चुके हैं, यह वही यन्त्र है जो हरएक डाक्टर की पाकेट मे रहता है। सच तो यह है कि डाक्टरों का निदान इसी पर निर्भर रहता है. स्टेथिस्कोप को श्वास परीक्षक यन्त्र कहते हैं यह कई तरह का होता है, जर्मन सिलवर का होता है व काठ का भी तथा रबड़ के नल का भी होता है। कम कीमती होने के कारण अधिकांश डाक्टर इसी से अपने पाकेट की शोभा बढाया करते हैं। रोगी को देखने जाने के समय डाक्टर सबसे पहिले अपने पाकेट की सम्हाल करता है इसीलिये कि श्वास परीक्षक यन्त्र है या नहीं।

स्टेथिस्कोप की परीक्षा विधि भी यहां लिख दी जाती है। रोगी को चित्त सुला दिया जाता है या स्थिरभाव से खड़ा कर दिया जाता है। बाद में छाती के ऊपर स्टेथिस्कोप का मुंह रखा जाता है और उसकी दो नलियां दोनो कानोमे लगाई जाती हैं, छाती के जिस अग की परीक्षा करनी होती है वही स्टेथिस्कोप का मुंह रख दिया जाता है, अगर स्वास्थ्य मे कोई खराबी नहीं है तो कानो में सो-सो

आवाज होती है, श्वास नली में प्रदाह होने, क्षय होने, दमा उठने, खांसी होने आदि में तरह २ की वाह्यध्वनि सुनाई पड़ती है कफ की अधिकता होने पर धड़-धड़ आवाज होती है, फुस्फुसावरोध झिल्ली के प्रदाह में खस २ शब्द होता है और फुस्फुस प्रदाह में केसो के रगड़ने जैसी ध्वनि होती है।

इस समय परीक्षकका ध्यान दूसरी तरफ नही जाना चाहिये। चित्त की सारी व्यक्तियां शब्द की तरफ लगा देनी चाहिये और २-३ जगह स्टेथिस्कोप का मुंह रखके परीक्षा करनी चाहिये। उस समय रोगी का श्वास रोक लेना ही ठीक होता है।

आकृति परीक्षा

Share Examination

आकृति से मतलब यहां मुंह, नाक, कान आदि की आकृति से है। रोग का असर मुंह पर अवश्य गिरता है, स्वस्थ मनुष्य के चेहरे पर जो कांति नाचती है वह रोगी के मुंह पर कहां? रोगी में चेहरा देखने की भी पहिले एक चाल थी, मनोवैज्ञानिक और बड़े २ जज चेहरे को देखकर हृदगत भावो का परिचय पा लेते थे। आकृति का अगर व्यापक अर्थ लिखा जाय तो शरीर के सब अगो की आकृति से मतलब हो जाता है, केवल चेहरे की आकृति से नहीं।

कफ के कुपित होने पर—चेहरा भारी चिकना और सूजा हुआ दिखलाई पड़ता है।

पित्त के कुपित होने पर—लाल, पीला और गरम होता है।

वायुके कुपित होनेपर—चेहरा रूखा हो जाता है, टेढ़ा हो जाता है और जकड़ जाता है।

आकृति का व्यापक अर्थ लेने पर पेट, छाती, हाथ आदि की बनावट भी देखी जा सकती है।

जलन्धर में—पेट फूल जाता है, मशक जैसा दिखलाई देता है।

वाहु शोष में—वाहु सूख जाता है।

उपशीर्षक में—सर बढ़ा हुआ दिखलाई देता है।

हाथी पांव में—पैर वहुत सूज जाता है।

इसी तरह चोट लगने पर हड्डियो की वनावट में अन्तर आ जाता है।

आकृति परीक्षा से मतलब, मुखमण्डल की परीक्षा से है, ऐसा भी वहुतो का विश्वासहै उनकी जानकारी के लिये भी मुखमण्डल की दो एक बाते यहां बतला दी जाती हैं।

मुँह जब प्रसन्न रहता है तो स्वस्थ अवस्था समझनी चाहिये, मरती समय भी कुछ देर के लिये मुँह प्रसन्न हो जाता है। बीर्य की कमी में मुंह पर लज्जा के साथ २ सफेदी रहती है। खून की अधिकता में मुँह लाल हो जाता है, पीलिया होने पर पीला हो जाताहै, मरणासन्न अवस्था में मुँह काला पड़ जाता है, होठ और दांत भी काले हो जाते हैं। सोम रोग में मुँह सफेद हो जाता है, यही हालत प्रमेह में होती है।

कब्ज रहने पर चेहरे पर रूखापन आजाता है

दोषत्रय

आगे चलकर जगह २ दोषो का जिक्र आवेगा अतः दोषो के विषय में यहां कुछ बता देना आवश्यक है। दोष तीन है, हिकमत वाले रक्त को भी चौथा दोष मानते हैं अतः उनके मत में दोष चार हैं, आयुर्वेद में रक्त को त्रिदोष से भिन्न दूसरा धातु माना है अतः रक्त का विवेचन यहां नही किया जायगा। तीनो दोषो को त्रिदोष कहते हैं, आयुर्वेद की भित्ति त्रिदोष पर ही अवलम्बित हैं। दोषो के विषय में भगवान धन्वन्तरि ने कहा है—

"वातपित्त श्लेष्माणाः देहसंभव हेतवः स्मृता"।

अर्थात् शरीर के उत्पादनमें त्रिदोष ही कारण स्वरूप है, इसी के द्वारा शरीर का निर्माण होता है। त्रिदोष को त्रिधातु भी कह देते है, चू कि इनके द्वारा शरीर का धारण होता है, यानी शारीरिक स्वास्थ्य का सौन्दर्य स्थिर रहता है, शरीर को धारण करने से त्रिदोष को त्रिधातु कहते है, और शरीर को दूषण करने से त्रिदोष कहते है इसकी विश्लेषणा इन शब्दो में की जाती है--

"शरीरदूषणाद्दोषाः धारणाद् धातवः स्मृताः"।

त्रिदोष के नियमित रहने पर स्वास्थ्य सुन्दर रहता है, और त्रिदोष के विगड़ने पर स्वास्थ्य खाक में मिल जाता है, स्वास्थ्य सौन्दर्य के लिये त्रिदोष का नियमित रहना, न केवल आवश्यक ही है, अपितु अनिवार्य भी है। अतीत भारतमें त्रिदोष की गम्भीर विवेचना करनेवाले विद्वानो की सख्या वहुत अधिक थी, किंतु अव त्रिदोष की गम्भीर विवेचना तो दूर रही, इसके विषय का आवश्यक ज्ञान भी वैद्यो के पास नही है।

त्रिदोष की दार्शनिक मीमांसा करने का यह स्थान नही है, यहा केवल मोटी-मोटी वातो का उल्लेख किया जायगा।

त्रिदोष--यानी वायु, पित्त और कफ, शरीर में नियमित रूप से अपना कार्य सचालन करते है, इसके विषय मे कहा है--

वायु पित्त कफश्चेति त्रयो दोषा समासता।
विकृताऽविकृतादेह घ्नन्ति सवर्द्धयन्ति च॥

अर्थात् त्रिदोष जव विकृत हो जाता है, तो देह का सर्व नाश कर देता है और जव अविकृत रहता है तो स्वास्थ्य को वनाये रखता है। त्रिदोष में भी किसी एक दोष के खराव होने पर ही शारीरिक क्रिया में वाधा पहुॅचती है, और स्वास्थ्य विगड़ता विगड़ता एक दम नष्ट हो जाता है। शरीरस्थ वायु के विगड़ने पर क्या २ दशाएं होती हैं, यह तो हम अपनी आंखो से भी देखते हैं। वायु के विगड़ने पर जव लकवा मार जाता है, तो कैसी बुरी दशा होती है? पैरो मे वायु बिगड़ जाता है तो चलना फिरना हराम हो जाताहै, हाथो के वायु के विगडने से हाथ उठाकर खाना भी असम्भव हो जाता है। पित्त के विगड़ने पर हरदम जलन होती है और दर्जनो खरावियां पैदा हो जाती हैं।

सारे शरीर में खून वहाने का काम वायु करता है, जव यह किसी कारण वश अपने काम से स्तीफा दे देता है तो मिनटो में होशहवास विगड़ जाते है। त्रिदोष का ज्ञान होने पर सच तो यह है कि हमें स्वास्थ्य रक्षाके मूल मंत्र का परिचय मिल जाता है। कोई भी दोष अपने आप विना किसी कारण के नही विगडता, फिर इतना ज्ञान होने पर हम उन कारणो से अपना वचाव कर सकते है। किस कारण से कौन सा दोष विगडता है यह भी हम आगे चलकर वतलावेंगे।

विसर्ग, आदान और विक्षेप, इन तीन क्रियाओ के द्वारा ससार का सचालन होताहै यह वात मोटी से मोटी वुद्धिवाला आदमी भी समझ सकता है। चद्र, सूर्य और वायु इन तीन प्रधान देवताओ के द्वारा इन तीनो क्रियाओका सचालन होता है। चद्रमा का कामहै विसर्ग, सूर्य का काम है आदान और वायु का काम है विक्षेप। यही रहस्य त्रिदोष में भी समझना चाहिये, इसी लिये 'कफ' सोमात्मक कहलाता है, 'पित्त' सूर्यात्मक और 'वायु' वातात्मक। चंद्रमा का खास गुण है ठडापन वही गुण कफ मे भी है, सूर्य का खास गुण है उष्णता वही गुण हमे पित्तमें मिलता है, और वायु का खास गुण है चचलता, वही गुण हमें शरीरस्थ वायु में मिलता है। कफ के बिगडने पर शरीर में ठडापन किस लिये आता है? इसी

लिये तो कि वह सोमात्मक होने के कारण ठडा है पित्तके बिगडने पर देह में आग किस लिये जलने लगती है इसी लिये तो कि वह सूर्यात्मक होने के कारण गरम है वायु के बिगडनेपर देह हिलने क्यो लगती है ? इसीलिये क्यो कि वायु हमेशा चचल होता है। अब क्रमशः द्विदोष का वर्णन देखिये।

वायु

दोष धातु मलादीनां नेताशीघ्र शरीरणः।
रजोगुणमयः सूक्ष्मो–रुक्ष शीतो लघुश्चलः॥

वायु के स्वरूप का दिग्दर्शन इस श्लोक में खूब अच्छी तरह हुआ है—

कफ पित्त को, तथा रस रक्त आदि सात धातुओ को और मल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने का सारा काम वायु करता है यह शीघ्र चलने वाला रजोगुण युक्त सूक्ष्म रूखा ठडा हलका और चंचल है। चरक में लिखा है—

वातस्तु रूक्ष लघु चल वहुशीघ्र शीत परुष विशद।
तस्य रौक्ष्यात् वातलाः रुक्षापचितात्प शरीरा॥

प्रततरूक्ष क्षाम भिन्न मन्द सक्तजर्जर स्वरा। जागरूकारच भवन्ति। लघुत्वाच्च लघु चपल गति चेष्टाहार व्यवहारा. चलत्वादनवस्थित संध्यस्थिभ्रू हन्वोष्ट जिह्वा शिर स्कन्ध पाणिपादा. वहुत्वात् वहुप्रलापः कंडराशिरा प्रतानाः शीघ्रत्वात् शीघ्र समारम्भ क्षोभ विकाराः शीघ्रोत्त्रास राग विरागा. श्रुत ग्राहिणोऽल्पस्मृतयश्च शैत्यात् शीतोसहिष्णवः प्रतत शीतकोद्वेपक स्तम्भा. पारुष्यात् परुष केश श्मश्रु रोमनख-दशन वदन पाणि पादांगा, वैशद्यात् स्फुटितांगावयवा. सतत संधि शब्दगामिनश्च भवन्ति। त एवं गुणयोगात् वातजाः प्रायेणाल्पवलाश्चाल्पायु-पश्चाल्पापत्याश्च अल्पसाधनाश्चाधन्याश्च भवन्ति।

यहा पर साथ ही साथ पाठको को वात प्रकृति का भी पता चल जायगा वायुके गुणोके अनुसार ही उसकी प्रकृति भी होती है यहां पर वायु के ८ गुण वतलाये हैं।

(१) रूक्षत्व	(५) शीघ्रत्व
(२) लघुत्व	(६) शीतत्व
(३) चलत्व	(७) परुषत्व
(४) वहुत्व	(८) विशदत्व

जिस शरीर में वायु की प्रधानता रहती है। उसमें आपको ये सब वातें नजर आयेंगी।

जौन सा दोष प्रधान होता है शरीर में उसी की प्रकृति होती है यह एक निरपवाद नियम है। अब अगर किसी के शरीर में वायु की प्रधानता है तो आपको ये वातें दिखाई देगी।

(१) रूक्षत्व के कारण

देह का रूखापन दुवलापन छोटापन आवाज का रूखापन धीमापन खरखरापन मन्दापन तुतलापन और जर्जरपन नजर आयेगा। नींद भी कम ही आयेगी।

(२) लघुत्व के कारण

गति चेष्टा आहार और वातचीत में हलकापन और चांचल्य नजर आयेगा।

(३) चलत्व के कारण

देह के जोड़ो हड्डियो, भौंहो और आंखो में तथा जीभ शिर कन्धे और हाथ पैरो में स्थिरता नही होती किसी न किसी अङ्ग से कोई न कोई हरकत होती ही रहती है।

(४) वहुत्व के कारण

वकवादीपन—कुछ न कुछ बोलते ही रहना और रंगो का उभार नजर आयेगा।

(५) शीघ्रत्व के कारण

कार्य के प्रारम्भ में जल्दी करना-दिलमें जल्दी ही क्षोभ होना और जल्दी ही हर्ष होना आदि मानसिक विकार जल्दी २ होते है। अभी रोना आता है तो थोडी देर वाद हंसी आती है। अभी गुस्सा रहा है। तो थोड़ी देर वाद दया के पुतले

बन जांयगे। सुनी हुई बात याद भी जल्दी ही हो जाती है। और भूल भी जल्दी ही जाती है।

(६) शीतत्व के कारण

ठडक से जी कापता है। जरा सी ठडक से कंपकपी आने लगती है। और जकड़न भी जल्दी ही होने लगती है।

(७) परुषत्व के कारण

केश, दाढ़ी, मूछ, नख, रोम, दांत, मुह हाथ पैर तथा अन्य शरीर में खरखरापन रहता है।

(८) विशदत्व के कारण

अङ्ग जल्दी ही फटते हैं। और हड्डियो में आवाज होने लगती है उठने बैठने या किसी और काम के करने पर हड्डियां चटपट करने लगती हैं।

यह वायु का साधारण विवेचन है। वायु के विषय में और भी साफ शब्दो में लिखा है।

उत्साहोच्छ्वास नि श्वास चेष्टावेग प्रवर्तनैः।
सम्यग् गत्याचधातूना मिन्द्रियाणाञ्च पाटवैः॥
अनुगृह्णात्य विकृतो हृदयेन्द्रिय चित्तधृक्।
रजोगुणमय. सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः
खरोमृदुर्योगवाही सयोगादुभयार्थ कृत्।
दाहकृत्तेजसायुक्तः शीतकृत् सोम संश्रयात्॥
विभाग कारणात् वायु प्रधान दोष सग्रहे।
पक्वाशय कटीसक्थि श्रोत्रास्थि स्पर्शनेन्द्रियम्॥
स्थानवातस्य तत्रापि पक्वाधान विशेषतः

अर्थात्—शरीरमें जो उत्साह कार्यात्मक शक्ति हैं। वह वायु से ही संचालित होती हैं। श्वास प्रश्वास क्रिया भी वायु के द्वाराही होती है। चेष्टा और २ वेगो का प्रवर्तक वायु ही है। रस आदि धातुओ की और दशो इन्द्रियो की रक्षा का भार भी इसी के ऊपर है। और हृदय को आहार पहुँचाने का भार भी वायु के ऊपर ही है। यह रजोगुणमय है, सूक्ष्म है, शीत है, रूखा है हलका है और चंचल है यह खर भी है। मृदु भी है। और योगवाही भी है। यह जिसके साथ मिलता है उसी के गुणों को प्रगट करता है. सूर्यात्मक पित्त के साथ मिलकर अगर गर्मी पैदा करता है। सोमात्मक कफ के साथ मिलकर ठंडक पैदा करता है।

यह तो हम अपनी आंखो से भी देखते हैं कि ग्रीष्म कालीन सूर्य के साथ मिलकर वायु आग बरसाता है। और सुधाकर के साथ मिलकर ठंडक की सड़क तैयार कर देता है। शरीरस्थ धातुओं और दोषो का विभाजक भी वायु ही है। अत यह सबमें प्रधान माना जाता है। जब तक यह नियमित रूप से अपने कार्य का संचालन करता है तबतक स्वास्थ सुन्दर रहता है। विपरीत इसके जब इसके कार्य में अनियमितपना आ जाता है तो शरीर को खाक में मिला देता है।

वायु का विवेचन करते हुये चरक में लिखा है

प्रवर्तक चेष्टानामुच्चावचानां नियन्ता प्रणेताच मनसः सर्वेन्द्रियाणामुद्योगकःसर्वेन्द्रियार्थाना मभिवोढा सर्वशरीर धातुव्यूहाकर.संधानकरः शरीरस्य प्रवर्तकः वाचः प्रकृतिस्पर्श शब्दयोः श्रोत्र स्पर्शनयो मूल हर्षोत्साहयोनिः समीरणोऽग्नेर्दोप संशोषणः

क्षेप्तावहिर्मलानां स्थूलाणुः श्रोतसांभेत्ता कर्त्ता गर्भा कृतीनां आयुषोऽनुवृत्ति प्रत्ययभूतो भवत्य कुपितः

अब वायु के भेदो पर भी विचार करना चाहिये।

यानी—चलना फिरना ऊंचे नीचे बैठना कूदना आदि शारीरिक क्रियाओं का नियन्ता वायु है। मनका प्रणेता और इन्द्रियो का संचालक भी यही है। शरीरस्थ धातुओ का संवाहक और शरीर का सधान कर्ता है वाणी का प्रवर्तक यही है। और शब्द स्पर्श स्वभावो भी यही है किसी शब्द और स्पर्श का ज्ञान इसी से होता है आग की जलन और वर्षा का ज्ञान इसी से होता है और प्रियतमा के मनोरम शब्दो तथा कुत्ते के भोकने

का ज्ञान भी इसी से होताहै शरीर की स्वाभाविक अग्नि को प्रेरणा देने का काम यही करता है हर्ष और उत्साह इसी के द्वारा होते हैं दोपोका शोपण यही करता है मलो को यही निकालता है स्थूल और सूक्ष्म स्रोतो का भेदन इसी के द्वारा होताहै गर्भ की रचना भी इसी के द्वारा होता है और आयु का प्रधान आधार भी यही है।

हम बराबर देखते हैं कि वायु के बिगड़ने पर गर्भ की स्थित नहीं होती रजनाश वीर्य नाश आदि रोग, वायु के बिगड़ने पर हो जाते हैं और मानव जीवन की सबसे कोमल अभिलाषा संतानोत्पादन को खाक में मिला देताहै जिस स्त्री की देह में वायु बिगड़ जाता है आप देखैगे वह नियमित रूप से रजस्वला ही नही होती।

वायु के भेद

(१) उदान वायु।

(२) प्राण वायु।

(३) समान वायु।

(४) अपान वायु।

(५) व्यान वायु।

इस तरह वायु पांच प्रकार की है, या यो कहना चाहिये पांच रूपों में वायु अपना काम करता है ये पांचो अलग २ काम करते हैं और अलग २ स्थानो में रहते हैं। पांचो के काम बटे हुये हैं।

उदान वायु

उदान वायु के सहारे ही मनुष्य बातचीत करता है और गीत गाता है। यह वायु जब गले में घूमती है तब उसकी शक्ति से मनुष्य भाषण करता है। बिना उदान वायु के कोई मानव बोल नहीं सकता।

लिखा है—

"उदानो नाम यस्तूर्ध्वम् उपैति पवनोत्तमः।
तेन भाषित गीतादि प्रवृत्ति ··· ··· ·········· ॥"

यह तो सहज में ही समझा जा सकता है, कि इस वायु के कुपित होने पर मनुष्य को कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं बेचारा इच्छा करने पर भी किसी से बोल नहीं सकता। यह वायु जब कुपित होता है तब अनेक रोगो को पैदा करताहै।

लिखा है—

"ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् विदधाति विशेषतः।"

गरदन से ऊपर के होने वाले जितने रोग हैं, इन सबका पैदा करने वाला यही वायु है। इससे रोगो के उत्पादक दोषो को समझने में बहुत सरलता होती है यह वायु कण्ठ प्रदेश में रहता है। यही भावमिश्र ने बतलाया है।

'कण्ठे······ ······ ·· ··· ·· ·· ····· ··· ।"

कण्ठप्रदेश में रहकर उदान वायु अपना कार्य सञ्चालन करता है।

(२) प्राण वायु

दूसरा प्राणवायु है, उदान के बाद प्राण का नम्बर आता है। यह शरीर का प्रीणन करता है इसलिये इसे प्राणवायु कहते हैं। यह सदा मुह में निवास करता है। हम जो खाते हैं वह इसी के सहारे गले के नीचे जाता है।

लिखा है—

'यो वायुः प्राणनामाऽसौ, मुखंगच्छतिदेहधृक।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्त: प्राणांश्चाप्य बलम्बते॥

मतलब यही है जो ऊपर बतलाया गया है। प्राणवायु जब कुपित होता है तब निम्न रोगो को पैदा करता है।

'प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान्।'

हिचकी, श्वास, खांसी आदि रोग प्राणवायु के कुपित होने पर पैदा होते हैं।

'हृदि ·············· ··· ·· ·· ···· ··········।'

हृदय में रहता है, वहां रहकर अपने कार्य का संचालन करता है। हृदय के रोग इसी से पैदा होते हैं।

(३) समानवायु

तीसरा समानवायु आमाशय (Stomach) और पक्वाशय में फिरता रहता है। जठराग्नि की सहायता से यह अन्न को पचाता है। अन्नादि से पैदा हुये मल मूत्र को पृथक करना भी इसी का काम है।

आमपक्वाशयचरः समानोवह्नि संगतः।
सोऽन्न पंचतितज्जांश्च विशेषान् विविनक्तिहि॥

अन्न की पाचन क्रिया समान वायु करता है। आजकल लोगो को समान वायु ने इतना तग वना रक्खा है जिससे वेचारो के नाक मे दम हो रहा है, किसी को अजीर्ण होता है तो किसी को टट्टी लगती है, किसी के पेट में वायुगोला उठता है तो किसी की कमर में कसक उठती है।

सदुष्टो वह्निमान्द्यातिसार गुल्मान् करोतिहि।

समानवायु कोठे की अग्नि के नीचे नाभि में निवास करता है।

'अधस्तात् कोष्टवह्नेः ·· ···· ·· ··· ·· ।'

(४) अपान वायु

चौथा अपानवायु मलाशय में रहता है, वहां रहकर यह मलमूत्र को वाहर निकालता है सभोग के समय वीर्य और रज भी इसी की सहायता से निकलते हैं।

पक्वाशयालयोऽपानः कालः कर्षतिचाप्ययम्।
समीरणः शकृन्मूत्र शुक्रगर्भार्तवान्यधः॥

जव यह स्वस्थ रहता है, तव गर्भधारण करता है और जव कुपित हो जाता है, तव गर्भ को वाहर निकाल फेंकता है। मूत्राशय में भयकर बीमारी पैदा कर देता है। मस्से, प्रमेह, प्रदर, सूजाक, गर्मी आदि संक्रामक रोग इसकी विकृति दशा में पैदा होते हैं।

क्रुद्धस्तुकुरुते रोगान् घोरान्वस्तिगदान्भयान्।
शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान्॥

अपानवायु गुदा में रहता है, वहां रहकर ही यह अपने कर्मों का सञ्चालन करता है।

'मलाशये ·· · · ·· ·· ·· ··· ।'

इस तरहसे चार वायु शरीरके पृथक् २ स्थान में रहकर पृथक २ कार्य करते है। रहा पांचवां व्यान सो उसकी भी कथा सुनिये।

५—व्यान वायु

व्यानवायु के रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं है; यह सब शरीर मे रहता है। यह रस का सघट्टन करता है शरीर मे नाड़ियो द्वारा रस पहुँचाने का काम इसी के द्वारा होता है। पसीना यह निकालता है, रक्त को वहाता है और शरीर में जो पांच तरह के व्यापार होते है वह भी इसी के सहारे होते हैं, चलना, नीचे को फेंकना, ऊपर को फेंकना, नेत्रो को मीचना और खोलना आदि क्रिया इसी वायु के सहारे होती है। वायु की पांच चेष्टाये होती हैं ऐसा विद्वानो का विश्वास है।

प्रस्पन्दनञ्चोद्वहन पूरणञ्च विरेचनम्।
धारणञ्चेति पञ्चैता.श्चेष्टाप्रोक्ता नभस्वत.॥

धीरे २ चलना किसी वस्तु को लेकर चलना, किसी पदार्थको भर देना, निकाल देना और धारण करना यह पांच चेष्टाये है। व्यानवायु जब कुपित होता है तव सभी रोगो का उत्पादक वन जाता है तद्देशीय वायु के साथ मिलकर अनेक रोगो को पैदा कर देता है।

क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्व देहगान्।

व्यानवायु नीचे से लेकर ऊपर तक सब शरीर में रहता है लिखा भी है—

सकलेऽपिशरीरेऽसौक्रमेण पवनो वसेत्।

इस तरह पाचो तरह के वायु अपने २ कार्य का सञ्चालन करतेहै। शरीर सौन्दर्य के लिये वायु

का नियमित और शुद्ध रहना सर्वांश में आवश्यक है। कुपित वायु क्या २ करता है यह हम पृथक २ भी बता चुके है अब सामान्य रूप से थोड़ा और वतला देना चाहते हैं। यह तो निश्चय है कि दोषो में प्राधान्य इसी का है और एक तरह से सभी रोगो का उत्पादक भी यही है।

वायु से कौन २ रोग पैदा होते हैं, यह हम आगे चलकर बतायें गे।

कुपितस्तु खलु, शरीरे, शरीर नानाविधैर्विकारै रुपतपति, बलवर्ण सुखायुपा मुपधाताय मनोव्याहर्षयति सर्वेन्द्रियाणि अपहन्ति। विहन्तिगर्भान् विकृत मापादयति, अतिकाल धारयति, भय,शोक, मोह दैन्याति प्रलापाञ्जनयति प्राणांश्चोपरुणद्धि।

यानी जब शरीरस्थ वायु कुपित हो जाता है तब देह में सैकड़ रोगो को पैदा कर देता है। बल वर्ण, सुख और आयु को नष्ट कर देता है। गर्भ को या तो नष्ट कर देता है या उसे विकृत बना देता है, जिससे उसका उचित पोपण नही होता या प्रसव मे विलम्ब कर देता है, भय, शोक, मोह दैन्य प्रलाप आदि को पैदा कर देता है। इतना ही करके चुप नही रहता, प्राणो को भी रोक देता है। प्राणवायु जब अपना काम नहीं करेगी तब दम निकलना ही समझिये।

वायु क्यों बिगड़ता है ?

यो समझिये कि वायु कुपित क्यो होती है ? कुपित होने के स्थानमे विगड़ना कुछ अच्छी तरह भाव को वतला देता है। वायु को विगाडने वाले कारणो की एक छोटी सी सूची यहां रखदी जाती है जिससे आगे चलकर भी बहुत सुविधा रहेगी।

[१] कसैले, चरपरे, कड़वे और रूखे पदार्थों के खाने से।

[०] नाक तक ठूंस २ कर खाने से।

[३] अधिक उपवास करने या भूख को मारने से।

[४] बराबर हलकी चीजो के खाने से।

[५] पुरवैया पवन के सेवन से

[६] रात में अधिक जागने से

[७] चोट वगैरह से शरीर पर आघात पहुँचने से

[८] ज्यादा मेहनत करने से

[९] ठंडक में अधिक रहने से

[१०] ज्यादा सम्भोग करने से

[११] रस रक्त आदि धातुओ के क्षय होने से

[१२] मलमूत्रादि के वेगो को रोकने से

[१३] मैथुन करने की उत्तेजना होने पर मैथुन न करने या हरदम उत्तेजना रहने से।

[१४] शोक, चिता या भय से

[१५] शरीर में से अधिक खून के निकलने से चाहे वह मस्सो के रास्ते से ही निकला हो।

[१६] रोग से मांस के क्षीण होने पर

[१७] अधिक वमन होने या दस्त लगने से

[१८] आम से यानी देह में कच्चे रस के सञ्चित होने से

इन कारणोसे वायु विगड़ताहै जिससे स्वास्थ्य के ऊपर भारी धक्का पहुँचता है। एक बात है वायु के वढ़ने से भी खराबी होती है और उसके घटने से भी। आवश्यकता से अधिक वायु का होना भी अस्वास्थ्यकर है। और अपेक्षाकृत कम होने पर भी स्वास्थ्यकर नहीं। और कारणो को छोड़कर हमें एक साधारण सी बात पर विचार करना चाहिये।

ससार में मूलरस ६ माने जाते हैं।

(१) चरपरा

(२) कड़वा

(३) कषैला

(४) मीठा

(५) खट्टा

(६) नमकीन

इन ६ रसो की वारीकी समझ लेने पर हमें अपने जीवन में बहुत सहायता पहुँच सकती है।

चरक ने वतलाया है—

तत्रदोपमेकैकं त्रयस्त्रयो रसाञ्जनयन्ति त्रयस्त्रय श्चोपशमयन्ति । तद्यथा कटुतिक्त कापायवात जनयन्ति मधुराम्ल लवणास्त्वेन शमयन्ति । कटुकाम्ल लवणाःपित्तंजनयन्ति, मधुरतिक्त कपायास्त्वेनं शम यन्ति । मधुराम्ल लवणश्लेष्माणां जनयन्ति, कटुतिक्त कपायास्त्वेनम् शमयन्ति । रसदोष सन्निपातेतु येरसायैर्दोपैः समानगुण. समानगुणभूयिष्ठा वा ते तानभिवर्धयन्ति ॥ विपरीत गुणास्तु विपरीत गुण भूयिष्ठा वा शमन्त्यभ्यस्यमाना इति ॥

अर्थात्—

चरपरे, कड़वे और कसैले रस से वायु पैदा होता है, मीठे खट्टे और नमकीन रस में इसका शमन होता है, मतलव यह है कि वरावर चरपरे कड़वे और कसैले पदार्थ खाये जांय तो शरीर में वायु बहुत बढ़ जाता है और मीठे खट्टे तथा नमकीन पदार्थ खूब खाये जाय तो शरीर में वायु अपेक्षाकृत कम हो जाता है। फिर मजा तो यह है कि जिन तीन रसो से जो दोप पैदा होता है उन्ही से दूसरा दोष प्रशमित होता है।

चरपरे, खट्टे और नमकीन रस से पित्त बढ़ता और मीठे कड़वे तथा कसैले रस से शांत होता है, मीठे, खट्टे और नमकीन रस से कफ बढ़ता है व चरपरे कड़वे एवं कसैले रस से शांत होता है। छहो रसो का प्रभाव एक दोप को घटाने और दूसरे दोष को बढ़ाने का काम करता है।

रसो एव दोषो के तारतम्य को समझ लेने पर चिकित्सा में बड़ी सहायता मिलती है। जिस दोष के बढ़ने पर उसमें विपरीत रसों का प्रयोग किया जाता है वहांपर साधारण रूप से ही सफलता मिल जाती है।

अगर शरीर में वायु बढ़ा हुआ है और वह खराबी कर रहा है तो आप नमकीन, मीठी और खट्टी चीजें खिलाइये, इससे वायु कम होगा और खराबी नष्ट हो जायगी। किन्तु एकदम अन्धे होकर ऐसा नहीं करना चाहिये। यह बात भी याद रखने की है कि अगर नमकीन, मीठे और खट्टे पदार्थों से वायु कम होता है तो इनसे कफ बढ़ता है। इधर वायु कम हुआ तो उधर कफ बढ़ गया, एक मर्ज गया तो दूसरा तैयार। इन बातों को बिना अच्छी तरह समझे सहायता नहीं मिल सकती। हां, रसों और दोषों का तारतम्य समझ लेने पर सफलता अपने आप ही मिल जाती है। सर्व साधारण भी इन बातों से बहुत लाभ उठा सकता है, आजकल सर्व साधारण तो क्या, डाक्टर और वैद्य भी इनके अनुसार लाभ का उपयोग नहीं करते। खाने, पीने, अनियमितता से दिन २ रोगों की संख्या बढ़ती जा रही है।

वायु के बढ़ने से भी खराबी पैदा होती है और कम होने से भी। यह हम पहिले बता चुके हैं, अब उस खराबी पर नजर विक्षेप कीजिये।

वायु के बढ़ने की खराबी

जब शरीर में आवश्यकता से अधिक वायु हो जाती है तो चरक के शब्दो में यह खराबियां पैदा हो जाती हैं।

तत्रवातवृद्धौ वाक् पारुष्यं कार्श्यं, कार्ष्ण्यं, गात्रस्फुरण उष्णकामिता, निद्रानाशः अल्पबलत्वम् गाढ़वर्चस्कत्वञ्च।

बोलने के समय आवाज भर्राने लगती है, रूखापन आ जाता है, शरीर दुबला, और काला होने लगता है, अग फड़कने लगते है, गरमी की

इच्छा होती है, खाने-पीने के लिए भी गरम चीजो की आवश्यकता होने लगती है, नींद नही आती, कम आती है, शरीर में ताकत नहीं रहती और पाखाना सूखकर गाढ़ा हो जाता है।

अलावा इनके रजोधर्म न होना, गर्भ गिरना, वीर्य का-अभाव आदि दर्जनो खराबियां पैदा होती हैं जिनका ज़िक्र आगे चलकर होगा।

वायु के घटने की खराबी

जब शरीर में अपेक्षाकृत वायु कम हो जाता है तो ये खराबियां होती है—

"तत्रवातक्षयेमन्द चेष्टताअल्पवाक्त्वम् अप्रहर्षो मूढ़संज्ञताच,,

शरीर की चेष्टायें मन्द पड़ जाती हैं, बोलना कम हो जाता है, प्रसन्नता भा ा जाती है, किसी बात से हर्ष नहीं होता, चैतन्यता कम हो जातीहै।

वायु जब रस आदि धातुओ मे आमाशय पक्वाशय आदि स्थानो में घुस जाता है तो अलग ही खराबी होती है। वायु वैसे तो सारी देहीमें ही रहता है; किंतु बढ़े और कुपित हुये वायु के कारण खराबियां होती है। खराब वायु अगर रस में घुस जाता है तो अलग ही खराबी होती है। रक्त में घुस जाता है तो अलग ही खराबी होती है।

रस गत वायु

जब आवश्यकता से अधिक वायु रस में घुस जाता है तो, शरीर की चमड़ी सूखी हो जाती है। तेल लगाने परभी चिकनाई नहीं आती, फट जाती है, जड़ हो जाती है, पतली और काली हो जाती है सुई चुभोने जैसी पीड़ा होती है, चमड़ी खिची हुई और कुछ ललाई लिये हुये होती है। सातो त्वचाओ में व्यथा होती है चूकि आयुर्वेद के मत से त्वचा सात हैं।

रक्त गत वायु

जब वायु खून में घुस जाता है तो शरीर का रंग बिगड़ जाता है जगह २ जलन युक्त दर्द होने लगता है, खाने पीने में अरुचि हो जातीहै, ताकत कम हो जाती है, शरीर में फोड़े फुन्सी हो जाते हैं, और खाने के बाद खून की वृद्धि होकर स्तब्धता हो जाती है।

मांसगत वायु

जब वायु अपना केन्द्र मांस को बना लेता है तो शरीर भारीहो जाता है, अंग प्रत्यङ्गो में हरकत नही रहती, चोट लगने जैसी पीड़ा होने लगती है हर समय व्यथा रहती है और स्वब्धर्ता हो जाती है।

मेदगत वायु

वायु जब मेद में घुसता है तो मांसगत वायुके सब लक्षण होते है, शरीर में किसी भी जगह गांठें निकल आती हैं, वे कभी पक जाती हैं कभी नही पकती और गांठो में विशेष दर्द नही होना।

अस्थिगत वायु

हड्डियो में अगर वायु घुस गया है तो नींद नहीं आती ताकत नहींरहती, मांस क्षीण हो जाता है, सन्धि स्थानो में तोड़ने जैसी पीड़ा होती है कांटे से चुभते हैं।

मज्जागत वायु

इसमें सब चिन्ह अस्थिगत वायु के होते हैं, विशेषता इतनी ही है कि पीड़ा हरदम रहती है बराबर २४ घटा रहती है, एक मिनट के लिये भी शांत नही रहती, जिससे खाना, पीना, सोना, बैठना सब हराम हो जाता है।

वीर्यगत वायु

वीर्य में वायु के घुसने पर उसकी वीर्यात्मक शक्ति क्षीण हो जाती है वीर्य का रूप रग विकृत हो जाता है, वह स्खलित नहीं हो पाता और स्खलित होने पर कभी गर्भ स्थित हो भी जाता है तो

गर्भ गिर जाता है। इसी तरह जब रज में वायु का अनुचित प्रवेश हो जाता है तो मासिकधर्म में रुकावट हो जाती है, रज विकृत हो जाता है गर्भ गिर जाता है और कभी २ गर्भ मूढ अवस्था को पहुँच जाता है, जिससे स्त्री के नाको दम आ जाता है।

यह तो सात धातुओ में घुसे हुये वायु की कथा है, अब आमाशय आदि स्थानो में घुसे हुये वायु की भी कार्रवाई देख लीजिये।

आमाशयगत वायु

आमाशय Stomach मे जब वायु अधिक और अनुचित हो जाता है जैसा कि आज कल ऊटपटांग चीजो के खाने आदि से होता है तो हृदय मे दर्द होने लगता है, पेट और नाभि मे पीड़ा होने लगती है। डकारें बहुत आती है प्यास अधिक लगती है, खांसी हो जाती है श्वास हो जाता है और गले में सूजन हो जाती है।

पक्वाशयगत वायु

पकाशय वह स्थान है जहा अन्न का पाचन होता है। जब वायु पकाशय मे घुस जाता है तो आंतें गुड़गुड करने लगती है पेशाब और पाखाना में रुकावट होने लगती है जिससे बार २ पाखाना और पेशाब घर की हवा खानी पड़ती है त्रिकस्थान में दर्द होने लगता है पेट में अफारा होने लगता है शूल सा चलने लगता है। इतनी बाते होने केबाद शरीर के अन्दर कमजोरी आना तो स्वाभाविक ही है।

गुदगत वायु

जब गुदा में आकर वायु अपना अड्डा जमा लेता है तो न पेशाब होता है, न दस्त होता है और न अधोवायु (पाद) ही निकलताहै पेटमें अफारा हो जाता है पिंडली, सोथल, कमर, पसली, पीठ और कधोमें दर्द होने लगता है, पथरी ओरशर्करा भी हो जाती है। फिर अगर कुछ दिनो के लिये भी यह हालत बनी रहे तो जान निकलने में क्या देर हो सकती है।

इसी तरह वायु जिस स्थान में अपना अड्डा जमाता है, वही कुछ न कुछ खराबियां होने लगती है, हृदय फुस्फुस आदि स्थानो के रोगों का वर्णन आगे चलकर होगा, अतः यहां व्यर्थ में विषय बढाने की आवश्यकता नही है। शिराओ मे वायु के घुसने से अन्तरायाम जैसे रोग होते हैं, जिनके विषय में आगे चलकर लिखा गया है। स्वास्थ्य की सफाई करने के लिये अकेला वायु ही पर्याप्त है किंतु जब इसके साथ पित्त कफ में से कोई सा दोष मिल जाता है तो और भी भयकर दशा हो जाती है। प्राचीन आयुर्वेद मे दोषो के ऊपर जितना जोर दिया है, उतना आजकल कहा है? दोषो की बारीक से बारीक विवेचना करके स्वास्थ्य रक्षा का मूल मन्त्र हमें बतला दिया है किंतु अपनी बेवकूफी से हम मूलमन्त्र को भूल कर अज्ञान के अधकार में पड़े हुये है और दिन २ नये २ रोगो से आक्रान्त होकर अकाल मे ही यम राज के मेहमान हो जाते है।

पित्त

अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति।

यानी शरीर के अन्दर पित्त ही अग्नि है। जो नियमित होने पर स्वास्थ्य को सुन्दर रखता है और अनियमित होने पर स्वास्थ्य को खाक मे मिला देता है जिस तरह स्वास्थ्य के सौन्दर्य के लिये वायु का नियमित रहना आवश्यक है उसी तरह पित्त का भी यही बात कफ के विषय में समझनी चाहिये। कफ का विवेचन आगे चलकर होगा यहां पित्त के विषय मे खास २ बातें बतला

देनी हैं। शरीर की जो खास क्रिया है उसे हम पाचन क्रिया कहते हैं। अन्न का पाचन इसी क्रिया के द्वारा होता है और इस क्रिया का करने वाला पित्त अन्न को पचाकर रस तयार करने का काम पित्त का ही है। रस बनने पर रक्त बनता है इसी तरह सातवें नम्बर में जाकर कहीं वीर्य तयार होता है। जब पाचन क्रिया में गडबडी हो जाती है, खाया पिया ठीक तौर से नही पचता है तो कब्ज रहना, दस्त लगना, अफारा आदि दर्जनो खराबिया होती हैं। पाचनक्रिया की कमजोरी का नाम है मन्दाग्नि जिसके द्वारा आज कल अकेले भारत में ही सैकड़ो हजारो आदमी रोज मौत के घाट उतरते हैं।

यह बात हम बहुत आसानी से समझ सकते हैं। कि शरीर में रस ही तयार नही होगा तब खून कहां से बनेगा वीर्य की बात तो बहुत दूर है इस दशामें मौत का वारण्ट आने पर हमें आश्चर्य करने का दरकार नहीं वह तो स्वाभाविक है। पित्त ही शारीरिक अग्नि है या कोई दूसरी चीज यह सवाल सुश्रुत में भी आया है वहीं उसका उचित समाधान भी है।

'अत्र जिज्ञास्यं किं पित्त व्यतिरेकादन्योऽग्नि राहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति।

अर्थात्–अब सवाल यह उठता है। कि शरीर में जो अग्निहै वह पित्त ही है या कोई और दूसरी चीज ? इसका उत्तर इन शब्दो में है।

'अत्रोच्यते न खलु पित्त व्यतिरेकादन्योग्नि रुपलभ्यते आग्नेयत्वात्। पित्ते दहन पचनादिष्व-भिवर्त मानेऽग्नि यदुपचारः क्रियते अन्तराग्निरिति क्षीणेहि अग्निगुणे तत्रसमानद्रव्योपयोगादति वृद्धे शोत क्रियोपयोगादागमाच्च पश्यामो न खलु पित्त व्यतिरेकादन्योग्निरिति।

शरीर में जो अग्नि है वह पित्त के सिवा दूसरी चीज नही पित्त के अन्दर पकाने जलाने आदि की ताकत है जो अग्नि में ही होती है इस लिये कोई दूसरी चीज अग्नि नहीं मानी जा सकती अलावा इसके हम यह भी देखते हैं। कि गरम चीजो के खाने से पित्त बढ़ता है और ठडी चीजो के खाने से घटता है। फिर इस विरोध वैषम्य के कारण पित्त ही अग्नि है। चूंकि गरम चीजो से ठंडी चीज नही बढ़ती और ठडी चीजो से गरम चीज बडती नही अपितु घटती है आगी पर पानी डालने से वह प्रज्वलित नही होती अपितु प्रशमित हो जाती है।

पित्त का स्वरूप

यह एक तरल पदार्थ है, जो छूने में गरम होता है, पीले रंग का होताहै, चरपरा और हल्का होता है, सत्व गुण युक्त और तीखा तथा स्निग्ध होता है। परिपाक के समय यह खट्टा हो जाता है इन्ही बातों को इस श्लोक में बताया गया है—

पित्तमुष्णंद्रवंपीतं नीलसत्वगुणोत्तरम्।
रसंकटुलघुस्निग्ध तीक्ष्णमम्लन्तु पाकतः॥

एक बात और है—पित्त केवल पीला ही नही होता नीला भी होता है, किन्तु शुद्ध पित्त हमेशा पीला होता है, जिसमें कच्चापन रहता है, वह अवश्य नीला होता है।

पीत निरामम् नील सामम्

इस विषय में चरक की विवेचना को भी हमें ध्यान से देखनी चाहिये।

पित्त मुष्णं तीक्ष्णं द्रव विस्रमम्ल कटुकं च तस्यौष्ण्यात् पित्तला भवन्ति उष्णासहा उष्णसुखाः सुकमारावदातगात्राः प्रभूतपित्ताद्व्यंगतिलकालकाः क्षुत् पिपासावन्तः क्षिप्रवलीपलित खालित्यदोषाः प्रायोमृद्वल्प कपिलश्मश्रु लोमकेशाः।

तैक्ष्ण्यात्तीक्ष्ण पराक्रमास्तीक्ष्णाग्नयः प्रभूताशनपानाः क्लेशासहिष्णवो दन्तशूकाः। द्रवत्वात् शिथिलमृदुसन्धि मांसा. प्रभूतसृष्ट स्वेद मूत्रपुरीषाश्च। विस्रत्वात्पूतिवक्ष. कक्षास्यशिर. शरीर गन्धा कट्वम्लत्वादल्प शुक्रव्यवायापत्याः। त एव गुणयोगात् पित्तला मध्यबला मध्यायुषो मध्यज्ञान विज्ञान वित्तोपकरणवन्तश्च भवन्ति॥

यानी पित्त के अन्दर निम्न ६ गुण रहते है।

(१) उष्णत्व।

(२) तीक्ष्णत्व

(३) द्रवत्व।

(४) विस्रत्व।

(५) अम्लत्व।

(६) कटुकत्व।

अब इन गुणो के अनुसार ही पित्त की प्रकृति भी होती है, जिस शरीर मे पित्त प्रधान होता है, वहां इन ६ गुणो का महात्म्य आपको अवश्य दिखलाई देगा। क्रमश. देखते जाइये—

(१) उष्णत्व के कारण—

पित्त प्रकृति वाले पुरुष गर्मी सहन नही कर सकते, जरा सी गर्मी भी उन्हे साध्य नही होती, गर्मी के बढ़ने पर बेहोशी तक आ जाती है। शरीर में सुकुमारता रहती है। गर्मी की अधिकता के कारण भांई और मुहासे मुंह पर बहुत होते है, शरीर पर काले तिल होते हैं, भूख भी खूब लगती है और प्यास भी बालो पर सफेदी जल्दी आजाती है और मुंह पर झुर्रियां भी जल्दी ही पड जाती हैं, सर के केश उडने लगते है। अक्सर बाल कोमल थोडे और भूरे रंग के होते है, एकदम कालापन नही रहता।

(२) तीक्ष्णत्व के कारण—

पराक्रम तेज होता है और हाजमा शक्ति तेज होती है, खाने भी खूब हैं और पीते भी खूब हैं और बराबर खाते है जरा से क्लेश से घबड़ा जाते हैं।

(३) द्रवत्व के कारण—

शरीर के जोड़ो में और मांसपेशियो में शिथिलता के साथ नाजुकता रहती है, पाखाना, पेशाब और पसीना अधिक होता है।

(४) विस्रत्व के कारण—

छाती, बगल, मुंह, सिर तथा अन्य शरीर में बदबू आया करती है, जिससे दूसरा आदमी नाक सिकोडने लगता है।

(५) अम्लत्व के कारण और (६) कटुकत्व के कारण—

शरीर में वीर्य अधिक नही होता, मैथुन शालिनी शक्ति कम ही होती है और सन्तान भी अधिक नही होती। बल, आयु, ज्ञान, धन आदि सब चीज दर्जे के अनुसार होते है। न भूखो ही मरते है और न गरीबो को ही खिलाते है।

इतनी बातें जान लेने के बाद यह भी जान लेना चाहिये कि पित्त के भेद कितने हैं और यह किस२ स्थान में रहता है।

पित्त के भेद और स्थान

पित्त पांच तरह का होता है—

(१) पाचक पित्त।

(२) रञ्जक पित्त।

(३) साधक पित्त।

(४) आलोचक पित्त।

(५) भ्राजक पित्त।

नाम	स्थान
(१) पाचक	पाकाशय
(२) रञ्जक	यकृत प्लीहा Liver and Spleen
(३) साधक	हृदय Heart

(४) आलोचक — नयन Eyes
(५) भ्राजक — समस्त शरीर

(१) पाचक पित्त

पाचक पित्त अग्न्याशय में रहकर आहारो का पाचन करता है, या यो कहिये कि यही वह उदरा नल है जो अमाशय और पाकाशय में रह कर भक्ष्य, भोज्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय इन छै तरह के पदार्थों का पाचन करती है। बाद में यहीं पाचक पित्त रस, मल और मूत्र को पृथक पृथक करता है।

लिखा भी है—

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि वलवर्द्धनम्।
रसोमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः॥

रसको रंगना, हृदय स्थितकफ और अन्धकार को हटाना, रूप का ग्रहण करना, प्रभा का प्रकाश करना, इत्यादि कर्म भी इसी के द्वारा होते हैं। मानव शरीरों में पाचक पित्त तिल के जैसा होता हैं।

(२) रन्जक पित्त

दूसरा रञ्जक पित्त है, यह शरीर को रञ्जन करता है, और इसलिये इसको रञ्जक कहते हैं

यह यकृत में रहता है और वहीं रह कर रस को रक्त के रूप में परिणत करता है।

रञ्जक नामयत्पित्तं तद्रसं शोणितन्नयेत्।

रक्त शुद्धिके लिये रञ्जक पित्त का स्वस्थ रहना कितना आवश्यकहै, यह इससे सहज मेंही समझा जा सकता है। केवल इतना ही नहीं रस को रक्त के रूप में परिणित करने के लिये भी रञ्जक पित्त का स्वस्थ और नियमित रहना आवश्यक है। जिनका यकृत खराव हो जाता है प्राय. उनको पित्त जन्य व्याधियाँ ही हुआ करती हैं।

(३) साधक पित्त

तीसरा साधक पित्तहै, साधना करनेके कारण यह साधक पित्त कहलाता है। शरीर धारियों के दिल और दिमाग में बुद्धि, धैर्य, धारण शक्ति आदि को साधक पित्त ही करता है। इसी की सहायता से मानव समाज विज्ञान वादी होता है, और इसी की प्रेरणा से अहिंसा वादी।

यत्तु साधक संज्ञं स्यात् कुर्यात् बुद्धिस्मृति धृतिम्।

जो आदमी पागल होते हैं, प्रमादी होते हैं स्मृति हीन होते हैं, वे केवल साधक पित्त की खरावी के कारण ही होते है।

(४) आलोचक पित्त

आलोचक कहते हैं प्रदर्शक को। इस पित्तकी सहायता से हम देखते हैं, यायो कहिये आलोचक पित्त ही हमारी दृष्टि शक्ति है। यह आंखों में रहता है, इसके खराव होने पर हम अन्धे वन जाते हैं कुछ देख नहीं सकते।

"आलोचकं सज्ञ तद्रुप ग्रहण कारणम्"

अन्धे आदमी ही आलोचक पित्त की कीमत वता सकते हैं।

(५) भ्राजक

यह पांचवां पित्त है, और सारी देह में रहता है। हमारे शरीर में जो कान्ति रहती है, चेहरे पर जो लावण्य रहता है, वह भ्राजक पित्त की कृपा है। मालिश करने से यही त्वचा को पुष्ट बनाता है। शरीर में किसी तेल का लेप करने से यही उसका असर भीतर तक पहुँचाता है।

इसके सम्बन्ध में लिखा है—

'भ्राजकं कांति कारीस्यात् लेपाभ्यगादि पाचकम्'

पित्त का सच्चेप में बस इतना ही इतिहास है। इससे पित्त का सारा रहस्य सहज ही समझा जा सकता है।

पित्त क्यों कुपित होता है ?

पित्त क्यो बिगड़ता है ? किन कारणो से यह नियमित दशा को छोड़कर अनियमित हो जाता

है ? इसपर भी थोड़े शब्दों में बिचार कर लीजिये, पित्त कुपित करने वाले कारणो के विषय में सुश्रुत लिखता है।—

क्रोधशोक भयायासोपवास विदग्ध मैथुनोपगमन कट्वम्ललवण तीक्ष्णोष्णलघु विदाहि तिल तैल पिण्याक कुलत्थ सर्षपातसी हरितशाक गोधामत्स्याजाविकमांसदधि तक्रकूर्चिकामस्तु सौवीरक सुराविकाराम्लफल कट्वार्क प्रभृतिभिः पित्तप्रकोप मापद्यते ।

यानी—

१-क्रोध, शोक, भय और परिश्रम से

२-अनियमित उपवास करने से

३-जले हुये पदार्थों के खाने से

४-अधिक मैथुन और दौडने फिरने से

५-चरपरे, खट्टे, नमकीन, तेज, गरम, हलके और जलन पैदा करने वाले पदार्थो के खाने से

६-तिलका तेल, खली, कुलथी, सरसो, अलसी और हरे शाको के अधिक खाने से

७-गोह, मछली, बकरे और भेड़ के मांस का अधिक सेवन करने से

८-दही, छाछ, खुरचन, दही का तोड कांजी, शराब और खट्टे फलो के अधिक खाने से।

९-सूर्य की धूप में अधिक घूमने फिरने से

ऐसे ही और भी कारणो से पित्त बिगड़ता है और स्वास्थ्य की सफाई करता है। गरम चीजो का खाना आजकल साधारण सी बात है और गरमी में भी गरम चीज खाये बिना नही रहा जाता फिर डबल खराबी पैदा होती है।

बहुत से आदमी हमेशा पित्त को पैदा करने वाली चीजें खाते हैं और बहुत से कभी भी नही खाते। रोज शाम को पकौड़ी वाले, चटपटे के शौकीनोंके शरीरमें भी पित्त बिगडते है, और कभी भी नमकीन तथा खट्टे पदार्थोंको जीभ पर न रखने वाले महाशय भी पित्त के कारण कष्ट उठाते हैं। घटना भी खराब है, और बढ़ना भी खराब है अतः साम्यावस्था में रहना ही स्वास्थ्य के लिये हितकर है।

पित्त के बढ़ने पर खराबी

पित्तवृद्धौपीतावभासना सन्ताप.शीतकामित्वम् अल्प निद्रता मूर्च्छा बलहानि. इन्द्रियदौर्बल्यम् पीत विण्मूत्र नेत्रत्वञ्च ॥

पित्त के आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने पर शरीर पीला हो जाता है जलन होती है, बेचैनी बनी रहती है, ठंडक मे भी ठडी चीजो की इच्छा होती है. नींद कम आने लगती है।

यह साधारण खराबी है। बढ़ा और बिगड़ा हुआ कोई सा भी दोष चैन से नही बैठता वह किसी दूसरे दोष और धातु पर हाथ सफा करता है फिर ज्वर, खासी आदि घातक रोग हो जाते हैं।

पित्त के घटने की खराबी

जब देह में परिमित पित्त नही रहता है और अपनी मात्रा से घट जाता है तो शरीर का टेम्परेचर कम हो जाता है। गर्मी में भी देह गरम नहीं रहती, पाचन शक्ति कम हो जाती है शरीर का लावण्य नष्ट हो जाता है और चेहरे की रौनक भाग जाती है आंखो की रोशनी का कम होना, उनमें सफेदी अधिक होना आदि और दर्जनो खराबियां पैदा हो जाती है।

बिगड़े हुये पित्त का खून के ऊपर बहुत जल्दी और बहुत बुरा असर होता है, पित्त के खराब होने पर खून को भी खराब हुआ ही समझिये, फिर खून के खराब होने पर बाकी क्या रह जाता है यह तो सहज ही समझा जा सकता है। आजकल जितने रोगी खून की खराबी के मिलते हैं

उतने सम्भवतः और किसी रोग के नहीं। किसी को खुजली है तो किसी को गर्मी है कोई जलन की शिकायत करता है तो कोई खून कम होने की।

अनियमित जीवन के कारण—दूषित वातावरण में रहने के कारण कालेज से निकलते ही चश्मे की दरकार होने लगती है प्रकृति की दी हुई आंखें तो खराव हो जाती है यह भी सच है कि पित्त के कारण वायु भी विगड़ता है और कफ भी एक दोष की खरावीसे त्रिदोष बिगड़ता है जिसका बिगड़ना किसी भी दशा में घातक ही होता है।

वैसे तो समझा जाय तो विगड़ा हुआ एक ही दोष जीवन को मिट्टी में मिलाने के लिये पर्याप्त है पित्त के विगडने पर आपको नीद कम आवेगी, खाना ठीक हजम नहीं होगा, चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगेंगी, इन्द्रियां सुस्त होजायगी, और ताकत कुछ रहेगी ही नही फिर करोगे क्या ?

मैथुनशक्ति नही रहती विचारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, सोचने समझने की दिमाग़ मे ताकत नहीं रहती, फिर इस जीवन से तो मौत ही लाख दर्जे अच्छी है। ठीक तो यह है कि त्रिदोष को साम्यदशा में रखने के लिये इनके कुपित करने वाले कारणों से बचा जाय और हर अवस्था में नियमित जीवन विताया जाय, यही ऋषियो का स्वर्णोपदेश है।

कफ

कफ को श्लेष्मा भी कहते है—वोल चाल की भाषा में इसे वलगम भी कह देते है। खांसी होने पर जब मुंह के रास्ते एक गाढ़ी २ सफेद रतूवत निकलती है तो उसे कहते है कि कफ भी गिरने लग गया। वगाल एक प्रधान देश माना है अतः, इसमें कफ के रोग अधिक होते है। कफ शरीर का तीसरा प्रधान दोष माना जाता है शारीरिक क्रिया में यह वहुत सहायक होता है। यहां इसके रूपरंग की भी आलोचना कर दी जाती है।

कफ का स्वरूप

कफ सफेद, मधुर, भारी, ठण्डा, पिच्छल और तमोगुण युक्त होता है तथा परिपक्व अवस्था में यह खारी हो जाता है। यही बात इस श्लोक में वतलाई है।

श्लेष्माश्वेतोगुरू स्निग्धः पिच्छिलःशीतलस्तथा।
तमोगुणाधिकः स्वादु विदग्धो लवणो भवेत्॥

कफ की बिवेचना "चरक" में इन शब्दो में हुई है।

श्लेष्मादि स्निग्धः, श्लक्ष्ण मृदु, मधुर, सार, सांद्र, मन्द, स्तिमितत्व, गुरु, शीत विज्जलाच्छः। तस्य स्नेहात् श्लेष्मलः स्निग्धांगा श्लक्ष्णत्वात् श्लक्ष्णाङ्गाः दृष्टि मृदुत्वात् सुख सुखमरावदातगात्रामायुपाम् प्रभूत शुक्र व्यवायापत्याः

सारत्वात्सारसंहतस्थिर शरीरः सांद्रत्वात् उपचित परिपूर्ण सर्वगात्राः मन्दत्वात् मन्दचेष्टाहार व्यवहारास्तैमित्याद् शीघ्रारम्भोऽल्प क्षोभ विकाराः गुरूत्वात्सांगधिष्ठितावस्थितगतयः शैत्यत्वादत्यल्प क्षुत्तृष्णा स्वेद दोषाः विजलत्वात् सुश्लिष्टसारसधि बधना तथाच्छत्वात् प्रशन्नदर्शनाननः प्रसन्नवर्ण स्वराश्चतएवं गुणयोगात् श्लेष्मलावलवन्तो वसुमन्तो विद्यावन्तः ओजस्विन आयुष्यवान्नवश्यभवन्ति॥

(१) स्निग्धत्व	(२) श्लक्ष्णत्व
(३) मृदुत्व	(४) मधुरत्व
(५) सारत्व	(६) सांद्रत्व
(७) मन्दत्व	(८) स्तिमितत्व
(९) गुरुत्व	(१०) शीतत्व
(११) विजलत्व	(१२) अच्छत्व

ये १२ गुण कफ में होते हैं। इन्हीके अनुसार

प्रकृति भी होती है। कफ प्रकृति पुरुषों में आपको इन गुणों का दर्शन अवश्य होगा।

१—स्निग्धत्व और श्लक्ष्णत्व के कारण—

शरीर में चिकनाई होगी, स्निग्धता चिकनाई दो तरह की होती है। पहली जो घी और तेल की होती है, दूसरी वह है जो रन्दा फेरी हुई लकड़ी पर होती है। ये दोनों बातें ही कफ प्रकृति पुरुषों में अवश्य मिलती हैं।

३—मृदुत्व के कारण-शरीर में सुन्दरता, सुकुमारता और स्वच्छता रहती है।

४—मधुरता के कारण-वीर्य सम भाग और सन्तान की विशेषता होती है, देह में वीर्य भी खूब रहता है, सम्भोग शक्ति भी खूब रहती है और संतान भी खूब होती है।

५—सारत्व के कारण-सार नाम है बल का, अतः सब शरीर में बल होता है और वह सुडौल होता है।

६—सांद्रत्व के कारण-सांद्र कहते है गाढ़े को अतः सब अंग भरे हुये और गढ़े हुये होते हैं, हड्डियां दिखलाई नहीं पड़ती।

७—मन्दत्व के कारण-चेष्टाओं में आहार व व्यवहार में मंदापन रहता है। १०८ माइल की रफ्तार नहीं रहती।

८—स्तिमितत्व के कारण-स्तिमित के माने हैं निश्चलता, जिससे काम करने में जल्दबाजी नहीं होती और न मन में ही जल्दी विकार पैदा होते हैं।

९—गुरुत्व के कारण-शरीर में वलिष्ठ और स्थिरगति होती है।

१०—शीतत्व के कारण-भूख, प्यास, गर्मी तथा पसीने में कमी रहती है।

११—विजलत्व के कारण-देह के जोड़ और गढ़न मजबूत होती हैं।

१२—अच्छत्व के कारण-प्रसन्नता रहती है, मुंह उदास नहं रहता, आवाज साफ और मीठी होती है।

कफ प्रकृति वाले पुरुष हमेशा ताकतवर, धनी विद्वान, ओजस्वी, और आयुष्मान होते हैं।

अब कफ के भेद और स्थानों पर भी थोड़ा विचार कर लीजिये।

कफ के भेद और स्थान

कफ पांच तरह का होता है—

[१] क्लेदन कफ

[२] अवलम्बन कफ

[३] रसन कफ

[४] स्नेहन कफ

[५] श्लेष्मण कफ

इन भेदो और नामो के अनुसार ही स्थानों की योजना भी देखिये

नाम	स्थान
१-क्लेदन	आमाशय
२-अवलम्बन	हृदय
३-रसन	कंठ
४-स्नेहन	शिर
५-श्लेष्मण	संधि

अब यह भी देखना है कि कौन कफ किस तरीके से क्या काम करता है?

१—क्लेदन कफ

इस कफ के विषय में लिखा है—

क्लेदनःक्लेदयत्यन्न आत्मशक्त्यापराणि च।
अनुगृह्णाति च श्लेष्म स्थानान्युदक कर्मणा॥

क्लेदन के मानी हैं भिगोना। यह कफ आमाशय में ही रहता है। यह कफ ही शुरू में उसको गीला करता है जिससे अन्न अलग होता है, बाद में ही उसका पाचन होता है। पृथकी करण के बिना अन्न का पाचन नही हो सकता। जब इस

कफ के कार्य के चालन में बाधा पहुँच जाती है तो शुरू से ही खराबी होने लगती है। खाना हजम न होने से, कच्चा रस इकट्ठा होकर ज्वर पैदा कर देता है।

सग्रहणी– ऐसे रोग इसी दशा में होते हैं जो बड़े ही घातक माने जाते है। आटोप रोग, खाना खाने, अधिक खाने पर पीछे से इसमें बाधा पहुँचाते है।

जिनका क्लेदन कफ खराब हो जाता है, उन्हें भयंकर बीमारियो का सामना करना पड़ता है। संग्रहणी आदि रोग ऐसी ही दशा में होते हैं।

२—अवलम्बन कफ

यह दूसरा कफ है। सरस वीर्य से यह हृदय को अवलम्बन करता है और इसीलिये इसे अवलम्बन कफ कहते है। त्रिक की हड्डियो का धारण भी यही करता है।

रसयुक्तात्मवीर्याणि हृदयस्यावलम्बनम्।
त्रिक संधारणञ्चापि विदधात्यवलम्बनः॥

यह रहता भी हृदय में ही है। 'हार्ट फेल' की दशा इसी की विकृत अवस्था में होती है।

३—रसन कफ

रसना कहते है जीभ को, चूंकि वह रस पहिचानती है, यह तीसरा कफ भी कठ में रहने के कारण रसना के साथ दूसरा सम्बन्ध रखता है और इसीलिये इसका नाम है रसन, इसके द्वारा जीभ में रसनक्रिया होती है। जब यह कफ विकृत हो उठता है तब कंठ घर २ करने लगता है जीभ में स्वाद नही रहता।

४—स्नेहन कफ

चौथा स्नेहन कफ है—यह शिर में रहता है। यह स्नेह के द्वारा समस्त इन्द्रियो को परितृप्त करता है और इसीलिये इसे स्नेहन कफ कहते है।

स्नेहनः स्नेह दानेन समस्तेन्द्रिय तर्पणः।

५—श्लेष्मण कफ

श्लेष्मण कहते है दो वस्तुओ को जोड़ना। यह हड्डियो को जोड़ता है इसलिये इसे श्लेष्मण कफ कहते हैं।

श्लेष्मणः सर्वसंधीनां सश्लेषविदधात्यसौ।

कफ क्यों कुपित होता है

कफ क्यों बिगड़ता है, इसके उत्तर में सुश्रुत की इन पक्तियों पर बिचार कीजिये।

'दिवास्वप्नाव्यायामालसमधुराम्ल लवण शीत स्निग्ध गुरु, पिच्छिलाभिष्यंदि हायनकयवक नैषधोत्कट माप महामापगोधूम तिलपिष्ट विकृति दधि दुग्धकृशरापायसेक्षुविकारानूपौदक मांसवसाबिस मृणालकशेरुक शृङ्गाटक मधुरवल्लीफल समशनाऽन्यशन प्रभृतिभिः श्लेष्मा प्रकोप मापद्यते।

अर्थात्—

(१) दिन में सोने से

(२) व्यायाम न करने और आलसी बनकर पड़े रहने से।

(३) ठण्डी, चिकनी, भारी और गाढ़ी चीजों के अधिक खाने से।

(४) अभिष्यन्दि पदार्थोंके खाने से जो अपने भारीपन और गाढ़ेपन के कारण रसवाही नाड़ियो की गति रोक देते है।

(५) चावल, जौ, तन्दुल, निपध देश के तंदुल उडद, वडे उड़द, गेहूँ, तिल पट्टी की बनी चीजें, दही, दूध, चावलो की खिचड़ी और खीर के अनियमित खाने से।

(६) ईख के रस का अधिक सेवन करने से।

(७) जल के पास रहने वाले और जल में रहने वाले जीवो के मांस को अधिक खाने से।

(८) चर्बी, कमल की नाल, कसेरू, सिंघाड़े, अमरूद जैसे मीठे फल तथा ककड़ी आदि के अधिक खाने से।

(६) विना हजम हुये ही फिर खा लेने से तथा और भी कारणो से कफ विगड जाता है। बराबर कफ को पैदा करने वाले आहार-विहार के प्रयोग से कफ बढ़ेगा और बिगड़ेगा तथा बाद में खराबी पैदा करेगा और कफ के घटने से भी खराबी होगी, हरदम मेहनत मे जुटे रहने से मीठी चीजो को कभी न खाने से कफ कम हो जाता है इसके बढ़ने और घटने की खराबी भी देख लीजिये।

कफ के बढ़ने और घटने की खराबी

जब आवश्यकता से अधिक कफ बढ़ जाता है तो—

शरीर में शुक्लता, ठडक, चेष्टा की कमी, भारीपन, आलस्य, ग्लानि, ऊ घना नीद आना, जोडो और हड्डियो मे ढीलापन आ जाता है।

जब कफ कम हो जाता है तो—

रूखापन हो जाता है, भीतर दाह होने लगता है, मेदे, छाती आदि अगो मे शून्यता आ जाती है, जोड़ो में ढीलापन आ जाता है, प्यास कम हो जाती है और नीद जाती रहती है।

शिरो-रोग

सर दर्द (*Headache*)

आयुर्वेद मे सरदर्द को शिर पीडा कहते है। और एलोपैथी मे हैडल, सरदर्द कई तरह से होता है और कई तरह का होता है, इसके कारणो और भेदो का सरल और स्पष्ट वर्णन किया जायगा। सर से मतलब यहा दिमाग के सब हिस्सो से आ जाता है। कपाल, ललाट, भेजा, गुर्दी आदि सभी हिस्सो का अर्थ समझ लिया जाता है। सर दर्द के रोगियो की सख्या आज कम नहीहै, भरी जवानी में भी लोग सरदर्द की शिकायत करते रहते है और बाल्यावस्था की मनोरम हसी में भी सर दर्द का चीत्कार सुनाई दे जाता है।

सरदर्द को साधारण रोग नहीं समझना चाहिये जब आकस्मिक सरदर्द से ही हमारे होशो-हवाश विगडने लगते है तो स्थाई सरदर्द की भयकरता समझने मे हमें कोई दिक्कत नही होगी। मस्तिष्क विचारणाशक्ति और साधारण शक्ति का उद्गम स्थल माना जाता है। बराबर सरदर्द रहने से उसके नियमित कार्य में बाधा पहुँचती है और वह शरीर का सचालन नियमित रूप से नही कर सकता। सरदर्द के रोगी अक्सर अपनी स्मरणशक्ति से हाथ धो लेते हैं और वे संसार के साहित्यक सौन्दर्य रस का कुछ भी रसास्वादन नहीं कर सकते। पागलपन, प्रलाप करना, आदि सरदर्द के उपद्रव है। शिरोवाहिनी नाड़ियो में जब विजातीय द्रव्य आ जाते हैं तो वे अपने काम से हाथ धो बैठते हैं। नतीजा यह होता है कि आदमी हमेशा के लिये दिवाना हो जाता है या पागल बन जाता है। अस्तु।

सरदर्द क्यों होता है

इसका खुलासा वर्णन तो यहा नही हो सकता भेदो के अनुसार कारणो का विवेचन भी हो जायगा। अलग २ लिखने से प्रकरण भी लम्बा होगा और पढ़ने वाले भी हैरान हो जायेगे और न उसमे कुछ विशेषता ही होगी, हा साधारण रूप से कुछ कारणो का उल्लेख यहां कर दिया जाता है।

सरदी लगने, गरमी लगने, किसी दोष के विगड़ने, खून खराब होने, अधिक मैथुन करने, तेज दवा खाने, शरीर की ताकत को देखे विना ही अन्धाधुन्ध मेहनत करने, शारीरिक ताप के तेज होने यानी बुखार होने, चोट लगने, मस्तक में किसी जगह फोड़ाफुन्सी हो जाने, नशीली चीजो के खाने, दिमाग की रगो मे गांठ पैदा हो जाने, दिमाग में खुश्की होने, दूसरे अगो में पीड़ा होने,

आदि कारणों से सरदर्द होता है। कारणो के भेद से सर के दर्द में भी अतर पड़ जाता है।

वादी का सर दर्द

यह दर्द वायु की खराबी से होता है। खराव बिगड़ा हुआ वायु जब सर में पहुॅचता है तो दर्द होने लगता है। सर भारी हो जाता है, दर्द के मारे सोना हराम हो जाता है। देखने में चेहरा भी कुछ कालापन लिये रहता है। बराबर दर्द रहने से नाड़ी भी कुछ सुस्त चलने लगती है यह दर्द दिन में कम रहता है और रात में ज्यादा जब वादी अधिक हो जाती है तो दर्द एक जगह नही रहता जगह २ हटता रहता है। कानो में सनसनाहट होने लगती है और सर में खिचाव होने लगता है किसी काम में जी नही लगता और पेशाब सफेद एव पतला होता है अधिक वादी से होने वाले दर्द को लोग 'रीही' कहते है।

पित्त का सर दर्द

पित्त गर्म होता है-पित्त के विकारसे जब सर दर्द होता है यानी खराब पित्त के सर में आने से जब पीड़ा होती है तो सर मे बडी जलन होती है आग सी जलती है। सर जलते हुये अंगारो की तरह दहकता है। छूने में गरम मालूम होता है। नाक और आंखो में भी जलन होती है। आंखें लाल भी हो जाती है। मारे दर्द के नींद नही आती प्यास अधिक लगती है और नाड़ी तेज चलने लगती है, देखने पर चेहरे पर कुछ पीलेपन की झलक दिखाई देती है। पेशाव मे कुछ पीलापन भी रहता है।

कफ का सर दर्द

सर भारी रहता है और छूने से ठडा मालूम होता है। अदर से माथा कफ से लिपा सा मालूम होता है और वह जकड़ जाता है आखो के कोयो और मुंह पर हलकी सूजन भी हो जातीहै। नाक के दोनो नथुनो और मुह में तरी रहने लगती है और नाड़ी सुस्त चलती है। पेशाव सफेद और गाढ़ा होता है। पेशाब के सफेद और गाढ़े होने के हिकमत ने दो कारण बतलाये है।

(१) दोष जब अधिक होता है तो पेशाब के रास्ते अपने आप निकल आता है।

(२) दोष थोड़ा होता है जरूर, फिर भी प्रकृति अपनी ताकत से उसे बाहर निकाल देती है पहिले में पेशाव वीर्य की तरह गाढ़ा होता है और बार-बार होता है। दूसरे में शुरू में गाढ़ापन रहता है बाद में नही।

खून का सर दर्द

खून के खराब होने से, माथे में अधिक खून सचित होने से जब सर में दर्द होता है तो सर में भारीपन रहता है, ठहर २ कर चोट सी लगती है जलन होती है। आंखे लाल हो जाती है मुह भी लाल हो जाता है और सर किसी भी चीज का स्पर्श सहन नही कर सकता। इसमें पित्त की खराबी के सब चिन्ह होते है।

धातुओं के क्षय से सर दर्द

जब मस्तक की चर्वी, खून, कफ नष्ट हो जाने से कम हो जाते हैं, तो शिर में बड़े जोर से दर्द होता है। यह दर्द दवा वगैरह से नहीं मिटता, और दिन २ बढता ही जाता है। इसके फलस्वरूप दिमागी खुश्की, आंखो की कमजोरी आदि उपद्रव होते है। दिमाग के कार्यो को सोचने विचारने आदि में चलने फिरने में बाधा पहुॅचती है। जरा सी खुशबू और बदबू से माथा झनझनाने लगता है, अधेरी आने लगती है, चक्कर आने लगते हैं। किसी काम मे जी नही लगता, हिकमत में इसे 'जोफे दिमागी' कहते है।

संयोगिक सर दर्द

आमाशय, गर्भाशय, दिल, तिल्ली आदि के सयोग से होने वाले सिरदर्द को सायोगिक शिर दर्द कहते है। इसे 'मुशारकी' कहते है। किस अंग के संयोग से कैसा दर्द होता है, यह भी यहा वतलाए देते हैं।

आमाशय का सांयोगिक शिरदर्द

आमाशय मे दुष्ट प्रकृति होने या और कोई खरावी होने से जब शिरदर्द होता है तो हमेशा प्रायः खानेके वादमे ही होता है आमाशयमे अगर पित्त सड़ा हुआ है, या पित्त की कोई खरावी है पित्त अधिकहै तो शिरदर्द के साथ२ ही जी मिचलाना, मुह के स्वाद कडवा होना, प्यास, आमाशय मे ऐठन आदि होती है, कै, मे जब पित्त निकल जाता है तो दर्द भी कम हो जाता है और प्यास आदि भी मिट जाती है।

वादी की खरावी अगर आमाशय मे है तो शिर दर्द के साथ २ आमाशय मे जलन होती है, भूख अधिक लगतीहै, इसमे भी कै होने पर शांति होती है।

कफकी खरावीमे अफरा, अजीर्ण, खट्टीडकारे उवकाइयां, लार वहना, आदि विष जन्य शिरदर्द मे होते हैं और कै होने पर सवकी शान्ति होती है।

गर्भाशय का सांयोगिक शिरदर्द

शिरदर्द गर्भाशय में खरावी होने उसके ढीले होने फट जाने, आदि से होता है, यह शिर दर्द ठीक शिर के अगले हिस्से के वीच चाद मे होता है।

तिल्ली गुर्दे आदि का सांयोगिक शिरदर्द

१-तिल्ली में रेत पडने, सूजन होने, गांठ पडने आदि से शिरदर्द शिर के वायें हिस्से मे होता है।

२-गुर्दों की खरावी से शिरदर्द शिर के पिछले हिस्से में होता है।

३-जिगर की खरावी से हमेशा दाये हिस्से में शिरदर्द होना है।

४-दिल और आमाशय के वीचमें रहने वाले पर्दे केसंयोग से शिर के बीच में आगे की ओर दवा हुआ दर्द होता है।

५-पेट के ऊपर की झिल्ली का सांयोगिक शिरदर्द अगले भाग में माथे के समीप होता है।

६-पीठ के संयोग से शिर के अन्तिम हिस्से में ठीक गुद्दा के पास दर्द होता है।

७-पिंडलियो, हथेलियो, पैर, वाजू, एडी और कलाई के सयोग से होने वाले शरदर्द में ऐसा मालूम होता है मानो चींटी की तरह रेंगती हुई कोई चीज इन अङ्गो से सिर की तरफ जारही है।

साधारण शिरदर्द

Simpale Headache

धूप में चलने फिरने, आग के पास वैठने, ठडी हवा में सैर करने, पानी में अधिक रहने, वर्फीली जगहोमे घूमने आदि कारणोसे स्वभाविक प्रकृति मे थोडा सा अन्तर पड़ने से यह दर्द होता है। गर्मी के कारणो से अगर सरदर्द हुआ है तो सर छूने में गर्म मालूम होता है, जलन होती है, वोझा सा मालूम होता है, खिचाव होता है, और कानो में सनसनाहट होती है। इसमें ठडी चीजो से फायदा पहुँचता है। ज्यादा घूमने फिरने अधिक कसरत करने आदि से भी थकावट होकर दर्द हो जाता है। ठडे कारणोसे होने वाले सिरदर्द मे वोझा मालूम होना, माथे का जकड़ना, दर्द का गुद्दा मे अधिक होना, आदि चिन्ह होते हैं और गर्म चीजो से आराम मिलता है। तेज खुशबू या वदवू के सूंघने से भी सर में थोड़ा दर्द होजाया करता है।

कीड़ों से होने वाला शिरदर्द

इसे हिकमत में 'दूदी, कहते हैं और आयुर्वेद में कृमिज सरदर्द, दिमाग के अगले भाग नाक की हड्डी में कभी२ कीड़े पैदा हो जाते हैं या घुस जाते हैं, तोदिमाग में खुजली चलने लगती है, नाक में बदबू आने लगती है, तोड़ने जैसा दर्द होता है। और सर के हिलने से कीड़े भी हिलते हैं कीड़ो के हिलने से दर्द होता है, पीब के साथ २ नाक में से खून निकलता है और कभी २ कीड़े भी निकल जाते हैं।

खुश्की से शिर दर्द

हिकमत में इसे 'युक्सी' कहते हैं। अन्दर से ज्यादा मल निकलने पर चाहे वह कै, दस्त, नक सीर अदि किसी रूपमें भी निकलनेसे बहुत जागने से निरन्तर सोच विचार करते रहने, आदि से दिमाग में खुश्की पैदा होती है, जिससे सरदर्द होता है।

शिर की सूजन से शिरदर्द

भेजे या खोपड़ी के पर्दोके अन्दर या खोपड़ी की चमड़ी में सूजन होनेसे शिरदर्द करने लगताहै। भेजे की सूजन को 'सरसाम, कहते हैं, इसका वर्णन आगे होगा।

व्यभिचार से शिरदर्द

व्यभिचार से मतलव, रंडीबाजी से ही नही, अधिक संभोग करने से है, अपनी स्त्री से भी अगर अधिक सभोग किया जाता है तो व्यभिचार कहलाता है। हिकमत में इसे 'मिक-आई' कहते हैं। सुविधा के लिये इसके ३ भेद माने हैं।

(१) अधिक वीर्य के निकलने से कमजोरी आने पर सरदर्द होता है।

(२) सम्भोग के समय आटोपरोग आसनो के लगाने से, भाफ के परमाणु दिमाग में पहुँच कर दर्द करते हैं। बाद में अंधेरी आने लगती है।

(३) जिनके पट्ठे किसी कारणवश पहिले ही से कमजोर हैं वे सम्भोग कालीन मेहनत से इसके शिकार होते हैं। बाद में देह कांपने लगती है। चलने फिरने म कमजोरी आती है, दिमाग सिमिटता है और खिचता है, दिमाग के पर्दे में दर्द होता है।

शिर की चोट से होने वाला शिरदर्द

हिकमत में इसे 'सकती' और 'जर्वी' कहते हैं। खोपड़ी के मढ़े हुए पर्दे पर चोट लगने भेजे या किसी दूसरे पर्दे में, चोट लगने पर सूज जाने, से भेजेके स्थान भ्रष्ट हो जाने से और दूसरे अंगो पर चोट लगने से यह दर्द होता है। घातक चोट लगने पर आदमी मर जाता है।

ज्वर आदि में शिर दर्द

इसे 'आर्जी' कहते हैं। ज्वर बढने पर शिर-दर्द भी बढ़ता है और उसके घटने पर यह भी घटता है, यही हिसाब दूसरे रोगों में समझना चाहिये। सांयोगिक शिरदर्द से यह पृथक् है।

शराब पीने से शिरदर्द

ज्यादा शराब पीनेसे, केवल शराब पीनेसे, गाढ़ी शराब पीने से शिर में दर्द होता है, इसलिये कि निकम्मे परमाणु दिमाग में चढ़कर दर्द और भारीपन पैदा करते हैं। इसमें आदमी वेहोश भी होजाता है, शराबियो की यह दशा होना भी चाहिये।

नशीली चीजों से शिरदर्द

जिन्हे नशीली चीजो के सेवन करने की आदत नहीं है, वे अगर जानकर या जबरन भांग, गांजा, अफीम आदि का सेवन कर लेते हैं, तो उनके दिमाग में चक्कर आने लगता है, जब दर्द

होता है वह बेहोश भी हो जाते हैं। बहुतो को कै, दस्त भी होजाते हैं। जर्दा तम्बाकू खाने, सिगरेट पीने आदि से भी बहुतो का शिर दुखने लगता है।

तेज़ दवाओं से शिरदर्द

आयोडाइड, रस कपूर, अशुद्ध भस्मो के खाने से, दवा के अधिक और अनियमित खाने से शिर में दर्द होजाता है, जब तक दवा का असर रहता है, दर्द भी रहता है।

शिर की गांठ से होने वाला शिरदर्द

नदी नहाने, वेहिसाव खाने, खा पीकर पडे रहने, आदि कारणो से दोष, शिर में गांठ पैदाकर देता है, विजातीय द्रव्य शिर में आकर गांठ के रूप में ठहरता है। कभी २ खून दौडाने वाली, भेजे की रगो में तथा कभी खोपडी के पर्दों की रुधिरवाहिनी तथा शक्तिवाहिनी रगो में दोष गाढ़ा होकर रुक जाता है जिससे गांठ हो जाती है इसमें दर्द के साथ २ खिंचाव भी होता है, बोझा मालूम देता है और शिर तथा चेहरा भर्राया हुआ सा रहता है।

बेंजीटोप वाला शिरदर्द

इसमें ऐसा मालूम होताहै मानो सर के ऊपर दर्द का लेप रख दिया है।

१-गाढ़े और दृढ़ भाप के परमाणु किसी तरह के निकम्मे दोष से उठकर खोपडी की भीतरी झिल्ली में आकर बन्द हो जाते हैं जिससे यह सरदर्द होता है। वह दोष सर में भी हो सकता है व दूसरे अगों में भी।

२-निकम्मे दोष ही खोपड़ी की झिल्ली आदि स्थानो में घुस जाते हैं।

३-खूनी सरसामी ,सूजन खास दिमाग में ही हो जाती है।

४-दिमाग में पित्त की सूजन हो जाती है।

५-सर्दी के कारण सर के भीतरी भागों में सूजन हो जाती है।

६-पर्दों में गाढ़ी वादी घुसकर बद होती है।

इस दर्द के ये ६ कारण हैं इनसे यह दर्द होता है।

पांच चिन्ह

इस दर्द के खास ५ चिह्न हैं।-

१-चलने-फिरने, साधारणगर्मी पहुँचने आदि साधारण कारणों से ही यह सरदर्द बढ़कर भयानक रूप धारण कर लेता है।

२-अधेरा अच्छा लगता है, उजाला नहीं, दर्द के मारे सर लटक जाता है और आखें मिच जाती है।

३-आंखो की जड में दर्द और खिंचावट होती है।

४-चेहरा खिंचता है और उसका रग बदल जाता है सर पर हाथ रखने से दर्द विशेष होता है किंतु यह सब होता है बाहिरी झिल्ली की खराबी से।

५-झिल्ली के नीचे जब भाप के परमाणु बन्द हो जाते हैं तो सर की रगो का कूदना और धमकना बंद हो जाता है।

अधिक सोने और ज्ञानशक्ति के बढ़ने से सरदर्द

इसमें आदमी बहुत सोता है, दिन और रात सोता ही रहता है तब उसके शिर में दर्द हो जाता है। दिन रात सोने से मतलब २४ घंटा सोने से नही है, दिन में भी और रात में भी सोने से है। बहुत से आदमी दिन में खाके २-४ घण्टा सोजाते हैं और रात में तो सोते ही हैं। यह दर्द उन्ही के शिर में होता है। यह सब होता है पाचनक्रिया के खराब होने और आलस से, कभी २ दिमाग भी

ज्ञानशक्ति के बढ़ जाने पर जरा भी बात से ही सर में दर्द हो जाया करता है, इसे हिकमत में 'कुव्वत हिस्से दिमागी' कहते हैं।

सूर्यावर्त १२ बजे तक का सरदर्द

ठीक सूर्य निकलते ही यह सरदर्द शुरू होता है और सूर्य के बढ़ने के अनुसार बढ़ता है १२ बजे तक दर्द खूब जोरो से होता है फिर सूर्य जब अस्ताचलगामी होता है दर्द भी कम होने लगता है और धीरे २ आराम हो जाता है. इस दर्द का सम्बन्ध सूर्य से है अतः इसे सूर्यावर्त कहते है।

आधाशीशी *Hemicrania*

आयुर्वेद में इसे अर्द्धावभेदक कहते हैं, यह बड़ी पाजी बीमारी है, इसलिये इसका नाम हिकमत में 'शकाका' है रूखे सूखे भोजन करने, भोजन पर भोजन करने आदि कारणोसे वायु के बिगड़ने पर यह रोग हो जाता है। वायु या तो अकेला या कफ को साथ लेकर मस्तक के आधे हिस्से को पकड़ कर नाक, भौं, कनपटी, कान, आंख और पलक के आधे भाग मे बड़ी पीड़ा करता है, सर पर मानो लाठियां भी पड़ती है, इसमें दिलकी रगें भी धड़कती हैं, वे अगर हाथ से पकड़ ली जाती है तो दर्द नही होता।

अनन्तवात

यह दर्द तीनो दोषो के बिगड़ने पर होता है, तीनो दोष बिगड़ कर जब बिद्रोह मचाना शुरू करते हैं, तो गरदन की नाड़ी जकड़ जाती है, सर में दर्द होता है, जलन होती है, भारीपन होता है, भौं और कनपटियो में भी दर्द होने लगता है, मारे दर्द के कनपटी फटने लगती है आंखें दर्द करने लगती हैं, ठोड़ी जकड़ जाती है, सर कांपने लगता है और गण्डस्थल मे भी पीड़ा होने लगती है।

रक्तसञ्चय से सर दर्द

मस्तिष्क की नाड़ियो में रक्तसंचय होने से सर में पीड़ा होने लगती है, सुविधा के लिये इसके दो भेद कर सकते हैं।

(१) मन्या नाड़ी में रक्त संचय होने से।

(२) शिराओं (नसो) में रक्तसंचय होने से शिराओ को नसें कहते है।

दोनो भेदों के कारण भी अलग २ होते हैं, एक पहिले में कारण हैं, रक्त प्रकृति, हृदय के वाम कोष्ठ का मोटा होना, कफ रहना, नशीली चीजों का सेवन करना आदि।

दूसरे के कारण है—शारीरिक निर्बलता, खून की खराबी, प्रदर, रजोरोध आदि। दोनो में एक ही तरह के चिन्ह होते हैं।

सर में हलकी पीड़ा, मस्तिष्क का भारी मालूम होना, आंखो का सुखे रहना, कानो में सनसनाहट, कनपटी की रगो का तड़फना, जलन। माथे का गर्म होना जी मिचलाना, मुंह के स्वाद का कड़वा होना आदि।

गर्मी Syphicis उपदंश होने से खून खराब होने के किसी दूसरे कारण से सिर में खराब खून के पहुँचने से भी यह दर्द होता है।

मस्तिष्क मे रक्त की अधिकता

रक्त प्रकृति वालो को यह रोग अधिक होता है, लू लगने, हृदय के अधिक धड़कने, शराब पीने शीर्षासन का अनुचित प्रयोग करने, लकवा मारने आदि कारणो से मस्तिष्क की नाड़ियो में अधिक खून आ जाता है। मस्तिष्क को अगर चीर कर देखें तो उसका अन्तरीय आवरण मोटा और गंदा हो जाता है उसके भूरे रंग का हिस्सा लाल होता है और उसके उभार दबकर सिकुड़ जाते है। बाहर देखने में नाड़ियां लाल दिखलाई पड़ती हैं।

इससे सर में थोड़ा २ दर्द भी रहता है, स्वभाव का चिड़चिड़ा होना, कार्य शक्ति में बाधा

पहुंचना, कानों मे सनसनाहट, नींद ठीक नही आना, माथे का गरम रहना, काला होना आंखो की लाली, हाथ-पांव का ठडा रहना, आदि उपद्रव होता है, इससे सक्ता भी हो जाता है।

मस्तिष्क की कमी

रक्त की अधिकता से जैसे खराबरी होती है वैसे ही कम होने से भी, शरीर मे रक्त की कमी होने हृदय में खराबी पैदा होने, गर्मी Syplicis होने के बाद गले की नाड़ियो में गांठ पैदा होने गंडमाला होने आदि कारणो से जब मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है तो नये २ उपद्रव पैदा होते हैं हस्तमैथुन करने से, व्यभिचार करने से, सरपर चोट लगकर खून निकल जाने से भी रक्त की कमी हो जाती है। इससे हलका शिरदर्द होता है, चक्कर आते हैं आंखोके सामने अधेरी आतीहै आंखें कमजोर हो जाती है स्मरण शक्ति कम होने लगती है, चेहरा फीका पड़ जाता है, हाथ पांव में ऐंठन होने लगती है, आंखो की पुतलियां फैल जाती हैं।

कभी २ आरम्भिक कारणो से भी सर में खून कम हो जाता है या खून की गति रुक जाने से वह सर तक नही पहुंच सकता, रेलगाड़ी के टकराने से मुसाफिरो को टक्कर लगती है, टक्कर लगने से कुछ देर के लिये खून की गति कम हो जाती है जिससे माथे में उचित खून नहीं पहुॅचता इसमें भी कारण के अनुसार ही चिन्ह होते हैं।

मस्तिष्क का दब जाना

कभी २ खोपड़ी की दबी हुई हड्डी या रक्त जारी होने से माथा कुछ दब जाता है, जो दिखाई भी पड़ता है' मस्तिष्क में पानी या पीप के जमा होने, माथे में रक्त जारी होने, शिरपर चोट लगने से खोपड़ी की किसी हड्डी के द्वारा मस्तिष्क पर दबाव पडने, घाव होकर फूटने, किसी जगह सर में ही) रसौली आदि होने किसी जहर के यहां पहुँचने आदि कारणों से वह रोग होता है। इसमें रोगी ठीक होशहवास में नहीं रहता, आंखें ठीक खुलती भी नहीं हैं। धारणा शक्ति में बाधा पहुँचती है, नीद ठीक नही आती, बेचैनी रहती है, नाड़ी सुस्त चलती है। ऐसे ही और भी उपद्रव होते हैं। मस्तिष्क कार्य शक्ति में बाधा पहुँचने से रोगी दीवाने तक हो जाते हैं। इसमें मौत का वारण्ट भी जल्दी आ जाता है।

मस्तिष्क का नर्म पड़ जाना

प्राय. यह रोग कमजोर और बुड्ढों को होता है, मस्तिष्क से लगातार अधिक काम लेने, माथेमें गांठ पड़ जाने आदि से जवानों को भी यह रोग हो जाता है। इसमें ऐसे कोई विशेष त्रिक नहीं होते मामूली त्रिक होते हैं हलकी सरपीडा, आंखो के सामने कभी २ अंधेरी आना, स्वभाव का चिड़चिड़ा होना, कायर और सुस्त होना, खानेके बाद ओघते रहना जरा से कष्ट से रो पड़ना, हाथ, पांव में कभी २ सनसनी होना आदि त्रिक होते हैं।

मस्तिष्क प्रदाह

प्रदाह से मतलब जलन होने से है।

मस्तिष्क प्रदाह—इसके आवरणो के प्रदाहके साथ ही होता उनके विना नही कभी प्रतिशत पांच स्वतन्त्र रूप से भी हो जाता है हम एक ही साथ सब बातें लिखे देते है अलग अलग लिखने से पाठको को सुविधा भी न होगी और पुस्तक का कलेबर व्यर्थ में बढ़ेगा मस्तिष्क के आवरण तीन। है। उन आवरणो के नाम डाक्टरी में इस तरह हैं

1—Arachnaoidar

2—Piameter

3—Durancter

तीसरे आवरण में चोट लगने आदि से ही अक्सर प्रदाह होता है।

आवरणों में प्रदाह होता है।

तेज धूप में फिरने, अग्नि में तपने, ज्यादा गर्मी (Syphilis) होने, गठिया होने, ज्यादा शराब पीने, नाक और कान के प्रदाह का मस्तिष्क तक पहुँचना, जहर खा लेने रोज दवा खाने, मस्तिष्क में चोट लगने, कब्ज रहने, बच्चों के दांत निकलने रक्त पित्त होने, क्षय होने, मस्तिष्क के बल के नष्ट होने व्यभिचार करने, हस्तमैथुन करने आदि कारणों से।

सर्दी लगने माथे में रक्त सञ्चय होने से भी आवरणों में प्रदाह होने लगता है।

मस्तिष्क प्रदाह

इन कारणों के अतिरिक्त खोपड़ी की हड्डियों के शून्य हो जाने नाक की हड्डियों के रोगों का मस्तिष्क तक पहुँचने पुप्फुस प्रदाह होने मल मूत्र बन्द होने, मासिकधर्म के रुक जाने आदि से भी होता है।

आवरणों के प्रदाह में-चिड़चिड़ापन बेचैनी शिरदर्द आंखों का लाल होना आदि चिन्ह होते हैं। इसके तीन दर्जे माने गये हैं।

(१) ज्वर रहना, सर घूमना, शिर पीड़ा, अनिद्रा और सोते २ जगना ये चिन्ह होते हैं, बच्चों के दांत निकलने समय प्रदाह होता है, फिर बच्चे हरे रंग को कै भी करने लगते हैं, चिल्लाते हैं डरते हैं और गोद से चिपटे रहते हैं।

(२) रोगी चुपचाप पड़ा रहता है, बोलने की इच्छा नहीं रहती और न किसी की बोली सुहाती है, दिमाग कथित रहता है आंखों के सामने चिनगारियां उठती हैं, कानों में सांय २ की आवाज होती है ऐंठन होती है, ज्वर हो जाता है, इस समय सन्निपात के चिन्ह भी हो जाते हैं। प्रायः दो सप्ताह बाद तीसरा दर्जा शुरू होता है।

(३) एकदम बेहोशी रहती है, मांस पेशियां ढीली पड़ जाती हैं, नाड़ी तेज होकर सुस्त हो जाती है, अन्त में रोगी मर जाता है, कोई २ बच भी जाता है।

अब मस्तिष्क प्रदाह के भी चिन्ह देखिये—

मस्तिष्क में दर्द, कै, ऐंठन, आलस्य, हाथ पांवों की ऐंठन और उनका ठंडा होना, शुरू में आंखों की पुतलियों का सिकुड़ना, और बाद में फैलना, श्वास का गहरा आना, कब्ज रहना, पेशाब का बन्द होना ज्वर का १०० डिगरी तक पहुंचना आदि चिन्ह होते हैं।

सब रोगियों के एक से चिन्ह नहीं होते, किसी को सरदर्द और कै की अधिक शिकायत रहती है तो किसी को सुस्ती और नींद की, किसी को ऐंठन बार २ होती है। ऐंठन के २४ घंटा बाद बेहोशी हो जाती है। और ४८ घंटे बाद हाथ पांव ठंडे हो जाते हैं बोलना बन्द हो जाता है, मांस पेशियां ढीली पड़ जाती है कर्मेन्द्रियां विकृत हो जाती हैं, बार २ ठहर २ कर उबकाइयां आती हैं, और उबकाई के साथ ही प्राण वायु निकल जाती है। बहुत से उसमें बच जाते हैं।

कभी २ यह रोग उन्माद या क्षय के रूप में बदल जाता है। रोग की अवधि १ से ४ सप्ताह तक है।

मस्तिष्क में पानी भर जाना

यह रोग अक्सर गर्भ में ही हो जाता है। कभी २ नौजवानों और ५-७ वर्ष के बच्चों को भी हो जाता है। मस्तिष्क के आवरणों के प्राचीन प्रदाह से उसके अन्तरीय भाग में खून जैसा पतला पदार्थ जम जाता है, जिससे देखने में मस्तिष्क बड़ा मालूम देता है, गर्भस्थ बच्चों को कैसे होता है यह सुनने की बात है।

गर्मी Syphilis उपदंश रोग वाले आदमी की गिल्टियां सूज जाती हैं, दब छिपी हुई बात

नहीं गर्मी की छूत लिये ही वीर्य गर्भ का निमाण करता है, रज की सहायता से दूषित वीर्य जिसमें कि गर्मी का जहर रहता है, गर्भ को निमाण क्रिया में रुकावट डालता है। जिससे गर्भ का नाल चिपटा हो जाता है या दूसरी खराबी हो जाती है मस्तिष्क में खून जैसे तरल पदार्थ के जमने से वह बड़ा होजाता है। जिससे प्रसव के समय स्त्री को बड़ी दिक्कत होती है। कभी २ तो गर्भ और गर्भिणी दोनो ही मौत के घाट उतर जाते है। शैतान रंडी बाजो के पापो का फल बेचारी असहाय अबला और अबोध बच्चे को भोगना पड़ता है।

बच्चा पैदा होने पर रोग इस तरह बढता है—

पुष्ट खाना खाने पर भी देह कमजोर रहती है मस्तिष्क बढने लगता है माथा और हड्डी उभरी हुई हो जाती है। मस्तिष्क के चांद की हड्डी का जोड खुल जाताहै तालू उभरा हुआ होता है और वहां कोई चीज हलती हुई मालूम होती है मस्तिष्क की चमडी पतली तनी हुई होती है और उसकी नसे हिलती है। नींद नहीं आती, किंतु ओंघती रहती है, स दर्द रहता है आंखे ठीक नहीं खुलती, दस्त या कब्ज की शिकायत रहती है ऐंठन होती है। और भी ऐसे ही उपद्रव होके रोगी अन्त में यमलोक का अतिथि हो जाता है।

अपस्मार

अपस्मार को बोलचाल के शब्दो मे मिर्गी (मृगी) कहते है, हिकमत मे इसे सरा और डाक्टरी में Epilepsy कहते है। मनुष्य जब सहसा बिना किसी डर या हर्ष के बेहोश होकर गिर पड़ता है तो समझ लिया जाता है कि इसे मृगी आ गई, मृगी और मूर्छा मे बहुत अन्तर है, कारणो का अतर तो है ही एक और लम्बा अतर है। मिर्गी आने के पाहले हृदय कांपने लगता है, पसीना आने लगता है, बुद्धि बिगड़ने लगती है, ऐसे और भी चिन्ह होने लगने हैं, किंतु मूर्छा में ऐसा नहीं होता, मूर्छा में तो आदमी एक दम बेहोश होकर गिर पड़ताहै, न उसके पहिले पसीना आता न उसका हृदय ही कांपता है।

आयुर्वेद के अनुसार मृगी रोग मानसिक है, और हिकमत तथा ऐलोपैथी के अनुसार दिमागी है। इसका उल्लेख आयुर्वेद में मानसिक रोगो के प्रकरण मे हुआ है, और हिकमत तथा डाक्टरी में दिमागी रोगो के प्रकरण में इस रोग में स्मरण-शक्ति का नाश होना आदि चिन्ह ऐसे हैं, जिनसे इसका सम्बन्ध दोनों मन और दिमाग से हो सकता है। आजकल मानसिक मृगी भी है, और दिमागी मृगी भी है, और सायोगिक मृगी भी है, सभी तरह की मृगी देखनेमें आती है हिकमत में इसका जितना खुलास वर्णन है उतना न आयुर्वेद में है और न डाक्टरी में। हम भी इसे दिमागी रोग मानेगे। यद्यपि मानसिक मानने केभी हमारे पास कारण है। दूषित दोष जब मनोवाही नाड़ियों में घुसते हैं तो स्मृति नाश होती है, और दोष घुसने के उनके पूर्ण चिन्ह भी दिखाई देते है। अस्तु! जो हो।

मृगी के कारण

कारणो का वर्णन वैसे तो साथ २ ही भेदो के अनुसार होता जायगा किंतु यहां मूल कारण निर्देश किये देते है। आयुर्वेद में लिखा है कि—चिंता, शोक, क्रोध, मोह आदि से जब दोष बिगड़ जाते है तो वे मनोवाही नाडियो में घुसते हैं, और स्मृति मे हाथ सफा करते है, रजोगुण और तमोगुण को बढाना तथा सतोगुण का कम होना, मृगी को पैदा करता है। हिकमत मे लिखा है, मृगी का कारण मवाद की गांठ है जो दिमाग के पट्ठो और पर्दों के छेद मे पैदा होती है, जिससे

दिमागी रूह अपने मार्ग से पट्ठों तक नहीं जा सकती है। ऐलोपैथी के अनुसार भी क्षोभ, लोभ आदि कारण ही हैं।

गांठ अगर पूरी होती है तो सक्त की जैसी दशा हो जाती है एक दम शक्तियों का नाश हो जाता है, और ऐंठन भी नहीं होती है परन्तु असपूर्ण गांठ में ऐंठन का कष्ट अलग भोगना पड़ता है।

दिमाग का अगला भागही विशेषतः मृगी का केन्द्र है, किन्तु समीप होने के कारण दूसरे भागों को भी कष्ट का प्रभाव चखना पड़ता है। कारण के अनुसार ही इसकी कमीवेशी होती है।

ऐंठन सबको नहीं होती, मृगी का वेग होकर उतर भी जाता है लेकिन किसी २ को ऐंठन का असर होता ही नहीं है। मल थोड़ा होना ही ऐंठन न होने में कारण है। ऐंठन के तीन कारण बतलाये हैं।

(१) रगों का भर जाना।

(२) पट्ठों में खुश्की होना।

(३) पट्ठों तथा भेजे का खिंचना और सिमटना।

ऐंठन खुश्की के कारण नहीं हुआ करती, हां खुश्की जब बहुत बढ़कर दिमाग को ऐंठ देती है तो तत्काल मौत हो जाती है, पट्ठों और भेजे में जो सिमिटन होता है वह दिमाग की ज्ञान शक्ति तीक्ष्णता से, भाफ के परमाणुओं के चढ़ने से, जहरीली दशा से घिन खाकर भागने से होती है। बहुत सा मल जब दिमाग में जम जाता है और किसी कारणवश उसमें से थोड़ासा भी हिल जाता या फैल जाता है तो भाप के परमाणु फैलकर छेदों में भर जाते हैं, जिससे पूरी गांठ के पैदा हुये बिना भी मृगी हो जाती है। कभी २ मल दिमाग में न ठहर कर किसी दूसरे अङ्ग में ठहर जाता है, और उसकी भाफ के परमाणु दिमाग की तरफ चढ़ जाते हैं, जिससे मृगी हो जाती है। कभी बिच्छू वगैरह जहरीले जानवरों के काटने से जहर दंशित स्थानके पट्ठे में फैलकर दूसरे अंगोंके संयोग से दिमाग में पहुंचता है। फिर दिमाग इसके असर को घृणित दृष्टि से देखकर अपने आप ही उसके आने के पहिले सिकुड़ जाता है। दिमाग के सिकुड़ने से शिर में ऐंठन और मृगी होती है। कभी मल के थोड़े होने पर भी दिमाग की ज्ञानशक्ति के विशेष होने के कारण असर दिमाग तक पहुंच कर मिर्गी पैदा कर देता है। इसके कारणों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) सर में मवाद भरने से मृगी होती है।

(२) दूसरे अंगों में मवाद भरने और उसके दिमाग में पहुँचने से सांयोगिक मृगी होती है।

(३) जहरीले जानवरों के काटने से मृगी होती है।

(४) दिमाग की ज्ञानशक्ति के बढ़जाने से मृगी होती है।

मृगी के भेद

हिकमत के अनुसार मृगी के प्रधान भेद ६ हैं, आगे चलकर उपभेद भी हो जाते हैं।

हिक्मत के अनुसार मृगी के ४ भेद हैं।

(१) दिमागी मृगी।

(२) सांयोगिक मृगी।

(३) जहरीले जानवरों के काटने से होने वाली मृगी।

(४) हिकमत के अनुसार ज्ञानशक्तिकी वृद्धि से होने वाली मृगी।

(५) इबील मिश्रा,

(६) उन्मुससिबिया,

आयुर्वेद के अनुसार ४ भेद हैं

(१) वातज-मृगी।

(२) पित्तज मृगी ।

(३) कफज-मृगी ।

(४) सन्निपातज-मृगी ।

आयुर्वेदोक्त चारो प्रकार की मृगियो का जिक्र अलग २ करके दिमागी मृगी के अन्दर ही कर देना ठीक है, हिकमत में दिमागी मृगी चार तरह की मानी है चारो दोषोके अनुसार यह याद रखने की बात है कि आयुर्वेद मे जहा तीन दोष है, हिकमत में वहां चार दोष हे, रक्त को भी हिकमत में चौथा दोष माना है। दिमागी मृगी, वात, पित्त, कफ और रक्तके अनुसार चार तरह की है, आयुर्वेदोक्त मृगी वात, पित्त, कफ और त्रिदोषके अनुसार चार तरह की है।

१—दिमागी मृगी के
(४) भेद हैं

१—कफज मृगी में

बुद्धि बिगड़ना, इन्द्रियो का सुस्त होना, शिर में बोझ मालूम होना, मृगीके समान मुहमे झागो का आना थूक और नाक का बहना, शरीर-का ढीला होना, प्रकृति ठडी होना, कठिनता से हिलना चलना, ये चिन्ह हिकमत के अनुसार होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार भी इससे मिलते जुलते चिन्ह होते हैं। देह और मुह को सफेदी, सफेद झाग, देहमें भारीपन, सर्दी लगना रोमाञ्च-होना, सब सफेद दिखाई देना, बहुत देर मे होश आना, ये चिन्ह होते हैं।

२—वातजमृगी में

खफकान, दिल का धडकना ये चिन्ह होते हैं, साथ ही मृगी के वेग के पहिले बुरे २ विचार और सदेह उठते हैं, चिन्ता हो जाती है. भूख अधिक लगती है। फिर जो झाग निकलते है, उनका स्वाद खट्टा होता है, कभी २ झाग को तेजी और खटाई से जमीन उबलने लगती है। आयुर्वेद में देह कांपना, दाँत भीचना, झाग गिरना, चारो तरफ आग जैसा लाल रूप दिखाई देना, ऊंचे २ सांस लेना, ये चिन्ह बतलाये हैं।

३—पित्तजमृगी में

बहकना, बैचैनी, घबराहट, गर्मी की अधिकता में कै, मुह और आंखो का पीलापन, होश जल्द आना, ये चिन्ह होते हैं। आयुर्वेद में पीले झागो का निकलना, प्यास लगना चारो तरफ आग जलती हुई दिखाई देना, ये तीन चिन्ह और विशेष बतलाये हैं।

४—रक्तजमृगी में

नोट—त्रिदोषज मृगी में ये सभी चिन्ह होते हैं। कभी आग जलती दिखाई देती है, तो कभी सब सफेद दिखाता है।

यह खून से पैदा होने वाली मृगी है, आयुर्वेद में इसका उल्लेख नहीं है। हिकमत में लिखा है कि केवल खून से मृगी बहुत कम होती है। खून में बादी या कफ या पित्त के मिलने पर बहुधा मृगी हो जाती है सिर में खून के अधिक होने पर रगों का भरा रहना, मुह की लाली और भरभरापन, मृगी के समय ये चिन्ह और भी उग्र हो जाते हैं, कभी २ नाक के रास्ते खून भी बहने लगता है। मृगी के पहिले सरदर्द. घुमेरी, अधेरी और चक्कर आना, ये चिन्ह होने लगते हैं, खून में अगर बादी होने से मृगी होती है, तो इन चिन्हो के अलावा बादी के चिन्ह और होते हैं इसी तरह कफ और पित्त के होने पर।

२—सांयोगिक मृगी के
(७) भेद होते हैं

अलग २ अगो के सयोग से होने के कारण इसके ७ भेद हैं।

१—आमाशय से होने वाली

जब आमशय दूषित कफ, वात या पित्त से भर जाता है, तो भाफ के परमाणु दिमाग की तरफ सड़ने हैं, कभी २ निकम्मी दशा के कारण खुद दिमाग ही कष्ट पाकर सिकुड़ जाता है जिससे मृगी आ जाती है, इसके ये चिन्ह प्रधान हैं।

(१) उन्मत की तरह आमाशय का हिलना।

(२) आमाशय में विशेषतः खाने के पहिले जलन, चुभन और कमकपी होना।

(३) मृगी के समय रगो का खिचना, नथुनो का फूलना, गले का घुटना, कभी २ चिल्लाना, मल मूत्र और वीर्य का हलका होना।

(४) कै होने के बाद मृगी का हलका होना।

(५) कभी २ उचित पदार्थों के खाने से यानी बुरे दोषों के निकलने से मृगी का चला जाना।

२—तिल्ली से होने वाली

तिल्ली के फूलने, दर्द करने और कठोर होने आदि से यह मृगी होती है।

३—पेट की झिल्ली से होने वाली

जब पेट के ऊपर की झिल्ली में जलन होती है तो यह मृगी होती है। खट्टी डकारें पेट में अफरा ऊपर झिल्ली में जलन, बैचैनी, कै में कच्चे अन्नका निकलना ये चिन्ह होने हैं।

४—गर्भाशय से होने वाली

रजोधर्म के रुक जाने से जब गर्भाशय में सडन पैदा हो जाती है, तो बुरी भाप के परमाणु दिमाग की तरफ चढ़कर मृगी पैदा करते हैं। अक्सर गर्भाशय के विकार से गर्भिणी स्त्रियो को यह रोग होता है और बच्चा पैदा होने के बाद चला जाता है। पेडू पट्ठे, और पेट में दर्द तथा बोझ का प्रतीत होना, इसके चिन्ह हैं यहीं पर हिकमत में लिखा है कि वीर्य के बहुत दिन तक रोकने से भी मृगी हो जाती है, वीर्य को रोकना हर हालत में आवश्यक है, किन्तु जब बहते हुये वीर्य को रोका जाता है तो उसकी खराबी से मृगी हो जाती है। पेडू आदि का दर्द भी होता है।

५—जिगर से होने वाली

जिगर में सूजन होने, मसूरिका में गढ़ा पड़ने आदि जिगरकी खराबियो से मृगी हो जाती है। जिगर की खराबी से पित्त विगड़ता है, फिर विगड़ा हुआ पित्त उपद्रव मचाये विना तो रहेगा नहीं। जिगर के रोगो का वर्णन अलग हुआ है।

६—आंतों से होने वाली मृगी

जब कभी आतो में कीड़े पड़ जाते हैं और बुरी भाफ के परमाणु दिमाग में आकर रगो में गांठ पैदा करके मृगी पैदा करते हैं। आंतो में कीड़े पड़ने और उनके चिन्हो का वर्णन अलग किया गया है।

७—हाथ पांव से होने वाली मृगी

जब हाथो वा पैरों में दोष इकट्ठे हो जाते हैं, तो यह मृगी होती है। जब हाथ पैरो की किसी रग में साफ और चिपकदार मल चिपट जाता है, तो रूहे हैवानी का आना रुक जाता है। जिससे उस स्थान के खून और मल में सर्दी आ जाती है फिर वहां ठंडी बादी पैदा होती है। कभी २ तो वहां इतनी ठड हो जाती है कि छूने पर मुर्दे की सी देह मालूम होती है। फिर वही सर्दी वहींसे पट्ठो के द्वारा दिमाग में पहूँच कर, दिमागी पर्दो की रतूबत को गाढ़ा कर देती है, जिससे दिमागी रूह के रास्ते तग हो जाते हैं, और वहां गाढ़ा पैदा होकर मृगी होती है, मल की सर्दी हीसे गांठ नहीं होती कभी २ खुद दिमाग ही मादे की विषैली

दशा से घृणा करके सिकुड़ जाता है, और वहां की रगें बन्द होकर मृगी पैदा कर देती है, इसके ये चिन्ह हैं—बीमार को मालूम होता है कि हाथ या पैर से एक ठंडी हवा सी चलकर दूसरे अंगो में होकर धीरे २ दिमाग की तरफ जा रही है, मृगी के आने के समय आंखें खुली ही रह जाती हैं आंसू भर आते हैं, मुंह काला पड़ जाता है, हाथ पांव की अंगुलिया ऐंठ जाती हैं, दूसरे अंगो में खिचावट होती है, मृगी के आने के पहिले ही जभांइयां बहुत आती हैं, और अंगडाइया भी पेशाब भी जल्द २ होता है।

३—विषैले जानवरों के काटने से होने वाली मृगी

जहरीले जानवरो—बिच्छू, छिपकली आदि के काटने पर जहर का असर खून वाही नाड़ियो के द्वारा दिमाग में पहुँच कर मृगी पैदा करता है। इसमें होश देर में आता है, मुंह से झाग बहना, आदि जहरके और दूसरे ऊपरी चिन्ह भी होतेहैं। किस जानवर के जहर का क्या असर होता है इसका वर्णन अलग किया गया है।

४—दिमाग की शक्ति के बढ़ने से होने वाली मृगी

किसी २ के दिमाग की ज्ञान शक्ति बहुत तेज और बलवान हो जाती है, फिर बदबू आदि थोड़े से कारण से ही उसको घृणा होती है. और दिमाग कष्ट पाकर अपने आपको समेट लेता है, जिससे होश जाता रहता है। ऐंठन भी होती है।

५—इपीलेप्सिआ (मृगी)

यह एक तरह की घातक मृगी है, जो बादी या कफ से पैदा होती है। इसमें हाथ पैरो की ऐंठन के सिवाय दूसरे चिन्ह नहीं होते और यह मृगी आनें के पहिले ही हो जाते है।

६—उन्मुलसीबिया [बच्चों की मृगी]

इसको बालापस्मार कह सकते हैं, इसका वर्णन बच्चो के रोगो के प्रकरण में हुआ है। इसका कारण यह बतलाया है कि नवजात बच्चों के दिमाग के भीतर जन्म से ही रतूबतें होती हैं, वे बाद में निकल जाती है, अगर यह न निकले तो मृगी हो जाती है किन्तु बड़े होने के बाद अपने आप नष्ट हो जाती है। इसके विषय में हकीमो में भी मतभेद है, अनावश्यक समझकर हम इसका उल्लेख नहीं कर रहे हैं, इसका वर्णन बालापस्मार में देखना चाहिये।

मृगी के पूर्व चिन्ह

मृगी का वेग होने से पहिले हृदय कांपने लगता है, पसीना आ जाता है, बेहोशी सी होने लगती है, देह में सूनापन होने लगता है, आश्चर्य और गम्भीर चिन्ता होने लगती है, बुद्धि बिगड़ने लगती है, और इच्छा करने पर भी नींद नहीं आती है।

दिमागी मृगी के सामान्य चिन्ह

(१) जीभ का मिचलाना और जीभ के नीचे की रगो का हरा होना।

(२) दिल के उदास होने से थोड़े भी क्रोध के होने से सरदर्द होना।

(३) पहिले ही से जमकर बहुत भारी होना

(४) बुरे स्वप्न आना, भूलना, भय।

(५) मुंह से झाग आना।

(६) बुरे विचार आना।

(७) दिल का तंग और असंतुष्ट होना।

(८) जरा से कार्य में बिना मतलब क्रोध करना।

सकता

मस्तक के सब दर्दों मे जब एक साथ गांठ पैदा हो जाती है तो सकता होता है। यह रोग

भी सन्यास जमूद का भाई है, उसमें सांस भी बन्द हो जाती है किन्तु और चिन्ह वैसे होने पर भी इसमें सांस बन्द नहीं होती। यह सहसा पैदा होता है और सन्यास के चिन्ह (सिवाय सांस छोड़ के) पैदा हो जाते हैं। चुप रहना इस रोग का खास चिन्ह माना है।

रुकने के २ कारण हैं

जिनसे दिमाग में गांठ पैदा होती है।

१—दिमाग-उसकी पोल और उसके रास्ते में कोई दोष भर जाय।

नोट—पित्त के दिमाग में भरने से गांठ नहीं होती है उसकी सूजन को दबाने से सक्ता हो जाता है।

२—सर्दी लगने, चोट लगने, धमक पहुँचने तथा निकम्मे दूषित कीटाणुओं के कारण और जहरीले वातावरण में रहने के कारण, दिमाग में कष्ट पहुँच कर सिकुड़ जाता है जिससे दिमागी रुह का आना जाना बन्द हो जाता है।

सक्ते के साधारण चिन्ह

जैसा कारण होता है, उसी के अनुसार सक्ता होता है। आदमी का बेहोश हो के गिरना, चक्कर आना और कानो का बजना, इसके खास चिन्ह है। सक्ते और जमूद का भेद हम अलग बतला चुके हैं शक्ति कमजोर होने पर मुंह में झाग आने लगता है किन्तु बीमारी के पुरानी होने पर ऐसा नहीं होता।

अपने २ कारणो के अनुसार यह दो तरह का है।

सक्ते के दो भेद

(१) इम्तलाई सक्ता

दिमाग की पोल और रास्तो में मल भर जाने से पैदा होने वाला पहिला सक्ता है, इसके भी ३ प्रकार हैं।

इसी के तीन भेद

१—दिमाग में सूजन होने से जिसका वर्णन सरसाम में आ चुका है, सक्ता होता है।

२—बहुत सा गाढ़ा मल दिमागकी पोल और उसके रास्तो में भर जाय।

३—खूनो के कलवी-तीसरा प्रकार है, इसमें खून की अधिकता से सब मार्ग बन्द हो जाते हैं। दिमाग और मन की ज्ञान वाहिनी नसो में खून भरने से पैदा होता है इसमें सांस तक रुक जाती है। और देह ठंडी हो जाती है।

(२) इनक़बाजी

यह दिमाग के सिकुड़ जाने से होता हैं, इसके चिन्ह मृगी आदि में कहे जा चुके हैं।

विशेष--विवरण

कभी सक्ते वाला ठीक मुर्दे की हालत में भी हो जाता है और दिन भर पड़ा रहता है जिससे घर के लोग आखिर में उसे जला देते हैं। किन्तु कम से कम उसे ७२ घंटे न जलाना चाहिये। सांस चलती हुई भी हमें मालूम नहीं दे सकती इसलिये रोगी के नाकके आगे कबूतर का छोटा पर रखना चाहिये सांस चलने पर वह हिलने लगेगा किन्तु किसी दूसरे का श्वास उसे नहीं छूना चाहिये। आंख की पुतली में चमक रहने पर रोगी जीता है और उसकी आंख में देखने वाले की परछाईं दिखलाई दे तो भी रोगी जीता है, अगर ऐसा नहीं तो मर गया।

सक्ते में रोगी सहसा पछाड़ खा के गिर पड़ता है और वह मुर्दे की तरह हो जाता है। जिससे भली भांति अशिक्षित जनता समझ लेती है कि इसे भूत ने धर दबाया, या देवता ने पछाड़ दिया, बेचारे भूत और देवता का नाम बदनाम करके रोगी की परिचर्या तो नहीं करते उल्टे रोने पीटने लगते हैं। यह एक भद्दी बेवकूफी है।

अर्दित आधे चेहरे का टेढ़ा होना

हिकमत में इसे लकवा भी कहते है, यह लकवा पक्षाघात से दूसरी चीज है। आयुर्वेद में इस लकवे को अर्दित कहते हैं. और यह वायु का रोग है। इसका रूप आगे बताया जायगा, पहले इसके कारणो पर विचार कर लेना चाहिये।

कारण

यह रोग वायु से होता है, इसलिये इसमें वायु की खराबी होती है, यह बात सहज ही समझी जा सकती है, सुपारी जैसी कड़ी चीजो के अधिक खाने, रोज चिल्ला २ कर बोलने, हरदम अट्टहास हसने, गरदन को टेढ़ी करके सोने, ज्यादा और बिना तरीके धनुष तानने भारी बोझ को उठाने, बार २ जभाई लेने, ऊटपटांग तौर से बैठने, और सन्निपात जैसे रोगो में हवा लग जाने से यह रोग होता है।

इतने कारणो से शिर, नाक, ठोड़ी, ललाट और आंखो की सधियो में रहने वाला वायु बिगड़ जाता है फिर उसकी दया से ये सब स्थान टेढ़े होते जाते हैं। अपनी नियमित दशा में नहीं रहते। जिस स्थान पर वायु ज्यादा बिगड़ता है, वहां उसका अधिक असर होता है। बहुत से आदमियो का मुंह टेढ़ा हो जाता है, गरदन टेढ़ी हो जाती है और आंखें टेढ़ी हो जाती हैं। कभी २ सब चेहरा टेढ़ा नही होता इसका कारण यह है कि वायु कम बिगड़ा है, इससे मुह का सारा सौन्दर्य बिगड़ जाता है, आंखो की सरलता नष्ट हो जाती है, औरदेखनेमें चेहरा बहुत भद्दा मालूमदेने लगताहै।

इसके भेद

आयुर्वेद में इसके तीन भेद माने है। और हिकमत में दो ऐलोपैथिक विद्वान ऐसा कोई भेद नहीं मानते, पहिले हम आयुर्वेदोक्त ३ का वर्णन कर देना चाहते हैं। यह बात याद करने की है। कि इसमें खास खराबी होती है, यद्यपि वायु की फिर भी दूसरे दोष अछूते नहीं रह पाते हैं, उन्हें भी पारस्परिक सहयोग के कारण सहानुभूति प्रगट करनी पड़ती है।

अर्दित के स्पष्ट चिन्ह

लकवा होने पर आधा मुंह टेढ़ा हो जाता है गरदन टेढ़ी हो जाती है। सर कांपने लगता है। बोलने में बड़ी दिक्कत होती है, साफ आवाज नहीं निकलती है। नाक, आंख, मुह और गालों में दर्द होता है। ये फड़कते हैं, और टेढ़े हो जाते हैं।

१—बादी का लकवा

मुंह से लार गिरती है, दर्द होता है। रगें फड़कती हैं, कपकपी होती है. ठोड़ी जकड़ जाती है। होठ सूज जाते हैं, और उनमें सुई सी चुभती है. भाषण शक्ति कम होती जाती है।

२—पित्त का लकवा

पित्त के साथ होने पर मुंह पीला पड़ जाता है बुखार होता है, प्यास, मोह, और गर्मी होती हैं।

३—कफ का लकवा

गले मस्तक और गरदन की पिछली नसों में सूजन हो जाती है और वे जकड़ जाती हैं।

३—हिकमत से २ भेद

हिकमत में लिखा है—

यह रोग मुह के अजलो में होता है और आंख, भोह, होठ और माथे की खाल ये सब टेढ़े हो जाते हैं। मुँह की असली सूरत बदल जाती है होठ आपस में अच्छी तरह मिल नही सकते हैं। जिससे रोगी न चूंस सकता है और न किसी की चीज को मुँह में दबाकर खीच ही सकता है मुँह की हवा सीधी नही निकलती, रोगी अपनी फूंक

से दीपक को भी नहीं बुझा सकता है। आंख की पलकें ठीक बन्द नहीं हो सकती हैं ये सब बाते इस हालत में होती हैं, जब बीमारी एक तरफ होती है। कभी २ मुंह के दोनों तरफ होता है, इसमें मुंह का टेढ़ापन दिखलाई नहीं देगा बल्कि चिन्ह विशेष होते हैं।

हिकमत में लकवे के दो भेद माने हैं।

(१) तशन्नुजी (एंठना, खिचना, सिमटना)

(२) इस्तरखाई (ढीला व सुस्त होना)

तशन्नुजी लकवा के तीन भेद

पहिला भेद

जिन अजलो से ये अंग चलते फिरते हैं उनमें गाढ़ी और गलीज रतूबत भर जाती है, वह रतूबत दिमाग से आती है फिर अजले चौड़ाई में बढ जाते हैं और लम्बाई में कम हो जाते हैं, जिससे यह अंग खिच जाते हैं अपनी दशा से फिर भी जाता है।

दूसरा भेद

गरदन का अजला सूज जाता है, जिससे गला घुटता है, मिचता हैं जिससे जोड़ो के बन्धन और अजले खिच जाते हैं और लकवा हो जाता है। यह लकवा होठों में होता है। कभी गरदन के अजले की सूजन से फालिज हो जाता है।

तीसरा भेद

दिमागी अंगो पर खुश्की के अधिक होने से रतूबत नहीं रहती, जिससे भेजा और हराममग्ज तथा पट्ठे जल भुन जाते हैं और लकवा हो जाता है। यह लकवा चर्म रोगो के अंत में पित्त ज्वर और मौत के पास में होता है। कभी २ अधिक मल के निकलने से भी तशन्नुजी लकवा हो जाता है।

तशन्नुजी लकवे के ये चिन्ह हैं।

ललाट के रोग वाले की भौंह की चमड़ी कड़ी हो जाती है और ऊपर की तरफ इस तरह से खिचती है कि माथे की सलवटें उस तरफ रहती ही नहीं है शिर की खाल में या गरदन की तरफ सिलवट पड़ जाती है। मुंह से थूक बहुत कम निकलता है, जिस तरफ रोग नहीं होता उस तरफ की आंख बन्द करने में दिक्कत होती है। इसमें शिरदर्द बहुत होता है।

इस्तरखाई लकवा

दिमाग से पतली रतूबत उतरती है, और वह एक तरफ से अजलों और पट्ठों के पास जाकर उन्हें तर करती है। पर्दे और झिल्लियो के रास्ते बन्द होने से रूह का रास्ता भी बन्द हो जाता है। जिसके वे अग जिन पर रतूबत गिरती हैं, ढीले और सुस्त हो जाते है। यह लकवा प्रायः कम ही होता है। इसके ये चिन्ह है।

मुंह के अगले भाग का ढीला होना, ग्रसन शक्ति में निर्बलता आना, जीभ की रसना शक्ति का नष्ट होना। साथ ही मुंह की खाल, माथा और अजला, ये उस तरफ अधिक नहीं खिचते हैं। किंतु उनमें कोमलता रहती है। रोग वाले हिस्से की तरफ वाली आंख के बीच की पलक इतनी नीचे झुक जाती हैं, कि ऊपर वाली पलक उस ओर नहीं आती। आंख से आंसू बहते रहते हैं। इसका एक प्रधान चिन्ह यह है। कि इसमें पलक नहीं चलते।

दोनों का अन्तर

तसन्नुज और इस्तरखाई में बहुत अंतर है। किन्तु कभी २ ना समझो को धोखा हो जाता है। उस अतर को (हकीम जालीनूस) के शब्दो में यहां बतलाये देते हैं।

एक दरार है, जो तालू के बीचों बीच आई है और इसकी वजह से सारे मुंह की हड्डियां पृथक्कर हुई हैं। मुंह के भीतर एक महीन सी झिल्ली तालू में उसी दरार से मिली हुई लगी है। और यह दरार उसी झिल्ली से छिपी हुई है, जब इस्तरखाई लकवा होता है तो जिस तरफ इस्तरखाई (ढाला पन) उस तरफ की झिल्ली ढीली होकर लटक जायगी। उसका रंग बदल जायगा। वह तर और गीली मालूम होगी, इसके बिपरीत दूसरी तरफ की झिल्ली अपनी असली दशा में होगी, न वह लटकेगी, न उसका रंग ही बदलेगा, और न वह गीली या तरही होगी। इसके देखने के लिये रोगी की जीभ को अंगुली से दबाकर नीची कर देनी चाहिये। फिर तालू को देखना चाहिये। दोनो तरफ की झिल्लियो में से एक अगर लटकी हुई है गीलीहै तो समझ लीजिये कि इस्तरखाई लकवा है, वर्ना झिल्ली अपनी हालत में है और माथे की खाल में खिचाव है तशन्नुज के चिन्ह फिर स्पस्ट दिखाई देंगे।

माली खोलिया

पुराने हकीम इसे "मैल नकली" कहते हैं, यह वह रोग है जिसमे मन के विचार प्रकृति के अनुसार नहीं रहते है, और वात प्रकृति वालोंको होता है। इसका कारण है, प्राकृतिक या अप्राकृतिक वादी जिससे दिमागी शक्ति ठीक तौर से अपना कार्य सचालन नहीं कर सकती इसके तीन भेद है।

माली खोलिया के ३ भेद

(१) पहिला भेद

सिर को छोड़कर सारी देह मे सदोष या निर्दोष वादी भर जाती है, कालेरे भापके परमाणु देह से दिमाग की तरफ चढ़कर इस रोग को पैदा करते है। इसमें शरीर दुबला और शक्तिहीन हो जाता है। नाड़ी चाल विषम हो जाती है, कभी कभी देह का रंग काला पड़ जाता है, पेशाब साफ और सफेद होता है। पकने पर पेशाब काला हो जाता है. बहकना, हसना, आंखो में लाली, रगो में भारीपन, देह और मुंहकी ललाई लिये हुये काला होना आदि चिन्ह होते हैं।

कफ के जलने पर जो वादी पैदा होती है, उसके अलग चिन्ह हैं, पित्त के जलने पर पैदा होने वाली वादी के अलग, और रुधिर जलने के अलग. उचकना, थकना, सुस्ती आदि कफ के जलने पर। अधिक तेजी, स्वभाव का बिगड़ना, बहकना, चिल्लाना आदि पित्त के जलने पर, इसी तरह और भी चिन्ह होते हैं। दोषो के भेद से उन्माद का वर्णन आयुर्वेदीय व्याख्या में हो चुका है।

दूसरा भेद

इसमें मवाद सिर में ठहरता है. सारी देह में नही फैलता. इसलिये यह भयानक उन्माद है कभी कभी मवाद के अधिक होने पर उसका सम्बन्ध शरीर के किसी भाग से भी हो जाता है तत्व वेत्ताओ को यह रोग अधिक होता है, इसके ये चिन्ह हैं—

हरदम चिन्ता और विकारो में मग्न रहना, नाड़ी का सुस्त, छोटी और विषम होना पेशाब का पतला साफ होना, ये चिन्ह होते हैं। अधिक चिंता, जागना लहसन, प्याज आदि का अधिक खाना आदि कारणो से यह रोग होता है।

३—मालीखोलिया मिराकी

मिराक उस झिल्ली को कहते हैं, जो पेट को घेरती है और बाहर से ऊपर को खिचती है। वादी के तेज दोष आमाशय, मासारीका, तिल्ली और मिराक इन चारो स्थानो में से किसी एक स्थान में इकट्ठे होकर, अपनी भाफ के कणो को

दिमाग में फेंक कर इन रोग को पैदा करते हैं। इसके भी स्थानो के भेद से चार ही हैं—

मिराकी के चार भेद

पहिला भेद

बादी का दोष आमाशय मे इकट्ठा होता है, जिससे प्रायः उसका गहराई में ठडी सूजन पैदा होती है। दोष भी भाप के कणो को दिमाग में पहुँचा कर इस रोग को पैदा करते हैं।

दूसरा भेद

मासारीका में दोष इकट्ठा हो जाता है और गांठ पैदा करके इस रोग को पैदा करता है।

तीसरा भेद

तिल्ली में दोष इकट्ठा होकर सूजन या गांठ पैदा करके इस रोग को पैदा करता है।

चौथा भेद

मिराक में दोष इकट्ठा होकर भीतर की गर्मी से जल जाता है। फिर काले परमाणु दिमाग में चढ़कर उनकी रूह को काला कर देते है। जिससे भ्रम और सोच बढ़ जाता है। इसके चिन्ह ये हैं—

मिराकी मालीखोलिया के साधारण चिन्ह

खट्टी डकारो का आना या बादी के गाढ़ीहोने से डकारो का बन्द हो जाना खूब खाने पर भी देह में पुष्टाई न होना, आमाशय और मिराक में दर्द, जलन और खिचाव होना, छाती का धड़कना और रोग होना, लार बहुत बहना पेट में हलका अफारा होना, कन्धे के बीच में दर्द ये चिन्ह होते हैं। जब भाफ के परमाणु चढ़ते हैं तो गले और तालू में जलन होने लगती है, जिस स्थान से रोग होगा उस स्थान में भी बिकृति पाई जावेगी। जैसे अगर तिल्ली से रोग होता है तो तिल्ली भी फूल जाती है।

कुतरुब

इस नाम का एक कीड़ाहै, जो पानी परजल्दी जल्दी तैरता फिरता है, इसकी गति कभी इधर तो कभी उधर होती है। कभी गोता मारता है तो कभी तैरता है। इसी की तरह इस रोग वाले की दशा होती है।

रोगी को गुस्सा बहुत आताहै, वह एक जगह नहीं ठहरता, व्यर्थ घूमता रहता है। वह ख्याल करता है कि लोग मुझे मारना चाहते है इस लिये शून्य स्थानो में छिपता फिरता है। दिन में छिप जाता है और रात में निकल जाता है। सब की एक दशा नहीं रहती किसी को डर नहीं लगता है किसी को बहुत भय लगता, क्रोधित, चिन्ताग्रस्त, पीला रग, सूखी जीभ प्रकृति का खूब गर्म होना आदि चिन्ह होते हैं।

मानियां

इसमें रोगी शिशुओ की तरह फिरता रहता है जिस चीज को देखता है उसी को तोड़ फोड़ डालता है हमेशा आदमियो पर झपटना चाहता है, उसकी आंखो मे पशुपन झलकने लगता है।

दाउल कल्व

यह भी मानिया ही का एक भेद है। जले हुये पित्त या बादी की भाफ से यह रोग पैदा होता है, रोगी कभी गुस्सा करके हांफता है, तो कभी खुशा मद करके पैरो में लोट जाता है। रोगी अगर किसी को काट लेता है तो वह मर जाता है। जब बादी के जलने से यह रोग होता है तो रोगी चिंतायुक्त और चुप रहता है और जब बोलने लगता है तो सुनने वाला तेज हो जाता है। गुस्सा आता है तो बड़ी देर में ठडा होता है; देह दुबली और काली हो जाती है।

पित्त के जलने पर रोग होता तो रोगी को बेचैनी बहुत रहती है, जल्दी उसके भाव बदलते

हैं, कभी प्रेम का नाटक दिखलाता है तो कभी शैतानी का अभिनय करता है। इधर उधर घूमता फिरता है, रंज और सोच में रहता है इसमें ज्वर नहीं होता, यही दिमागी सूजन से इसका अंतर है

सुबारा

शुरू में रोगी जागता बहुत है, उसे नींद नहीं आती। बेचैनी घबराहट, सोते-सोते डर कर जगना, बकवाद करना, उत्तर ठीक न देना, आंखों में लाली और भारीपन मालूम होना, कभी कभी शरीर का कांपना, ये चिन्ह होते हैं। रोगी को मालूम होता है कि आंख में कुछ गिर गया है इस लिये वह आंख मलता है। पेशाब का सफेद और पतला होना और कभी कभी बन्द होने से पेडू पर हाथ मलता है।

व्यर्थ प्रलाप

प्रलाप यानी अटसट बकना ज्वर का खास उपद्रव है। हिकमत में इसे अलग ही रोग माना है। इसके ३ भेद माने हैं तीनो का ही आवश्यक वर्णन यहां कर दिया जाता है।

पहिला भेद

रोग का आरम्भिक स्थान यानी खास कारण दिमाग होता है, यह भी ६ भागो में विभक्त है।

(अ) दिमाग के बीच का पर्दा जो विचार का स्थान है प्रबल बादी से भर जाता है तो आदमी प्रलाप करने लगता है, इससे रोगी उदास और दुखी रहता है।

(आ) पित्त और बादी के उस जगह भरने से यह रोग हो जाता है जिससे रोगी की प्रकृति पशुओ जैसी हो जातीहै, हिम्मत भी वैसी ही हो जाती है।

(इ) रक्त वात के दिमागी पर्दे मे भरने से यह रोग हो जाताहै। प्रसन्नता, व्यर्थ हसना, ओठ का फूलना ये तीन चिन्ह होते है।

(ई) दिमाग में केवल पित्त की ही अधिकता हो जाने से आदमी व्यर्थ बकने लगता है बेचैनी, सर और गले का दर्द, उपरांत देह का पीला पड़ना तथा शारीरिक ताप का बढ़ना और पेचिश होते हैं।

(उ) बदबूदार तेज कफ से जब दिमाग भर जाता है तो बकना, सर में भारीपन और हाथ से भौंहो का ऊपर चढाना, ये चिन्ह होते हैं।

(ऊ) साधारण खुश्की और गर्मी के दिमाग मे आजाने से आदमी बकने लगता है।

दूसरा भेद

रोग के पैदा होने का खास स्थान दिमाग नहीं होता, किंतु आमाशय गर्भाशय आदि कोई स्थान होता है। फिर उस खास अंग में कष्ट होने या वहां से दिमाग में भाफ चढ़ने से आदमी बकने लगता है।

तीसरा भेद

सारी देह में भाप के परमाणु उठकर दिमागी की तरफ आते हैं और बुद्धि को बिगाड देते हैं, जिससे प्रलाप होने लगता हैं। ज्वर में ऐसा ही होता है।

काबूस

यह वह रोग है जिसमें सोते २ मालूम होने लगता है कि छाती के ऊपर कोई चढा हुआ है। फिर हिलने डुलने की भी हिम्मत नही रहती। श्वास रुकने लगता है और आदमी बोल भी नही सकता, अशिक्षित जनता समझ लेती है कि भूत प्रेतादि छाती पर चढ़ जाता है और वह दबा देता है। यह रोग बहुतो को होता है और पूछने पर बतलाते हैं कि आज रात में सोते हुये प्रेत मेरी छाती पर आ बैठा और मेरी बोली बन्द हो गई बलिहारी है अक्ल की।

काबूस के दो भेद

(१) पहिला भेद

भाफ के परमाणु जब ऊपर में चढ़ते हैं तो छाती पर बोझा सा मालूम होने लगता है, तो 'काबूस, रोग पैदा हो जाता है, मल के अनुसार यह भी ३ भागो में विभक्त है।

(अ) भाफ के परमाणुओ का मल यदि रुधिर होता है। इसके चिन्ह स्वरूप आंखो में लाली रहती, नींद अधिक आती है, और सोते समय लाल २ चीजें दिखाई देती हैं।

(आ) मल कफ होता है। इन्द्रियो का सुस्त होना, सुस्ती रहना, मुंह और नाक में पानी बहना और सोते समय हरी और सफेद चीजो का दिखाई देना, ये चिन्ह होने हैं।

(इ) भाफ के परमाणुओ का मल वादी होता है। सोच की अधिकता, अनिद्रा आंखों के भीतर घुसना और सोते समय अंधेरी तथा कालीचीजो का दिखाई देना ये चिन्ह होने हैं।

(२) दूसरा भेद

सोते समय दिमाग को अधिक सर्दी लगने से वह सिमिट जाता है, रूह के रास्ते बन्द हो जातेहैं और वह गाढ़ी हो जाती है। दोष रुक जाते हैं फिर, काबूस, हो जाता है। इसमें और चिन्ह नहीं होते, यह कभी २ सर्दी लगने से ही होता है।

सरसाम

सिर की सूजन

सर का अर्थ शिर और साम का अर्थ है सूजन इसलिये सरसाम का मतलब होता है सिर की सूजन अब उसका वर्णन भी यहा कर दिया जाता है। यह कई तरह की होती है, जिसका जिक्र अभी आगे आएगा। खोपड़ी के अन्दर 'सलिव' और 'लय्यन' नामके दो पर्देहैं, इन दोनो पर्दोमें अथवा एक में सूजन होना सरसाम होती है, जिससे विस्मृति प्रलाप आदि कई रोग होते हैं।

जब भेजा सूख जाताहै तो नाड़ी लम्बी चौड़ी और गहरी चलती है, लहरें मारती है, दोष अगर गर्म है तो गर्मी खूब रहती है, आंखो में भीतर की तरफ बोझा मालूम देता है। सूजन जब दिमागके सब हिस्सो में हो जाती है तो सब काम बिगड़ जाते हैं, रोगी की आशा ही कम हो जाती है, ४ दिन में ही मर जाता है' अगर ४ दिन कुशल से बीत गये तो फिर आराम भी हो जाता है। कुछ भागो की सूजन भी कम खतरनाक नहीं होती। खोपड़ी के भीतर की झिल्ली में अगर सूजन आ जाती है तो नाड़ी कठोर, आरी की तरह चलती है, खासकर खोपड़ी में दर्द होता है। भेजे में लगी हुई लय्यन झिल्ली अगर सूज जाती है तो नाड़ी कठोर और लहरदार चलती है। नर्म झिल्ली की सूजन तथा झिल्लियो की सूजन में सारे सर में दर्द होता है और रोगी कम जीताहै। दिमाग का अगला हिस्सा सूजता है तो आंखें खुली रहती हैं, बीमार आंखो के आगे अगुली हिलाता है, कहड़ो और दीवारो पर हाथ मलता है दिमाग के बीच अगर सूजन है तो, रोगी बेहोशी की जैसी बातें करता है। उसकी अनजान में ही पेजाब निकल जाता है। पिछले हिस्से में सूजन है तो कहा हुआ भी भूल जाता है।

(१) करानीतुस सरसाम (रक्तज)

यह खून की खराबी से होता हैं, इसमें रोगी व्यर्थ बकता रहता है। इसमें बुखार सूक्ष्म आता है सर में बोझ और घनघनाहट मालूम होती है, आंखो तथा मुह पर लाली रहती है, जीभ में खुरदुरापन हो, नाडी बढी हो, हंस २ कर रोगी बहकी हुई बातें करता है। आंखो में आंसुओ का गिरना बुरा समझा जाता है, खासकर एक आंख से।

(२) खालिस कशनीतूस (पित्तज)

यह केवल पित्त की खराबी से होता है, इसमें ज्वर बहुत गर्म, सिर का हलकापन, नींद का न आना, नथुनो और आंखो में खुश्की, मुंह और जीभ पर पीलापन, बहकी २ बाते, गुस्सा, गाली-गलौज, बुद्धि का बिगड़ना, घबराहट ये सब चिन्ह होते हैं।

(३) सौदा वाली सरसाम

इसमें बहकना, गिड़गिड़ाना, रोना, डरना, जगना, दिमाग, तालु और जीभ का खुश्क होना, दमका घुटना, बुद्धि का बिगड़ना, आंखो का खुला रहना ये चिन्ह रहते हैं। सर में थोड़ी पीड़ा रहती है, थोड़े बुखार की हरारत रहती है, नाड़ी कड़ी और विरुद्ध चलती है, रोगी की दशा बदलती है।

(४) लीसुरगुस- कफ की सूजन

कफ से होने वाली सरसाम का यह चौथा भेद है। इसमें दोष दिमाग के रास्तो से घुस जाता है, कभी भेजे में घुस बैठता है, इसमें हल्का बुखार रहता है. ज्ञानेन्द्रियो में भारीपन, जीभ में सफेदी, जंभाइयों का अधिक आना, बुद्धि में अंतर पड़ना, पल २ में सोना और जागना ये चिन्ह होते हैं। बात करने में कठिनता होती है, पलकों के खोलने मीचने में कष्ट होता है।

५-सकाकलूस सरसाम

गर्म सूजन से होने वाला, यह पांचवां भेद है। यह गाढ़े खून की खराबी से दिमाग की पोल में होता है। तीन दिन तक यह असाध्य होता है, बाद में कुछ आशा हो सकती है। इसकी पहिली हालत को 'गान गराया' कहते हैं। इसके चिन्ह खून के सरसाम से मिलते हैं, अंतर इतना ही है कि इसमें कष्ट बहुत होता है। सकाकलूस के मानी हैं शरीरके अवयवो का निर्जीव होना और इन्द्रियो की शक्ति का अन्यथा होना। यह दूसरे अवयवों में भी होता है।

६-जुमरा सरसाम

इसमें सर में आग सी जलती है। बेचैनी, मुंह की चमड़ी का ठंडा होना, पीला पड़ना, दिमाग में दाद और खुजली का होना, ये चिन्ह होते हैं। अक्सर यह रोग बच्चों को होता है, इसमें आंखें भीतर धस जाती हैं, तालु बैठ जाता है, आंखे छोटी हो जाती हैं और सुखी दिखलाई पड़ती है।

७-फलगमनी सरसाम

अक्सर यह खून के बिगड़ने से होती है। ऐसा भी होता है कि इस सूजन की अधिकता से सरकी दरारें खुलकर बिखर जाती है और झिल्ली खिंच जाती है। इसमें मुंह और आंखें बहुत लाल हो जाती है. ऐसा दर्द होता है, जैसे सर चीरा जा रहा हो, जी मचलने लगता, कभी गरदन के आस पास बांयटे भी आने लगते हैं।

८--सरसाम हकीकी

इसमें भेजे पर, पर्दों पर सूजन पैदा हो जाती है।

९--सरसाम गैर हकीकी

इसमें सूजन तो नहीं होती है, वैसे चिन्ह हो जाते हैं।

माशरा [पित्तरक्त की सूजन]

यह पित्त और खून से पैदा होनेवाली द्वन्द्वज सूजन है। जिस समय सर के बाहरी भागो में नाक और आंखो के पास वह सूजन होती है तो इसे 'मासरा' कहते है। दिमाग के भीतरी हिस्सो में कभी यह सूजन पहुंच जाती है और कभी भुजाओं के नीचे तक उतर आती है सूजन के ज्यादा खिंचने से कभी सर फट भी जाता हैं।

सद्र [अन्धेरी आना]

जब दिमागी रूह दिमाग के अन्दर उसकी रगो में नहीं जा सकती है, तब दिमाग ठंडा और सुन्न हो जाता है, इसके दो कारण हैं और कारणों के अनुसार ही २ भेद भी हैं।

सद्र के दो भेद

१—सदरे खदरी

पहिले कारण से यानी जब ठंडा दोष गाढ़ा होकर दिमाग की रूह के रास्ते में रुकावट डाल-देता है, तो सदरे खदरी नामक रोग पैदा होता है। इसमें दिमाग ठंडा पड़ जाता है जिससे उसके कार्यों में वाधा पहुंचती है आंखो के आगे अंधेरी आने लगत है।

२—सदरे मूलम

उन स्थानों में सुद्दा पड़ जाने से सदरे मूलम नामक रोग पैदा होता है सुद्दा पड़ता है चोट आदि लगने से और यह दो प्रकार का है।

१—इसमें दिमाग कष्ट और रंज के डर से चंचल हो जाता है, अपने आप सुकड़ जाता है।

२—तबियत रंज दूर करने के लिये दिमाग की तरफ अपने दोषो को फेंक देता है, जिससे अधेरो आने लगती है, इसमें चाहे सूजन हो चाहे न हो। सदरे मूलम के मानी हैं, दर्द पहुँचाने वाला।

दुआर (सर का घूमना)

दिमाग के कोनो के रास्तो में रगो में और दिल की रगो में घूमने वाली रूह अगर कारणवश हिल जाती है चक्कर खाकर लहरें मारने लगती है और साथ ही रहने वाली रूह भी घूमने लगती है, तो सर घूमने लगता है, रोगी को सारा संसार घूमता हुआ दिखाई देता है। इसके पांच कारणहै।

सर घूमने के ५ कारण

१—ठंडे गर्म व पतले दोष दिमाग की रगों पर्दों में आ जाय।

२—कारणवश दोष अपनी जगह ठहर जाय और उसकी भाफ के कण दिमाग में पहुँच जांय।

३—रिआह गाढ़ी हो जाय, अथवा दिमाग की रगो या पर्दो में इकट्ठी होकर ठहर जाय, फिर रूह और रीह दोनो झगड़ कर घूमें।

४—गाढ़े दोष दिमाग के पास घूमने वाली रगो में आकर ठहर जाय जिससे रूह का कारण वन्द हो जाय और वह चक्कर खाये।

५—दोष वा रिआह दिमाग में न ठहरकर गर्भाशय में ठहर जावे फिर इनकी भाप के कण दिमाग की तरफ चढ़ें। माद्दे के ठहरने के हिसाव से दुआर दो प्रकार का है।

सर घूमने के दो भेद

(१) पहिला भेद–इसमें सर घूमने का माद्दा खास दिमाग में ही होता है। यह भी ६ तरह का है।

पहिले भेद के ६ भेद—

(अ) इसके अंदर मल कफ होता है। सर दर्द कफ के चिन्ह होते हैं, सर घूमताहै किंतु गर्मी पहुँचाने से रुक जाता है।

(आ) तीनो दोषों की तिरछट से होने वाला यह दूसरा भेद है। वादी के सर दर्द के चिन्ह होते हैं विशेषता शोच की अधिकता, मौन, नाड़ी की कठोरता और कमजोरी।

(इ) इसमें दोष खून होता है। कफ और वादी के दुआर की अपेक्षा इसमें सर का घूमना, जल्द ही बन्द हो जाता है, बाकी चिन्ह खून के सर दर्द से मिलते हैं।

(ई) पित्त इसमें दोष होता है, सरका घूमना

थोड़ी देर रहता है, और ठंडी चीजों से आराम मिलता है, पित्त के सर दर्द के चिन्ह होते हैं।

(उ) भोजन की भाफ के गाढ़े कणों से जिन्हें (रिआह) कहते हैं, सर घूमने लगता है।

(ऊ) रीह के गर्म होने से होता है। गर्म दोषों से होने वाले चिन्हों से इसके चिन्ह मिलते हैं। विशेष छींके आती हैं, नाक खुश्क रहती है, दुआर के समय सर पर थोड़ा पसीना आता है। यह दुआर रहता है यद्यपि थोड़ी देर, किंतु इतनी जोर से होताहै कि रोगी पछाड खाकर गिर पड़ता है।

दूसरा भेद

इस दुआर का माद्दा आमाशय, गर्भाशय, मसाना, गर्दन, पेट की झिल्ली आदि स्थानोंमें होता है। यह भी चार तरह का होता।

दूसरे भेद के चार भेद

(१) मल आमाशय में रहता है, यह भी चार तरह का होता है।

(अ) ठंडे दोष आमाशय में इकट्ठे होकर जब दुआर पैदा करते हैं तो दर्द आगे से लेकर तालू तक पहुँच जाता है।

(आ) आमाशय में ठंडी रिआह, ठंडे दोषों से पैदा हो। दुआर के समय इसमें जी मिचलाता है।

(इ) पित्त के गर्म दोष इकट्ठे हो जाएँ। इसमें खाली पेट सर घूमने लगता है।

(ई) रिआह गर्म दोषों से पैदा हो, इसमें आमशय में चुभन होती है, और ढुंडी में दर्द होता है।

(२) कनपटी के ऊपर की रगों में—कान के पीछे वाले रोगों में या नींद लाने वाली रगों में माद्दा इकट्ठा हो जाय और ऊपर चढ़कर दुआर पैदा करे। इसमें यह रगें खिंच जाती है, फूल जाती हैं, फड़कती हैं और हाथ से छूने या विचलक दवा लगाने से दुआर ठहर जाता है। यही माद्दा अगर जिगर तिल्ली आदि स्थानों में होता है तो इन चिन्हों के अलावा उन २ स्थानों में वेदना और करता है।

(३) माद्दा दोनों शहरगों में आकर दुआर पैदा करता है। इसमें पहिले गर्दन की रगें खिचती फूलती हैं फिर दुआर हो जाता है।

(४) माद्दा गर्भाशय, मसाने, पेट झिल्लियों आदि में इकट्ठा होकर दुआर पैदा करता है। मासिकधर्म के रुक जाने से बड़ी जोर से दुआर होता है, पहिले उन २ स्थानों में दर्द होकर फिर दुआर पैदा होता है। ऐसा मालूम होता है मानों उन स्थानों में कोई चीज हिलकर ऊपर चढ़ती है।

अति निद्रा

गहरी नींद को हिकमत में सुबात कहते हैं, इतनी लम्बी नींद आती है कि आदमी सोता सोता नहीं थकता है, बड़ी कठिनता से जागता है। इसके १० कारण हैं।

और उन कारणों के अनुसार ही इस

अति निद्रा के १० भेद हैं

पहिला भेद

ठंडी दुष्ट सादा प्रकृति का अधिक पैदा होना ही इसका कारण है। नाड़ी इसमें कठोर और मुतफावम रहती है। ठंडी चीजें खाना, नशीली वस्तुओं का सेवन करना, तथा सर्दी का सर में पहुँचना भी इसके कारण को पैदा करते हैं, इसमें चेहरे और सरीर पर हरियाली आती है, नींद बहुत आती है।

२—दूसरा भेद

दिमाग के अगले हिस्से में कच्ची रतूबत के इकट्ठी हो जाने से अति निद्रा रोग पैदा होता है। इसमें सर के अगले भाग तथा पलकों में बोझ

मालूम देता है, आंखों के फेरने से भारीपन रहता है, जीभ चिपकदार रतूबत से लिपी रहती है कभी नथुनो से गाढ़ा पानी भी आने लगता है।

३— तीसरा भेद

तर और निकम्मे भाफ के परमाणु उठकर अगर दिमाग की तरफ जाय तो यह रोग पैदा होता है, ऐसा कफ ज्वर में ही होता है, जिससे उस समय रोगी को नीद वहुत आती है।

४—चौथा भेद

दोनों कनपटियो पर चोट लगने से दिमाग में ज्ञान पहूँचने वाले पट्ठे के कट जाने से भी सुवात पैदा होता है, यह चौथा सुबात है।

५—पांचवां भेद

धमक या चोट से खोपड़ी टूट कर दिमाग के दब जाने से, मिच जाने से पांचवां सुवात पैदा होता है।

६—छटां भेद

भाफ के कण अगर आमाशय से दिमाग की तरफ जाते हैं तो गहरी नींद पैदा होती है, मस्ती की नीद तथा अजीर्ण की नींद इसके उदाहरण है। इसमें सर घूमता है, आंखोके सामने अधेरा आता है, कानो में भनभन होती है, आंखो के सामने फुनगे और मच्छर से उड़ते दिखाई पड़ते है, और भरे पेट नीद अधिक आती है।

७—सातवां भेद

फेफड़े या सीने से भाप के परमाणु उठकर सुबात पैदा करते है, इसमें फेफड़े और सूजन के चिन्ह भी पाये जाते हैं, श्वांस की तंगी, बुखार खांसी, नाड़ी की तेजी ये चिन्ह होते है।

८—आठवां भेद

आंतो में कीड़े पैदा होने से पुरुषो का वीर्य और स्त्रियोका आर्तव बंद हो जाताहै। फिर आंतो से और गर्भाशय से भाफ के परमाणु दिमाग की तरफ चढ़के गहरी नींद पैदा करते हैं। इसमें जहां से भाफ उठती है। वहां दर्द होता है। कभी बिना भाफ के परमाणुओं के चढ़े भी अङ्गोके सांयोगिक कष्टसे सुबात पैदा हो जाता है।

९—नवां भेद

देह में खून के विषम हो जाने से गहरी नीद पैदा होती है। हरदम आंखो में निद्रा का नशा रहता है। सोते २ पेट नहीं भरता और आंखो में सुर्खी दिखलाई पड़ती है।

१०—दशवां भेद

चिन्ता, श्रम, या कठिन क्रिया के कारण, या ज्यादा मल के निकलने के कारण जब रूह का जौहर निकल जाता है, तो वह सारे देह में फैलने में असमर्थ हो जाती है। फिर देह आराम पाने की इच्छा करती है जिससे गहरी नींद आती है। यहां तक होता है कि दिमागी रूह अपना काम करने में असमर्थ होकर दिल की रूह से सहायता लेती है।

अतिनिद्रागशी और सक्ते का अन्तर

वेहोशी वालो की नाड़ी निर्वल तथा गहरी नींद वाली की अपेक्षा कठोर हो जाती है, किन्तु गहरी नीद वालो की नाड़ी कभी २ वलवाली और आरोग्य पुरुषो की तरह चलती है, वेहोशी में चेहरे का रग पीलापन लिये हुये होता है। किन्तु गहरी नीद वालो के चेहरे पर कभी कभी हो हरियाली आती है।

गहरी नींद वालो की ज्ञानेन्द्रियां यद्यपि मंद जरूर हो जाती है किन्तु रहती कुछ दुरस्त है और जग जाता है, चाहे कुछ कठिनता से ही किन्तु सक्ते वाले की दशा तो एक दम मुर्दों की जैसी हो जाती है. हिलाने डुलाने पर भी होश में नही आता।

अनिद्रा

देर में नींद आना

अनिद्रा से मतलब यहाँ देर में नींद आने से है, एक दम नीद न आने से नहीं। बहुत से आदमियो को रात के १-२ बजे तक नींद नहीं आती वह यह अनिद्रा रोग ही है। यह आठ कारणो से होता है, और कारणों के अनुसार। इसके—

अनिद्रा के आठ भेद

१— पहिला भेद

(सूएमिजाजयाबिस) यानी सादा खराब प्रकृति दिमाग में पैदा होकर उसको सुला देती है। जिससे सर तथा इन्द्रिया हलकी मालूम होती हैं। आंख, जीभ, नाक, ये सूख जाते हैं। सर छूने में गर्म मालूम होता है, और माथे में जितनी खुश्की होगी नीद भी उतनी ही देर में आयेगी।

२—दूसरा भेद

सूएमिजाज हार याबिष यानी सादी, खराब खुश्क प्रकृति दिमाग में पैदा होकर इस रोग को पैदा करती है। इसमें दिमाग खुश्क और हलका होता है, सर में जलन, और प्यास की अधिकता होती है।

३—तीसरा भेद

सूये मिजाज याबिस सौदावी–वादी की खराब खुश्क प्रकृति इसे पैदा करती है।

४—चौथा भेद

सूए मिजाज हारयाबिस सफरावी—पित्त की खराब खुश्क प्रकृति दिमाग में पैदा होकर इसको पैदा करती है।

५—पांचवां भेद

खारी रतूबत दिमाग में आ जाती है। यह वह रतूबत है। जिसके अंदर बिना पकाये ही गर्मी अप्राकृतिक गुण भर देती है और जिसमें जल जाने राख हो जाने तथा सड़जाने की दशा पैदा हो जाती है। इसमें नथनों में तरी और रतूवत मालूम होती है आंखो में चीपड़ तथा मैल भर जाता है। सर में थोड़ा बोझ मालूम होता है। बीमार नींद से जल्द भड़भड़ा के जगना है।

६—छटां भेद

बुखार, अजीर्ण, शोक, आदि कारणों से होने वाली यह छटी अनिद्रा है।

७—सातवां भेद

सौदावी, सूजन, तथा वैसा ही दिमाग के आस पास में कोई रोग हो जिससे यह पैदा होती है।

८—आठवां भेद

रिहाई पैदा करने वाली तथा वादी की चीजें खाने के परिमाणु दिमाग की तरफ जाय जिसमें खराब स्वप्न दीखे और नीद में डर लगे जिससे नीद नहीं आवे।

सुबाते सहरी— सहरे सुबाते

सोना और जगना मनुष्य के लिये नियमित है, रात में ६-७ घंटा सो लेना आवश्यक है और दिन में काम करना आवश्यक है किन्तु बहुत से आदमी दिनमें भी सोते रहते हैं, और बहुतसे दिन में तो क्या रात में भी नही सोते यह भी रोग ही है इसे सुबाते सहरी और सहरे सुबाती कहते हैं। और ज्यादा जगने को सहरे सुबाती कहते हैं। दोनो ही यह कफ़ तथा पित्त से पैदा होते हैं। किन्तु जहां कफ विशेष होता है वहां नींद अधिक आती है। और जहां पित्त अधिक होगा वहां जागना अधिक होता है।

सुबाते सहरी—का चिन्ह यह है। कि कभी नींद बेशी आती है तो कभी जागना बेशी होता है किन्तु नीद का समय जगने से अधिक होता है।

बलगमी सरसाम के सब चिन्ह होते हैं बोझ और थकावट मालूम होती है।

सहरे सुबाती—में कभी जगना अधिक और कभी सोना अधिक किंतु जगने का समय सोने के समय से अधिक होता है। खुश्क प्रकृति वालो को एक और दशा से सामना करना पड़ता है।जो देह में कोई ऐसा निकम्मा दोष होता है। जो जगने पर भी चुपचाप रहता है। किंतु सोते ही विगड़ उठता है जिससे आदमी सोने नही पाता।

असाध्य चिन्ह

इन दोनो रोगो में हीं जो रोगी चित पड़ा रहता है खाना पीना भूल जाता है पानी पीने के समय, सास ऐसा उलटकर आता है कि थोड़ा सा पानी फेफड़े से मुंह में आजाता है। खांसी उठती है और वचा हुआ पानी नाक के रास्ते निकल जाता है, कभी पेशाब और दस्त वन्द हो जाते है सांस तंगी से आता है ऐसी हालत में विरला ही बचता है।

इस्तिना कुलरहम और इसका अन्तर

इस्तिनाकुलरहम कहते हैं गर्भाशय के खिचने की दशा को, जिसमें भी ऐसे ही चिन्ह होते हैं किंतु भेद इतना है कि सुवाते सहरी में चौकने और झकने पर रोगी बात कर सकता हैं मुंह का रग दोष के अनुसार बदल जाता है किन्तु उसमें प्राकृतिक दशा वैसी ही रहती है उसमें कोई अन्तर नही आता।

सुबाते शहरी--और सरसाम का अन्तर

पित्तज सरसाम यह इस लिये नही है कि इसमें कफ का भी हिस्सा रहता है, तथा कफ का सरसाम यह इस लिये नही कि इसमें पित्त का हिस्सा रहता है।

नोट—कभी दोनों दोप बराबर होते है और सोना जागना भी बराबर होता है।

जमूद सन्यास

इसे हम सन्यास रोग कह सकते हैं, ठीक वही हालत इस रोग में होती है। चलना, फिरना कहना आदि क्रियाए इसमें एक साथ जाती रहती हैं, चल कर आदमी गिर पड़ता है वैठा वैठा वेहोश हो के पछाड़ खा जाता है, यह वड़ा पाजी रोग है। इसका माद्दा बादी का मल है, जो दिमाग के पहिले पर्दे में बन्द रहता है, फिर संयोग के कारण दिमाग के हर एक हिस्से में कष्ट पहुँचाता है। इसका चिन्ह यही हैं कि रोगी मुर्दे की तरह गिर पड़ता है, सांस चलना भी बन्द होजाता है।

जमूद और अति निद्रा का भेद

सुबात में आदमी मुर्दे की तरह नहीं पड़ता और न सांस चलना ही वन्द होता है। सुबात में नाड़ी नर्म होती है, किन्तु जमूद में सुस्त और कड़ी इसी तरह गहरी नीद में आंखें बन्द रहती है, किन्तु इसमें खुली ही रह जाती हैं।

जमूद और सक्ते का भेद

सक्ते वाला सीधा सो सकता है, उसके गले में दवा आदि जा सकती है, किन्तु जमूद में ऐसा नहीं होता, वैसे दोनो की दशा प्रायः एक सी ही होती है।

जमूद और सरसाम का भेद

ठंडे सरसाम में बुखार अवश्य होता है किंतु जमूद में बिल्कुल नही।

निसियान (अज्ञानता)

हकीमी पुस्तको में नसियान का अर्थ किया है, भूलना, किन्तु इससे इसका स्पष्टी करण नहीं हो सकता। (जो पाठक गण आगे देखेंगे) इस लिये हमने अज्ञानता लिखा है। स्मरण शक्ति तथा विचार शक्ति में उपद्रव हो जाने को नसियान

अज्ञानता के तीन भेद

जिनका उल्लेख यहां किया जाता रहा है।

१—जिक्र-विस्मृति

इसमें बाह्येन्द्रियां सुनना, देखना आदि सब ठीक रहते हैं किंतु हालत ऐसी हो जाती है कि देखी सुनी बात याद नही रहती। इसके भी—

बिस्मृति के दो भेद है

१—स्मरण शक्ति का नष्ट होना।

२—केवल स्मरण में हानि पहुँचना।

पहिला भेद

स्मरण शक्ति के केन्द्रस्थान पर, जो दिमाग के पिछले भाग पर है, अगर सर्दी या तरी अधिक पहुँच जाती है तो उस पर धक्का पहुँचता है, जिससे स्मरणशक्ति कम हो जाती है। इसमे नींद बहुत आती है, सर में खासकर पहिले हिस्से मे बोझ सा रहता है और हमेशा दिमाग से मल वहता रहता है।

दूसरा भेद

दिमाग के पिछले हिस्से में यानी स्मरणशक्ति के केन्द्र में सर्दी खुश्की इतनी अधिकता से इकट्ठी हो जाय कि जिससे वह मोम की तरह कडी हो जाय और उसमें कोई वात नही ठहर सके। इसमें नींद आती नही, दिमाग के पिछले हिस्से में खुश्की रहती है। रोगी कठिनता से और रुक रुक कर बोलता है गला घुटा सा रहता है, सर पीछे को खिचता सा है। ये दूसरा भेद है—

चिन्ता के उपद्रव

चिन्ता—किसी विषय का चिन्तन करना सब के लिये आवश्यक है। व्यर्थ का फलाफल देखना भी उसकी चिन्ता ही है, सीमा के भीतर चिता हो है, सीमा के भीतर चिंता करना सबको लाजिमी है। विचारशक्ति का अनुमान शक्ति, बोध शक्ति आदि के नष्ट हो जाने में यहां अचिंता शब्द का उपयोग किया गयाहै। यह पिता है वह माता है, इतना भी ज्ञान इनमें नही रहता, विचार शक्ति इन वातो पर ध्यान ही नहीं देती। इसके—

चार भेद

पहिला भेद

दिमाग के वीच वाले पर्देमें जो बुद्धि कास्थान है, तरी और सर्दी के अधिक बढ़ जाने से विचार शक्ति ठडी, निकम्मी और विचार हीन हो जाती है कारण कि कमीवेशी के अनुसार ही यह घटती बढ़ती है। यह एक भेद है—

दूसरा भेद

सर्दी, खुश्की के साथ मिलकर पर्दे के बीच में बढ़कर उपद्रव पैदा करती है, यह दूसरा भेद है।

तीसरा भेद

साधारण सर्दी ही बढ़कर पर्दे में खराबी पैदा करती है, वह बढ़ती भी पर्दे ही में है। यह तीसरा भेद है।

चौथा भेद

गर्मी दिमाग में वढ़कर बिचारशक्ति में उपद्रव कर देती है, जिससे मस्तिष्क के कार्य में खलबली और अन्तर पड़ जाता है।

फसदि तखय्युल

यह दो प्रकार का है

१—बिचार के कामो मे निर्बलता और कमी आना।

२—विचार का सर्वथा मिथ्या हो जाना।

सर का जकड़ जाना

जब बिगडी हुई बादी खून में घुसकर गरदन की नसो को क्षुब्ध कर देतीहै तो सर जकड़ जाता है। गरदन की नसें दर्द करती है, रूखी हो जाती है और काली हो जाती है।

सर में गांठें पड़ना (शिरोर्बुद)

गर्मी होने के बाद गुद्दा में गाठें पड़ जाया करती हैं जो छोटी भी होती हैं और बड़ी भी। बिना गर्मी के भी विकारी पदार्थ के सर में इकट्ठे हो जाने से रसौली हो जाती है। वह कभी २ ठीक ललाट के ऊपर होती है, यह बहुत कम पकती है। आपरेशन से भी यह बड़ी मुश्किल से निकलती है।

सर का फोड़ा

सर में मवाद भरने से किसी भी जगह फोड़ा हो जाता है। जब यह हड्डी तक जा पहुँचता है तो बड़ा खतरनाक हो जाता है।

सर का बड़ा हो जाना

सर दो कारणों से बड़ा होता है।

१—तरी और गाढ़ी बादी जब खोपड़ी के नीचे इकट्ठी हो जाती है तो सिर की दरारों के मिलने का स्थान खंड २ हो जाता है, जिससे कोई सा हिस्सा बड़ा हो जाता है।

२—सिर की खाल और पर्दे के बीच में जब तरी इकट्ठी हो जाती है तो वह स्थान सूजा हुआ दिखाई पड़ता है। दर्द आदि कुछ नहीं होता।

सर की खाल का सिमटना

जब सर में खुश्की अधिक हो जाती है तो खाल खिंचने लगती है और जिस जगह खाल खिंचती है वहां नाली सी पड जाती है। जब दिमाग के अगले हिस्से में पतला दोष भर जाता है तो खुजली भी चलने लगती है और चमड़ी पर कुछ लाली भी दिखाई देती है। प्रायः ऐसा जाड़े के दिनों में होता है।

सर की फुन्सियां

केशो के नीचे मैल जमने से दोषो के बिगड़ने से सर में छोटी २ फुन्सियां हो जाती हैं वे फूट जाती हैं और उन पर पपड़ियां जम जाती हैं।

केशों के रोग

केशो का सौंदर्य सभी चाहते है। हर एक अपने केश को स्वच्छ मुलायम और सुन्दर रखना चाहता है। स्त्रियों के सौंदर्य के लिये तो केश खास रूप से साधन हैं, आजकल नौजवान भी स्त्रियो की तरह मांग निकालने लगे हैं, उनको भी केशो की बड़ी हिफाजत करनी पड़ती हैं। केश जितने अच्छे बंगाल में होते हैं, उतने अन्यत्र नहीं, बंगाली स्त्रियां प्रति दिन केशोको साफ करती हैं। धोती हैं और उनमें तेल लगाती हैं, जभी इनके केश काबिले तारीफ हैं। मारवाड़ की स्त्रियां रोज तो क्या महीने में भी केशो को साफ नहीं करतीं हैं, एक बार केश बांध लिये तो महीनो बाद वे खोले जाते हैं और न प्रति दिन उन पर पानी ही गिरता है।

केशों की फुन्सियां

सर में जूं पडने से केशो को साफ नहीं रखने से कफ और खून के बिगडने पर केशो के नीचे गीली २ फुन्सियां हो जाती हैं, वे बालो में चिपट जाती हैं।

केशों का सफेद होना

बुढापे में अगर केश सफेद होने हैं तो कोई बात नहीं, किंतु आज कल के नौजवानो के केश भरी जवानी में ही सफेद हो जाते हैं। हर दम क्रोध, चिन्ता करने, ज्यादा मेहनत करने, आदि कारणों से देह की गर्मी और पित्त सर में पहुँच कर केशों को सफेद कर देते हैं। कभी थोड़े केश सफेद होते हैं, कभी सब के सब।

केशों की खुजली

मैल रहने—कफ और बादी के बिगड़ने पर

सर में आ जाने से केशों की जड़ में खुजली चलती है, खुश्की आ जाती है, चमड़ी शुष्क पड़ जाती है, कड़ी हो जाती है और थोड़े केश भी कभी २ गिरने लगते हैं।

केशों का गिरना

केशो की जड में रहने वाला पित्त जब वादी के साथ बिगड़ता है तो केश गिरने-लगते हैं, फिर कफ और खून से रोम छिद्र रुक जाते हैं, जिससे बाद में केश नहीं आते।

खालित्य

इससे केश बहुत धीरे २ गिरते हैं और दूसरे चिन्ह भी हो जाते हैं। इसकी ४ दशायें है।

१—वादी के बढ़ने पर केश गिरते हैं तो केशो में जलन होती है।

२—पित्त के बढ़ने पर केश गिरते हैं तो उस जगह हरे २ चट्टे पड़ जाते हैं, पसीना खूब स्थान आता है।

३—कफ के बढ़ने पर केश गिरते हैं तो उस चमड़ी मोटी हो जाती है, नरमाई नहीं रहती।

तीनो ही दोष बढ़ते हैं तो चमड़ी बड़ी कड़ी और मोटी हो जाती है। शेष चकत्ते होते ही हैं।

कर्ण रोग

कर्ण क्या है ?

कर्ण को श्रवणेन्द्रिय कहते है, इस लिये कि उसके द्वारा हमको सुनाई पड़ता है। बोल चाल की भाषा में कर्ण को कान कहते हैं। साधारण रूह से इसको तीन भागो में विभाजित किया जाता है।

[१] वहिः कर्ण।

[२] मध्य कर्ण।

[३] अन्तर कर्ण।

अब प्रत्येक भाग का विश्लेषणात्मक विवेचन भी देखिये।

वहिः कर्ण

यह भी २ भागो में विभाजित है।

[१] कर्णशष्कुली।

[२] कर्णाञ्जलि।

१-कर्णशष्कुली—इसका आकार शीशी जैसा होता है इसमें कई उभार और कई दवाव होते हैं, इसका नीचे वाला भाग मोटा और नाजुक होता है तथा उसे कर्णपाली कहते है, Lodule of ear या लौर कहते हैं। कर्णशष्कुली के बीच में एक गढ़ा होता है जिसकी तली से कर्णाञ्जली का प्रारम्भ होता है। इस गढ़े का नाम कर्ण-कुहर है।

२-कर्णाञ्जली—यह नली कोई १ इञ्च लम्बी होती है, नली के वाहरी भाग की दीवार कारटी-लेज से बनती है शेष भाग अस्थिकृत है, समस्त नली में त्वचा लगी रहती है, जिसमें बहुत सी फुन्सियां होती हैं, इन फुन्सियो में ही मैल तयार होता है। मैल कभी २ अधिक तादाद में और पतला बनकर नली में इकट्ठा होकर पानी लगने फूल जाता है जिससे कान में पीड़ा होने लगती है यही पर कर्ण पटल के विषय में भी कुछ लिख देना आवश्यक है।

कर्णपटल

सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखने पर कर्णाञ्जली के अन्तिम भाग में धूसर श्वेत चमकदार पर्दा लगा हुआ दिखाई देता है, इसे ही कर्णपटल या कान का ढोल कहते हैं। कर्णपटल कर्णवहिः और मध्य कर्ण को पृथक् करने वाला स्थान है, यह तिर्छा होता है। कर्णाञ्जली की छत तथा पर्दे के ऊपरी किनारे के एक दूसरे के मिलने के स्थान पर १४० बृहत् कोण बनता है, और जहां पर्दे का निचला किनारा कर्णाञ्जली के फर्श से मिलता है, वहा का लघु कोण बनता है, कर्णपटल के मध्यभाग में भी

एक गढ़ा होता है, जिसे पटल नाभि कहते हैं, वह भाग मध्यकर्ण की ओर दबा हुआ है। पटल के अगले और नीचे के हिस्से में एक तिकोना चमकीला स्थान हैं, उसे प्रकाशशंकु Cone of eight कहते हैं।

मध्यकर्ण

यह शंखास्थि के भीतर रहने वाली छोटी सी कोठरी है। इसकी चौड़ाई $\frac{1}{4}$ इञ्च और लम्बाई $\frac{15}{24}$ इञ्च के लगभग होती है, इसकी बाहरी दीवाल कर्ण पटल से बनती है और भीतरी दीवाल का सम्बन्ध अन्तःकर्ण से है। वहां दो छिद्र हैं जिनमें एक गोल और एक आम्राकारहै, शेषदीवारेंछतफर्श शङ्खास्थि से बनते है। इसके सामने की दीवार में एक नलीका मुंह होता है, इस नली के द्वारा मध्य कर्ण का सम्बन्ध कण्ठ से रहता है, इसीलिये मुंह और नाक से सांस को रोककर फिर निकालने की कोशिश करने पर कानोमें कुछ भरता हुआ सा मालूम देता है, इस नली को कण्ठ कर्णी नली कहते हैं।

मध्यकर्ण की अस्थियां

यहां तीन छोटी २ हड्डियां मिलती हैं। जो आपस में बंधी रहतीहै, इसके बीच में चलसंधियां भी होती हैं। मुद्गरास्थि, शर्मिकास्थि और रकावास्थि ये हड्डियां हैं।

इसके मोटे भाग को शिर कहते हैं। और शिर के नीचे के चिपे हुये भाग को ग्रीवा ग्रीवा के नीचे उपवर्द्धन होते हैं जिनमें से एक का नाम है मुद्गर दण्ड जो कर्ण पटल लगा रहता है, मुद्गर दण्ड से एक पतली पेशी लगी रहती है। जिसके सकोच से कर्ण पटल तन जाता है, इस पेशी को पटलोत्तेजनी पेशी कहते हैं। शेष दो प्रवर्धन छोटे२ होते हैं, जिनमें एक को अग्रप्रवर्द्धन और दूसरेको पार्श्व प्रवर्धन कहते हैं।

शर्मिकास्थि—

इसकी सूरत अग्रचर्वण दन्त से भी मिलती हैं, इसमें एक मोटा भाग होता है जिसमें प्रवर्धन होते हैं, मोटे भाग को गात्र कहते हैं और दो प्रवर्द्धनो में एक छोटा होता है, दूसरा बड़ा। गात्र के ऊपर एक स्थापक होता है जहां पर मुद्गर का शिर उससे मिलता रहता है।

रकावास्थि—

लोहे की रकाव की तरह इसमें एक महराव होतीहै जो चौड़े भाग से जुड़ी रहती है यह चौड़ा भाग लोहे की रकाव के उस भाग जैसा है जिस पर पैर टिकता है, और यह अन्तः कर्ण से एक छिद्र में फंसा रहता है, जहां महराव के दोनो सिरे आपस में मिलते हैं वहां एक छोटा सा उभार होता है इसको सिरे कहते हैं शिर का एक स्थापक होता है, जिसमें शर्मिकास्थि का बड़ा प्रवर्धन मिला रहता है। शिरे के नीचे का भाग कर्णान्तरा नामक पतली पेशी से लगी रहती मध्यकर्ण में सब जगह एक पतली बलगमी झिल्ली लगी रहती है।

अन्तः कर्ण *Internalear*

यह तीन भागो में विभाजित किया जाता है।

(१) तीन अर्धचन्द्राकार नालियां Semicircularcanals.

(२) कर्ण कुटी Vestibule of internalear.

(३) कोकिला Chchlea.

ये तीनो भाग अस्थिकृत हैं। अस्थिकृत अन्तः कर्ण के तीन भागों के भीतर झिल्लीकृत अन्तःकर्ण रहता है। अस्थिकृत नालियो के भीतर झिल्लीकृत नालियां रहती है, और अस्थिकृत कुटी में झिल्लीकृत कोष्ट रहते है तथा अस्थिकृत कोकलेमें झिल्लीकृत कोकला रहता है। इस तरह अन्तःकर्ण दो भागो में विभक्त हुआ है।

(१) अस्थिकृत अन्तःकर्ण ।

(२) झिल्लीकृत अन्तःकर्ण Membranouslobyrinth-

अस्थिकृत अन्तःकर्ण

.Bonyinternalear

(१) कर्णकुटी ।

यह कोठरी मध्यकर्ण के सन्मुख तथा अर्ध-चक्राकार नालियो और कोकले के बीच में रहती है। कुटी कुछ अन्डाकार सी होती है, जहां वह सबसे चौड़ी है वहां उसका माप $\frac{1}{4}$ इञ्च होता है और सबसे तग स्थान मे $\frac{1}{3}$ इञ्च होता है। उसकी बाहरी दीवार पर एक छिद्र होताहै, यह अण्डाकार होता और कर्णकुटी द्वार कहलाता है। इस छिद्रमें रकावास्थि का चौड़ा भाग रहता है। कोठरी के सामने के भाग में एक गोल छिद्र है, और वह कोकल का छिद्र होने के कारण कोकला द्वार Fonestiachchleol कहलाता है। यह द्वार एक झिल्ली के द्वारा बन्द रहता है। कर्णकुटी की शेष दीवारो पर बहुत से छोटे २ छिद्र और कई उभार तथा गढ़े होते है। छिद्रो के रास्ते नाड़ीसूत्र भीतर आते हैं। कर्णकुटी के पहिले भाग में पांच छिद्र होते है तथा हर एक नलीके दो सिरे होते हैं, जिससे तीनो नालियो के ६ सिरे हो जाते हैं।

(२) अर्धचन्द्राकार नालियां

इनकी संख्या तीन है

(१) ऊर्ध्वनली ।

(२) पाश्चात्यनली ।

(३) पार्श्वनली ।

इनमें से पहिली नली का घेरा अर्ध चक्र से कुछ अधिक $\frac{2}{3}$ चक्र लगभग होता है, और नली की लम्बाई $\frac{3}{4}$ इञ्च के लगभग होती है। इसका एक सिरा पाश्चात्य नली के पास के सिरे से जुड़ा रहता है, दूसरे सिरे का छिद्र अलग होता है।

दूसरी नली $\frac{4}{5}$ इञ्च के लगभग होती है। इसका ऊपरी सिरा ऊर्ध्वनाली के सिरे से जुड़ा रहता है, तथा नीचला सिरा फूला हुआ रहता है।

तीसरी पार्श्वनली सबसे छोटी $\frac{1}{2}$ इञ्च के लगभग होती है, इसका भी एक सिरा फूला हुआ रहता है, और इसके दोनो सिरे जुदा२ खुलते हैं। नालियो का व्यास सामान्यतः $\frac{1}{300}$ इञ्चके लगभग होता है।

३—कोकिला

यह एक तरफ पतला और नोकीला होता है, तथा दूसरी तरफ चौड़ा और मोटा। पहले भाग को शिखिर तथा चौड़े भाग को तली कहते हैं। शिखिर से तली तकका माप $\frac{1}{4}$ इञ्चके लगभग होताहै और तली की चौड़ाई $\frac{1}{3}$ इञ्च से कुछ अधिक होती है। कोकिला करीब २ क्षितिज होता है इसका शिखिर सामने की ओर बाहर की तरफ तथा जरा नीचे को झुका रहता है। इसकी तली पीछे को मध्य रेखा की ओर तथा शाखास्थि के पिछले पृष्ट की तरफ रहती है। अश्मकूट के पिछले पृष्ट पर एक छिद्र होता है जिसे कर्णान्त द्वार Internal anditary meatus कहते हैं। यह एक $\frac{1}{3}$ इञ्च लम्बी नली का मुख है इस नाली को कर्णान्तर नाली कहते है, यह नाली कर्णान्तर द्वार से कोकले की तली तक रहती है। कोकले की तली मे बहुत से छिद्र हैं जिनके रास्ते नाड़ियां अंदर घुसती है।

कोकला असल में दो चीजो से बना हुआ है।

१—पतलास्तम्भ जिसे शकाकार कहते हैं।

२—एक नली जो इस स्तम्भ पर लपटी रहती है।

स्तम्भ—यह कोकले के बीच में रहता है, इसकी तली मोटी होती है और कोकले की तली

में रहती है इसका शिखर पतला होता है तथा कोकले की शिखर की ओर रहता है। स्तम्भ की तलीमें कई छिद्र होते हैं स्तम्भ के भीतर वहुत सी सीधी और तिर्छी सूक्ष्म नालियां रहती है× श्रवण नाड़ी के तार नली के छिद्रों में से होकर स्तम्भ में घुसते हैं और फिर इन नालियो मे रहते है।

नली—नली स्तम्भ पर इस प्रकार से लपटी रहती है कि लपेट एक दूसरे से मिले रहते हैं। नली के पोने तीन लपेट होते हैं। नली का आरम्भिक भाग जो कर्णकुटी के पास होता है चौड़ा होता है, यहां उसका व्यास ⅛ इञ्च हो जाता है यहां से शिखर तक नली तग होती गई है जिससे शिखर का भाग एकदम तंग हो जाता है। नलीकी लम्बाई $\frac{११}{५}$ के लगभग होती है भीतर एक पर्दा के द्वारा नलीके दोभागहो जातेहैं यहपर्दा स्तम्भसे शुरू होता है, तथा कुछ अस्थि में और कुछ कला से वना होता है। इस पर्दे का नाम कोकला फलक Lamina spiralis है नली की भांति कोकला फलक तली से आरम्भ होकर चक्कर खाता हुआ शिखर तक पहुँचता है जहा नली चौड़ी हो जाती है वहां वह भी चौड़ा हो जाता है और नली तंग होने के स्थान पर वह भी तंग हो जाता है फलक द्वारा नली के दो भाग हो जाते है जिससे एक नली से दो नलियां वन जाती है एक नली फलक के ऊपर और एक नीचे रहती है, ऊपर की नली का सम्बन्ध कर्णकुटी से है कर्णकुटी की वाहरी दीवार में अंडाकार छिद्र होता है जिसे कर्णकुटी द्वार कहते हैं यहां रकावास्थि का आसन लगा रहता है ऊपर की नली कर्णकुटी के द्वार के पास से आरम्भ होती है।

फलक के नीचे की नली का कोकला द्वार से आरम्भ होता है। यह द्वार जीवित दशा में एक झिल्ली द्वारा बन्द रहताहै। झिल्ली द्वारा नीचे की नली मध्यकर्ण से पृथक रहती है। यदि यह झिल्ली न हो तो नीचे की नली का सम्बन्ध मध्य कर्ण से हो जावे। इस नली को मध्यकर्ण सम्बन्धी नली कहते है। ऊपर नीचे की दोनों नालियां कोकले के शिखर में एक छिद्र के द्वारा आपस में मिली रहती है।

झिल्लीकृत अन्तः कर्ण

१—अस्थिगत कर्णकुटी के भीतर झिल्ली से वनी हुई दो छोटी २ थैलियां रहती हैं। एक थैली ऊपर पिछले भाग में रहती है तथा दूसरी थैली सामने और नीचे के भाग में पिछली थैली अगली से बड़ी होती है। और उससे तीनो झिल्लीकृत नालियां लगी रहती है। अगली थैली पिछली से छोटी होती है। इसके पिछले भाग से एक पतली नली निकलती है जो पिछली थैली की पतली नली से मिल जाती है। इन दोनो में से एक बड़ी नली वन जाती है अगली थैली में से एक अत्यन्त सूक्ष्म नली और निकलती है। जो झिल्लीकृत काकले से जुडी रहती है। दोनो थैलियां कहीं २ कर्णकुटी की दीवार से सौत्रिक तन्त्र द्वारा बंधी रहती है। थैलियो के भीतर और उनकी तथा कर्णकुटी की दीवार के बीच में कुछ लसीका जैसा तरल रहता है।

२—झिल्लीकृत नालियां—अस्थिकृत नालियों के भीतर झिल्ली सी बनी हुई है इनकी मोटाई अस्थिकृत नालियो की मोटाई से ⅓ होती है। कई जगह इनकी दीवारें सौत्रिक तन्तु द्वारा अस्थिकृत नालियो की दीवारो से बधी रहती है। हर एक नाली का एक सिरा फूला हुआ होता है और तीनो नालियां ऊपर की थैली से जुड़ी रहती हैं। तथा उनमें एक तरल भरा रहता है दोनों प्रकार

की नालियो के बीच मे जो अन्तर है उसमें भी तरल रहता है।

३–झिल्लीकृत कोकला—पीछे यह बताया जा चुका है कि फलक द्वारा कोकले की नली के दो भाग हो जाते है। एक ऊपर और दूसरी नीचे रहती है नीचे वाली नली को मध्यकर्ण सम्बन्धी कुल्या कहते है। ऊपर की नली के एक पतली कला द्वारा दो भाग हो जाते हैं। जहा फलक की अस्थि झिल्ली से मिलती है, वहा से इस कला का आरम्भ होता है यह कला बाहर की तरफ जाकर कोकले की दीवार से जा मिलती है। इस तरह कोकले की नली के ३ भाग हो जाते है।

[१] कर्णकुटी सम्बन्धी कुल्या।

[२] मध्यकर्ण सम्बन्धी कुल्या।

[३] मध्य कुल्या या झिल्लीकृत कोकला।

तीनो कुल्यायें चक्राकार है, हर एक कुल्या कोई पौने तीन चक्र खाकर शिखर तक पहुँचती है ऊपर और नीचे की कुल्यायें शिखर मे पहुँचकर एक छिद्र द्वारा एक दूसरे से मिलजाती है इनमें से किसी का तीसरी कुल्या से किसी प्रकार भी सम्बन्ध नहीं है।

मध्य कुल्या की छत और फर्श झिल्ली से बनते है। शेप दीवार कोकले की अस्थि पर रहने वाली अस्थिजनक कला से बनती है। इस कुल्या का व्यतस्त काट तिकोना होता है। और इसके दोनो सिरे बन्द है। इस कुटी में रहने वाली थैलिया मे से अगली थैली इस कुल्या से एक सूक्ष्म नली द्वारा जुड़ी रहती है। तरल इस कुल्या में भी रहता है।

मध्यकुल्या की सूक्ष्म रचना

इसकी रचना बडी ही विचित्र है। अस्थिकृत फलक वास्तव में दो पतले २ पत्रो से बनता है इन पत्रो के बीच मे जो अन्तर रहता है। उसमे श्रावणी नाडी के तार रहते हैं इन पत्रों के बीच में से होकर ये तार झिल्लीकृत फलक और मध्य कुल्या में पहुचते हैं। फलक की झिल्ली पर लम्बी लम्बी स्तम्भाकार सेलों की दो पक्तियां रहती हैं। एक पक्ति दूसरी के सन्मुख रहती है। एक पंक्ति की सेलों के नीचे के सिरे दूसरी पक्ति के नीचे केसिरो से अलग रहते हैं। परन्तु दोनो पक्तियो के सेलोंके ऊपर के सिरे आपस मे मिले रहते हैं। पंक्तियों के तिरछे रहने से और सेलोंके ऊपरी सिरो केमिलने से श्रोत सुरंग नामक नाली बन जाती है। श्रोत सुरंग की अस्थिकृत फलक के पास रहने वाली सेलें कुछ २ अन्त: प्रकोष्ठास्थि के सदृश होती है ऊपर का सिरा मुडा रहता है और उसमें एक गढ़ा होता हैं। दूसरी पक्ति की सेलें हस ग्रीवाकार हैं इनके सिरे मुडे हुये और पूर्वोक्त सेलों के गड्ढों मे फसे रहते हैं।

अनुमान है कि सुरंग की बाह्य सेलो की संख्या ४००० और अंतरीय सेलोकी संख्या६००० के लगभग होता है। सुरंग के दोनो ओर सुरंगकी सेलो से मिली हुई कुछ सेलें ऐसी रहती हैं। जिनके शिरे मे वडे पतले वाल जैसे तार निकलते है। ऐसी सेलो की एक पंक्ति जिसमें ३५०० सेलें होती है। सुरंग की अंतरीय सेलो के पास रहती है। सुरंग के दूसरी तरफ ऐसी सेलो की कई समातर पक्तिया होती है जिनकी संख्या १२ हजार से १८ हजार तक होती है। ये लोमश सेले Hai 1cells है सुरंग के दोनो ओर और भी कई तरह की सेलें होती हैं। सुरंग और उसके आस-पास की सेलो को श्रावणयन्त्र कहते हैं।

श्रावणी नाडी

कोकले के स्तम्भ की तली में बहुत से छिद्र होते है स्तम्भ के भीतर इन छिद्रो के आरम्भ होने वाली सूक्ष्म नालिया है। ये नालियां उस स्थान

तक जातीहै। जहां से अस्थिकृत फलक का आरम्भ होता है। फलक के पास पहुंच कर प्रत्येक नाड़ी पूर्वापेक्षा अधिक चौड़ी हो जाती है। इस चौडे स्थान में नाड़ी सेलो के छोटे २ स्थान होते है। जिन्हे नाड़ी गढ़ कहते है। इन सेलो से दो-दो तार निकलते है। जिनमें एक तार फलक के दोनो पत्रो के बीच में होकर सुरंग की ओर जाता है। दूसरा तार फलक के स्तम्भ की नली में पहुँचताहै।

नोट—कानो के विवेचनात्मक वर्णन का विषय हमारे शरीर की रचना से लिया गया है।

कान का बहना

बच्चो के कान प्राय. अधिक बहते हैं, अबोध अवस्था में माता पिता की लापरवाही से कान के आस-पास और भीतर मैल जम जाता है, जिससे फोड़ा हो जाता हैं और अन्दर फूट जाता है इससे पीव मिला पानी वहने लगता है। सर पर चोट लगने में पानी घुसने आदि से भी यह रोग हो जाता है। आयुर्वेदिक मत से यही कर्णस्राव भी है, और पूति कर्णक भी यही है।

कान की खुजली

कानमें जव खारी तरी आ जातीहै तो खुजली चलने लगती है। कफ से जब वायु का संघर्ष होता है तब कान खुजाने लगता है, यह वडा बेहूदा रोग है, हरदम कान में अंगुली रहती है, इसमें सबसे अच्छा इलाज खारी तरी को निकाल देना है।

कर्ण नाद

जब शब्द वाहिनी नाड़ियो मे वायु घुस जाता है तब हरदम शख या भेरी की आवाज होती रहती है। वायु के साथ जव पित्त मिल जाता है तो वंसरी की आवाज होने लगती है, हर समय कानो में वशी बजती रहती है। इसे 'कर्णक्ष्वेड' रोग कहते हैं।

इस विषय मे तिव्बत अकवरी में लिखा है कि थाली की झन झनाहट होने को 'तनीन' कहते है और चक्की की आवाज होने की 'दवी' ऊटपटाग आवाज होने के ८ कारण है।

(१) श्रवण शक्ति तेज और अधिक हो जाती है तो फालतू आवाजे सुनी जाती है।

(२) श्रवण शक्ति कम हो जाय।

(३) सर में मैल के फोके इकट्ठे हो जाय और निकम्मी दवा निकल कर श्रवण शक्ति को प्रभावित करे।

(४) मैल कान की तरफ गिरे और हवा छेद को छोटा कर दे, इसमें खिचावट और सर मे भारीपन होता है। कभी दोष भी गिर जाता है।

(५) खुश्की और भूख भी इसके कारण है

(६) घबराहट और गर्म दुष्ट प्रकृति दोषो को उबाल दे, और भाफ के परमाणुओ को हिला दे।

(७) भाफ के परमाणु को हिलाकर दिमाग मे लेजाने वाली काली मिर्च जैसी चीजें खाने से

(८) पीब और घाव का पानी तथा कीड़े कान मे इकट्ठे हो जांय।

कान में से खून बहना

तीन भेद

(१) नक्सीर आदि दूसरे रोगो के कारण कान में से खून निकलने लगता है।

(२) ज्यादा मवाद भर जाने या चोट वगैरह से भीतरी रग फट जाती है या उसका मुह खुल जाता है।

(३) सांप के काटने से खून बहने लगता है।

कान का टूट जाना

जोर से कान को मलने, दबाने, खीचने और चोट लगने आदि से कान टूट जाता है।

कान का उखड़ जाना

३ कारण से कान जड़ से उखड जाता है।

[१] जोर से खींचने से।

[२] दूर से दबाने वाली सूजन से।

[३] दबाने वाली रीह से।

कर्णशोथ (कानकी सूजन)

कान में चार तरह की सूजन होती है।

[१] वादी की।

[२] पित्त की।

[३] कफ की।

[४] खून की।

(१) वादी की सूजन कड़ी होती है, लाल काली होती है, छूने से कोई असर नहीं पडता, दबाने से ऊची हो जाती है, चचल ह ती है पतली चमडी वाली होती है और दिन मे इसका जोर अधिक होता है।

(२) पित्त की सूजन काली या पीली होती है, मुलायम होती है, इसमें जलन होती है, आखे लाल हो जाती हैं और जिस समय यह पकती हैं उस समय वड़ी जोरो से जलन होती है, इसमे गंध भी आया करती है, पसीना आता है, कभी कभी ज्वर भी हो जाता है और रोगी को भ्रम होने लगता है।

(३) कफ की सूजन भारी और स्थिर सफेद होती है, और रात में विशेष दर्द करने वाली होती है। नींद अधिक आना, अरुचि, कभी-कभी कै होना आदि चिन्ह होते हैं।

(४) खून की सूजन लाल होती है, इसमें दर्द अधिक होता है, खिचावट होती है और भारी पन रहता है।

कर्णार्श (कान के मस्से)

मस्से भी कान में चार ही तरह के होने हैं ये छोटे २ होते और दिखलाई भी पड़ते हैं।

वादी से मस्से सूखे, कड़े, खरदरे और फटे मुह के होते है। पित्त के मस्से काले पीले या लाल होते हैं और कफ के मस्से सफेद होते हैं।

कान की रसौली

कान में कभी २ एक गांठ पैदा हो जाती है, जो कभी पकती नही, वह किसी भी जगह हो सकती है इसमें दर्द वन्द भी नही होता। यह कभी पिलपिली होती है तो कभी कड़ी। आयुर्वेद मे इस रोग को कर्णार्बुद कहा है और इसके सात भेद माने हैं। रसौली का संस्कृत नाम अर्बुद है।

कर्ण विद्रधि

विद्रधि एक भयंकर सूजन होती है जो पक भी जाती है। यह खतरनाक रोग है। कान में वाव होने, सूजन होने, या किसी बिगड़े हुये दोष के इकट्ठे होने से विद्रधि होती है। इसमें कान के अन्दर बडी जलन होती है धुआं सा निकलता है, अन्दर मानो आग जलती है कभी लाल पीप निकलती है, कभी पीली इसमें आदमी के होश हवाश बिगड़ जाते हैं।

कर्णशूल

कान का दर्द अलग रोग है उसका जिक्र हमने अलग किया है।

कान मे चारो तरफ उलटा फिरने वाला वायु जब बिगड़े हुये कफ पित्त आदि से मिल जाता है तो कान मे शूल चलने लगते हैं ठहर २ के कांटा चुभने जैसी वेदना होती है जौन सा दोष होता है उसी के खास चिन्ह भी होते हैं।

कर्णपाक

जब कान में पित्त की तरी आ जाती है तो कान पक जाता है जिसमें बदबू आने लगती है, पीव मवादि नही वहता, किंतु भीतर बाहर गिलगिलापन अवश्य रहता है।

कर्णगूथ (मैल का सूख जाना)

पित्त के कारण शरीर में स्वाभाविक गर्मी के अधिक होने से कान का मैल सूख जाया करता है जिससे खुरचने पर कभी २ मोटी २ डली निकलती है। अगर सूखा मल अधिक इकट्ठा होता है तो सुनने में खराबी हो जाती है।

प्रतिनाह (मैल का मुंह नाक में आना)

पित्त की तेजी स्वाभाविक टेम्प्रेचर के कम होने पर कान का मैल पतला हो जाता है एकदम ग्घिल जाता हैं फिर कभी २ वह मुंह और नाक में आ जाता है।

क्रिमिकर्ण कान में कीड़े पड़ना

कान को साफ नही रखने से उसमें गन्दगी हो जाती है, जिससे वहां कीड़े पैदा हो जाते हैं, कभी २ हमारी अज्ञानता में छोटे २ जानवर कान में घुस जाते और अडे दे देते हैं, फिर कान कीड़ो का केन्द्र स्थल हो जाता है। कीड़े चाहे पैदा हो, चाहे घुसें, सभी दशाओं में कान की खराबी होती है, दर्द जोरों से होता है, वेचैनी रहती है। कीड़ा जब इधर उधर चलता है तब बड़ी सरसराहट होती है, कान में नोचने जैसी वेदना होती है।

कान का दर्द

पहिला भेद

गरम बादी की भाफ के परमाणु जब कान में घुस जाते हैं तो खिचावट से दर्द पैदा होता है, इसमें चुभन होती है, आंख और कान में लाली आ जाती है, कान में से आग की लपटें सी निकलती हैं और हलक के कौने में खुश्की हो जाती है। इसके भी चार भेद हैं।

पहिले भेद के चार भेद

१—पहिले मवाद आमाशय में हो, फिर बादी की भाप के परमाणु दिमाग की तरफ चढ़ के कान में दर्द करता है। जब मवाद आमाशय में होता है तो उसके मुंह में जलन होती है, प्यास अधिक लगती है, आंखो में पानी भरा रहता है।

२—गर्मी के दिनो में अधिक चलने फिरने से दिमाग की तरियो में गर्मी आकर उसमें से भाफ उठती है और गर्म भाग के परमाणु हवा बनकर कान में घुसकर दर्द पैदा करते हैं। इसमें कानो आंखो और मुंह में गर्मी तथा जलन होती है, नथुने सूख जाते हैं, प्यास लगती है, वेचैनी और घवड़ाहट होती है।

३—गर्म पानी या गर्म स्रोतो का पानी कान में घुसकर बादी पैदा कर देता है, जिससे कानों और सर में अधिक गर्मी होती है, बीच में और अन्त में दर्द होता है।

४—गर्म दवाओ के लगाने से भी बादी पैदा होकर उसी तरह दर्द पैदा करती है।

दूसरा भेद

ठडी और गाढ़ी बादी कान के छेद में ठहर जाये और निकल नहीं सके तो दर्द पैदा करता है रिहा के कारण तथा स्थानो की विरुद्धता के अनुसार इसके ५ भेद हैं।

दूसरे भेद के ५ भेद

१—आमाशय से गाढ़ी बादी कान की तरफ चढ़ती है और दर्द पैदा करती है। इसमें जी मिचलाता है, मुंह मै पानी भरा रहता है। और हल्का सर दर्द होता।

२—सर में रहनेवाले ठंडे पाको में जब गर्मी का उचित असर नहीं पहुँचता है तो उनमें से ठंडे रिहा निकल कर कान की तरफ आकर दर्द पैदा करते हैं। इसमें कानो में भड़भड़ाहट होती है, सर में बोझा और दर्द होता है।

३—जब जाड़े और ठंडी हवा से सर के रोमांच छोटे हो जाते हैं और खाल सिकुड़ जाती

है तो निकलने वाले भाफ के परमाणु अटक कर वहीं इकट्ठे हो जाते है। सर्द हिस्सा रह जाता है और गर्म निकल जाताहै जिससे ठडी हवा बनकर कान की तरफ आकर दर्द करती हैं इसमें थोड़ा दर्द और खिचाव होता है।

४—ठडे पानी से नहाने, सर पर बर्फ रखने से ठडी रिहा पैदा होने से कान में दर्द करती है इसमें गुद्दी की तरफ इतना दर्द होता है कि सर का फिराना मुश्किल हो जाता है।

५—कान में दर्द दवाओ के लगाने से रिहा पैदा होकर दर्द पैदा करती है।

खून के भरने से दर्द

कान में खून भर जाने से जब दर्द होता है, तब मुह लाल हो जाता है, सर में और खासकर माथे में झुकने से बोझ मालूम होता है कान के दर्द के साथ ही टीस चलती है।

पित्तज दर्द

जब पित्त की गरमी सादा दुष्ट प्रकृति विगड़ जाती है तो कान में दर्द होता है। इसमें मुह और सर में दर्द होता है।

कफज दर्द

कफ के कान में भरने से जब दर्द होताहै, तब मवाद होने पर कान और सर में बोझा मालूम होता है, नींद बहुत आती है, नाक के छेद तर रहते हैं।

सूजन से होने वाला दर्द

सूजन के दो भेद

१—गर्म सूजन

गर्म सूजन से अगर दर्द होता है तो टीस चलती है और खूब जोरो से दर्द भी पैदा होता है, सर में दर्द और खिचावट होती है, बोझ मालूम होता है, जलन का कष्ट भी होता है; और मुँह पर लाली भी होती है। यह सूजन दो स्थानों में होती है।

(१) कान के छेद में।

(२) छेद के बाहर के अंग में।

जब छेद के अन्दर सूजन होती है तब सुनने वाला पट्ठा भी सूज जाता है, दर्द बहुत जोरो से होता है मारे दर्द के बेहोशी होने लगती है कभी कभी २७ दिन में ही यह दर्द रोगी को मार डालता है। कान में बोझ मालूम होता है सुनने में अन्तर पड़ जाता है। कान की गहराई में और भी अधिक दर्द होता है। ठहर २ कर आवाज सी निकलती है, आसपास के अगो मे कमजोरी आ जाती है। आंसू बहते हैं और नाक से रतूबत निकलती है। हरदम बुखार रहता है। जिस दोष के कारण सूजन होती है, उसी के चिन्ह होते है। छेद के बाहर होने वाली सूजन में कभी २ बुखार आता है, और इतनी दशा नही होती।

२—ठडी सूजन

ठडी सूजन गाढ़ी होने के कारण पट्ठे को तकलीफ नही पहुचती, यह कान के बाहरी हिस्सो में और छेद में होती है। इसमें भारीपन, खिचावट, टीस और दर्द अधिक होता है।

७—घाव का दर्द

जब कान में घाव हो जाता है तो दर्द होता हैं, इसमें पहिले ही सूजन हो जाती है और पीब निकलता है।

८—कीड़े पड़ जाने से होने वाला दर्द

सड़े हुये मवाद से तथा पुराने और सड़े हुये घाव से इन दो कारणो से कीड़े होते है कीड़ों से होने वाले दर्द में खुजली चलती है, और कीड़ो का चलना फिरना मालूम होता है। वे कीड़े भी

२ तरह के होते। (१) सफेद और काले सर वाले (२) खाके रंग के कुत्ते की कलीली जैसे।

९—कीड़े घुसने से होने वाला दर्द

जब कान में कीडे मकोड़े घुस जाते हैं तो दर्द होता है, इसमें बड़ी बेचेनी सी होती है, जब वे ठहर जाते हैं तो कुछ शान्ति मिलती है, पुन. चलने फिरने से बड़ा दर्द होता है।

१०—पानी घुसने से होने वाला दर्द

जब किसी तरह पानी कान में घुस जाय और जल्द न निकल कर सूजन पैदा करता है तो दर्द होता है, कभी कान के मैल में मिलकर गर्म होकर उबलने लगता है तो कुछ बहरापन भी कर देता है।

सुनने की शक्ति का नष्ट होना

१–कम सुनना और (२) एक दम न सुनना इसके ये दो भेद हैं, पहिले को तर्श और दूसरे को बका कहते हैं। कान का छेद जाता रहना भी अगर इसका ही भेद मान लिया जाय तो इसके तीन भेद ही हो सकते हैं। आयुर्वेद में भी इसे बाधिर्य कहते हे।

१–कम सुनना।

२–एकदम न सुनना।

३–कान का छेद जाता रहना।

कम सुनना और एकदम न सुनना

कम सुनने और एकदम न सुनने का वर्णन एक साथ ही कर देने से सुविधा होगी. सब बातें मिलती जुलती ही हैं कारण बलवान होता है तो एकदम नही सुनता, अन्यथा थोड़ा सुन पड़ता है।

७—भेद

१–जन्म से ही सुनने की शक्ति या तो कम होती है, या नही होती यह असाध्य है।

२–बुढापा आजाने से कमजोरी आकर सर्दी और खुश्की अधिक होकर बहरापन कर देती है, यह भी असाध्य है।

३–कान के छेद में बिछा हुआ पट्ठा धमक व चोट से टूट जाता है तो बहरापन आ जाता है यह भी असाध्य है।

४—दूसरे रोगो में पित्त दिमाग की तरफ बढ़ कर बहरापन कर देता है।

५—सादा और दुष्ट प्रकृति—जो बिना मवाद के होती है. बहरापन कर देती है, फिर वह चाहे सर्द हो या गर्म खुश्क हो या तर।

गर्म दुष्ट प्रकृति—पट्ठे के गाढ़ेपन को खुश्क बना देती है, जला देती है जिससे श्रवणशक्ति ठीक तौर से उसमें नही घुस पाती।

सर्द दुष्ट प्रकृति—अजीर्ण, मोटें करने और सुकोड़ देने के कारण से सुनने के अगो में गाढ़ा और मोटापन कर देती हैं, जिससे रूह अच्छी तरह नही घुस सकती।

तर दुष्ट प्रकृति—पट्ठे की मोटाई को सुस्त कर देती है, जिससे वे अवयव मिल जाते है और रूह उनमे बन्द हो जाती है।

६—पट्ठे की तरफ जब गाढ़ा और कच्चा दोष गिरता है तो दिमाग वाली रूह उसमें नहीं आती और बहरापन हो जाता है। इसमें सरमें भारीपन होता है, खासकर झुकने में।

७—कान के छेद का रास्ता बन्द हो जाने से भी बहरापन हो जाता है, इसके ३ कारण हैं।

१—कान में बहुत सा मैल इकट्ठा हो जाय।

२—पथरी या और कोई वस्तु कान में गिर जाय।

३—मस्सा पैदा हो जाय या घाव होने के बाद में बिशेप मांस पैदा हो जाय।

कान का छेद जाता रहना

गांठ वगैरह से जब कान का छेद जाता रहता

है तो बिलकुल ही नहीं सुनाई देता। इसके भी ३ कारण हैं।

१—कान की जड़ वाली हड्डी में शब्द आने का बोध ही न हो।

२—छेद हो, किंतु मांस से भर कर बन्द हो गया हो।

३—छेद के ऊपर खाल की झिल्ली फैल गई हो, इसमें जोर से बोलने पर कुछ आवाज जा सकती है।

कान का भनभनाना

जोर की आवाज सुनने या जोर से चिल्लाने पर कान भनभनाने लगता है, इसके दो कारण हैं

१—श्रवणशक्ति निर्बल हो जाती है।

२—दिमाग वाली शक्ति समस्त निर्बल हो जाती है।

हस्तमैथुन करने, ज्यादा सम्भोग करने आदि से शरीर में खून और वीर्य की कमी हो सकती है जिससे दिमागी शक्ति में निर्बलता आती है और कान भनभनाने लगते है। कर्णनाद एक और रोग है, उसमें हर समय कानो में ऊटपटांग आवाज होती है, इसमें वसा नहीं होती।

कान की जड़ का घाव

कान के पास मैल जम जाता है, जिससे विकारी पदार्थ इकट्ठे होने से वहां घाव हो जाता है वह घाव अक्सर बच्चो के होता है, क्योकि माता पिता उनके कानो को साफ नही रखते जवानो को भी हो सकता है अगर वे अपने कानो को गन्दे रखते हैं।

कान में कुछ गिर पड़ना

कभी २ कान में अनाज के दाने या और कुछ चीज गिर पड़ती है जिससे वायु बिगड़ जाती है फिर सूजन हो जाती है। कान में दर्द होने लगता है, यह जकड़ जाता है और फटने सा लगता है, सूजन कुछ कलौंस लिये होती है। यह आयुर्वेद का कृमिकर्ण रोग है।

कर्णपाली की सूजन

पाली कहते हैं लौर को कर्णपाली की सूजन ३ तरह की होती है। और तीनो के अलग २ नाम हैं।

१—उत्पात-चोट लगने, गहने पहनने, आंख को रगड़ने पकड कर खीचने आदि से पित्त और खून उसी जगह के बिगड़ जाते हैं। फिर सूजन हो जाती है। यह सूजन कलौंस लिये हुये लाल रंग की होती है। इसमें जलन के साथ २ दर्द भी होता है और पक भी जाती है।

२—उन्मन्थ-कान को पकड़कर खीचने से जैसे कि स्कूलो मे मास्टर और घरो में मां बाप करते हैं, इससे वायु बिगड जाती है और कफ को लेकर सूजन करता है। कान जकड़ जाता है। और खुजली चलती है। जलन नही होती।

३-दुःख बर्द्धन—वे ढगी तौर से कर्ण-वेध आदि से खुजलीदार, पाक युक्त, सदाह, सूजन होती है।

कान की फुन्सियां

यह फुन्सिया कान के बाहर होती हैं। कफ, खून और कीड़े तीनो मिलकर सरसों जैसी खालदार फुन्सियां पैदा करते है। इनमें जलन भी होती है धीरे २ कान का सारा मांस गल जाता है

कान के भीतर की फुन्सी

आयुर्वेद में इसे पनसिका कहते हैं। वायु और कफ के विकार से कान के भीतर यह फुन्सी होती है। यह कडी होती है और इसमें बड़े जोरों का दर्द होता है दर्द के मारे खाना पीना भी हराम हो जाता है। गौर से देखने पर यह दिख-

लाई पड़ती है कभी बड़ी होती है कभी छोटी जिस कान में होती है उसकी श्रवणशक्ति में भी अंतर पड जाता है।

चक्षुरोग

आंखों का नाम चक्षु है—

आंखो का महत्व कुछ कम नही है, हर एक के पास दो आंखे रहती है और दोनो का स्वस्थ रहना हर हालत में आवश्यक है। इसके पहिले कि आंखो के रोगो के विषय में कुछ लिखा जाय, पहले आंखो के विषय में ही कुछ लिख देना उचित है। आंखें क्या है ? जिन दो आंखो से हमें दिखाई देता है, वे क्या है ? इस विषय में खास २ बातें जान लेनी चाहिये।

आंखें क्या हैं

Diseais of the Eyes

भ्रुवो के नीचे नाक के दाहिनी और बांयी ओर कर्परमें दो गढ़े दिखलाई पड़ते है, इनको नेत्र गुहा Orbitol Fossa कहते है। आंख का गोला इसी गढ़े में रहता है।

चक्षु की वनावट छायाचित्र खीचने वाले यत्र की वनावट से बहुत कुछ मिलती जुलतीहै। पहिले इस यन्त्र की वनावट पर ध्यान दीजिये, वाद में दोनो की तुलना की जायगी। यह यन्त्र वास्तव में एक अंधेरी कोठरी है, इस कोठरी मे एक तरफ एक छिद्र होता है, जिसमें एक शीशा लगा रहता है, दूसरी तरफ ठीक शीशे के सामने मसाला चढा हुआ प्लेट लगा रहता है। प्रकाश की किरणें शीशे के रास्ते कोठरी में घुसती और प्लेट मे टकरातीहैं शीशे के सामने एक ऐसा यन्त्र लगा रहता है जिसके द्वारा हम प्रकाश की गति पर शासन करते हैं। कोठरी की वनावट भी ऐसी होती है कि हम उसको लम्बी या छोटी कर सकते है।

इस यन्त्र की तरह आंख में भी एक अंधेरी कोठरी है, जो गोल होती है और नियमित होतीहै कम या वेशी नहीं की जा सकती, हां वही काम आंख के शीशे की मोटाई के अन्दर कमी वेशी करने से निकलता है। आंखमें रोशनी के कम या अधिक प्रवेश कराने के लिये शीशे के सामने एक पर्दा लगा रहता है, जिसमें एक छिद्र होता है यही छिद्र घटाया और वढाया जा सकता है प्रकाश को एक दम रोकने के लिये २ पलके है। आंख के पिछले भाग में, प्लेट की तरफ एक सावेदनिक झिल्ली लगी हुई है, इसी के ऊपर वस्तुओ का प्रति विम्व पड़ता है।

आंख का आकार

यदि हम दो गोले ले, जिनमें एक छोटा और एक बड़ा हो, फिर प्रत्येक गोले के दो टुकड़े करले एक छोटा और दूसरा बड़ा और अव बड़े गोले के बड़े टुकड़े में छोटे गोले का छोटा टुकड़ा जोड़ दे तो इसका आकार आंख के गोले के जैसा हो जायगा।

आंख का अगला $\frac{१}{६}$ भाग छोटे गोले के छोटे हिस्से के और पिछला $\frac{५}{६}$ भाग बड़े गोले के बड़े भाग के बराबर है, अगला भाग स्वच्छ और पिछला अस्वच्छ होता है। पिछला भाग छाया चित्रण यत्र की अंधेरी कोठरी जैसा है और अगला भाग उस भागकी तरह है जिसमें से प्रकाश की किरणें कोठरी के भीतर प्रवेश करती है।

आख के गोले की दीवार तीन पटलो से वनती है, पटल कहतेहैं तह को। आंख का अगला भाग काला और पिछला सफेद होता है, आंख का वाहरी पटल सफेद होता है। और आंख का सफेद हिस्सा भी इसी से बनता है बाहरी पटल

के भीतर बिचला पटल होता है, जो काला होता है। बिचले पटल के भीतरी पृष्ठ से नील लोहित रंग वाला अतरीय पटल लगा रहता है। अक्षि गोलक के पिछले $\frac{5}{6}$ भाग में तीनो पटल एक दूसरे से मिले रहते है।

आंख का अगला भाग काला और नीला होता है, वह भाग आंख के भीतर है और एक कांच जैसी साफ चीज में से चमकता हुआ दिखाई देता है। यह स्वच्छ चीज आख के अगले भाग की दीवार है। इस स्वच्छ भाग को कनीनिका Cornea कहते है और इसमें से चमकता हुआ एक काला पर्दा दिखाई पडता है, गोरी जातियो में यह भूरा या नीला होता है यह पर्दा बिचले पटल का अगला भाग है। इस पर्दे के बीच मे सकोचन शील और विकाश शील एक छिद्र होता है जो काला दिखलाई पडता है। इस छिद्र को तारा Pupil कहते हैं, बोल-चाल की भाषा में इसे पुतली भी कहते है। जिस पर्दे में यह छिद्र होता है, उसे उपतारा Iris कहते है।

आख के पिछले $\frac{5}{6}$ भाग मे काला पटल सफेद पटल से मिला हुआ रहता है, अगले $\frac{1}{6}$ भाग मे काला पटल कनीनिका से पृथक हो जाता है और उसके पीछे उससे कुछ दूरी पर रहता है।

नील लोहित पटल ज्यो ज्यो आगे बढता है, पतला होता जाता है और उपतारा के पास जाकर एक दम सूक्ष्म हो जाता है। उपतारा के पीछे आंख का शीशा रहता है यह स्वच्छ होता है जो बुढापे में धुंधला हो जाता है। आज कल तो भरी जवानी मे भी यह शीशा अस्वस्थ हो जाता है, फिर प्रकाश की किरणे ठीक नही पहुँचती और कम दिखाई देने लगता है।

शीशा गोल होता है और उसके दोनो पृष्ठ उभरे हुये होते हैं, किंतु अगला पृष्ठ पिछले की अपेक्षा कम उभरा हुआ होताहै। शीशे का बाहरी भाग भी भीतरी भाग की अपेक्षा नाजुक होता है अगले पृष्ठ के केन्द्र से पिछले पृष्ठ तक के केन्द्र का माप $\frac{1}{5}$ इञ्च होता है उसका व्यास $\frac{1}{3}$ इञ्च से कुछ कम होता है, शीशे का भार २ रत्ती के बराबर होता है। शीशे के ऊपर एक पतला गिलाफ चढा रहता है, इसे तालु कोष कहते हैं। एक बंधन के द्वारा शीशा उपतारानुमण्डल से बंधा रहता है शीशे का ही दूसरा नाम ताल है, यह भी याद रखने की बात है।

मांस के सकोच और प्रसार से तालका बंधन ढीला या तग हो जाता है। ताल के पीछे आंख का बडा कोष्ठ है, इसमें एक गाढ़ा स्वच्छ लसदार तथा कुछ कुछ पतला द्रव्य भरा रहता है जो आंख को स्थिर रखता है, इसके न होने पर आंख चिपक जाती है।

इस चीज के दबाव से आंख के तीनों पटल भी आपस में मिले रहते है और इसमें ९८'५० प्रति सैकडा जल होता है।

पटलों की बनावट

बाह्य पटल *Selera external coot*

यह पीले तथा सफेद सौत्रिक तन्तुओ से बनता है और दोनो पटलों से अधिक दृढ़ मोटा और सख्त होता है नेत्र चालिनी पेशियां इसी पटल से बनी रहती है। इस पटल का पिछला भाग अगले की अपेक्षा अधिक मोटा होता है पिछले भाग की मोटाई $\frac{1}{24}$ इञ्च के लगभग होती है।

कनीनिका *Cornea*—सूक्ष्म दर्शक यन्त्र के सहारे पर इसमे पाच तहे दिखाती हैं। अगले पृष्ठ पर सेलो की ४ या ५ सतरें एक दूसरे के ऊपर

बिछी हुई हैं, सेलों की तह के नीचे सूक्ष्म कला होती है, जिसमें सेलें नहीं होती। इस कलाकेनीचे सौत्रिक तन्तु की मोटी तह होती है, जिसमें बहुत सी चपटी तकुं के आकार, की सेले होती है। सौत्रिक तह के पीछे एक पतली स्थिति स्थापक कला होती है। कनीनिका के पिछले पृष्ठ पर सेलो की एक तह बिछी होती है।

कनीनिका परिधि के पास मोटी और केन्द्र के पास पतली होती है। परिधि के पास इसकी मोटाई $\frac{१}{२४}$ के लगभग होती है कनीनिकामे न रक्त वाहिनी होती है, न रक्त, किंतु नाड़ियां बहुत होती हैं।

मध्यम पटल *Middle coatcl oroid*—यह पीले सौत्रिक तन्तु से बना है। इसमें रक्त वाहिनियां अधिक होती हैं, यह इनकी विशेषता है इसके भीतरी पटल पर रक्तकेशिकाओ के बीच में और सौत्रिक तन्तु में जो सेलें रहती हैं उनमें स्याहीमाइल रग भरा रहता है जिससे यह पटल काली दिखलाई पड़ती है। इस पटल का अगला भाग पिछले की अपेक्षा पतला होता है दृष्टि नाडी के समीप इसकी मोटाई $\frac{१}{२४०}$ इञ्च के लगभग और उपतारानुमडल के पास $\frac{१}{३५०}$ इञ्चके लगभग होतीहै

उपतारानुमंडल *Ciliary zone arbody* इसके आन्तरीय पृष्ट पर ७९–८० के लगभग झुर्रियां होती हैं। जो एक दूसरे के समानातर होती है। तथा पास की परिधि के समीप रहतीहैं ताल का बन्धन इन झुर्रियो से ही लगा रहता है। उपतारानुमडल में अनैच्छिक मांस रहता है।

उपतारा *Iris*—यह सौत्रिक तन्तु निर्मित है इसमें बहुत सी रंगदार सेलें रहती हैं। इसमें अनैच्छिक मांस भी होताहै कुछ मास इसके चारो तरफ लगा रहता है, तथा कुछ पहिये के आरो के समान किनारे से आरम्भ होकर परिधि की तरफ जाती है। चक्र की तरह लगे हुये मास के सकोच से पुतली छोटी हो जाती है और प्रसार से फैलती है, उपतारा में रक्त केशिकाओ तथा नाड़ियो के घने जाल भी होते हैं और इसके पिछले पृष्ट पर नील लोहित रग वाली सेले होती है। उपतारा का रंग सब जातियो में एक जैसा नही होता। जब उपतारा के सब भागो की सेलो मे रग रहता है तो वह स्याहीमाइल दिखाई पड़ता है जैसे भारतीयो मे जब जब अगले पृष्ट की सेलो में रग नही रहता तब रग धूसर या भूरा होता है। जब पिछले पृष्ठ की सेलो को छोडकर शेष सब भाग में रंग नही होता, तब रग नीला सा रहता है जैसे अगरेजो में अगर किसी भाग में भी रग नही है तो वह लाल दिखलाई पडता है।

आन्तरीय पटल *Inner coot*

इसका सावेदनिक पटल भी कहते हैं इसका वही काम है जो छाया चित्र के यन्त्र में मसाला चढ़ी हुई प्लेट का होता है। यह पटल नाड़ी सूत्रो तथा विशेष प्रकार की सेलो से बनता है सेलो की कई तहे होती है। पिछले भाग में इसकी मोटाई $\frac{१}{६०}$ इञ्चके लगभग होतीहै, उपतारानुमडल के पास इसकी मोटाई $\frac{१}{१४०}$ के करीब होता है इस उपतारा के समीप वाले भाग में नाड़ी सूत्र और सांवेदनिक सेले नही पाई जाती है जीवितावस्था में यह पटल स्वच्छ होता है और उसका रग सेलो के भीतर एक विशेष रंग के रहने के कारण नील लोहित होता है। मृत्यु के पीछे यह पटल अस्वच्छ और धूसर रग का हो जाता है।

आख पाश्चात्य ध्रुव पर इस पटल के भीतरी पृष्ठ पर एक गोल पीला धब्बा होता है

इसको पीत बिन्दु Maculacutea कहते हैं। पीत बिन्दु का व्यास $\frac{१}{२४}$ से $\frac{१}{१२}$ इञ्च तक होता है और इसके बीच मे एक गढा होता है। जब हम कोई चीज देखते है तो अक्षि गोलक इस तरह की गति करता है कि जिससे यह स्थान उस चीज के सन्मुख आ जाये, ताकि प्रतिबिम्ब का कुछ भाग उस पर भी पडे, देखने की शक्ति पीत बिन्दु में अपेक्षा कृत अधिक होती है इसके $\frac{१}{८}$ इंच नीचे चाक्षुपबिम्ब Optic disc है जिसके केन्द्र में एक गढा है जिसे बिम्बनाभि Physiologicalcup कहते है, बिम्बनाभि से आन्तरीय पटल की पोषण करने वाली रक्त वाहिनी निकलती हुई दिखाती है। चाक्षुप बिम्ब आन्तरीय पटल का असावेदनिक स्थान है, यहां पर प्रकाश की सेलें नही होती है।

दृष्टि नाड़ी

Opticnerve

यह आख के पिछले भाग से शुरू होती है, जिन तारो से यह नाडी बनती है, वे आन्तरीय पटल में रहने वाली नाडी सेलो से निकलते है ये तार केन्द्रगामी और सावेदनिक है तथा इकट्ठे होकर चाक्षुप बिम्ब से मध्य और बाह्य पटलो में से होकर बाहर निकलते है। दृष्टि नाडी में पचास के लगभग तार होते है ऐसा वैज्ञानिको का अनुमान है। अक्षिखात के पिछले भाग से दृष्टि छिद्र में होकर यह नाडी कपाल के भीतर पहुंचती है। मस्तिष्क के अधोभाग में तथा जतूकास्थि के गात्र के ऊपर एक तरफ की दृष्टि नाडी दूसरी तरफ की दृष्टि नाडी से जा मिलती है। दोनो नाडियो के मिलने से जो चीज बनती है उसे दृष्टि नाडी योजिका Optic chiasma कहते है। यहां पर एक तरफ की नाड़ी के कुछ तार मध्य रेखा को पार करके दूसरी तरफ चले जाते है। दृष्टि नाडी योजिका से दृष्टि पथका आरम्भ होती है। हर एक दृष्टि पथ में दोनों चक्षुओं के थोडे २ तार होते हैं दृष्टि पथ वृहत मस्तिष्क में घुस जाते हैं और उनके तारों का दृष्टि केन्द्रो Visioncentre मे अन्त हो जाता है।

दृष्टि

प्रकाश की किरणे कनीनिका के ऊपर गिरती हैं, और उसके रास्ते आख के भीतर प्रवेश करती हैं, जलीय रस, तारा ताल और बृहत्कोष्ठ में रहने वाले स्वच्छ द्रव्य में होकर फिर वे दृष्टि पटल पर गिरती हैं। इस पटल पर वस्तु का प्रतिबिम्ब बनता है, यह प्रतिबिम्ब उल्टा होता है जैसा कि छायाचित्र के यन्त्र में होता है। प्रकाश की किरणो से दृष्टि पटल की सेलो में एक विचित्र रसायनिक प्रक्रिया होती है, इस क्रिया का प्रभाव दृष्टि नाडी द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है और हमको रग आकार इत्यादि का ज्ञान होता है।

जब साफ प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर पडता है तब चीजे साफ २ दिखाई पड़ती हैं किन्तु जब किसी कारण प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर नही पडता तो चीजें साफ दिखलाई नही पडतीं। प्रतिबिम्ब को ठीक दृष्टि पटल पर बनाने के लिये ताल का अन्ततोदरत्व आवश्यकतानुसार कम या अधिक होता रहता है। २० फुट या इसके कुछ दूरी पर जो चीजें है। उनका प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर पड़ता है, इसके लिये ताल का अन्तोतदरत्य न घटता है, न बढ़ता, और न तारामडल के मांस को ही सकुचित करना पडता है। किन्तु जितनी चीजें आंख से २० फुट से कम दूरीं पर है उसका प्रतिबिम्ब ताल

का आकार स्थिर रहते हुये दृष्टि पटल पर नहीं पडता, इस कारण २० फुट से कम दूरी की चीजो को देखने के लिये लिए ताल का अन्ततोदरत्व अधिक करना पडता है यह काम उपतारानु मडल के मांस के सकच से होता है। सामान्यत हम ८-६ इञ्च से ज्यादा नजदीक की चीजो को साफ २ देख सकते, क्योकि ताल का अन्ततोदरत्व इतना नही रह सकता जिससे इन चीजो का प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर पड़ सके।

कुछ मनुष्यो के अक्षिगोलक की बनावट ही ऐसी होती है, जिससे २० फुट या इससे अधिक दूरी की चीजो का प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर नही पडता, जिससे यह चीजें या तो दिखाई नही पड़ती या धुधली दिखातीहै। इस रोग को निकट दृष्टि कहते है। यह रो। कमर झुकाकर पढ़ने, काम करने, पुस्तक को आंखो के पास लाकर पढ़ने वगैरह से होता है। किसी को पास की चीजें साफ नही दिखाती। अपितु दूर की साफ दिखाती हैं इसको दूर दृष्टि रोग कहते है।

सब माध्यमो के स्वच्छ रहने तक आखे ठीक रहती है। यदि कनीनिका ताल जलीयद्रव्य और ताल के पीछे रहने वाले द्रव्य मे से किसी में अस्वच्छता आजाती है। तो दृष्टि मे फर्क आजाता है। जब रोहो की रगड़ से कनीनिका धुधली हो जाती हैं, या जख्मो के परिणाम से उसमें श्वेत अस्वच्छ तिल बन जाते है। तो प्रकाश ठीक तौर से नहीं जापाता, दृष्टिपटल, मध्यपटल, दृष्टि नाड़ी और दृष्टि केन्द्र के रोगो से भी नजर में खराबी आ जाती है। किसी चीज पर नजर गढ़ा के काम करके बराबर नजदीकी चीजो से काम लेने से भी प्रकाश नही रहता।

नेत्र चालिनी पेशियां

अस्थि गोलिक को इधर उधर घुमाने के लिये उसमे ६ पेशियां लगी हुई हैं ये पेशियां अक्षि गुहा के पिछले भाग से आरम्भ होती है, और दृष्टि पटल से लगी रहती हैं इसमें चार पेशियां सीधी है और दो तिरछी, इनके नाम इस तरह है।

(१) सरलोर्ध्व नेत्र चालिनी।
(२) सरलाधो नेत्र चालिनी।
(३) सरलान्त नेत्र चालिनी।
(४) सरल बहिर्नेत्र चालिनी।
(५) वक्रोर्ध्व नेत्र चालिनी।
(६) वक्राधो नेत्र चालिनी।

इन पेशियो के संकोच से आंख चारो ओर अच्छी तरह घूम सकती है। कभी २ पेशियो के ठीक २ सकोच करने से या उनके पक्षाघात ग्रस्त होने से दोनो आंखे साथ २ नहीं घूमती इसे भैंगापन कहते है, यह वक्रदृष्टि रोग है।

पलक *Eyelio*

ऊपर नीचे के हिसाब से प्रत्येक आंख में दो पलकें होती है। पलक के बाहरी पृष्ठ पर त्वचा और भीतरी पृष्ठ पर बलगमी झिल्ली होती है। और इन दोनो के बीच सौत्रिक तन्तु से बनी हुई मोटी और मुडी हुई पलक होती है। जिसके कारण पलक स्थिर रहती है। त्वचा और पलक के बीच नेत्र निमीलनी पेशी का कुछ भाग रहता है। इस पेशी के सकोच से पलक झपकते तथा बद रहते हैं, बलगमी झिल्ली पतली होती है और रस केशिकाओ के कारण उसके रग में कुछ लाली रहती है। अर्द्ध नेत्र च्छद में नेत्र पलक के ऊपर के किनारे से एक विशेष पेशी की कडरा लगी रहती है इसको अर्द्ध नेत्रोत्थापिका कहते है। और यह अक्षिवात के उसी भागसे आरम्भ होती है। जहां से और ६ पेशियां शुरू होती हैं, यह पेशी का काम पलक को ऊपर उठाना है अधो-

नेत्रच्छद में ऐसी कोई पेशी नहीं होती दोनों पलको में नेत्र फलक और श्लेष्मक कला के बीच में पतली और लम्बी नल के आकार की ग्रन्थियां रहती हैं ऊपर के पलक में इनकी संख्या ३० के करीब है। नीचे के पलक में कुछ कम पलक उलटने से यह ग्रन्थियां श्लेष्मिक कला में से चमकती हुई सफेद धारियां जैसी :दिखाती हैं। पलको के किनारे पर बाल होते हैं इन्हे अक्षि पक्ष्म Eyecosh कहते हैं। इन बालो की जड़ो में कुछ चिकनी वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियां लगी रहती हैं जिनके प्रदाहको गोहाई कहतेहैं। अर्द्ध नेत्रच्छद में बालो की पंक्ति के पीछे और अधोनेत्रच्छद मे पंक्ति के आगे छोटे २ छिद्रों की एक पंक्ति भी दिखाई पड़तीहै, ये बलगमी कला और नेत्र फलक के बीच में रहने वाली ग्रन्थियो के मुंह हैं कभी कभी विकारो के कारण इन ग्रन्थियो में एक चेपदार वस्तु बनने लगती है जिससे बाल चिपक जाते हैं। और कभी २ रसौली पैदा हो जाती है।

पलक की संधि स्थान को अपाग कहते हैं। नाक की तरफ वाले अपांग में दोनो पलको के सन्मुख किनारे पर दो छोटे उभार होते है जिन्हे अश्रु अंकुर कहते हैं अश्रु अंकुर के शिखर पर अश्रु छिद्र होता है। अपांग में लाल २ पिंड भी दिखाता है, जिसमें नन्हे २ बाल और कुछ ग्रंथियां भी होती हैं।

आंख की श्लेष्मिक कला

यह दोनो पलकों के भीतरी पृष्ठो पर तथा अक्षि गोलक के अगले भाग पर लगी रहती है। जिस स्थान पर यह झिल्ली पलकको छोडकर अक्षि गोलक पर आता है वहां एक कोण बनता है। जो ऊपर नीचे के हिसाब से दो भागो में विभक्त है। कनीनिका के पृष्ठ पर इस झिल्ली की सब तहे नहीं होती। केवल सेलो की तहे ही रहती हैं। सौत्रिक तन्तु और रक्त केशिकाएं नहीं रहती।

श्लेष्मिक कला बाह्य पटल से दृढ़ नहीं चिपटी रहती है यह उठाई भी जा सकती है। इस कला में प्रदाह होना ही आंख का दुखना होना है। पलको की झिल्ली में कभी २ नन्हे २ दाने बन जाया करते हैं। यह रोहो का रोग है।

अश्रुग्रन्थि *Locrimalgland*

यह ग्रन्थि बादाम के बराबर होती है। नेत्र गुहा की छत में कनपटी की तरफ एक गढ़ा होता है। जिसे अश्रुग्रन्थि खात कहते हैं। अश्रुग्रन्थि इसी खात में रहती है। ग्रन्थि और अक्षिगोलक के बीच में आंख की दो पेशिया रहती हैं। ग्रन्थि के नीचे पृष्ठ का कुछ भाग श्लेष्मिक कला के ऊपर कोण में खुलती है।

इस ग्रन्थि में जो रस बनता है। उसको आंसू कहते हैं। यह एक स्वच्छ जलीय रस है, जो स्वाद में नमकीन होता है इसका काम पलको और अक्षिगोलक के सन्मुख पृष्ठो को तर रखना है। साधारणत यह रस इतना ही बनता है। जिससे कुछ तरावट रहे क्यो नमी का हरदम वाष्पी भवन होता रहता है।

आंखों के रोग

(१) धूप में चलकर या आग में तपकर ठंडे पानी से नहाने से या सर पर ठंडा पानी डालने से।

(२) दूर की चीज को ज्यादा गौर से बहुत देर तक देखने से।

(३) दिन में सोने और रात में जागने से।

(४) ज्यादा सोने से, अधिक क्रोध, शोक और क्लेश करने से।

(५) चोट लगने से मिट्टी गिर पड़ने, पानी घुस जाने आदि से।

(६) ज्यादा मैथुन करने से।

(७) सिरका, कांजी, खटाई, कुलथी और उड़द के अधिक खाने से।

(८) मल, मूत्र, वीर्य आदि के रोगो को रोकने से।

(९) ज्यादा पसीना लेने, अधिक धूल में दौड़ने या लेटने और धूप में अधिक फिरने से।

(१०) होती हुई कै को रोकनेसे और ज्यादा कै करने व होने से।

(११) निकलते हुये आंसुओ को रोकने से किसी गैस के आंखों में जाने से।

(१२) बहुत बारीक चीज को देखने से इन कारणो से आंखो में रोग होते हैं। आयुर्वेद में सूत्र रूप से यही बतलाया है किंतु आजकल खोज से मालूम हुआ कि और भी कुछ कारण ऐसे है जिनसे कि आंखों में रोग हो जाते हैं। वे कारण ये हैं—

(१३) सूजाक या गर्मी की पीव आंखो में लग जाने से निस्संदेह आंखो में रोग पैदा हो जाते हैं, इससे तो आंखें अन्धी तक हो जाती हैं कहना नहीं होगा कि गर्मी रोग वाला आदमी असमय में ही दृष्टिहीन हो जाता है।

(१४) चेचक खसरा जैसे पाजी रोगो के होने से भी आंखें बीमार हो जाती हैं।

(१५) सांघातिक रोगो के आक्रमण से भी आंखो को नुकसान पहुँचता है।

(१६) हस्त मैथुन, गुदामैथुन आदि से भी आंखों की शक्ति में खराबी पैदा होती है।

यह भी याद रखने की बात है कि आंखो में रोशनी देने वाला आलोचक पित्त है वही आंखो को प्रकाश प्रदान करता है अगर किसी कारणवश आलोचक पित्त ही खराब हो जाता है तो आंखो का खराब होना तो आवश्यक है। जब रोशनी देने वाला ही आरोग्य नहीं है तो आंखें कैसे आरोग्य रह सकती है? पित्त स्वयं एक दोष है जो शरीर के तीनो दोषों में से एक है। खट्टे, तीखे गरम पदार्थ खाने से पित्त बिगड़ता है फिर वह आंखो में खराबी पैदा करता है। जिन कारणो से पित्त बिगड़ता है; अगर हम उन कारणो का उपयोग करते हैं तो अवश्य आंखें खराब होंगी। केवल पित्त के बिगाड़ने वाले कारण ही आंखो को खराबी इस लिये पहुँचाते हैं कि तीनो दोषों का परस्पर सम्बन्ध है तीनो में पूरा सहयोग है। एक की खराबी का असर फौरन दूसरे तीसरे पर पड़ता है।

आज-कल हमारा, खाना-पीना, रहना-सहना, सब दोषों को बिगाड़ने वाला है। चटपटी मसाले दार चीजों के खाने से पित्त बिगड़ता है। रोज रसगुल्ले खाने से कफ बिगड़ता है, रडीबाजी करने से खून बिगड़ता है। रात दिन सिनेमा और नाटक देखने से आंखों को कमजोर बनना पड़ता है। आंखों में धूल पड़ना एक साधारण बात है, रातदिन मिलों की चिमनियो का धुआं, रेलों के छोटे कोयले आंखों में घुसते रहते हैं। खाने को वेजीटेबिल घी मिलता है और पीने को सोडा-वाटर ऐसी दशा में आंखों में रोगों का होनाकोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। रातदिन कालेजों की पढ़ाई भरीजवानीमें जवानोकी आंखें कमजोर बना देतीहै, शहरो का दूषित वायु मंडल रोज आंखों में शिकायत पैदा करता है। कहना नहीं होगा कि शहरियो की अपेक्षा ग्रामीणों की आंखें अधिक स्वच्छ और आरोग्य रहती है। १५-१६ वर्ष के शहरी छोकरे आंखो पर चश्मा लगाने में अपनी शान समझते हैं, और ७०-७५ वर्षके ग्रामीण बड़े चश्मा लगाने में अपना और अपनी आंखों का और अपनी बहादुरी का अपमान समझते हैंअस्तु

जब किसी भी तरह शारीरिक कारणो से

आगन्तुक कारणो से दोष बिगडकर ऊपर की तरफ जाने लगते हैं और नेत्र से सम्वन्ध रखने वाली शिराओ मे घुस जाते है तो आंखो में रोग पैदा होते है।

गुलाबी आंखें

Pink Eye

पिन्क आई, के मानी है गुलाबी आंखें इसमें आंखे गुलाबी दिखलाई पड़ती है, हलकी पीड़ा भी होती है, यह छूत वाला रोग है, एक की आंखोकी छूत दूसरे की आंखो को रोगिणी बना देती है।

सोजाकी आंख दुखना

Gonorrheal conjunctivitis

सोजाक की छूत जब आंखो पर लग जाती है तो आंखे दुखने लगती है, इसमें हालत बहुत दिन तक ठीक नहीं होती, रह रह के आंखे दुखती है, लाल होजाती हैं, उनमें चमक बहुत चलती है, यह रोग पैतृक भी होता है। सोजाक वाली स्त्री के बच्चे की आखोमें पैदा होनेके समय छूत पड़जाती है, जिससे बेचारे की आंखें दुखने लगती हैं। ऐसी दशा में आखेंखराब भीहोजाती है। जिसकी आंखों में छूत लगती है, उसकी आंखे दुखती हैं चाहे वह कोई ही क्यो न हो।

फिल्कटेनुल

Phlyctenvl

सफेद मडल और कड़े परदे पर जो झिल्ली लगी हुई है इस पर पहिले एक छोटा सा उभार उठता है, फिर वहा एक फुन्सी हो जाती है. इसमें खाज चलती है। आखें लाल हो जाती है, और दर्द होता है, पपोटे भी कुछ सूज जाते है।

आंखों के रोहे

Granular lids

अक्सर नजला होने से निचले पपोटो में रोहे हो जाते हैं, रोहे दो तरह से होते है।

(१) *Thronic granular lids* पुराने रोहे।

(२) *Acute granuler lids* नवीन रोहे

रसोइयो और हलवाइयो की आंखो में अधिक तर यह रोग होता है, इसलिये कि वे रात दिन धुआं के पास रहते हैं मिलो में काम करने वाले कुली भी इसके वहुत शिकार होते हैं सूर्य के देखने, आग के पास बैठने' धूप मे फिरने आदि से, आखो में पानी वहने लगता है, कडक होती है लाली दिखलाई पड़ती है पपोटोकेभीतर सफेद या गुलाबी रग के मस्से दिखलाई पडते हैं।

आंखों की खुश्की

Xeraphtholmia

आख की झिल्ली मे खुश्की होजाती है, पपोटो की ग्रन्थियो मे खुश्की होजाती है, जिससे देखने मे आंखें खुश्क दिखलाई पड़ती हैं, धीरे २ इससे नजर कमजोर हो जाती है।

रक्तबिन्दु

Ecchymosis

आख पर चोट लगने वा जोर की कै होने अधिक खासने, सांस उठने, चिल्लाने, रोने आदि से और हृदय में कोई रोग होने से नेत्र की ऊपरी झिल्ली की नीचे की कोई शिरा फट जाती है जिसमें थोड़ा सा खून निकलकर लाल बिन्दु सा बनजाता है। कभी पुतली के सफेद भाग मे भी बहुत से धव्वे हो जाते है. चोट लगने से हलका दर्द भी होता है।

नाखूना

Pterygium

आख में धूल के कण गिरने, उसके दुखने आदि से आंख की झिल्ली पर तीन कोने या दो कोने का एक पर्दा सा खिंचा दिखाई पड़ने लगता

है। यह पर्दा सा कभी इतना फैल जाता है कि सारी सफेदी उससे ढक जाती है जिससे नजर में खराबी पैदा हो जाती है। पर्दे की जड़ नाक की तरफ होता है और नोक पुतली की तरफ।

अन्धेरे का अन्धापन

Hemeralopia

यह रोग कफ विदग्ध दृष्टि में सामिल हो सकता है, इसमें अंधेरा होने पर कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता, उजाले में सब कुछ दिखाई देता है।

अन्धापन

AMoniasis

यह लिंगनाश रोग है, नशीली चीजों के सेवन करने से गुर्दे के सूजने, गर्मी केउपद्रवहोने, कब्ज रहने, मासिक-धर्म के रुकने, जहर खाने आदि कारणों से नजर धीरे २ या एकदम जाती रहती है, शुरू में धुंधला पन दिखलाई देता है। बाद में धीरे २ आंखो का सफाया होजाता है।

धुन्ध छाना

Amblyopea

बीड़ी सिगरेट पीने, कोनीन खाने, रंडी बाजी करने, शराब पीने, हिस्टीरिया होने आदि कारणो से नजर धीरे २ कम होने लगती हैं, आँखो के आगे धुंधला पन रहने लगता है किसी भी चीज का स्पष्ट रूप दिखलाई नहीं देता, हरे- लाल, पीले आदि रंगो की पहिचान नहीं रहती, प्रातः साय कुछ २ साफ दिखाई देता है।

नजर की खराबी

Asticmotism

इसमें एक आंख से ठीक दिखाई पड़ता है दूसरी से कम कभी एक आंख में थोड़ी खराबी होती है। और दूसरी में अधिक, कभी एक आंख ठीक २ देखती है और दूसरी से अधिक दिखाई पड़ता है।

कम दिखाई देना

Presbiapia

इसके असली मानी तो है बुढ़ापे की नजर मगर ऐसी नजर जवानी में भी हो जाती है। रात दिन बिजली की रोशनी में काम करने, किरासिन के तैल की रोशनी में पढ़ने, अधिक संभोग करने आदि से ३०-४५ वर्ष की अवस्था के कुछ पीछे कम दिखाई देने लगता है। अक्षर पास में रहने से ठीक नहीं दीखते, कुछ दूर रहने पर दिखाई पड़ते है, धीरे २ नजर और भी कम होने लगती है। अगर इसे बुढ़ापे की आंखों की कमजोरी कहे तो ठीक नहीं ग्रामीण बुड्ढे मरते दम तक ७०-७५ बर्ष की अवस्था में भी साफ २ देखते हैं और बहुत से नौजवान भी साधारण रोशनी में किताब नहीं पढ़ सकते।

समीपदृष्टि

Myopia

इसमें पास की चीजें दिखलाई पड़ती है, दूर की ठीक नहीं। इसके दो भेद हैं—

(1) *Simple myopia* (साधारण)
(2) *Grose* „ (कठिन)

बारीक अक्षरो के पढ़ने, कम रोशनी में पढ़ने आदि से यह हालत हो जाती है।

आंखों के आगे कण से उड़ना

Musee volitantes

कमजोरी, पुराने अजीर्ण, हस्त मैथुन आदि से आंखो के आगे छोटे छोटे मच्छरो के जैसे सफेद या काले कण से उड़ते दिखलाई पड़ने लगते है।

आंख पर पर्दा छाना

Vascalar keratitis

रोहो के पुराने होने, सफेद हिस्से पर खरावी होने आदि से शुक्ल मडल (सफेद हिस्सा) धुंधला हो जाता है। ऐसा मालूम होता है जैसे उसके ऊपर कोई पदार्थ लगा दिया है। उसकी सतह भी खरदरी हो जाती है, आंख मे लाली हो जातो है, दर्द होता है; और चौंध लगती है।

भेंगापन

Straleismus

यह रोग अक्सर वचपन में ही हो जाता है। दांत निकलने, कमजोरी, आंख की कमजोरी, आंख की नसो को लकवा मारने आदि कारणो से आदमी भेंगा देखने लगता है।

आंख में जाला पड़ना

Opocity of the carnia

सफेद मडल में घाव हो जाने के वाद दाग रह जाने से आंख में सफेदी पड़ जाती है, अगर यह सफेदी पतली होतीहै तो इसे जाला Nebula कहते है। सफेदी के गहरे होने पर फुल्ली Mecula कहते है, जव सफेदी गहरी मोटी होती है तो टेंट Leucoma कहते है।

आंख दुखना

Conjunctivatis

जुकाम, नजला होने, आख में कुछ गिर पड़ने, तेज धूप मे फिरने आदि से आखे दुखनी आजाती है। पपोटो के भीतर की झिल्ली तथा ढेले के ऊपर की झिल्ली और पपोटे सूज जाते हैं। आंखे भारी और लाल हो जाती हैं। कड़क और जलन होती है, चुभन होती है दर्द होता है सोने पर पलके चिपक जाती है, और विना धोए खुल नही सकती।

आंख पर चोट लगना

Cantusion af the Eyes

चोट लगने से भवो और पपोटो पर जख्म हो जाता है, कभी आंख की रोशनी भी जाती रहती है।

आंख में कुछ पड़ जाना

Foreing body in the Eyes

रेत, कंकड़, कांच का टुकड़ा, कोयला आदि चीजे आंख में गिरकर पलको या शुक्ल मंडल में चिपक जाती हैं, जिससे आंख में खराश हो जाती है, और आंसू वहुत वहने लगते हैं, आखें ठीक तौर से खुलती भी नहीं।

आयुर्वेद के मत से आंखों के ७८ रोग

ऊपर हमने आंख के कुछ रोगो का जिक्र किया है, किन्तु आंख के रोगों की कुल संख्या वहुत अधिक है। एलोपैथी में अभी तक कोई निश्चित सख्या नही है एक खास लक्षण के अनुसार ही रोग का नामकरण कर दिया जाता है, इससे कोई निश्चय होना मुश्किल हो जाता है। गुलावी आखों को [Pink Eye) कह तो दिया किंतु आंखे गुलावी रंग की कई अवस्था मे हो जाती है, केवल मात्र उनका गुलावी रंग होने से ही तो रोग नाम (Pink Eye) कह देना युक्तियुक्त नही हो सकता, एक साधारण लक्षण के अनुसार ही रोग की कल्पना करने में कितना लम्बा खाता हो जायगा यह सहज ही समझा जा सकता है। आयुर्वेद में आंखों के ७८ रोग वतलाये है—

आखो के रोगो का जैसा सरल और विस्तृत वर्णन आयुर्वेद में है। वैसा न ऐलोपैथी में है न हिकमत मे उपर्युक्त तथ्य समझकर हम उन ७८ रोगों का उल्लेख यहां पर कर देना चाहते है।

दृष्टि क्या है

दृष्टिको बोल चाल की भाषा में नजर कहदेते हैं दृष्टि से आंखों का मतलव नहीं निकलता और न पलक और भ्रकुटियो का ही निकलता है। काले ढेले के मंडल के ठीक वीच में हमें एक चीज दिखाई पड़ती है। जो चमकने वाली है वह कभी पटवीजने की तरह चमकती है। कभी अग्नि के प्रकाश की तरह उद्दीप्त होती है वह चमकने वाली चीज ही दृष्टि है। इसी के द्वारा हम देखते हैं। सारी आंख ठीक रहे और यह खराव हो जाय तो हम कोशिश करके भी नहीं देख सकते दृष्टि को हरएक देख सकता है काले ढेले के बीच में हमें यह चमकती हुई दिखाई देगी और उसमें हमे अपना प्रतिविम्व भी दिखलाई पड़ेगा दृष्टि मसूर की दाल की तरह गोलरूप होती है। इसके वाहर रस और खून की भिल्ली है यह स्वच्छ पंचभूतो से बनती है चिरस्थाई तेजी के द्वारा इसका निर्माण होता है।

आंखों के रोगोंकी संख्या

नेत्र संधियों के रोग	६
नेत्र वर्त्म के रोग	२३
सफेद हिस्से के रोग	११
काले घेरे के रोग	४
समस्त नेत्र के रोग	१७
दृष्टि के रोग	१२
वाहरी रोग	२
	७८

आंखों के चार पर्दे

हर एक आंख में चार पर्दे होते हैं—

१—भीतरी पर्दा है जो हड्डियो के आश्रित है

२—यह पहले पर्दे से इधर मेद के आश्रित है

३—यह दूसरे पर्दे से इधर मांस के आश्रित है

४—यह सव से बाहिरी पर्दा है, जो दिखाई भी पड़ता है यह रस और खून के आश्रित है।

इन चारो पर्दो में खरावी हो जाती है, एक साथ भी और अलग २ समय में भी किंतु प्रायः एक साथ वहुत कम होती है। पर्दों में खरावी होती है, किसी विगड़े हुये दोष के वहां आने से, पहिले भीतरी पर्दे पर अगर दोष सवारी गांठता है तो दूसरे फिट होतेहैं और बाहरी चौथे पर दोष पड़ता है तो दूसरे फिट इसी तरह तीसरे और चौथे के विषयमें भी समझना चाहिये। अवचारो पर्दो की खरावी के चिन्ह भी देखिये।

आयुर्वेद के मत से दृष्टि के ४ पटल यानी पर्दे हैं, यह हम पहले वतला चुके हैं।

पहिले पर्दे की खरावी

खरावी से मतलव उस अवस्थासे है जव कोई विगड़ा हुआ दोष पर्दे में जाकर अनुचित कार्यवाई करता है। जब कोई सा दोप पहिले पर्दे में बिगड़ता है तो कोई भी चीज साफ नहीं दिखलाई देती है।

दूसरे पर्दे की खरावी

खराव दोष जव दूसरे पर्दे में आता है तो दृष्टि विह्वल हो जाती है, भ्रमित हो जाती है। कई फालतू चीजें दिखाई देने लगती है। विना जानवरो के ही उसे जानवर दिखाई देते लगते हैं। मक्खी यद्यपि उस आदमी के कपड़ो पर नहीं वैठी है फिर भी वह समझता है कि मक्खी वैठी हुई है। आकाश में पक्षी उड़ते दिखलाई पड़ते हैं। पानी वरसता हुआ दिखाता है और न जाने क्या क्या दिखलाई देता है। दूर की चीज पास दिखलाई देती है और पास की दूर। बहुत कोशिश करने पर भी सुई का छिद्र दिखलाई नहीं देता।

तीसरे पर्दे की खरावी

तीसरे पर्दे में जब खराब दोष आता है तो

ऊपर की चीजें दिखलाई देती हैं, नीचे की नहीं, निचले हिस्से में जब दोष होता है तो पास की चीज दिखलाई नहीं देती है, दूर की दिखलाई देती है, ऊपरी हिस्से में होने पर इसके विपरीत होताहै। दृष्टि के बीच में जब दोष होता है तो एक चांद दो दिखलाई पड़ते हैं। दो चीज तीन दिखलाई पड़ते हैं। एक संख्या बढ़ती जाती है दोष अगर एक जगह स्थित नहीं होता है, तो कई तरह के रूप दिखलाई पड़ते हैं। आदमी का मुंह गधे जैसा दिखलाई पड़ता है, आदि।

चौथे पर्दे की खराबी

यह आंख का सब से बाहरी पर्दा है। इसमें तिमिर नामक रोग होता है, जिससे दृष्टि का नाश हो जाता है। तिमिर के माने अंधेरी शुरू २ में आदमी चमकती हुई चीजोंको देख सकता है बाद में धीरे २ चन्द्र सूर्य भी नहीं दिखलाई पड़ते। इसको नीलिका और कांच भी कहते हैं।

नेत्रसन्धि के ९ रोग

१—पूयालस पकने वाली सूजन

नाक के पास की सन्धि में सूजन हो जाती है यह कभी छोटी होती है कभी बड़ी। मवाद की मात्रा के अनुसार वह जल्दी या देर में पकती है. पककर फूटने पर बदबूदार गाढी पीब निकलतीहै

२—उपनाह खाजदार गांठ

यह एक गांठ होती है जो न छोटी होती है न बड़ी, बीच के दर्जे की होती है, यह न पकती है और न इसमें कुछ दर्द होता है, केवल खाज चलती रहती है।

३—पर्वणी फुन्सी

यह एक फुन्सी होती है, जो तांबे के रंग जैसी और छोटी होती है, इसमें जलन होती है, और कांटे से भी चुभते हैं। इसके चारो तरफ फैली हुई सूजन भी हो जातीहै। यह खून से पैदा होती है। गोल सूजन वाली और पकने वाली होती है।

४—अलजी फुन्सी

काले और शुक्ल भाग की सन्धिमें यह फुन्सी होती है इसके आस पास लाल और सफेद फुन्सी हो जाती हैं।

५—कृमि ग्रन्थि

वर्त्म और पक्ष्म की सन्धि में तथा वर्त्म और शुक्ल की सन्धि में कई तरह के कीड़े गांठ पैदा करते हैं।

६—सन्धिगत पित्तस्राव

ठीक सन्धि के बीच से पित्त के कारण स्राव होता है, स्राव पानी जैसा पीला नीला होता है। छूने से यह गर्म होता है।

७—सन्धिगत कफ स्राव

कफ के कारण जब स्राव होता है तो यह सफेद गाढ़ा, मैला और दर्द रहित होता है।

८—सधिगत रक्तस्राव

खून के कारण जब स्राव होता है तो उसमें लाली रहती है और वह गरम होती है और बहुत श्राव होता है।

९—पूयस्राव

सधि में पकाव होकर सफेद, पीली, नीली पीब झरने लगती है।

वर्त्मगत २३ रोग

जिसे हम कोया कहते हैं वही वर्त्म है

१—उत्सगिनी फुन्सी

यह फुन्सी नीचे के कोये में होती है। यह बाहर की तरफ उभरी हुई होती है और इसका मुंह भीतर की तरफ होता है, इसके आस पास में ऐसी ही और फुन्सियां हो जाती हैं।

२—कुम्भिका फुन्सी

यह फुन्सी कोये और पलकों के बीचमें होती

है देखने में यह कुम्भेर के वीज जैसी मालूम होती है, इसके फूटने पर सूजन हो जाती है।

३–पोथिका फुन्सी

लाल सरसो के वरावर यह फुन्सियां होती हैं, जिनमें खाज चलती है। और पीड़ा भी होती है, इनसे स्राव भी होता है।

४–वर्त्म शर्करा

कोये के भीतर छोटी २ खरदरी और गहरी बहुत सी फुन्सियां हो जाती है।

५–अर्शोवर्त्म (मस्से)

ये कोये के मस्से हैं जो छूने में खरदरे और छोटे २ होते हैं।

६–शुष्कार्श (सूखे मस्से)

मस्से जब एकीभूत होकर कड़े और खरदरे हो जाते हैं तो उसे शुष्कार्श कहते हैं। मतलब यह है कि मस्से एक होकर अलग २ नही एक ही दिखलाई देता हैं।

७–अञ्जन नामिका

कोये में तांवे के रंग की छोटी फुन्सी होती है इसमें जलन होती है और टीस चलती है, दर्द कम होता है। इसे गुहेरी कहते हैं।

८–वहलवर्त्म

कोये के चारो तरफ एक ही रंग की एक ही साइज की फुन्सियां वहुत हो जाती हैं।

९–वर्त्मवन्ध (खाजदार सूजन)

कोये के ऊपर सूजन हो जाती है जिसमें खाज चलती है और हलकी पीड़ा होती है इससे कोया आंख को ढक नही सकता।

१०–क्लिष्टवर्त्म

सहसा ही कोया सुर्ख हो जाता है, उसमें थोड़ी पीड़ा होने लगती है।

११–वर्त्मकर्दम

सहसा कोया जब सुर्ख हो जाताहै और उसमें हलकी पीड़ा होने लगती है जब उसमें पित्त मिल जाता है और वहां का खून जल जाता है तो आंख में कीचड़ पैदा हो जाता है।

१२–श्याववर्त्म

कोया वाहर भीतर से काला पड़ जाता है। सूज जाता है, जलन भी होती है, दर्द भी होता है और उसमें खाज भी चलती है। कोया गीला भी रहने लगता है।

१३–प्रक्लिन्न

कोये के वाहिरी तरफ दर्द रहित सूजन हो जाती है, अन्दर से कोया नीला रहने लगता है, पानी सा टपकने लगता है, खाज चलती है और चुभन होती है।

१४–वाताहत वर्त्म

वादी के दवाव से कोये की सन्धि बिगड़ जाती है, वह ठीक अपनी कार्यवाही नहीं कर सकता, ठीकतौर से खुलता मिचता नहीं है। कभी दर्द जोरो से होता है, कभी एकदम नहीं।

१५–वर्त्मार्वुद (गांठ)

कोये के भीतर छोटी या वड़ी किसी भी तरह कीगांठ पड़ जातीहै, उसमें दर्द नहीं होता किंतु वह लाल होती है।

१६–निमिष

कोयो को खोलने मीचने वाली नसो में जब वायु घुस जाती है तो खुलन-मींचन का खेल होने लगता है, कोये जल्दी खुलते हैं और जल्दी ही मिचते है।

१७–शोणितार्श (खूनी मस्से)

छोटे २ मस्से कोयो में हो जाते हैं, जो वार २ काट देने पर भी वढ़ते ही रहते हैं। इनमें खाज चलती है जलन होती है और वेदना भी होती है

१८–लगण गांठ

कोये के भीतर छोटे वेर के वरावर गांठ पड़ जाती है, जो न पकती है न दर्द करती है यह कड़ी और खाजदार जरूर होती है।

१६-बिसवर्त्म

कोया सूज जाता है और भीतर छोटे २ छेद हो जाते हैं।

२०-पक्ष्म कोप

दोषों के कारण पलकें तीखी, खुरदरी और नोकदार हो जाती हैं, जिससे आंखों में घुसती और पीड़ा देती है।

२१-अक्लिष्ट वर्त्म

बार २ धोने पर भी कोये चिपकते रहते हैं।

२२-कुञ्चन

कोई सा दोष जब कोये में आ जाता है तो कोये सिकुड़ जाते हैं जिससे आंखे मिची रहती हैं।

२३-पक्ष्मशात

खराब पित्त जब पलकों की जड में आता है तो खाज चलती है जलन होती है और पलकें गलकर गिर जाती हैं। यही वक्षनी है।

सफेद हिस्से के ११ रोग

आंख के सफेद हिस्से यानी शुक्ल भाग में ११ रोग हैं यह बतला चुके हैं।

१-प्रस्तार्यर्म

यह एक गांठ सी होती है जो आख के सफेद हिस्से में होती है यह फैलती और पतली होती है देखने में यह लाल नोली मालूम पड़ती है।

२-शुक्लार्म

यह भी सफेद रंग की एक गांठ होती है, जो नर्म और बहुत सी धीरे २ बढ़ने वाली है।

३-लोहितार्म

आंख के दबने, चोट लगने आदि से आख के सफेद हिस्से में लाल कमल जैसा मांस इकट्ठा हो जाता है।

४-अधि मांसार्म

यह भी एक मांस का इकट्ठा होनाहै. यह मास देखने में श्याम रग का होता है और यह फैला हुआ होता है।

५-स्नायवर्म

किसी तरह जब स्नायु फूल जाती है तो सफेद हिस्से में मांस सा पदार्थ इकट्ठा हो जाता है, छूने में यह खुरदरा होता है, देखने में कुछ पीलापन लिये सफेद होता है यह फूलता भी रहता है।

६-शुक्तिकार्म

सफेद हिस्से में छोटी २ काली बूंदे दिखाई देने लगती हैं या सीप की जैसी एक ही बूंद दिखाई देने लगती है।

७-अर्जुन

खरगोश के खून जैसी लाल बूंद आंख में पैदा हो जाती है।

८ पिष्टक

यह एक पिट्टू होता है, जो उभरा हुआ बुलबुला जैसा सफेद होता है।

६-शिराजाल

यह एक लाल निशान होता है, जो देखने में कड़ी शिराओं का जाल सा होता है।

१०-शिरापीड़िका

काले हिस्से के पास सफेद हिस्से में यह एक सफेद फुन्सी है, जिसके चारो तरफ शिराओं का जाल फैला हुआ रहता है।

११-बलास ग्रथित

यह एक निशान होता है जो देखने में कांजी के रंग जैसा होता है इसमें दर्द नही होता है।

काले हिस्से के ४ रोग

१-सव्रण फूला

आंख की काली पुतली में जब फूला पड़जाता है तो गरम २ आंसू निकलने लगते हैं, देखने में वह सुई से छिदा हुआ मालूम होता है इसमें दर्द भी बहुत होता है।

२-अव्रण फूला

इसमें आंसू नही बहते, न दर्द ही होता है यह फूला इधर उधर चलता फिरता रहता है।

३—पाकात्यय

काली पुतली सफेद हो जाती है और उनमें दर्द भी जोरो से होता है।

४—अजकाजात

ठीक काली पुतली को चीर कर, बकरी की मेंगनी जैसा, गाढ़े खून से मिला हुआ पदार्थ पैदा होता है, इसमें दर्द भी होता है। इसे टेंट कहते हैं

समस्त नेत्र के १७ रोग-

१—वादी से पानी वहना (आख आना)

वादीके कारण जब आँखों से पानी वहने लगता है तो उसे वातज अभिष्यन्द कहते है। यह पानी नही है, किन्तु आंख का रासायनिक रस है, जिसके बराबर निकलते रहने से आंखो में दूसरी खराबियां पैदा होजाती हैं। चमका, अकड़ाव, रगड़न, कड़ापन. सूखापन ठंडे आंसू निकलना और शिर में दर्द वादी के कारण ये चिन्ह होते हैं।

२—पित्त से पानी वहना

जलन, पकाव, ठंड की इच्छा' आंखों में धुआं सा उठना आंसू खूब बहना और उनका गरम होना आंखो में पीलापन ये चिन्ह होते हैं।

३—कफ से पानी बहना

जब कफ के कारण आंखो से पानी बहता है तो आंखो को गर्मी अच्छी लगती है। आंखो में भारीपन रहता है, सूजन भी हो जाती है खाज चलने लगती है कीचड़ बहुत आता है, आंखें सफेद और ठडी मालूम पड़ती है।

४—खून से पानी बहना

खून के कारण तामे के रंग जैसा पानी बहता है, आंखें लाल हो जाती है' देखने से उनमें लाल रेखा मालूम पड़ती है। जलन, पकाव, ठड की इच्छा, धूआं सा उड़ना, आंसुओ का अधिक और गरम निकलना ये चिन्ह होते हैं।

५—वादी का धूआं (अधिमंथ)

जब उपरोक्त रोगो का उपचार नहीं होता तो धूआं पैदा होता है, धूयें के मानी हैं-आधे सर और आंखो में चमक मारना। आंखें मानों बिंधी सी जाती है।

वादी के धूयें में—

आंखें जैसे उपाड़ी जाती हैं, मथी सी जाती है आंखो में रगड़ सा चलता है, चमक चलती है, भेदन होता है, और मालूम होता है, मानों मांस इकट्ठा हो रहा है। आंखें मैली हो जाती हैं, आधे सर में दर्द होता है।

६—पित्त का धूआं (अधिमंथ)

देखने से आंखो में लाल रेखाएं मालूम पड़ती है, आंसू बहते है; आग सी जलती है आंखें ऐसी होती हैं, मानों तेजाब से जलाई हुई हों। आसपास में सूजन हो जाती है, पकाव होता है, पसीना आता है, कुछ पीलापन रहता है. सर में जोर से दर्द होता है कभी २ बेहोशी भी हो जाती है।

७—कफ का धुआं

सोजा हो जाता है, स्राव बहुत होता है. खाज चलती है, देखना मुश्किल हो जाता है, आंखों में मानो मिट्टी भर गई है, मैलापन हो जाता है, सर में दर्द होता है, नाक में धोंकनी लगी रहती है।

८—खून का धुआं

आंखो के सामने अंधेरी सी आती है, आंखों का रग दुपहरिया के फूल जैसा लाल हो जाता है, छूने से असाध्य दर्द होता है, चमक होतीहै चारों तरफ आग जलती हुई दिखलाई पड़ती है। आंसुओ मे खून भी मिला रहताहै, काली पुतलियो में भी खून की झलक दिखलाई पड़ती है।

नोट—धुआं चलने पर भी अगर योग्य उपचार करने के बदले ऊटपटांग खाया जाता है आंखो से वेशी काम लिया जाता है या और कुछ

खराबी की जाती है तो आंखो से हाथ धो लेना पड़ता है। कफ के धुयें में ७ दिन में आखें नष्ट होती हैं, खून के धुयें में ५ दिन में वायु के धुयें में ६ दिन में पित्त का धुआं इससे भी जल्दी आंखो को खराब कर डालता है।

९—आंखो का पकना दुखना

आंखें सूज जाती हैं, पक जाती है, जलती हैं उनमें चसक चलती है. दर्द होता है, पित्त आता है चिपके आंसू बहते है रग तांबे जैसा हो जाता है। देखने में गूलर के फल जैसे दिखलाई पड़ती है। उसे शोथ पाक कहते हैं।

१०—उपरोक्त सब चिन्ह होते,हैं, किन्तु पलकें और आंखें सूजती नहीं। यह अशोथ पाक है।

११—बादी का इधर उधर फिरना

बिगड़ा हुआ वायु कभी कोयो की तरफ और कभीं भ्रकुटियो की तरफ और कभी नेत्र मंडल की तरफ इसमें हलकी पीड़ा भी होती है।

१२—आंखो का शुष्क पकाव

कोये रुखे पड़ जाते है साफ दिखाई नही पड़ता आंखें ठीक तौर से खुल नहीं सकती और कुणक सी होती है।

१३—घातक धुआं

इसे हताधिमंथ कहते हैं। इसमें ऐसा होता है कि आंखो की शिराओं के अन्दर वायु घुस जाती है और अपनी २ चालकदमी से दृष्टि को झपाटा मारता है मानो दृष्टि को वाहर निकाल रहा है।

१४—भ्रकुटी और आंखो की वेदना

कनपटी के पीछे कान, शिर ठोड़ी और गरदन की पिछली स्नायु में वायु जव घुसकर खीचा तानी करती है तो भ्रकुटी और आंखोमें दर्द होता है। अलावा इन स्थानो के अगर दूसरे स्थानो में भी वायु उत्पन्न करता है तो उसका दर्द ऊपर भ्रकुटियो और आंखो पर गिरता है।

१५—आंखों की सूजन

ज्यादा खटाई खाने, विदाही पदार्थो के अधिक खाने से दोनो आंखें सूज जाती हैं या एक आंख सूज जाती है। देखने से सुर्ख या नीली झलक दिखलाई पड़ती है।

१६—तांवे के रंग की रेखा होना

इसे शिरोत्पात कहते है। कभी यह रेखा विशेष सुर्ख भी हो जाती है। कभी दर्द होता है, कभी नहीं रेखा का रग तांवे के रग जैसा होताहै।

१७—तांवे की तरह के गाढ़े आंसू झरना

इसे शिरोहर्ष रोग कहते हैं, यह शिरोत्पात की उपेक्षा करने पर होता है। तांवे के रंग के स्वच्छ किंतु गाढ़े आंसू झिरते हैं, देखने में वड़ी दिक्कत होती है।

दृष्टि के १२ रोग

पित्त से दृष्टि का पीला होना

पित्त बिगड़कर जव पर्दो मे आता है तो सव कुछ पीला ही दिखाई देने लगता है। सफेद दूध भी पीला, सफेद कपड़ा भी पीला, ससार की सब चीजें पीली हो जाती है। पित्त पहिले और दूसरे पर्दे में जव तक रहता है तो केवल पीला ही पीला दीखने से पिंड छूट जाता है। किंतु जव वह तीसरे पर्दे में आ जाता है। तो दिन में कुछ दिखाई ही नही पड़ता, रात में उसे सब कुछ दिखाई पड़ता है उस समय आदमी उल्लू बन जाता है।

कफ से दृष्टि का सफेद होना

पहिले दूसरे पर्दे में जब तक विगड़ा हुआ कफ रहता है तो सब चीजे सफेद दिखलाई पड़ती हैं, इतने में ही वला टल जाती है, किन्तु जब वह तीसरे पर्दे में चला जाता है तो रात में कुछ नहीं दिखलाई पड़ता, दिन ही दिन में दिखाई देता है।

धुआं दिखलाई पड़ना

इस रोग को धूमदर्शी कहते हैं। शोक से,

ज्यादा मेहनत से, बुखार से, सर में चोट लगने, ज्यादा धूप में फिरने, सूर्य को देखने आदि से सब चीजें धुएं से आच्छादित दिखलाई पड़ती हैं।

दिन में थोड़ा दीखना

हलकी मात्रामें जब पित्त तीसरे पर्देपर सवारी गांठता है तो दिन में थोड़ा २ दिखाई पड़ता है। बड़ी २ चीजें भी ठीक रूप में नहीं दिखलाई पड़ती है, किन्तु रात में बिलकुल ठीक दिखाई पड़ता है।

नौले की जैसी दृष्टि होना

इसको नकुलान्ध्य' भी कहते हैं। नौले की दृष्टि की तरह दृष्टि चमकने लगती है और दिन में विभिन्न रूप दिखाई पड़ने लगते है।

दृष्टि का वादी से विकृत होना

इसे गम्भीरिका रोग कहते है। वादी के कारण दृष्टि ठीक रूप नही देख सकती, संकुचित होजाती है, भीतर में घुस जाती है और गम्भीर पीड़ा होती है।

कफ का लिंग नाश

लिंग नाश के माने हैं-प्रकाश का उपहत होना कफ के कारण जब प्रकाश में खराबी आती है तो हरएक पदार्थ चिकना, सफेद, गीला, जल जैसा दिखलाई पड़ता है नेत्रो का रंग सफेद होजाता। है

पित्त का लिंग नाश

सूर्य, बिजली, इन्द्र धनुष, जुगनू ये चीजें मोर की पूंछ की तरह नीली, काली विभिन्न रग की दिखलाई पड़ती है। आंखो का रंग पीला हो जाता है।

वायु का लिंग नाश

सब चीजें घूमती हुई दिखलाई पड़ती है, मलिन, गुलाबी और विकृत टेढ़ी मेढ़ी दिखलाई पड़ती है। आंखों का रग लाल होजाता है!

त्रिदोष का लिंग नाश

उपरोक्त सभी चिन्ह होते हैं। चीजें फिरती हुई भी दिखलाई देती है, काली नीली भी दिखलाई देती है। और भी तीनों दोषों के चिन्ह होते हैं, आंखों का रंग बिचित्र होजाता है।

रक्त का लिंग नाश

लाल. हो, काले. पीले रूप कई तरह की दिखलाइ पड़ती है। आंखो का रग लाली लिये होता है।

परिम्लायि लिंग नाश

रुधिर से मूर्छित पित्त इसका उत्पादक है। इसमें सूर्य उगता सा दिखलाई पड़ता है, यद्यपि वह उगता नहीहै, सब दिशा पीली दिखलाई पड़ती है पटबीजने और ज्योति से व्याप्त वृक्ष दिखलाई पड़ते है। आखो का रग नीला होजाता है।

बाहरी रोग

२ प्रकार का होता है

१—सनैमित्तिक

इसमें कई कारण मालूम पड़ते है, इस लिये इसे सनैमित्तिक कहते है, शिर में चोट लगने, आंख नाक पर चोट लगने आदि से आंखें भारी हो जाती है, दर्द होने लगता है और फट जाती हैं जैसा कारण होता है उसी के अनुसार चिन्ह होते हैं। आयोडायड जैसी दवा खाने से भी आंखें दुखने लगती हैं।

अनैमित्तिक

इसमें कोई कारण मालूम नहीं पडता। प्राचीनो के विश्वास के अनुसार देव, पशु आदि के अभिशाप से भूत आदि की वाधा से आंखें खराब हो जाती है। फिर उनकी बाधा हटने पर दिखाई देने लगता है। ऐसे आदमियो की संख्या भी आज कम नही है। जो मन्त्र सिद्ध किरते २ सहसा अन्धे हो जाते हैं।

नासिका रोग

नाक क्या है ?

नाक को हम शुद्ध शब्दों मे घ्राणेन्द्रिय कहते है। इसको दो भागो मे विभाजित किया जाता है।

१—बहिर्नासिका।

२—नासागुहा।

थोड़े शब्दो मे इन दोनो का विवेचन भी देखिये।

बहिर्नासिका

इसको नाक कहते, यह भाग हमे बाहर से दिखाई पडता है। इसका निचला भाग कोमल होता है और ऊपरी भाग मजबूत निचले भाग मे चमड़ी मांस कार्टिलेग है तथा ऊपरी भाग में हड्डिया जिस जगह परस्पर टिकता है, वह नासावंश (Bridge of nose) कहलाता है। नाक के दो ढालू पार्श्व है और उनकी तली मे दो छिद्र है जिन्हे नासारन्ध्र (Nasaportune) या नथुने कहते है।

नासागुहा

नथुनो से निकलने से विचली रेखा के अगल बगल में एक नाली होती है, उसे ही नासागुहा कहते है। दोनो नासागुहाओ मे एक खडा पर्दा लगा रहता है और प्रत्येक नासागुहा से इन छः चीजो का सम्बन्ध रहता है।

१—गुहाभूमि।

२—गुहाच्छदि।

३—अन्त प्राची।

४—बहि प्राची।

५—नासारन्ध्र।

६—नासा पश्चिम द्वार।

प्रत्येक नासागुहा से अर्द्ध शुक्ति का तथा उसके सन्मुख पर्दे की श्लैष्मिक कला का काम गन्ध पहिचानने का है। इन दोनो की कला को घ्राणप्रदेश कहते है और इसका क्षेत्रफल १॥ वर्ग इञ्च के बराबर होता है। यहां दो तरह की सेलें रहती है, एक है साधारण सेले, दूसरी है घ्राण सेलें। उच्छ्वास क्रिया से वायु नासारन्ध्रों द्वारा नासिका में घुसता है, फिर मध्य और अध सुरगों मे होता हुआ पश्चिम द्वारो द्वारा कठ में पहुँचता है। कठ से स्वरयन्त्र और टेटुवे में से होकर फेफडो मे पहुँचता है। प्रश्वास क्रिया मे अशुद्ध हवा टेटुवे, स्वर यत्र और कठ में होती हुई नाक मे पहुचती है, फिर वहा से नासारन्ध्रो द्वारा बाहर निकलती है।

पीनस

यह रोग स्वतन्त्र रूप से भी होजाता है और दूसरे रोगोके साथ भी होजाताहै। इसमें नाक रुक जाती है, बन्द सी होजाती है, खुशबू और बदबू का ज्ञान नही रहता, नाक कभी सूख जाती है तो कभी गीली होजाती है, इससे सर मे भी दर्द होजाया करता है, और जीभ भी नीरस होजाया करती है।

नाक से सम्बन्ध रखने वाली नसो पर जब कोई दोष झपटा मारता है तो कफ तो सूख जाता ही है और नाक भी रुक जाती है। अक्सर यह दोष दिमाग से उतरता है और नाक पर अपना फौलादी पजा मारता है।

नाक पकना

गरम चीजो के सूघने से खट्टी गरम चीजो के खाने आदि कारणो से नाक मे व्रण होजाता है, जिससे नाक पक जाती है, गीली रहने लगती है, और उसमे बदबू आने लगती है। कभी २ दिमाग से ही पित्त की रतूवत नाक में उतर आती है, जिससे व्रण होजाता है और नाक पककर उसमें बदबू आने लगती है।

नाक से बदबू आना

हिकमत मे लिखा कि ३ कारणो से नाक में बदबू आती है।

१—नाक में मस्से होने या घाव के पुराने हो जाने से।

२—छाती फेफडे या आमाशय से सडे हुये परमाणु ऊपर चढ़ते हैं और तालू तथा गले में इकट्ठे होकर छेदो द्वारा नाक में पहुँचते है जिससे बदबू आने लगती है।

३—दिमागमें जब दुर्गन्धित रतूवत हो जाती है तब वह नाक में उतर कर बदबू पैदा करती है।

नाक से बदबू आने को आयुर्वेद मे पूतिनासा कहते हैं। लिखा है—

गले तथा तालु की जड में जब पित्त और कफ विगड कर वायु को भी दूषित कर देते है तो मुंह और नाक से सडी हुई बदबू आने लगती है पास में बैठने वाला आदमी बदबू के मारे तग आ जाता है और वह वहा से उठ ही जाता है।

अधिक छींक आना

Sneezing

अधिक छींक आना यह भी एक बेहूदा रोगहै साधारण जनता के लिये तो यह रोग अशुभकारक भी है। कोई कही जा रहा है फिर किसी ने छीक दिया तो उसका टेम्प्रेचर १०५ डिगरी पर पहुँच जाता है। एक छीक के कारण मूर्ख स्त्री पुरुषो में लड़ाई तक हो जाती है।

छीक दो तरह की होती है

(१) सूर्य को देखने, मिर्चों के नाक में घुस-जाने, नाक के कुरेदने आदि कारणो से होनेवाली छीकें आगन्तुक होती हैं, यह स्थाई नही होती कभी २ आती है।

(२) नाक मे शृङ्गाटक नाम का एक मर्म स्थान है, उस जगह जब बिगड़ा हुआ वायु कफ के साथ अड्डा जमा लेता है तो छीकें आती है। यह छीके स्थाई नही होती, अस्थाई होती है वह जो वरावर आती रहती है, छीकने वाले के नाक में दम हो जाता है, पटापट फायर होता ही रहताहै, यह दोषज छीके है।

नासाशोथ

Dryness of the nose

नाक मे रहने वाला कफ जब वायु या पित्त के कारण सूख जाता है तो नाक मे खुश्की हो जाती है, उस समय सांस भी ठीक नही आती ऊचा नीचा और थोडा २ आता है।

नाक में जलन होना

जब नाक में सड़े हुये पित्त की रतूबत दिमाग से उतर आती है, या आमाशय छाती आदि अगो से चढ़ती है तो नाक मे बडी जोरो से जलन होने लगती है, धुआ सा निकलने लगता है सास भी गरम आती है, तेज बुखारो में ऐसा ही होता है, जब फेफडे मे प्रदाह हो जाता है तो नाक में कुछ जलन होने लगती है। गर्म दवा खाने पर भी नाक जलने लगती है, इसलिये कि उसके परमाणु नाक से टक्कर मारते हैं, रक्त पित्त मे भी नाक में जलन होती है। इसे आयुर्वेदमे (दीप्त) रोग कहते है जुकाम होने पर और नाक मे फुन्सिया होनेपर भी नाक में जलन होने लगती है।

नाक में खुजली चलना

नाक मे खुजली चलने के दो कारण हैं और कारणो के अनुसार ही २ भेद है।

(१) जब तेज दोष दिमाग के पदार्थों में इकट्ठे हो जाते है और तेज भाफ के परिमाणु नाक के बाहर निकलते है तो ठडी हवा वहां जाकर रुकावट डालती है जिससे जलन के साथ२ खुजली चलती है।

(२) तेज जुकाम होने, नकसीर चलने नाक में फुन्सी होने पर भी खुजली चलने लगती है।

नाक का सूज जाना

नाक सूजने के तीन कारण हैं

(१) छेददार दोष नाक के भीतर चिपट कर हवा की गर्मी से सूख जाता है, जिससे दिमाग में तर्री नहीं आती और नाक सूज जाती है।

(२) तपेदिक मे नाक सूख जाती है।

(३) तपे मुहर्रका में नाक सूज जाती है। आयुर्वेद में इसे 'नासाशोथ' कहते हैं और इसके चार भेद माने है, तीनो दोषो से तीन और त्रिदोष से एक।

नाक का बैठ जाना

लकड़ी घूसा आदि की चोट से तो नाक बैठता ही है, एक और कारण है, जिसमें नाक बैठ जाती है। यह कारण है गर्मी *Polypus* जब गर्मी खूब जोरों से हो जाती है तो नाक बैठ जाती है।

नाक की रसौली

Polypus

श्लेष्मिक झिल्ली के उपादान से नाक गह्वर में प्याज की जैसी या इससे छोटी एक गांठ हो जाती है, यह दोनो नाको में भी हो सकती है और एक नाक में भी बिकारी पदार्थ जब नाक में आता है तो वह गांठ के रूप में परिणत हो जाता है। गांठ पडने से पहले सर्दी होती है। बाद में गरदन में पीड़ा फिर सारी देह मे कष्ट होने लगता है, नाक के इधर उधर सूजन भी हो जाती है। आंखो पर और मुह पर लाली छा जाती है।

आयुर्वेद मे इसे 'नासाबुर्द' कहते है और इसके ७ भेद माने हैं, अनावश्यक समझकर हमने यहा उल्लेख नही किया, अर्बुदो रसौलियो के विषय में आगे चलकर प्रकाश डाला गया है।

नाक के मस्से

Piles inthe nose

कभी २ नाक में मस्से भी हो जाया करते हैं, आयुर्वेद में नाक के मस्सो को 'नासार्श' कहते हैं, और इनके ४ भेद माने हैं, बादी से–जब बादी की रतूबत के गिरने से मस्से होते हैं तो वे रूखे टेढे और कड़े होते हैं। पित्त के मस्से लाल, पीले, पतले होते हैं। कफ के सफेद और मोटे होते हैं, खूनी मस्से एक दम लाल होते हैं। कभी २ इन मस्सो से खून भी गिरने लगता है।

प्रतिनाह सांस में रुकावट

बिगड़ा हुआ वायु पहिले कफ से लिपटता है, बाद में नाक के छिद्रो को रोक देता है, जिससे श्वास के आवागमन में रुकावट पड़ती है, इसमें जल्दी ही प्रतीकार करना चाहिये। वर्ना श्लेष्मिक झिल्ली के उपादानो में खराबी होने लगती है।

घ्राणशक्ति का नष्ट होना

जन्म से ही जब घ्राणशक्ति ही नहीं होती है, तो उसका इलाज़ नही होता, बादमें ऊपरी कारणो से होने वाली का इलाज हो जाता है। इस लिये यह दो भागो मे विभक्त है।

(१) जन्म से होने वाली।

(२) ऊपरी कारणो से होने वाली।

इसके ७ भेद हैं

(१) नाक के मार्ग में फालतू मांस का लोथड़ा जमने से घ्राणशक्ति नष्ट हो जाती है, इसे नाक का बवासीर भी कहते है। यह कभी सफेद और लाल होती है।

(२) नाक के छेद में नर्म सूजन हो जाती है और चौडी खूब होती है, इसमें से महीन २ रगें भी निकल आती है, छेद बन्द होने से घ्राणशक्ति नष्ट हो जाती है। कभी २ यह केकड़े के समान

होजाती है और नाक की सूरत को विगाड़ देती है नाक में से पीला पानी और तरी निकलने लगती है।

(३) दिमाग में से गाढ़ा चेपदार मवाद निकलकर नाक के मार्ग में रुककर जम जाता है, जिससे घ्राणशक्ति नष्ट हो जाती है, नाक के छेदो में वोझ मालूम देता है।

(४) शुरू से ही छेद छोटे हो और थोड़ी भी तरी दिमाग से आकर उसे बन्द करदे और घ्राणशक्ति नष्ट हो जाय।

(५) नाक के ऊपर रखी हुई मिस्पात' हड्डी के छेद में गाढ़ा चेपदार मवाद चिपट जाय और हवा को रोक दे।

(६) गाढ़ी रीह नाक के रास्ते में बन्द हो जाती है इससे भीतर का मांस कठिनता से निकलता है और एक छेद हमेशा वन्द रहता है।

(७) दिमाग के पहिले हिस्से में और दोनो पर्दों में दुष्ट प्रकृति पैदा हो घ्राणशक्ति को नष्ट करदे, नाक के छेदो में भी दुष्ट प्रकृति घुस जाती है।

घ्राणशक्ति की खराबी के ३ भेद

इसमें सब तरह की खुशबू बदबू एक ही तरह की हो जाती है, इसके २ कारण हैं।

(१) दिमाग के प्रथम भाग में दुष्ट प्रकृति पैदा हो जाती है।

इससे दिमाग के अगले हिस्से में निकम्मादोष आ जाता है।

(२) दूसरे भेद में एक ही धातु के सूंघने से कई तरह की गन्ध आती है। इसका कारण यही है कि दिमाग के अगले हिस्से की प्रकृति में कई तरह की विरुद्ध दशा होजाती है।

(३) घ्राणशक्ति को ऐसी दशा होती है कि किसी चीज की गन्ध आती है, किसी की नहीं इसके भी दो भेद है।

(१) दिमाग के पहिले हिस्से में या सूंघने के दोनो विशेष अगो में दुर्गन्धित मवाद भर जाता है तो केवल सुगन्धित चीजो की ही गन्ध आती है।

(२) कमजोर खून या कफ का मवाद इकट्ठा हो जाने से केवल बदबू ही आती है, खुशबू नही।

नाक की फुन्सियां

वादी या कफ के मवाद के कारण नाक में फुन्सियां निकल आती हैं और भीतरी गर्मी से साफ मवाद नष्ट हो जाता है, बाकी गाढ़ा होकर पथरा जाता है, जिससे सांस भी ठीक नही आता

नाक के घाव

तीन भेद

(१) यह घाव तर होता है और खराबमांस को खाने वाली रतूबतो से होता है, जो दिमाग से नाक में उतर आती है।

(२) जले हुये दोषों के कारण खुश्क घाव होता है।

(३) पुराना घाव होने या सड़ी हुई रतूबतों के आ जाने से घाव सड़ जाता है।

नकसीर

Scuvry or epistaxin

तीन भेद

(१) दूसरे रोगो में, जैसे तेज बुखार आदि में नाक से खून गिरने लगता है।

(२) खून में तेजी आ जाने से नाक की भीतरी रगें खुल जाती है और पतला २ खून निकलने लगता है और थोड़ा २ निकलता है, पित्त की अधिकता रहती है।

(३) दिमाग के नीचे की झिल्ली में जो दिल की रगें हैं वे खून भरने से खुजलाती हैं और नाक में से खून गिरने लगता है। इसमें पहले सर में दर्द होता है और मुंह तथा आंखो में लाली

आ जाती है, बाद में खून निकलता है कभी २ सांप के काटने पर भी खून में उबाल आने पर नक्सीर हो जाती है।

आयुर्वेद में नक्सीर रक्तपित्त के चार भेद माने हैं।

प्रतिश्याय

इसे जुकाम या नजला कहते हैं, यह बडा पाजी रोग है। बिगड गया तो बस नाक में दम कर देता है।

कारण—

मल मूत्रादि वेगो को रोकने से बदहजमी हो जाने से, नाक में मिट्टी घुस जाने से, अधिक भाषण देने से, अधिक क्रोध करने से, ऋतु विरुद्ध आहार विहार से, धुए आदि से सर को तकलीफ पहुँचने से, रात में जगने से, सर्दी लगने से, बर्फ सेवन से, अधिक विषय से अधिक रोने से, अधिक शोक करने, इतने कारणो से मस्तक में कफ जम जाता हैं। फिर वायु भी जो बढ़ जाता है तो मिलकर जुकाम कर देता है।

पूर्व चिन्ह

जुकाम होने की सूचना देने वाले निम्न चिन्ह प्रगट होते हैं। छींक खूब आती है, सर मे बोझा सा मालूम होता है, देह जकड जाती है। अग टूटने लगता है, रोमांच होने लगता है, नाक से धूआ जैसे दबा निकल ने लग जाती है तालु फट जाता है नाक और मुंह से पानी बहने लगता है।

१—वातज जुकाम

इसमें नाक रुक जाती है, इससे पतला पानी जैसा मवाद गिरता है कठ,होठ, तालू ये सूख जाते हैं, कनपटियां भड़कने लगती हैं, गला बैठ जाता है।

२— पित्तज जुकाम

नाक गर्म होजाती है, और उससे थोडा २ पीला मवाद निकलता है, शरीर दुबला हो जाता है कुछ गरमाई आ जाती है, रंग पीला या मटियाला पड जाता है प्यास खूब लगती है, नाक से धूए वाली आग सी निकलती है।

३—कफज जुकाम

नाक से सफेद ठडा कफ निकलता रहता है, देह का रग सफेद पड़जाता है, आंखें सुज होजाती हैं, सर भी भारी होजाता है, नाक होठ तथा माथे में खुजली चलती है।

४—त्रिदोषज जुकाम

तीनो दोषो के चिन्ह नजर आते हैं, कभी पक कर सहसा बन्द होजाता है और फिर होजाता है

५—रक्तज जुकाम

यह जुकाम खून से होता है, इसमें नाक से खून आता है, पीला और गरम मवाद भी निकलता है, देह दुबली गरम और पीली हो जाती है प्यास खूब लगती है, नाक से धूआं की सी आग निकलती रहती है, आंखे लाल हो जाती हैं, छाती में चोट लगने से दर्द होता है, मुंह से बदबूदार सांस निकलता है, नाक से खुशबू और बदबू का ज्ञान भाग जाता है।

६—दुष्ट जुकाम

जब जुकाम बिगड जाता है तब कभी नाक सूख जाती है कभी तर हो जाती है कभी खुल जाती है कभी बन्द हो जाती है, उससे बदबूदार सांस निकलती है, खुशबू और बदबू का होश नहीं रहता। बिगडा हुआ जुकाम वास्तव में मौत के दरवाजे तक ले जाकर पटकता है।

भ्रंशथु-रींट बहना

जब नाक में से गाढ़ा २ सफेद या पीला पदार्थ निकलता है तो उसे भ्रंशथु यानी रींट बहना कहते है। पहिले ही से इकट्ठा हुआ, बिगड़ा हुआ गाढ़ा और खारी कफ मस्तक के गरम होने पर नाक के रास्ते निकलने लगता है।

नाक बहना (स्राव)

जुकाम लगने मस्तक के ऊपर सर्दी गर्मी का असर पहुँचने से पानी वहने लगता है, यह कभी सफेद होता है कभी पीला, पित्त का अंश मिलजाने पर थोड़ा गाढ़ापन भी कभी २ आ जाता है, इसमें नाक गरम रहती है।

नाक से खूनी पीव निकलना

बिगड़े हुये दोषो के मस्तक मे पहुंचने, सर पर किसी चीज की चोट लगने से नाक के अंदर से खून मिली हुई पीव निकलने लगती है। नकसार इससे अलग रोग है।

मुखरोग

Disease of the mauth

बोल चाल की भाषा मे मुख को मुह कहते हैं और चेहरा भी कहते है, मुंह का महत्व कुछ कम नही है, स्वास्थ्य का पूरा असर मुंह पर गिरता है। स्वस्थ आदमी को चेहरा भरा हुआ लाली लिये हुये और खुश रहता है, किंतु जव स्वास्थ्य में गडबड़ी पैदा हो जाती है तो चेहरा फीका पड़ जाता है खुश्क हो जाता है, सफेद या पीला हो जाता है और नौजवानी में ही उसपर झुर्रियां पड़ जाती है।

मानसिक विचारो का असर भी चेहरे पर पूर्ण रूप से गिरता है, जब हमारा हृदय प्रफुल्लित रहता है तो चेहरा भी प्रफुल्लित रहता है, किंतु जब हमारे दिल में कोई शोक होता है तो चेहरे पर हवाइयां उडने लगती हैं। चेहरे पर नाचने वाले भावो को देखकर अनुभवी जज अभियोग का निर्णय किया करते हैं। यह भी सच है चेहरे का सौंदर्य कवियो के काव्य की सामिग्री है और कामियो की कामना की उत्सुकता। सून्दर मुह किसे अच्छा नही लगता खूबसूरत चेहरे को देखकर लोग आकर्षित हुआ करते है। स्त्रियो का मुंह तो सुन्दर अवश्य होना ही चाहिये, किंतु पुरुषो का चेहरा भी असुन्दर नहीं होना चाहिये।

ईश्वर के घर से ही अगर चेहरा कुरूप है, खराबहै तो वह बात दूसरी है किंतु स्वस्थ्य आदमी का मुंह अवश्य सुन्दर रहताहै, सुन्दरी ललनाओं का चेहरा भी उनकी अस्वस्थता से अरुचि कर हो जाया करता है। अस्तु!

मुंह से मतलव हम गालों और होठों से ही समझ लेते है और होठो को भी अलग ही समझते हैं किंतु वात ऐसी नहीं है, मुंह के कहने से इन २ अंगों का मतलव निकलता है।

मुंह के सात अङ्ग

ऊपर नीचे के होठ	२
दांतो के मसूड़े	१
दांत	१
जीभ	१
तालु	१
गला	१

इन सात अंगों के मिलने से मुंह होता है और मुंह के रोगो से भी मतलब इन सात अंगो के रोगो से ही है, हम क्रमशः सव के रोगो का वर्णन करेंगे। अन्त में गालो के भी कुछ रोगो का जिक्र करेंगे।

ओष्ट रोग *Disease of the Lips*

होठो के रोग को ओष्ट रोग कहते है। कवियो की प्रतिभा होठो के वर्णन मे वड़ी अच्छी तरह से विकसित होनी है, काव्य जगत में होठो का महत्व कुछ कम नही है ओठो का साहित्यक नाम अधर है, अधर हमेशा लाली लिये हुये होने चाहिये। जभी इनका नाम (अरुणाधर) सार्थक होता है। विलायत की गोरी स्त्रियां तो अधरो पर लाली लाने के लिये पाउडर लगाया करती हैं,

किंतु यह बनावटी लाली आखिर कब तक ठहर सकती है, चुम्बन के समय वह पाउडरमयी लाली प्रेमी के अधरो पर लग जाया करती है। खैर।

होठ दो है एक ऊपर एक नीचे ये मुंहके लिये कवच का काम देते हैं, इनकी बिना इच्छा के कोई चीज अन्दर नही जा सकती।

होठो में कई तरह के रोग हो जाया करते हैं। जिससे बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता है, कभी २ नीचे का होठ या ऊपर का होठ बहुत मोटा हो जाता है, जिससे सारा सौंदर्य मिट्टी में मिल जाता है होठो का सुन्दर रखना स्त्रियो के लिये ही नही पुरुषो के लिये भी आवश्यक है।

किसी २ के होठो की बनावट ही विकृत होती है और बहुतो के होठ बाद में विकृत हो जाया करते हैं।

आयुर्वेद में ओष्ठ रोगो की कई सख्या हैं, हम पहले उनका जिक्र कर देना चाहते हैं।

१–होठो में बादी की खराबी

अजीर्ण आदि से पड़ी हुई बादी की भाफ के परमाणु होठो पर पहुँचते है, जिससे वे कड़े और काले होकर ठिठुर जाते है और फट जाते हैं उनमें फुन्सी सी होती है दर्द होता है।

२–होठो में पित्त की खराबी

पित्त की सड़ी हुई रतूबत जब होठो पर पहुँचती है तो होठ नीले पड़ जाते हैं, उन पर सरसो जैसी फुन्सियां हो जाती है, होठो में जलन होती है वे पक जाते हैं और पीप बहने लगती है।

२–होठो में कफ की खराबी

सड़े हुये कफ की भाफ के परमाणु जब होठो पर पहुँचते है तो होठ कुछ मोटे हो जाते है, भारी और ठंडे हो जाते हैं। सफेद २ फुन्सिया हो जाती हैं खाज चलने लगतीहै, किंतु दर्द कम होता है। देखने में दूर से ही होठ कुछ सूजे हुये दिखलाई पड़ते है।

४—होठो में त्रिदोष की खराबी

सन्निपात ज्वर में जब तीनो दोष बिगड़ जाते हैं तो कभी होठ नीले हो जाते हैं, कभीं पीले और कभी सफेद कई तरह की फुन्सियां निकल आती है, होठ सूज जाते हैं, खुरदरे हो जाते हैं, तीनों के सभी चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं।

५—होठो में खून की खराबी

जब देह में खून बिगड़ जाता है, रक्त पित्त या गर्मी हो जाती है तो विकृत खून का असर होठो पर भी होता है, जिससे वे बिगड़ जाते हैं। लाली लिए हुए फुन्सियां हो जाती है, जिनमें खून की चमक दिखलाई पड़ती है और उनसे खून झिरने भी लगता है।

६—होठो के मांस की खराबी

सड़े हुये दोषो की पड़ी हुइ भाफ के लगातार आने से होठो का मांस खराब हो जाता है जिससे होठ भारी और मोटे हो जाते है, मांस पिंड की तरह ऊपर को उठ जाते है, उन पर अगर कोई जानवर बैठ जाता है तो वह बेहोश हो जाता है इस लिये कि बिकारी द्रव्य वहां अधिक परिणाम में इकट्ठा हो जाता है।

७—होठो में मेद की खराबी

मेद शरीर में एक धातु है, जो मांस से तैयार होता है। बहुत आदमियो को मेद बढ़ जाता है, जिससे उनका पेट फूल जाता है, मोटा हो जाता है। मेदे की खराबो का असर जब होठो पर पहुंचता है तो होठो में कुछ भारीपन आ जाता है, खाज चलने लगती है, घी के जैसे सफेद हो जाते है, और उनसे सफेद पीब भी कभी कभी झिरने लगता है।

होठो पर चोट लगना

कभी २ ओठो पर चोट भी लग जाया करती है। और कभी २ प्रेमी के होठो की रगड़ से ही होठ घायल हो जाते है। ओठो पर तेज दवा के

लगाने से भी वे फट जाया करते हैं। इस दशा में खाज चलने लगती है, होठ फट जाते हैं। कभी २ गांठ भी पड़ जाया करती है।

होठों का दुर्गन्धित घाव

फुन्सियों में पीव पड़ने से भी कभी २ घाव हो जाया करते हैं, किन्तु यह घाव मामूली होता है या छोटा होता है।

एक घाव और होता है जो गहरा होता है और बदबूदार होता है। जब सड़ा हुआ तेज मवाद सर से उतर कर होठों पर आता है या आमाशय से चढ़ता है तो यह घाव होता है। इस घाव की विशेषता यही है कि इसमें बदबू आती है और थोड़े समय में बहुत फैल भी जाता है, इसमें टीस चलती है, खाना पीना हराम हो जाता है।

होठों की सफेदी

होठ हमेशा लाल रहते हैं, किंतु खून में कफ की कच्ची रतूबत के कारण से तथा सर और मुंह की गर्मी की कमी से, उनमें सफेदी आ जाती है।

होठों की खुश्की खाल कतरना और फटना

जिन कारणों से जीभ खुश्क होती है, उसकी खाल कतरती और फटती है, उन्हीं कारणों से होठ भी खुश्क हो जाते है, इनकी चमड़ी उतरने लगती है और वे फटते है।

होठों का फड़कना

जब निकम्मा मवाद आमाशय की तरफ गिरता है तो वह उसे दूर करने के लिये कभी सिकुड़ता है और कभी फैलता है। मुंह के ऊपरी भाग और आमाशय को मिलाने वाली झिल्ली के संयोग से होठ भी फड़कते हैं। इसमें जीभ चलती है हिचकी और उबकाई आती है।

१३

होठों का खिचना और सिकुड़ना

इसके ३ भेद

१—मवाद की कमी से जन्म से ही बच्चे का होठ खिचा हुआ और सिकुड़ा हुआ होता है।

२—मवाद निकल जाने से खिचाव और वांयटे होते है।

३—मवाद भर जाने से भी खिचाव और सिकुड़न होता है।

होंठो की बवासीर

इसके २ भेद

१—छोटे अंगूर के दाने जैसा मस्सा नीचे के होठ में पैदा होता है, उसमें कालापन होता है, गाढ़ापन होता है और कुछ फटा हुआ सा होता है जिससे होठ बाहर की तरफ उलट जाता है।

२—सहतूत की सूरत की एक वस्तु नीचे के होठ में निकल आती है, इसमें दर्द नही होता है। कभी मवाद की अधिकता तथा उनके निकम्मेपन के कारण ऊपर होठो तक वह जा पहुँचता है।

नोट—जला हुआ खून जब रगो की टहनियो में से निकल कर जाताहै, तो बवासीर पैदा होतीहै

होठ की सूजन

दोषो की अधिकता से होठ सूजते हैं, जो दोष होता है, उसी के चिन्ह होते है, जैसे पित्त की अधिकता मे पीलापन जलन आदि।

मसूढ़ों के रोग

मसूढ़ो का संस्कृत नाम है दन्तमूल, दांतो की जड, दांतो की रक्षा का भार मसूढो पर ही है, मसूढ़ो के अन्दर रोग होने से दांतो को भी खतरे का सामना करना पडता है, भला जब जड़ ही खराब हो जाती है। तो दांत कब तक स्वस्थ रह सकते हैं, मसूढ़ो के रोगो का यहां उल्लेख किया जाता है।

शीताद

कफ और खून की खराबी से यह रोग होता है, सहसा मसूढ़ों में से खून निकलने लगता है, वे काले पड जाते है और उनमें बदबू आने लगती है हरदम भीगे और नरम रहते है, उनका मांस झिरने लगता है और वे पकने लगते हैं।

दन्तपुप्पुट

बिगडे हुये कफ और खून का आक्षेप जब मसूढ़ों पर होता है, तो मसूढ़ों मे दर्द और सूजन हो जाती है, दांत भी दर्द करने लगते है और तालु भी सूज जाता है।

दन्तवेष्टक

खराब खून के कारण यह रोग होता है मसूढ़ों में से पीव और खून गिरता है, दांत हिलने लगतेहैं

शौषिर

इस रोग में मसूढ़ो मे दर्द होता है, सूजन हो जाती है, खाज चलती है और लार बहुत गिरती है।

महाशौषिर

तीनो दोषो के बिगड़ने पर यह रोग होता है, इसमे दांत हिलकर गिरने लगते है मसूढे पक जाते है, मुह मे जोरदार पीडा होती है और तालु फट जाता है।

परिदर

इसमें मसूढे फट जाते है और थूक में खून आने लगता है।

उपकुश

पित्त और खून की खराबी से यह रोग होता हैं। इसमे मसूढे गलने लगते है, दांत हिलकर गिरने लगते है, बिना रगड़े ही खून निकलने लगता है और खून नही गिरने पर मसूढे फूलजाते है. उनमे बदबू आने लगती है और मुह में हर समय थोड़ी पीड़ा रहती है।

वैदर्भ

मिट्टी वगैरह से मसूढ़ों के रगड़ने पर वे छिन्न जाते हैं और दांत हिलने लगते है।

वर्द्धन *Extratooth*

वायु के द्वारा मसूढ़ों में फालतू दांत पैदा होते है. उनके पैदा होने के समय पीड़ा होती है।

अधिमांस

डाढ़ों के पिछली तरफ के मसूढ़ो में जब कफ के कारण से यह सूजन होती है इसमें दर्द होता है लार गिरती है।

मसूढ़ों का नासूर

४० दिन के पुराने घाव को नासूर कहते हैं यह छेद करके मांस में उतर जाता है और इससे पीला पानी बहा करता है जलन, बेचैनी आदि चिन्ह इसमे होते हैं। आयुर्वेद में यह पांच तरह का माना गया है, नासूर का वर्णन खुलासा तौर से आगे किया गया है।

दन्तरोग

दांतो में होने वाले रोगों को दन्त रोग कहते है। दात का शुद्ध सस्कृत नाम दन्त। मुह के सौंदर्य के लिये दातो का स्वस्थ और सुन्दर रहना आवश्यक है। दात हमेशा सफेद और साफ रखने चाहिये। गन्दे दांत स्वास्थ्य को तो खराब करते ही हैं, देखने वाले के दिल मे भी नफरत पैदा करते है। सस्कृत साहित्य मे दांतो की उपमा अनार के दानो से दी है। अनार के दाने जैसे-दांत बडे ही सुन्दर मनमोहक होते है, किंतु सबके दात ऐसे नही होते।

बहुत से आदमियो के दांत बड़े गन्दे रहते है। उन पर मैल जम जाता है और बदबू आने लगती है, खाना खाने के बाद दातो को हमेशा साफ करना चाहिये। वर्ना अन्न के छोटे २ कण दातोमे

रहकर सड़ने लगते हैं और दांतोंमें कमजोरी आने लगती है। बहुत से आदमी प्रति दिन तो क्या महीनो तक दांतो को साफ नही करते यह बहुत बुरी आदत है। जब हम खाके सो जाते है तो भाफ के परमाणु दांतो पर आकर जम जाते हैं फिर अगर हम दांतो को साफ नही करते हैं तो सड़ी हुई भाफ के वे परमाणु खाने के साथ हमारे पेट में पहुँच जाते है प्रति दिन प्रातः काल तो अवश्य दतौन से या दन्तमजन से दांतो को साफ करना चाहिये। दन्तमजन को अपेक्षा दतौन अच्छी रहती है। इस लिये कि उससे जीभ भी साफ हो जाती है जीभ का साफ करना भी परम आवश्यक है।

मारवाड़ की स्त्रियां दांतोमें मिस्सी लगा लिया करती है, यह ठीक नहीं. इससे न दांत सुन्दर ही होते हैं और न उनका स्वास्थ्य ही ठीक रहता है। बहुत से आदमी हरदम दांतो से कुछ न कुछ चबाया करते है यह बहुत वेहूदी आदत है। हर एक चीज से नियमित काम लेना चाहिये। हरदम सुपारी चबाना भी दांतो के लिये अस्वस्थकर है। इससे दांतो पर रेत जम जाता है वे कमजोर हो जाते है। गरम चीज पीकर ठडा पानी पी लेना भी दांतो को कमजोर बना देता है औ ठडी चीज खाकर गरम पानी पीना भी ऐसा ही है, दांतो से नख काटना एकदम अनुचित है और न कोई ऐसा दूसरा काम ही दांत से लेना चाहिये।

दांतो से अनुचित काम लेने, उन्हें साफ न रखने आदि कारणो से दांतो में कई रोग पैदा होते हैं। पारा खाने से दांत अपने आप ही टूटने लगते है। ऐसे ही आयोडाइड भी दांतो को तोड़ डालती है। गिरपडने आदि से भी दांतो को नुकसान पहुंचता है, मगर उसमें हमारा काबू नही है, वह सहसा आने वाली बीमारी है किंतु दूसरे कारणोंसे जिनकी दयासे दांत निकम्मे होतेहैं हम उनसेदांतों की रक्षा कर सकते है। बच्चो के दांत मां-बाप की गलती से अक्सर गन्दे रहते है और उन पर मैल की तह जम जाती है। यह जानबूझ कर बच्चे के जीवन मे खराबी पैदा करना है। यहां दांतो में होने वाले रोगो का उल्लेख किया जाता है।

दाँतों का काला होना

Black toath

निकम्मा मवाद जो खूनके पित्तके साथमिलने पर तैयार होता है, दांतो की जड़ो में घुसता है और धीरे २ दांतो पर कब्जा करके उन्हे काले बना देता है। बदहजमी रहने, ऊटपटांग खाने, कब्ज रहने आदि से यह मवाद तैयार होता है। जिसके साधक है खून और पित्त। आयुर्वेद में इस रोग को श्यावदन्त कहते है।

दांतों पर रेत जमना

Tartar

यह दन्त शर्करा रोग है। दांतो को साफ नहीं करते, हरदम सुपारी, इलायची आदि चीजें खाने से दांतो पर रेत जम जाता है। देखने में वह काली या भूरी होती है। थोड़े दिनो में वह इतनी हो जाती है कि दांतो से छूटती ही नही, लाख दांतो के रगड़ने पर भी वह दांतों से अलग नहीं होती। सुपारी खाने वाले इसके अधिक शिकार होते हैं।

दांतों में कीड़े पड़ना

Carnes of tooth

दातो को गन्दे रखने, सड़ी घुली चीजें खाने दातो में अन्न के कण अटकने आदि से दांतो के अन्दर कीड़े पड जाया करते है। जिससे छेदहोकर दांत हिलने लगते है, मसूढ़ो मे सूजन हो जाती है

दांतो में दर्द होने लगता है, हरदम दांतों में से मल निकलता रहता है। इस रोग को होते ही नष्ट कर देना चाहिये, वर्ना बाद में मुश्किलो से आराम होता है।

दन्तहर्ष

Irritation in the tooth

सड़ी हुई वादी जो आमाशय से आती है, भाफ के परमाणु जब दांतो पर आते हैं तो यह रोग होता है, खट्टी चीजो के भी खाने से दांत खराब हो जाते है। जिससे न उन्हे ठडी चीज अच्छी लगती है न गरम और उनमे टीस के साथ दर्द होता है।

दांतों का गिरना

दांत गिरने के कई कारण है। आयुर्वेदके मत से कफ और वायु के कारण यह रोग होता है। जिससे मुंह कुछ टेढा भी हो जाता है और पीडा के साथ दांत गिरने लगते है। हिकमत में इसका अच्छा विवेचन किया गया है। दांतो के हिलने और गिरने के ३ भेद बतलाये है।

१—शुरू ही मे दांतो के छिद्रो के चौड़े होने से वे हिलने और गिरने लगते है।

२—बुढापे मे दात हिलने और गिरने लगतेहै

३—इसके ६ कारण है।

(अ) दातो के पास अन्न नही पहुँचने से उनमें कमजोरी आ जाती है।

(आ) पतली तरी दांतो के पास आने से वे सुस्त हो जाते है, जिससे मसूढे भी ढीले और सुस्त हो जाते है, दांत मोटे हो जाते हैं गर्मी और ठडी चीजो से हानि होती है, मुह का जबड़ा कापने लगता है, दातो की जडो मे सर्दी मालूम होती है और लार अधिक गिरती है, यह दूसरा कारण है।

(इ) गर्म सूजन मसूढ़ों में पैदा होकर उन्हें दांतों से अलग कर देती है जिससे दर्द अधिक होता है और टीस चलती है।

(ई) कमजोरी और खून की कमी से मसूढे दांतो से अलग हो जाते हैं, उनका रग सफेद हो जाता है।

(ए) तेज मवाद मसूढ़ो के ऊपर गिरकर उनके मांस को खा लेता है।

(ऐ) धमाके या चोट लगने से दांत हिलने लगते है।

दांतों का अधिक बढ़ना

इसके २ भेद हैं

१—दांतो की जड में मवाद गिरने से वे गाढ़े हो जाते हैं और उनमें एक तरह की सूजन आ जाती है।

२—दांतो की लम्बाई में बढ़ना प्रकट होता है इसके तीन कारण हैं।

(१) कोई दांत जन्म से ही औरो को अपेक्षा कड़ा होता है। जिससे दूसरे दात घिस जाते है और वह बडा मालूम होता है।

(२) दांतो की जड में सूजन होने से दात उभर आते हैं।

(३) दांतो की जड़ में सूजन होकर वह दांत उखाड कर बढा देती है।

दांतों की खुजली

इसके २ कारण हैं

१—कई तरह के पानी पीने से (जैसे नमक गधक आदि से) दांतो मे खुजली हो जाती है।

२—तेज मवाद को पैदा करने वाले भोजन खाने से उसके कण दांतो के अन्दर घुस जाते हैं। जससे खुजली होती है।

नींद में दांत कटकटाना

अजलों में कमजोरी आने से प्रायः छोटे बच्चों के दांत नीदमें बजते है बडो के मिर्गी आदि रोगके कारण से बजने लगते है।

दन्तशूल

एकाएक ऋतु परिवर्तन, अजीर्ण गर्भावस्था में स्नाय्वादिक उत्तेजना, गरम खाना खा के ठंडा पानी पीना, या ठंडा पानी पीके गरम चीज खाना आदि कारणो से दांतो मे शूल चलता है।

कपालिका

दांतो पर रेत जमने से दांतो की फचटें गिरने लगती है। जिससे थोड़े दिनो में दांतो का सफाया हो जाता है।

हनुमोच

सुपाड़ी जैसी कडी चीजो के चबाने आदि से बिगड़ा हुआ वायु ठोड़ी के जोड़ को बिगाड़ देता है, जिससे कुछ टेढ़ापन, आ जाता है।

दांतों का दर्द

इसके ९ भेद

१—गर्म दुष्ट प्रकृति अपने कारणो से पैदा होकर या दूसरे स्थानो से आकर दांतो में दर्द करती है। इससे मवाद नही आता है। दांतो की जडो में गर्मी, मसूड़ो में लाली यह चिन्ह होते हैं ठंडी चीजो से आराम मिलता है।

२—खून की अधिकता से दांत दर्द करने लगते है, इसमें लाली, मसूड़ो की सूजन, भारीपन, दर्द ये चिन्ह होते हैं।

३—पित्त के मवाद से दांतो में दर्द के साथ२ हलकापन टीस मसूडो मे पीलापन तथा जलन आदि पित्त के चिन्ह होते है।

४—बिना मवाद की सर्ददुष्ट प्रकृति दर्द पैदा करती है, जरा सा ठडा पानी पीते ही टीस चलने लगती है। इसमें गर्म चीजों से आराम मिलता है।

५—कफ से दांत में दर्द होता है जो सर्दी पाकर बढ़ जाता है, तथा गर्मी से शांत होजाता है।

६—आमाशय में गाढ़े निकम्मे, या तेज मवाद के भर जाने से सायोगिक दर्द दांतो में होता है. खाने के पीछे, अजीर्ण और रात को भोजन की दशा में दर्द बढ़ता है।

७—निकम्मा मवाद जब दांतो की जड़ में सड़ जाता है तो दर्द होता है। दांत टूटते हैं, फटते हैं, और हिलने भी लगते हैं।

८—निकम्मी वादी जब सर में से निकलकर दांतो की जड़ और उनके पट्ठे पर गिरती है तो खिचावट के साथ दर्द होता है और वो इधर उधर बदलता रहता है।

९—दांतो में कीड़े पैदा होने से भी दर्द होता है, और कीड़े पैदा होते है तब जब छेददार दांत मे तरी के कण आकर सड़ जाते हैं।

दांतों का सुस्त और सुन्न होना

इसके २ भेद है

१—इसमें ऊपरी कारण होता है, जैसे—कसैली, खट्टी आदि चीजों के खाने से उनकाछोटा सा कण दांत में घुस कर ठडक और खुरखुरापन पैदा करता है।

२—इसमें भीतरी कारण होता है जैसे—खट्टी कै और उबकाई।

जिह्वा रोग

Disease of the taunge

जीभ के रोगो को जिह्वा रोग कहते हैं. जीभ का संस्कृत नाम है जिह्वा। जीभ रसनेन्द्रिय है, इसके द्वारा हमें खट्टे, मीठे रसो का ज्ञान होता है, चिरायते का कडवापन और रसगुल्ले का मीठापन हमें इसी के द्वारा मालूम होता है, कभी २ जीभ

की रसना शक्ति बिगड़ जाया करती है, जिससे खट्टे मीठे का ज्ञान नही हुआ करता । जीभ हमेशा साफ और गुलाबी रहनी चाहिये, स्वस्थ और सुन्दर जीभ ऐसी ही होती है ।

जीभ के द्वारा हमे केवल रसो का ही ज्ञान नही होता, इससे हम भाषण भी करते है बोलने चालने का साधन जीभ ही तो है । कभी २ जीभ में जन्म से ही ऐसी त्रुटि होती है कि स्पष्ट उच्चारण नही होता, रुक २ के बोलना पडता है । बहुत से आदमियों की जीभ हमेशा मैली रहा करती है, इससे उनके स्वास्थ्य पर अवश्य आघात पहुचता है ।

प्रति दिन सुबह शाम जीभ को साफ करने से न रोग होते है और न स्वाद में ही गड़बड़ी होती है अधिकतर रोग जीभ की गन्दगी ही से होते हैं, बदहज्मी से भी सड़ी हुई भाफ के परमाणु जीभ पर आकर रोग पैदा कर देते हैं, कभी २ जीभ फट जाती है सूज जाती है, और कभी २ मोटी हो जाती है जीभ पर कांटे हो जाते हैं । अधिक करके यह रोग जीभ की गन्दगी अनियमित आहार विहार से ही होते है ।

तेज दवाओं का असर भी जीभ के ऊपर बहुधा अच्छा नही हुआ करता, जीभ के रोगो का सबसे बुरा परिणाम तो यह है कि हम न खा सकते हैं, और न पी सकते हैं, उस समय एक पानी की बूंद भी हलक के नीचे नही जा सकती जीभ के रोगो का उल्लेख यहा किया जाता है

जीभ में क्षत होना

Thrush

कभी २ जीभ में घाव हो जाया करता है, जिससे बड़ी दिक्कतो का सामना करना पड़ता है । सिफलिस Syphilis का जहर जब देह में व्याप्त हो जायाकरता है तो जीभ में घाव हो जाता है । रसकपूर, आयोडाइड आदि पारा मिश्रित दवा खाने से भी जीभ पर घाव हो जाता है, कभी २ गर्म फुन्सियो के फूटने पर भी घाव हो जाता है, और कभी २ दतौन वगैरह की साधारण रगड़ लगाने पर नमक मिर्च खाने पर घाव हो जाता है ।

उपजिह्विका

Ranulla

खून की खराबी से कभी २ जीभ मे पहिले सूजन होती है, फिर उसका अगला हिस्सा दोहरा होकर ऊपर की तरफ मुड जाता है, और लार बहुत बहती है ।

गूंगापन (मूकता) *Aphhonia*

शब्द वाहिनी नाड़ियो मे जब बिगडा वायु घुस जाता है तो बोलने की शक्ति को नष्ट कर देता है । यहरोग अक्सर गर्भ मे ही होजाता है, गर्भिणी स्त्री के अनियमित अहार विहार से वायु बिगड़ जाता है और उसी समय शब्द वाहिनी नाडियों को बेकार कर देता है जिससे बोलने की शक्ति सर्वथा नष्ट होजाती है ।

जिह्वास्तम्भ

Paracysis of tounge

यह वह रोग है, जिसमें कि जीभ जकड जाया करती है । यह रोग गर्भ मे नही होता, बाद में होता है, इसमे केवल गूंगापन ही नही होता, खाना पीना भी हराम हो जाता है । गूंगे आदमी की शब्दवाहिनी नाडिया खराब होती है, किंतु इसमें जीभ ही जकड जाती है । जो हरकत नहीं कर सकती । यह रोग घातक है, बिगडे हुये वायु की दया का यह पुरस्कार है । तेज बुखार मे तथा और ऐसे ही साघातिक रोगो में जीभ जकड़ जाया करती है, कभी वैसे भी जकड़ जाती है ।

गद्गदता

बहुत से आदमी बोलते समय गद्गद् करने लगते है, यह वही रोग है। इसमें बायु अकेला काम नहीं करता कफ भी उसके साथ मे रहता है, पदो में व्यंजनो का स्पष्ट उच्चारण नही हो सकताहैं

मिन्मिनत्व (नाक से बोलना)

बहुत से आदमी बोलने तो साफ ही हैं, किंतु नाक से बोलते है। यह वही रोग है।

वाचालता

आवश्यकता से अधिक बोलना बाचालता कहलाता है। नसों में घुसे हुये बायु के कारण-चूंकि वायु हमेशा चचल होता है, आदमी अधिक बोलता है।

नोट—जब आदमी असम्भव वेतुकी बाते करता रहता है तो वह प्रलाप रोग कहलाता है, प्रलाप का विवेचन शिरोरोग प्रकरणमें किया गया है, वहीं देखिये।

जीभ की सूजन (अलास)

४ भेद

१—खून के कारण से जीभ सूज जाती है, उस समय वह लाल हो जाती है, नीलापन भी आ जाता है खिचाव के साथ २ दर्द होता है थूक थोड़ा आता है।

२—पित्त से जीभ सूज जाती है, जिससे वह पीली हो जाती है, जलन होती है और उस पर कभी २ फुन्सियां भी हो जाती है।

३—कफ से जीभ सूज जाती है, इसमे खून का भी थोड़ा हाथ रहता है, जीभ सफेद हो जाती है और थूक बहुत गिरता है।

४—वादी से जीभ सूजकर उसमे कालापन आ जाता है खाल में खुश्की आजाती है और मुंह का लुआब बहुत कम होता है।

नोट—सूजन हमेशा जीभ के निचले भाग में होती है और प्रायः कफ और खून की दया से ही होती है।

स्वाद बिगड़ना

इसके २ भेद है

१—मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है और एक दम बिगड़ जाता है, स्वाद एक दम नही आता इसका कारण यह है कि जीभ पर बिछे हुये नर्म ज्ञान वाले पट्टे पर मैल व गहरी रतूबत इकट्ठी हो जाने से, स्वाद का रास्ता बन्द हो जाता है।

२—स्वाद की शक्ति का बिगड़ना। इसके भी २ भेद है। पहिले मे बिना किसी चीज के चखे स्वाद मालूम होता है, दूसरे में खाया कुछ जाताहै और स्वाद कुछ आता है। खाते है मीठी चीज और स्वाद आता है कड़वी चीज का।

जीभ का भारी होना

इसके ८ भेद हैं

१—जीभ के अजलो में दुष्ट प्रकृति अधिक गर्म होकर पैदा हो जाती है जिससे जीभ की तरियां सूख जाती है और मवाद के निकलने से खिचाव और ऐंठन पैदा हो जातीहै। इसमे जीभ पतली होकर खिंच जाती है।

२—जीभ में कारणवश ढीलापन होकर भारी पन आ जाता है।

३—दिमाग के सयोग से जीभ ढीली होकर लार बहने लगती है, इसमें इन्द्रियां बिगड़ जाती है और आलस्य आता है। विशेष ढीली होने पर बोलना बन्द हो जाता है।

४—गाढ़ी तरी पैदा होकर जीभ में खिचाव पैदा करती है, जिससे जीभ भारी होजाती है।

५—दिमाग की सूजनके बाद सरसाम केपीछे जीभ में भारी पन आजाता है, वह मोटी हो जाती है।

६—जीभ के नीचे जो बन्धन है, उसके होने से भी भारीपन होजाता है, यह छोटापन या तो जन्म से होता है, या उस जगह घाव होने से।

७—कड़ी सूजन से जीभ भारी हो जाती है, वह सूजन शुरू में हो, चाहे आखिरी में' कभी घाव होकर वहां गांठ भी होजाती है।

८—जीभ का हिलाने चलाने वाला पट्ठा टूट जाता है तो भारीपन होजाता है।

जीभ का बड़ा होना

शिर से जीभ की तरफ गिरने वाली मवाद की तरियां बढ़ा देती है, इसे 'अजला उल लिसान' कहते हैं।

जीभ का ढीला होना

जिन कारणो से जीभ मे भारीपन आता है, उन्ही से ढीलापन भी आ जाता है।

जीभ के नीचे मांस बढ़ना

इस रोग की सूरत मेंढ़कियो के सरकी जैसी होती है, इसलिये इसका नाम 'जफदा' है। यह रोग या तो चेपदार कफ से पैदा होता है, या उस खून से, जो नर्म और अच्छे भागो को तो नष्ट कर देता है और बाकी को कड़ा।

जीभ का फटना

दो कारणो से जीभ फटती है

१-मे—दिमाग में खुश्क प्रकृति के बढ़जाने से वह पट्ठो के रास्ते जीभ पर आ जाता है, जिससे जीभ फट जाती है। इसमे खाना हराम हो जाता है, नींद न आना, दिमाग की खुश्की आदि चिन्ह होते है।

२-में—जले हुये भाप के परिमाणु आमाशय से उठकर जीभ की तरफ जातेहै जिससे वह फट जाती है।

जीभ का शुष्क होना

इसके २ प्रकार हैं

१—गर्मी और खुश्की से जीभ शुष्क होकर पीली और खुरखुरी हो जाती है इसमें पित्त के चिन्ह रहते हैं। यह पित्तज्वर के बाद में होती है

२—चेपदार दोष जीभ के ऊपर आ जाते हैं, जिससे गर्मी के कारण वह शुष्क हो जाती है, इसमें मुंह का लुआब चेपदार होता है।

जीभ में जलन होना

इसके चार कारण हैं

१—आमाशय के मुह की गर्मी।

२—दिमाग की गर्मी।

३—तेज कड़वी गर्म.नी चीजों का खाना।

४—गर्म दोषका जीभ पर गिरना, इन कारणों से जीभ में जलन होती है।

जीभ की खुजली

जला हुआ दोष, चाहे दिमाग की तरफ से आये, चाहे आमाशय की तरफ से, जीभ पर आकर उसे लाल कर देता है उसमें खुजली चलती है दांतो से खुजाने और गर्म जल से कुल्ला करने पर शांति मिलती है।

जीभ से खाल उतरना

जीभ तालु और मसूढो पर होने वाली खाल से यहा मतलब है। गर्म, तेज, भाफ के परमाणु इन अंगो पर लगी हुई झिल्ली को सुखा देते है और अंगो को मिलाने वाली तरी को नष्ट कर देते हैं जिससे बारीक चमड़ी अलग हो जाती है। इसमे मुंह अथवा तालु को मलने से वह खाल जुदा हो जाती है और उसमे दर्द होता है।

वातकटक (कांटे)

बादी की भाफ से कभी २ जीभ पर कांटे से

पड़ जाते हैं जिससे जीभ फट जाती है, सुन्न हो जाती है खरदरी और पतली हो जाती है।

पित्त कटक (कांटे)

पित्त की रतूबत से जीभ पर कांटे होते है तो जीभ पीली हो जाती है और उसमें जलन होती है।

कफ कटक (कांटे)

कफ का चेपदार दोष जब जीभ पर मिलता है तो जीभ भारी हो जाती है मोटी हो जाती है, और छोटे २ सफेद कांटे दिखलाई पड़ने लगते है।

तालुरोग

Disease of the palate

तालु भी मुह का एक अंग है, इसमे भी कई तरह के रोग हो जाया करते हैं, इसके रोगो का असर मुंह के दूसरे अङ्गो, जीभ, गले आदि पर भी पड़ता है। कभी २ तालु सूज जाया करता है कभी जलन करने लगता है, और कभी २ कछुये की तरह ऊपर उठ जाता है।

आयुर्वेद मे तालु के ९ रोग बतलाये है जिनमे सभी रोग आ जाते हैं, हिकमत में ऐसा कोई उल्लेखनीय विवेचन नही है डाक्टरी मेभी दो-एक रोग माने हैं।

तालु के ९ रोग

(१) गलशुण्डिका	(५) अर्बुद
(२) तुण्डिकेरी	(६) मांस सघात
(३) अध्रुप	(७) तालुपुप्पुट
(४) कच्छप	(८) तालु शोष
	(९) तालु पाक

(१) गलशुण्डिका

Elngated uvula

यहएक सूजनहै जो कफ और खूनकी खराबी से होती है, इसमें तालु भरी हुई मशक की तरह फूल जाता है, सूजन हमेशा फैली हुई होती है। इस सूजन से प्यास बहुत लगती है, खांसी हो जाती है, सांस उठने लगती है, खाना हराम हो जाता है, और प्यास लगने पर भी पानी ठीक तौर से नहीं पिया जाता।

(२) तुण्डकेरी-सूजन

यह सूजन भी कफ और खून की खराबी से होती है; किंतु कुछ २ सहायता वायु और पित्त की भी मिलती है। सूजन जंगली कपास के फल जैसी होती है, तालु सूजकर भारी हो जाता है, पक भी जाता है, और उसमे जलन भी होती है।

(३)अध्रुप (खूनी सूजन)

यह सूजन अकेले खून से होती है तालु सूजकर कड़ा हो जाता है, लाल हो जाता है, और दर्द करने लगता है इसमे ज्वर भी हो जाता है।

(४) कच्छप कफ की सूजन

यह अकेले कफ से होने वाली सूजन है, यह सूजन कई दिनो मे पैदा होती है और तालु कछुये की तरह ऊपर को उठ जाता है।

(५) तालु का अर्बुद

यह खूनी रसौली है जो तालु में होती है ठीक बीच मे यह रसौली होती है, इसमे लाली रहती है और खूनी अर्बुद के सब चिन्ह मिलते है। इसके आसपास अंकुर भी होते है।

(६) मांस सघात

तालु के मांस को कफ दूषित बना देता है, जिससे उसमे हलका भारीपन तो अवश्य आ जाता है, वर्ना वैसे कोई तकलीफ नही होती।

(७) तालुपुप्पुट

तालु के ऊपर बेर की जैसी एक गांठहो जाती है, यह स्थिर होती है और न इसमे किसी प्रकार की पीड़ा ही होती है यह गाठ मेद मिले कफ से होती है।

(८) तालुशोष खुश्की

बादी और पित्त के परमाणु जब तालु पर सवार होते है तो उसमें खुश्की आ जाती है, वह फटने लगता है खुश्की के साथ २ सांस भी उठने लगता है।

(९) तालुपाक

पित्त की तेजी से कभी २ तालु पक जाया करता है। उसमे जलन होने लगती है। जलन और पकाव की तेजी होने पर ज्वर भी हो जाता है।

कण्ठ रोग

Disease of the throat

गले के रोगो को कण्ठ रोग कहते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये गले का स्वस्थ रहना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। गले में ही श्वास नली है, जिससे सास लिया जाता और निकाला जाता है, और गले मे ही अन्न नली है, जिसके रास्ते खाना आमाशय मे पहुँचता है। जल्दी २ और ऊटपटाग तौर से खाने से अन्न कभी २ श्वास नली मे जा पहुँचता है जिससे खांसी जैसे रोग पैदा होते है। फेफडो का स्वस्थ रखने का काम श्वास नली का है, श्वास नली मे खराबी पैदा होने से फेफडे के नियमित कार्य मे बाधा पहुँचती है और स्वास्थ्य दिन २ बिगड़ने लगता है।

जब कै होती है तो अन्न नली के सहारे वह मुह मे आती है। अनियमित आहार विहार से गले मे भी कई तरहके रोग पैदा हो जाते है, गले मे दर्द (*Affection of the throat*) होने से खाना पीना हराम हो जाता है, श्वास ठीक तौर से नही लिया जाता। कई रोग तो गले. में ऐसे होते हैं जिनसे दम निकलते देर नहीं लगती।

गर्मी होने से गले की नसे सूज जाया करती है, कभी २ तो सूजन इतनी बड़ी हो जाती है कि खाना पीना भी हराम हो जाता है, गले में घाव भी हो जाया करता है। बदहजमी, कब्ज आदि से दोषो की सड़ी हुई भाफ गले में आती है और कई तरह के रोग पैदा करती है।

गले के अन्दर और बाहर होने वाले रोगों का यहा उल्लेख किया जाता है।

गले के अंकुर (रोहिणी)

गले में कभी २ छोटे अंकुर हो जाया करते हैं.

गले में कभी २ छोटे अंकुर हो जाया करते हैं, उन्हे कण्ठ रोहिणी कहते हैं। दोषो की खराबी से यह अंकुर पैदा होते है। और दोषो के अनुसार ही इनके अलग २ चिन्ह होते हैं। इनसे खाने पीने और सांस लेने में बडा कष्ट होता है।

अंकुरों के चार भेद

(१) बादी के अंकुर

बादी की खराबी, यानी खराब बादी के गले में पहुँचने से जब अंकुर पैदा होते हैं तो वे जीभ की जडके आस पास होते हैं, इनमे दर्द भी बहुत होता है, खाने मे रुकावट हो जाती है, पानी पीना मुश्किल हो जाता है, साथ मे बादी के और भी उपद्रव हो जाते हैं।

(२) पित्त के अंकुर

पित्त से होने वाले अंकुर पैदा भी जल्दी ही होते है, और पक भी जल्दी ही जाते है, इनमें जलन बहुत होती है, और जलन के मारे बुखार भी हो जाता है।

(३) कफ के अंकुर

भारी और स्थिर होते है, बहुत धीरे २ पकते है देखने मे सफेद होते हैं, और गले का रास्ता रोक देते है, जिससे पानी की एक बूद भी हलक में नही जा सकती।

(४) त्रिदोष के अंकुर

ये सफेद भी होते है, पीले भी होते है, भारी और पतले भी होते है। इनमे दर्द खूब होता है,

और जलन भी जोरों से होती है, इनका पकाव गहरा होता है, बुखार भी चढ़ जाया करता है और रोगी चुपचाप पड़ा रहता है।

(५) खून के अंकुर

जब खून से अंकुर होतेहैं तो उनका रंग लाल होता हैं, पैदा भी जल्दी होते हैं, और पकने भी जल्दी ही हैं, बुखार भी हो जाया करता है, और जलन बहुत होती है। गर्म फुन्सियां भी हो जाती हैं

कराठ शालूक (गले की गुठली)

बड़े वेर के बराबर एक गुठली, गले में पैदा हो जाती है, यह कफ से होती है अतः स्थिर कड़ी और खरदरी होती है, इसके चारो तरफ कांटे भी हो जाते हैं,यहबिना आपरेशनके नहीं फूट सकती।

गिलायु (गले की गांठ)

यह गांठ गुठलीसे बड़ी होती है, ठीक आंवले की गुठली जैसी होती है। यह स्थिर होती है, खरदरी नही होती है, इसके चारो तरफ कांटे भी नही होते। इसके होने पर एसा मालूम होता है, मानो गलेमें कोई ग्रास अटक गया है, इसमें थोड़ी पीड़ा भी होती है, यह भी विना आपरेशन के आराम नही होती, कफ और खून की खराबी से यह गांठ होती है।

अधिजिह्व

यह सूजन जीभ के पिछले हिस्से में होती है, तथा कफ और खून की खराबी से होती है, सूजन ललाई लिये हुये होती है, पक जाने पर यह रोग असाध्य हो जाता है।

वलय (कफ की सूजन)

यह सूजन कफ से होती है, अतः फैली हुई और भारी होती है, इसके होने पर पानी तो पिया जा सकता है, खाना नही खाया जाता।

बलासवायु और कफ की सूजन

यह सूजन भारी, कड़ी, काली और सफेद होती है, जिससे सांस भी रुकने लगता है, अगर जल्द ही इसका इलाज नहीं किया जाता है, तो प्राणो पर आ जाती है।

एक वृन्द (सूजन)

कफ की खराबी तथा चोट लगने पर यह सूजन होती है, यह सूजन ऊंची, खाजदार और कोमल होती है, पकती नही है और इसमें जलन होती है।

वृन्द (सूजन)

पित्त की खराबी और क्षत होने से जब यह सूजन होती है, तो फैली हुई उठी हुई और जलनदार होती है, साथ में बुखार भी हो जाया करता है।

यही सूजन जब वायु और रक्त से होती है, तो इन चिन्हो के अलावा टीस चलना और दर्द, ये दो चिन्ह और होते है।

शतघ्नी

मांस के अंकुरो से घिरी हुई मुंह में एक सलाई सी होती है. जो ठीक गले में होती है, जिससे गला रुक जाता है, जलन होती है, दर्द होता है, और कई तरह की पीड़ाऐं होती है। यह रोग तीनो दोषो से पैदा होता है, और थोड़ी उपेक्षा कर देने पर ही असाध्य हो जाता है।

गल विद्रधि

त्रिदोषसे होने वाली यह गले की पकने वाली सूजन है, जो फोड़े के रूप में परिणित हो जाया करती हैं, जलन, दर्द टीस, बुखार, सांस रुकना आदि चिन्ह होते हैं। पकने वाले फोड़े के सभी चिन्ह इसमें होते है।

स्वरघ्न

स्वर भेद से यह प्रथक रोग है। सांस लेते समय आखो के सामने अंधेरा सा आने लगता है, गला सूख जाता है, स्वर फट जाना है, भोजन

निगला नही जाता, श्वास नली में कफ लिपट जाता है, जिससे श्वास के आगमन में रुकावट पैदा होती है, कण्ठ हरदम खुला हुआ रहता है।

गलौघ (कफ रक्त की सूजन)

कफ और खून की बदमाशी से यह रोग पैदा होता है। इसमे जोरदार सूजन होती है, जो देखने में सफेद या लाल होती है, इसके साथ २ ज्वर भी हो जाया करता है, अन्न पानी तक गले से उतर कर आगे नही जा सकता, उदान वायु की गति में रुकावट होती है, यह खतरनाक सूजन है।

मांसतान

एक फैलने वाली सूजन होती है, जो धीरे २ फैल कर गले को वन्द कर देती है, यह सूजन त्रिदोष से होती है, और चन्द घंटो में मौत का वारन्ट दिला देती है।

विदारी (पित्त की सूजन)

ठीक गले के अंदर यह सोजा होता है, इसमे जलन होती है, दर्द होता है, और वदबूदार मांस गले मे विखर जाता है, रोगी जिस करवट सोता है, उसी तरफ ज्यादा दर्द होता है।

गले का घाव

Sorethroat

कभी २ गले मे घाव हो जाया करता है। घाव होने के दो कारण हैं।

१—अन्न नली और श्वासनली मे फुन्सियो के होकर फूटने से घावहो जाता है, सूजन के पककर फूटने से भी घाव हो जाता है।

२—गर्म दोष, सर की तरफ से या आमाशय गर्भाशय आदि की तरफ से कंठ पर आता है तो घाव हो जाया करताहै, फिर खट्टी, नमकीन और तेज चीज के खाने से दर्द होता है।

श्वासनली का ढीला होना

श्वासनली के ऊपर जव वरावर पतली तरियां गिरती रहती हैं, तो उसमें ढीलापन आ जाता हैं, जिससे हवा फेफड़े की तरफ नहीं खिंचती और दम घुटने लगती है।

अन्न नली की खुजली

जले हुये तेज और गाढे दोष जव आमाशय में इकट्ठे हो जाते हैं, तो वहां से भाप के परमाणु उठकर अन्न नली से टकराते हैं, जिससे उसमें खुजली चलने लगती है। खुजली चलने पर आदमी हरदम खकारता रहता है, तथा गरदन और सर को फेरता रहता है।

श्वास नली का फड़कना

वादी से पैदा होने वाली भापके गाढ़े परमाणु जव फेफडे और श्वास नली के सयोगिक पट्ठे पर आक्रमण करते है, तो फेफड़े का मुह फड़कने लगता है, जिससे मुह की वात मुह में ही रह जाती है, कफ की तरी जव कठ नली और झिल्ली की पतली रगो में घुस जाती है, तव वोलने में कपकपी होने लगती है।

गले मे सास का रुकना

हवा पहिले नाकमें जाकर, पीछे गले के रास्ते फेफड़ो मे पहुँचती है, और खाना पहिले मुह में जाकर अन्न नली के सहारे आमाशय मे पहुँचता है, किन्तु जवगले मे कोई खरावी हो जाती है, तो दोनो ही कामो मे रुकावट होने लगती है, श्वास नली की खरावी का असर अन्न नली पर अवश्य गिरता है, और अन्न नली की खरावी का असर श्वास नली पर गिरता है।

सांस रुकने के ४ भेद

पहिला भेद

जीभ की जड के मास मे गले तथा अजलो में सूजन होने से श्वास मे रुकावट होती है, सूजन के हिसाव से इसके ४ भेद है।

४ भेद

१—सूजन का मवाद खून होता है। मुंह की

लाली, रगों का खून से भरना, जलन आदि इसके चिन्ह है।

२—इस सूजन का मवाद पित्त होता है।

प्यास की अधिकता, मुह में खुश्की और कड़ापन, अनिद्रा, जलन टीस आदि चिन्ह होते है। कफ के मवाद से सूजन होती है। मुंह और आंखो का भर आना, लार की अधिकता, दर्द की कमी सफेद सूजन, मुह का कडुवापन और खारा पन येचिन्ह होते हैं।

४—मवाद वादी का होता है। सूजन में कठोरता मुह का कड़वापन और कसैलापन तथा खुश्कपन चेहरे का कालापन और खिचाव की अधिकता ये चिन्ह होते है।

२-खुनाक कलवी (अजले की सूजन)
२ भेद

१—गले के अन्दर अजले की सूजन जो बहुत निकम्मी मानी जाती है बहुत से हकीम इसी को नर्खरे की सूजन भी कह देते है। इसमें दर्द खूब होता है, जीभ निकल पड़ती है और यह जल्द ही रोगी को मार देती है। इससे सांस में भी रुकावट होने लगती है।

२—गर्दन के मन के अपनी जगह से हटकर भीतर की तरफ उतर कर सूजन पैदा करते है? जिससे सास में रुकावट होती है।

मनके हटने के ६ कारण है

१—गिर पड़ना चोट लगना।

२—मनको की या नर्खरे की, मछलियो में तथा नर्खरे में और नर्खरे के भीतर वाले अजले में और भोजन पथ तथा नर्खरेके बीच की मछली में सूजन हो जाने से मनके भीतर खिच जाते है। और सूजन पैदा करते है। जिससे सांस मे रुकावट होती है।

३—खुश्की और तरी से मनको में खिचावट और वांयटे पैदा होकर वे फिसल जाते हैं?

४—गाढ़ी वादी मनकों के जोड़ में आकर उनको हटा देती है।

५—तेज मवाद मनको की जड़ में आकर उनको हटा देती है।

६—फिसलाने वाली तरी ही मनको को फिसला देती है।

नोट—जो मनका हटता है, वह अपन जगह खड्डा पैदा कर देता है।

३-जुवहा नर्खरे की सूजन

यह नर्खरे की सूजन है, नर्खरे के अजलो में जब गर्म गाढ़े खून से सूजन पैदा होती है तो गले के अंदर भी होती है। इसमें बोली बन्द, लार बहना आंखोका बाहर निकलना, येचिन्ह होते है। कोई चीज निगली ही नही जाती।

चौथा भेद

इन अगो के सूजन से नहीं, दूसरे ही कारणो से गले में घुटनी होती है। कारणो के अनुसार फिर इसके ७ भेद होते है।

१—नर्खरे को खोलने वाला अजला ढीला हो जाता है, जिससे उसका हिलना डुलना बन्द हो जाता है, जिससे रास्ता छोटा होने पर श्वास अच्छी तरह नही आता।

२—नर्खरे के अदर वाले अजले में खुश्की होने से वह ठीक तरह हवानही खीच सकता।

३—फेफडे की पीव या सूजन-फेफडा तथा सीने के छेदो मे पैदा हो जाय, इससे भी रुकावट होती है।

४—आमाशय तथा आंत में कीड़े पैदा होने से श्वास मे वाधा पहुँचती है।

५—आमाशय, क्षुद्र आंत तथा और अगो में खून ठहर जाने से श्वास में रुकावट होती है।

६—गले मे सूजन पैदा करने वाली दवा—तथा जहर के खाने से श्वास ठीक नही आता।

७—लगातार अधिक नहाने से भी यह रोग पैदा होता है।

गर्म फुन्सियों का होना

कंठ, अन्नपथ और फेफड़े के मुंह में अक्सर गर्म फुन्सियां पैदा हो जाती हैं, और वह बात नखरे में ही होता है। नखरे के मुह पर फुन्सिया होने से दर्द तो होता ही है, किन्तु वह खाना खाने से और भी बढ़ जाता है, खट्टे, कडे और तेज भोजन से विशेष वेदना होती है। गले मे अगर फुन्सियां होती है, तो वहां दर्द होता है धुआं आदि के गले में जाने, खाने आदि से कष्ट होता है।

हलक में जोंक चिपटना

जब किसी तरह पीने के पानी आदि के साथ जौंक गले मे चली जाती है तो वह वहां चिपट जाती है। गले मे ही नही तालु, जीभ, नखरे आदि में भी चिपट जाती है कभी तालु मे नाक की तरफ आकर दिखाई दे देती है, इसमें आदमी हरदम उदास और घबडाया हुआ रहता है, कभी थोडा पतला खून थूक के साथ निकल आता है। और जोंक अगर फेफड़े के मु ह पर चिपटती है तो खांसी के मारे दम निकलने लगता है, और उसके चिपटे रहने तक चलती ही रहती है जोक हटी तो खांसी हटी। अगर नाक की तरफ चली जाती है तो दिमाग मे बोझ मालूम देताहै और नाक बन्द हो जाती है।

गले का दब जाना

नखरे के अन्दर उसको खोलने वाला एक अजला फैला हुआ है, जो उसके दोनो किनारो को मिलने से रोकता है, किन्तु जब बहुत सी तरी उस पर गिर जाती है, तो वह ढीला हो जाता है और नखरे के किनारे मिल जाते है, इसमें गला दबने से खाने पीने की चीजें अन्दर नही जा पाती। और यह रोग है भी प्राण घातक और बड़ा शैतान।

स्वर भेद

Hoarseness of vaice

शब्द का बिगड़ना

जब तरी और खुश्की समान होती है, तो गले से ठीक शब्द निकलते हैं, किन्तु जब दोनो में कुछ अन्तर पड जाता है, तो शब्द बिगड जाता है। कभी शब्द नष्ट हो जाता है, कभी कम हो जाता है, और कभी भयानक हो जाता है, इस रोग में तीनो दोष बिगडते हैं, आयुर्वेद मे लिखा है, जोर २ से चिल्लाकर पढ़ते रहने, व्याख्यान देने, पाठ करने जोर २ से चिल्लाने, गले में चोट लगने, जहरीली चीजों के खाने आदि कारणो से तीनो दोष कुपित होते हैं, और स्वरवाही स्रोतो में जाकर स्वर को बिगाड़ देता है।

क्षय रोग मे भी आवाज बैठ जाया करती है, और मेदे के बिगडने से भी यह रोग हो जाता है। स्वरभेद को हिकमत मे शब्द का बिगडना कहते हैं, और डाक्टरी मे Hoarseness of vaice कहते हैं, स्वरभेद के आयुर्वेद में ६ भेद हैं, और हिकमत में ५, पाठको की जानकारी के लिये हम अलग २ ही लिखे देते है।

स्वर भेद के ६ भेद

१—वादी का स्वरभेद
२—पित्त का स्वरभेद।
३—कफ का स्वरभेद।
४—त्रिदोष का स्वरभेद।
५—क्षय से स्वरभेद।
६—मेद से स्वरभेद।

१—वादी का स्वर भेद

आवाज या तो गधे की जैसी कडी हो जाती है, या टूट जाती है, आंखो और मुंह पर कालापन

दिखलाई पड़ता है। मल मूत्र मे भी कलौंस रहती है।

२—पित्त का स्वरभेद

आवाज तीखी हो जाती है, और बोलते समय गले में जलन होने लगती है आंखो और मुह पर पीलापन रहता है. मल और मूत्र भी पीले ही रहते है।

३—कफ का स्वरभेद

गले में कफ लिपा रहता है, जिससे घर घर आवाज होने लगती है, आवाज मन्दी पड जाती है, थोड़ी हो जाती है और कभीर भारी हो जाती है, मुंह आंख आदि पर सफेदी रहती है।

४—त्रिदोष का स्वरभेद

आवाज एकदम अस्पष्ट हो जाती है, दूसरे को मालूम ही नही पड़ती, और भी सब चिन्ह होते हैं इस दशा में रोगी असाध्य हो जाता है।

५—क्षय से स्वरभेद

क्षय रोग में भी आवाज बैठ जाती है, और धातुओ के क्षय में भी वैसे बात एक हीं है। इस दशा में मुँह से धुआ सा निकलता है, ओज का क्षय होने पर न आवाज रहती है न आदमी।

६—मेद से स्वरभेद

जब मेद बिगड़ जाता है, बढ़ जाता है तो आवाँज बिगड जाया करती है, गले के भीतर ही रहती है, बाहर देर में निकलती है, एकदम फीकी पड जाती है।

शब्द बिगड़ने के ५ भेद

१—बदलना और नष्ट होना

शब्द का बदलना और नष्ट होना पहिला भेद है।

२—गले का बैठ जाना

उसके ६ भेद

(१) सर से गले और मुह की तरफ जब गर्म नजला गिरता है तो इन अगो का छिलना स्वाभाविक बात हो जाती है, साथ ही चिकनी और चेपदार तरी वहां से हट जाती है, जिससे गला बैठ जाता है, इसमें खुरखुरापन, खुजली और जलन मालूम होती है।

(२) श्वासनली में जब सादा गर्म दुष्ट प्रकृति पैदा हो जाती है तो तरी सूख जाती है, और गला बैठ जाता है, इसमें खुरखुरापन होता है

(३) सादा सर्द दुष्ट प्रकृति जब फेफड़े के मुह और सरको सिकोड़ देती है तो उसके हिस्से एकत्रित हो जाते हैं, उसमें कडापन और खुरखुरा-पन पैदा हो जाता है, यह रोग जाड़ो और उत्तरी हवा में पैदा होता है।

(४) फेफड़े के सर और मुँह में जब तर दुष्ट प्रकृति आ जाती है तो उसे वह ढीला कर देती है, जससे आवाज बैठ जाती है, इसमे मामूली हालत होती है।

(५) खुश्क दुष्ट प्रकृति जब उन स्थानो में आकर चिकनी तरी को खेंच लेती है तो गला बैठ जाता है, शब्द निकलता है किन्तु नीचा और तेज कंठ मे भारीपन और दर्द होता है।

(६) जोर से चिल्लाने, चीखने से फेफड़े के मुह और नखरे में खुरखुराहट आ जाताहै तरियां नष्ट हो जाती है. कभी गले की तरफ मबाद भी उतर आता है, जिससे सूजन और दर्द होकर गला बैठ जाता है।

३—सकम्प शब्द

सकम्प शब्द के दो भेद होते है, कारणो का उल्लेख किया जा चुका है।

(१) कपकपीदार–शब्द कांपने लगता है। यह रोग आत्मिक है।

(२) फड़कने वाला–शब्द फड़कने लगता है।

४—घर-घर शब्द

गाढ़ी तरी के उतर आने से रोग दीखने जैसा आवाज निकलती है।

५—मन्द शब्द

नींद न आने, थकावट, विरेचन, अधिक मैथुन आदि कारणो से आवाज मन्दी पड़ जाती है।

गलगण्ड *Goitre*

वायु और कफ दोनो गले की चमडी आदि मे घुसकर फोडा पैदा कर देताहै, उसे गलगण्ड कहते है यह तीन तरह का रोग है।

१–वातज गलगण्ड

इसमें जो फोडा होता है वह कठोर होता है। बहुत दिन मे वढ़ता है और पककर फूटता नही, कभी फूट भी जाता है, मु ह मे नीरसता और तालु तथा गले की खुश्की इसकी साथी है।

२–कफज गलगण्ड

यह फोडा ठडा होता है मोटा होता है, वहुत दिनो में वढ़ता है और जल्दी पकता नही, स्थिर होता है, पके रग का होना है, खाज खूब चलती है और थोडी पीडा होती है। मु ह में मिठास रहता है तालु और गला दोनो लिपे से रहते हैं।

३–मेदज गलगण्ड

मेद से जो फोडा होता है वह चिकना पीला और वदबू दार होता है, पीडा कम होती है और खाज खूब चलती है, छीया की तरह लटकता है, और जड में से कुछ पतला होता है। शरीर की वृद्धि और ह्रास के अनुसार वह घटता बढ़ता है। आदमी के मु ह मे चिकनाहट रहती है और हर दम कठ मे शब्द होता रहता है।

असाध्य चिन्ह

जिस रोगी को सास लेने मे कष्ट होता है जिसके सव गात्र कोमल हो जाते हैं और फोडा एक वर्ष से अधिक का हो जाय, अरुचि और क्षीणता हो तथा स्वरभग हो गया हो तो समझना चाहिये अब यह प्राय असाध्य हो गया है।

गण्डमाला *Scrofula*

छोटे या वडे वेर तथा आवले जैसी गाठें, काख कधा गले की पिछली तरफ और सांथलो में पैदा हो जाती है, यह बहुत ही धीरे २ पकती है और सब एक साथ पैदा नही होती। सांथलो में गांठ पैदा होने से 'वाघी' का भ्रम हो जाता है, गरदन पर गाठ होने से गलगण्ड का भ्रम होता है, गर्मी होने पर यह रोग अवश्य होता है।

अपची

यह रोग भी गण्डमाला का दूसरा भाई है, उसी तरह गांठे होकर कोई फूट जाती है कोई खुद वैठ जाती है। पुराना होने पर प्राय. यह रोग मिटता नही है।

मुंह की स्निग्धता
Acneolos

मु ह पर साधारण तौर से हलकी चिकनाई रहनी चाहिये, जिससे खुश्की न दिखलाई दे। अधिक चिकनाई का रहना भी एक रोग है। किसी किसी के चेहरे पर इतनी चिकनाई रहती है कि छूने पर अगुली के ऊपर तेल सा लग जाता है। जाड़े के दिनो में और विना तेल लगाये भी मुँह पर यह चिकनाई वनी ही रहती है। बसा ग्रन्थियो के कमजोर होने पर यह रोग होता है, इस लिये कि बिना रुकावट के ही स्निग्ध पदार्थ निकलता रहता है। यह रोग आज कल की फैशनेबुल लेडियो को बहुत परेशान करता है।

मुँह का रूखापन

हरदम मु ह का रूखा रहना भी एक रोग ही है, कमजोर आदमियो का व्यभिचारियो का और किसी रोग से ग्रस्त आदमियो का चेहरा हरदम रूखा रहता है तेल लगाने पर भी उस पर कुछ चिकनाहट नही रहती। हस्त मैथुन करने वालो के चेहरे पर हरदम रूखापन रहता है।

तिल्ली और कलेजे में कोई रोग होने, कब्ज रहने, अजीर्ण रहने आदि से भी मु ह पर रुखाई आ जाती है, इसमे खास कारण का इलाज करना चाहिये।

मुंह की आकस्मिक लाली

चेहरेपर साधारण ललाई रहना भी आवश्यक और वह स्थायी होनी चाहिये. किन्तु किसी किसी का चेहरा सहसा लाल हो जाया करता है, और अक्सर ऐसा खाने के वाद में ही होता है। आमाशय, यकृत, मूत्राशय आदि की खरावी से ऐसा हुआ करता है। तेज बुखारों में, जहर खाने पर और ऐसे ही किसी दूसरे आकस्मिक कारण से भी चेहरा लाल हो जाया करता है, किन्तु ऐसा कभी २ होता है, हमेशा नही। इस रोग में तो हमेशा ही खाने के बाद चेहरा लाल हो जाया करता है।

मुंहासे

Acne

आयुर्वेद में मुंहासे को मुख दूषिका कहते हैं। मुंहासों से मुंह का सौंदर्य नष्ट हो जाता है, विदेशी लेडिया तो इन्हे विजली से छिलवा दिया करती हैं। मुंहासो की जड़ लाल और कड़ी होती है, इनके पक जाने पर कील निकलती में। वाद में थोड़ी सफेद या पीली पीप भी निकलती है।

खून की खरावी, शराव का अधिक पीनाआदि कारणो से यह होते है, जवानी मे तो यह स्वाभाविक तौर से हो ही जाते हैं, किंतु अधिक होते है किसी खरावी से।

मुंह पर झांई पड़ना

गर्भाशय की खरावी, रजोरोध, खून के विगड़ने, रक्तपित्त होने आदि कारणो से मुंह पर झांई पड़ जाती है, झांई को सभी जानते है, इसे व्यंग कहते हैं।

मुंह की फुन्सियां

पित्त मिले हुये तेज खून से मुंह में फुन्सियां पैदा होती है जिनमें दर्द भी खूब होता है। कोई चीज को चवाने में दर्द के मारे खाना हराम हो जाता है।

मुंह का आना

एक घाव होता है जो मुंह और जीभ की खाल से पैदा होता है और फैलकर सारे मुंह को घेर लेता है, कभी २ यह भीतर के पर्दे में पहुंचकर आमाशय और नरखरे तक जा पहुँचता है।

इसके तीन भेद है

१–पहिला भेद खूनी मवाद से पैदा होता है। इसमें गर्मी और लाली होती है और मुह के भीतर की खाल उभरी हुई होती है।

२–बलगमी कफ की तरी खारीपन के कारण घाव पैदा कर देती है, घाव सफेद होता है, दर्द साधारण और झिल्ली के फूलने से नर्म सूजन के समान होता है।

३–तेज और जली हुई बादी के मवाद से यह घाव होता है। जीभ काली हो जाती है, दर्द होता है खुश्की रहती है तेजी के साथ-साथ ही टीस चलती है।

मुंह का दुर्गन्धित गहरा घाव

यह घाव पूर्वोक्त घावो से पृथक है। सड़ा हुआ तेज मवाद सर से उतर कर या आमाशय से चढ़ कर इस घाव को पैदा करता है, यह मवाद बड़ा निकम्मा और दुर्गन्धित होता है। यह घाव भी दुर्गन्धित होता है और थोड़े समय में ही बहुत फैल जाता है, इसमें टीस चलती है।

मुंह से अधिक लार गिरना

२ कारणो से इसके २ भेद है

१–गर्मी और तरी इसका पहला कारण है, खास कर जव वह आमाशय में होती है। इसमें खाली पेट में, कम खाने में, गर्मी की अधिकता में तरियो के पिघलने से लुआब वढ़ जाता है, जो सोने पर विस्तरो पर गिरता रहता है, जगने पर थूक अधिक आता है।

२-आमाशय में सर्दी और कफ की तरी के अधिक संचित हो जाने से लार गिरती है, इसमें पाचनशील शक्तिकी निर्बलता, लुआब का गाढ़ापन चिकनापन और मुह का खट्टापन ये चिन्ह होते हैं।

मुंह में बदबू आना

इसके ६ भेद हैं

१-ऊपरी गर्मी आमाशय मे आकर आमाशय तालु के पास और दांतो के जड़ में रहने वाली तरियो से बढ़ जाती है और उनको दुर्गन्धित बना देती है, इसमे खाने के बाद बदबू कम आती है, दांत भी काले हो जाते है।

२-सड़ा हुआ कफ आमाशय में इकट्ठा होकर दुर्गन्धित भाफ के परमाणुओ को ऊपर फेंकता है, जिससे बदबू आती है, खाने और मुह धोने से वह कुछ दब जाती है।

३-निकम्मी सड़ी हुई तरी, सर की तरफ से दांतो पर और उनकी जडो पर गिरती है, जिससे बदबू आती है।

४-बदबू पैदा करने वाली गर्म दुष्ट प्रकृति दांतो की जड़ो पर आ गिरती है और उनकी तरियो को बेकास कर देती है, इसमे हमेशा मसूढ़ो से खून गिरता है।

५-निकम्मी तरी दांतोमें घुसकर उनको खाकर सड़ा देती है।

६-सिल के अन्त में फेफडो की बदबू भी ऊपर उठकर मुह में बदबू पैदा करती है।

मुखपाक मुह के फलके

Stomotitis

बादी की चीजो के खाने, तेज पदार्थ खाने आदि कारणो से मुह मे फलके हो जाया करते है गलाफेमें होकर होठोपर भी यह फलके हो जातेहै।

मुखपाक के ३ भेद

१-बादी के फलके।

२-पित्त के फलके।

३-कफ के फलके।

इस तरह फलके तीन तरह के होते हैं। तीनों के लक्षण भी यहा बतला देते हैं।

[१] बादी के फलके

काले काले खरदरे और पीड़ा वाले होते है। ये सारे मुह में होते हैं।

[२] पित्त के फलके

लाल या पीले होते हैं ये पतले होते हैं और इनमें जलन होती है।

[३] कफ के फलके

मोटे सफेद और थोड़ी पीड़ा वाले होते हैं।

हनुरोग

Diseose of the Lower Jon

ठोड़ी की बीमारियां

बोलचाल की भाषा में हनु को ठोडी कहते हैं ठोड़ी के रोगो को ही हनुरोग कहा जाता है।

ठोड़ी निचले होठो के नीचे का अग है। इस जगह हनु नामक अस्थि है उसी के नाम के अनुसार इसे हनु कहते है। ठोडी में भी कुछ बीमारियां हो जाती है, उन्ही का उल्लेख यहा किया जाता है। ठोड़ी के रोगों का असर भी ठोड़ी के ऊपर आ जाता है, इसलिये होठों में रोग होने पर ठोड़ी को सावधानी के साथ रखना चाहिये।

हनुग्रह

Dislocation of the lower jan

यह वह रोग है, जिसमें ठोड़ी जकड़ जाया करती है, न खुलती है न बन्द होती है। या तो मुह खुला का खुला रह जाता है या दांतो से दांत मिल जाते है, फिर कोशिश करने पर भी न दोनो होठ मिलते है और न खुलते है। यह बादी का

रोग है, जो सूखी कड़ी चीजों के चबाने, ठोड़ी पर चोट लगने, आदि वायु के बिगाड़ने वाले कारणो से होता है। इसमें कभी २ ठोड़ी कांपने भी लगती है और चेहरे की सूरत भी बदल जाती है।

ठोड़ी की सूजन

Mumps

यह सूजन ठोड़ी की जड़ में होती है इसमें पीड़ा अधिक नहीं होती हलकी होती है। छूने पर सूजन स्थिर मालूम पड़ती है कभी २ सूजन बहुत भारी हो जाती है जिससे मुंह हरदम खुला रहने लगता है। यह रोग कफ मिली बादी से होता है।

ठोड़ी की फुन्सियां

बहुत से आदमी खाने के बाद में मुंह को ठीक साफ नहीं करते अन्नके कण ठोड़ी पर लिपटे रहते हैं। फिर वे वहां सड़ जाते हैं जिससे गन्दगी के कारण फुन्सियां हो जाया करती हैं। कभी २ ठोड़ी की फुन्सियां भी नीचे उतर आती हैं।

ठोड़ी का घाव

सूजन होकर उसके फूटने, फुन्सियोंके फूटकर बिगड़ जाने वाले बाल बनवाने के समय उस्तरे से चोट लग जाने आदि कारणों से कभी २ ठोडी पर घाव भी हो जाया करता है।

होठों का पिच जाना

मुंह के बल गिर पड़ने या ठोड़ी पर चोट लग जाने आदि से कभी २ ठोड़ी पिचक जाया करती है।

हृदय रोग

Disease of the heart

हृदय को बोल,चाल की भाषा में दिल भी कह देते हैं, दिल शब्द यूनानी का है और हृदयके रोगो का वर्णन हिकमत मे दिल के रोगो के नाम से ही हुआ है। निस्सदेह दिल के रोगो का विवेचनात्मक वर्णन, जितना हिकमत में है, उतना न आयुर्वेद में है और न ऐलोपैथी यानी डाक्टरी में। हृदय को हृत्कमल भी कहते हैं, वह चेतना का केन्द्रस्थान और धातुओं का तत्वभूत माना गया है। यहां हृदयके रोगो का उल्लेख होगा। पाठक पाठिकाओ को उत्कण्ठा होगी कि आखिर हृदय Heart है क्या? क्यों यह चेतना का केन्द्र स्थान माना गया है और क्यों Heart of all होने पर दम निकल जाता है? इस उत्कण्ठा का अध्ययन करने के लिये सक्षेप में हम यहां हृदय के विषयमें मोटी बातें बतला देना चाहते हैं, विशेष वर्णन यहां नही हो सकता।

हृदय क्या है ?

What is heart

हृदय दोनों फेफड़ो Lungs के बीच में सीने में रहता है, इसके आसपास यकृत Liver तिल्ली Spleen आदि अग हैं। यह एक ऐसा अंग है या यों कहना चाहिये कि यह ऐसा पंपिग इंजिन है, जो अनवरुद्धगति से, बे रोक टोक हमेशा खराब खून को लेकर और फेफड़ों से आये हुये शुद्ध रक्त को लेकर रक्त नलियों द्वारा सारे शरीरमें पंप किया करता है। यह बराबर फड़कता रहता है और इसका आकार तिकोना है, स्वस्थ मनुष्य का दिल लम्बाई में ५ इञ्च चौड़ाईमें ३॥ इञ्च और मोटाई में २॥ इञ्च होता है। इसका वजन १० औंस के बराबर होता है, स्त्रियो का कुछ कम ६ औंस के बराबर शरीर के १६० वे भाग के बराबर हृदय होता है। इसे चार हिस्सो में विभिन्न किया जा सकता है। २ हिस्से बांई तरफ, दाहिनी तरफ के दोनो भागो में एक किवाड़ लगा हुआ है, बांयी तरफ के हिस्से मिले हुये रहते हैं। किवाड़ो की बनावट इतनी विचित्र है कि रक्त को एक भाग से दूसरे भाग में जाने ही देते हैं, आने नहीं देते।

इसको लेजाने और लाने वाली नालियां तरह २ की होती हैं, एक धमनी जो मोटी दीवार वाली है इनके ही सहारे खून हृदय में पहुँचता है। दूसरी सिरा पतली दीवार वाली, इनके सहारे खराव खून हृदय की तरफ दौडा करता है ये नीली या काली होती है। हृदय स्वस्थ दशा में ७२ से ८० बार तक धडकता है, विकृत दशा में कम या अधिक।

हृदय वृद्धि

Hypertro phy of the heart

अपनी हिम्मत से अधिक अपरिमित काम करने से रक्त सचालन की क्रिया मे रुकावट होती है, दिल के ऊपर तरी जमना, उसका खिचना उसकी सूजन आदि से भी रुकावट होती है। खून की गति में जिससे यह रोग होता है। हृदय भारी हो जाता है और हृत्पेशियां भर जाती हैं। इसमें हृदय का स्पन्दन शब्द होता है। उसकी गति तेज हो जाती है और वह तडफता है, खांसी आने लगती है, जरा से भी श्रम से श्वास प्रश्वास में कष्ट होने लगता है, नाडी में तेजी आ जाती है। बांयी पसली में दर्द, शिर घूमना, वेहोशी और हृदय का कांपना छाती की हड्डी के नीचे दर्द, पैर में सूजन, अनिद्रा, आदि उपद्रव होजाते हैं। नाव के मांझियो को तथा वे हिसाव कसरत करने वालो को यह रोग होता है।

हृदय शूल

Angina pectoris

अति मैथुन दमा, फेफडो की खरावी आदि से जव हृदय क्षीण और रोगी होजाता है तो हृत्पिंड के आक्षेप के कारण जो छाती में वेदना होती है इसे ही हृदय-शूल कहते हैं। ठीक छाती के बीच में पहिले जोरो से पीडा होती है, फिर यह धीरे २ चारो तरफ फैल जाती है और बढ़ती भी है। कभी रुकती है और बढ़ती है, श्वास प्रश्वास में कष्ट होने लगता है, हृदय एक दम चंचल हो जाता है, कपकपी आने लगती है, पसीना आ-जाता है, मुंह मलिन होजाता है, आंखें गड्ढे में घुस जाती है, कभी २ वेहोशी भी होजाती है।

यह रोग लीवर की खरावी और पेट की खरावी तथा हृदयावरक झिल्ली में खून सञ्चय होने से आजकल विशेष होता है।

हृदय का अधिक स्पन्दन

Palpitatio of the heart

हृदय का स्पन्दन तो होता ही है और वह सम भावसे होता है बरावर कसरत करने, मैथुन करने और किसी शारीरिक श्रम के कारण स्पन्दन की गति कुछ बढ़ जाती है, लेकिन थोड़ी देर वाद वह अपनी नियमित मात्रा पर आजाती है, अगर ऐसा न हो और हृदय की स्पन्दन गति में अन्तर पड़ जाय, वह मात्रा से अधिक विपम तरीके से बढ़ जाय तो समझ लेना चाहिये कि रोग लग गया है।

अति मैथुन, स्नायुमडल की दुर्वलता, अति श्रम, वे हिसाव शराव का पीना, प्रमेह, प्रदर, भय, चिंता आदि शारीरिक और मानसिक दोनों कारणो से यह रोग होता है। इसमें जरा सी भी उत्तेजना से हृदय कांपने लगता है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया बढ जाती है मुंह उत्तप्त और लाल हो जाता है। धडकन वहुत होती है कभी बांयी पसली में दर्द भी होजाता है। बहुमूत्र, अस्थिरता, आदि उपद्रव हो जाते हैं।

हृदय पर चर्वी चढ़ना

Fattyheart

खा-पीकर गद्दो के सहारे पड़े रहने वाले बिना पचे ही खाने वाले, मानसिक व्यायाम न करने वाले मुस्टण्ड इसके शिकार होते हैं। दिल पर

चूंकि वह ठीक काम नहीं करता, चर्बी चढ़ जाती है, जिससे उसमें ढीलापन आ जाता है। रक्त संचालन क्रिया ठीक नहीं हो पाती, हरदम दिल पर बोझा सा पड़ा रहता है।

हार्टफेल

Heart fail

यह ऐसा कोई उल्लेखनीय रोग नहीं है किन्तु आज-कल इसके कारण मौत बहुत होती है। चलते २ बैठे २ आदमी मर जाता है और घर के लोग हाय पीट मचाने लगते हैं। रक्तसंचालनयंत्र की क्रिया सहसा बन्द हो जाने को 'हार्टफेल' कहते हैं, यानी हृदय का फेल होना यानी अपने काम से जवाब देना, जहां खून की गति बन्द हुई फेफड़ो की गति भी बन्द हो जाती है। हार्टफेल के कई कारण हैं। सहसा कोई जबरदस्त भय पैदा हो जाय या खुशी हो जाय प्रेमी की मौत हो जाने से भी हार्टफेल हो जाता है। भले चगे आदमोभी सेंकएडो में मौत के मुंह में चले जाते हैं। जो वीर्यनाश करते हैं, वे भी खून की कमी से इसके पजे में फंस जाते हैं।

आयुर्वेद से हृदय के ५ रोग हैं

आयुर्वेद में पांच तरह के हृदय रोग माने हैं, कारण भी उनके साथ ही बतलाये गये हैं। हल्लास दिल पर धुआं घुमडना आदि का वर्णन आयुर्वेद में अलग २ नही किया है, इनका जिक्र लक्षणो में आया है। अलग नही। हिकमत में भी दिल के रोगो की खास विवेचना की गई है।

५ भेद

(१) वातज हृद्रोग।
(२) पित्तज हृद्रोग।
(३) कफज हृद्रोग।
(४) त्रिदोषज हृद्रोग।
(५) क्रिमिज हृद्रोग।

हृदय रोगों के कारण

ज्यादा गरम, भारी, कषाय तीखे पदार्थो के खाने से, कसरत अधिक ,करने, धनुष अधिक तानने आदि से, हृदय स्थल पर चोट लगने से, रात दिन चिन्ता करने से, डर से, शरीरस्थ दोष विकृत होकर रक्त को दूषित कर देते हैं। फिर चेतना का केन्द्र स्थल हृदय उन दोषो का प्रहार स्थल हो जाता है, जिससे हृदय में पांच तरह के रोग होते हैं।

(वातज हृद्रोग)

जब वायु विकार होता है तब हृदय खींचा सा जाता है, सुई सी चुभती मालूम होती है डंडे से मथित होता सा मालूम होता है। आरे से चीरा सा जाता है, और कुल्हाड़े से काटा सा जाता है।

(२) पित्तज हृद्रोग

इसमें प्यास लगती है हृदय में थोड़ी जलन होती है, सारी देह जलने लगतीहै, और हृदयचूसा सा जाता है, उसमें ग्लानि होती है, मुंह से धुआं सा निकलता है, बेहोशी होती है, मु ह सूज जाता है, और पसीना आ जाता है।

(३) कफज हृद्रोग

हृदय में भारीपन, जड़ता, जठराग्नि की कमी अरुचि, कफ स्राव, और मुंह में माधुर्य ये सब कफ जनित हृदयरोग में होते हैं।

(४) त्रिदोषज हृद्रोग

इसमें प्रायः सभी चिन्ह प्रगट होते हैं।

(५) कृमिज हृद्रोग

त्रिदोषज हृदयरोग में जब, तिल, दूध तथा गुड़ आदि चीजें खाई जाती है तो रस हृदय के एक कोने में सड़ जाता है, जिससे कीड़े पैदा हो जाते हैं, फिर उन कीड़ो से हृदय में वेदना होने लगती है। उत्क्लेद-हरदम कै सा होना, मुंह से पानी गिरना, सुई छेदने जैसा दर्द, शूल, हल्लास,

आंखों के आगे अंधेरा छा जाना, अरुचि आंखों में कालापन, और क्षय यह सब भी उस समय हो जाते हैं।

उपद्रव

क्षोम—प्यास की जगह में सूजन, मुंह का सूखना भ्रम होना, आदि उपद्रव हृदय रोग में होते हैं।

मूर्च्छा *Syncope*

जब मनुष्य को न सुख होता है, न दुख होता है, और वेहोश होकर निर्जीव काठ के पुतले की तरह गिर पडता है, उस समय उसे मूर्छित या वेहोश कहते हैं, मूर्छा, गश; वेहोशी एक ही बात है।

कारण

धातुओ के क्षीण हो जाने से, पित्त के अधिक बढ़ जाने से, विरुद्ध भोजन करने से, मल मूत्र आदि के वेगो को रोकने से, हथियार वगैरह की चोट लगने से, सत्वगुणके कम होने से, तमोगुण के अधिक हो जाने से, बाहिरी आंख आदि, तथा भीतरी मनोवाही स्रोतो में, वात आदि दोष कुपित होकर वैठ जाते हैं। उस समय वेहोशी होती है। स्नायविक दुर्वलता, रस आदि धातुओ के क्षय, सहसा हर्ष चिन्ता आदि कारणो से मूर्छा होती है, यह डाक्टरो का विश्वास है।

पूर्व चिन्ह

हृदय में दर्द जभाई ग्लानि, होश में कमी ये मूर्छा के पूर्व चिन्ह हैं, इन्हे देखकर वेहोशी की सूचना मिल जाती है।

मूर्च्छा के भेद

मूर्छा—वेहोशी में यद्यपि प्रायः पित्त ही प्रधान रहता है, फिर भी वह ७ तरह की होती है। (१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) सन्निपातज, (५) रक्तज, (६) मद्यज, (७)विषज।

१—वातज मूर्छा

इसमें सहसा ही मनुष्य वेहोश हो जाता है, उस समय उसे आकाश नीला, लाल, या काला दिखाई पडता है, फिर जल्दी होश में आ जाता है। रोगी की देह में कपकपी होती है, अगो में तोडने जैसा दर्द होता है, हृदय में पीड़ा होती है। देह दुर्वल हो जाती है, उसका रग थोड़ा स्याही जैसा काला हो जाता है।

२—पित्तज मूर्छा

पित्त के कारण जब वेहोशी होती है, उस समय रोगी आकाश को हरा, पीला देखता २ वेहोश हो जाता है, और पसीना आने पर उसे होश आ जाता है, प्यास लगती है, सन्ताप होता है, आखें सूर्य और पित्त की गर्मी से व्याकुल हो जाती है, दस्त पतला होने लगता है देह का रग पीला पडने लगता है।

३—कफज मूर्छा

आकाश को सफेद बादलो से घिरा हुआ अथवा घोर अधेरे मे ढका हुआ देख रोगी वेहोश हो जाता है, उसे देर मे होश आता है, देह भीगे कपड़े से ढके हुये की तरह भारी जान पड़ता है, मुंह में पानी भरता है, जभाई आती है।

४—सन्निपातज मूर्छा

त्रिदोष की मूर्छा में सब चिन्ह होते हैं, मृगी रोग वाले की तरह रोगी बड़े जोर से गिर पड़ता है और बहुत देर के बाद होश आता है।

५—रक्तज मूर्छा

खून की गध से, या उसे देखने से जो वेहोशी होती है तो देह जकड़ जाती है, आंखें वैसी की वैसी निर्निमेष हो जाती है, श्वास गम्भीर आने लगती है।

६—मद्यज मूर्छा

शराब पीने से जो वेहोशी होती है, उसमें स्मृति एकदम उड़ जाती है, रोगी के होशहवाश

एकदम बिगड़ जाते हैं, उसे रस्सी का टुकड़ा भी सांप दिखलाई पड़ता है। मारे नशे के देह को जमीन पर रगड़ता है, ऊट पटांग बकता है, यह हालत नशा रहने तक ही होती है।

७—विषज मूर्छा

इसमें कंपकपी होती है, प्यास लगती है, मुंह से लार गिरती है, आंखो के आगे अंधेरा आता है, नींद आती है।

हिकमत से मूर्छा

इसके २ भेद हैं

१—आत्मा के नष्ट होने से मूर्छा होती है।

२—आत्मा के सिकुड़ जाने और घुट जाने से मूर्छा होती है।

१—प्रथम भेद

इसके भी तीन भेद हैं—

१—विशेष मवाद का निकलना, इसका कारण है।

२—सहसा अति आनन्द आदिसे दिल सीमा से अधिक खिल जाता है, और आत्मा निकल जाती है।

३—कुलंज आदि के बड़े २ दर्दों से आत्मा नष्ट हो जाती है।

आत्मा का सिकुड़ना

इसके ६ भेद हैं

१—शराब पीने आदि से जब बहुत मवाद भर जाता है तो वह असली गर्मी और आत्मा को रोककर मुर्दा बना देती है।

२—ज्यादा दस्त लगने, खून गिरने आदि कारणों से जब बहुत मवाद निकल जाता है, तो आत्मा सूक्ष्म हो जाती है, जिससे मूर्छा होती है।

३—जहरीले भाफ के परमाणु या जहरीली चीजें दिल को स्तब्ध कर देती है तो मूर्च्छा होती है। यह तीन तरह से होती है।

(१) किसी अंग में बुरा मवाद भरा हो, फिर उसकी भाफ के परमाणु उठें और दिल को स्तब्ध करदें।

(२)-जहरीले जानवर काट लें।

(३)-गन्दे सड़े पानी में नहाने, गन्दे वाता-वरण में रहने आदि से।

४—सादा दुष्ट प्रकृति दिल में आकर मूर्च्छा पैदा कर देती है।

५—दिल में या उसके पट्टों में सूजन होने से मूर्च्छा होती है। गर्म सूजन तत्काल मार डालती है और ठंडी २४ घंटो में।

६—दिमाग, जिगर, आमाशय आदि दूसरे अंगों की कमजोरी या बीमारी से यह छठी मूर्च्छा होती है।

दिल की दुष्ट प्रकृति

इसके ४ भेद हैं

(१) पहिला भेद

यह दिल की गर्म दुष्ट प्रकृति होती है। इसमें नाड़ी बड़ी शीघ्र और गहरी चलती है, और खूब चलती है। छाती में गर्मी, प्यास की अधिकता, चिन्ता, घबराहट, जलन, ये चिन्ह होते हैं। गर्म प्रकृति जब सारी देह में घुस जाती है तो शरीर दुर्बल हो जाता है।

(२) दूसरा भेद

यह ठंडी दुष्ट प्रकृति होती है। इसमें नाड़ी छोटी सुस्त और बिरुद्ध चलती है, श्वास की चाल धीमी पड जाती है। शक्ति कम हो जाती है, चेहरे का रंग और चेष्टा बदल जाती है। भय, दुर्बलता, निश्चेष्टता, ये भी शरीर के साथी हो जाते हैं।

(३) तीसरा भेद

यह खुश्क दुष्ट प्रकृति है। इसमें नाडी कड़ी, छोटी, और लगातार चलती है। देह घुल २ कर

दुबली होती है, नींद नहीं आती, खांसी पैदा हो जाती है रोगी के ऊपर दुख सुख का असर जल्दी नही होता, और होताहै तो बहुत देर तक रहता है।

(४) चौथा भेद

यह तर दुष्ट प्रकृति है। इसमें नाड़ी नर्म, सुस्त और विरुद्ध चलती है, भय खुशी आदि का असर जल्दी होता है, और थोडी देर रहता है।

खफगान

(दिल की घबराहट)

इसके ८ भेद हैं

(१) पहिला भेद

सादा दुष्ट प्रकृति दिल में पैदा होकर घबराहट पैदा करती है।

(२) दूसरा भेद

शरीर में खून बहुत बढ़ जाता है, जिससे अवयव बढ़कर घबराहट होती है, खून की अधिकता के चिन्ह होते हैं, रगो का खिन्चना, फूलना, नाड़ी का बड़ा होना, पेशाब का गाढ़ा होना, आदि चिन्ह होते हैं।

(३) तीसरा भेद

रगो में जब पित्त घुसकर धड़कन पैदा करता है तो, चिन्ता, अनिद्रा, प्यास की अधिकता, घबराहट, आदि पित्त के चिन्ह होते है। यह हालत अक्सर कम ही होती है।

(४) चौथा भेद

कफ का मवाद दिल में जाकर धड़कन करता है। इसमें श्वास की तगी, नाड़ी की नर्मी नामर्दी अचेतन जैसी दशा, ये चिन्ह होतेहैं, ऐसा मालूम होता है, मानो दिल पानी मे डूब रहा है।

(५) पांचवां भेद

बादी दिल की रगो में आकर घबराहट पैदा करती है, इसमें हर समय घबराहट बनी रहती है, नाड़ी कड़ी हो जाती है, चिन्ता, भय, बुरे विचार आदि चिन्ह होते है।

(६) छटा भेद

शरीर से बहुत सा खून निकलने वीर्य निकलने, किसी दूसरे दोष के निकलने तथा खाने पीने की गड़बड़ी से रक्त बिगड जाय, आदि कारणो से यह घबराहट होती है, इसमें घबराहट का जोर रहता है, तथा और भी सब चिन्ह प्रगट होते हैं।

(७) सातवा भेद

दिल की ज्ञान शक्ति जब तेज और बलवान हो जाती है तो जरा से भी कष्ट से थोड़े भी हर्ष से शोक, भय आदि से घबराहट होने लगती है।

(८) आठवां भेद

यह घबराहट दूसरे अगो के सयोग से होती है,दिमाग, जिगर, आमाशय,आंत, गर्भाशयके पर्दे, और फेफड़े तथा सब शरीर के संयोग से, और जहरीले जानवरों के काटने से यह होती है।

दिल मे धुआं घुमड़ना

दोषोके चलने पर ऐसा मालूम होता है मानो दिल में से ऊपर की तरफ धुआ उठता है, अधिकता होने पर निकम्मे विचार और अचेतना भी होने लगती है।

दिल के दोनो कानो की सूजन

यह रोग गर्म रोगो तथा पुराने बुखारो के बाद में होता है. इसमे छाती, फेफड़ा तथा आमाशय के मु ह के पास बोझ मालूम होता है, बेहोशी सी होती है, मु ह बहुत पीला पड़ जाता है, आंखो पर भर भराहट रहती है, दिल की गति सकुचित हो जाती है। साफ बात यो है—गर्म रोगो के कारण रूह और गर्मी नष्ट हो जाती है, दिल की शक्ति घट जाती है जिससे वह बुरे २ फोको को ठीक तौर से निकाल नही सकता, फिर वे फोका पड़े २ सड़ते है, और सूजन होती है। ठंडी सूजन उतनी भयकर नही है, जितनी कि गर्म यह फौरन आदमी को मार डालती है।

दिल का दबना

जब बादी का मवाद दिल पर टपक पड़ता है तो यह रोग होता है, इसमे रोगी को मालूम होता है कि दिल दबा और मिचा जाता है, फिर रोगी अचेत भी हो जाता है, और उसके मुह से लार बहुत गिरती है, मवाद थोड़ा होता है, तो रोग की भयंकरता विशेष नही होती, वर्ना हालत खराव होने लगती है।

दिल का छिल जाना

बहुत समय तक पित्त के दस्त लगने के बाद यह रोग होता है। इसमें ऐसा होता है कि कोई चीज दिल को छीलती है, फिर रोगी मारे सोच के घवड़ाकर वेहोश हो जाताहै, फिर उसे होश भी जल्द ही आ जाता है, उस समय कष्ट और शोक के कारण मुह पर झुरियां पड़ जाती है, मुह खट्टा हो जाताहै, गुस्सा आ जाता है और किसी२ जगह पसीना भी आ जाता है।

दिल का बाहर निकलना

खून की दुष्ट प्रकृति से या पित्त की दुष्ट प्रकृति से यह रोग पैदा होता है। इसमें ऐसा मालूम होता है, मानो दिल छाती से बाहर निकल रहा है। इसमें चित्र प्रगट होने पर मुंह का रग मवाद के अनुसार, लाल या पीला हो जाता है।

दिल पर तरी जमना

दिल पर लिपटी हुई झिल्लीमें जब तरी इकट्ठी होकर वन्द हो जाती है तो यह रोग होता है। इसमें ऐसा मालूम होता है, मानो दिल पानी मे तैर रहा है, दिल फड़कता भी है।

दिल का खिंचना

जिगर के लटकने की जगह जब कोई दोप आ जाता है तो वह जगह खिच जाती है फिरएसा मालूम होता है, जैसे दिल नीचे की तरफ खिंच रहा है। कभी २ खिचाव होने से थोड़ा कष्ट और बेहोशीं सी भी होने लगती है।

उन्माद

Inzanity mama

जब आदमी पागल, सिरी, दीवाना हो जाता है तब उसे उन्माद रोग से व्यथित समझते है। उन्माद यानी पागलपन मानसिक रोग है। जब वात, पित्त, कफ, कुपित होकर अपने २ रास्ते को छोड़कर मनोवाहिनी नाड़ियो में घुस वैठते है, तब मन उन्मत्त, और भ्रमित हो जाता है। बस फिर मनुष्य पागल हो जाता है। उन्मादरोग न केवल दिल से ही होता है, अपितु दिमाग से भी होताहै। डाक्टर दिलसे होनेवाले उन्माद को 'पैलपीटेशन' आफ हार्ट' और दिमाग से होने वाले को 'इन्सैलिटी' कहते है।

कारण

सयोग विरुद्ध भोजन, बिपमिश्रित भोजन, अपवित्र और दूपित भोजन, देवता और पूज्यजनो का अपमान, सहसा अत्यन्त हर्प, और सहसा अत्यन्त दुख, जवरदस्त से वैर, इन कारणो से उन्मादरोग पैदा होता है।

उन्माद के भेद

(१) वातज उन्माद।
(२) पित्तज उन्माद।
(३) कफज उन्माद।
(४) त्रिदोपज उन्माद।
(५) मानसिक दु.खज उन्माद।
(६) बिपज उन्माद।

इस तरह उन्माद रोग ६ तरह का होता है।

पूर्व रूप का सामान्य चिन्ह

बुद्धि में भ्रम होना, मानसिक चञ्चलता होना इधर उधर नजर घूमना, धैर्य उठ जाना, कहना चाहता है कुछ और मुह से निकलता है कुछ, विचारणा शक्ति का सर्वदा ह्रास, हो जाता है।

(१) वातज उन्माद

रूखे और ठंडे पदार्थ खाने से, कम खाने से, दस्त और उल्टी होने से, धातु क्षय से, उपवास करने से, वायु कुपित होता है, फिर मनुष्य अगर शोक आदि से चिन्तित होता है, तो वह और भी कुपित होता है, फिर उसका धावा हृदय पर होता है, फिर उन्माद हो जाता है। जिससे बिना मतलब ही आदमी हसता है, धीरे २ मुस्कराता है। असमय नाचता गाता है, आवश्यकता से अधिक बोलता है, हाथ पैरो को इधर उधर फेंकता है कर्कश आवाज मे रोता है, उसका शरीर रूखा, दुर्बल और लाल हो जाता है, प्रायः भोजन के परिपाक के समय इसका जोर बढ़ता है।

(२) पित्तज उन्माद

अपने कारणो से कुपित हुआ पित्त मनोवाहिनी नाडियो मे घुसकर उन्माद पैदा करता है। इसमे रोगी असहिष्णु बन जाता है इधर उधर हाथ पैर पटकने लगता है बेशर्म होकर कपड़े फेंक देता है, डरकर भागता फिरता है, देह गरम हो जाती है, गुस्सा खूब आता है, छाया मे रहना पसन्द करता है जिससे ठंड पहुँचे ठंडे पदार्थ खाने, और ठंडा जल पीने की इच्छा करता है, देह पीली पड़ जाती है।

(३) कफज उन्माद

इसमें रोगी को एकान्त मे अच्छा लगता है, बोलने की इच्छा कम होती है, स्त्रियो की कामना करता है, नींद खूब आती है, भोजन अच्छा नही लगता, उल्टी होती है, मुंह से लार गिरती है, नाखून आदि सफेद पड जाते हैं, खाना खाने के बाद इसका जोर बढ़ता है।

(४) त्रिदोषज उन्माद

इसमें तीनो के चिन्ह मिलते हैं।

(५) मानसिक दुःखज उन्माद

जब मनुष्य दुश्मन, राजा, या और किसी से डर बैठता है, उसका धन बरबाद हो जाता है, अथवा और कोई ऐसा कारण हो जाता है जिससे उसका मन बिगड़ जाता है, तब मानसिक दुःखज उन्माद होता है, इसमें रोगी अपनी दूसरो की छिपी हुई बातो को बतलाता है, अनेक प्रकार की कभी हसी की, कभी रोनेकी, बातें करता है, कभी हसता है, कभी रोता है, कभी गाता है, ज्ञान का लोप हो जाता है और वह एकदम बज्रलंठ हो जाता है।

(६) विषज उन्माद

इसमें बल और वाणी का नाश हो जाता है, मुंह श्याम हो जाता है आंखे लाल हो जाती हैं, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है।

मृत्युचिन्ह

जिसका मुंह हरदम नीचे की तरफ या ऊपर असाध्य उन्माद की तरह रहता है, जिसके मांस बल क्षीण हो जाते है, जिसकी नींद उड़ जाती है वह मौत के मुंह से नही बचते। उन्माद का इतना इतिहास दोषो से मानसिक दुःख से, जहर से सम्बन्ध रखता है, अब भूतोन्माद आदि का थोड़ा जिक्र भी कर देना यहा जरूरी होगा।

भूतोन्माद के चिन्ह

पहिले बताये गये उन्मादो मे और भूतादि से होने वाले उन्मादो मे बहुत फर्क होता है। भूतादि के उन्मादो मे रोगी का भाषण, पराक्रम, आदि आदमियो जैसे नही होता। बुद्धि ज्ञान आदि रहते है, वह विचारता है, याद रखता है इन उन्मादो का कोई समय नियत नही हो, ऐसी बात नही है, अपने समय पर ही उन्माद का दौरा होता है।

देवग्रह जन्य उन्माद

देवग्रहो से ग्रसित हुआ उन्मादी पवित्र रहता है, संतोषी होता है, उसकी देह में दिव्य फूलो की खुशबू निकलती है, नीद नही आती, शुद्ध संस्कृत बोलता है, चाहे पढ़ा एक अक्षर भी न हो वह तेजस्वी होता है, उसके नेत्र स्थिर होते हैं, दूसरो को वरदान देता है, और ब्राह्मणो में भक्ति रखता है; और पूर्णिमा को इसका आवेश होता है।

दैत्य ग्रह जन्य उन्माद

दैत्य ग्रह ग्रसित उन्मादी मनुष्य पसीना से भीगा रहता है, ब्राह्मण, देवता, गुरु इनकी निन्दा करता है, उसकी आंखे टेढ़ी हो जाती है, और न वह किसी से डरता है, उसका स्वभाव दुष्ट हो जाता है, रोगी कुमार्ग में रुचि रखता है, और कैसे भी पदार्थो के खाने पीने से वह सन्तुष्ट नही होता। दोनो संध्या समय आवेश होता है।

गन्धर्व ग्रह जन्य उन्माद

-मनुष्य का हृदय प्रसन्न रहता है, जलाशय बागबगीचो में घूमता है उत्तम गति से चलता है, गाने से, सुगन्धित पदार्थों से, फूलो से उसका प्रेम रहता है। और नाचता है, तथा असमय धीरे २ रोता रहता है।

यक्ष ग्रह जन्य उन्माद

यक्षग्रह से ग्रसित मनुष्य, पहिले कितना ही चंचल हो, गम्भीर हो जाता है, उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, सुन्दर रगीन और बारीक कपड़ो में उसकी रुचि रहती है, कम भाषण करता है, और जल्दी २ चलता है सहिष्णु और तेजस्वीहोजाता है। किसको क्या दू यह शब्द उसकी जीभ पर रखे रहतेहै, इसका प्रतिपदाके दिन आवेश होताहै।

पितृज उन्माद

जब मनुष्य पितृ ग्रह से ग्रसित होता है, तब कुश तिल आदि से अपने पितरो को पिंड देता है, उसका हृदय शांत रहताहै, दाहिने कंधे पर कपड़ा रखकर पितरो को जलांजलि देता है, पितृगणो की भक्ति करता है और मांस. गुड, तिल, खीर खाने की इच्छा करता है। इसका कृष्णपक्ष में आवेश होता है।

नाग ग्रह जन्य उन्माद

नागग्रह ग्रसित मनुष्य, शहद, घी, दूध, खीर खाना, चाहता है, उसे क्रोध आता है, अपने गलाफो को चाटता है, और कभी २ पेट के बल रेंगता है। इसका पञ्चमी को आवेश होता है।

राक्षस ग्रह जन्य उन्माद

मांस, खून और शराब की बनी कीजें खाना चाहता है, अत्यन्त निर्लज्ज हो जाता है, नृशस हो जाता है, विविधि कलाओ का नाट्य करता है। रात्रि में घूमता और गन्दगी से प्रेम करता है। रात के समय इसका आवेश होता है।

ब्रह्मराक्षस ग्रह जन्य उन्माद

इसमें मनुष्य, गुरू, ब्राह्मण और देवताओ से द्वेष करता है, वेद आदिकी निन्दा करता है, अपने आपको ही पीड़ा देता है, दूसरे को नहीं।

पिशाच ग्रह जन्य उन्माद

इसमें मनुष्य नगा होकर नाट्य करता है, दुबला और कृशहो जाता है, देह से दुर्गन्धी निकलती है, गन्दगी में रहता है, रूखा पड़ जाता है, अभक्ष्य भक्षण में भी उसे सकोच नही होता, और खूब खाता है, निर्जन स्थानो और जंगलो में घूमता है, ऊटपटांग चेष्टाये करता है, रोता है, और रोता २ ही डर जाता है। चतुर्दशी के दिन इसका आवेश होता है।

मदात्यय

Aecoholism

जिसे हम लोग शराब कहते हैं, वही मद्य है, मद्य पीना धार्मिक दृष्टि से बुरा ,है या भला यह

विचारना यहां अप्रासगिक है, स्वास्थव की दृष्टि से मद्य पीना घातक नही है। अन्न की तरह ही मद्य भी माना जाता है, शराब, अगर बह उचित मात्रा में पिया जाय तो हृदय स्फूर्ति पैदा करता है रतिसुख बढ़ाता है, प्राचीन विद्वानो ने मद को तीन भागो में विभाजित किया है, उनके विचारो में शराव पीना स्वास्थ्य के लिये घातकनही अपितु सुन्दर है। उनकी दृष्टि मे शराव पीने का अन्तहदा स्थान होना चाहिये। और विधि पूर्वक पीना चाहिये। किन २ को शराब नही पीनी चाहिये. यह भी उन्होंने बताया है, किन्तु अनावश्यक समझ कर उसका उल्लेख नही करेंगे, हमारी दृष्टिमें शराव पीना सभी के लिये अनुचित है। हां! तो उन तीन मदों का विवरण भी सुनिये।

(१) सात्विक मद

इससे यादगारी बढ़ती है, प्रीति बढती है, सुख, भूख, प्यास, निद्रा और कामदेव बढता है। पढ़ने और गाने की रुचि भी होती है, स्वर इससे सुन्दर होता है यह अतिरम्य है।

(२) राजसिक मद

इससे यादगारी, बुद्धि, और भाषण शक्तिकम होतीहै, पीने वाला ऊटपटांग काम करता है, मस्त मतवाले की तरह काम करता है, उसे आलस्य के साथ नीद आती है।

(३) तामसिक मद

इससे मनुष्य अपने आपे से हाथ धो बैठता है, भले बुरे का ज्ञान नही रहता, अभक्ष्य खाता है, और पूज्य स्त्रियो से सम्भोग करता है, सबको फटकार बतलाता है, बिवेक नष्टहो जाता है, हृदय की गुप्त बातें अपने आप बकने लगता है।

(४) जात तामसिक मद

पीने वाला बेहोश होकर, टूटे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़ता है चाहे वह कूड़ा घर के पास ही क्यो न खड़ा हो उसे कार्य अकार्य का ज्ञान नही रहता, उसकी हालत मुर्दे से भी बढ़कर हो जाती है।

ये चार तरह के मद हैं। ये ही आगे चलकर अनेक रोगो को पैदा करते हैं, मद पीने से सबको रोग नही होते। क्रोध की दशा में, डरे हुये, श्याम चिन्तातुर, भूखे, थके हुये, वेगो को रोके हुये, घायल हुये, अधिक खटाई खाये हुये, अजीर्ण में ही खाने वाले, कमजोर, गरमीसे तपे हुये, मनुष्य शराब पीते है, तो उन्हे बीमारियो से मुकाबिला करना पडता है।

मद्यज विकार

(१)मदात्यय, (२) परमद, (३) पानाजीर्ण, (४) पान विभ्रम, ये चार रोग शराब पीने से होते हैं।

मदात्यय के ४ भेद

यह चार तरह का होता है।

(क) वातज मदात्यय

हिचकी, श्वास, सिर का कापना, पसलियो की पीडा, नीद हरामी होना, बकवाद करना ये चिन्ह होते हैं।

(ख) पित्तज मदात्यय

पित्त के कारण, श्याम, जलन, ज्वर पसीना बेहोशी, दस्त, विभ्रम, देह का हरा होना ये चिंह होने है।

(ग) कफज मदात्यय

उल्टी अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, देह का भीगी सी रहना, भारी रहना, शीत लगना, ये चिन्ह होने हैं।

(घ) त्रिदोषज मदात्यय

इसमें सब चिंह होते है।

(२) परमद के चिंह

इसमें नाक से कफ गिरता है मुह का स्वाद बिगड़ जाता है, मल मूत्र रुक जाते है, तन्द्रा होती

है, अरुचि होती है, सर में दर्द होता है, जोड़ो में तोड़ने जैसी वेदना होती है।

(३) पानाजीर्ण के चिन्ह

पेट बहुत फूलता है, जलन होती है, डकारें आती हैं, उल्टी होती है, तथा पित्त का कोप होता है, ज्वर, दस्त, आता है, और भी चिह होते हैं।

(४) पान विभ्रम के चिन्ह

हृदय और शरीर में सुई चुभोने जैसा दर्द होता है मुह और नाक से कफ गिरताहै, गले से धूआं सा निकलता है, उल्टी होती है सर में दर्द होता है, मद बना रहता है, मुह कफ से लिपा रहता है। सब चीजो से दुश्मनी हो जाती है।

मदात्यय के उपद्रव

हिचकी, बुखार, उल्टी, कपकपी, पसलियो की पीड़ा, खांसी भ्रम ये सब उपद्रव है। सब उपद्रव वाला रोगी बच नही सकता।

असाध्य चिन्ह

जिसके जीभ, होठ, दांत काले या नीले पड़ गये हैं। आंखे पीली या लाल हो गई हो और सब उपद्रव हो तो रोगी नही बचता।

फुफ्फुस रोग

Disease of the Lungs

(फेफड़ो की बीमारियां)

स्वस्थ शरीर के लिये स्वस्थ फेफड़ो की आवश्यकता होती है, फेफडो के स्वास्थ्य पर ही शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है। फेफड़े शरीर से अशुद्ध हवा को निकालते है। और शुद्ध हवा को शरीर में पहुँचाते है, इनका यह व्यापार अविराम गति से होता है इसके व्यापार में गड़बड़ी होने से दम निकला ही समझिये। खांसी, श्वास आदि रोग फेफडो की खराबी ही से होते हैं। थूक में खून भी अक्सर उन्ही की खराबी से आता है। फेफडो की खराबी का असर हृदय Heart यकृत Lever आदि अंगों पर भी गिरता है, छाती पर हाथ लगने से हमें जो धड़कन सुनाई देती है, वह फेफड़ो की है। डाक्टर लोग इस धड़कन की परीक्षा भी करते हे विकृत अवस्था में धडकन के कई रूप हो जाते है। स्वस्थ और सबल आदमी की छाती हमेशा उभरी हुई होती है, और धड़कन की क्रिया ठीक तौर से होती रहती है।

फेफड़ो को श्वास यन्त्र भी कहते है। खांसी, श्वास, न्यूमोनियां आदि फेफड़ो के रोगो का यहां विवेचन होगा। अत. पहिले दो शब्द हम पाठको के आगे रख देना चाहते है। फेफड़ो के रोग आजकल अधिक संख्या में इसलिये होते हैं कि हम लोगो का वातावरण बहुत दूषित हो चला है। फेफड़ो के स्वास्थ्य के लिये कम से कम शुद्ध हवा हर हालत में आवश्यक है, और उनकी नियमितता को कायम रखने के लिये कुछ व्यायाम भी आवश्यक है, किन्तु आजकल, शुद्ध हवा का मिलना कुछ सहज बात नहीं, शहरो की बड़ी २ अट्टालिकाये हवाको रोकतीहै और रात दिन उठने वाले इजनो का धुआं वायु को दूषित बना देत है। गली में सड़ने वाला कूड़ा हवा को और भी जहरीली बना देताहै, हमारे फेफड़ोमे पहुंचने वाली हवा हर दशा में अनुप युक्त होती है।

अलावा इसके कसरत करना हम अपनी इज्जतहतक समझते है जिससे फेफडो में खराबी होती है, बहुमैथुन, ऊटपटांग, खाना पीना आदि भी फेफड़ो के रोगो के कारण है।

स्वास्थ्य के सौन्दर्य को स्थिर रखने के लिये प्रधान साधनो मे से एक साधन शुद्ध हवा भी है, हवा केवल बाह्य जगत में ही काम नही करती, अन्तर्जगत मे भी इसका अटल साम्राज्य है। प्रात. कालीन वायु का सेवन करने से, शरीर कितना सुन्दर रहता है, इसका अनुमान देहाती किसानो

के स्वस्थ शरीर को देखकर किया जा सकता है, शहरी जीवन आज इतना नाटकीय हो चलाहै कि मनुष्यो का जीवन एक कुत्ते के जीवन से भी वद-तर हो रहा है, एक २ मकान में सैंकडो आदमी रहते हैं, जिनमें वहुत से रोगी भी होते है, वहां न शुद्ध हवा ही आ सकती है, न सूर्य का प्रकाश ही गली २ पर सड़ने वाला, कूडा उस हवा को और भी गन्दा वना देता है।

वह गन्दी हवा हमारे फेफड़ों में जाकर खरावी पैदा करती है, आजकल तपेदिक के रोगी अधिक सख्या में क्यो वढते है। इसका जोरदार उत्तरहवा का शुद्ध न होना ही है। खैर फेफडो का इतिहास वडा मनोरञ्जक है, प्रकृति की कला कुशलता का परिचय इनके देखने से मिलता है, यहां फेफड़ो के विपय में आवश्यक वातें वतला देने से पाठक-पाठिकाओ को वहुत सुविधा होगी, जिन्हे इनका विशेप वर्णन देखना हो, वे किसी प्रसिद्ध शारीरिक में देखे या मेडीकल कालेजो मे शव के फेफडे देखे

फेफड़े क्या हैं ?

What is Langs

फेफडे दो होते है और ये खून के भागो द्वारा वनते हैं निर्माण क्रिया गर्भके अन्दर ही हो जाती है। छाती के वांये हिस्से मे एक फेफड़ा है. दाये हिस्से में दूसरा, हृदय की नाडी से फेफड़ो का सम्वन्ध रहता है और वायु का आदान प्रदानकार्य भी इन्ही के द्वारा होता है। फेफड़े ऊपर से जुडे हुये रहते है, परन्तु नीचे आकर जुदा २ हो जाते है, देखने में फेफडा मक्खी के छत्ते की तरह का ऊपर से चौड़ा और नीचे तग होता है। फेफडेका परिणाम ३० औंस से ४२ ओस तक होता है। दोनो फेफडो मे दांया फेफड़ा कुछ वड़ा होता है, अगर दोनो फेफडो का वजन३२ औंस है तो वायां १५ औंस और दांया १७ औंस होता है।

फेफडे स्पज की तरह फोफले होते हैं, हवा के भरने पर फूलतेहैं, और उसके निकलने पर सिकु-डते है, वायु नली यानी श्वास नली का सम्वन्ध इनसे होता है, जिससे अदर की खराव हवा ये नाक के रास्ते वाहर निकालते हैं, और वाहिरी शुद्ध हवा को अंदर लेकर शरीर को पोपण करते हैं। जव कभी खाना अन्न नली में न जाकर श्वास नली में चला जाता है, तो फेफडे खांसी पैदा करके उसे निकालने की कोशिश करते है, वचपन में फेफडे हल्के सुर्ख गुलावी खून के झाग से होते है। धीरे २ इनमे स्याही आने लगती है।

कास खांसी

Cough

खांसी एक वेहूदा रोग है यह अपना परिचय सवको दे देता है, जहां और रोग जिसे होते हैं। उसे ही दिक् करते हैं, वहां यह रोगी के पास वैठने वाले को भी दिक् कर देता है, खांसी हम उसे कहते है, जव मनुष्य के मुह से फूटे हुये कांसे के वर्तन जैसी आवाज निकलने लगती है, और वह खो २ करने लगता है, खांसी का अधिक सम्वन्ध फेफड़ो से है, किन्तु श्वास नालियो से भी कुछ कम नही है, फेफडो का और श्वास नली तथा अन्न प्रणाली का सहयोग सम्वन्ध है जव इनमें कुछ गडवड़ी हो जाती है, तव खासी के द्वारा ये अपनी गड़वडी को वाहर निकालने की कोशिश करते है।

कारण—हमारे गले में दो नालियां हैं, एक श्वासनली, इससे हम सास लेते हैं, और दूसरी अन्न नली, इसके द्वारा अन्न कोठे में पहुँचता है, जव हमारी गल्ती से इनके काम में वाधा पहुँ-चती है तव हमें खांसी होती है, खुलासा यो है. जव हम जल्दी २ खाते है, तव खाया हुआ अन्न प्रणाली में न जाकर श्वास नली मे चला जाताहै

श्वास नली उसे फेफड़ो के पास ले जाती है। फेफड़ो का काम है, सांस लेना और निकालना फिर उस अन्न के आनेसे उन्हे अपना काम छोड़ कर पहिले उसका भुगतान करना पड़ता है, उस उस भुगतान को ही खांसी समझना चाहिये। लिखा है—

श्वास के साथ धूल एवं धूआ की श्वास नली में जाने से, जल्दी २ खाने के कारण भोज्यादिका श्वास नली के रास्ते भीतर जाने से, अधिक सूखे पदार्थो के खाने से, मल मूत्र आदि के वेग को रोकने से, अधिक मेहनत करने से खांसी होती है, इन कारणोसे प्राण वायु कुपित होकर उदान वायु को साथ में लेकर खांसी पैदा करता है।

डाक्टरी मे खांसी, शरीर की कमजोरी से, बहुत मेहनत करने से, सर्दी लगने से, अधिक मैथुन से, जुकाम होने से मौसम के पलटने से, तेज चीज के सूंघने से, दूषित जलवायु आदि से होती मानी जाती है।

खांसी केभेद

(१) वातज खांसी।
(२) पित्तज खांसी।
(३) कफज खांसी।
(४) क्षतज खांसी।
(५) क्षयज खांसी।

पूर्व चिन्ह

खांसी होने के पूर्व निम्न चिन्ह प्रगट होते है गले में खाज चलने लगती है गले और मुंह मे कांटे से भर जाते हैं और गले के सूखने के कारण अन्न रुक २ के अदर जाता है। इन चिन्हो को देखकर खासी का आगमन समझा जा सकता है, यह खासी का सिंगल है।

१—वातज खांसी

रूखे, ठडे, कसैले पदार्थ अधिक खाने पर, कम खाने पर, एक ही रस के बराबर खाने पर अधिक मैथुन करने पर, मल मूत्रादि के वेगों के रोकने पर अधिक मेहनत करने पर, वायु हमारे लिए एक पुरष्कार देता है, वह पुरष्कार खांसी के सिवा और कुछ नही। इसमे—

हृदय, पसली, पेट, छाती, कनपटी इनमें दर्द रहता है, कंठ मुंह तथा छाती सूखी रहती है, रोमाञ्च होता है, ग्लानि होती है, आवाज जोर से निकलती है, मुंह की चमक बिगड़ जाती है, मोह होता है, बल, ओज, स्वर तथा इन्द्रियां क्षीण होने लगती है, गला बैठ जाता है, हरदम नीद सी आती है, स्वर फट जाता है, सूखा कफ कंठ में लिपा रहता है, डाक्टर लोग इसी को सूखी खांसी बोलते है।

सूखी खांसी

यह जैसा उनका विश्वास है, दो वर्ष के बच्चे से लेकर १६ साल के लड़के तक को रहती है, किन्तुयह निरपवाद नियम है,बड़ो कोभी होजाती है यह देरमें उठतीहै, और लम्बी आवाज के साथ उठती है, उस समय मुँह खुला रहता है, जब मुँह से थोड़ा लसदार पानी आ जाता है तब यह स्वय शान्त हो जाता है।

२—पित्तज खाँसी

पित्त को विकृत करने वाले पदार्थो के खाने से, तथा आग और धूप का अधिक सेवन करने से पित्त बिगड़ कर वायु को साथ ले खाँसी तैयार करता है, इसमे छाती एव गले में जलन होती है, ज्वर भी रहता है मुँह सूख जाता है, स्वाद बिगड़ जाता है, प्यास बहुत लगतीहै, खाँसते समय गर्मी लगती है, और कड़वा पीला कफ निकलता है, आँख, नख, मुँह कफ यह पीले पड़ जाते है इसको गर्मी की खाँसी बोलते है। इसमें रोगी की बहुत नाजुक अवस्था हो जाती है, इसमे सन्देह नही।

३—कफज खाँसी

कफ को विकृत बनाने वाले पदार्थों के खाने से मेहनत न करने से, दिन मे सोने आदि कारणों से कफ बिगड कर खाँसी तैयार करता है।

इस खाँसी मे मुँह कफ से भरा मालूम होता है, गला कफसे लिपा रहताहै, सर मे दर्द रहता है देह कफ वर्ण मालूम होती है, अरुचि के साथ २ देह में गौरव रहताहै, खाज चलतीहै, और खाँसते समय गाढ़ा कफ निकलता है, वात पित्त की खाँसी की अपेक्षा यह कम दुःख दायिनी है, इसमें कफ गिरने पर शान्ति होती है, इसलिये इसे तर खांसी भी कहते है, हिकमत वालो के मतानुसार यह फेफड़ो और छाती की तरी से होती है, और जिनकी प्रकृति तर है, तथा जो वृद्ध है, उन्हे ही यह अधिक होती है, इनमें कफ खूब निकलता है, और गले मे चिपटा रहताहै, छाती में खरखराहट रहती है, सोते२ भी इसका वेग बहुत हो जाता है।

४— क्षतज खांसी

अधिक कसरतकरने, भारीबोझ उठाने, अधिक मैथुन करने से बहुत पैदल चलने, घोड़े आदि से ताकत अजमाने, बलवानसेकुश्तीलड़नेआदिकारणों से छाती या फेफड़ोमे चोट पहुँचती है, उससे वहां जख्म हो जाता है, फिर खांसी आने लगती है, उसमें खून गिरताहै, खून अकेला नहीं गिरता कफ से मिलकर गिरता है, इसमें कठ मे दर्द होता है, गला खरखर करता है, छाती में सुई चुभोने जैसी पीड़ा होती है, छाती ऐसी मालूम होती है जैसे उसे कोई चीर रहा हो, मारे दर्द के छाती मे हाथ नहीं लगाया जाता, जोडो में दर्द होता है, ज्वर होता है, प्यास खूब लगती है, सास उठती है, आवाज बिगड़ जाती है, रोगी कबूतर की तरह कुडकुड़ करता है, आवाज स्पष्ट नहीं होती है।

५—क्षयज खांसी

विषय भोजनसे, प्रकृति विरुद्ध भोजन से मल मूत्रादि के वेगो को रोकने से, रात दिन चिन्ता करते रहने से जब मनुष्य की पाचकाग्नि बिगड़ जाती है, तब रस ठीक तौर से नहीं बनता, रसके न बनने से रक्तादि धातुओंको खुराक नही मिलती जिससे उनका क्षय होने लगता है, जठराग्नि की खराबी त्रिदोष को कुपित करती है, बाद में वे धातुओं को सफा करते हैं, उसका नतीजा क्षयज खांसी होती है।

इसमें शरीर मे शूल चलते है, बुखार होता है, जलन होती है, मोह होता है बल का नाश होता है, रोगी थूकता है, और जब मास क्षीण होने लगता है, तब कफ में पीप मिला खून आता है। डाक्टर लोग इसे (थाइसिस पिलमोलेनस)कहते है, कारण वही अति मैथुन, अति परिश्रम, जुकाम आदि है। लक्षण प्रायः मिलते जुलतेही हैं। अस्तु—

किन्ही २ विद्वानो के मत मे दो दोष औरत्रिदोष से भी खासी होती है उनके लक्षण भी समाहार रूप में समझ लेने चाहिये। वात पित्त की खांसी में दोनो के लक्षण होंगे, और भी इसी तरह समझा जा सकता है।

क्षयज खांसी पर डाक्टरी मत

डाक्टर क्षयज खांसी को (थाइसिस पिलमोनेलस) कहते हैं।

कारण

अति मैथुन, अतिश्रम, जुकाम, सर्दी लगना, तेज चीज सूघना, आदि कारणो से यह खासी होती है यह पुस्तैनी भी होती है।

चिन्ह

(अ) शुरू में बिना बुखार और सर्दी के सूखी खासी होती है।

(आ) खून आता है। कभी उसमें कफ भी मिला रहता है।

(इ) हाथो के तलवे हमेशा गर्म रहते है।

(ई) कंठ में खराश रहती है।

(उ) पसलियोंमें कभी थोड़ २ दर्द होता है।

(ऊ) फेफड़े के ऊपर एक तरह का शब्द होता है।

(ए) सर मे दर्द होता है, और भूख कम लगती है।

(ऐ) रात में बेचैनी रहती है, और बाल गिरते है।

(ओ) अगुलियो के पोरवे मोटे हो जाते है।

(औ) सुबह शाम खांसी का जोर रहता है, और जरा सी मेहनत करने से खासी बढ़ती है। सांस जोर २ से चलने लगती है।

(क) कभी २ बुखार भी हो आता है, और जीभ पर सफेद लेप सा रहता है।

(ख) स्त्रियो का रजोधर्म या तो वन्द हो जाता है, या अधिक होता है।

(ग) इलाज करने से आराम होता है, फिर रोग हो जाता है। उस समय पैर फूल जाते है। तालु नष्ट हो जाता है, ऐसी दशा मे आराम नही होता।

तालु खाँसी

तालु को 'कव्वा' वोलते है, इसके लटकने पर खाँसी चलती है और जब तक 'कव्वा' ठीक नही होता, बराबर चलती है, गले मे खरखरा हट होती है, और खाँसी जोर २ से फटी आवाज मे उठती है। बच्चो को तो अक्सर यही खाँसी हो जाती है। कमजोर आदमी इसके अधिक शिकार होतेहै।

जुखाम खांसी

जुखाम के बिगड़ने पर यह खाँसी होती है, और जब तक जुखाम ठीक नही होता यह पीछा नहीं छोड़ती है। जिन लोगोकी धातु गरमहै, उनसे तो इसका खास सम्बन्ध हो जाता है, कभी सूखी और कभी तर होती है, शिर में कफ भरे रहने के कारण दर्द होता है।

आम जन्य खांसी

जब अन्न का परिपाक ठीक नही होता, और रस कच्चा रह जाता है, तब यह खांसी होती है। इसमे शूल रोग की वेदना होतीहै, जोड़ो में फूटनी हो जाती है, ग्लानि, सूजन मस्तक मे दर्द भ्रम आदि हो जाते है।

इनके अलावा राजयक्ष्मा मे, गुल्म में चोट, लगने पर, पाण्डु रोग में, जुखाम में, बवासीर में, इत्यादि रोग में भी खासी होती है।

खांसी पर नवीन मत

नवीन मत से मतलब है आजकल के डाक्टरो के मत से। खांसी को साधारण रूप से वायु प्रणालियो का प्रदाह भी कहते है, इसके कारण ३ भागो में विभाजित किये जा सकते है।

कारणो के तीन भेद

(१) कीट सम्बन्धी।

(२) रसायनिक।

(३) आगन्तुक।

खांसीको २ भागो मे विभाजित किया जाताहै

खासी के २ भेद

(१) उग्र खासी।

(२) पुरानी खासी।

आगे चल कर इनके और भी उपभेद हो सकते है।

उग्र कास

जुकाम का वारबार होना, गन्दे और ठढे मकानो मे रहना, ठढ लगना, उटपटांग खाना, मिलो का धुआं नाक मे जाना, आदि कारणो से यह खासी होती है। बच्चो, बूढो, कमजोरो को

यह खांसी अधिक होती है। स्त्रियो को कम होती है। तेली, मिस्तरी आदि अपने रोजगार के कारण खांसी के शिकार हो जाते है, और दांत निकलने के समय बच्चो को भी यह खासी हो जाती है। चेचक, गर्मी, मोती ज्वर आदि रोगो में भी यह देखी जाती है।

खांसी का सम्बन्ध फेफडे की नलियो से है, फिर अगर उसका सम्बन्ध वडी नलियो से है तो दिक्कत नही होती, किन्तु छोटी नलियो से होने पर बडी दिक्कत हो जाती है। अब दोनों के चिन्ह भी लिख दिये जाते हैं।

बडी वायु प्रणालियो के प्रदाह के चिन्ह

शुरू मे थोडा जुखाम होता है, नाक और आंखो से पानी बहने लगता है। गला सूख जाता है, लाल हो जाता है, और उसमें दर्द भी होने लगता है। आवाज भारी हो जाती है, सर में दर्द हो जाता है। और जाड़ा लग कर बुखार भी हो जाता है। छाती में जलन और बोझ मालूम होने लगता है छाती की हड्डी के पीछे दद होताहै और धीरे २ सूखी खांसी चलती हैं। सुवह और लेटने पर खांसी का जोर होता है। खांसते २ पसलियो में दर्द होने लगता है। शुरू में खासी सूखी होती है, बाद मे थोडा झागदार कफ भी आने लगताहै।

बाद में कफ वेशी आने लगता है यह सफेद पीला हरा मटियाला होता है। कभी २ थूक मे खून की धारियां भी आ जाती है।

छोटी वायु प्रणाणियो के प्रदाह के चिन्ह

यह भयानक खासी है। जाड़ा देकर बुखार चढ़ता है और १०४ डिगरी तक पहुच जाता है, नाड़ी प्रति मिनिट १२० से १८० बार तक चलने लगती है, सांस आता तो जल्दी २ है, किन्तु रुक कर सर में दर्द होता है, कै भी हो जाती है, दुर्वलता बढ़ जाती है, खासी वार २ उठती है थूक जम जाता है खासते २ रोगी हैरान हो जाता है। लेट भी नहीं सकता। कमजोरी बढ़ने पर कफ निकलता नही, अटक जाता है, जिससे दम घुटने लगता है। चेहरा श्याम, होठ नीले, और दृष्टि व्याकुल हो जाती है। नाक के नथुने फूल जाते हैं, खून गन्दा पड़ जाता है, शिराए खून से भर जाती हैं। देह का रग नीला सा पड जाता है, जो कमजोर होते है, उनकी जीभ सूख जाती है, उस पर कांटे जम जाते हैं, दांतो पर मैल और होठों पर पपड़ी जम जाती है, अन्त में नाड़ी मंद पड जाती है आखें घुस जाती हैं।

जब बच्चों को यह रोग होता है, तो वे उस समय पेट से श्वास लेते है। उनका पेट अधिक गति करता है, पशु का भीतर को दब कर खिच जाती है। फिर इसको ही 'पसली चलना' यानी Catarrhal of Broncho Pneumonia कहते हैं।

उग्रसदुष्टकास

Acute Suppurative Bonchitis

यह खांसी छूतदार है। थकावट, कमजोरी, गदावातावरण आदि इसके कारण है। इस खांसी में इन्फ्लूञ्जा के कीड़े भी मिलते हैं। छोटी बीच वाली वायुप्रणालियो मे एक तरह का उग्र प्रदाह होजाताहै, जिससे तरल अधिक निकलने लगताहै।

इसका आक्रमण सहसा होजाता है, जाड़ा लगने लगता है, और मांसपेशियो मे पीड़ा होने लगती है, मारे खांसी के दम घुटने लगता है, दूसरे, तीसरे दिन कफ भी गिरने लगता है, जिस पर खून की पतली २ धारियां भी होती हैं। जल्दी ही थूक का रंग बदल कर वह पीला या हरा हो जाता है। भयानक दशामे वेहोशी भी होजाती है।

खून में रुकावट पड़ने लगती है, चेहरे, होठ और कानो का रग श्याम हो जाता है। सास प्रति

मिनट ३०–४० तक पहुँच जाता है। फेफड़े की तलियो में थोड़ा टीसपन मालूम होता है। फुफ्फुस शोप और वायु अवरोध आदि इसके उपद्रव है।

आगन्तुक कास

Bronchitis due to mechanical and Chemical agents

धूल, मिलो की चिमनियो का धुआं, कोयले के कण, रुई की धज्जी आदि सांस के साथ फेफड़ो में जाकर अपना बुराप्रभाव दिखलाती है। बहुत सी गैसो के सूंघने से भी खांसी होजाती है इस खांसी के बाद प्रायः पुरानी खांसी होजाती है।

पुरानी खांसी

वायु प्रणालियों का पुरातन प्रदाह

Chronic bronchitis

उग्र कास के बाद यह खांसी होती है और इसके कारण वही होते हैं। सर्दी आते ही यह खांसी होती है और उसके साथ २ ही चली भी जाती है।

खाँसी चलती है, उसमें कफ निकलता है और थोड़ी सी मिहनत करने पर ही थकावट आकर सांस फूलने लगना है। दिन में कम और रात में अधिक खांसी चलती है। बुखार की शिकायत भी रहती है, छाती वेशी हरकत नही करसकती, सांस लम्बा आता है। इससे श्वास रोग पैदा होजाता है, हृदय के ऊपर जोड़ पड़ने से उसका दाहिना कोष्ठ फैल जाता है।

पुरातन प्रदुष्ट प्रदाह

Chronic, Suppurative bronchitis

इसमें थूक गंदा और सडा हुआ निकलता है। इसके चिन्ह पुरानी खांसी से मिलते हैं। इसको उपद्रव स्वरूप वायु प्रणालियो की दीवारो में व्रण हो जाता है, फेफड़े में फोड़ा हो जाता है, फुफ्फुस शोप भी हो जाता है।

वायु प्रणालियों का अवरुद्ध होना

इनकी रुकावट में दो तरह के कारण हो सकते हैं—

[१] बाहरी।

[२] भीतरी।

अब दोनों कारणों पर सक्षेप में थोड़ा विचार भी कर लेना चाहिये।

(१) बाहरी कारण—वे होते है जो वायु प्रणालियो के बाहर होते है और उस पर दवाव डाल देते हैं। अन्न नली में फोडा होना, महाधमनी का फूलना हृदयावरक झिल्ली में तरल पदार्थ भरना आदि कारण बाहरी कहलाते है। इस तरह तो खांसी चलती है, वह कभी सूखी होती है, कभी तर थूक में बदबू आती है, पीप मिला हुआ होता है, कभी २ उसमें खून भी आ जाता है। कफ निकलने पर कभी सांस घुटने लगता है सांस की आवाज मन्द पड़ जाती है।

(२) भीतरी कारण—ये भी २ भागो में विभाजित किये जा सकते है—

(१) बाहरी पदार्थ-जो वायु प्रणालियो में घुसकर खांसी पैदा करते है।

वायु प्रणालियो की दीवारो में क्षतज तन्तु पैदा हो जाते है।

अब इन दोनो कारणो के भिन्न २ चिन्हो को भी स्वयम् देखिये।

(१) बाहिरी पदार्थो को आगन्तुक शल्य कह देने में सुविधा होगी। मछलियो की हड्डियो के टुकड़े पिन, पैसा, अगूठी आदि चीजें आगन्तुक शल्यों में शामिल है। बंगाली बाबुओ को, मछलियो की हड्डियोंके अटकने से कभी२ बडी दिक्कत का सामना करना पड़ताहै। भूल से, पैसा, अंगूठी आदि चीजें हम मुँह में रख लेतेहै, फिर अगर वह निगल ली जाती है तो खैर नहीं।

अब अगर यह चीज कोई कठिन कड़ी होती है तो बड़ी दिक्कत होती है। नर्म चीज होने पर अगर उसे एक दिन में निकाल दें तो उस प्रदाह के बाद आराम हो सकता है। किन्तु कड़ी और जहरीली चीज होने पर उग्र फुस्फुसशोथ के चिन्ह होजाते है, जिससे वायु प्रणालियो का रास्ता बन्द हो जाता है। मार्ग बन्द होने से, उस प्रणाली से सम्बन्धित फेफडे के क्षेत्र का एकदम अवशोष हो जाता है, यह दशा नीचेके आधे या सारे खण्ड मे हो जाती है, कभी इससे फेफडो में पीव भी पड जाती है, और फेफडे का प्रणाश हो जाता है।

जब कोई चीज अन्दर जाती है, तो बडी बेचैनी हो जाती है, खांसी चलने लगती है, वह चीज कफ के साथ बाहर आती है, किन्तु स्वर यन्त्र से रुक जाती है। और दम भी रुकने लगता है। खासते २ रोगी हैरान हो जाता है, बदबूदार थूक निकलता है, पीव निकलती है। अंत मे बुखार भी हो जाता है।

(२) वायु प्रणालियों मे क्षताक तन्तु पैदा हो जाते हैं। इनके भी चार कारण है।

(१) प्रणालियो के दीवारो मे जख्मों का होना।

(२) भीतर बाहर कही भी सिफलिश के कीडों का आक्रमण होना फिर आराम हो जाना।

(३) किसी चीजके घुसने पर या निकालने पर आघात हो जाना।

(४) तेजजलन पैदा करने वाले गैस पदार्थों का सूंघना।

इस तरह किसी खण्ड या खण्ड के थोड़े से भाग मे जाने वाली वायु प्रणाली का रास्ता रुक जाता है, जिससे अंदर पैदा हुये तरल मे रुकावट पडतीहै, वायु भीतर तो चली जाती है, पर बाहर नही निकलती, जिससे 'वायु अवरोध, का रोग हो जाता है, श्वास प्रणालियां और वायु गन्दी फैलने लगती है, रुकावट अधिक होने पर वायु जज्ब हो जाती है, फेफडो में रक्तावरुद्ध होने लगती है। खांसी कभी सूखी और कभी तर आती है, थूक बदबूदार पीप युक्त या खून मिश्रित आता है, कफ निकलने पर कभी २ दम रुकने लगता है।

हिकमत से खांसी का विवेचन

खांसी को हिकमत में सुआल कहते हैं। और उसमें इसके ११ भेद माने गये हैं।

इसके ११ भेद हैं।

(१) पहिला भेद

फेफडो के मुह या मास में जब सादा गरम दूषित प्रकृति पैदाहो जातीहै तो यह पहिली खासी होती है। इसमें प्यास बहुत लगती है, फेफड़े का सर और नरखरा लाल हो जाता है, छाती में कुछ बोझा सा प्रतीत होता है, और यह गर्मी पहुँचने से बढता तथा सर्दी पहुँचने से घटता है।

(२) दूसरा भेद

फेफडों मे जब सपित्त खून भर जाता है तो खिचावट और जलन करता है उसको दूर करने के लिये यह फेफडे की क्रिया खांसी समझी जाती है। इसमें श्वास बडा और गर्म हो जाता है, थूक नही आता, चेहरा लाल हो जाता है। मवाद पतला होने से ही इसमें थूक नही आता, किंतु कभी पित्त से या जोर की खासी चलने से कुछ मवाद आ जाता है।

(३) तीसरा भेद

एक गरम और पतला पदार्थ सरसे नीचेउतर कर फेफड़ो के मुह में खुजली और जलन पैदा करता है, जिससे खासी चलती है। यह सूखी होतीहै, इसमें थूक नही आता, और थोड़े ही दिन में खराब हो करके फेफड़ो मे घाव कर देती है। यह खांसी सोने के बाद में अधिक आती है।

(४) चौथा भेद

सादा ठंडी दुष्ट प्रकृति फेफड़ो में पैदा होकर खांसी पैदा करती है, इसमें प्यास कम लगती है, छाती में कुछ बोझा सा रहताहै जो सर्दी से बढ़ता और गर्मी से घटता है।

(५) पांचवां भेद

सर से मवाद उतर कर, वह गाढ़ा और चेपदार होकर फेफड़ो मे रुक जाता है, जिससे यह खांसी होती है, और जुकाम के बाद होती है। इसमें छाती पर भारीपन रहता है, और चेपदार मल भी निकलता है।

(६) छटवां भेद

बूढ़ो और तर प्रकृति वालो, को फेफडों तथा छाती पर तरी से यह खासी होती है, इसमें कफ गले मे चिपटा रहता है, और बहुत निकलता है, गले में खरखराहट रहती है, नींद में तथा जगने के बाद यह बहुत होती है।

(७) सातवां भेद

यह फेफडो पर खुश्की और गर्मी पहुँचने से होती है, भूख प्यास के समय तथा घूमने फिरने के समय तरी नाश होकर खुश्की बढ़ने से यह जोर पकड़ती है।

तर चीज खाने से यह खांसी दब जाती है। इसमें सांस तग हो जाती है, थूक में मवाद नहीं निकलता, और देह कमजोर हो जाती है, नाड़ी शीघ्रता से चलती है, रोग बढ़ने और दिल पर गर्मी के अधिक होने से तपेदिक हो जाता है।

(८) आठवां भेद

फेफडे में धूल भरने, जोर से चिल्लाने से यह खांसी होती है, इसमे खरखरापन होता है. और खांसी चलती है।

(९) नवां भेद

फेफडे और छाती के घाव इनकी तथा छाती के पर्दे की सूजन, दिल तथा फेफड़े के बीच के पर्दे की सूजन, जिगर, लीवर, और तिल्ली की सूजन तथा नखरे की सूजन,इन कारणों से जिगर के लटकने का स्थान खिंचावट पैदा करता है। जिससे फेफड़े के स्थान में खिंचाव और दर्द होता है फिर अपनी वेदना को दूर करने के लिये जिगर की ताकत हवा चलाकर खांसी पैदा करती है। यह खांसी खुश्क होती है इसमें दर्द और खिंचाव होता है, जिस जगह दर्द होता है वहीं चिंह प्रगट हो जाते है। इसके चिन्ह उरःक्षत दिल से मिलते जुलते है।

(१०) दसवां भेद

पित्त मिला खून जब फेफड़ों में फुन्सियां पैदा करता है, तब यह खांसी चलती है इसमें नाड़ी शीघ्र चलती है, पेशाब गरम होता है, पित्त खुद गर्म है, अतः गर्मी मिलने से हानि और सर्दी से फायदा होता है।

(११) ग्यारहवां भेद

आमाशय में खराबी पैदा होने से भी खांसी चलती है पर यह भरे पेट अधिक चलती है।

श्वास *Asthma*

इसे सांस और दमा भी बोलते है, इस रोग की भयकरता इसी से जानी जा सकती है कि अच्छी तरह बैठा हुआ रोगी मिनटो में क्या दो सैकण्ड में निर्जीव हो जाता है। आज कल बुड्ढो ही को नही जवानो को भी इस रोग से पीड़ित देखकर हृदय कांप उठता है। इसके विषय में साधारण जानकारी सभीको रहती है, जब मनुष्य चलता है तब उसके श्वास का वेग बढ़ जाता है, यानी वह जल्दी२ सांस लेता है, किंतुबैठे रहनेपर ऐसा नही होता किंतु यह स्वस्थ दशाकी बातहै जब मनुष्य बैठा हुआ भी जल्दी २ सांस लेने लगे, हांफने लगे तब समझ लेना चाहिये कि यह श्वास रोग के लपेटे में आ गया।

कारण

दाह करने वाले, देर में पचने वाली, कब्ज करने वाले, रूखे, रसवाहिनी शिराओं को रोककर भारीपन करने वाले पदार्थों के खाने से, ठंडा अन्न और ठंडा पानी सेवन करने से, धुएं और रज कणों के मुंह और नाक में घुसने से, अत्यन्त धूप और हवा लगने से, अधिक मेहनतसे, भारी बोझा उठाने से, अधिक रास्ता चलने से, मल मूत्रादि के वेग को रोकने से, उपवास अपवास आदि से हिचकी, श्वास और खांसी ये तीन रोग उत्पन्न होते है। अगर इन्हीं कारणों में सामयिक कारण तथा गन्दी हवा, गन्दा पानी मिलों का काला धुआं, सड़े हुये पदार्थ आदि भी शामिल किये जा सकते है। इन कारणों से सुश्रुत के शब्दों में प्राण वायु अपनी प्रकृति के खिलाफ वगावत शुरू कर देता है और ऊर्ध्वगामी होकर तथा कफ से मिल कर श्वास रोग उत्पन्न करता है। वायु जब कफ से मिल जाता है तब वह कफ की सहायता से प्राण, अन्न, जल के मार्गों को रोक देता है। कफ जब रास्तों में अड़ गया तब वायु खुद भी वहीं रुक जाता है. चारो तरफ चक्कर नहीं काट सकता। बस फिर श्वास रुका ही समझिये।

श्वास के भेद

[१] महाश्वास *Renal-Asthma*
[२] ऊर्ध्वश्वास *Tuberculosis Asthma*
[३] छिन्नश्वास *Cardial Asthma*
[४] तमक श्वास *Ture Asthma*
[५] क्षुद्रश्वास *Bronchial Asthma*

इस तरह श्वास ५ तरह का होता है।

श्वास के पूर्व चिन्ह

हृदय में पीड़ा, शूल, अफारा, मुंह का स्वाद बिगड़ना, कनपटियों में ऐसी पीड़ा होना जैसे उन्हें कोई तोड़ रहा हो। इन चिन्हों को देखकर श्वास के आने की खबर मिल जाती है।

(१) महाश्वास
Renal Asthma

इसमें रोगी की प्राणवायु आवाज के साथ ऊपर चढ़ती है और उस समय रोगी को भयंकर वेदना होती है। भागा हुआ सांड जब थककर रुक जाता है और उस समय हांफ २ कर सांस लेता है, ठीक वैसी ही सांस यह रोगी लेता है। महाश्वास का रोगी पढ़े पढ़ाये कलाकौशल सब भूल जाता है।

आंखें फट सी जाती है, मलमूत्र रुक जाते हैं, जीभ तुतला जाती है कोशिश करने पर भी नहीं बोल सकता, अगर बोलता भी है तो आवाज बहुत मन्दी हो जाती है जब श्वास लेता है तब आवाज दूर ही से सुनाई देती है। कभी २ रोगी बेहोश भी हो जाता है, पसलियों में दर्द होने लगता है, गला सूख जाता है, खर्राटा बढ़ जाता है आंखे सूज जाती है और सांस लेते समय रोगी या तो फैल जाता है, या सिकुड़ जाता है।

(२) ऊर्ध्वश्वास *Tuberculosis Asthma*

इसमें रोगी नीचे को तो सांस ले ही नहीं सकता, ऊपर को लेता है, सास बहुत ऊपर चढ़ जाता है, देह के सारे छेद तथा मुंह कफ से घिर जाते हैं, रुका हुआ वायु भयकर वेदना करता है, रोगी की नजर सदा ऊपर को रहती है नीचे ताकने में उसे दुःख होता है और ताक भी नहीं सकता। इधर उधर बुरी तरह घूमता रहता है, बेहोशी होने लगती है, वेदना बुरी तरह सताती है, बेचैनी बनी रहती है और मुंह सूख जाता है, जब मोह और ग्लानि होने लगती है तब रोगी का काल आ जाता है।

(३) छिन्न श्वास *Cardiol Asthma*

रोगी थोड़ा २ और ठहर २ सांस लेताहै लगातार सांस लेही नही सकता। हृदय, छाती, शिर इनमें छेदने जैसी पीड़ा होती है, पेट फूलता है, पसीना आता है बेहोशी होती है, मूत्राशय में जलन होती है जिससे रोगी तड़फता रहता है, आंखो में पानी भरा रहता है। देह क्षीण हो जाती है, चित्त में उद्वेग होता है, रोगी बकवाद करता है हांफता है, मुह सूख जाता है, देह का रंग बिगड़ जाता है, एक आंख व्याधि के प्रभाव से लाल हो जाती है। ऐसा रोगी मिनटो मे मर जाता है, बैठे २ दम उखड़ जाता है।

(४) तमक श्वास *True Asthma*

यह (१) तमक श्वास और (२) प्रतमक श्वास दो तरह का है, इसमें वायु अपनी राह छोड़कर ऊटपटांग रास्तो से नसो मे घुसता है. जिससे गर्दन और सर दोनो जकड़ जाते है। कफ बढ़ जाने से जुकाम हो जाता है और गले में घर-घर होने लगता है, हृदय बुरी तरह पीड़ित होता है। रोगी अपने को अधेरे में पड़ा हुआ सा समझता है, डरता है. सांस के वेग से उसकी चेष्टाए भी नष्ट हो जाती है। खांसी के मारे बराबर बेहोशी होती है, गलेसे जब कफ निकलना चाहता है तब दुख होता है, किंतु निकल जाने पर शांति मिलती है, गले मे दर्द रहने के कारण रोगी को बोलने मे कष्ट होता है।

रोगी न सो सकता है न लेट सकता है, अगर वह सोता या लेटता है तो पसलियो में वायु बड़ा बुरा दर्द करता है. जिससे रोगी फौरन उठ बैठता है, बैठे रहने से थोडा आराम मिलता है, रोगी को गरम चीज खाने की इच्छा होती है, आँख ऊ ची और सूजी रहतीहै मुह सूखताहै, बड़ा कष्ट होता है, रोगी बराबर सांस लेकर हाथी चलाने वाले की तरह हिलता है।

बादल होने से, पानी बरसने से, सर्दी पड़ने से, पूर्वी वायु चलने से, कफ कारक पदार्थ खाने से- यह श्वास बढ़ता है, यह याप्य है, अगर नया हो तो आराम भी हो सकता है।

यह तमकश्वास के चिन्ह है, अगर इन्हीं चिन्हो के साथ २ ज्वर और मूर्च्छा भी हो तो उसे प्रतमक श्वास कहते है।

५—क्षुद्र-श्वास *Bronchial-Asthma*

जो सूखेपन और अत्यधिक मेहनत से होता है, उसे क्षुद्र श्वास कहते है, यह वायु को बढ़ाता जरूर है. पर और श्वासो की तरह रोगी को अधिक व्यथित नही करता खाने पीने की गति को नही रोकता, इन्द्रियो को पीड़ित नही करता। यह जल्दी ही आराम हो जाता है।

साध्य असाध्य

महाश्वास, ऊर्ध्व श्वास, छिन्न श्वास ये असाध्य है, अगर इनके पूरे चिन्ह प्रगट नही हुये हो और रोगी निर्बल न हो तो साध्य हो सकते है। तमक श्वास साध्य है, किन्तु कष्ट से साध्य होता है। और अगर कमजोर रोगी को तमक श्वास हो तो वह असाध्य है। क्षुद्र श्वास सहज में ही आराम हो जाता है और उसके कारणो को छोड़ देने से खुद भी आराम हो जाता है।

थूक परीक्षा

श्वास के रोगियो का थूक गाढ़ा और गुल्फेदार होता है. कुछ २ पीला होता है, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखने पर इसमे छोटे २ कीटाणु दिखलाई पड़ते है। अगर इस थूक को शीशे पर काली सतह के सामने रखकर देखा जाय तो मालूम होगा कि कफ के महीन २ तार भी लिपटे हुये हैं।

हिकमत से श्वास रोग

श्वास रोग को हिकमत वाले दमा कहते हैं। कसरत करने पर हमें श्वास जोर से आता है,

किंतु बैठे रहने पर वैसा नहीं, अगर बैठे रहने पर भी हमें जोर २ से सांस आने लग जाय तो समझ लीजिये सांस का रोग हो गया है।

साधारण श्वास रोग के २ भेद

श्वास दो तरह का लिया जाता है।

१—स्वाभाविक श्वास।

सोते रहने, बेहोशी होने आदि पर जो सांस आता है, वह स्वाभाविक होता है।

२—अस्वाभाविक श्वास, या इच्छित श्वास अपनी इच्छानुसार छोटे बड़े सांस लेनेको इच्छित साम कहते है।

सांस कैसे लिया जाताहै यह हम शुरू में बता चुके है, सांस लेने का काम फेफड़ो का है, और छाती उसमें मदद देती है, अगर सांस लेने में कुछ खराबी होती है तो समझ लेना चाहिये कि फेफड़े तथा छाती में कुछ गड़बडी मच गई है।

खराबी के ४ भेद

(१) दोषयुक्त।

(२) सूजन।

(३) गांठ।

(४) तफर्रुक इत्तिसाल।

१-दोषयुक्त—प्रकृति होनेसे फेफड़ो मे जरूरत से ज्यादा गर्मी, सर्दी, तरी अथवा खुश्की बढ जाती है।

मवाद-पड़ने पर सर्द या गर्म दोष इकट्ठे होते हैं।

२-सूजन—गर्मी या सर्दी से होती है।

३-गांठ—तभी होती है जब कि दोष फेफडो के मुँह और छाती की चौडाई या छेदो मे इकट्ठे होते है।

४-तफर्रुक इत्तिसाल—के मानी है, टूटना, घाव होना, फटना, जब छाती या फेफडो मे घाव हो जाते हैं, कोई रग टूट जाती है, बाहर से कोई चोट पहुँच कर घाव हो जाता है, तो यह खराबी होती है।

नोट—मुँह, छाती, और फेफडो में होने वाली खराबी खांसी से ही होतीहै, दूसरे अगों के संयोग से भी छाती तथा फेफड़े में खराबी पहुँचती है।

दिमाग—के सम्बन्ध से जो खराबी होती है, वह मृगी तथा बेहोशी जैसी होती है।

हराम मग्ज—के संयोग से, खिचाव और ढीलापन होने पर होती है।

दिल—के संयोग होने वाली गड़बडी, दिल मे किसी तरह की खराबी होने, या सर्दी गर्मी के पहुँचने से होती है।

इसी तरह जिगर, आमाशय, आदि दूसरे अगो के संयोग से भी खराबी पैदा होती है।

दमे के भेद

(१) रबू-सांस का कठिनता से आना।

(२) जीकुल नफस-सास का तंगी से आना।

(३) बोहर-सास का चढ़ना और फूलना।

इसके पहिले का वर्णन यहां किया जाता है, दूसरे २ अनावश्यक हैं।

(१) रबू के १४ भेद

१—यह जान्मिक रोग है, जन्म से ही छाती के छोटे होने के कारण सास मे कठिनता होती है, यह असाध्य है।

२—फेफड़ों का गाढा कफ आ जाने, उनका मुह कफ से भर जाने और उनमें भारीपन होने पर यह दमा होताहै, फेफड़ो मे कफ उतर आताहै।

१—खुद फेफड़े ही भीतरी अगो से कफ को खीच लेते है।

२—सिर की तरफ से कफ फेफडोंमें आता है

३—फेफडों मे कफ पैदा हो जाता है।

इस दशा मे छाती मे खरखराहट होती है, खासी आती है तर और कफ निकलता है सास तगी से आताहै, रोगी कुत्ते की तरह जीभ निकाल देता है, चलने के समय सांस खिचता है।

३—दिल की भाफ के परमाणुओं से जब छाती और फैफड़े भर जाते हैं, तो वे इनको बन्द जैसा कर देते हैं, जिससे हवा का रास्ता तंग हो जाता है, सांस में तंगी होती है नाड़ी बड़ी और लगातार चलती है, प्यास बहुत लगती है, और गरम जल से शान्ति होती है।

४—फेफड़ों में जब किसी कारण से गर्मी हो जाती है, तो दमा हो जाता है उसमें ठन्डी चीजों से लाभ होता है।

५—जब किसी कारण वश छाती के अवयव ढीले हो जातेहैं, और खुल नही सकते, तो स्वाभाविक गर्मी कमजोरी पैदा कर देती है, जिससे सांस फूलता हैं, और रुक २ कर आता है। नाड़ी में भी नर्मी आ जाती है।

६—जब फेफड़ों में खुश्की पैदा हो जाती है तो तरी के नष्ट हो जाने से फेफड़े सिकुड़ जाते हैं, और दमा पैदा हो जाता है, इसमें प्यास लगती है आवाज मन्दी हो जाती है, थूक मे कुछ निकलना हो सो बात नही है।

७—ठन्डी चीजें बराबर खाते रहने से, ठंडे वायु मंडल में रहने से फेफड़ों में सर्दी बढ़कर दमा पैदा करती है, अक्सर बूढे इसके ज्यादा शिकार होते है। शुरू में कम होता है, अन्त में बढ़ जाता है।

८—श्वास यंत्रो में गाढ़ी हवा भर जाने से नाक में सांस रुक के आता है, नरखरा, हवा की जगह है, उसमें कुछ भर जाता है, तो दमा हो जाता है।

९—बहुत सा मवाद जब छाती के छेदो में भर जाता है तो करवट लेने से वह इधर उधर गिरता हुआ सा मालूम होता है, कभी२ यह दमा फेफड़ों की सूजन में बदल जाता है, इसमें खासी उठती कम है लेकिन जाती देर में है। इसके दो कारण हैं।

(१) प्रकृति का गरम होना।

(२) प्रकृति का ठडा होना।

१—इसमे आवाज जोर की होती है, सांस बड़ा होता है. ठंडी हवा से आराम होता है

२—इसमें छाती छोटी हो आराम गरम हवा से बिना दवा के ही होता है, आवाज धीमी होती है, सांस तंग होता है। छाती मे कफ खूब होता है, और खांसी तथा दमे का जोर रहता है।

१०—दूसरे तेज रोगो के कारण दमा होता है

११—फेफड़ो में, उनके आसपास जिगर तिल्ली आदि मे सूजन होने से भी दमा होता है।

१२—तकल्लुसुत हिजाव, पर्दो के सिकुड़ने से यह दमा होता है, गर्म खराब खुश्क प्रकृति के अधिक हो जाने से, छाती तथा पसली के भीतर की झिल्ली सिकुड जाती है, ऊपर की तरफ खिंच आती है। इसमें बुखार बना रहता है, जीभ बाहर निकल आती है, आंखे भी बाहर निकल पड़ती हैं, खांसी होते ही बेहोशी आ जाती है।

१३—आमाशय मे मवाद भरने से, दिल की गति नहीं खुलती, जिससे दमा होता है।

१४—गले मे सूजन होने से दमा हो जाता है

राज यक्ष्मा तपेदिक

Pthisis

इसे साधारण जनता बडाही शैतान रोग समझती है, और बात भा दर असल ऐसी ही है, यह रोग कोई साधारण रोग नही है बड़ा भयंकर रोग है, इसे रोगो का राजा कहते है। एक बार जो इसके लपेटे मे आ गया, बस मौत के पिंजरे में बन्द कर दिया गया, उसे घुल २ कर मरना पड़ता है। जिसे राजयक्ष्मा हो गया, वह अधिक से

अधिक एक हजार दिन जिन्दा रह सकता है, ऐसा प्राचीन विद्वानो का विश्वास है, यह यक्ष्मा, क्षय, दिक् शोष नामो से प्रसिद्ध है। नाम करण में भी रहस्य भरा हुआ है; यह जब हो जाताहै तब रोगी को वैद्य डाक्टरो की खूब पूजा करनी पड़ती है, इसलिये इसे यक्ष्मा कहते हैं। और इसके होने पर रक्तादि धातुओ का क्षय होता है, इसलिये इसे क्षय कहते हैं। हर एक इसका इजाज नहीं कर सकते जो अनुभवी, विद्वान और मजे हुये होत है, वही इसका इलाज कर सकते हैं।

कारण

वैसे तो, अधिक चिन्ता, असमय का बुढ़ापा, अतिश्रम, आदि भी इसके कारण होते हैं, मगर प्रधान कारण इसके चार ही हैं।

(क) मल मूत्रादि वेगो के रोकने से, (ख) अधिक सभोग द्वारा धातुओ के ह्रास होने से (ग) ताकत से अधिक काम करने से, (घ) अनियमित समय, और अनियमित खाने से। प्रधान ये चार ही कारण है। इन पर थोडा प्रकाश डाल देना भी अप्रासङ्गिक नही होगा।

(क) वेगो का रोकना

वेगो को रोकने से उदावर्तादि और भी रोग होते हैं, किन्तु यहां मल मूत्र, और अधोवायु इन तीन वेगो से मतलब है, औरो से नही। इनको रोकने से सबसे पहिले तो वायु कुपित होता है, फिर वह कफ और पित्त को भी साथ मे समेटता है, इससे त्रिदोष कुपित होकर यक्ष्मा का मसाला तैयार कर देता है। इन तीनो वेगो का रोकना स्वास्थ्य शास्त्र की दृष्टि से कितना घातक है, यह बतलाने की जरूरत नही।

(ख) अधिक सभोग

रात दिन मैथुन करने से क्या होता है, यह बतलाने की जरूरत नही। आज कल का मानव समाज इसका जीता जागता उदाहरण है, हमारी औलाद जल्दी क्यो मरती है, पैदा होने से मरने तक क्यो डाक्टरो और वैद्यो की जरूरत रहती है, इसका असर यही है 'हम विषयी हैं' विषय करते करते शरीर में हड्डिया भी सूख जाती है। मैथुन की मशीन जब जोरो से चलती है तब वीर्य खतम हो जाता है, उसकी जगह खून आने लगता है खून आया तो मौत का वारण्ट आया।

(ग) अति साहस

जितना साहस हो उतनाही काम करना चाहिये यह कहावत भी मशहूर है, इससे उचित मात्रा मे मिहनत होती है और स्वास्थ्य ठीक रहता है, किन्तु इस ताकत के विपरीत जरासा भारी काम किया जाय तो स्वास्थ्य ठीक रहने के बदले बिगड़ने लगता है। आजकल यही कारण अधिक दिखाई पड़ता है, न जाने क्यों भारतीय समाज में यह वेहूदा रीति पड़ी हुई है कि जो ज्यादा करता है, लोग उसकी तारीफ करते हैं। कोई आदमी सुबह आठ बजे से लेकर अगर रात के दस बजे तक खटता है, तो लोग उसकी अधिक तारीफ करते हैं, और उनकी नजर में वह होनहार है किन्तु इसका परिमाण बहुत बुरा निकलता है। उसके शरीर की मशीन खराब हो जाती है, जिससे हाजमा बिगड़ जाता है, धीरे २ वीर्य का क्षय भी होने लगता है। यूरोपियन समाज में खटना नियमित होता है, उस नियमित समय में ही वे लोग आवश्यक कार्य कर लेते है, इसके अतिरिक्त वे लोग जीने के लिये खटते है, खटनेके लिये नही जीते। हमारी यह धारणा गलत हो सो बात नही है, भारतीयो की रोगी गणना इसका सबूत देगी।

हमारा शरीर ६ घटेमें खाने की ताकत रखता

है और हम खाते हैं, १० घन्टे बाद फिर क्षय का होना कोई अस्वाभाविक नहीं।

(घ) अनियमित भोजन

बिषम भोजन के मानी होते हैं--अनियमित भोजन। आज दसबजे खाया तो कल दो बजे और कल दो बजे खाया तो परसों ६ बजे, यह विषम भोजन कहलाता है, साथ ही आज आधे पेट खाया तो कल नाक तक ठूस २ के खाया और परसों खाया ही नहीं। इस तरह क्षय का प्रहार होता है, विषम भोजन की बेहूदा चाल भी आजकल बहुत कुछ है। इसका फल भी हमें ही भोगना पड़ रहा है। अंग्रेज लोग ठीक समय पर खाना खाते हैं और उस समय सारे काम काज को उठाकर ताक में रख देते है। किंतु हमतो जरा सा मामूली सा काम सोने पर ही या आलस्य आने पर ही घंटा दो घंटा लेट होजाते हैं। इस तरह एक क्षय रोगही पैदा हो सो बात नहीं है और भी बीसो रोग हो जाते हैं। विषम भोजन में ही उपवास भी आ जाता है। जो लगातार कई दिनों तक उपवास रखते हैं। उन्हे भी क्षय का शिकार होना पड़ता है आज खाकर दस दिन नही खाया और दस दिन बाद खाकर पांच दिन नहीं खाया, इस तरह सब से पहले वायु कुपित होता है बाद में और सब पाचकाग्नि अन्न के न मिलने पर रस रक्तादि धातुओ पर हाथ सफा करने लगती है।

सामयिक कारण

क्षय का यह तो पुराना इतिहास है, आजकल और बहुत से कारण हैं, जिनसे यक्ष्मा होता है। उनका उल्लेख भी हम यहां करेंगे। डाक्टर लोग इसको 'थाइसिस' कहते हैं और इसके उत्पादक कीड़े होते हैं। गन्दी जगह, सड़े पदार्थ आदि इसके कारण हैं। आजकल का सबसे प्रधान कारण है-

(१) शहरी जीवन—दूसरे शब्दों में इसे नरक प्रवास भी कहते हैं। शहरो का जीवन आजकल इतना गन्दा और वीभत्स है कि हम उनकी कल्पना भी नही कर सकते। शहरी आदमी अपने आपको ऊंची श्रेणी का समझते हैं, मगर हैं असल में वे नरक के कीड़े। असन्तोष, अशान्ति, बेईमानी की आग चारो तरफ सुलग रही है, व्यभिचार की कर्मनासा खूब बढ़ रही है, लोग हत्यारे होते जा रहे है, दिन दहाड़े सतीत्व लूटा जा रहा है और चलते २ छुरी भोकी जा रही है।

इसके लिखने से हमारा मतलब यह है कि शहरी जीवन आज बहुत वीभत्स हो रहाहै। मानसिक विकार और शीरीरिक विकार सीमासे आगे बढ़े जा रहे है। फैशन का भूत बुरी तरह सवार है गर्मी के मारे चाहे दिल निकल जाय, मगर कोट पतलून पहने बिना बाहर नहीं निकला जा सकता, फैशन ही तो ठहरा. लोग केवल हड्डियो के ढांचे मात्र रह रहे है, न मानसिक बल है, न शारीरिक बल। भूत की तरह खटकते है जिससे स्वाष्थ्य पर पानी फिर जाता है। रोगों के जो कारण है वे सब के सब शहरो में मिलेंगे।

रात दिन चिन्तित रहना, उनके डाका मारना तो उसके छुरी भोंकना, उसकी जेब काटना तो उसकी इज्जत खराब करना यह शहरी जीवो के कर्तव्य हैं। चारो तरफ मकानो का सटावन कहीं शुद्ध हवा न कही सूर्य की किरणें अंधेराही अंधेरा है। गली के मोड़ पर कूड़ा पड़ा है इसमें कीड़े लबलबा रहे हैं और समय पाकर शरीर में घुस जाते हैं बस खेल खत्म। शहरो की गन्दगी प्रसिद्ध है। और साथ में चकाचौंध भी। मिलों का धुआं हरदम आंखो में घुसा रहता है, साफ हवा मिलती

नहीं न शरीर के संशोधन के लिये दिवाकर की किरणें ही मिलती है। इसी लिये हम कहते है शहर वाले यक्ष्मा आदि रोगो के अधिक शिकार होते हैं। गावो में कही वमुश्किल यक्ष्मा का नाम सुना जाता है, किंतु शहरो में तो घर २ में देख सकते है। यह है एक कारण।

(२) अप्राकृतिक व्यभिचार

जिसे लौंडे वाजी कहते है। इस वेहूदे विषय पर लिखें भी तो क्या ?

(३) वेश्या व्यभिचार

शहर वेश्याओ के केन्द्र होते है और व्यभिचारी वहां जाते भी खूब हैं, पहिले उन्हे सूजाक, गर्मी होती है वाद में क्षय।

(४) दूषित पदार्थ

खाने-पीने के सभी पदार्थ शुद्धावस्था में नही मिलते, दूध में भूसा मिला है, तो आटे में चूर, रवड़ी में अरारोट मिला है तो घी में तेल। सभी के सभी पदार्थ खून के विगाडने वाले है, शहरो का दूध पीकर वाद दो दिन तक खाने की जरूरत नही। अस्तु।

इनके सिवा और भी कारण हो सकते हैं। हमने खास २ कारणो का जिक्र किया है।

पूर्व चिन्ह

क्षय के पहिले उसकी सूचना देने वाले ये चिन्ह होते हैं, श्वास, देह में दर्द, कफ का गिरना, तालू का सूखना उल्टी होना, अग्नि मन्द हो जाना, नशा सा रहना, नाक से पानी गिरना, खाँसी और खूब नीद आना, आंखें सफेद हो जाती हैं, और मांस तथा मैथुन पर खूब जी चलता है।

स्पष्ट चिन्ह

जुकाम, खाँसी, गला वैठना, अरुचि पसलियो का सकोचन तथा दर्द खून की उल्टी तथा मल भेद ये चिन्ह उस अवस्था के हैं, जब यक्ष्मा प्रगट हो जाता है इन्हे देखकर कहा जा सकता है कि अब यक्ष्मा हो गया, मौत का वारन्ट आ गया।

क्षय में तीनो दोष विगड़ते हैं, इसलिये यह एक ही तरह का है, किंतु फिर भी तीनों दोषो में एक दोष प्रधान जरूर रहता है, और उसके विशेष चिन्ह भी होते हैं।

१—वात प्रधान क्षय

क्षय के और चिन्ह तो होने ही हैं, वायु की अधिकता के कारण गला वैठना, कंधो और पसलियो में दर्द तथा संकोच होता है, वायु के अधिक होने से गला वैठता है, पसलियो में दर्द होता है।

२—पित्त प्रधान क्षय

पित्त के अधिक होने पर ज्वर होता है, जलन होती है, दस्त लगते हैं, और मुंह से खून गिरता है।

३—कफ प्रधान क्षय

शिर में भरीपन, अरुचि, खांसी, गले का जकडना खांसी से होते हैं।

इसके अलावा ६ तरह का क्षय होता है, उसमें केवल निदान भेद है।

१—व्यवाय शोष

यह अधिक मैथुन से होता है मैथुन करते २ वीर्य का क्षय हो जाता है, उसी अवस्था का यह हाल है, इसमें लिंग तथा फोतो में पीड़ा होती है, सभोग की ताकत नहीं रहती, और अगर मर पच के किया भी जाता है, तो कई वार में वीर्य गिरता है, किंतु थोड़ा, आनन्द नहीं आता। इस तरह इसमें पहिले वीर्य का क्षय होता है, वाद में उल्टे क्रम से रस तक का ह्रास हो जाता है।

२—शोक शोष

अधिक शोक करने से मनुष्य का ध्यान किसी और तरफ नही लगता, एक ही बात का ध्यान् रहता है, उसमें खाना पीना सब हराम हो जाता है, इस तरह बिना धातु क्षय के भी उसके चिंह प्रगट हो जाते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है, हृदय एकदम कमजोर हो जाता है, जिससे धातुओ का काम ठीक नही हो पाता।

३—वार्धक्य शोष

यह उस समय में ही बुढ़ापा आ जाने से होता है, उस समय में बुढ़ापा भी अपने आप नही आता, खास खास रोगो से ही आता है, इनमें शरीर दुबला पड जाता है। वीर्य, बल, वुद्धि सबका ह्रास होने लगता है, कपकपी आती है, देह की काती नष्ट हो जाती है, आबाज फूट जाती है कफ-थूकने परभो नहीं निकलता, अरुचि रहती है और शरीर भारी रहता है।

४—व्यायाम शोष

यह अधिक कसरत करने से होता है, कसरत केवल शरीरिक होनी है, अपितु मानसिक भी होती है, जब शरीर और मन के सीमा से अधिक कसरत की जाती है, तब धातु सूखने लगती है मन के मलिन रहने के कारण पाचन नही हो पाता इस तरह क्षय घर कर लेता है।

५—अध्व शोष

अधिक रास्ता चलने से यह शोष होता है, अक्सर दलाल, चपरासी डाकिये, इसके अधिक शिकार होते हैं। देह ढीली पड़ जाती है, क्रांति खरदरी और आग में भुनी हुई सी हो जाती है, स्पर्श ज्ञान नहीं रहता गला और मुंह सूखने लगते हैं।

६—व्रण शोष

वडा सा फोड़ा होने से उसमें बराबर खून निकलने से अथवा किसी और कारण से जब खून निकल जाता है, तब व्रण शोष होता है।

(१) उरः क्षत शोष

एक और होता है। ज्यादा तीर चलाने, अधिक बोझा उठाने, वली के साथ कुश्ती करने. ऊचे नीचे स्थान से गिरने, दौड़ती हुई सबारियो को रोकने, किसी चीज को जोर से फेंकने, किसी को मारने. जोर से चिल्लाने, चिल्ला २ कर पढ़ने, जोर से भागने गहरी नदियो को पार करने, घोड़े आदि के साथ दौड़ने अधिक और सहसा कूदने उछलने, अधिक कला खाने, आदि कारणो से, छाती में घाव हो जाता है, रूखा तथा कम भोजन करने वाले, और चोट लगने पर भी मैथुन करने बाले, इसके चपेटे में आ जाते हैं। इससे छाती में जोर से दर्द होता है, खून की उल्टी होती है, खांसी तग करती है, खून, कफ, वीर्य और ओज का क्षय होता है, जिससे लाल रग का खून मिला पेशाव होता है। पसली, पीठ, और कमर में गहरी वेदना होती है।

उपद्रव

यक्ष्मा के ११ उपद्रव होते हैं। जुखाम श्वास, खांसी, कधो और सर में दर्द, अरुचि और स्वर वेदना, ये ६ उपद्रव उस अवस्था में होते हैं, जब दोष ऊपर में रहते हैं। नीचे अगर दोष है तो दस्त और देह का सूखना, ये दो उपद्रव होते हैं। कोठे में दोष है, तो उल्टी होती है, तिरछा है, तो पसलियो मे दर्द होता है, जोड़ो मेंहै तो ज्वर होता है, ११ उपद्रव बड़े भयकर है।

मरणचिन्ह

यद्यपि और भी मृत्यु चिन्ह है। किंतु हम खास चिन्हो का ही निर्देश करेंगे। सब उपद्रव हो जाये किन्तु वल और मांस क्षीण नही हो तो रोगी नहीं मरेगा, और मांस तथा बल के क्षीण होनेपर उपद्रव चाहे न भी होतो रोगी मरजायगा मांस और वल का क्षीण होना मौत का चिन्ह है।

Pulmonary Tuberculosis

इसे यक्ष्मा कहते हैं फेफड़ों का शोष कहते हैं। डाक्टरो के मत से जब फेफड़ो में छोटी २ गिल्टि-यां वा कीटाणु पैदा हो जाते हैं। तव यह रोग होता है। उन्हे Tubercle bacillus कहते हैं। ये कीड़े गोल २ होते हैं। और कभी आंखो से भी देखे जा सकते हैं।

कारण

यक्ष्मा रोग का एक कीड़ा होता है, उसी से यह रोग होता है, किंतु वह भी अपने आप पैदा नही होता, कुछ कारणो से ही होता है और कुछ कारणो से ही शरीर के अदर प्रवेश कर पाता है।

हर एक रोग के कीड़े होते हैं उसी तरह इसके भी कीड़े होते है। और वे गन्दगी आदि कारणो से पैदा होते हैं। फिर वे श्वास, भोजन, पानी आदि के रास्ते शरीर में घुसतेहैं और उसको क्षीण बनाते हैं।

यक्ष्मा के कीड़े देह में घुसकर किसी स्थान पर जमकर छोटी सी गांठ या फुन्सी पैदा करते है इसे ही यक्ष्मा का दाना Tubercle कहते हैं। सक्षेप से कीड़े इसी तरह से शरीर में घुसते हैं।

त्रिपथ

(१) श्वास के साथ फेफड़ो में पहुँचकर।

(२) क्षय पीड़ित पशुओ का मास, दूध आदि तथा कीड़े मिला भोजन खाने से।

(३) किसी घाव के द्वारा कीटाणुओ के खून में मिलने से।

अव इन पर थोड़ा २ विचार कर लेना भी आवश्यक है।

(१) श्वास पथ से

क्षय रोगी के पास बैठने से उसके श्वास द्वारा कीड़े निकलते हैं और दूसरे के श्वास द्वारा शरीर में घुस जाते हैं। इसी तरह रोगी जव कहीं थूक देता है, और वह सूख जाता है, तो कीड़े हवा के साथ मिलकर नाक के रास्ते फेफड़ों में पहुंचते हैं। रोग की खासी, बोल चाल, इनसे भी कीड़े दूसरे की देह में घुसते हैं।

(२) भोजन के द्वारा

पशु, पक्षियो, मनुष्यो सबको यह रोग होता है। फिर जव हम रोगी गाय का दूध पीते हैं तो कीड़े देह में घुस जाते हैं। रोगी मां बच्चे को दूध पिलाती है, तो बच्चा भी रोगी हो जाता है। अलावा इसके रोगी की थाली में खाना खाने, उसके गिलास में पानी पीने, उसका मुह चूसने आदि से भी कीड़े मुह के रास्ते पेटमें पहुंचतेहैं।

(३) चमड़ी के द्वारा

रोगी के थूकने के वर्तनो को साफ करने वाले के हाथ मे अगर घाव हो तो कीड़े उसकी रास्ते देह में घुस जाते हैं, घाव न भी हो तो गन्दा रहने वाले नौकर उनसे बच नही सकता। इनके अलावा और भी कारण हैं जिनसे यह रोग पैदा होता है।

(१) नशीली चीजो के अधिक सेवन करने से ज्यादा विषय करने आदि से।

(२) चेचक, खसरा, खांसी, गर्मी, टाइफा, इड आदि रोगो के होने से।

(३) छपाई, सिलाई, बुनाई, हलवाई, कारी-गरी आदि के पेशे भी ऐसे है। जिनसे कई तरह की धूल नाक और मुंह के रास्ते देह में घुसती है।

(४) दरिद्रता गन्दा वातावरण।

इन कारणो से यह रोग पैदा होकर शरीर का सर्वनाश करता है।

शुरू में फेफड़ो में छोटे २ दाने पैदा होते हैं, जो सबसे पहिले चोटी में देखे जाते हैं, यक्ष्मकीट के प्रभाव से फेफड़े के तन्तु गिरने लगते हैं, और एक तरह की वसा पैदा हो जाती है, जो बाद में

फोड़े के रूप में बदल जाती है, और उसमें पीप भर जाता है, तन्तुओं के गिरकर थूक के साथ निकलने से फेफड़े में गार पैदा हो जाते हैं, जो छोटे२ होते हैं, बाद में सौत्रिक तन्तु पैदा होते हैं।

स्पष्ट चिन्ह

तीनों अवस्थाओं में जिनका जिक्र आगे किया जायगा, खांसी का रूप बदलता रहता है कभी २ होती ही नहीं कभी सूखी होती है, और रुकती ही नहीं। सौत्रिक तन्तुओं के पैदा हो जाने पर तब खांसी आती है, किसी २ का इतने जोरो से आती है कि कै दस्त हो जाती है। थूक शुरू में नहीं निकलता, किंतु खांसी के साथ २ वह भी बढ़ने लगता हैं, २४ घंटो में १० छटांक तक थूक निकल जाता है। थूक में केवल रोगी ही को बदबू या खुशबू आती है, इसको Odr Phthisins कहते हैं। कभी २ थूक में खून भी आता है शुरू में थूक पर केवल खून की धारियाँ ही होती हैं फिर धीरे २ खून की कै तक होने लगती है, फिर खून मिला हुआ थूक गिरता है, सांस लेने में कठिनाई होती है, कभी २ साँस बहुत छोटा हो जाता है। शूल भी चलने लगते हैं। रात में ठंडा पसीना आता है। जो सर पर अधिक होता है, रोगी का वजन घटने लगता है ज्वर हरदम बना रहता हैं, हृदय छोटा पड़ने से खून का दबाव घट जाता है, जीभ साफ रहती है, किन्तु उसके किनारे लाल होते हैं, भूख में कोई अंतर नहीं पड़ता, कभी अरुचि, कब्ज, दस्त, अफारा, शूल ये भी हो जाते हैं। रोगी का जी बेचैन रहता है, वह कुछ चिड़चिड़ा हो जाता है, रोग के प्रारम्भ में विषयेच्छा रहती है किंतु बाद में घटती और नष्ट हो जाती है। पेशाब में धीरे २ परिवर्तन होता है, बाद में शर्करा आने लगती है स्त्रियो का रजोधर्म बन्द हो जाता है।

अब उन तीन दशाओ का वर्णन भी कर दिया जाता है।

(१) पहिली दशा

रोगी कमजोर नहो, और रोग अधिक पुराना न हो। अगर एक फेफड़े पर यक्ष्मकीट का असर है तो दोष चोटी से लेकर दूसरी पशुका तक पहुंच जाते हैं। अगर दोनो फेफड़े प्रभावित हो गये हैं तो दोष उप-आक्षिका वाले प्रदेश में ही घिरे रहते हैं।

(२) दूसरी बात

एक फेफड़ा दूषित हो तो दोष चौथी पशुका के नीचे नहीं उतरते, अगर दोनो दूषित हैं तो दोष दूसरी पशुका तक ही रहते हैं।

(३) तीसरी दशा

फेफड़े में गार हो जाती है, और हालत भयानक हो जाती है।

रोग की पहिचान

आयुर्वेदिक विद्वान लक्षणों से ही दिल की परीक्षा कर लेते है, किंतु पेलोपैथिक सन्देह होने पर रोग की जांच के लिये 'ट्यूबरकुलिन' का प्रयोग करते हैं, इसकी ३ विधि हैं। हम यहाँ केवल एक विधि का ही उल्लेख किये देते हैं।

१—असली Tuberculin एक मिलीग्राम का इजेक्शन दिया जाता है। फिर २-३ दिन बाद पाँच या दस मिलीग्राम का फिर इजेक्शन दिया जाता है। अगर यक्ष्मा के कीड़े अन्दर है तो थोड़ा बुखार हो जाता है।

न्यूमोनियां

Pneumonia

मस्तिष्क से विचार लेने पर यह कहा जा सकता है, कि सन्निपात की एक विशेष अवस्था को ही डाक्टर लोग न्यूमोनियां कहते हैं। निदान के अपूर्व होने के कारण उन्हे नये २ रोगो का

आश्रय लेना पड़ता है, सन्निपात के विशेष चिह्नो से इसके चिन्ह मिलते हैं। इसके होने से पहिले ही कमजोरी के साथ खाना हराम हो जाता है। रोग होते ही सर में दर्द होता है, और जाड़ा देके बुखार होता है, रोगी हाथ पैर पटकता है, ऊट पटांग बकता है और कै भी करता है। रोग के पूर्ण दशा में खांसी का बडा जोर हो जाता है, सास लेने में भी तकलीफ होती है, छाती छूते ही दर्द होता है, और मैला तथा गन्दा कफ गिरता है। कभी२ खून के कतीरे भी आ जाते हैं, वह कफ बरतन में रख देने पर सहज में छूटता नही है। फेफड़ो के खराब होने से ही इसमें छाती में दर्द होता है, और कभी २ तो फेफड़े बहुत ही खराब होकर सड़ भी जाते हैं, फेफड़े के सड़ जाने पर ललाई लिये हुये मैला पतला बलगम गिरता है, उसमें बदबू आती है और वह देखने में पीप जैसा होता है।

टेम्परेचर १०४ तक पहुँच जाता है, नाडी की चाल ६० से १२० तक पहुँच जाती है। यह रोग सर्दी लगने, बुखार में परहेज बिगड़ने, अति मैथुन करने आदि कारणो से होता है।

भेद

(१) न्यूमोनियां, (२) लव्यूलर, (३) इन्टरस्टिश्येल न्यूमनियां, (४) ग्रेंगीन आफ लग्स, और (५) कैन्सर आफ लग्स। ये पांच भेद न्यूमोनिया के होते है।

(१) न्यूमोनियां

पहिले ही से बुखार होता है, कपकपी होती और बुखार होता है भूख भग जाती है, और कमजोरी आ जाती है, फिर रोग के तशरीफ लाने पर हाथो में, पैरो में और छाती मे दर्द होने लगता है, नाड़ी तेज हो जाती है, श्वास का वेग बढ़ जाता है जीभ और ओठ नीचे की ओर झुक जाते है। छटे दिन से दसवे दिन तक बड़ी असह्य वेदना होती है, मारे खांसी और श्वास के नाकों दम हो जाता है, खांसी के साथ खून भी गिरने से बस मौत का वारन्ट आया ही समझिये। फेफड़ों में बड़ी जलन होती है, बुखार बढ़ती ही जाता है, पहिले दिन १०४ तक टेम्परेचर है, तो तीसरे ही दिन १०६ तक पहुँच जाता है, यह दशा मौत ही समझी जाती है, पेशाब के साथ खून भी आने लगता है, और धातु भी, गिरमें बड़ी ही जोर से दर्द होता है, बेचैनी रहती है, नींद आती है। कभी २ कफ आटे जैसा गाढ़ा भी आने लगता है, मिनट २ पर रोगी के मरने की सम्भावना रहती है।

(२) लव्युलर *Lobe1*

इसमें भी प्रायः न्यूमोनियां के जैसे ही चिंह होते है। केवल कम्प, खांसी श्वास का वेग आदि चिन्ह नही होते है। नाड़ी की चाल तेज ही रहती है, कभी तो बहुत ही तेज हो जाती है, टेम्परेचर १०५ से आगे नही बढ़ता।

(३) इन्टर स्टियेल निमोनियां

इसे पुराना न्यूमोनिया भी कहते है, निमोनियां जब कुछ दिन पुराना हो जाता है, तो हालत सुधरने की अपेक्षा कुछ बिगड़ ही और जाती है, श्वास, खासी बढ़ जाती है, कफ निकलता है, बड़ी दिक्कतो से और उसमें बड़ी बुरी बदबू आती है।

(४) ग्रेगीन आफ लग्स

Gangı ene of the longs

जब निमोनियां पुराना हो जाता है, तो जहरीले कीड़ो के कारण बिगड़े हुये खून से फेफड़ों की दशा बहुत ही भीषण हो जाती है, रोगी मारे दर्द के चिल्लाता है, छटपटाता है, थूक और मांस में बदबू आने लगती है, फेफड़ो का कुछ हिस्सा निकम्मा होकर सड़ जाता है, यानी नष्टहो जाताहै,

(५) केन्सर आफ लंग्स

इस दशा के होने तक प्रायः बहुत ही कम रोगी जीते है, इसके पहिले ही खतम हो जाते है, यह छूतदार रोग भी माना जाता है, इसमें श्वास, खांसी खूब होते हैं। तीर से छिदने जैसी वेदना फेफड़ो में होती है। दवाने से तकलीफ बढ़ती है, फेफड़े का नासूर कितना भयानक होता होगा यह एक साधारण नासूर की कल्पना करने से ही समझा जा सकता है, फेफड़ो से कभी२ खून भी आने लगता है बुखार तो रहता ही है, रोगी दिन ब दिन कमजोर होता जाता है, और रात में पसीने आते हैं। क्षय के उरः क्षत से इसकी तुलना की जाती है, किन्तु अभी कोई निर्णय नही हुआ है।

फेफड़े का फैल जाना

Hypertrepic Emphysemea

खांसी, दमा, आदि रोग और भंग, अफीम आदि नशीली चीजो का सेवन, धूल, धूआ का नाक में घुसना, आदि कारणो से यह रोग होता है। खांसी, दमा आदि रोगो में फेफड़े को अधिक काम करना पड़ता है, और नशीली चीजोका तेज असर भीतर जाकर फेफड़ो को बुरी तरह प्रभावित करता है, जिससे वे फैल जाते हैं। उनमें कमजोरी भी जाती है। सांस लेने में कठिनाई होती है वायु अंदर जाकर रुक जाती है, या फैल जाती है, इसलिये कि फेफड़े चौड़े हो जाते है। ठडक होने पर खांसी और श्वास भी हो जाता है. छाती चौड़ी हो जाती है, किन्तु सांस लेने का उस पर कोई असर नही पड़ता। धीरे२ रोगी कमजोर होने लगता है, रक्त की ठीक शुद्धी न होने के कारण हृदय और यकृत भी स्वस्थ नहीं रह पाते।

फेफड़ों का संकुचित होना

एकदम आलसी बन कर पड़े रहने, ऊटपटांग खाने, नशीली चीजो का सेवन करने, आदि से फेफड़े अपनी नियमित सीमा में न रह कर सिकुड़ जाते है। जिससे वायु मन्दिर की दीवारें पतली होकर जब्ब हो जाती है, जिससे श्वास प्रश्वास क्रिया में अन्तर पड़ जाताहै, व्यभिचारी, विलापी भी इसके विशेष शिकार होते है। सांस कम आता है, और छोटा आता है, छाती सिकुड़ जाती है, जरा सी भी मिहनत करने पर दम भरता है और गला सूखने लगता है।

फेफड़े की सूजन

कारण और विवरण

(क) दिमाग से जब गर्म या ठडा नजला उतर कर फेफड़े पर आता है तो सूजन होती है।

(ख) गले की सूजन हटकर फेफड़े पर गिरती है, जिससे सूजन होती है।

(ग) पसली की सूजन फेफड़े की सूजन में बदल जाती है।

(घ) फेफड़े में ही मवाद पैदा होकर सूजन हो जाती है।

(ङ) अक्सर यह सूजन खून और कफ के मवाद से होती है।

अगर कभी पित्त से सूजन होती है तो वह ७ दिन में ही खातमा कर देती है। कभी २ फेफड़े का मवाद पर्दे और झिल्लियो में गिरकर पसली में भी सूजन कर देता है-पित्त की तरफ झुककर पागलपन और वेहोशी पैदा कर देता है, दिमाग की तरफ चढ़कर सरसाम पैदा कर देता है। इसी तरह जिधर मवाद झुकेगा उधर ही मामला बिगड़ता चला जायगा।

३ भेद

१—पहिला भेद

गर्म मवाद के कारण-जब कि वह सड जाता है सूजन पैदा हो जाती है। इसमें ज्वर हरदम

रहता है और जोरो से रहता है। श्वास में विशेष तगी होती है, छाती के अगले हिस्से में भारीपन और दर्द होता है, आंखो और मुह पर लाली छा जाती है। तथा दोनो ही भुरभुरा जाते है। प्यास खूब लगती है, नाड़ी लहरे मारती है और कभी २ जीभ में चेपदार गाढ़ी तरी चिपट जाती है, खांसी बहुत चलती है और ठडी हवा की इच्छा होती है।

फेफड़े के मुह में सूजन और घाव होने पर पीठ में टीस, और हलका दर्द, ज्वर की कमी, देह में खुजली, आवाज की तेजी ये चिन्ह होते हैं। सूजन के घायल होने पर, मुहकी स्वाभाविक गन्ध हटकर मछली की सी गन्ध आती है और खांसी में थोड़ी रतूवत निकलती है, जब कभी फेफड़े में फुन्सियां हो जाती हैं, तो श्वास मिचकर जल्दी २ और लगातार आता है, छाती में भारीपन मालूम होता है, सीने के भीतर जलन और बड़ी गर्मी मालूम होती है, जब फेफड़े की सूजन का मवाद पचकर निकलता है, तो खांसी में, पकी हुई तरी बिना कष्ट के निकलती है और रोगी की दशा सुधरते २ बिलकुल ठीक हो जाती है।

मवाद अगर पीप के रूप में बदल जाता है, तो, चिन्ह बढ़ जाते हैं, फेफड़े के लटकने की जगह में दर्द और खिचाव होता है।

सूजन जब सिल की तरफ पलट जाती है तो मुह को चमक जाती रहती है, अगुलियो के पोरवे गर्म रहते हैं, तथा और सब सिल के चिन्ह हो जाते हैं, यही सूजन जब पसली की तरफ झुक जाती है तो सांस रुक२ कर और कम आता है।

इस सूजन में स्तनोंके आस पास फोडे निकल जाते हैं तो रोगी के बचने के आशा होने लगतीहै पिंडली पर फोडा होना भी उसकी जिन्दगी के दिनो की सूचना दे देता है।

२-दूसरा भेद

इसमें सूजन का मवाद बिना सड़ा हुआ कफ होता है, लुआब की अधिकता, श्वासी की विशेष तगी, छाती की गर्मी का कम होना, मुंहु का भरभराया रहना, ज्वर और भारीपन होना, ये चिन्ह होते हैं। कभी२ फेफडे मे पानी की सी तरी इकट्ठी होजाती है और रोगी की दशा जलन्धर रोग वाले की जैसी होकर हल्का सा बुखार बना रहता है।

३-तीसरे भेद के

२-भेद

१--शुरू में नर्म सूजन हो, किन्तु बाद में नर्म मवाद नष्ट होकर, बचा हुआ मवाद कड़ा होकर पथरा जाता है। यह कड़ी सूजन होती है, इसमे श्वास बहुत तगी के साथ आता है, गर्मी कम हो जाती है और सूखी खासी बार बार आती है।

२--ठडे मवाद या गाढ़े कफ के कारण यह सूजन होती है। पुरानी होने पर इसमे भी सांस की तगी होने लगती है, सूखी खांसी चलती है, थूक निकलता नही, हवा का खीचना कठिन होजाता है।

सिल

(फेफड़े में पीप पड़ना)

यह बडा पाजी रोग है, जिनके दिमाग से चेपदार रतूबते फफड़े पर गिरती हैं, वे ही इसके शिकार होते हैं। यह श्वास को तग करता है और जोरदार खांसी पैदा करता है, इस रोग के नाम में भी मतभेद है, 'कामिलुरसनाआ' का बनाने वाला इसे फेफड़े वा छाती का घाव बतलाता है, और हकीम कुरसी इसे मिश्रित रोगो में मानता है सिल से मतलब उस घाव सेहै जो फेफड़े में पड़ता है, किन्तु लिखा है फेफड़े मे पीब पड़ना।

जो भी हो, घाव होकर भी बादमें उसमें पीव पड़ जाती है, जो बड़ी दुःखदायक है।

इस रोग के ४ कारण हैं—

४ कारण

(क) तेज नजला सिर से फेफड़े पर गिरे और मवाद के पकने के पहिले ही उसकी तेजी फ़ेफडे को जलाकर पागल कर देती है।

(ख) फेफड़े की सूजन में पीव पड़ जाय और वह घायल हो जाय।

(ग) पसली की सूजन, सीने की सूजन या पीठ के पास वाली झिल्ली की सूजन पक जाय और उसमें पीव पड जाय, फिर खान्सी के साथ फेफड़े के ऊपर आकर उसे जलाकर घायल करदे।

(घ) विशेष खांसी, कै, चोट लगने आदि कारणों से किसी रग का मुंह खुल जाय या कोई रग टूट जाय। फिर गले से खून आने लगे और फेफड़े में घाव पड जाय, अक्सर तेज नजले के कारण ही फेफड़े में घाव पड़ता है, और वह दुर्बल होता है।

इसके चिन्ह हैं—

(क) नर्म ज्वर हरदम बना रहता है, और तपेदिक के चिन्ह रहते हैं। गाल लाल रहते हैं, विशेष ज्वर की अधिकता में। खांसी में पीव गिरता है, कभी पसीना भी आजाता है।

(ख) आखिरी दशा में नख ठंडे हो जाते है, पांव की पीठ सूज जाती है, फेफड़े के मुंह के टुकड़े रगो के तार और टुकड़े पीव में आने लगते हैं और निकलने वाला दोष गाढा होकर बन्द हो जाता है। यह भयानक दशा है और धोखा भी देती है ४ दिन से अधिक रोगी नही जी सकता है।

(ग) घाव के अन्त में खांसी के साथ साफ खून आता है, फिर अगर उसे रोकते हैं तो वैसे रोगी को मारता है, वरन् वैसे जब रोगीके जबड़ो पर बाजड़े के दाने जैसी चीज पैदा हो जाती है। तो ५२ दिन में मर जाता है। अंगूठे पर हरापन होने और माथे पर लाल फुन्सियाँ होने पर उसमें से चिकना पीला पानी निकलने पर रोगी चौथे दिन मर जाता है।

रक्त निष्ठीवन

Haemoptysis

रक्तनिष्ठीवन को हिकमत में नफस्सुदम कहते हैं। नफस्सुदम के मानी है मुंह से खून आना। इसके ७ भेद हैं।

इस प्रकार के ७ भेद हैं

१—पहिला भेद

मसूडो और दांतो की जड़ो में से उनकी खराबी में से जो खून निकलता है, वह पहिला भेद है। खराबी का वर्णन पहिले आ चुका है।

२—दूसरा भेद

जब गले में जोंक चिपट जाती है तो थूक में खून आता है, जोक चिपटने का वर्णन गले के रोगो में हो चुका है।

३—तीसरा भेद

सिर में से खून उतर कर तालु और कव्वे से निकलता है। यह खून खकार के साथ निकलता है मुंह लाल होना, आंखो के आगे चमक होना, आदि चिन्ह होते हैं।

४—चौथा भेद

फेफड़े के सिर तथा मुंह में घाव होने से भी खून आता है, कड़ी खांसी, अधिक वमन, चोट लगने आदि कारणों से घाव होता है, और फिर खून अगर नर्खरे से आता है तो साफ होता है, और फेफड़े के मुंह से आता है, तो खांसी तथा खकार के साथ थोडा झागदार और दर्द के साथ नकलता है।

५—पांचवां भेद

फेफड़े में से ही खून आता है, और इसके ५ कारण है।

(क) चोट और धमाका लगना।

(ख) जोर से चीखने से फेफड़े की रगें कट जांय।

(ग) तेज या नमकीन या खारी, पित्तज दोष फ़ेफड़े पर गिरकर उसकी रगो को खा जाय।

(घ) फेफड़े की पोल में मवाद भर जाने से उसकी विशेष रगो को मुंह सूख जाय, या उनमें अधिक मवाद भरने से फट जाय।

(ङ) सिकोड़ने वाली ठंडी दुष्ट प्रकृति फेफड़े में पैदा हो और उसके भागो को सिकोड दे जिससे उसकी कोई रग फट जाय।

फेफड़े से जो खून आता है वह विना खांसी के नहीं आता, झागदार होता है, और निर्मल होता है फेफड़े के मांस में से जो खून आता है, वह थोड़ा लाल और पतला होता है इसी तरह रगो के मांस के जलने से आने वाला खून भी लाली लिये हुये आता है, रगो के कटने पर विशेष लाल खून आता है, और उसमें झाग थोड़े होते हैं, खून की तेजी से फेफड़े के घायल होने पर पीला पानी, पीव, छिलके और खाल मिला हुआ खून निकलता है। रक्तज सूजन में खून कठोरता के साथ निकलता है।

६—छटां भेद

सीने की रगे अगर बाहिरी तथा भीतरी कारणो से फट जाती है तो छाती से खून आता है इसमें खून जमा रहता है, जो कडी खासी चलने पर थोडा २ निकलता है, घाव की जगह दर्द होता है, तथा चित लेटने पर खांसी और दर्द दोनो बढ जाते है।

७—सातवां भेद

कठनली, आमाशय, जिगर या तिल्ली से खून आता है, इसमें उल्टी से भी खून निकलता है, खांसी नही होती। सबका वर्णन अलग २ देखना चाहिये।

थूक में पीव आना

इसके ५ भेद हैं

१—पहिला भेद

फेफड़े या पसली की सूजन के पककर फूटने पर थूक में पीव निकलता है।

२—दूसरा भेद

फेफड़े में घाव होने पर खांसी के साथ पीव निकलता है।

३—तीसरा भेद

आमाशय में फोडा हो जाय और वह फूट जाय, फिर उल्टी के साथ पीव निकलता है।

४—चौथा भेद

नखरे में या गले में या मुंह के दूसरे भागों में सूजन हो, और वह पीव पड़कर फूट जाय फिर थूकने या खकारने पर पीव निकलता है।

५—पांचवां भेद

छाती की सूजन फूट जाने पर-जोर की खांसी के साथ गाडी पीव निकलती है।

छाती में पीव रुकना

छाती, पसली या फेफड़े की सूजन फूट जाती है और फेफडे तथा छाती की बीच वाली जगह में उसकी पीव इकट्ठी हो जाती है, फिर अपने गाढ़ेपन के कारण वही रुक जाती है, फेफड़े में नही गिरती जिससे कि खकार में निकल जाय या मल मूत्र में निकल जाय।

यह पीव कभी छाती और फेफड़े के मध्य की दोनो तरफ होती है, कभी एक तरफ, इसके चिन्ह हैं, बडी सूजन की जगह दर्द और बोझ मालूम होता है, दर्द होता है सूखी खांसी, श्वास की तंगी तपेदिक हो जाता है, रोगी की दशा सिल वाले की जैसी हो जाती है।

दर्द, जलन और खिचावट से पीव की जगह पाई जाती है, अलसी का टुकड़ा भिगोकर छाती पर रख देना चाहिये, फिर जिधर से जल्दी सूखे उधर ही घाव समझना चाहिये। रोगी को एक करवट लिटाकर फिर दूसरी करवट लिटाने पर जिधर भारीपन और खिचाव हो वही पीव की जगह है। कभी २ पीव पतली होकर फेफडे पर टपकने लगती है, किन्तु थूक में सहज ही नहीं निकलती, न वह मल मूत्र में निकलती है और न चिन्हों में ही कुछ कमी आती है उस समय दो बातें होती हैं।

(क) गले में सूजन होकर श्वास रुककर रोगी मर जाता है।

(ख) फेफड़े में सूजन हो और उसका अंग सड़कर गल जाता है, इसमें सूजन फूटकर ४० दिन तक भी पीव साफ नही होती।

पसली की सूजन

यहां उन सूजनोका वर्णन होगा, जो पसलियो की झिल्लियो में, उसके बीच में, जोड़ोमें और छाती के पर्दों में होती है, पसलियों की सूजन दो तरह की होती है।

२ भेद

(१) स्वाभाविक।

(२) अस्वाभाविक।

पहिली स्वाभाविक में सूजन होती है, किन्तु दूसरी में कष्ट कारक बादी पसलियों में आकर दोनो पर्दों के बीच में बन्द हो जाती है, और सूजन जैसा दर्द करती है।

प्राकृतिक सूजन

पसलियो के भीतर की झिल्ली में सूजन होती है, या उस पर्दे में होती है, जो भोजन पहुंचाने के सायोगिक अग और श्वास लेने के संयोगिक अंग के बीच में अन्तर करता है, सूजन दोनो तरफ हो जाती है, और बांयी तरफ भी और सब जगह भी हो जाती है।

इसमें हरदम ज्वर रहता है, श्वास में तंगी रहती है नाड़ी खूब और विषम चलती है, पसलियो के नीचे चुभन के साथ दर्द होता है, प्राकृतिक सूजन भी चार भागों में विभाजित है।

४ भेद

१—रक्तज सूजन

जब मवाद खून होता है और उससे सूजन होती है तो खिचावट होती है, पसलियों के नीचे बोझ मालूम होता है, नाड़ी बड़ी और जल्द २ चलती है, सांस में बहुत तगी रहती है, थूक में लाली रहती है।

२—पित्तज सूजन

चुभन, दर्द की अधिकता, हरदम तेज ज्वर और तीसरे दिन ज्वर का विशेष होना, जलन होना, नाडी का जल्दी २ और लगातार चलना, थूक में पीलापन ये चिन्ह होते हैं—

३—वातज सूजन

पहिले बादी जलती है और सड़ती है, फिर पसली के भीतर की झिल्लियो में और भोजन तथा श्वास के मार्ग के पर्दों में सूजन करती है। इसमें चुभन, खिंचावट की अधिकता, ज्वर अधिक, मुंह सूखा, जीभ का काली सूखी और खुरखुरी होना, थूक में देर से मवाद आना और उसका कठिनता से निकलना मवाद का रंग काला होना, ये चिन्ह होते हैं। मवाद पकने में अगर देर होजाती है तो रोगी मरजाता हैं।

(४) कफज सूजन

जब कफ सड़ जाता है, और उसमें तेजी आ जाती है तो सूजन पैदा करता है। इसमें बोझ के साथ २ दर्द, हलका ज्वर, थोड़ी चुभन, थूक का सफेद होना, ये चिन्ह होते हैं। शुरू में थूक में लाली इस लिये रहती है कि कफ के साथ कुछ खून भी मिला रहता है।

अप्राकृतिक सूजन

इस सूजन को मुगालत भी कहते हैं।

पसलियो केबीचवाले अजलोंमें सूजनहोती है, या पसलियो को ऊपर से ढकने वाली झिल्ली में सूजन होती है अजले की सूजन के ये चिन्ह हैं।

चुभन, नाड़ी का शीघ्र और लगातार चलना, श्वास का रोग होना, थूक में मवाद का आना कभी २ सूजन बढ़कर दिखलाई भी पड़ती है। उसे छूने से कष्ट होता है, और वह बाहर की तरफ फूट भी जाती है। उसमें अगर कालापन दिखलाई देता है तो समझना चाहिये कि मवाद बहुत निकम्मा है और यह बुरा चिन्ह है।

झिल्ली की सूजन

में भी प्रायः यही चिन्ह होते हैं। हा, चुभन और नाडी का शीघ्र और लगातार चलना ये दो चिन्ह इसमें उससे बढ़ जाते हैं, श्वास की तेजी इसमें कतई नही होती, बहुत कम होती है।

खाड़की

यह भी एक सूजन है जो पसली के भीतर की झिल्ली में होती है। इसमे भीतर की झिल्ली सब की सब सूज जाती है, श्वास में बडी कठिनाई होती है, झिल्ली फैलने से रुक जाती है, और हवा को नहीं खेंचती जिससे जल्दी ही मौत आजाती है। इसमें रोगी किसी हालत में भी लेट नही सकता और खांसी चलनेपर मारे दर्द के बेहोश होजाता है।

शूशा

पसलियो के भीतर वाले पर्दे में जो सूजन होती है, उसे शूशा कहते हैं। इसमें रोगी कोई भी गति नहीं कर सकता, निश्चेष्ट बैठ जाता है, लेट भी नहीं सकता।

जातुस्सदर

छाती में एक पर्दा है जो छाती के बीच की हड्डियो के बराबर और सामने से निकलता है, इस पर्दे का दूसरा किनारा गजरूप हजरी है। इसके दो भाग हैं, जिनमें एक तो पिछली तरफ और दूसरा छाती की तरफहै, यह दोनों हसली तक जाते है, और वहां जाकर आपस में मिल जाते हैं।

छातीपर जो भाग है अगर उसमें सूजन होती तो उसे जातुस्सदर कहते हैं।

हसलियों के मिलने की जगह से आमाशयके मुंह तक विशेष दर्द होना है सीने के बल लेटना पांवो की तरफ देखना, और सिर उठाना असभंव होता है।

जातुल अर्ज

पीठ की तरफ जो पर्दा है, उसमें होने वाली सूजन को जातुल अर्ज कहते हैं। इसमें दोनो कधो के बीच दर्द होता है, चित्त नही लेटा जाता, दायें बायें मुडना मुश्किल हो जाता है, खांसी आने पर दर्द बढ़ जाता है, ऐसे ही और चिन्ह होते है।

सरसाम

सरसाम के मानी है, सीने की सूजन। आमाशय और जिगर के बीच में अड़ने वाला पर्दा सूज जाता है इसके चिन्ह २ भागो में बतलाये हैं।

(१) बुद्धि जाती रहती है, खांसी बहुत आती है, थूक में मवाद नहीं आता।

(२) ज्वर खूब आता है, पसलियो के सिरे गर्म रहते है, दांयी तरफ चुभन के साथ २ दर्द होता है उबकाई आने पर मारे दर्द के बेहोशी हो जाती है, प्यास बहुत लगती है, घबराहट कभी बढ़ जाती है, कभी कम हो जाती है।

जुमुदुमद्दर

सर्दी लगने, ठडी चीजें खाने आदि से छाती के अजले और फेफड़े के पर्दे ठडे होकर सिकुड़ जाते है, और उनमें खिंचावट होने लगती है, जिससे छाती में खुलना और सिमिटना ठीक नहीं होता, सीधे सोने से सांस आता है, वर्ना कठि-

नाई होती, है। छाती में भी सर्दी मालूम देती है, अफीम से भी कभी २ यह रोग पैदा हो जाता है, इसलिये कि अफीम सर्दी और खुश्की के कारण असली गर्मी को जमा देती हैं, और रतूबत में गाढ़ापन, जमाव, और खुश्की पैदा करता है, जिससे खाने वाले को हाथ पांव की सर्दी गले की तगी आदि चिन्ह होते हैं। सीसे का धुआं भी, जो उसके गलाने के समय उठता है, दिल को ठडा करके गर्मी को दवाता है, और तरियों को तंग करके श्वास वाही अगो को सिकोड़ देता है। इससे कभी गले पर सूजन भी हो जाती है, और सांस में तंगी भी हो जाती है।

यकृत रोग

Diseaseof the Liver

जिगर की बीमारियां

यकृत को हिकमती भाषा में जिगर कहते है। और डाक्टरी में इसे लीवर Liver कहते है, साधारण जनता जिगर के नाम से ही परिचित है, यकृत से तो शिक्षित आदमी ही परिचित हैं. कलकत्ते के मोटे २ सेठ वैद्यो और डाक्टरो के पास इसकी शिकायत करते हुये कहा करते है, कि 'म्हारो तो लीवर विगड़ गया अब खून कठ्यासैं आवै'। यकृत को यहां हम जिगर के नाम से ही सम्बोधित करेंगे, यह बात भी पाठक पाठकाओ को स्मरण रखनी-चाहिये।

जिगर का इतिहास भी थोडे शब्दों में हम यहां बतला देते हैं इससे कुछ सुविधा हो सकेगी।

यकृत् क्या है ?

What is liver ?

यकृत का स्थान आमाशय Stomach के ऊपर दाहिनी तरफ छटी सातवी पसली के मुकाबिल है। सीधे वैठने, या खड़े होने पर यकृत का कुछ हिस्सा पसलियो के नीचे भी आ जाता है, पर सोने के समय अनुमानतः एक इञ्च ऊपर ही होता है। लम्बाई में यकृत बांये सिरे से दायें सिरे तक १०-१२ इञ्च होता है, और चौड़ाई में पिछले किनारे से अगले किनारे तक ६-७ इञ्च होता है, इसकी मोटाई करीबन ३-४ इञ्च के होती है इसका वजन ५०औंस से ६० औंस तक पाया जाता है।

शरीर के ३६ वें हिस्से के बराबर यकृत होता है, ऐसा वैज्ञानिको का विश्वास है। इसमें पित्त पैदा होता है, जो छोटी २ नलियो द्वारा बड़ी नलियो में आता है और फिर एक बड़ी नली द्वारा पित्ताशय में जमा हो जाता है। २४ घन्टे में २० छटांक पित्त बनता है, इसमें खराबी पैदा होने से कई रोग होते हैं, जिनमें एक पीलिया भी है।

यह ठोस होता है, और इसका रग सुर्खी माइल भूरा होता है इसका ऊपरी भाग चिकना और चिपचिपा होताहै. इसको ढकने वाली झिल्ली 'प्रोटोनियम' है। यकृत के अन्दर चीनी के कण टूट कर, एक प्रकार के द्रव्य के रूप में जमा रहते है। और देह में चीनी की जरूरत होने पर पुनः चीनी के रूप में परिवर्तित होकर शरीर की जरूरत को पूरी करते है।

यकृत में होने वाले रोग बहुत है, और उनके अलग २ अपने कारण भी है, किन्तु सामान्य रूप से हम यहा कुछ कारणो का उल्लेख कर देते है—

यकृत रोग के कारण

विदाही और अभिष्यन्दी पदार्थ जब अधिक खाये जाते हैं, तो खून और कफ विगड़ जाते है, बस प्रधान कारण यही है। मलेरिया बुखार, कुनैन और पारे आदि का अपव्यवहार अन्धा धुन्ध शराब पीना, गन्दी जगह में रहना आदि कारणो से यकृत में खराबी आती है, फिर बीसो रोग पैदा होते हैं।

यकृत की सूजन

इसके ५ भेद हैं

आयुर्वेद में इसके ४ भेद है और हिकमत में ५। अन्तिम मत ही हमें अभीष्ट है।

१—रक्तज

ग्लानि, भ्रम, दाह, वर्ण की विपरीतता, शरीर में भारीपन, मोह रक्तोदर ये चिन्ह होते है।

२—पित्तज

ज्वर, कास, दाह, मोह, घबराहट, जीभ पर छोटी २ फुन्सियां ये चिंह होते हैं।

३—कफज

मोटापन, भारीपन, और कड़ापन होता है, दर्द कम होता है, अरुचि भी रहती है।

४—वातज

हरदम कोठा जकड़ा हुआ रहता है, अफरा बना रहता है, देह दुबली पड़ जाती है।

५—आघातज

चोट लगने आदि से भी यकृत में सूजन आ जाती है तथा दर्द, बेचैनी आदि होते है।

जिगर की प्रकृति का बिगड़ना

इसके ४ भेद हैं

१—पहिला भेद

यह गर्म भेद है। इसमें प्यास की अधिकता मुंह का कडवा रहना, जीभ की खुश्की, भूख का कम होना, कब्ज रहना, नाड़ी की तेजी, पेशाव का लाल होना, बुखार होना आदि चिन्ह होते हैं।

२-दूसरा भेद

इसमें सर्दी की महरबानी होतीहै। इसमें मुंह के रंग में फर्क पड़ जाता है, वह भड़भड़ा जाता है। प्यास की कमी, जीभ, होठ और पेशाब की सफेदी, नाड़ी में मन्दता ये चिन्ह होते हैं। साथ में अगर कफ का विकार भी रहता है। तो पेशाव गाढ़ा और बहुत सफेद होताहै, ठंडा होता है। कै में कफ आता है, कभी दस्त भी लग जाते हैं।

३-तीसरा भेद

जिगर में खुश्की होना तीसरा भेद है। मुंह और जीभ का सूखापन, श्याम, नाड़ी की तेजी, खून की कमी, कब्ज ये चिन्ह होते हैं। साथ ही बादी का विकार भी होता है तो, डर, रंज और बुरे २ विचार भी होते हैं।

४-चौथा भेद

तरी के कारण जिगर दूषित हो जाता है। मुंह और पलकों का भड़भड़ा जाना, मांस का ढीला होना, नींद आना, लार बहना, आलस, पेशाब की सफेदी, बदहजमी, जीभ में तरी और नमी ये चिह होते हैं।

जिगर की निर्बलता

ग्रहण, निरोध, पाचन और निःसारक, ये चार शक्तियां हैं, इन शक्तियों में से किसी एक में दो मे या सब में कोई उपद्रव होता है तो कलेजा कमजोर हो जाता है।

इसके ३ कारण हैं—

(क) मिजाज का विकार, चाहे वह दोष युक्त हो चाहे दोष रहित, कलेजे में आकर उसकी शक्तियों को नष्ट या कमजोर कर देता है।

(ख) समीपस्थ, तिल्ली, फेफड़े आदि अवयवों मे विकार होने से जिगर का पोषण नहीं होता, जिससे कमजोरी आ जाती है!

(ग) द्वंद्वज और मिश्रित रोगों में तथा कलेजे में गांठ होने, उसके फूलने आदि से भी निर्बलता आ जाती है।

कारण के अनुसार ही शक्तियों पर प्रभाव गिरता है। अक्सर ग्रहण और पाचन शक्ति सर्दी और तरी से कमजोर होतीहै, तथा निरोधक और निस्सारक शक्ति खुश्की से निर्बल होती है, प्रत्येक शक्ति के निर्बल होने पर अलग २ लक्षण होते हैं।

ग्रहण शक्ति की निर्बलता में

पाखाना सफेद नर्म और अधिक होता है, देह निर्बल हो जाती है।

पाचन शक्ति की निर्बलता में—

देह ढीली पड़ जाती है. मुंह भड़भड़ा जाता है, वर्ण बदल जाताहै, पेशाव सफेद और पाखाना मांसके धोवन जैसा होताहै, खून पतला होजाता है।

निरोध शक्ति की निर्बलता में—

रस पूरी तौर से पचने तक नही ठहरता तथा पाचन शक्ति की निर्बलता के भी कुछ चिन्ह इसमें होते हैं।

निःस्सारक शक्ति की निर्बलता में—

मल मूत्र का रंग बिगड़ जाता है और दोनो थोड़े २ निकलते हैं। देह ढीली पड़ जाती है, रंग पीला, काला, सफेद सब तरह का मालूम होता है। कब्ज रहती है, खून जल जैसा हो जाता है, भूख ठीक नहीं लगती। कभी २ जलन्धर, पीलिया गुल्म ये रोग भी हो जाते हैं, सूखी खुजली, दाद आदि भी हो जाते हैं।

निर्बलता के साधारण चिन्ह

जिगर की कमजोरी में चाहे वह किसी कारण से क्यो न हो ये चिन्ह होते है—

मल कम निकलता है और मांस के धोवन जैसा होता है, भूख कम लगती है, कमजोरी आ जाती है, कभी २ भूख बिलकुल ही जाती रहती है। दांयी तरफ थोड़ा हलका दर्द होता है। खास-कर खाते समय में। शरीर, पीला, काला या सफेद पड़ जाता है।

कलेजे में गांठ पड़ना

इसके ३ कारण हैं—

(क) कलेजे की रगें जन्म से ही बारीक और तंग होती है, जो जरा से कारण से ही बन्द हो जाती हैं।

(ख) लसदार गाढ़ा दोष पैदा होकर गांठ पैदा कर देता है।

(ग) कलेजे में सूजन होने से भी गांठ पड़ जाती है।

नोट—मिट्टी, कोयला आदि खाना, खाने के पीछे नहाना, दौड़ना आदि भी गांठ पैदा करते हैं। इसके चिन्ह ये हैं—

(क) कलेजे में भारीपन होता है, खासकर तब जब कि गांठ ऊपर के हिस्से में होती है।

(ख) बाद में बुखार हो जाता है, उसमें पीड़ा नही होती, दस्त मांस धोवन जैसे होते हैं।

(ग) दस्त खूब होता है और आंव मिला होता है। गांठ जब नीचे होती है, तब ऐसा होता है।

(घ) पेशाव पतला और कम उस हालत मे होता है जब कि गांठ ऊपर के भाग में होती है।

(ङ) खून कम होने पर रंग पीला पड़ जाता है, सांस में रुकावट होने लगती है

मासारीका की गांठ

आमाशय पर और कलेजे की गहराई में दर्द और बोझ मालूम होता है। पाखाना कैलूस जैसा होता है, देह निर्बल होजाती है।

कलेजे का फूल जाना

जिगर के भागों में या उसकी झिल्लियो में अथवा दोनो ही में निकम्मे भोजनकी भाफ इकट्ठी हो जाती है। फिर अधिकता के कारण या बन्द हो जाने के कारण वह रुक जाती है, फिर हवा पैदा होकर फुलाव करती है। इसमें दांयी तरफ कुछ नीचे बोझ दार दर्द मालूम होता है, देह में फर्क पड़ जाता है, खाना हजम होने के बाद फुलाव अधिक हो जाता है। हाथ रखकर दबाने सेगुड़गुड़ाहट होतीहै, और वह इस बात को बत-लाता है कि कलेजे में हवा भर गई है। झिल्ली में हवा भरने पर बोझ अधिक मालूम होता है।

कलेजे का दर्द

इसके कई कारण हैं—

(क) प्रकृति का बिगड़ना । (ख) गांठ पड़ना । (ग) फुनावइ । (घ) सूजन । (ङ) फट जाना । (च) कलेजे मे पथरी या रेत पड़ना सबका वर्णन अलग २ किया गया है ।

कलेजे में दर्द उस समय होता है । (यह स्वाभाविक कारणहै) जब कि मेहनत के बाद, चलने फिरने के बाद, नहाने के बाद ठडापानी पी लिया जाता है तो वह कलेजे में पहुँचकर दर्द करता है ।

कलेजे की फुंसियाँ

यह फुन्सियां कलेजे के ऊपर की ओर होतीहै इनके साथ २ जलन भी होती है, तथा गर्मी से होनेवाले और भी चिन्ह होते हैं, कभी २ कपकपी होने लगती है ।

कलेजे की धड़कन

अक्सर यह रोग कमजोर और पुराने रोग वाले आदमियो को होता है, कलेजे में गाठ पड़ने से वह फडकता हुआ प्रतीत होता है, किनु थोड़ी देर बाद में भाप सर की तरफ चढ़ती हुई मालूम होती है, कभी२ भारीपन का कष्ट होता है, और लालाट पर पसीना आता है ।

कलेजे में पथरी पडना

खाक जैसी कणदार रेत कलेजे में पड जातीहै फिर वही गाढ़ी होकर पथरी बन जाती है, भोजन के पकने पर जब रस कलेजे की तरफ जाता है, तो के होने लगती है । चक्कर और वेदना आने लगती है ।

कलेजे का सिकुड़ जाना

किसी २ का कलेजा छोटा होता है, फिर जब वह अधिक खा लेता है, तो उसका रस उसमें (कलेजे में) नही समाता है, जिससे गाठ सी मालूम होती है, दर्द होता है, बोझ मालूम होताहै शक्ति घटने लगती है, हाजमा भी ठीक नहीं रहता और कभी २ विना पका अन्न ही दस्त के रूप में निकल आता है ।

भारीपन, वायुगोला, गांठ, फुलावा, निर्बलता, अगुलियो का छोटा होना, रोगी का पतला होना ये इसके चिन्ह हैं ।

कलेजे के दस्त

इसके मानी है कलेजे की तरफ से होने वाले दस्त, कलेजे की गड़बड़ी से जो ६ तरह के दस्त होते है, यहां उनसे मतलब है, इन दस्तो का वर्णन केवल हिकमत में ही है अन्यत्र नही ।

इसके ६ भेद

(१) पीप के से रग के ।
(२) मास के धोवन के जैसे ।
(३) खून मिले हुये ।
(४) पित्त मिले हुये ।
(५) सदीदी (घाव के पानी जैसे)
(६) खासिरा ।

१—पहिला भेद

जिगर का व्रण फूटने पर दस्तो में पीव आने लगता है आमाशय वगैरह की इसमें खराबी नहीं होती है ।

२—दूसरा भेद

कलेजे की कमजोरी के कारण मांस के धोवन जैसे दस्त आते है ।

३—तीसरा भेद

इसे 'जूसन्तारिया कबदी' कहते है । इसके ३ कारण हैं—

(१) स्वाभाविक खून का बन्द होना, (नकसीर रजोधर्म आदि का) जिससे कलेजे में खून भर कर कष्ट देता है और आंतो की तरफ चला आता है ।

(२) हाथ पांव वगैरह के भर जाने पर जो खून उनकी पुष्टि के लिये जाता है, वह कलेजे की

तरफ आकर आंतों के पास चला जाता है जिससे दस्तों में खून आने लगता है।

(३) कोई घाव वगैरह हो जाय।

ये दस्त खून मिले होते हैं, जल्दी २ होते हैं, तथा उन कारणों का भी उपद्रव होता है।

४—चौथा भेद

पित्त की अधिकता और निस्सारक शक्ति की कमजोरी, इनका कारण है। दस्तो में पित्त मिला रहता है, कलेजे में गर्मी और जलन होती है, प्राय ये दस्त खाली पेट होते हैं।

५—पांचवां भेद

कलेजे में जब खून चला जाता है तो दूसरे दोष जलने लगते हैं, फिर जलन होने पर कलेजे का जलीय अंश आंतो को ओर चला जाता है। फिर जर्दी मिले दस्त होते हैं, वाकी चिन्ह पित्त- के दस्तो से मिलते हैं।

६—छठा भेद

इन्हे खासरी दस्त कहते हैं और ये गाद जैसे होते है। इसके भी ३ कारण हैं—

(क) कलेजे का फोड़ा पकने से पहिले ही फूट जाता है।

(ख) कलेजे में कोई गांठ पड़ जाती है।

(ग) कैलूस में जलन होने से रसका अच्छा अंश नष्ट होकर गाद रह जाती है।

इन दस्तो में तथा आंतो के दस्तो में वहुत फर्क है, जिसका ध्यान रखना अत्यावश्यक है।

सुय उल कनिया

इस रोग को हकीम लोग जलन्धर का पूर्वरूप मानते है। यह जिगर की कमजोरी से होता है और कभी २ आमाशय की निर्बलता और उसके बिगड़ने से भी हो जाता है। इस रोग में मुंह, हाथ, पांव, भड़भड़ा जातेहैं, खासकर पलकें, शरीर में कुछ सफेदी लिये पीलापन होता है। पेटफूलता है उसमें गुड़गुड़ाहट होती है। कभी दांतों की जड़ों में फुन्सियां निकल आती हैं और होठो में घाव हो जाते हैं। सोने और जगने की दशा में अन्तर पड़ जाता है। कभी कब्ज रहती है कभी खाते ही दस्त लगता है और कभी वहुत पीछे, कभी सूखा और कभी तर दस्त आता है।

यकृत प्रदाह

Hepotitis

पुराना मलेरिया, पारा और कुनैन का अप-व्यवहार, वेतहाशा नशाकरना, गन्दी जगहो में रहना आदि कारणो से यह होता है। ऐसा मालूम होता है, मानो कलेजे में आग लग रही है, और जब यह रोग पुराना हो जाता है, तो यकृत वढ़ने लगता है, कठोर हो जाताहै और दांयी-तरफ फैलने लगता है। पीड़ा की तरुणावस्था में सर्दी और कंपकपी के साथ ज्वर आता है, पीछे वेदना होने लगती है, सिर में दर्द, मुंह का स्वाद विग-ड़ना, जीभ का लिपलिपा रहना, मल कीचड़ जैसा दाये कधे में हलका दर्द, आदि चिन्ह होते है, बाद में अगर वहां खून भरने लगता है तो दशा भया-नक होने लगती है। आंखें पीली हो जाती हैं, जिगर में भयानक वेदना होती है, हाथ तक नही रक्खा जाता, सांस लेते ही दर्द बढ़ने लगता है, जी मिचलाता है कभी कै भी हो जाती है, पेशाव पीला होने लगता है। वाद में कब्ज, पेटदर्द आदि होने लगते हैं।

फिर जिगर में फोड़ा होकर मौत आ जाती है, या जिगर छोटा होकर रोगी को मार देता है।

पांडु पीलिया

Anaemia

जब वात, पित्त और कफ तीनो विगड़ जातेह, तब वे खून को बिगाड़ कर चमड़े को पीला कर

देते हैं, यही पीलिया रोग है। इसमें आंखें, मल, मूत्र, नख आदि पीले पड़ जाते हैं।

कारण

ज्यादा सभोग करने से, निरन्तर खट्टे पदार्थ खाने से, अधिक शराव पीने से, मिट्टी खाने से, दोष कुपित होते हैं और खून को खराव कर चमड़े को पीला वना देते हैं। इसको खुलासा यो समझिये—

जव ये कारण पैदा हो जाते हैं, तव हृदयस्थ पित्त वायु के प्रवाह से ऊपर बढ़ता है वलवान वायु उसे फेकता है फिर वह हृदयसे आश्रय रखने वाली दसो धमनी नाड़ियो में पहुँचता है, फिर उसके द्वारा वह समस्त देह में फैलता है। मांस और चमड़े के भीतर, वात कफ और खून को दूपित कर डालता है। साथ में मांस और चमड़े को भी अछूता नहीं छोड़ता। जिससे चमड़े का रग पीला हरा और कई रग का हो जाता है।

डाक्टरी मत

इसके विपय में पाश्चात्य वैद्यो का सिद्धान्त है यकृत Liver के दोष से पाण्डु रोग होता है पित्त कुपित होकर पित्त को सारे शरीरमें सचारित करता है। यकृत के कोठे में एक पित्त की थैली है प्रतिदिन उसमें से करीवन १। पौंड पित्त निकलकर भोजन को पाचन क्रिया में सहायता करता है। शरीर के और भी कई काम पित्त से होते हैं अगर किसी कारणवश पित्त नही निकलता है या कम निकलताहै, तो वाकी वचा पित्त सूख जाताहै और खून में मिलकर हृदय में चला जाता है। वहां से धमनियों की राह वह सारी देह में फैलता है, रस रक्त आदि सबको विगाड़ कर चमड़े का रग पीला कर देता है।

पूर्व चिन्ह

जव पीलिया होने को च हता है तव चमडा फटने लगताहै, मुह में वार २ थूक आने लगताहै देह जकड़ने लगती है, मिट्टी खाने की इच्छा होती है, आंखों पर सूजन आ जाती है, मल मूत्र पीले हो जाते हैं और अन्न नही पचता।

सामान्य चिन्ह

जव पीलिया हो जाता है, तव कानो में आवाज होने लगती है। मन्दाग्नि कमजोरी, आंखो का दुखना, नीद न आना, भ्रम, थकावट, देह में पीड़ा, ज्वर, श्वास, गौरव और अरुचि ये सव चिन्ह प्रगट हो जाते है।

यह ५ प्रकार का होता है

[१] वातज पांडु।
[२] पित्तज पांडु।
[३] कफज पांडु।
[४] सन्निपातज पांडु।
[५] मिट्टी से पैदा हुआ पांडु।

इस तरह पांडु रोग पांच तरह का होता है। अव इन पांचो के अलग २ चिन्ह और लिखे देते हैं।

(१) वातज पाण्डु

जव वायु के विकार से पीलिया होता है तो, चमडी, आंख, पेशाव आदि रूखे हो जाते हैं उनमें कुछ कलाई और ललाई आ जाती है। कपकंपी होती है, सुई चुभने जैसा दर्द होता है, पेट में अफारा आ जाता है भ्रम, शूल आदि पैदा हो जाते हैं।

(२) पित्तज पाण्डु

मल, मूत्र और नेत्र पीले पड़ जाते हैं। जलन प्यास और वुखार का जोर होता है दस्त पतला होता है, देह की कान्ती एक दम पीली पड़ जाती है मुंह का जायका विगड़ जाता है, तथा पित्त के और भी उपद्रव हो जाते हैं।

३—कफज पाण्डु

मुंह से कफ गिरने लगताहै, सूजन हो जाती

है। तन्द्रा और आलस्य दोनो का जोर होता है, देह भारी रहती है, चमड़ा मूत्र आदि सफेद हो जाते हैं।

४—त्रिदोषज पाण्डु

तीनों दोषो के बिगाड़ से होने वाले पीलिया में सभी चिन्ह होते हैं।

(५) मृत्तिका जन्य

मिट्टी खाने से पीलिया होना है, और निस्सं-देह होता है, कसैली मिट्टी से वायु बिगड़ता है खारी से पित्त और मीठी से कफ। किसी भी तरह की मिट्टी खाने से एक दोष अवश्य बिगड़ता है, मिट्टी अपने रूखेपन से रस रक्त आदि को तथा अन्न को दूषित कर देती है, जिससे कच्चे ही रस नसो के स्रोतो में रोक देते है, जिससे शारीरिक क्रिया बिगड़ जाती है।

बल, तेज, वीर्य तथा ओज आदि धातुओ का और इंद्रियों का नाश करके यह पीलिया रोग पैदा कर देती है। इसके ये चिन्ह हैं।

तन्द्रा, आलस्य, खांसी श्वास, शूल, अरुचि, पेट में कीड़े पड़ना, आंखो के गोलक की, कपोलो की, भ्रकुटियो की, पांव, नाभि और लिंग की सूजन तथा कफ मिले दस्त।

घातक चिन्ह

बुखार, अरुचि, हल्लास, छर्दि, तृषा ग्लानि, ये सब रोगी पर सवार हो जाते हैं। तथा इद्रियो का ह्रास हो जाता है, और तीनो दोष बिगड़ जाते हैं तो रोगी मर जाता है। इसी तरह दाँत, नख, आंखो पर पीलापन आने, और सब कुछ पीला ही पीला दिखलाई देने पर रोगी मर जाता है।

हाथ पांव पर सूजन आजाय, और बीच के हिस्से पर नहीं, या बीच के हिस्से पर ही सूजन हो हाथो पांवो पर सूजन नहीं, और गुदा, मुंह लिंग, अण्डकोषों पर सूजन हो, ग्लानि हो, अतिसार हो, ज्वर हो तो रोगी मर जाता है।

हिकमत से पीलिया

तिब्बे अकबरी में भी पीलिया का अच्छा वर्णन है, बहुधा इस रोग की उत्पत्ति कलेजे और तिल्ली से होती है।

इसके २ भेद हैं

शुरू में पीलिया के २ भेद माने हैं

(१) पीला पीलिया।

(२) काला पीलिया।

(१) पीला पीलिया

इसके १५ भेद हैं

(१) पहिला भेद

यह बोहरान की रीति पर होताहै, यानी दूसरे रोगो में हो जाता है। इसमें पित्त का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखलाई पडता है, उसके चिन्ह मुंह का कड़वापन, पेट में विबन्ध, आंतो की पीड़ा आदि होते हैं।

(२) दूसरा भेद

यह गर्म दुष्ट प्रकृति से पैदा होता है, गर्मीके सबब से भोजन का अप्राकृतिक पित्त बन जाता है फिर वह (पित्त) खून में मिलकर सारी देह में फैल जाता है। इसके चिन्ह जिगर की दुष्ट प्रकृति से मिलते हैं। पित्त मिली कै, मूत्रमें अधिक पीला-पन या कालापन होता है।

(३) तीसरा भेद

यह जिगर में गर्म प्रकृति के उपद्रव होने पर होना है, पित्त सब जगह से यहां खिंच आता है, और सारी देह में फैल जाना है, यह रोग एक साथ होता है। इसमें पेशाब पहिले सफेद, फिर पीला, बाद में काला और गाढ़ा पड़ जाता है।

(४) चौथा भेद

पित्ताशय सूज जाता है, जिससे वह पित्त को खैंच कर आंतो की तरफ नहीं निकाल सकता है, फिर पित्त अधिक होकर चमड़ी की तरफ झुकत

है, और उसे पीली रंग देता है, इसमें बुखार की सी हरारत बनी रहती है, कै भी होती है, जीभ खुरखुराहट होती है, उबकाइयां आती है और बहुत आती है, कभी २ प्रकृति में थोड़ा भारीपन भी मालूम होता है।

(५) पांचवां भेद

गर्म दुष्ट प्रकृति, सारी देह और रगो में पैदा होकर रगो के खून को पित्त बना देती है, इसमें देह छूने से गर्म मालूम होती है, कोठे में विबन्ध होजाता है, मल सूख जाता, सारी देह में खुजली चलने लगती है, फुन्सियाँ निकल आती हैं। कै में पित्त निकलता है, जिससे बडा कष्ट होता है, दस्त पीला होता है प्यास बहुत लगती है, दुर्बलता आ जाती है, कभी ज्वर भी हो जाता है, और कभी गर्मी की अधिकता से पित्त जलकर मुह को स्याह बना देता है, यह धीरे २ होता है।

(६ (छटां भेद

ठडी और गर्म हवा में फिरने, गन्दगी के कारण देह पर मैल जमकर रोम पथ के बन्द होने से यह पीलिया होता है।

(७) सातवां भेद

पित्त पैदा करने वाली, वायु की गर्मी की अधिकता से खून पित्त बन जाता है। इसमें कै के साथ पित्त निकलता है, प्यास बहुत लगती है। भूख मारी जाती है। आमाशय में वेदना होती है यह रोग अक्सर स्त्रियो और बच्चो को उनकी नाजुकता के कारण होता है. कभी २ इसमें गर्म बुखार भी हो जाता है।

(८) आठवा भेद

जिगर में सूजन हो जाती है, जिससे रास्ता बन्द होने के कारण पित्त वही रुक कर देहमें फैल जाता है। इसके चिन्ह कलेजे की सूजन से मिलते हैं।

(९) नवां भेद

कलेजे ही में गांठ पड़कर, पित्त को पित्ते से रोक देती है। जिससे पित्त फैल जाता है, इसमें मल मूत्र सफेद होते हैं। तथा कलेजे की गांठ के चिन्ह होते है।

(१०) दशवां भेद

किसी जहरीले जानवर के काटने या जहरीले पदार्थ के खाने से यह पीलिया होता है, यह सहसा होता है, उसीदम चिन्ह दिखाई देते हैं। इसमें गर्मी बहुत होती है, मुंह लाल हो जाता है, और उसमें बदबू आने लगती है, प्यास, बेचैनी, मरोडा, पेचिश तथा भीतरी अंगो में ऐठन सी होना ये चिन्ह भी हो जाते हैं।

(११) ग्याहरवां भेद

पित्त का ढाँचा. दुष्ट प्रकृति के आने से कमजोर हो जाता है, जिससे वह जिगर से पित्त को नहीं खींच सकता है, और पित्त देह में फैल जाता है, यह पीलिया कलेजे की कमजोरी के बिना नहीं होता है। इसमें घबराहट, पित्त की कै, आदि चिन्ह होते हैं।

(१२) बारहवां भेद

जिगर और पित्त के बीचमें गांठ पड़ जानेसे पित्त खून से अलग नही होता और देह में फैल जाता है।

इसमें पित्त मिली कै होती है, मुह कड़वा रहता है, जिगर में कुछ भारीपन होता है, दस्त प्रति दिन सफेद पड़ता जाता है।

(१३) तेरहवां भेद

पित्त और आंतो के बीच वाले रास्ते में गांठ पैदा होने से पीलिया हो जाताहै। इसमें दस्त एक दम सफेद हो जाता है, और वह बड़ी कठिनता से होता २, कभी कूलज भी हो सकता है।

(१४) चौदहवां भेद

पिछले कहे हुये मार्गों में माँस या मस्सा जम

जाने से पीलिया हो जाता है, इसमें दवा कुछ भी फायदा नहीं कर सकती, अच्छी २ दवा भी इस रोग में व्यर्थ इसलिये हो जाती है, कि विना शस्त्र क्रिया के वह जगह साफ नहीं होती।

(१५) पन्द्रहवां भेद

गाढ़े कफ के कून्ज से पीलिया हो जाता है। इसलिये कि गाढ़ा कफ आंतो के ऊपरी भाग पर चिपट जाता है, जिससे पित का गिरना वन्द हो जाता है, और वह देह में फैल जाता है।

पीला पीलिया १५ प्रकार का होता है, उसका वर्णन हो चुका है।

(२) काला पीलिया

इसे हम 'कुम्भ कामला' कह सकते हैं, जो आयुर्वेद के मत से पीलिया (कामला) होने के वाद में होता है। 'कुम्भ कामला' का वर्णन आगे चल कर होगा।

इसके ७ भेद हैं

(१) पहिला भेद

जिगर और तिल्ली के वीच वाले मार्ग में गांठ पड़ जाने से, वादी जिगर से तिल्ली में नहीं जा सकती, और खून से मिल कर सब देह में फैल जाती है।

(२) दूसरा भेद

आमाशय के मुंह और तिल्ली के बीच वाले रास्ते में गाँठ पड़ जाती है, जिससे वादी आमाशय के मुंह पर नहीं गिर सकती, लौटकर तिल्ली ही की तरफ जाकर खून में मिलकर देह को काला कर देती है। इन दोनो भेदो के स्पष्ट चिन्ह हैं।

धीरे २ पैदा होना और दांयी या बांईं तरफ बोझ और खिंचावट होना। पहिले भेद वाले पीलिया में भूख धीरे २ नष्ट होती है, और बोझ दांयी तरफ होता है, दूसरे में ठीक इसके विपरीत।

(३) तीसरा भेद

कलेजे में वलवान गर्मी होकर, खून को जला कर गाढ़ा वना देती है, और काला रंग देती है इसमें रोगी की प्रकृति में फर्क पड़ जाता है, क्लेश होता है, और उन्मत की तरह बिना मतलब सोच विचार में वैठ जाता है।

(४) चौथा भेद

तिल्ली में ग्रहण शक्ति या अवरोधक शक्ति, या दोनो ही निर्वल होकर इस रोग को पैदा कर देते है। ग्रहण शक्ति की कमजोरी में आंख की सफेदी में मैलापन, भूख नष्ट होना, आदि चिन्ह होते हैं, और अवरोधक शक्ति की कमजोरी में, वमन और दस्तो में वादी की तरह दुष्टी निकलती है।

(५) पांचवां भेद

तिल्ली की सूजन भी चाहे वह कठोर हो या नर्म इस रोग को पैदा कर देती है।

(६) छटां भेद

जव प्रकृति तिल्ली के किसी रोग को उन्मत्त की तरह दवा लेती है, तो यह पीलिया हो जाता है, हमेशा यह तिल्ली के पीछे होता है।

(७) सातवाँ भेद

ठंडी दुष्ट प्रकृति कलेजे में अधिक पैदा हो जाती है, जिससे पित्त तलछट की तरह उसमें जमकर काला हो जाता है।

कामला

Lawndice

यह रोग पित्त पैदा करने वाले पदार्थो के अधिक खाने से होता है, और पीलिया के रोगियो को जल्दी ही हो जाता है। बिना पीलिया के भी यह समय पर हो जाता है, असल वात यह है, कि वढ़ा हुआ पित्त खून और मांसको खराब करके 'कामला' पैदा करता है, फिर पीलिया में कुछ मसाला पहिले ही तैयार रहने से देर नही लगती इसके ये चिन्ह है—

आंख, चमड़ी, नख, और मुंह का रंग एकदम हल्दी जैसा पीला हो जाता है, मल मूत्र पीले हो जाते हैं, या लाल। शरीर का रंग बड़े मेंढ़क जैसा हो जाता है इन्द्रियां शक्ति हीन हो जाती हैं हृदय में दाह, बदहजमी, कमजोरी और ढीलापन अरुचि ये भी दिखाई देते हैं।

इसके २ भेद हैं

अधिक पित्त वाला कामला दो तरह का होता है,

(१) कोष्ठाश्रय (कुम्भ कामला)

(२) शाखाश्रय (कुम्भ कामला)

(१) कुम्भ कामला

Black Jaundice

यह वही कोष्ठाश्रय कामला है। (कोष्ठाश्रय) कामला रोग जब बहुत पुराना हो जाता है तो खरीभूत होकर जठराग्नि को रोक देता है, जिससे पेट की हालत उस घड़े की जैसी हो जाती है, जिसका मुंह छोटा और पेट बड़ा होता है, पेट का आकार घड़े की तरह होने से ही इसे कुम्भकामला कहते हैं।

घातक चिन्ह

कामला के रोगी का मल मूत्र अगर काला पीला मिला हुआ हरे रंग का होता है और आंखो तथा मुंह लाल हो जाते है, और लाल ही कै होता है, सब शरीर सूज जाता है, कफ खून मिला आता है, ग्लानि बनी रहती है, दाह, अरुचि, अफारा, तन्द्रा, मोह मदाग्नि असज्ञा ये रोग होते हैं तो रोगी मर जाता है।

हलीमक

यह भी पीलिया का ही एक रोग है जब पीलिया के रोगी के शरीर में वात पित्त बढ़ जाते हैं। तो रोगी का रंग हरा, काला और पीला पड़ जाता है, बल और उत्साह क्षीण हो जाते हैं। तन्द्रा, मन्दाग्नि, हल्का ज्वर, सभोग में अरुचि, अग २ में पीड़ा, श्वास, प्यास, अरुचि और भ्रम ये भी हो जाते हैं।

तिल्ली के रोग

Disease of the spleen

तिल्ली का आयुर्वेदिक नाम प्लीहा है। और ऐलोपैथिक नाम 'स्पिलीन' Spleen प्लीहा के नाम से बहुत कम लोगों का परिचय होता है। अत. हमने शीर्षक में प्लीहा न कर तिल्ली ही कर दिया है। शहरों में तिल्ली के रोगों की सख्या अधिक होती है. कही २ का वायु मण्डल और आचार व्यवहार तिल्ली के रोगो को स्वभाविक तौर से ही बढाता है, और कहीं २ का जल ही बढ़ी हुई तिल्ली को नष्ट कर देता है। तिल्ली के बढ़ने या इसमें कुछ और खराबी पैदा होने से, शरीर लावण्य मिट जाता है। शरीर में खून तो रहताही नहीं जवानी में सफेदी आजाती है।

तर माल खाने पर भीइसका रोगी ना ताकती की शिकायत करता ही रहता है। कभी २ यकृत् के रोगो का असर तिल्ली पर गिर पड़ता है। यहां तिल्ली के विषय में आवश्यक बाते भी पाठक पाठिकाओ की जानकारीके लिये बता दी जाती है।

तिल्ली क्या है

What is spleen

यह नरम और लबलबा अवयव हैं. यह खून को ठीक करती है, और 'कारपस किल्स को तैयार करती है, इसकी खराबी से पेट में खून नहीं रहता देखने में यह अंडे जैसी है और पेट में बांयो तरफ मेदेके पास उभरी हुई रहती है। यह करीबन ५ इञ्च लम्बी, ४ इच चौड़ी और १॥ इञ्च मोटी होती है। इसमे ५ से ७ औंस तक वजन होता है बढ़ने पर कभी २२० औंस तक वजन पहुंच जाता है। नवी, दसवीं और ग्यारहवी पसलियो के मुकाबिल इसका स्थान है।

तिल्ली की दुष्ट प्रकृति

इसके ८ भेद हैं

१—यह गर्म दुष्ट प्रकृति होती है। प्यास की अधिकता, तिल्ली की जगह जलन होना, पेशाब और दस्त में ललाई या काला होना ये चिन्ह होते हैं।

२—यह सर्द दुष्ट प्रकृति होती है, इसमें भूख मारी जाती है प्यास नही लगती, पेट में गुड़गुड़ाहट होती रहती है, डकारें बहुत आती हैं मुंह से पानी बहुत आता है।

३—यह शुष्क दुष्ट प्रकृति होती है, इसमें तिल्ली कठोर हो जाती है, खून काला और गाढ़ा हो जाता है, देह में कमजोरी आ जाती है।

४—इसमें तरी होती है, तिल्ली की जगह नर्म होती है, उसमें भारीपन होता है प्यास कम लगती है, देह सुस्त हो जाती है मुंह सफेद हो जाता है।

५—गर्म और तर दुष्ट प्रकृति होती है, बांई पसली में बोझ मालूम होता है। कभी २ देह में ढीलापन कालापन और सुस्ती हो जाती है।

६—यह गर्म खुश्क दुष्ट प्रकृति होती है, कब्ज पांव और पिंडलियो का गर्म होना, प्यास की अधिकता, जलन, पेशाव का साफ और लाल होना और उसमें चिकनाई न होना ये चिन्ह होते है।

७—सर्द तर दुष्ट प्रकृति में सर्दी और तरी के मिले हुये चिन्ह होते है।

८—सर्द खुश्क दुष्ट प्रकृति में तिल्ली में कडापन और गाढ़ापन पैदा हो जाता है।

तिल्ली की कमजोरी

इसके ४ भेद है

१-ग्रहणशक्ति कमजोर हो जाती है, जिससे आंख की सफेदी में गदलापन होता है, भूख मारी जाती है, देह काली हो जाती है कभी २ काला पीलिया हो जाता है। कभी २ दाद, कोढ़ आदि रोग भी इससे हो जाते है।

२-अवरोधक शक्ति के कमजोर होनेपर आंख की सफेदी में मैलापन आ जाता है, वादी के दस्त और कै होने लगती है।

३-पाचन शक्ति के कमजोर होने पर अगर बादी आमाशय पर गिरती है तो भूख बढ़ जाती है, आंतो पर गिरने से दस्त लगते है और किसी दूसरे अग पर गिरने से बादी की सूजन हो जाती है।

४—निस्सारक शक्ति के कमजोर होने पर तिल्ली सूजकर बढ़ जाती है ग्रहण शक्ति की कमजोरी के चिन्ह भी इसमें होते है।

तिल्ली में गांठ पड़ना

गाढे मवाद के एकत्रित होने से तिल्ली में गांठ पड़ जाती है, जिससे तिल्ली में भारीपन मालूम होता है, लेकिन सूजन दिखलाई नहीं पड़ती, जो गांठ से होती है। जिस रास्ते से वादी कलेजे से तिल्ली में आती है अगर उसी रास्ते मे गाठ होती है तो काला पीलिया होजाता है। साथ ही बादीके और रोग भी होजाते है। अगर तिल्ली से आमाशय के मुंह पर बादी जिस रास्ते से आती है, उसी रास्ते में गाठ पड़ती है तो भूख जाती रहती है, फालतू मल के इकट्ठे होने से तिल्ली में कड़ी सूजन पैदा होजाती है।

तिल्ली का फूल जाना

तिल्ली की सर्दी और बादी की अधिकता तथा पाचक और निस्सारक शक्ति की निर्बलता से तिल्ली फूल जाती है। वायी पसली के नीचे जहाँ तिल्ली है, खिचावट होती है। तिल्ली हाथ से दबाने पर दब भी जाती है। डकार आना और पेट मे गुड़गुडाहट इसके चिन्ह है।

तिल्ली में रेत पड़ना

काली और खाकी रग की बहुत सी रेत तिल्ली

में आ जाती है। इस रेत के कण शुद्ध छोटे २ होते है और यह रोग होता भी बहुत कम है। पेशाब में बवासीर में, रेत निकलती है, तिल्ली में दर्द होता है और चुभन होती है।

तिल्ली मे पीव पड़ना

तिल्ली की सूजन के पक कर फूटने पर कभी २ उसमें पीव पड़ जाती है, मगर ऐसा हाल है बहुत कम। इसमे तिल्ली में सुई चुभाने जैसा दर्द होता है, पेशाब में बदबू और रेत आने लगती है। सूजन जब आमाशय की तरफ फूटती है तो दस्तो और कै मे पीव सा निकलता है। पेशाब पड़ने से या तो सूजन और भी कड़ी हो जाती है या दूर ही हो जाती है।

तिल्ली की सूजन

आयुर्वेद में लिखा है कि—विदाही और अभिष्यन्दि पदार्थों के अनियमित खाने से खून और कफ बिगड़ते है और वे तिल्ली को बढ़ाते हैं। तिल्ली बाई पसली में होती है। खून और कफ का नाम निर्देश इस लिये हुआ है कि खून के बिगड़ने से पित्त अवश्य बिगड़ जाता है। फिर इसके चार भेद है।

४ भेद

[१] रक्तज।
[२] पित्तज।
[३] कफज।
[४] वातज।

१-रक्त सूजन

ग्लानि, भ्रम, जलन, वर्णविपरीतता, भारीपन (सारी देह में) मोह ये चिन्ह होते हैं और रक्तो दर भी हो जाता है। हिकमत के अनुसार प्यास और ज्वर ये दो चिन्ह और होते हैं।

२-पित्तज सूजन

ज्वर, प्यास, जलन, मोह, आंख, जीभ और देह में गिलापनये चिन्ह होते हैं कभी २ इससे काला पीलिया भी हो जाता है।

३-कफज सूजन

थोडी पीडा, मोटापन, कठोरता, भारीपनऔर अरुचि, जीभ, आंख और मुंह की सफेदी पलकों में भरभराहट मल मूत्र का सीसे के रंग जैसा होना, ये चिन्ह होते है।

४-वातज सूजन

पेट का फूलना और जकड़ना, तिल्ली का कठोर होना और जगह से उभर आना, पेट के चारो तरफ पीडा होना, देह का दुबली होना, पाचन शक्ति में अन्तर पड़ना आदि चिन्ह होतेहैं

आमाशय के रोग

Disease of the stomach

मेदे की बीमारियां

आयुर्वेद मे जिसे आमाशय कहते हैं, हिकमत से उसे मेदा और डाक्टरी में Stomach कहते हैं आशय नाम है, स्थान का और आम नाम है, कच्चे का फिर कच्चे भोजन का स्थानहै आमाशय खाया, पिया अन्ननली Alimentary canal के द्वारा पहिले इसी जगह पहुँचताहै, फिर उसका पाचन होता है आयुर्वेद में ७ आशय हैं स्त्रियो के १० इनका वर्णन देखना हो तो कोई भी आयुर्वेदिक ग्रन्थ देखना चाहिये। यहा आमाशय के विषय में खास २ बातें बतला देनी हैं।

आमाशय क्या है ?

What is Stomach

आमाशय आतो के ऊपर, पेट की अगली दीवार के पीछे, यकृत के नीचे है, यह देखने में सुराही के जैसा चौड़ाहै, उसका बांया शिराचौड़ा और नीचे को झुका हुआ होता है। इसकी लम्बाई १०-१२ इञ्च होती है, और चौड़ाई ४॥ इञ्च। खाली आमाशय ४-५ औंस के बराबर होता है। इसके दो मुंह होते हैं, ऊपर के मुंह में कंठनलीके द्वारा भोजन आता है और नीचे के मुंह से धीरे२ भोजन पक्वाशय में पहुंच कर पकता है। इसके

ऊपर एक झिल्ली है, बुढ़ापे में तथा कमजोरी में यह ढीली पड़ जाती है, जिससे पेट में सलवटें पड जाती है।

आमाशय के विषय में, इतनी बाते बता देने के पश्चात यह और बता देना है कि शरीर में अधिकांश रोग इसी की खराबी से होते हैं। आजकल खानेपीने में, नियमितता बहुत कम लोग रखते हैं। खाना ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है। नाक तक ठूस २ कर खाने, खाने के बिना पचे ही फिर खाने, ऊटपटांग चीज खाने और कभी उपवास न करने से आमाशय की स्वभाविक शक्ति में फर्क पड जाता है, फलस्वरूप बदहजमी हो जाती है, कब्ज रहने लगती है, और बीसो खराबियां पैदा हो जाती है। शरीर का स्वास्थ उसी हालतमें सुन्दर रह सकता है, जब पाचन ठीक होता हो, और उचित मात्रा में रस तैयार होता हो इसके विपरीत पाचन ठीक नहीं होने से दर्जनों रोग पैदा होते हैं, वह निश्चित बात है कि आमाशय में खराबी पैदा होने पर जीवन ही निकम्मा और असम्भव हो जाता है।

ज्वर
Fever

ज्वर की भयकरता का अनुमान तो इसी से किया जा सकता है, कि प्राचीन विद्वानो ने अपने निदान ग्रथो में इसे शीर्ष स्थान दिया है। मानव समाज आज ज्वर का आदी हो गया है, साधारण ज्वर तो उसकी दिनचर्या में कोई रुकावट ही नही डालता, हां विशेष ज्वर होने पर वह अलवत्ता खाट की शरण लेता है बीसवीं सदी में जितने आदमी ज्वर से मरते हैं, उतने दूसरे रोगो से नहीं।

प्राचीन विद्वानो के मत के अनुसार ज्वर न केवल मनुष्यो को ही होता है, पशुओ को भी होता है, भेडो का प्रलाप रोग, हाथियो का घातक रोग, भैंसो का दरिद्र रोग, और घोड़ो का अतितापरोग, ज्वर का ही दूसरा नाम है, दूसरे रोगों में भी ज्वर साथ रहता है, उस समय भी यह अपनी भयंकरता का परिचय देता है। हारीत संहिता के लेख का विश्वास तो कुछ ऐसा है कि ज्वर के बिना मृत्यु ही नहीं होती, किंतु यह बात निरपवाद नही है, "हार्ट फैल" Heait pale तथा आगन्तुक रोगो में बिना ज्वर के ही मौत हो जातीं है।

"मानव शरीर में पैदा होने के समय से ही उसके भी पहिले से ही ज्वर रहता है" सुश्रुत का अपना मत ऐसा है। यहां ज्वर से मतलब शारीरिक ताप से है, जिसका रहना स्वास्थ्य और जिन्दगी के लिये आवश्यक ही नही अनिवार्य भी है, शारीरिक ताप टेम्परेचर के घटने पर ही जब शरीर का सौन्दर्य बिगड़ने लगता है, तो फिर उसके न रहने पर शरीर का आस्तित्व कहां रह सकता है। कहना होगा कि शारीरिक ताप एक तरह से शरीर की जान ही है, प्राण वायु का दूसरा रूप ही है।

शारीरिक ताप का अपनी नियमित दशा में रहना शरीर के स्वास्थ्य के लिये सुखकर है किंतु जब अनियमित आहार-बिहार से सारीरिक ताप वढ़ जाता है और अंदर से बाहर आ जाता है तो स्वास्थ्य को खराबी पहुंचती है, रोग पैदा होते है। यह बाते गहन और माननीय है, इसलिये सीधे साधे शब्दो में ही हम ज्वर की विवेचना करने की कोशिश करे गे।

ज्वर किसी दशा में भी उपेक्षणीय नही है, यह बात पाठको को अपने दिल में रख लेनी चाहिये, इससे उत्तरोत्तर रोग बढ़ते है और मौत का दरवाजा निकट आ जाता है।

ज्वर क्यों होता है

प्राचीन विद्वानो में इस विषय में मतैक्य हो सो बात नहीं है। सबने अपने २ मत पुष्ट किये

हैं। ज्वर अनेक रोगो के साथ में और पीछे भी होता है। हम इस विषय को स्पष्ट बताने के लिए जरा प्रासङ्गिक बातो पर भी विचार करेंगे जहां रोगो के समुद्भव का सवाल उठा है वहां चरक ने लिखा है।

"काल बुद्धि और इन्द्रियोके विषयोका मिथ्या योग अयोग और अतियोग होने से रोग पैदा होते हैं।

बात है भी कुछ ऐसी ही रोग अपने आप पैदा नही होते जब हम उनके लिये रास्ता साफ कर देते हैं तब वे हमारे शरीर में आते है कोई भी रोग स्वास्थ्य की सौंदर्यावस्था में नही होता किसी कारणवश जब शरीरस्थ धातुओं में रोगो का होना अनिवार्य है कुपित हुआ दोष कुछ न कुछ गड़बड तो अन्दर करेगा शान्त होकर नहीं बैठेगा इसी भाव को लेकर माधव मिश्र ने लिखा है।

सर्वेषामेव रोगाणां निदान कुपिता मला.
तत्प्रकोपस्यतु प्रोक्त विविधा हितसेवनम्

दोष कुपित होने से रोग पैदा होते हैं। किन्तु दोष भी अपने आप तो कुपित नही होते उनके कुपित होने में भी कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं इसका स्पष्ट उत्तर "विविधाहित सेवनम्" है जो अहित पदार्थ है उनका सेवन करने से दोष कुपित होते वे अहित पदार्थ क्या हैं यह बतलाने की जरूरत नही इस विषय को प्राय: सभी समझते हैं। जिससे हृदय को अरुचि हो शरीर वा सौंदर्य नष्ट होता हो वही अहित पदार्थ है। एक ही पदार्थ सबके लिये न अहितकारी हो सकता है। और न हितकारी सबकी प्रकृति जुदा २ है प्रकृति के अनुसार ही पदार्थ अपना प्रभाव दिखलाता है, अस्तु या तो यह तो समझा जा सकता है कि सभी रोगों में दोष कुपित होते हैं। मिथ्या आहार विहार से इसलिये सब रोगो का प्रधान कारण मिथ्या आहार विहार ही है। किन्तु इतना कहने से ही सब खुलासा नहीं होता १ में यह भी समझना होगा कि क्या मिथ्या आहार विहार ही दोष कुपित पैदा कर सकता है। अथवा और भी कोई कारण है। आहार से मतलब खाने पीने से है और विहार से मतलब है क्रियमाण कार्यो से विहार का केवल विहरण इतना सकुचित अर्थ मानने के लिये हम तैयार नही हैं। विहार से मतलब चलने फिरने दौड़ने कूदने आदि से सभी है ज्यादा कसरत करने से अगर प्रमेह होता है। तो उसमें मिथ्या विहार ही कारणहै आगन्तुक रोगो में भी मिथ्या विहार ही कारण है। कुश्ती लडने से अगर हमारा पैर टूट गया और उसकी वेदना से हमें जो ज्वर हो गया वह भी मिथ्या विहार का ही उदाहरण है।

कहना चाहिये कि इनके सिवा और कोई स्वतन्त्र कारण नहीं है स्वास्थ्य के विपरीत जो काम किया जाता है। वह सब मिथ्या विहार है।

ज्वर के कारणो पर प्रकाश डालते हुये सुश्रुत ने लिखा है—

"वमन विरेचन आदि के अनियमित होने से, या बिगडने से, चोट वगैरा लग जाने से, किसी दारुण रोग के उठने से, तेज दवा के परिपाक से, अधिक परिश्रम से, क्षय से, अजीर्ण से, विष से, ऋतु विपर्यय से, तेज औषधियो और तेज फूलों की गध से, शोक से ग्रह दोष से, तत्र मन्त्रादि से, अभिशाप से, मानसिक चिन्ताओसे, तथा भूतादि के डर से, ज्वर होता है। स्त्रियो को अयग्य प्रसव होने से, तथा प्रसव के बाद अहित आचरणो से, तथा दूध के अधिक निकलने, और कम निकलने, एव न निकलने से ज्वर होता है।"

इतने कारणो से ज्वर होता है। तत्र मन्त्रादि अभिशाप यह ऐसे कारण हैं जिनको सामने रख कर कहा जा सकता है, कि इनमें कोई कुपित नहीं होता, इसलिये कोई

मिथ्या आहार हुआ हो, ऐसा भी नहीं माना जा सकता। ऐसा कहने वालों की सख्या कम नहीं है किसी ने किसी पर जादू कर दिया, अथवा किसी को शाप दे दिया तो कहने वाले कह सकते हैं कि इसमें न कोई मिथ्या आहार हुआ और न इसलिये न कोई दोष कुपित हुआ। किंतु इन बातो में कोई तत्व नही है। इस बींसवी सदी में नवीन, वायु मंडल में कौन शिक्षित आदमी इन बातो पर विश्वास कर सकता है, कि शाप देनेसे, अथवा जादू का डंडा सर पर फेरने से ज्वर पैदा होता हो, फिर ज्वर ही क्यो, सभी रोग पैदा हो सकते है। और यह भी कोई बात नहीं कि सैकडो रोगो को छोड़ कर केवल ज्वर ही पैदा होता है।

और अगर ऐसा मान भी लिया जाय कि जादू के बल से, अथवा, शाप की ताकत से ज्वर होजाता है तो इसमें कोई ऐसी खास बात नही जिससे सिद्ध हो सके कि इसमें कोई दोष कुपित नहीं हुआ हो। यह तो हमें मानना ही होगा कि शुद्ध पुरुषो के ऊपर न जादू का डडा ही असर दिखा सकता है, और न भूत ही उसे डरा सकता है। व्यभिचारी, लम्पट, झूठे, ऐसे ऐसे पुरुषो पर ही उनका असर हो सकता है। फिर उन दुर्गुणो को ही क्यो न मिथ्या विहार माना जाय। स्वास्थ्य शास्त्र के जो नियम हैं उनमें दुर्गुणो का बहिष्कार ही किया है। खैर!

सुश्रुत ने जो कारण बतलाये हैं, वह ठीक है। किन्तु फिर भी ये ही सब कारण नही है, इनके अतिरिक्त और भी बहुत कारण हैं, जहां तक विषय का अध्ययन किया जाता है, वहां तक यही 'रिजल्ट, निकलता है। कि अहित आहार विहार से ज्वर पैदा होता है, सब अपना २ अहित आहार विहार सहज ही समझ सकते हैं। देश विरुद्ध, काल विरुद्ध संयोग विरुद्ध आहार विहार ज्वर के उत्पादक हैं। इन्हे यो समझिये—

बंगाल कफ प्रधान देश है, स्वभाव से ही यहां कफ का प्राधान्य है, स्वास्थ्य रक्षा के लिये यहां वालो को ऐसे पदार्थ खाने चाहिये जो कफ को बढाने वाले नही होकर उसको नियमित रखने वाले हों, किन्तु जो आदमी रात दिन कफोत्पादक पदार्थ खाता है। वह जान बूझ कर रोगो को आमन्त्रण देता है। कफ अपनी मात्रा से बढ़कर दूसरे दोषो पर धावा बोल देता है, फिर उसका परिणाम क्या होता है, यह सभी समझ सकते हैं कफ प्रधान देश में रहकर कफोत्पादक पदार्थ का सेवन करना देश विरुद्ध आहार है।

इसी तरह काल विरुद्ध आहार विहार समझिये दिन में सोना रातमें जागना काल विरुद्ध है, इससे दोषो का कुपित होना स्वाभाविक ही है। रात दिन विषय करना, विना पाचन हुये ही खा लेना, ऐसे २ मिथ्या आहार विहार ही सब रोगो के उत्पादक है। मिथ्या आहार विहार से रोग पैदा होते है। यह ठीक है, किंतु ऐसा होता क्यो है? यह भी समझने की बात है, हम जो खातेपीते है, उसका पाचन आमाशय में होता है, बाद में रस अलग हो जाता है, और मल मूत्र अलग। मल–मलाशय में चला जाता है, और मूत्र मूत्राशय में, Blod ler में पाचन भी उसी दशा में होता है, जब पक्वाशय अपना काम ठीक करता हो अब सारा मतलब इसी में है कि जब हम अहित आहार विहार करते हैं, तो हमारा पक्वाशय बिगड़ जाता है, बार २ खाने से, सयोग विरुद्ध खाने से इत्यादि से पक्वाशय अपने काम में सुस्त हो जाता है, वह ठीक,तौरसे पाचन नही कर सकता,जिससे पका अधपका अन्न शरीर में सड़ने लगता है। उधर मलाशय मल को बाहर नहीं निकालता, बार २ असाध्य दबाव पड़ने से वह आखिर असहयोगी बन जाता है।

इसका नतीजा यह होता है कि उधर अन्न का पाचन नहीं होता, इधर मल भीतर पड़ा हुआ है, दो २ विद्रोही जब विद्रोह का झंडा उठालें तब शरीर की खैर कहां ? पडा हुआ मल आंतों को ढीली बना देता है। और तरह२ के उपद्रव मचाने शुरू कर देता है, ढीली पड़ी हुई आंते बिगड़े हुये रस को खून में मिला देती है, खून खराब होने पर सारी नाड़ियां स्तब्ध हो जाती है। उधर मल हृदय में पहुंच कर उसमें रोग पैदा करता है, आखों में, सिर में जहां भी सडा हुआ मल पहुचेगा रोग पैदा करेगा। इस तरह त्रिदोष भी मलावरोध के कारण छटपटायेंगे, उनमें भी खलबली मचेगी अन्ततोगत्वा वे आमाशय में पहुचकर रस को दूषित कर देते है, जिनसे खून शुद्ध होने की क्रिया बन्द हो जाती हैं। साथ में कोठे की अग्नि को बाहर निकाल देते हैं।

आमाशय में जब तीनों दोष पहुचते हैं तब वे खलबलाये हुये होते हैं, इधर उधर वे खलबली मचा देते हैं, अपने मार्ग को छोड़कर वे ऊटपटाग रास्ते पर दौड़ने लगते है। इसके फलस्वरूप भीतर की गर्मी रोम पथके बाहर निकलती है, और धातु के पतले भाग स्वेद आना बन्द कर देते है स्वेद न आने से दूषित पदार्थ भीतर ही भीतर रहते है, बाहर नहीं निकलते।

जल चिकित्सा के आधुनिक आविष्कर्ता 'लुई कूने' ने लिखा है कि "विजातीय द्रव्य फोरेनमेटर Forene mctur इकट्ठा होकर पसीना निकलना रोक देता है और भीतर की गरमी को बाहर फेंक देता है। ऐलोपेथी का विश्वास है।

जहर की जाति का कोई द्रव्य जब खून में मिल जाता है, तब उस द्रव्य को पकाकर बाहर निकलने के लिये, खून की गर्मी बढ़ती है, इससे पसीना रुक जाता है और शरीर गरम हो उठता है। ज्वर में पसीना क्यों नहीं आता और शरीर गरम कहां से हो उठता है। इसका रहस्य भी इससे समझा जा सकता है।

ज्वर के पूर्व चिन्ह

Pralromal symptams

थकावट शरीर का अस्वस्थ हो जाना, बेचैनी चमड़े का रंग बदल जाना, मुंह का स्वाद बिगड़ जाना, आंखों में पानी आना, कभी सर्दी कीइच्छा और कभी गर्मी की इच्छा होना, कभी हवा में घूमने को चाहना और कभी बन्द कमरे में बैठने की इच्छा करना, जभाई आना देह का टूटना और कभी२ दर्द होना, रोमाञ्च होजाना अन्न द्वेष दिमाग मे कमजोरी, जी की घबड़ाहट ठंड लगना आंखें लाल होजाना, नींद अधिक आना, गीत, भाषणादि से अरुचि होना, आलस आना आदि चिन्ह उस समय होते है जब ज्वर आने लगता है चाहे वह वातज्वर हो, चाहे पित्तज्वर।

ज्वर के भेद

साधारण रूप से प्राचीन विद्वानों ने ज्वर ८ तरह का ही माना है, तीनों दोषों से ३ तरह का दो दो दोषों से ३ तरह का सन्निपात से १ तरह का और आगन्तुक १ तरह का, इस तरह कुल सख्या ८ होती है, आगे चलकर सन्निपात के १३ भेद मानेहैं तथा दूसरे ज्वरोका भी उल्लेख कियाहै।

पाठकों की सुविधा के लिये यहां, हम सभी ज्वरों की सूची रख देते है।

(१) वातज्वर	(७) सन्निपातज्वर
(२) पित्तज्वर	(८) सन्धिकसन्निपात
(३) कफज्वर	(९) अन्तक ,,
(४) वातपित्तज्वर	(१०) रुग्दाह ,,
(५) वातकफज्वर	(११) चित्तभ्रम ,,
(६) पित्तकफज्वर	(१२) शीताग ,,

(१३) तन्द्रिक ,,	(३७) प्रलापक ,,
(१४) कंठकुब्ज ,,	(३८) जिह्वक ,,
(१५) कर्णिक ,,	(३९) अभिन्यास .
(१६) भुग्ननेत्र ,,	(४०) अभिघातजज्वर
(१७) रक्तष्ठीवी ,,	(४१) अभिचारजज्वर
(१८) अभिषंगज ज्वर	(४२) रक्तगत ज्वर
(१९) अभिशापज ज्वर	(४३) मांसगत ज्वर
(२०) विषज्वर	(४४) मेदोगत ज्वर
(२१) औषधिगन्धज्वर	(४५) अस्थिगतज्वर
(२२) कामज्वर	(४६) मज्जागतज्वर
(२३) भय ज्वर	(४७) शुक्रगत ज्वर
(२४) क्रोध ज्वर	(४८) प्राकृत ज्वर
(२५) भूत ज्वर	(४९) वैकृत ज्वर
(विषमज्वर)	(५०) अन्तर्वेगी ज्वर
(२६) सन्ततज्वर	(आगन्तुक ज्वर)
(२७) सतत ज्वर	(५१) बहिर्वेगी ज्वर
(२८) अन्येद्यु ज्वर	(५२) गम्भीर ज्वर
(२९) तृतीयकज्वर	(५३) आम ज्वर
(३०) चातुर्थिकज्वर	(५४) पच्यमानज्वर
(३१) वातबलासकज्वर	(५५) पक्वज्वर
(३२) प्रलेपकज्वर	(५६) जीर्णज्वर
(३३) शरीगर्द्ध ज्वर	(५७) सांयोगिकज्वर
(३४) शीत हस्त-पाद ज्वर	(५८) प्रसूत ज्वर
(३५) उष्ण हस्त-पाद ज्वर	(५९) गर्भिणी ज्वर
(धातुगतज्वर)	(६०) बाल ज्वर
(३६) रसगत ज्वर	(६१ मोतीज्वर(मोतीजरा)

—·०·—

(१) वातज्वर

कारण

वायु के कोप से वातज्वर होता है। रूखे हलके और शीतल पदार्थों के अधिक सेवन करने से, अधिक श्रम से, वमन, विरेचन, नस्य आदि बिगड़ने से वेगों को रोकने से, अधिक उपवास, से, आघात से, अधिक संभोग से, अधिक चिंता से, डर से, अधिक खून निकलने से, रात को जागने से, अधिक तैरने से और धातुओं के क्षय से वायु का कोप होता है, इन कारणों से जब वायु कुपित हो जाता है, तब वह आमाशयमें घुसकर रस को दूषित कर देता है। रस और स्वेद दोनों स्तब्ध हो जाते हैं, जिससे पसीनानहीं आता पाचकानल मन्द हो जातीहै और ज्वर होजाताहै।

पूर्व चिन्ह

वातज्वर होने के पहिले शरीर में थकावट आ जाती है, देह गिरने लगती है, जभाई आने लगती है।

स्पष्ट चिन्ह

Symptoms

शरीर के अन्दर कपकपी होती, ज्वर कभी वेग से होता है तो कभी मन्दगति से। कठ, होठ, तालु ये सूखने लगते है नींद नहीं आती न छींक आती है, मुह का स्वाद बिगड़ जाता है, कब्ज हो जाती है, खूब जभाई आने लगती है, पेट में अफारा हो जाता है, और कभी थोड़ा दर्द भी चलने लगता है, नाखून, आंख, मल, मूत्र, चमड़ा ये कठिन और लाल रगके हो जाते है, देह मे रुक २ के वेदना होने लगती और पैरो की पिंडलिया ऐठने लगती हैं, हड्डियो की सन्धि मे दर्द होने लगना, कमर, पसली, पीठ, कधे और भुजाओ तथा छाती से कभी सुई चुभाने जैसी वेदना होती कभी चसक चलने लगती और कभी दबाव पड़ने जैसा दर्द होने लगता है। ठोड़ी जकड़ जाती और कानोमें सनसनाहट होतीहै, आदि चिन्ह वातज्वर में होते हैं।

सब रोगियों की ऐसी हालत नहीं होती, जिससे समस्त चिन्ह दिखाई दें, थोड़े बहुत आवश्यक चिन्ह अवश्य प्रगट हो जाते है।

नाड़ी आदि

नाड़ी कभी सांप की तरह चलती है, कभी

जोक की तरह। गर्मी में मध्याह्न समय और आधी रात में नाड़ी कुछ धीरे चलती है, किन्तु वर्षाऋतु और रात के अन्त में नाडी कुछ जल्दी चलने लगती है।

दस्त—सूखा और थोड़ा होता है, फटा सा होता है या होता ही नहीं।

पेशाब—स्याही जैसा कुछ लाल रग लिये होता है, कम होता है और कभी कोशिश करने पर होता है।

शरीर—गरम रहता है, रोमाञ्च रहता है रूखा रहता है, कुछ कषैला रग भी हो जाता है।

वाणी—बोलते समय कुछ कपकपी आजाती है, घरघराहट होने लगती है।

जीभ—कठोर हो जाती है, फटी सी और रूखी मालूम देती है, खरदरी और कुछ हरे रग जैसी हो जाती है, स्वाद कषैला हो जाता है। लार भी गिरने लगती है।

नेत्र—कुछ टेढे हो जाते है, चचल हो जाते हैं, रग थोड़ा धूमिल हो जाता है।

—:o:—

(२) पित्तज्वर

Continued fever

एलोपैथी वाले पित्तज्वरको 'कण्टिन्यूड-फीवर कहते है, और हिकमत में इसे 'सफरावीताप' कहते हैं। जब शरीरस्थ पित्त कुपित या दूषित हो जाता है, तब सैकड़ों रोग पैदा करता है। उनमें से एक यह ज्वर भी है।

कारण

नमकीन, खट्टे, गरम, चरपरे, अजीर्णकारक द्रव्यो के अधिक खाने से, तेज धूप में अधिक चलने से, आग के सामने ठहरने, से अधिक श्रम करने से, अनियमित खाने से पित्त कुपित हो जाता है। फिर कुपित हुआ पित्त आमाशयमें पहुँचता है। वहां रस को खराब कर देता है, जिससे रस स्तब्ध हो जाता है। जठरानल मन्द हो जाता है और उसकी गरमी बाहर निकलती है। बाकी फिर वही होता है, जो वातज्वर में होता है।

पूर्व चिन्ह

पित्तज्वर के आने से पहिले आंखा में प्रदाह होने लगता है, आलोचक पित्त गरम हो उठता है, शरीर गिरने लगताहै। बादमें उसके स्पष्ट चिन्ह हो जाते है, ज्वर तेज हो जाता है, दस्त पतला हो जाता है, नीद या तो आती नही और यदि आती है तो कम, वमन होने लगताहै, और जभाई आती है। कण्ठ, अधर, मुह, नाक ये पक जाते हैं। पसीना आता है, बकवाद शुरू होती है और जीभ का स्वाद कड़वा हो जाता है, बेहोशी भी होने लगती है, देह में जलन होती है, कुछ नशा सा छा जाता है, प्यास खूब लगती है, आख पीली हो जाती है, और पेशाब तथा पाखाना भी पीला हो जाता है, इनके अलावा चरक के कथनानुसार पित्तज्वर मे दस्त भी लगने लगते है। देह का रग पीला पड़ जाता है, और देह पर चकत्ते भी पड़ जाते है।

नाड़ीआदि

नाडी—कभी मेंढ़क की तरह और कभी कौवे की तरह फुदक फुदककर चलती है, खूब जल्दी चलती है, खासतौर से पित्तकाल में तो उसकी बहुत ही अधिक गति हो जाती है।

दस्त—पतला और पीले रंग का होता है, कभी अधिक कभी कम या होता ही नहीं।

पेशाब—पीला और खूब पीला होता, कम होता है और जलन के साथ होता है।

शरीर—का रग पीला पड़ जाता है और छूने से गरम मालूम होता है।

जीभ—कड़वी, दाहयुक्त, काटेदार और लाल होती तथा जली हुई सी प्रतीत होती है, स्वाद सा

तो चरपरा रहता है, या कड़ुवा।

मुख—पीला हो जाता है, लाल हो जाता है, गरम हो जाता है।

नेत्र—नीले, पीले, लाल और गरम रहते हैं, दीपक के सामने नहीं रह सकते। ये कारण और चिन्ह सब आयुर्वेदिक हैं। पाठकों की जानकारी के लिये एलोपैथी निदान भी यहाँ रख देते हैं।

डाक्टरी मत

यह दो तरह का होता है, ऐसा ऐलोपैथिक विद्वानों का विश्वास है। इसके २ भेद हैं—

(1) *Common continued*,

(2) *Ardent continued*.

दोनों तरह के ज्वर ऋतु परिवर्तन से, अधिक गर्मी होने से, तेज धूपमें चलने से, अधिक मेहनत करने से, ज्यादा नशा करने से, मल मूत्र रोकने से अधिक चिन्ता आदि से होते हैं।

(1) *Common continued*.

इसमें देह गरम रहती है पेशाब कम उतरती है, पसीना आता नहीं, विना सर्दी के ही बुखार हो जाता है, जीभ खुश्क रहती है।

(2) *Ardent continued*

मुँह लाल होजाता है, सिर घूमने लगता है, शरीर खूब गरम होजाता है, नाड़ी खूब तेज चलती है, कब्ज हो जाती है और कभी पित्त के दस्त होते हैं, जीभ पीली या लाल होजाती है और पेशाब कम होता है, कै होती और उसमें पित्त निकलता है।

गम्भीर दृष्टि से देखने पर आयुर्वेदिक और ऐलोपैथिक निदानमें कुछ विभिन्नता नहीं है, केवल अनुकरण मात्र है।

कफज्वर (इन्फ्लूएन्जा)

चिकने, मीठे, ठण्डे, भारी, लिबलिबे खट्टे, नमकीन द्रव्यों केज्यादा खाने से, दिन में सोने

और रात में जगने से, मिहनत न करने इत्यादि कारणों से कफ कुपित होता है। फिर वह कुपित होकर आमाशय पर धावा करता है, जिससे रस दूषित हो जाता है और कोठे की अग्नि को बाहर निकाल देता है। इससे कफज्वर होता है।

पूर्वचिन्ह

और ज्वरों की तरह थकावट तो होती ही है, अन्न में एक दम अरुचि होजाती है।

स्पष्टचिन्ह

देह गिलगिली सी हो जावे, थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो, आलस्य आवे, मुंह का स्वाद मीठा हो, मल मूत्र सफेद हो बदन जकड़ा सा हो, पेट भरा हुआ सा मालूम हो, खाने की इच्छा न हो, शरीर भारी हो, मन्द मन्द जाड़ा लगे, जी मिचलाने लगे, रोमाञ्च हो जावे, नींद खूब आवे, खांसी आने लगे, आंखें सफेद हो जावें। हिकमत वाले इसमें पेशाब का अधिक आना बतलाते हैं।

नाड़ी आदि

नाड़ी—हंस की तरह या हाथी की तरह चलती है, ऐसा मालूम होता है जैसे कोई गज-गामिनी कामिनी चलती हो।

दस्त—सफेद और मिकदार में अधिक होता है।

पेशाब—अधिक होता है, सफेद होता है कुछ चिकना और गाढ़ा होता है।

वाणी—कण्ठ में कफ रहने के कारण आवाज कुछ भारी होती है।

शरीर—गरम, हलका, चिकना, चिपचिपा, और पानी से भीगा सा होता है।

जीभ—सफेद, मोटी, भारी और कफ से सनी हुई होती है, स्वाद मीठा होता है।

मुंह—भारी होता है और उस पर कुछ सूजन सी हो जाती है।

नेत्र—सफेद हो जाते हैं, प्रकाश कम होजाता है और कभी-कभी पानी भी गिरने लगता है।

(४) वातपित्त ज्वर

Remittent Fever

कारण

जो रोग दो दोषो के कुपित होने से होते हैं, उन्हे द्वन्द्वज रोग कहते है। इस हिसाब से यह द्वन्द्वज ज्वर है, इसमें वायु और पित्त दोनो कुपित होते है। इनके कारण प्राय: वही होते हैं। दोनो दोषो के कारण जब एक साथ कुपित होते हैं, तब वातपित्त ज्वर होता है। बाद में दोनो दोष उसी तरह आमाशय पर चढाई करते हैं, नतीजा वही होता है।

पूर्व चिन्ह

वायु के कारण जभाई आती है, तथा थकावट होती है और पित्त के कारण आखो में जलन होने लगती है।

स्पष्ट चिह्न

वायु और पित्त जो करते है, वह सब होने लगता है। प्यास, बेहोशी, भ्रम, दाह, नींद न आना सर का दर्द, गले और मुह का सूखना, वमन, रोमाञ्च होना, अरुचि, आंखो के आगे अंधेरा आना, जोडो में पीडा होना और जभाई आना ये सब चिह्न वातपित्तज्वर में हो जाते है।

नाडी आदि

दोनो दोषो के सयोग से नाडी झूम २ कर चलती है, चचल हो जाती है, तरल और स्थूल तथा कठोर हो जाती है, सांप की तरह टेढ़ी चलती है और मेंढक की तरह ठहर २ कर चलती है।

मल—कभी बंधा हुआ, कभी बिखरा हुआ, कभी काला और कभी पीला होता है।

मूत्र—कभी पीला, कभी स्याही जैसा, रुक २ कर, कम और जलन से होता है।

नेत्र—वाणी, शरीर, जीभ आदि में प्राय: वातपित्त के अलग २ चिह्न इकट्ठे हो जाते हैं। द्वन्द्वज ज्वरों को डाक्टरी में Remittent fever कहते हैं। वातपित्तज्वर सुबह और शाम को कुछ आराम लेता है, यह डाक्टरों का विश्वास है, विशेष कोई चिन्ह उनके यहां नहीं माने जाते।

—:o:—

(५) वातकफज्वर (कैटार फीवर)

कारण

वायु और कफ के कुपित होने से यह ज्वर होता है, वातकारक और कफ कारक पदार्थों का अधिक सेवन करने से तथा इनको (वायु और कफ को) कुपित करने वाले अन्य कारणों से ये दोनों दोष कुपित हो उठते हैं। बाद में इनका प्रहार भी आमाशय पर होता है। रस खराब होता है, और सब काड उसी तरह होते हैं।

पूर्व चिन्ह

थकावट, जभाई और अन्नसे एक दम अरुचि ये चिन्ह इस ज्वर के पहिले दिखाई देते हैं।

स्पष्ट चिन्ह

चमडा गीला सा हो, हड्डियो के जोड़ो में दर्द हो, नींद आवे, शरीर पर बोझा सा हो, सर में दर्द हो, जुखाम हो खासी हो, पसीने खूब आवें, सन्ताप हो, थोडा २ ज्वर हो। जाडा भी लगने लगता है, शरीर कांपता है, शूल, मन्दाग्नि सूजन तन्द्रा ये भी हो जाते हैं।

नाडी आदि

नाड़ी थोडी गरमाई लिये हुई धीरे २ चलती है, कभी सर्प की तरह तो कभी हंस की तरह ठुमक ठुमक के चलती है। जब दोष अधिक बढ़ जाते हैं, तब नाडी टेढ़ी और स्थूल हो जाती है।

नेत्र—कुछ २ सफेदी और ललाई लिये हुये होते हैं।

वाणी—कभी घरघर भी करने लगती है।

शरीर—थोडा गर्म और पीला सा रहता है।

मल—गाढ़ा, कम, सफेद, काला और कई रंग का होता है।

मूत्र—कभी कम, कभी, अधिक, सफेदी या ललाई लिये होता है।

जीभ—चिपचिपी, खरदरी और लसी हुई होती है।

—:o:—

(६) पित्तकफज्वर

कारण

पित्तकारक और कफकारक पदार्थों के अतिशय सेवन से तथा दिन में जगने, धूप में घूमने आदि कारणो से यह ज्वर होता है।

पूर्व चिह्न

पित्त से नेत्रो में जलन और कफ से अन्न में अरुचि, ये खास चिह्न पहिले ही हो जाते हैं।

स्पष्ट चिह्न

मुँह कड़वा हो, लिपलिपा हो, आलस्य आये, वेहोशी हो, खांसी आवे, अरुचि हो. प्यास लगे, बार वार गरमी मालूम दे, और बार बार सरदी लगे, नीद खूब आवे, सर में दर्द हो तथा और भी साधारण चिह्न हो।

नाड़ी आदि

नाड़ी—नर्म रहती है, पतली रहती है और कभी ठंडी और कभी गरम हो जाती है तथा धीरे धीरे चलती है।

मल—पीला, काला, नीला और रग मिला हुआ होता है।

—:o:—

सन्निपात ज्वर

Eruptive fever

कारण

जब तीनो दोप एक साथ कुपित होजाते हैं, तब सन्निपात ज्वर होता है। यही नियम हरएक रोग के लिये लागू है। दो से अधिक दोष जहां कुपित हो, वह सन्निपात कहलाता है। वैसे तो इसके कारण वही हैं, जो अलग ज्वरो के हैं। फिर भी सामान्य रूप से उनका दिग्दर्शन करा दिया जाता है—

खट्टे, चिकने, गरम, तीखे, कड़वे, मीठे पदार्थों के अनियमित खाने से, शराब पीने से, धूप में अधिक घूमने से, आग के पास बैठे रहने से कपैली चीजो के सेवन से, रूखे एव भारी पदार्थों के खाने से अधिक कामी होने से, क्रोध ज्यादा करने से, ठड अधिक लगने से, चिन्ता, कसरत, श्रम इनके अधिक करने से, ग्रह बाधा से, ज्यादा प्रसग करने से, चैत्र, वैशाख, श्रावण, भादो (भाद्रपद) और आश्विन के महीने में (अधिकतर) त्रिदोप कुपित होजाता है। कुपित हुये तीनो दोष, आमाशय पर चढ़ाई करते है। खुलासा यो समझिये—

जब खाने पीने की गडबड़ी से पाचन क्रिया ठीक तौर से नही होती, तब कच्चा रस (आम) शरीरस्थ अग्नि पर चढ़ बैठता है और उसे शान्त कर देता है। बाद खाया हुआ अन्न सब कफ के रूप में परिणत होजाता है। फिर उसमें वायु भी मिल जाता है। दूषित हुआ कफ वातवाहिनी नसो के काम में बाधा पहुँचाता है, रुका हुआ वायु फिर पित्त से दोस्ती करता है। इस तरह तीनो दोष एक साथ उछल-कूद मचाते हैं, एक को दबाते हैं तो दूसरा उछलता है, दूसरे को रोकते हैं तो तीसरा पैर पटकता है।

पूर्व चिह्न

तीनो ज्वरो के पूर्वचिह्न इसमें एक साथ प्रगट होते हैं, थकावट भी होती है, जंभाई भी आती है, अन्न से अरुचि भी होती है और आंखो में जलन भी होती है।

स्पष्ट चिह्न

कभी सर्दी लगे तो कभी गर्मी लगे. हड्डियो में जोडा में और मस्तक में दर्द हो, आंखो से आँसू गिरे और वे काली, लाल तथा फटी सी मालूम दे, भीतर को धस जावें अथवा इधर उधर होजावे, कानो में दर्द भी हो और सनसन भी हो, गले में काँटे से पड़ जाँय, घरघर करने लगे, तन्द्रा हो जिससे आंखें बन्द हो और कुछ खुली हो , वेहोशी हो, आनतान वकवास करे, कुछ का कुछ ऊटपटाग वकने लगे, खासी और श्वास हो, खाने की इच्छा न हो, कुछ का कुछ सूझने लगे, जीभ आग से जली हुई हो, खरदरी हो, शरीर एक दम कावूसे वाहर हो जावे, थूक कफ से मिला हो, रक्त पित्त से मिला ह , सर में वेहद दर्द हो जिससे चैन ही न पडती हो, प्यास खूब लगे, नीद नही आवे, हृदय में दर्द हो, छाती में दर्द हो, पसीना कम आवे, मल मूत्र थोडे और देर में हो शरीर अधिक कृश न हो, कठ में वरावर आवाज रहे, देह में फुन्सियां निकल आवे वा पीले, लाल चकत्ते हो जांय, आवाज कम निकले या निकलेही नही और धीरे से निकले और पेट मे अफारा सा मालूम दे। इसमें दोषो का परिपाक भी देर में होता है।

सन्निपातज्वर के १३ भेद

वैसे तो सन्निपात ज्वर एक ही तरह का होता है, सुश्रुत और वाग्भट्टने भी ऐसा ही माना है, किन्तु और विद्वानो का इसमें मतभेद है। कोई ३ प्रकार का मानते हैं, तो कोई १३ प्रकार का, कोई २ हजरत ५२ प्रकार का मानते है। लक्षण प्राय सभी के इस एक ही में मिलते जुलते हैं, फिर भी हम १३ प्रकार के सन्निपातो के चिन्ह यहा और लिखे देते हैं।

८—सन्धिक

जिसके पूर्व चिह्न निम्न हों, वह सन्धिक सन्निपात ज्वर होता है। शूल, शोथ, संधियों में दर्द हो, जोडों में दर्द हो और वायु का दर्द हो, कफ गिरे, कमजोरी हो, सन्ताप हो, और रात में नींद नही आवे। इसका प्रभाव खास तौर से सधियों पर पड़ता हैं।

९—अन्तक

दाह अधिक हो, सन्ताप हो, देह आग की तरह जले, वेहोशी हो, सर में दर्द हो, कपकंपी हो हिचकी चले, श्वास उठे, खांसी हो। यह चिन्ह अन्तक ज्वर में होते हैं। अन्तक यमराज के अनुसार ही यह काम करता है, हिचकी और श्वास के कारण दम निकलते देर नही लगती।

१०—रुग्दाह

अटसंट वकना, ज्वर का जोर, वेहोशी वहुत होती है, प्यास खूब लगती है, देह में गन्दगी और अनायास थकावट हो जाती है, कण्ठ और टोडी में दर्द, खांसी, श्वास और हिचकी, पित्तके आधिक्य से तथा कुपित होने से जलन भी होती है।

११— चित्त-भ्रम

देह में कोई पीडा हो, नशे की सी दशा हो, सन्ताप हो, वेहोशी हो, घवराहट हो, नेत्रों में वेकली हो, कभी हसना, कभी वकना, नाचना, गाना ये चिन्ह इस ज्वर में होते हैं।

१२—शीतांग

शरीर वर्फ जैसा ठडा हो और कांपता हो, श्वास हो, हिचकी हो, देह ढीली पड़ गई हो, स्वर मन्दा हो, सन्ताप वेतहाशा हो, सहसा थकान हो जावे, खाँसी हो, उल्टी हो, और पतले दस्त हो ये चिन्ह शीतांग में होते हैं। यह सन्निपात सुखसाध्य नहीं है, देह को गरम करना बड़ा मुश्किल हो जाता है।

१३—तन्द्रिक

तन्द्रा बहुत हो, शूल हो, ज्वर हो, कफ ने नाको दम कर रक्खा हो, जीभ काली हो, मोटी हो, कांटेदार हो, कठोर हो, दस्त पतले हो, ग्लानि हो, सताप हो; कानो में दर्द होता हो, कंठ में जड़-पना हो, रात दिन नींद हराम हो गई हो ये सब चिह्न तंद्रिक में होते हैं।

१४—कंठ कुब्ज

सर और गले में दर्द, जलन, बेहोशी, कप-कपी वातरक्त, ठोड़ी जकड़ना, सन्ताप, ऊटपटांग बकना, मूर्च्छा ये चिह्न होते हैं। इसमें कंठ में कांटे से पड़ जाते हैं जिससे पानी पीने पर भी असह्य वेदना होती है। यह बड़ा कष्टसाध्य है।

१५—कर्णिक

अंट-संट बकना, कानो से सुनाई न देना, गले में दर्द होजाना, अंगो में वेदना होना. श्वास, खांसी, पसीना, मुंह से पानी (लार) गिरना, ज्वर, सन्ताप, कान तथा गाल में पीड़ा ये चिह्न कर्णिक सन्निपातमें होते हैं, किसी किसी के मत से इस सन्निपात में कर्णमूल में भयकर सूजन हो जाती है, जो सहज साध्य नहीं।

१६—भुग्न नेत्र

ज्वर, कमजोरी, स्मृतिनाश, श्वास, टेढ़ी नजर, बेहोशी, अंटसट भाषण, भ्रम, देह का घूमना, कपकपी, सूजन, ये सब चिह्न होते हैं। आंखो के टेढ़ी होजाने से अवस्था असाधारण हो जाती है।

१७—रक्तष्ठीवी

रक्तमय वमन, ज्वर, प्यास, बेहोशी, शूल, पतले दस्त, हिचकी, पेट में अफारा, भौंर आना, सन्ताप, श्वास, संज्ञाहीनता, जीभ का काली और लाल हो जाना, शरीर में रक्तविकार के चकत्ते ये चिह्न होते हैं।

१८—प्रलापक

कपकपी, प्रलाप, सन्ताप शिर में दर्द ये खूब जोर से होते हैं। पवित्रता का ख्याल रहना, दूसरे की भलाई सूझना, बुद्धि नष्ट हो जाना, बिकलता और बकवाद खूब होना ये सब चिह्न होते है।

१९—जिह्वक

श्वास, खांसी, सन्ताप, बेकली, जीभ पर कठोरपना, कांटे हो जाना, बहरापन, गूंगापन, कमजोरी ये चिह्न होते हैं।

२०—अभिन्यास

कानो मे और आँखों में कुछ ज्ञान न रहे, न कुछ सुनाई दे और न कुछ दिखाई दे, कोशिश करने पर भी कुछ दिखाई न पड़े, न किसी चीज की बदबू और खुशबू का ज्ञान रहे और न गर-माई और ठडक का होश रहे, कुछ सुनाई नहीं पड़े सर को इधर उधर पटके, खाने से भी दुश्मनी हो जावे, बकता है, तुतलाता है, इधर उधर होता है, और कुछ बोलता है। इसमें बुद्धि, मन और इन्द्रियां ये सब बेकाम हो जाती है जिससे यह असाध्य है।

सन्निपातज्वर की घातकता

वैसे तो सभी सन्निपात घातक होते हैं, रोगी बड़ी मुश्किलो से कहीं बचता है इसकी भयकरता का वर्णन करते हुये, प्राचीन विद्वानों ने लिखा है, कि सन्निपातज्वर में भगवान ही वैद्य हैं और गगा-जल ही दवा है, मनुष्य की इसमें हिम्मत नहीं पड़ती और न दवा ही काम देती है। बात है भी ऐसी ही, योग्य बिद्वान् वैद्य ही सन्निपात को सुलझा सकता है।

सन्निपातज्वर के आखिरी दिनो में कान की जड में एक सूजन हो जाती है, वह इतनी भयंकर है कि उसके होने पर प्रतिशत ८५ आदमी मर जाते हैं। जब दोष बढते ही जांय, जठराग्नि नष्ट हो जाय और दाह, शीत आदि चिह्न सबके सब हो, तो रोगी बच नहीं सकता।

आगन्तुक ज्वर

अब आगन्तुक-अनायास पैदा होने वाले ज्वरो पर थोडा प्रकाश डाला जाता है। आगन्तुक ज्वर चार तरह के होने है।

(१) अभिघातज।

(२) अभिचारज।

(३) अभिषगज।

(४) अभिशापज।

२१—अभिघातज ज्वर

Traumatic fever

तलवार की चोट लगने से, लाठी पडने से, घूसा तीर आदि के प्रहार से जो ज्वर होता है, वह अभिघातज ज्वर कहलाता है। यह ज्वर कैसे होता है, यह रहस्य भी यहां समझा दिया जाता है। चोट लगने से, तलवार का घाव होने से, वायु कुपित हो जाता है, वह रुधिर से जा मिलता है, फिर सारा खेल उसी तरह से होता है। या यो कहिये कि पहिले ज्वर होता है और बाद में दोष उसके सहायक हो जाते हैं। इसमें सूजन तथा विवर्णता भी हो जाती है।

(२२) अभिचार ज्वर

उलटे मत्रो के जपने तथा मूठ वगैरह से जो ज्वर होता है, उसे अभिचारज ज्वर कहते हैं। इस में मत्रो की ताकत से अथवा दैवी गति से तीनो ही दोष विकृत होते हैं, इसलिये इसे सन्निपात भी कहते हैं। इस ज्वर में बेहोशी और प्यास ये खूब होते है।

(२३) अभिषग ज्वर

काम, शोक, भय, कोप, और भूतादि के आवेश से अभिषंगज ज्वर होते हैं। क्रोध करने से पित्त कुपित होता है, शोक से हृदय ठीक काम नही करता इत्यादि बाते सहज ही समझी जा सकती हैं। विशेष आगे लिखेगे।

(२४) अभिशाप ज्वर

ऋषि मुनियो के शाप से जो ज्वर होता है, वह अभिशापज कहलाता है। इस तरह से ये चार आगन्तुक ज्वर कहलाते हैं। काम, क्रोधादि ज्वरों के हम यहां विशेष लक्षण लिख देते हैं।

(२५) विषज्वर—कारण और चिह्न

भूल से या जानबूझकर स्थावर अथवा जंगम विष खा लेने से, अथवा कोई जहरीली दवा खाने से विष ज्वर पैदा होता है। इससे विष रुधिर को दूषित कर देता है। बाद में ज्वर होता है, इस ज्वर में मुह काला पड जाता है, दाह होता है, दस्त होते हैं, अन्न अच्छा नही लगता, प्यास लगती है, सुई चुभने जैसी वेदना होती है और बेहोशी होती है।

(२६) औषधि गन्ध-ज्वर

कहने को तो तेज दवाओ की गन्ध से ही यह ज्वर होता है, किन्तु असल में सडे-गले पदार्थों की दूषित हवा से यह उत्पन्न होता है। इसमें बेहोशी होती है, सर में दर्द होता है, छींक होती है और उल्टी होती है।

(२७) कामज्वर—कारण और चिह्न

किसी नवयुवती सुन्दरी के देखने से हृदय में उसकी कामना हो, किन्तु वह मिल न सके, तब हृदय पर गहरी ठसक पहुँचने से तथा इन्द्रिय के वेगनिरोध से ज्वर पैदा हो जाता है, पुराने जमाने मे यह बीमारी बहुत सुनी जाती थी। इसमें चित्त अस्थिर हो उठता है, बेकली हो जाती है, तन्द्रा छा जाती है, आलस्य हो जाता है, अरुचि और हृदय में दर्द ये चिन्ह होते हैं।

(२८) भयज्वर—कारण और चिन्ह

किसी दुश्मन के डर से अथवा फांसी, जेल आदि के डर से वायु बिगड़ उठता है, फिर ज्वर होता है, इसमें मारे डर के रोगी चिल्लाता है, ऊट-पटांग बकने लगता है।

(२९) क्रोधज्वर-कारण और चिह्न

जब कोई उपकार या अनिष्ट कर देता है, तब क्रोध उठता है, उससे पित्त कुपित होता है। इस ज्वर में रोगी मारे क्रोध के दाँत चबाता है, और उसकी देह कांपने लगती है।

(३०) भूतज्वर-कारण और चिह्न

वैसे तो भूत प्राणियो ही को कहते हैं, किन्तु कुछ लोगों का विश्वास है, कि भूत एक सींगदार पूंछदार और लम्बे दांत वाली कौटयो ने है। भूत इधर उधर छिपे रहते हैं, और मौका पाकर आक्रमण कर देते हैं, जो हो ज्वर हो जाता है, चित्त उद्विग्न हो उठता है. कभी रोना कभी कोपना ये भी चिह्न हो जाते हैं। अब हम विषम ज्वरो के विषय में लिखना चाहते हैं।

—:o:—

विषम ज्वर

Malarial fever

डाक्टर लोग जिन्हे मलेरिया कहते हैं, आयुर्वेद उन्हे विषम ज्वर कहता है। विषमज्वर कितनी तरह के होते हैं. यह बतलाने से पहिले हम उनके कारण

समुदाय पर विचार कर लेना चाहते है। जो ज्वर कभी आते है और कभी चले जाते है, आज बढ़ते हैं और कल चले जाते हैं, कभी खूब जोर से होते हैं और कभी बहुत हलके होते है, वे विषम ज्वर कहलाते हैं। विषम ज्वर क्यो होते हैं ?

जब कोई भी ज्वर आता है और आके शांत हो जाता है। उस समय कुछ भी नहाने धोने, खाने पीने आदि के कुपथ्य होने से, वातपित्तादि दोष फिर कुपित हो उठते है और रस रक्तादि सात धातुओ में से किसी एक को पकड़ कर फिर ज्वर कर देते हैं। कच्चे ज्वर में औषधि खिला देने से भी विषम ज्वर हो जाते है, इसको स्पष्ट रूप से यो समझा जा सकता है। आज आपको पित्तज्वर हुआ और औषधादि खाने से ज्वर शांत हो गया किंतु बाद में शीघ्र ही आपने स्नान कर लिया या और कोई कुपथ्य कर लिया, तो फिर दोष कुपित हो जायेंगे और रस रक्तादि से मिलकर विषम ज्वर पैदा कर देंगे। बेसमझी से ज्वर का बचा हुआ अंश अनुकूल सामान पाकर फिरप्रचण्ड वेग से होता है। विषमज्वर पांच तरह के होते है और कफ भी पांच स्थानो में विभक्त है। फिर वायु के द्वारा बिगड़ा हुआ अवशेष दोष कफ के स्थानो में पहुँचता है। पाचो विषमज्वरो का धातुओ से भी सबन्ध रहता है।

(३१) सन्तत ज्वर

Remittent fever

कुपित दोष जब रस को पकड़ लेते हैं, तब सन्तत ज्वर होता है। यह ज्वर हरदम एकसा रहता है। इसमें एक साथ १२ चीजे मिली रहती है। तीनो दोष, सातो धातु, मल और मूत्र, यह त्रिदोष ज्वर कहलाता है फिर भी किसी एक दोष की प्रधानता रहती है।

वात प्रधान ७ दिन, पित्त प्रधान १०दिन और कफ प्रधान १२, दिन, यह इनकी सीमा है। डाक्टरी का विश्वास इसके विषय में निम्न है—

यह ज्वर वह है जो उतरता नही, इसकी प्रारम्भिक अवस्था में थोड़ी सगसगी होती है, कई दिनो तक रहता है, रोमाञ्चहो जाता है, गर्मी और सर्दी का चढ़ाव उतार नहीं होता, कभी दस्त भी लग जाते हैं, उल्टी भी हो जाती है, कभी हाथ पांव ऐंठने लगतेहै और रोगी-बकवाद करने लगता है, जीभ मैली हो जाती है।

(३२) सतत ज्वर

Double Quotidian fever

जब दोष रक्त का पल्ला पकड़ लेते है और आमाशय को अपना अखाड़ा बना लेते हैं, तब

सनत ज्वर होता है। यह दिन रात के २४ घण्टो मेँ २ वार होता है। यह भी त्रिदोषज्वर है।

(३३) अन्येद्यु ज्वर

Quotidian fever

यह मांस का सहारा लेकर हृदय में अखाड़ा जमाता है, दिन रात में केवल एक वार आता है, और विना दवा खाये अपने आप ही शान्त हो जाता है। यह पित्त से होता है।

(३४) तृतीयक ज्वर

Tertian fever

यह ज्वर मेदागत होता है और कठ में केन्द्र जमाता है। इसको तिजारी बुखार भी कहते हैं। यह बडा पाजी ज्वर है। इसमें रीढ़ की हड्डियो में दर्द होने लगता है, पीठ दुखने लगती है और सर में वेदना होने लगती है। यह पृथक् २ दोषो की प्रधानता से होता है।

(३५) चातुर्थिक ज्वर

Quartan fever

यह हड्डियो तथा मज्जा में घुस जाता है, इससे बीच में दो दिन छोडकर आता है। इसे चौथिया ज्वर कहते हैं।

(३६) वातबलासक ज्वर

Beri beri

डाक्टर जिसे वेरी वेरी कहते हैं, आयुर्वेद के मत से यह वातबलासक ज्वर है। इसमें कफ का प्राधान्य रहता है। इसके चिह्न ये हैं-रोज मन्द मन्द ज्वर रहे, शरीर मे स्त्यापन और रूखापन हो जाय, देह स्तब्ध रहे और कफकी अधिकता हो।

(३७) प्रलेपक ज्वर

यह ज्वर कष्टसाध्य होता है। इसमें देह में कंपकपी सी आने लगती है, पसीने और भारीपन से शरीर लिप्त और गुम सा रहता है. ज्वर थोड़ा थोड़ा रहता है तथा इसमें भी कफ की प्रधानता रहती है। अस्तु, इस ज्वर मे अगर सुवह पसीना आता है, तो रोगी मर जाता है।

(३८) शरीरार्द्ध ज्वर

इसे नरसिंह ज्वर भी कहते हैं। जब रस दुष्ट हो जाता है तव कफ और पित्त भी दुष्ट हो जाते हैं। इससे कफ के कारण आधा शरीर ठडा रहता है और पित्त के कारण आधा गरम रहता है।

(३९) शीत हस्त पाद ज्वर

जव दूषित पित्त कोठे में रहता है और विकृत कफ हाथ पैरो में, तव शरीर में गरमाई रहती है और हाथ पैरो में ठडक।

(४०) उष्ण हस्त-पाद ज्वर

जव दूषित कफ कोठेमे और दूषित पित्त हाथो और पैरो मे रहता है, तव शरीर में ठंडक और हाथ पैरो में गरमाई रहती है, अव सप्त धातुगत ज्वरो पर भी थोडा प्रकाश डाला जाता है।

(४१) रसगत ज्वर

शरीर में भारीपन, जी का मिचलाना, ग्लानि ओकारी, अरुचि, दैन्य ये चिह्न रसगत ज्वर में होते हैं। रस प्रथम धातु है, इसके वाद दूसरा नं० रक्त का है।

(४२) रक्तगत ज्वर

इस ज्वर में थूक के साथ खून आता है, दाह होता है, वेहोशी होती है, वमन और भ्रम होता है, रोगी प्रलाप करता है, देह में खून की खरावी के कारण फुन्सियां आदि होने लगती है। यहां से आगे ज्वर तीसरे धातु मांस में घुसता है।

(४३) मांसगत ज्वर

पिडलियो में रुकावट सी होना, जैसे किसी ने वेत फटकारे हो, प्यास लगना, मल-मूत्रका अधिक होना, देह के अंदर गर्मी और दाह होना, हाथ पांव इधर उधर फेंकना और ग्लानि होना। अब मेद का ४ नं० आता है।

(४४) मेदोगत ज्वर

पसीना खूब आवे, प्यास खूब लगे, वेहोशी हो. प्रलाप और वमन हो, शरीर में बदबू आवे, ग्लानि के साथ अन्नमें अरुचिहो और असहिष्णुता हो जाय। फिर अस्थि का नं० आता है।

(४५) अस्थिगत ज्वर

हड्डियो में बींधने की जैसी वेदना हो, पेट बोलने लगे श्वास उठे, दस्त और कै हो, ये चिह्न अस्थिगत ज्वर में होते हैं। आगे मज्जा का ६नं०है।

(४६) मज्जागत ज्वर

अंधेरी आना, हिचकी और खांसी चलना, शीत लगना, उल्टी होना, शरीर में दाह होना, जोर का सांस उठना मर्म-स्थलों में दर्द होना, य चिन्ह मज्जागत ज्वरमें होतेहैं। इसके आगे सातवे नं० में वीर्य है।

(४७) शुक्रगत ज्वर

इस ज्वर में लिंगेन्द्रिय जकड़ जाती है और वीर्य खूब निकलता है। यह असाध्य है।

(४८) प्राकृत ज्वर

Seasonal fever

वर्षा के दिनो में वायु कुपित होता है, शरत ऋतु में पित्त और वसन्त में कफ कुपित होता है। यह एक निरपवाद नियम है। अगर वायु के समय में वातज्वर हो यानी वर्षाकाल में वातज्वर हो, शरद् काल में पित्तज्वर हो और वसन्त में कफ ज्वर हो. तो यह प्राकृत ज्वर कहलाते हैं। ये अपने २ समय में होते हैं। इसके विपरीत अगर वर्षाकाल में पित्तज्वर हो, शरद् में कफज्वर हो, वसन्त में वातज्वर हो, तो यह असमय होने के कारण वैकृत ज्वर कहलाते हैं। यही इनका रहस्य है।

वर्षा में वायु दुष्ट होकर, पित्त और कफ को साथ में लपेटकर ज्वर करता है। उस समय एकतो स्वभाव से ही वायु बढ़ा रहता है और अगर आहार-विहार भी वायु को बढ़ानेवाला हुआ तो बस खैर नहीं। झट ज्वर बन जायगा। इसी तरह शरद्काल में एक तो वैसे ही पित्त बढ़ा हुआ रहता है, फिर अगर आहार-विहार भी उसे बढ़ानेवाला हुआ तो ज्वर हुआ समझिये। वसन्त में कफ बढ़ता है, उस समय कफ को बढ़ानेवाले आहार-विहार से निश्चय ज्वर होता है।

(४९) वैकृतज्वर *Perenneal fever*

जो ज्वर प्राकृत न होकर अप्राकृत हो, उसे वैकृतज्वर कहते हैं। वर्षा में वायु बढ़ता है, उस समय वातज्वर न होकर, अगर पित्तज्वर हो तो उसे वैकृतज्वर कहते हैं। प्रायः सभी प्राकृतज्वर साध्य होते हैं और वैकृतज्वर कष्टसाध्य होते हैं। अस्तु।

किसी ज्वर का वेग भीतर में अधिक होता है और किसी का बाहर में, इसलिये अन्तर्वेग और वहिर्वेग ये दो भेद भी ज्वर के माने जाते हैं।

(५०) अन्तर्वेगी ज्वर

शरीर के अन्दर प्रदाह हो, प्यास खूब लगे, प्रलाप, श्वास, भ्रम हो, सन्धियो में और [हड्डियो में शूल उठे पसीना बन्द हो जावे, दोषो और मल की रुकावट हो जाय, ये चिह्न अन्तर्वेगीज्वर के होते है। यह पाजी ज्वर भीतर ही भीतर खिचड़ी पकाता है।

(५१) वहिर्वेगी ज्वर

बाहर सन्ताप अधिक हो, प्यास आदि चिह्न थोड़े हो ये चिन्ह वहिर्वेगी ज्वर मे होते है।

(५२) गम्भीरज्वर

भीतर दाह हो, प्यास लगत हो, दोष और मल जहां के तहां रुक गये हो, सांस और खांसी खूब जोर से हो, चेहरे की कांति बिगड़ जाय, इन्द्रियां अपने काम से स्तीफा दे दें, चित्त दुर्बल

और खराब हो जाय और हिचकी आदि उपद्रव हो जांय, ये चिह्न गम्भीर ज्वर में होते हैं। यह ज्वर प्राण लेकर ही पिंड छोड़ता हैं।

कच्चा, पकनेवाला और पक्का ये तीन भेद ज्वर के और हैं उन्हें भी लिखते हैं।

(५३) आमज्वर

अरुचि, अविपाक, पेट का भारीपन, हृदयकी अशुद्धता, तन्द्रा, आलस्य ज्वर का एक सा रहना जोर रहना, दोषों का भीतर ही भीतर खलबली मचाना, लारगिरना, सूखी डकारें आना, अन्न में दुश्मनी होना, मुंह में लिबलिबापन रहना, देह में स्तब्धता, सुप्तता और गौरव रहना, मूत्र खूब होना, मल का कच्चा निकलना, देह में चिकनाई सी रहना ये चिह्न कच्चे या आमज्वर के होते हैं।

(५४) पच्यमान ज्वर

ज्वर का वेग, प्यास अधिक, बकवाद, श्वास, भ्रम, मल उतरना और उल्टी सी आती मालूम होना, ये पच्यमान पकनेवाले ज्वर के चिह्न होते हैं।

(५५) पक्वज्वर

अन्न में रुचि, देह में कृशता और हलकापन, ज्वर मन्द, अधोवायु निकलना और मन में प्रोत्साहन ये चिह्न निराम या पक्वज्वर के होते हैं।

(५६) जीर्णज्वर (हेकटिक फीवर)

जो बुखार २१ दिनके बाद सूक्ष्म होकर शरीर में रहता है और तिल्ली तथा मंदाग्नि को बढ़ाता है, वह जीर्णज्वर कहलाता है। २१ दिन तक सब तरह के बुखार भाग जाते हैं, यह नियम है।

(५७) सांयोगिक ज्वर

जो बुखार दूसरे रोगो के साथ में या पीछे होता है, उसे सायोगिक ज्वर कहते हैं। दिक का बुखार सांयोगिक है। तिल्ली के बढ़ने से होनेवाला बुखार सांयोगिक है। इसी तरह खांसी, श्वास आदि रोगो में जो ज्वर होता है, वह सांयोगिक कहलाता है।

(५८) प्रसूत ज्वर

बच्चा पैदा होने के बाद में जो बुखार होता है उसे प्रसूतज्वर कहते हैं। यह उस समय रक्त रोध या अन्य कुछ खराबी होने से होता है। इसका स्पष्ट वर्णन प्रसूता के रोगो में होता है।

(५९) गर्भज्वर

कभी-कभी नवीन गर्भवती स्त्रियो को भी ज्वर हो जाता है, बच्चे के इधर उधर डोलने से शारीरिक ताप बढ़ जाता है, यह बिना दवा के ही आराम हो जाता है।

(६० बालज्वर

दुधमुहे बच्चों को भी ज्वर होता है। इसका वर्णन 'बालरोग' प्रकरण में देखिये।

(६१) मोतीज्वर (मोतीझरा)

इसके विषय में बहुत मतभेद है। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथो में इसका उल्लेख नहीं है। इसे मन्थर ज्वर भी कहते हैं, मधुरक भी कह देते हैं, और बहुत से इसे मसूरिका का भेद भी मानते हैं। एलोपैथिक विद्वानो की भी धारणा इसके विषयमें एक नही है। इसमें लाल-लाल फुन्सियां निकलती हैं, इसलिये बहुत से इसे *Scarlet fever* कहते है बहुत से *Typhoid fever* मानते हैं। जांच करने पर न यह लाल बुखार होता है, न टाईफाइड। मसूरिका का भेद मानने वालो की बातो में तो कोई तत्व ही नहीं है।

हम इसे और कुछ न मानकर केवल मोती ज्वर ही मानेंगे। इसके और पित्तज्वर के चिह्न अधिकांश में मिलते जुलते हैं। इस लिये खासतौर से इसमें पित्त बिगड़ता है, यह बात कहदेने में कोई आपत्ति नहीं है। यह ज्वर भयानक होता है और कम उम्र के बच्चो तथा बुड्ढो को कम होता

है, किंतु जब इन्हें होता है, तब खूब जोरों से होता है, जवान आदमी और कुछ वयस्क बच्चे इसके खूब शिकार होते हैं और बहुत से मर ही जाते हैं इसमें जब तक फुन्सी नहीं निकलती, दशा बहुत ही नाजुक रहती है।

घूमने फिरने, आगी में तपने, केले और बेर अधिक खाने, गरम, खट्टी, चरपरी, चाट के अधिक खाने, कब्ज रहने, अजीर्ण रहने आदि से यह रोग होताहै। भादों आसौज (आश्विन)और कार्तिक में यह अधिक होता है, वैसे कभी भी हो सकता है।

मोतीज्वर के स्पष्ट चिह्न

शुरू में बुखार की हरारत सी होती है, भूख ठीक नहीं लगती, अरुचि हो जाती है और मुंह का स्वाद फीका पड़ जाता है। बाद में धीरे २ शारीरिक ताप बढ़ता है और १०३-१०५ डिगरी तक पहुँच जाता है। उस समय पसीना नहीं आता और आता है तो, उसमें बदबू आती है। दस्त लगने लगते हैं कै होने लगती है, नींद नहीं आती प्यास बहुत लगती है, दाह होता है, भ्रम होता है रोगी मुग्ध हो जाता है, जीभ सूख जाती है, मुंह और तालु भी सूख जाते हैं, होठों पर काली या पीली पपड़ियां जम जाती हैं, नाक से गरम सांस आता है पेशाब कम होता है पीला होता है और कभी कभी रुक भी जाता है। इसी समय गरदन के ऊपर सरसो जैसे सफेद या गुलाबी दाने निकलतेहैं, दाने फिर धीरे-धीरे छाती पर आते हैं, कभी-कभी यहां आकर वे अदृश्य हो जाते हैं, जिससे हालत और भी खराब हो जाती है। रोगी प्रलाप करने लगता है, नाड़ी बहुत तेज चलने लगती है, मुंह और आंखें लाल हो जाती हैं, पैरों के तलवे फट जाते हैं और देह की सारी चमड़ी खुश्क पड़ जाती है।

दाने फिर सहसा दिखाई देने लगते हैं। कभी-कभी यह दाने २-३ दिन बाद दीखतेहैं, कभी ४-५ दिन बाद। दाने फिर पेट पर आते हैं, इस समय इन दानों की संख्या एक दरजन के भीतर रहती है, और हलकी नजर से वेदिखलाई भी नहीं पड़ते। इस समय सूखी उबकाई होती है। दस्त या तो एक दम बन्द हो जाता है, या काला और बदबूदार होता है, दस्त कभी २ पीला भी होता है छाती की दांयी तरफ दर्द होता है, पेट में अफारा हो जाता है, तिल्ली बढ़ जाती है, सादी खांसी हो जाती है, और नाक की जगह मुंह से सांस आने लगता है। बच्चों के सर में बड़ा दर्द होता है। एक सप्ताह के भीतर अगर दाने पेट से नीचे आ जाते हैं और वहां से पेड़ू पर आकर नीचे उतर आते हैं, तो रोगी आराम हो जाता है. वरन् बाद में फिर भयानक दशा होती है, न्योमोनियां हो जाता है, हृदय की झिल्ली सूज जाती है, मल-मूत्र कम होने हैं. या रुक जाते हैं, एकदम कमजोरी आ जाती है। इस समय हृदय की गति रुक जाने से मौत भी हो जाती है, सुबह ज्वर कम और रात में अधिक होता है, दूसरे सप्ताह के अंत में बहुत आदमी ठीक हो जाते हैं, मगर बहुतों के दाने उस समय भी ठीक नहीं निकलते, निकल-निकलकर छिप जाते हैं, फिर तीसरे सप्ताह के अंत में दाने निकलकर साफ हो जाते और रोगी चंगा होजाता है। ७-१५-२१-४१-६२-८२ इतने दिनों तक कभी-कभी रोगी आराम नहीं हो पाता। कभी ७ दिन में दाने निकलकर साफ हो जाते हैं, कभी १५ दिन में, कभी २१ दिन में भी नहीं और कभी ८२ दिन तक रोगी का पिंड नहीं छूटता। बीच में अगर विशेष उपद्रव हो जाता है तो रोगी मर जाता है।

संयुक्तरोग

(१) हृदयावरक झिल्ली की सूजन।

(२) फेफड़े की सूजन।

(३) तिल्ली और यकृत की सूजन।

(४) हृदय की गति का रुकना।

(५) गुर्दे और मसाने की सूजन।

(६) सर दर्द।

(७) प्रलाप।

(८) आंतो से खून गिरना।

(९) आँतो का फटना और उनमें घावहोना।

(१०) अधिक निद्रा या अनिद्रा, ऐसे-ऐसे और भी रोग हो जाते हैं।

ज्वर के घातक चिन्ह

(१) जब आंखें लाल हो जाती हैं, हृदय में घातक शूल उठने लगते है, मुह से सांस आने लगता है, और रोमाञ्च हो जाता है, तो रोगी नहीं बच पाता।

(२) जब हिचकी चलने लगती है, श्वास उठने लगता है, प्यास पर प्यास लगने लगती है, आंखे भ्रांत हो जाती है, जोर-जोर से लगातार सांस आने लगता है, और मोह हो जाता है, तो रोगी मर जाता है।

(३) जब शरीर की कांति नष्ट हो जाती है, इन्द्रियां अपने काम से जवाब दे देती हैं, शरीर क्षीण हो जाता है, ज्वर गम्भीर या एकदम तेज होता है, तो रोगी खतम हो जाता है।

(४) जब होश हवाश विगड जाते हैं, रोगी मूढ हो जाता है, कभी सोता है और कभी उठता है, तथा बाहर में शीत और अन्दर में गर्मी होती है, तो जीना असम्भव हो जाता है।

(५) जब जीभ खरदरी और नीली, पीली हो जाती है, गरम सांस आने लगताहै, रोये खड़े हो जाते हैं, आंखें नीली, लाल या पीली होजाती हैं, गले में घरघर आवाज होने लगती है, तो जिन्दगी मुश्किल है।

(६) जब मुंह से जल्दी२ सांस आने लगता है, दांत काले हो जाते हैं, आंखे रुक जाती हैं और सहसा शरीर में ताकत आ जाती है, तो रोगी मर जाता है।

(७) मुंह से खून गिरने पर, सर में जोर से दर्द होने पर, बाहर गर्मी और अन्दर ठंड होनेपर रोगी मर जाता है।

(८) जब ज्वर शुरू में ही विषम होजाता है बहुत दिन का हो जाता है, और रोगी एकदम कमजोर होजाता है, तो जीना मुश्किल होता है।

ऐसे ही और भी बहुत से चिह्न आयुर्वेद में बतलाये हैं, किन्तु सबका उल्लेख करना हम अनावश्यक समझते है—इसलिये कि इन चिह्नो के होने पर भी बहुत से रोगी बच जाते हैं।

यह भी बात याद रखने की है, घातक चिह्नों से सब नहीं मरते, अधिकतर मर जाते हैं। पाठको की जानकारी के लिये अन्यत्र हमने सब रोगो के घातक चिह्नो की एक लम्बी सूची दी है आवश्यकता होने पर वहां देख सकते हैं।

प्लेग

Plagua

प्लेग शब्द न भारतीय है, न यूनानी, यह यूरोपियन शब्द है। प्लेग को ताऊन भी कहते हैं, महामारी भी कहते हैं, मगर सन्निपात कोई नहीं कहता। इसके विषय में अभी तक कोई निश्चय धारणा नहीं हुई है। इन पंक्तियो का लेखक इसे छूतदार सन्निपात समझता है, प्लेग संक्रामक रोग है। और महा भयकर, यह सभी जानते हैं। किंतु भारतीय वैद्यों ने अभी तक इसके विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर नहीं किया है। मैं यहां

पर इसे छूतदार सन्निपात सिद्ध करने की कोशिश करूंगा। आगे चलकर प्लेग का एलोपैथिक विवेचन भी किया जायगा।

प्लेग का नाम ही हृदय को कपा देने वाला है इसकी भयंकरता को यादकर कलेजा कांप उठता है। इतिहास में भी इस पाजी रोग का उल्लेख मिलता है। सबसे पहिले ईसा के ४३ वर्ष पूर्व यह 'एथेन्स' शहर में हुआ था, जिससे हजारों आदमी इसके चपेट में आये और सारा शहर तबाह हो गया। लोग इसे शैतानी बला कहने लगे थे। वहां से चलकर प्लेग मिश्र में पहुंचा और वहां पर इसने अपना खौफनाक नजारा दिखलाया। १६६७ में इसने इङ्गलैंड पर धावा किया, फिर कुस्तुन्तुनियां पर इसका धावा हुआ और १७९६ में फिर एकबार इसने इङ्गलैंड को पछाड़ा।

मुगलकालीन इतिहास से मालूम पड़ता है कि भारत में १३४५ में प्लेग का श्री गणेश हुआ। १५६० में काशी इसका केन्द्र बना, १६१२में काशी के साथ आगरे में भी इसका ताण्डवनृत्य हुआ। १८१४ में गुजरात में १८२६ में बरेली में और १८३७ में हिसार में इसका सघारक रूप लोगो के सामने आया।

आज से कोई ३५ वर्ष पहिले यह बम्बई में हुआ जिसका कारण जहाजो में मरे हुये चूहो का आना था। १९०४ और १९०७ का प्लेगतो जवानो को भी याद होगा, जिसमें लाशें गाड़ियों पर लाद लाद कर फेंकी गई थी। एक एक घर से दस दस लाशें निकलती थीं। फूंकने वाले दुर्लभ हो गये थे। हजारो सुन्दरियो का सौभाग्य सिंदूर पुंछ गया, सैकड़ो माताओ की गोदसे उनके बच्चे छिन गये और दर्जनो बच्चो से बाप बिछुड़ गये, और अब तो जगह-जगह प्लेग के समाचार छपा करते हैं। आज आगरे में प्लेग है, तो कल दिल्ली में है, कल अहमदाबाद में थी तो आज पूना में है। न अब प्लेग से लोगों को उतना डर ही लगता है, जितना कि पहिले लगता था। अब तो प्लेग का होना भी और रोगो की तरह साधारण सी बात रह गई है।

प्लेग छूतदार रोग है। यह एक से दूसरे को लगता है। एक घर में होने पर सारे गांव में फैल जाता है। प्लेग के विषय में विद्वानों के ३ मत हैं—

१—प्लेग विसर्प है।

१—प्लेग मूषिक विष है।

३—प्लेग अग्निरोहिणी है।

हम यहां पर यह भी बतला देना चाहते हैं, कि प्लेग न विसर्प है, न मूषिका विष और न अग्निरोहिणी। प्रत्येक का तात्विक खण्डन भी हम यहाँ बतलाये देते हैं।

१—प्लेग विसर्प नहीं है

विसर्प एक फैलने वाली सूजन है जो खारी, खट्टे, तीखे आदि पदार्थों के अधिक खाने से होती है। बिना दोषो के बिगड़े विसर्प नही होता और दोष बिगड़ते हैं अहित आहार विहार से। प्लेग को विसर्प कहने वाले इन प्रश्नो का उचित उत्तर नहीं दे सकते।

(क) विसर्प संक्रामक रोग नहीं है। किन्तु प्लेग संक्रामक है।

(ख) विसर्प एक सूजनमय रोग है; किन्तु प्लेग में सूजन का होना अनिवार्य नहीं है।

(ग) विसर्प और प्लेग के लक्षणो में बहुत आकाश पाताल का अन्तर है।

(घ) प्लेग चूहो पर आक्रमण करता है, किंतु विसर्प चूहो को नहीं होता और अक्सर प्लेग में पहिले चूहे ही मरते हैं।

(च) प्लेग में कीड़े होते हैं जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखे जाते हैं, विसर्प में कोई कीड़े नहीं होते।

(छ) जब खारी, खट्टे आदि पदार्थों के खाने पर विसर्प होता है, तो क्या सारा देश ही एक साथ इन पदार्थों को खाने लगता है ?

अलावा इसके प्लेग की शीघ्र मारकता भी एक विचारणीय वस्तु है, कोई भी विसर्प होने के साथ घातक नहीं होता।

(२) प्लेग मूषिक विष भी नहीं है

अच्छा तो यह है कि आयुर्वेदोक्त १८ प्रकार के चूहो का भी यहां निर्देश कर दिया जाय।

(१) लालन, (२) पुत्रक, (३) कृष्ण, (४) हसिर, (५) चिकिर, (६) छछून्दर (७) अलस, (८) कषाय दशन, (९) कुलिंग, (१०) अजित, (११) चपल, (१२) कपिल, (१३) कोकिल, (१४) अरुणषंग, (१५) महाकृष्ण, (१६) महाश्वेत, (१७) कपिलाखु और (१८) कपोताभ।

जहां इनका वीर्य गिरता है, तथा इनके मल मूत्रादि से स्पर्श हो जाता है, वहां खून खराब होने पर गाँठ, सोजा, चकत्ते आदि चिह्न हो जाते हैं।

बिना चूहो के मल मूत्रादि के स्पर्श के कुछ भी खराबी नहीं होती। चूहो के जहरसे होनेवाली विकृतियां चूहो की जैसी ही होती है।

अब प्रश्न उठ सकते हैं—

(क) चूहो का जहर बिना स्पर्श के खून को खराब नहीं कर सकता, किन्तु प्लेग में बिना चूहो के भी गिलटियां निकल आती हैं, जिस घर में चूहे नहीं होते, वहां भी प्लेग हो जाता है।

(ख) चूहा जिस जगह काटता है, वहीं गिल्टी निकल आती है, किंतु प्लेग की गिल्टी हमेशा संधि स्थानों में निकलती है। क्या सभी चूहे जानबूझ कर सधि स्थानों में काटते हैं ?

(ग) चूहों के काटने पर चकत्ते होते हैं, किंतु प्लेग में ऐसा नहीं होता।

(घ) चूहे के काटने की गिल्टी एक ही जगह निकलती हैं किंतु प्लेग की गिल्टी एक ही रोगी के ३-४ जगह निकलती है।

(च) चूहो का जहर संक्रामक नहीं है, किंतु प्लेग सक्रामक है।

(छ) चूहे खुद अपने जहर से नहीं मरते, किंतु प्लेग में चूहे खूब मरते हैं, साथ ही चूहो का जहर हमारे लिये घातक हो सकता है। किंतु प्लेग में तो ये हमारे लिये खतरे की घण्टी का काम देते हैं।

(ज) चूहे के जहर की गिल्टियां चूहों जैसी होती हैं, किंतु प्लेग की गिल्टियां ऐसी नहीं होतीं।

३—अग्निरोहिणी भी प्लेग नहीं है

(क) अग्निरोहिणी हमेशा कांख में निकलती है। किन्तु प्लेग दूसरे स्थानों में खूब निकलता है।

(ख) प्लेग छूतदार है, अग्निरोहिणी नहीं। अब प्लेग छूतदार सन्निपात बतलाने के पहिले यह बतला देना ठीक है कि प्लेग क्यो होता है ?

प्लेग क्यों होता है ?

चरक पढ़ने वाले पाठको को शायद मालूम होगा कि विमानस्थान' में 'जनपदोध्वंसनीय' नामक स्थान का वर्णन हुआ है। भगवान पुनर्वसु ने गंगा के किनारे टहलते हुये इस अध्याय की कथा सुनाई है। उन्होने अग्निवेश से कहा है—

"अग्निवेश ! नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, पवन, अग्नि, और दिशाओ के स्वाभाविक कार्यों में परिवर्तन होने लग गया है, ऋतुएं अपनी स्वाभाविकता को छोड़े जा रही हैं, थोड़े दिनो में औषधियो के रस, वीर्य आदि को नष्ट कर डालेगी, मानव शरीर रोगी रहने लगेगा, ऋतु, काल, जल वायु आदि के विकार से नये २ रोग पैदा होंगे

और वे देश को बरबाद कर डालेंगे। इसलिये हमें पहिले ही से उपयुक्त दवाओं का संग्रह कर लेना चाहिये, ताकि वे समय पर काम दें।"

इसके ऊपर अग्निवेश ने पूछा—

"भगवान्! यह सब होता क्यों है? क्यों सब में विकार पैदा हो जाता है?"

इसके उत्तर में भगवान् पुनर्वसु ने कहा—

"यह सब अधर्म के कारण होता है।"

अधर्म शब्द पाठकों को चक्कर में डाल सकता है और इसके कई अर्थ लगाये जा सकते हैं।

धर्म के स्पष्ट मानी हैं—अकर्तव्य—नहीं करने योग्य कार्य, जिन कार्यों के करने से, देश समाज और आत्मा की अवनति हो, वह सब अधर्म है। उपकार करना, दयालु होना, देश और समाज की सेवा करना सबका कर्तव्य है। लोभ, पाप, व्यभिचार आदि अधर्म हैं, अकर्तव्य हैं और इन्हीं के करने से धर्म का ह्रास होता है।

अधर्म—अकर्तव्य आजकल खूब उन्नति पर है। बीसवीं सदी के जेण्टिलमैनों को कर्तव्य और अकर्तव्य का कुछ भी ध्यान नहीं है। इस समय तो वही धर्म है, वही कर्तव्य है, जिससे रुपया मिलता है, अतिरिक्त इसके सब कुछ अधर्म और अकर्तव्य है। हत्या करने में अधर्म नहीं, चोरी करने में अधर्म नहीं और व्यभिचार करने में तो अधर्म के बाप का देना ही क्या आता है? चारो तरफ अन्याय का साम्राज्य है, किसानो के गले पर छुरियां चल रहीं हैं और धनियों के कुत्ते रसगुल्ले उड़ा रहे हैं, चारो तरफ रिश्वत का बाजार गर्म है, ईमानदारी की छाती में छुरी भोंकी जा रही है, और स्वाधीनता की नाक सफा की जा रही है कुमारियो पर बलात्कार हो रहे हैं, दस दस वर्ष की अबोध बच्चियां विधवा हो रहीं हैं। गंगा की गोद में गर्भ गिराये जा रहे हैं और मन्दिरो में खुलके व्यभिचार हो रहा है।

आज तपोभूमि भारत दरिद्र और पराश्रित बन रहा है, ऋषियों के आश्रमों की जगह लम्बीर मीलें खड़ी हैं, वेदध्वनि की जगह मोटरो का भोंपू है और न्याय के स्थान पर अन्याय है। ऐसी दशा में देश, काल में परिवर्तन होना अस्वाभाविक नहीं पृथ्वी अपने गुण को छोड़ रही है, ऋतुयें बदल गई है, मेघ पानी नही बरसाते।

ऐसे रोगों के पैदा होने में ४ बातें और हैं—

(१) वायु का बिगड़ना,

(२) जल का बिगड़ना,

(३) देश का बिगड़ना और

(४) काल का बिगड़ना।

(१) वायु के बिगड़ने पर बसन्त में गर्म हवा चलती है, ग्रीष्म में जाड़ा पड़ता है, वायु गीला हो जाता है, बहुत जल्दी चलता है, कठोर और ठंडा हो जाता है, गर्म और रूखा हो जाता है, क्लेदकारक हो जाता है और उसके बहने पर आवाज होने लगती है, दो तीन दिशाओं से चलता है, टक्कर खाता है, मिट्टी से मिला हुआ होता है और मानव शरीर में विकार पैदा करता है

वायु की ये खराबियां तो हम देखते ही रहते है ऋतुओ का बदलना तो हमारी नजरो में स्वाभाविक सा ही हो गया है।

(२) देश जब बिगड़ता है तो—

उसमें एकदम परिवर्तन हो जाता है, आकाश में पक्षी उड़ने लगते हैं, अधिक तादाद में गीदड़ और कुत्ते रोने लगते हैं। चूहे आदि जानवर मरने लगते हैं। शहरों में रौनक नहीं रहती, पहिले जिस चीज को देखने से हर्ष होता था, उसे देखकर जी खराब होने लगता है।

(३) जल जब बिगड़ता है तो—

उसके स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं—उसे पक्षी तक नहीं पीते, उसमें कीड़े बिलबिलाने लगते

हैं, बदबू आने लगती है; छूने पर खराब मालूम होता है और उसके पीने पर विकार पैदा होने लगते हैं।

(४) काल के विगडने पर—

बसन्त में लू चलना, गर्मी में जाडा पडना, आदि विकृति होती है। अस्तु,

प्लेग होने के समय प्रायः ये सभी बातें होती हैं चूहे आदि जानवर होतेहैं भी बहुत और मरते हैं भी खूब, आकाश में पक्षी भी बहुत उड़ने लगते हैं, आबोहवा एकदम बिगड़ जाती है। यह सब होने पर जमीन की तह में जहर पैदा होता है, जिससे सब से पहले चूहे ही उसके शिकार होते हैं

डाक्टरो ने बतलाया है, कि जमीन की तह से ४०-५० इञ्च नीचे ये कीड़े होते हैं। पहिले इन्हे पिस्सू खाते हैं, फिर वे चूहों से चिपट जाते हैं। कीड़े बहुत ही छोटे होते है, जो आंखो से नहीं देखे जा सकते। धीरे धीरे चूहो के सहारे ये कीड़े बाहर फैलतेहैं और फैलते-फैलते इधर उधर चारो तरफ फैल जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि, कीड़ो वाला जहर दवा और पानी में मिलकर भी इधर उधर फैलता है। प्लेग के समय जमीन खोदने पर एक बुरी तरह की गैस निकलने लगती है। प्लेग का जहर हवा के सहारे बहुत जल्द अपना घातक रूप दिखलाता है। प्रकाश और सफाई से हीन मकानो में प्लेग बहुत जल्दी होता है। प्लेग के जहर से जब चूहे मर जाते हैं, तो कीड़े निकल जाते हैं और चूहे फूल जाते हैं। इस तरह एक दूसरे से कीड़े अपना प्रभाव दिखलाते हैं

हवा के साथ, कपड़ो के साथ और खाने पीने की चीजो के साथ कीड़े एक दूसरे को लग जाते हैं। अधिकतर पैरो के सहारे कीड़े शरीर पर आक्रमण करते हैं। रोगी के कपडो को छूने, उसके पास बैठने, नगे पांव फिरने और गन्दगी रहने आदि से कीडो को अपना असर दिखाने में बहुत ही सुविधा होती है उचित तो यह है कि रोगी की किसी भी चीज़ से स्पर्श न किया जाय।

अब हम प्लेग के लक्षण बतलायेंगे।

प्लेग के चिन्ह

शरीर में प्लेग के जहर का आक्रमण होने के बाद उसके चिन्ह प्रगट होने लगते हैं। सुविधा के अनुसार प्लेग को दो दशाओ में विभक्त कर सकते हैं—

[१] कठिन प्लेग।

[२] घातक प्लेग।

प्लेग सरल तो होती ही नहीं, यह हमेशाकठिन और घातक ही होती है। सन्निपात होने के कारण इसमें तीनो दोष बिगड़ते हैं, यह भी याद रखने की बात है।

१—कठिन प्लेग

जहर घुसने के ४ घटे से ३२ घटे बाद इसके चिह्न प्रगट होने लगते हैं। शुरूमें कीड़े जब खून में मिलते हैं तो आलस्य आने लगता है, बेचैनी होने लगती है, धीरे-धीरे खून के एक दम खराब होने पर तेज बुखार हो जाता है, जिससे टेम्परेचर १०२ से-१०६ तक पहुँच जाता है। दोषो में उफान आने लगता है, तीनो दोष इधर उधर छलाँग मारने लगते है।

अफरा उठना, शूल चलना, बेहोशी आदि उपद्रव होने लगते हैं। बाद में सन्धि स्थानो में गिल्टी निकलती है कभी कई गिल्टियां भी निकल आती हैं। गिल्टी निकलने पर बुखार १०६ डिग्री तक पहुँच जाता है। कम्प, प्रलाप, स्वेद, दाह, मोह आदि चिह्न जोरो से प्रकट होने लगते हैं, फेफड़े सूज जाते हैं, हृदय सूज जाता है, और कभी कभी तिल्ली भी सूज़ जाती है। किसी को दस्त होने लगते हैं, किसी को कै, ३-४ दिन में गिल्टी पक

जाती है, और कभी कभी बैठ भी जाती है उचित उपचार होने पर रोगी के बचने की सम्भाबना रहती है।

कभी जहर के बहुत कम होने पर ३-४ दिन बाद भी चिह्न प्रगट होते है।

घातक प्लेग

जहर घुसने के दो चार घंटे बाद ही देह टूटने लगती है, फिर तेज ज्वर हो जाता है जो ११० डिग्री तक पहुंच जाता है रोगी वेहोश होजाता है, ३-४ घंटे में ही गिल्टी निकल आती है, और अगर कान या आंख के पास निकलती है तो रोगी को बहुत जल्द मार डालती है। फेफड़ा सूजने से बोलती बन्द हो जाती है, सांस रुक २ के आने लगता है। खून की गति बहुत तेज होकर धीरे २ बन्द होती २ एकदम बन्द हो जाती है, जिससे सारा शरीर नीला या काला पड़ जाता है, इसमें १२ घन्टे के भीतर रोगी यमधाम को पहुंच जाता है, बहुत से रोगी इसमें खूनी कै भी करने लगते हैं।

डाक्टरो और कविराजो के देखते २ उनका शिकार पन्जे से छुट जाता है। इस प्लेग में बचना एकदम असम्भव नहीं तो असम्भव के बराबर ही है।

एलोपैथी से प्लेग के लक्षण

असल मे डाक्टरी मत में प्लेग कई तरह की होती है, जिस खास अंग से उसका सम्बन्ध होता है उसी के नाम से उसे सम्बोधित करने लगते हैं कारण का बर्णन पहिले हो चुका है यहां भिन्न २ प्लेगो के लक्षण ही बतलाये जावेंगे।

(१) टाईफाइड प्लेग।

प्लेग के और चिह्नो के सिवा इसमें सन्निपात भी हो जाता है, जिससे इसे टाईफाइड प्लेग कहते हैं।

(२) न्यूमोनिक प्लेग।

न्यूमोनियां भी अगर साथ में हो जाय तो न्यूमोनिक प्लेग कहते हैं।

(३) हिमॉस्टेटिक प्लेग।

रक्त निष्ठीवन होने पर इस नाम से सम्बोधित करते हैं।

(४) कार्डिक प्लेग।

इसमें उन्माद के सब चिह्न प्रगट होते हैं।

(५) ब्यूबेनिक प्लेग।

जगह जगह गांठ निकलने पर इस नाम से कहते हैं।

प्लेग के चार दर्जे

१ दर्जा—२ दिन से ७ दिन तक कभी कभी दो तीन सप्ताह तक जहर देह में घुसने के बाद कोई मुख्य चिह्न प्रगट नही होता, रोग प्रबल होने पर २-४ घण्टो में ही कुछ चिह्न प्रगट होजाते हैं।

(२) दर्जा—हाथो, पैरो और माथे में पीड़ा असह्य होती है। जिस जगह गिल्टी निकलती है वहां भी कुछ पीड़ा होने लगती है। घबराहट, अरुचि, कमजोरी, शिथिलता, कै दस्त आदि उपद्रव होने लगते हैं। दो दिन तक यही चिह्न रहते हैं बाद में गले, पाँव या बगल में गिल्टी निकलती है कभी कभी बिना इन लक्षणो के ही १०७ डिग्री तक ज्वर पहुँच जाता है। प्यास, वेहोशी, आँखों की लाली, मल का सूख कर कड़ा होना ये चिह्न भी होते हैं।

(३) दर्जा—गिल्टियो में दर्द होना, काले दस्त, पेशाब की लाली, खूनीकै, फेफड़े हृदय आदि में सूजन, हांफना प्रलाप आदि चिह्न होते हैं, इस अवस्था में रोगी मर ही जाता है।

(४) दर्जा—तीसरा दर्जा पार करने पर अगर लक्षणो में कुछ अन्तर पड़ जाता है तो धीरे २ दशा सुधार पर आती है। ज्वर घटना,

मुंह का रग बदलना आदि आरोग्यता के चिह्न प्रगट होने लगते है, और रोगी धीरे २ स्वस्थ हो जाता है।

एलोपैथी से ज्वरों का वर्णन

मलेरिया फीवर *Malartar Fever*

यह वही बुखार है जिसका जिक्र विषम ज्वर में आचुका है। डाक्टर लोग इसे Intermittent fevre तथा marshfevre एवं apur भी कहते हैं। हकीम इसे 'तपेनौवती' कहते हैं।

कारण

ज्यादा गर्मी पड़ने से ही मलेरिया की भविष्य वाणी कर दी जाती है, खूब गर्मी पडने के बाद वर्षा में-उसके बाद यह बुखार फैलता है और घरके घर सफा कर देता है। मकानो की नालियों में सडने वाले गन्दे जल गन्दे पदार्थ आदि से इस बुखार के कीड़े पैदा हो जाते है। देहातो में, जलाशयो में वृक्षो की पत्तियां गिरने से सड़कर जहरीली हवा से इस रोगको पैदा करती है। इसका असल कारण गन्दावातावरण है बरावर रोगी के पास रहने से भी यह रोग हो जाता है।

(1) *Quotidian Fever* क्योटीडिन फीवर।
(2) *Tertian Fever* टरशियन फीवर।
(3) *Quartan Fever* क्वारटन फीवर।

इसकी तीन अवस्था हैं

क्यूटोडिन फीवर

पहिली अवस्था

इसे अन्येद्युः भी कह सकते हैं यह दिन मेंएक वार ही आता है और जब यह दोबार आने लगता है तब इसे डबल क्यूटोडिन कहते हैं। वर्षा में यह बुखार आता है, प्रायः यह सुबह ही चढ़ता है। इसकी पहिली अवस्था में पहिले पीठपर ठंड लगती है बाद में सारे शरीर में घुस जाती है, कभी-कभी सहसा ठंड लगने से बुखार चढ़ता है, उस समय रोगी कांपने लगता है, दांत से दाँत बजने लगता है। जी मचलाता है, प्यास लगती है भूख नहीं लगती, जीभ तर, ठडी, फीकी, और साफ रहती है। खून धीरे २ बहता है, जिसका असर नाड़ी पर भी गिरता है, रोएं खड़े होजाते हैं, होठ, गाल, कान अथा अंगुलियो के पोरवे वहां तक खून न पहुंचने से नीले पड़ जाते हैं। खून किसी जगह इकट्ठा होकर उपद्रव करता है। आमाशम में इकट्ठा होने से कै होती है, जी मचलाता है, आंतो में इकट्ठा होने से अजीर्ण होता है, दस्त भी लग जाते हैं, सिर में इकट्ठा होने से, बेहोशी होती है, सर भारी रहता है, जाड़ा लगता है और बराबर ४-५ घटे तक लगता है, टेम्परेचर १०६ तक पहुंच जाता है, ज्यादा दिन होने पर जाड़े के समय में भी घटी हने लगती है।

दूसरी अवस्था में—गर्मी बढ़तीहै, और जाड़ा धीरे २ घटता है जिससे खून की चाल तेज होती है, नाड़ी मन्द चलने लगती है। कनपटी की नसें फड़कने लगती हैं चेहरा तमतमा जाता है। सिर में दर्द बढ़ता है, रोगी बकता है। चमड़ी रूखी और लाल हो जाती है, गरम हो जाती है, क्षण २ पर प्यास लगती है, घबराहट होती है, उल्टीहोना चाहती है पेशाब कम भारी और लाल होता है।

तीसरी अवस्था में—पहिले ललाट और चेहरे पर पसीना आकर सारे शरीर में आने लगता है, जिससे जल्दी २ बुखार उतरने लगताहै कभी २ जाड़ा लगकर भी बुखार उतर जाता है।

२-टरशियन फीवर *Tertian fever*

इसे तृतीयक तिजारी कहते हैं, यह ४८ घटे के बाद आता है, इसमें गर्मी ज़्यादा लगती है, और उसका जोर बराबर ४ घटे तक रहता है। २३ घटे तक यह बुखार उतर जाता है। यह

अक्सर दोपहर में आता है, और जाड़े में आता है, अगर यह ४८ घंटे से पहिले आने लगता है। तो दशा बिगड़ती है, और ४८ घंटो से ऊपर कुछ आता है, तो दशा सुधर जाती है, कभी २ बीच में एक दिन छोड़कर तीसरेदिन यह दो बार हो जाता है, उस हालत में इसे Duplicated tartation Fever कहते हैं।

३-क्वारटन फीवर *Quartan fever*

यह चातुर्थिक चौथिया बुखार है। दो दिन छोड़कर आता है, इसमें जाड़ा बहुत लगता है, और इनका जोर ५ घंटे तक रहता है, कभी २ तो यह महीनो तक अपना असर नहीं हटाता। जब चौथे दिन यह दो वार आने लगता है तो इसे Double quartan Fever कहते हैं।

हाम ज्वर *Measles fever*

यह छूत वाला ज्वर है, और अधिकतर बच्चों को होता है, बड़ो को भी हो जाता है, और उत्कट शीत या बसन्त में यह होता है, इसका विष शरीर में घुसकर पहिले १०-१२ दिन बाद सर्दी खाँसी और छींक पैदा करता है। नाक से पानी बहने लगता है, आंखें लाल और सबल हो जाती हैं। सर मेंदर्द गले का बैठना, पीठ और हाथ पैरों में दर्द होता है, फिर बुखार होता है, ३-४ दिन बाद हाम निकल आता है, और ३-४ दिन में आप ही मिट जाता है, साथ ही बुखार भी। टेम्परेचर इसमें १०३ से १०६ तक पहुँच जाता है, कठिन दशा में प्रलाप, अरुचि, वमन, कब्ज, उदर पीड़ा, फेफड़ो में जलन, आदि चिन्ह हो जाते हैं, साथ ही दस्त भी लगने लगे और उनमें खून आने लगे तो दशा बिगड़ जाती है, हाम का बैठना, और एक दम लाल हो जाना खराब होता है।

इन्फेन्टायल रिमीटेंट फीवर

यह बच्चो का टाइफाइड फीवर है, इसका वर्णन बाल रोग प्रकरण में देखना चाहिये, अनावश्यक समझ कर यहां विशेष विवेचन नहीं किया गया है।

टायफस फीवर (सन्धिक सन्निपात)

Typhus fever

गोरों की अपेक्षा कालो को यह ज्वर कम होता है, शीतल देशो में ही इसका प्रचार ज्यादा है। और यह रोग अक्सर मिलो के कारखाने में कुलियो को तथा शहरके गन्दे हिस्से में रहने वाले गरीबो को ही अधिक होता है। आदमियो की खचापच तथा गन्दी हवा से यह रोग पैदा होता है, गन्दगी के कारण देहात भी इससे नहीं बच पाते हैं। यह छूतवाला बुखार है, श्वास और पसीना के रास्ते वह एक दूसरे को लग जाता है। बदहजमी आदि से भी इसकी उत्पत्ति हो जाती है।

पूर्व चिन्ह

बुखार चढ़ने के पहिले कभी २ जाड़ा लगता है, देह थकी सी रहती है, ग्लानि और आलस्य होते हैं, बेचैनी रहती जी मचलाता है, सर दर्द करता है, प्यास कुछ बढ़ जाती है, कमर में दर्द होता है।

स्पष्टचिन्ह

एकाएक बुखार हो जाने से चेहरे की रंगत काली पड़ जाती है, आखे लाल हो जाती है होठों पर पपड़ियां जम जाती हैं, भूख भग जाती है, नींद नहीं आती बेहोशी तक हो जाती है टेम्परेचर १०५ तक पहुंच जाता है। एक सप्ताह बाद शरीर पर काले २ दाग या फुन्सियां हो जाती हैं, २-३ दिन में ही इनका रंग बदलकर गुलाबी हो जाता है। साधारण दशा में उबकाइयां होती हैं, कब्ज रहती हैं, फिर विशेष दशा होने पर तो दशा और भी खराब हो जाती है, दाग पड़ने के बाद हालत इतनी खराब हो जातीहै, कि रोगी आनतान बकने

लगता है। बेहोश होकर बहरा तक हो जाता है, उसका मुंह फट जाता है, हाथ पांव कांपने लगते हैं। दूसरे सप्ताह से अगर बुखार नहीं उतरता है, तो ढग खराब होते हैं, बेहोशी आना, औरबेहोशी मेंही मलमूत्र निकल जाना आदि चिह्न होजाते हैं, दशवें दिन से ज्वर घटता है, और ४–५ दिन में बिलकुल ही नही रहता। फिर भी अगर बुखार नहीं हटता तो जोड़ों में सूजन हो जाती है, जीभ रूखी, भूरी और काली पड जाती है, मुंह में बदबू आती है, हड्डियां तक दुखने लगती हैं, हर दम तन्द्रा बनी रहतीहै, करवट तक नहीं लीजाती पेशाव होता नहीं, होता है तो कम, और उनका रंग लाल हो जाता है, १४ से २१ दिन बराबर यह बुखार बना रहता है।

प्योर परल फीवर

Puerperal fever

यह प्रसूत ज्वर है जो बच्चा होने के बाद होता है। प्रसवकालीन खराबी, खेडी का टुकडा रुकने, गर्भाशय में चोट लगने आदि से होता है, इसका विशेष वर्णन प्रसूति रोगो के प्रकरण में प्रसूतज्वर में देखना चाहिये।

टाइफाइड फीवर *Typhoid Fever*

टाइफस और टाइफाइड में केवल कीटाणुओ का ही अतर है। साथ ही इसके दोनो के चिन्ह भी प्रायः मिलते जुलते ही हैं। यह बुखार मरे हुये जानवरो की, चूहे बिल्ली आदि की सड़ी हुई बदबू से होता है, वह बदबू हवा में मिलकर जहर का काम करती है, इसी तरह सड़ी गली वस्तुओ के खाने, मौसम के खुश्क होने आदि से पैदा हुये कीड़े अदर जाकर आंतो को घायल कर देते हैं, अक्सर आंतो की खराबी ही से यह बुखार होता है, जर्मनी वाले इसे Abdominal typhus कहते हैं।

स्पष्ट-चिह्न

विषैले वातावरण का प्रभाव जब देह पर गिरता है, तो शरीर में थकान आ जाती है, वह टूटने लगता है, गर्मी लगने लगती है, देहमें जगह २ दर्द होने लगता है, माथा घूमता है और पतले दस्तो के साथ २ कभी २ जाड़ा भी लगने लगता है, प्यास बढ़ जाती है, नाक से खून गिरने लगता है, रात में नींद नहीं आती और दिन में तन्द्रा बनी रहती है, जीभ–बीच में मैली हो जाती है, और आस पास सुर्ख, नाड़ी भारी और कमजोर हो जाती है. गालों पर लाल २ निशान होजाते हैं, पेट फूल जाता है श्वास में बदबू आने लगती है, कभी २ कै और दस्त भी हो जाते हैं, पेट दबने पर दर्द करने लगता है, अक्सर रात में देह रूखी और गर्म हो जाती है, उस समय पारा १०६ तक जा पहुंचता है, आखें गड्ढो में घुस जाती हैं, पेशाव या तो होता ही नही, अगर होता है, तो थोडा और सुर्खी लिये हुये होता है। यह अवस्था सात दिन तक रहती है।

बाद में दूसरी अवस्था शुरू होती है, बुखार बढ़ता है, और १४ वें दिन उसकी तेजी रहती है, सांस और भी जल्दी २ चलने लगती है; बदबू विशेष आने लगता है, चमड़ा रूखा पड जाता है होठ सूख जाते हैं, जीभ सफेद हो जाती है, उस पर लकीरें भी खिच जाती हैं, पेट दर्द करता है सातवे आठवे दिन से छाती और पेट पर गुलाबी रग की फुन्सिया होती हैं, जो ४–५ दिन रहकर मिट जाती हैं, फिर इसी तरह दूसरी जगह वैसी ही फुन्सियां होती हैं। और मिट जाती हैं, रोग अगर हल्का होता है, तो १४ वें या १५ वे दिन सारी फुन्सियां सफा हो जाती है।

रोग की तेजी में पेट फूल जाता है, तिल्ली बढ़ जाती है, सूखी कै आती है, दस्त पीले पतले और

बदबूदार होते हैं, ताप तथा नाड़ी की चाल बढ़ जाती है, कानो में सन सन होती है, कोई कोई बहरा ही हो जाना है, बकवाद, हिचकी, कंपकपी बेहोशी दस्त आदि हो जाते हैं, यह दशा अन्तिम दशा है।

२१ वें दिन तक अगर रोगी नहीं मरता तो बचने की उम्मेद हो जाती है, बाद में बुखार भी घटने लगता है, भूख भी लगने लगती है, ढंग बदलते हैं, और पांच सात दिन में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

इन्फ्लूएञ्जा फीवर

Infeuenga fever

आजकल जब जुखाम लग के बुखार होता है तो कह देते हैं, कि इन्फ्लूएञ्जा हो गया। इसके चिह्न कफज्वर से अधिक मिलते हैं, यद्यपि चिह्न औरो के भी हैं, इसका इतिहास भी बड़ा विचित्र है। यह बुखार इटली में पैदा हुआ और रसिया होता हुआ १८४० में इंगलेंड पहु चा। तत्कालीन गोरे यात्रियों के साथ यह यहाँ भी आया। मुगल राज्य में १८६७ में जो लाल बुखार फैला था वह यही था, इसने हजारो घर सफा कर दिये थे। इटली वासियो का विश्वास है, कि नक्षत्रो की ताकत से यह पैदा हुआ है, कफ भी ठडा है, इस लिये डाक्टर इसे Cala तथा Cararrh का रूप मानने हैं। खोजने से मालूम हुआ है कि *Bacteria* नाम का कीड़ा इस रोग को पैदा करता है। वसन्त में होने के कारण बहुत से इसे भी Naeriae ही मानते है। जो हो,

स्पष्ट चिह्न

शुरू में सर्दी या गर्मी होती है, बाद में देह में पीडा होती है, भूख भग जाती है, बल नष्ट होता जाता है, कब्ज रहने लगती है, बुखार होकर नाड़ी तेज चलती है, हड्डियो में दर्द भी हो जाया करता है। जलन, प्यास, खांसी, अनिद्रा, पेट में दाह, गले में दर्द, आंखो का भारीपन ये चिन्ह होते है। आंखो से, नाक से पानी गिरता है, कभी २ पतला दस्त भी हो जाता है।

सिम्पल फीवर *Simple fever*

यह सामान्य ज्वर है, जो सर्दी लगने, गर्मी में घूमने, पानी में भीगने आदि से होता है। यह सामान्य दशा में ही रहता है, टेम्परेचर भी विशेप नहीं बढ़ता, और २-१ दिन में आपही हट जाता है। सरदर्द आंखों का लाल होना, कमर दर्द आदि चिह्न होते हैं, ज्वरावस्था में कुपथ्य करने पर यह दूसरे ज्वरो में परिणित होकर और भी भयंकर रूप धारण कर लेता है।

Dengul fever लगड़ा बुखार

इसे Break bone fever भी कहते हैं। सन् १८७२ में यह सारे भारत में हुआ था जिसकी याद बूढो को ही है। यह तेज छूतदार बुखार है, जाडा देके बुखार होता है, प्यास सर दर्द आदि बुखार के सब चिन्ह होते हैं, देह के सारे जोड़ो में दर्द होने लगता है माने हड्डियां टूट रहीं हैं, कमजोरी के मारे चलना फिरना हराम हो जाता है कभी २ गिल्टियां सूज जाती हैं, दूसरे तीसरे दिन बुखार के ऊपरी चिन्ह कम होने लगते हैं, लेकिन बुखार फिर लौट आता है, सरी देह पर लाल धब्बे पड़ जाते हैं, और उनमें खुजली तथा जलत खूब होती है, आंखो की पीड़ा न्यूमोनियां खांसी, दस्त आदि रोग भी इसमें कभी २ हो जाते हैं, बुखार हटने पर भी जोड़ो की कठोरता कई दिन तक रहती है।

स्कारलेट फीवर

Scarlet fever

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक ने स्कारलेट फीवर को मोतीज्वर माना है, कई हिन्दी की

डाक्टरी पुस्तकों में भी ऐसा ही बतलाया है, किंतु यह मोती ज्वर नहीं लाल बुखार है।

ऐलोपैथिक विद्वान मोतीज्वर को अभी तक कोई असन्दिग्ध रोग नहीं बता सके हैं। यह तेज छूतदार ज्वर है जो गरीबों को उनकी गन्दगी के कारण अधिक होता है। बुखार के साथ ही इसमें लाल फुन्सियां और निकलती हैं, जिससे इसे लाल बुखार कहते हैं। गले की भीतरी लुआबी झिल्ली भी इसमें सूज जाती है। इसकी छूत वायु से स्पर्श से सभी तरह एक दूसरे को लगती है।

यह तीन दशाओं में विभक्त है।

[१] सरल स्कारलेट।

[२] कठिन स्कारलेट।

[३] घातक स्कारलेट।

तीनो के लक्षणो पर अब गौर फरमाइये।

(१) सरल स्कारलेट—छूत लगने के ४-५ दिन बाद गले में हलकी सूजन होती है, जिससे दर्द होता है और कोई चीज निगलना मुश्किल हो जाता है। बाद में जाड़ा देकर बुखार चढ़ता है जो १०५ डिगरी तक पहुँच जाता है, नाडी उछलने लगती है प्यास अधिक और भूख कम हो जाती है। जीभ मैली होकर २-३ दिन बाद लाल हो जाती है, बुखार चढ़ने के १ २ दिन बाद ही साफ और लाल रग की फुन्सियां, पहिलेकठ फिर छाती हाथ, पेट और अन्त में पेरो पर निकलती हैं। फुन्सियां ऊपर से नीचे को उतरती है, बाद में फुन्सियां आपस में मिलकर खूब साफ और लाल धब्बे की शकल में बदल जाती हैं, चमड़ी खुरदरी और ऊंची नीची होती है। चमड़ी में जलन खुजली और कहीं कही तनाव तथा पीड़ा होती है। फुन्सियां ३-४ दिन तक बराबर निकलती रहती हैं बाद में मुरझाने लगती हैं। फुन्सियो के निकलने पर बुखार और अधिक हो जाता है। गले की गिल्टियां सूज कर लाल हो जाती हैं और छूने से उनमें दर्द होता है। तालू की गिल्टियां भी सूज जाती हैं। पेशाब लाल और कम होता है। रोगी निर्बल और चिड़चिडा हो जाता है कमजोरी के कारण हाथ पैर कांपने लगते हैं, किसी-किसी का जिगर बढ़ जाता है तो किसी-किसी की तिल्ली ३-४ सप्ताह तक यही दशा रहती है, बाद में चमड़ी सूख कर बड़े २ छिलके उतरने लगने हैं। बाद में गले की सूजन भी कम होने लगती है, तथा और भी चिह्न कम होने लगते हैं, कभी-कभी सरल स्कारलेट कठिन में बदल जाता है।

(२) कठिन स्कारलेट—बुखार की तेजी के साथ-साथ कै और दस्त भी होते हैं। गले और तालु में सूजन के साथ-साथ घाव भी हो जाता है, झूंठी झिल्ली गले में हो जाती है गले की नसें तन जाती हैं और उनमें दर्द होता है। कभी छाती और कभी हाथ पर अनियमित धब्बे निकलने और गायब होते रहते हैं, उस समय ज्वर और भी तेज हो जाता है।

(३) घातक स्कारलेट—सब उपद्रव कठिनता के साथ होते हैं, रोगी ठडा हो जाता है। नाड़ी सूत सी चलने लगती है। गले में सड़े घाव हो जाते हैं, मुंह में बदबू आने लगती है, जीभ भूरी हो जाती है, लाल काली फुन्सियां निकलकर समा जाती हैं, पेशाब बन्द हो जाता है, गले में खून भी निकलने लगना है, पेशाब रुक के खून में मिल जाता है। इसमें रोगी एक दिन रात में ही परम धाम का अतिथि हो जाता है।

संयुक्तरोग

(१) गुर्दे में सूजन होना।

(२) गठिया

(३) जोड़ो में पीप पड़ना।

(४) हृदय की सूजन।

(५) हृदयावरक।

(६) फेफड़े की सूजन।
(७) क्षय।
(८) कान बहना।
(९) कान की सूजन।
(१०) आंख की झिल्ली की सूजन।
(११) कण्ठमाला।
(१२) घाव।
(१३) डिफ्थीरिया।
(१४) लकवा।
(१५) फेफड़े में पीप पड़ना।
(१६) बधिरता।
(१७) गले का बैठ जाना।

आदि रोग इसमें हो जाते हैं।

पाइएमिया फीवर
रक्तदुष्टज्वर

जब गर्मी जैसे रोगो से अथवा और कारणो से शरीर का खून खराब हो जाता है, तो यह बुखार होता है, आग से तपने ज्यादा धूप में फिरने से भी खून खराब होकर इस बुखार को पैदा करता है, किसी अगमें सूजन होकर पीप पड जाती है, कभी सफेद २ धब्बे पड़ जाते हैं। और और कभी २ जोडों में दर्द होने लगता है।

यलोफीवर *Yellow fever*

यह बुखार भारत में कम होता है, यूरोप में अधिक होता है, इसको पीला बुखार कहते हैं। तराई वाले देशोमें यह अधिकता से होता है, और एक दूसरे को लग जाता है, दस्त और कै काले होते हैं। छूत लगने के २ से १५ दिन तक सुस्ती और काहिली के साथ चिड़चिड़ापन आता है। पीछे जाड़ा देके बुखार होता है, चमड़ी पीली हो जाती है, जीभ लाल हो जाती है, और बीच में मैली। शिथिलता आ जाती है, आंखो में पानी भरा रहता है, और वे लाल हो जाती हैं। कै काले रग की और बार बार होती है, दस्त भी खून मिला हुआ बहुत होता है, पेशाब में 'एलव्यूमन' मिलता है, कभी २ पेशाव रुक भी जाता है, पेट में दर्द होने लगता है, अवस्था सरल है तो २-३ सप्ताह में रोगी अच्छा हो जाता है, ६ ठे दिन बुरे चिह्न घटने लगते हैं, कठिन अवस्था में तीसरेदिन कै में खून आने लगता है जिससे निर्वल हो के रोगी मर जाता है।

सेरीब्रो स्पाइनल फीवर
Cerebro spinal Fever

यह भी छूतदार ज्वर है, जिसमें दर्द बहुत होता है, यह रोग भी मरी की तरह फैलता है। जाड़े के दिनो में यह बुखार होता है, जाड़ा देकर बुखार आता है, और टेम्परेचर १०२ से १०४ तक पहुँच जाता है, सांस जल्दी २ चलती है, सारी देह में जोरो से दर्द होता है, रीढ़ की हड्डी में असह्य पीडा होती है, देह अकड़ जातीहै, आंखें भीतर की तरफ खिच जाती हैं, पेट पीठ से लग जाता है, मस्तक पीछे की तरफ झुक जाता है, मुंह वन्द हो जाता है, और कै होने लगती है, आंखो की पुतलियां सिकुड़ने लगती हैं, कठिन दशा में बुद्धि बिगड़ने लगती है, वेहोशी होने लगती है कोई २ बहरा भी हो जाताहै, किसी को लकवा मार जाता है जगह २ देह पर खून के धब्बे दिखाई देने लगते हैं, दिमाग में खराबी होने लगती है।

जोड़ो में पीप पड़ना, दांई आँख का सूजकर बैठ जाना, खासी, न्युमोनियां, हृदय के विकार आदि इसके उपद्रव होते है। इसमें फीसदी ६० मर जाते हैं।

यूनानी मत से ज्वरों की विवेचना
ज्वर क्या है ?

ज्वर क्या है ? इस विषय में हकीमों का

विश्वास है कि ज्वर शरीर की वह ऊपरी गर्मी है जो दिल से फडकती है, अथवा किसी अग में फड़क कर दिल में आती है। वहां से फिर आत्मा दिल और खून की नसो के रास्ते सारे शरीर में फैल जाती है यूनानी हकीमो के विश्वास के अनुसार देह में गर्मी तीन तरह की होती हैं।

[१] स्वाभाविक।

[२] (आभ्यन्तरिक) भीतरी।

[३] (वाह्य) वाहरी।

पहिली गर्मी अग्नि के तत्व की है, जो प्रकृति से ही पैदा होती है और हमेशा देह में रहती है। शरीर की सर्दी, गर्मी आदि पर इसका गहरा असर पडता है। दूसरी गर्मी पहिली ही का एक भाग है। यह भी आजन्म रहती है, इसके निकलते ही मुर्दा काला होकर सड़ जाता है। तीसरी बाहरी गर्मी अस्वाभाविक है, सयोगिक जीवन में पैदा होकर शरीर को कष्ट भी दिया करती है यही गर्मी किसी कारणवश खराब होकर बुखार पैदा करती है, अगर इसका असर भीतरी भागो के ऊपर जोरो से गिरता है तो बुखार भी जोरो से ही होता है।

ज्वर के भेद

ज्वर के सम्पूर्ण भेद ३ हैं। यहभी याद रखना चाहिये कि हकीमो के विश्वास के अनुसार हर ज्वर के २-२ भेद होते है।

[१] ज्वर जो ऊपरी होता है।

[२] रोग का ज्वर।

ज्वरो की सूजन पहले नम्बर में आ जाती है, रोग का ज्वर, इसके लिये समझना चाहिये कि, कारण और रोग के बीच में किसी दूसरी चीज का सम्बन्ध नही होता। अब इनके नामो के अनुसार थोड़ा प्रकाश डाल देना आवश्यक है।

हुम्मययोमिया

इसको हम आह्निक ज्वर भी कह सकते हैं, डाक्टरो के विश्वास के अनुसार यह मलेरिया का एक भेद मात्र है। यह ज्वर २४ घंटे में चला ही जाता है, अगर किसी खास भेद से बदल नहीं जाय, यही कभी ३-३ दिन तक ठहर जाता है।

इसके ऊपर होने पर यह दूसरे रूप में बदल जाता है।

हुम्मयहोमिया के ३ भेद हैं

(१) शरीर की दशाओं से सम्बन्ध रखने वाला।

(२) शरीर से पृथक रहने वाली दशाओ से सम्बन्ध रखने वाला।

(३) आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला।

१—शोक, श्रम, मवाद को फसद आदि के द्वारा निकालना, सूजन, गाठ पड़ना, प्यास, भूख, ये कारण इसके उत्पादक हैं।

२—धूप, सर्दी, चमडी के सिमट जाने, गन्दे पानी में नहाने, आदि से पैदा होता है।

३—क्रोध, शोक, भय आदि से पैदा होता है,

आत्मा के तीन भेद

[१] जिगर वाली।

[२] दिल वाली।

[३] दिमाग वाली।

आह्निक ज्वरो का इन आत्माओ में से किसी एक से सम्बन्ध अवश्य रहताहै और वह पूर्वचिह्नों के द्वारा जान लिया जाता है।

(१) जिगर वाली—आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले ज्वर के पूर्व चिह्न; अजीर्ण होना, भोजन करते ही रहना, शरबत पीना और गरम दवाओ का सेवन करना।

(२) दिलवाली—पहिले हर्ष, चिंता होना, नहाने के स्थान की गर्मी पहुँचना ये चिह्न ज्वर के सम्बन्ध को दिल वाली आत्मा से प्रगट करते हैं।

(३) दिमाग वाली—शोच, परिश्रम, नींद आदि चिह्न ज्वर का सम्बन्ध दिमाग वाली आत्मा से प्रगट करते हैं।

अब इस ज्वर के खास-खास दो भेद हो जाते है। जिन पर स्पष्ट प्रकाश डाला जायगा।

(१) सब भेद चिह्न और इलाजो पर पूर्णरूप से मिले हुये होते हैं।

(२) प्रत्येक भेद संक्षिप्त रूप से विधानात्मक होता है।

पहिला भेद

पहिले के ६ चिह्न होते हैं।

(१) कंपकंपी न होना, कभी-कभी हो भी जाती है।

(२) हाथ, पांव का ठडा होना।

(३) शरीर का टूटना, थकना, ऊंघना कम होता है।

(४) नाड़ी में लगातार तेजी आती है, हलकापन और विरुद्धता नहीं होती।

(५) गर्मी समान होती है।

(६) मूत्र के पकाव का असर पहिले दिन प्रगट होता है।

(७) चेहरे का रग और नाड़ी समान तथा स्थिर होती है।

(८) शुरू में हलकापन तथा नर्मी होती है।

(९) २४ घंटे या ज्यादा से ज्यादा ६६ घटे ठहरता है।

दूसरा भेद और उसके २३ भेद

इसके २३ भेद हैं यह २३ भागो में विभाजित है।

(१) यह ज्यादा चिन्ता से पैदा होता है। इसका असर आत्मा पर गिरता है, जिससे आत्मा की गति भीतर होती है और रुके रहने से गर्मी पैदा होकर बुखार पैदा होता है।

इसके चिह्न

चिंता, आंखों का गढ़ जाना, मुंह का पीलापन, खुश्की, सफेदी, नाड़ी की कमजोरी, पित्त, मूत्र में आग सी जलन और लाल होकर तेजीसे आना

(२) इसका कारण भी विशेष चिंता ही है। और उसी तरह गरम होकर आत्मा बुखार को पैदा करती हैं, इसके चिह्न भी प्रायः वही हैं केवल नाड़ी जोरो से चलती है।

(३) ज्यादा डर लगने से आत्मा भीतर की तरफ लौटकर बुखार पैदा करती है। चिह्न वही हैं केवल नाड़ी में बिरुद्धता होती है।

(४) हरदम विचार शोच करने से गर्मी होकर बुखार होता है, चिह्न वही है।

(५) ज्यादा गुस्सा करने से आत्मा बाहर की तरफ दौड़ कर गर्मी पैदा करके बुखार पैदा करती है। इसमें आँखे लाली पड़ जाती हैं, बाहर निकल आती हैं, सारा शरीर लाल होकर फूल जाता है। नाड़ी तेज हो जाती है, पेशाब लाल होती है कभी २ अग कांपने भी लगते हैं। नाड़ी लगातार भारी और तेज चलती है। क्रोध के साथ चिंता और डर भी हो तो मुंह का रग भी पीला पड़ जाता है।

(६) ज्यादा आनन्द से यह बुखार होता है आँख लाल नही होती नाड़ी धीरे चलती है, बांकी चिह्न वही है।

(७) इसका कारण खूब जगना हैं, आँखें गड़ जाती है तरियां नष्ट हो जाती हैं, आंख की पीठ तथा मुंह का भरभराहट, शरीर फूला हुआ पेशाब का रंग मैला, मुंह पीला हो जाता है। देह टूटती है, थकाबट रहती है, नाड़ी हलकी चलती है।

(८) ज्यादा सोने, आलसी बनकर पड़े रहने तालाब वगैरह में जाकर पड़े रहने, इन कारणो से बुखार पैदा होकर देह की दशा पर अपना असर डालता है। नाड़ी में भारीपन आ जाता है।

(९) ज्यादा कड़ी मेहनत करने से जो बुखार होता है, उसमें थकावट आती है, अंग

प्रत्यंग दुखते हैं। चमड़ी खुश्क और नाड़ी कठोर हो जाती है, खांसी और पेशाब के रंग बदलने के साथ-साथ जोड़ो में ज्यादा दर्द होता है।

(१०) मवाद निकलने, खून निकलने, अथवा किसी धातु के निकलने, वमन् विरेचन के ज्यादा हो जाने आदि से बुखार हो जाता है। खून निकलने से पित्त बढ़ कर गर्मी पैदा करता है, इसमें थकावट बेहोशी आदि चिन्ह होते है।

(११) नाक, कान, आंख आदि जगहों में किसी कारण वश दर्द होकर बुखार हो जाता है।

(१२) सर्दी, गर्मी आदि कारणो से जब शरीर में अचेतना आ जाती है तब आत्मा गरम होकर बुखार पैदा करती है, इसमें घबराहट होती है निर्बलता आ जाती है, सर्दी बढ़ने पर नाड़ी सुस्त और गर्मी बढ़ने पर तेज हो जाती है।

(१३) खाना नही मिलने पर भूख के मारे भी बुखार हो जाता है, नाड़ी कमजोरी लिये हुये कुछ कठोर होती है।

(१४) ज्यादा प्यास से जिगर के परमाणु गरम होकर बुखार पैदा करते हैं, नाड़ी धीमी चलतीहै, गला सूखताहै, बड़ी बेचेनी हो जाती है।

(१५) रगो में गांठ पड़ कर उनके मार्ग बन्द हो जाने से बुरी भाफ इकट्ठी होकर आत्मा में गर्मी पैदा कर देता है। रगो में खून भरने, गाढ़ा चेपदार पदार्थ भरने से गाठें पडती हैं, गांठे ज्यादा होती हैं तो बुखार ६-६ दिन तक ठहर जाता है।

(१६) खाल सुकड़ने और रोम मार्गों के बन्द हो जाने से गर्मी और भाफ के परमाणु भीतर रुक कर आत्मा को गरम कर देते हैं। इसके ५ कारण है—

(१) शरीर पर मैल इकट्ठा हो जाने से।

(२) गर्द रास्तो में देह पर गिरकर जमजाय

(३) विशेष सर्दी।

(४) सूरज की तेज धूप।

(५) लाल फिटकरी आदि के अजीर्ण कारक जल में नहाना।

इन कारणो से बुखार पैदा होकर शरीर में छोटे छोटे दाने प्रकट कर देता है। खाल खुरन्धुरी हो जाती है आंख तथा मुँह पर थोड़ा फुलाव आ जाता है। पेशाब पीली हो, नाड़ी तेज हो, पेशाब कभी सफेद भी होता है।

(१७) अजीर्ण से और खराब पाचन से, भोजन खराब हो जाता है, और उसमें से बुरे २ परमाणु निकल कर ज्वर करते हैं। पित्त प्रकृति वाले खाकर तथा अजीर्ण में मिहनत करने वाले धूप में अधिक बैठने वाले, तालावों में पड़े रहने वाले ही इसके अधिक शिकार होते है। इसमें जली हुई डकारें आती है, आंख मुंह पर ललाई, नाड़ी की तेजी, बुखार जोर से, पेशाब की सफेदी ये चिह्न होते है।

(१८) किसी प्रत्यक्ष अंग में सूजन होकर गर्मी होने से भी बुखार हो जाता है। सूजन एक बाहरी होती है एक भीतरी। भीतरी सूजन से पैदा हुये बुखार में, जांघ, बगल तथा कान के पीछे सूजन होकर बुखार आता है, मुंह लाल और चढ़ा हुआ होता है, पेशाब सफेद होता है, नाड़ी तेज और कठोर होती है।

(१९) सूर्य्य आग और न्हाने की जगह का ज्यादा सेवन करने से गर्म हवा दिमाग में पहुँच कर दिल तथा उसकी रगो में फैल कर आत्मा को गर्म कर देती है। सूरज की गर्मी का असर दिमाग वाली आत्मा पर विशेष होता है। इसमें नाड़ी तेज चलती है, आखें लाल हो जाती हैं, सर में जलन होती है। गर्मी के साथ साथ प्यास खूब लगती है श्वास बड़े बड़े आते है।

(२०) गर्म भोजन और गर्म दवाओं के खाने से जिगर वाली आत्मा गरम होकर बुखार पैदा करती है। प्यास खूब लगती है, मुंह में खुश्की, आंखों में लाली, सर दर्द ये चिन्ह होते है

(२१) नजले और जुखाम से भाफ अग्नि वाले दिमाग में आकर सिर के रोमांचो को बन्द कर देती है। फिर दिमाग वाली आत्मा को गर्म करके दिमाग में कमजोरी कर देते है।

(२२) शराब पीने से आत्मा गरम होकर बुखार पैदा करती है, इसमें वेहोशी के साथ साथ नाड़ी तेज चलती है।

(२३) ज्यादा मरोड़ चलने से, बार बार दस्त लगने से भी बुखार हो जाता है।

सदोष ज्वर

इसके साधारण रूप से दो भेद माने जातेहैं।

(१) अयोगिक—यह एक ही दोष से पैदा होता है।

(२) द्वन्द्वज—दो अथवा विशेष दोषो से पैदा होने वाले को द्वन्द्वज कहते है. यह भी दो भागो में विभक्त है। दोष—यूनानियों के मत में ४ हैं, बात, पित्त, कफ और खून। दोषों से बुखार दो तरह पैदा होता है। पहिला किसी कारण वस दोष सड़ कर बिगड़ जाय। दूसरा दोष गर्म होकर उबल आवे। गर्म होकर उबलता है केवल खून ही यह भी बात याद रखनी चाहिये।

खून ज्वर

इसके २ भेद हैं।

(१) सोनुखास—विना दुर्गन्धि के ही खून गरम हो जाता है। मवाद भर जाने, गांठ पड़ने आदि कारणों से यह पैदा होता है। इसमें आंखें और मुंह लाल हो जाते हैं, नसें फूलकर खिंच जाती हैं, नाक, भोयें और फस्द की जगह खाज चलती है, नाड़ी तेजी से चलती है, पेशाब लाल, गाढ़ा होता है, बुखार चढ़ने के पूर्व ही देह में थकान और खिंचावट होती है, यह हर समय रहता है, इसमें पसीना नहीं आता। प्रायः गला तालू, जीभ इनकी जड़ के दोनो मांस सूज जाते हैं, श्वास में तकलीफ होती है।

(२) इस मुतयफा—खून के सड़ जाने से पैदा होता है। एक तो खून रगो के बाहर ही सड़ जाता है, दूसरे अन्दर सड़ता है, कभी सारा खून सड़ता है, कभी थोड़ा। इनकी दशायें तीन होतीहैं।

(१) मुतनाकसा—शुरू में कीड़ा होकर बाद में नर्म हो जाता है, इसको मुनहना भी कहते हैं। इसमें खून कम सड़ता है।

(२) मुतजामद—यह हरदम जोरो से रहता है, इसमें जितने खून के भाग नष्ट होते हैं, उनसे अधिक सड़ जाते हैं।

(३) मुत साविया—यह शुरू से आखीर तक एकसा ही रहता है, इसमें खून के जितने भाग सड़ते हैं उतने ही नष्ट भी हो जाते हैं, यह भयानक होता है, इसमें मूत्र गंदला होता है, बदबू आती है।

पित्त ज्वर

इसके शुरू में दो भेद हैं।

(१) गिवलाजमा और

(२) गिवदायरा

(१) गिवलाजमा

इसमें रगों के अंदर मवाद सड़ जाती है। और जिगर और दिलके आसपास में कुछ अधिक मात्रा में होकर हर समय बुखार पैदा करती है। इसमें मानसिक चिन्ता घटती बढ़ती रहती है। कमोरता, जीभचलाना, बुद्धि का बिगड़ना, दिल का धड़कना, वेहोशी, जीभ का कालापन, ये चिह्न होते हैं।

(२) गिबदायरा

यह तीन तरह का होता है।

(१) इसमें मवाद केवल रगो के बाहर सड़ती है।

(२) मवाद में पित्त कफ मिलकर उसी के अन्दर मिल जाते है।

(३) इसमें पित्त का मवाद कफ के साथ मिल जाता है, किंतु दोनों के सड़ने का स्थान अलग २ होता है। और दोनो का कार्य भी अलग २ ही होता है इसको शितुर्लिगिब कहते हैं।

तपे मुहर्रका

यह भी पित्त ज्वर ही है तेज मवाद—जो या तो खारी कफ होता है या पित्त रगो में और खास कर दिल आमाशय और जिगर के आस पास सड़ जाता है, तो उसे मुहर्रका कहते हैं, यह बुखार बुड्ढो को कम होता है, और होता है, तो उन्हे मार ही डालता है, इसमें ज्वर हरदम बना रहता है, शुरू में कपकपी फुरैरी पसीना कुछ नही होता, बौहरान के समय अलबत्ता ये चिह्न हो जाते हैं। प्यास ज्यादा लगती है, दाह होता है, कभीं खांसी भी हो जाती है, और फुरैरी भी इसकी गर्मी बहुत अधिक बढ़ी हुई होती है, जीभ काली पीली खुरखुरी होती है, जीभ काली होना मौत का निशान होती है, नींद नहीं आती अक्ल बिगड़ जाती है। बेचैनी रहती है आंखें गढ़ जाती हैं। भूख मारी जाती है। कठोरताके साथ२ छाती में गर्मी रहतीहै।

गिब खालिस

इस बुखार का कारण वह पित्त है, जो रगो के बाहर सड जाता है, एक दिन बीच में छोड़कर यह तीसरे दिन आता है, शुरू में पीठमें सर्दी पैदा होकर जोर से कपकपी आने लगती है। और वह जल्द ही रुक जाती है, सुई सी चुभती है, शरीर बड़े जोरो से गर्म होता है, और हाथ रखने पर थोड़ी देर में उस जगह गर्मी कम हो जाती है। पेशाब सुर्ख बदबूदार और पतला होता है। नाड़ी शुरू में धीरे २ विरुद्ध गति से चलती है। किन्तु कुछ समय बाद बड़ी तेजी से चलने लगती है। यह बुखार १२ घंटे से अधिक और ४ घंटे से कम नहीं आता, बुखार ७ बार आकर बाद में नही आता बुखार उतरने के समय पसीना आता है। प्यास के समय देह पर तरी सी आ जाती है नींद न आना, घबराहट, प्यास का जोर बेचैनी दस्त सरदर्द, आदि चिन्ह और प्रगट होते हैं, सर दर्द के साथ ही भारीपन भी होता है मुंह और जीभ खुश्क रहते हैं स्वाद कड़ा हो जाता है।

गिबदायरा गैरखालिस

यह बुखार तरी मिले हुये उस पित्त से होता है। जिसमें कि दोनो का रूप एक ही हो जाता है इसमें जाड़ा कंपकपी देर तक ठहरती है कभी कंप कभी कम भी आती है, गर्मी भी ज्यादा नहीं होती २४-३० अथवा ४८ घन्टे तक यह बुखार होता है पकता है देर में और पसीना कम आता है। शिर भारी रहता है, थोड़ी कमजोरी आती है कठोरता सुस्ती, नींद का न आना ये चिह्नभी होते हैं पाचन शक्ति कम हो जाती है, मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है। पेशाब गाढ़ा और रंगीन होता है, आरम्भ में नाड़ी निर्बल विरुद्ध और हलकी होती है, किन्तु बाद में ठीक इससे उल्टी हो जाती है।

शित शल गिब

यद्यपि यह कफ और पित्त के संयोग से पैदा होता है। किन्तु दोनो के सड़ने का स्थान अलग२ है। दोनो में एक गाढ़ा होता है तो दूसरा पतला एक कम होता है, तो दूसरा विशेष, इस झमेले के कारण इसके स्पष्ट चिह्न कोई नही हो सकते, पित्त ज्यादा है, तो बुखार एक दिन हलका सा आकर दूसरे दिन जोर से आता है, और कफ ज्यादा है। तो रोज जोर से आता है दोनो के अलग २ चिह्न

यहां इकट्ठे ही समझने चाहिये ऐसा भी होता है, एक दिन केवल कफ के ही चिह्न हो गये और दूसरे दिन कफ पित्त दोनों के होगये। कफ के जोर में बारी ज्यादा लम्बी होतीहै फुरैरी कपकंपी नाड़ी की कमजोरी हलकापन ये चिह्न होते हैं। हाथ पैर ठंडे रहते हैं। और बहुत देर में गर्म होते हैं। पित्त की अधिकता से प्यास की अधिकता, पसीना, जाड़ा आदि चिह्न होते हैं।

मूर्छा कारक पित्त ज्वर

पित्त बहुत पतला होकर सड़ जाता है। और उसमें जहरीलापन आ जाता है। फिर बुखार की गर्मी से वह जहरीला मवाद थोड़ा सा भी दिल पर गिर जाता है तो वेहोशी पैदा कर देता है। अक्सर यह पित्त ज्वर की बारी पर होता है। देह पीली और दुबली हो जाती है।

एक दो बारी में ही नाड़ी सुस्त हो जाती है, शक्ति नष्ट हो जाती है, कुछ ही दिनो में रोगी वर्षों का बीमार सा हो जाता है, आमाशय और जिगर में सूजन हो तो अक्सर रोगी मर ही जाता है।

कफ ज्वर

कफ कभी रगो के भीतर और कभी बाहर सड़कर बुखार पैदा करता है, इसलिये साधारण रूप से इसको दो तरह का कहते हैं, पहिला, आमाशय दिमाग, फेफड़े आदि अगो में सड़ता है कफ ज्वर प्रति दिन आता है, इसमें पेशाब पतला, सफेद और पानी जैसा होता है, किन्तु रोग के अन्त में लाल और तेज हो जाता है, नाड़ी कम जोर, हलकी और विरुद्ध होती है, किन्तु अंत में लगातार और अधिक विरुद्ध हो जाती है, कफ अगर खारी होता है, तो प्यास लगती है, अन्यथा नहीं। शुरू में थोड़ी वेहोशी रहती है, भूख मारी जाती है, देह सीसे जैसी होजाती है, ढीली पड़ जाती है, मुंह भर या सारहता है पसलीमें अफरा भी हो जाता है, और तल्ली भी बढ़ जाती है, किंतु कभी २ मुंह तर रहता है, मल नर्म पतला होता है, कै दस्तो में कफ आता है. पसीना कम आताहै आता है तोखाल जरातर हो जाताहै, मवाद पकने पर पसीना खूब आता है. गर्मी कम होती है, १८ घन्टे से अधिक इसकी बारी होती है, ६ घन्टे में आराम होता है, बुखार टूटने पर भी थोड़ा असर रह जाता है शुरूमें जाड़ा और कंपकंपी होती है, किसी हिस्से पर हाथ रखने पर वह ज्यादा गर्म हो जाता है, कफ अगर सीसे जैसा होता है, तो कंपकपी ज्यादा होती है खट्टा होगा तो जाड़ा अधिक होगा, खारी होगा तो फरेरी होकर हल्की कपकंपी होगी, कफ अगर तेज ज्वर का मवाद है तो कभी कुछ नहीं होता।

वात ज्वर

इसके कई भेद हैं, चौथिया पांचवां, छठा, आदि। इन सब में चौथ का बुखार ज्यादा शैतान है, इसलिये पहिले उसका वर्णन किया जाता है। इसके दो भेद हैं।

(१) रिब्वयेदायरा।

(२) रिब्वयलाजमा।

(१) रिब्वये दायरा

इसमें मवाद रगो के बाहर सड़ता है, यह दो दिन बीच में छोड़कर आता है। अक्सर यह दूसरी ज्वरो के बाद में होता है, कभी शुरू में भी हो जाता है यह एक वर्ष तक टिका रहता है, और अगर इसने पूरा जोर पकड़ लिया तो १२ वर्ष तक रह जाता है।

जब यह बढ़ जाता है तो जलन्धर हो जाता है इसकी पहिली बारी में कंपकंपी और जाड़ा कम होता है, और प्रत्येक बारी में बढ़ता जाता है। अंत तक यही ढग रहता है, बाद में उसी तरफ कम होने लगता है, इसमें हड्डियां दुखती हैं टूटी

जाती हैं। और कंपकंपी के मारे दाँत बजने लगते हैं, २४ घंटे यह रहता है और आराम ४८ घटे से ७२ घन्टे में हो जाता है। इस ज्वर को पांच भागों में विभक्ति किया जाता है, चौथिया बुखार या तो प्राकृतिक वादी के सड़ने से होता है, या अप्राकृतिक वादी सड़ने से, खून, कफ, अथवा पित्त तरी नष्ट होकर जब ये गाढ़े हो जाते हैं तो अप्राकृतिक वादी पैदा होती है। खून के जलकर गाढ़ा होजाने पर अगर बुखार होता है तो खून की अधिकता होती है। पेशाब लाल होता है, मुंह मीठा और शरीर भारी रहताहै, यह जानवरों को, मोटे आदमियों को, अक्सर वसन्त ऋतु में होता है। पित्तके गाढ़े हो जाने पर अगर बुखार होता है तो प्यास ज्यादा मुंह कड़वा खूब पसीना, नाड़ी की तेजी, क्रोध, फुरेरी ये चिह्न होने हैं। कफ के गाढ़े होने पर पेशाब सफेद और गाढ़ा होता है, छूने में सर्दी नाड़ी की सुस्ती, आलस्य, प्यास की कमी, नींद खूब, ये चिह्न होते हैं। प्राकृतिक वादी के सड़ने पर लंबे २ विचार, खराब स्वप्न, शरीर की लाली, स्याही, नीलाई, भूख की अधिकता, आदि चिह्न होते हैं।

(२) रिबये लाजमा

इसमें वादी रगो के अंदर सड़ती है, जिससे हरदम बुखार होता है, वादी बढ़ जाती हैं, कपकपी नहीं होती, बाकी प्राय. और चिह्न रिबयेदायरा के होते हैं।

खम्स

जो तीन दिन बीच में छोड़कर आता है, उसे खम्स कहते हैं।

सदस

जो चार दिन बीच में छोड़कर आता है, उसे सदस कहते हैं।

सिवआ

पांच दिन बीच में छोड़कर आनेवाले बुखार को सिवआ कहते हैं।

समन

छः दिन में छोड़कर आने वाले को समन कहते हैं।

तिसआ

सात दिन बीच में छोड़कर आने वाले को तिसआ कहते हैं।

अशरा

आठ दिन में आने वाले को अशरा बुखार कहते हैं।

वबाई ज्वर

हवा के बिगड़ जाने से जो बुखार होता है, उसे वबाई ज्वर कहते हैं। देर तक पेड़ों में रहने गहराव रहने, बुरे भाफ के परमाणु भाफ आदि के मिलने से वायु सड़ जाता है। तरीदार हवा बहुत जल्द दुर्गन्धित हो जाती है। हवा का असर शरीर और आत्मा पर बहुत जल्द गिरता है, उनमें सड़ाव आकर दोष भी बहुत जल्द सड़ जाते हैं। ऋतुओं के विरुद्ध होने, पुच्छलतारों की अधिकता होने, कीड़े मकोड़ों की अधिकता, आदि कारणों से हवा सड़ती है, हवा सड़कर खराब बुखारों को पैदा करती है।

वबाई ज्वर के ९ चिह्न होते हैं, किन्तु वे सब नहीं होते, मवाद के सड़ने के ढंग से ही वे चिह्न प्रगट होते हैं।

१—चिह्न—शरीर प्रत्यक्ष में अधिक गर्म नहीं होता किंतु दिलमें चिन्ता और घबराहट होती है।

२—कभी सांस जोर से चलता है, कभी कम कभी ऊंचा, बदबू भी आने लगती है वह मृत्यु का चिह्न है।

३—पसीना आता है और कभी २ उसमें बदबू भी आने लगती है।

४—नाड़ी हलकी, लगातार चलती है, पेशाब काला हो मल, नर्म हलका, कफ मिला झागदार गंदा और मैले रंग का होता है।

५—झिल्ली बढ़ जाती है और जलन्धर की जैसी भी एक दशा हो जाती है।

६—जी खूब मिचलाता है, पित्त अथवा वादी की कै होती है खाने की इच्छा नहीं होती, सूखी खांसी होती है, आमाशय के मुंह में दिल की तरफ से दर्द होता है।

७—प्यास खूब लगती है, जीभ और मुंह में हरदम खुश्की रहती है, मसूड़े और मुंह भीतर से सूज जाते हैं, नींद नहीं आती, अक्ल काम नहीं देती अंग सुस्त हो जाते हैं, कमजोरी आकर बेहोशी भी हो जाती है।

८—लाल फुन्सियां हो जाती है, मिट भी जाती हैं, और कभी लेग भी निकल आती है।

९—रात में बुखार बेशी हो जाता है।

कभी ये चिह्न कमी बेशी के साथ शुरू में ही प्रगट हो जाते हैं कभी बाद में। हाथ पांव ठंडे हो जाते हैं, बेहोशी हो जाती है कभी सरसाम भी होता है कभी गरदन की हसली से वांयरे आने लगते हैं, कभी गर्मी ज्यादा प्रगट नहीं होती, अक्सर इन चिह्नों के होने पर रोगी मर ही जाता है।

चेचक, खसरा, फफोला आदि का वर्णन आगे होगा यह सब खून की खराबी से होते हैं, खून उबलने से यह रोग पैदा होतेहैं, चेचक तथा खसरे में जो बुखार होता है, उसके ये चिह्न हैं।

पीठ में दर्द, नाक में खुजली, आंसू गिरना, आंखों का लाल होना, सर में दर्द, और शरीर का भारीपन, इसके अतिरिक्त खून के उबलने से होने वाले बुखार के चिह्न, रोगी नींद में डरता है चित्त लेटने पर पैर कांपते हैं, चमड़ी में जलन और चुभन होती है। कभी खांसी, गले में दर्द श्वास की तंगी, गले का बैठ जाना, ये चिह्न होते हैं। खसरे का बुखार, फफोला के बुखार से ज्यादा गर्म होता है; घबड़ाहट ज्यादा रहती है, पीठ का दर्द कम होता है।

विषम ज्वर

देह में तीन तरी होती है।

१—तरी, यह श्वास की तरह छोटी २ रगों में तथा सारे पोषक अंगो में फैली हुई है, भोजन न मिलने पर यह पचे हुये भोजन का काम देकर शरीर का उपकार करतीहै, यह दीपक के तेल की तरह मानी जाती है।

२—तरी, यह अंगो में प्रवेश करके ओस की तरह जम जाता है, किन्तु उतनी नहीं, ज्यादा गर्मी के पचने तथा ज्यादा परिश्रम से यह गलती और नष्ट हो जाती है, यह वत्ती के द्वारा खींचे हुये तेल की तरह है।

३—तरी, इससे पोषक अंगोंका खमीर बनता है, और शरीर के समस्त अंग इसी से मिले हुये हैं इसके नष्ट होने पर अंगो का सम्मेलन भी नष्ट हो जाता है, यह बत्ती के भागो को मिलने वाली तेल की तरह होती है।

दीपक में से तेल खतम होने पर जैसे प्रकाश कम होने लगता है, उसी तरह पहिली तरीके कम होने पर खासकर दिल के पास से तो विषम ज्वर का एक दर्जा मना जाता है, दीपे में तेल डालने पर वह प्रकाश देने लगता है, इसी तरह तरी पैदा करने पर यह दर्जा जल्दी ही आराम हो जाता है।

वर्नः—जैसे तेल खतम होने पर वत्ती के जलने का नम्बर आता है उसी तरह पहिली तरीके नष्ट होने पर २ पर आक्रमण होता है। यह विषम ज्वर का २ दर्जा है, इस दर्जे में बुखार पिघिलकर अंगो को पिघलाता है, इसके बाद तीसरी तरी का न० आता है, कहते हैं। यह तीसरा दर्जा है। जो असाध्य है।

वीर्य और खून—इन दोनो से पैदा होने के कारण शरीर के अगो के २ हिस्से हैं। विषमज्वर सप मुहर्रवा नित्य ज्वर, फेफड़े की गर्मी आदि से पैदा होता है। यह बुखार अपनी २ दशा से बदलते रहने के कारण बड़े झंझट में डालता है, वैद्य कुछ का कुछ समझकर रोगी को खराब कर देताहै।

अयोगिक विषम ज्वर के चिह्न

नाड़ी कड़ी, निर्बल एकदशा पर चलती है, हर समय बुखार नम रहता है, शरीर थोड़ा गर्म रहता है, किन्तु कुछ देर हाथ रखने पर गर्मीज्यादा मालूम होती है। पेशाब गौर से देखने पर उसमें चिकनाहट और छोटे २ दाने दिखाई पडते हैं। खाने के बाद बुखार अच्छा होजाता है, नाड़ीबडी और बलवान हो जाती है। यह चिह्न अच्छा समझा जाता है।

पहिली तरी के खर्च होने पर गर्मी जब दूसरी तरी में पहुँचती है, तो आंखें गड़ जाती हैं। उनमें सूखा मल आने लगता है सर की हड्डी दीखने लगती है, कनपटी बैठजाती है माथे की खालखिंच जाती है, उसमें सुन्दरता और ताजगी नहीं रहती, ऐसा मालूम होता है मानो राख भरी हुई है, भौंहे भारी और आंखें नींदभरी मालूम होती हैं। नाक की नोक तथा गर्दन महीन, कान हलके तथा छोटे हो जाते हैं। नखरा तथा छाती की हड्डी निकल आती है। पेशाब में चिकनाहट और दाने मालूम हो, बाल बढ़कर जू पड़ जातीहैं, कन्धा बढ़ जाताहै

इस बुखार का २ दर्जा भी ३ दर्जा में बटा हुआ है। अगर पहिले दर्जे में ही पिघलना शुरू होता है तो इन चिह्नो में से थोड़े ही चिन्ह होते हैं दूसरे में बढ़ जाते हैं, तीसरे में सब चिन्ह होने के साथ-साथ नख टेढ़े होने लगते हैं; बाल बढ़ जातेहै खाल हड्डी के सिवा कुछ बाकी नहीं रहता है यह मरण चिन्ह है।

आमाशय की दुष्ट प्रकृति

इसके १२ भेद हैं

(१) पहिला भेद

यह सादा गर्मी है। इसमें प्यास भूख की कमी, मुह में खुश्की, जली डकार का आना ये चिन्ह होते हैं। ठडे भोजन बिना दिक्कत ही पच जाते हैं किंतु गरम भोजन से बिगाड़ होता है।

(२) दूसरा भेद

यह पित्त की गरम दुष्ट प्रकृति है, इसमें मुंह का कड़वापन, जीभ चलाना, उबकाई, मलमूत्र में पित्त का आना, ये चिन्ह होते हैं। खाने के बाद जली हुई डकारें आती हैं, उनमें धुंआ का सा स्वाद होता है और बिगड़ी हुई मछली आदि की जैसी बदबू आती है। खाने की इच्छा कम होती है और पचाव बहुत होता है। दुष्ट प्रकृति जब बहुत बढ़ जाती है तो, शक्तियों को कमजोर बना देतीहै और पचाव भी कम होने लगताहै। कभी२ गर्मी भी विशेष रहती है और कमजोरी भी नहीं आती। और मवाद की अधिकता से रगों के मुंह खुल जाते हैं, कोई अंग भी नष्ट हो जाता है, फिर भूख भी खूब लगती है और उसके बाद फिर खाने की इच्छा होती है। भूखे पेट मुह से लार भी गिरती है।

(३) तीसरा भेद

यह गर्मतर दुष्ट प्रकृति, इसमें मवाद तरी लिये होता है और भूख समान रहती है। मुंह से लार बहुत गिरती है। खाली पेट जी मचलाता। खाने के बाद कुछ दुर्गन्धि सी आने लगती है और कभी कै भी हो जाती है।

(४) चौथा भेद

यह गर्म खुश्क दुष्ट प्रकृति है, इसमें प्यास की अधिकता, जीभ में रूखापन, देहमें दुबलापन और मल का सूखापन रहता है।

(५) पांचवां भेद

यह बिना मवाद वाली, गर्म तर दुष्ट प्रकृति है। इसमें खाने की रुचि में फर्क पड़ता रहता है, लार टपकती रहती है, सर की तरफ भाफ के परमाणु चढ़ते रहते हैं।

(६) छटा भेद

यह सादा सर्द दुष्ट प्रकृति है, इसमें ये चिन्ह होते हैं।

[क] भोजन की दशा बदल जाती है।

[ख] कभी भूख अधिक लगती है।

[ग] कमजोरी के कारण भोजन, आमाशय से आंतों में देर में आता हैं।

[घ] खाया हुआ बिगड़ कर खट्टा हो जाता है, जिससे खट्टी डकारें आती हैं, मल फूला हुआ और नर्म गोबर जैसा होता है।

(७) सातवां भेद

यह सादा, सर्दी खुश्क और दुष्ट प्रकृति है। इसमें सादी सर्दी और सादी खुश्की के मिले हुये चिह्न होते हैं।

(८) आठवां भेद

इसमें सर्दी और खुश्की दोनो रहती हैं, मवाद के साथ वादी मिली रहती है। भूख की अधिकता आमाशय में जलने, खट्टापन ये चिन्ह होते हैं, खासकर खाली पेट में। कभी २ के के साथ वादी निकल आती है, जो अपने खट्टेपन के कारण दांतो को भी खट्टा कर देती है, इसमें तिल्ली भी बढ़ जाती है।

(९) नवां भेद

यह सादा सर्द तरी है, इसमें शरीर में सफेदी ढीलापन और आलस्य रहता है, मल नर्म आता है, तथा सादा सर्दी और तरी के चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं।

(१०) दसवां भेद

यह कफ के मवाद से मिली हुई सर्दी और तरी है इसके ये चिन्ह हैं।

[क] खाने की रुचि बहुत कम होती है।

[ख] तेज भोजनो से रुचि रहती है।

[ग] जी मिचलाता है, प्यास नही लगती और पेट में अफरा भी हो जाता है।

[घ] खट्टी डकारें आती है और कभी उबकाई में कफ भी निकल आता है।

[ङ] देह पर सफेदी आ जाती है, देह ढीली पड़ जाती है।

(११) ग्यारहवां भेद

यह तर, सादा दुष्ट प्रकृति है, इसमें प्यास कम लगती है, लार और थूक बहुत आते हैं, अंतड़ियो में भोजन जल्द उतर जाता है, तर भोजनों से नफरत हो जाती है, वे हानि भी करते हैं।

(१२) बारहवां भेद

यह सादा खुश्क दुष्ट प्रकृति है, इसमें प्यास लगती है, जीभ सूखी रहती है, देह दुबली पड़ जाती है, तर भोजनो से लाभ, और रूखे भोजनो से हानि होती है।

अजीर्ण (डिसपेपसिया)

Dyspepsia

भोजन का न पचना अजीर्ण कहलाता है। समय पर प्यास और भूख लगे, शरीर हल्का मालूम दे, तब समझना चाहिये अन्न का पाचन हो गया किन्तु समय पर भूख न लगे' पेट में गड़बड़ी हो तब अजीर्ण समझना चाहिये।

सामान्य चिह्न

अजीर्ण होने पर ग्लानि होती है, पेट भारी रहता है, उसमें शूल से चलते हैं, गुदा में से अपान वायु बाहर नहीं निकलता, कभी कब्ज हो जाती है कभी अजीर्ण के दस्त हो जाते है, खट्टी २ डकारें आती हैं, भोजन पश्चात् उल्टी हो जाती है, जी मिचलाता है, इन चिन्हो को देखकर अजीर्ण समझ लेना चाहिये।

कारण

अनापसनाप खाने से, नाक तक ठूंस २ कर खाने से, पशुओं की तरह वार २ खाने से अजीर्ण होता है, यह खास कारण हैं, जिसकी इन्द्रियां काबू में नहीं हैं, जो खूब खाते हैं, ऊटपटांग खाते हैं, उनको अजीर्ण का शिकार होना पड़ता है, यह तो अजीर्ण का सूत्रीभूत कारण है, इसके शारीरिक और मानसिक दो कारण और हैं, जिनके भी कई कारण हैं।

शारीरिक कारणो में—

(१) अधिक जल पीना, (२) अनियमित भोजन करना, (३) मलमूत्रादि के वेगो को रोकना, (४) रात में जागना, (५) दिन में सोना यह पांच कारण हैं।

मानसिक कारणो में-

(१) ईर्षा, (२) भय, (३) क्रोध, (४) लोभ, (५) शोक, (६) दीनता, (७) मत्सरता. ये सात कारण हैं, शारीरिक और मानशिक दोनो कारणो से अजीर्ण होता है।

अजीर्ण के भेद

(१) आमाजीर्ण, (२) विदग्धाजीर्ण, (३) विष्टब्धाजीर्ण (४) रसशेषाजीर्ण, (५) दिनपाकी अजीर्ण, (६) प्राकृतिक अजीर्ण।

१—आमाजीर्ण

इसमें पेट तथा देह में भारीपन रहता है, जी मिचलाता है, कपोलो तथा आंखो पर सूजन आ जाती है, और जैसा खट्टा मीठा खाया है, उसी के अनुसार डकारें आती है, यह कफ से होता है

२—विदग्धा-जीर्ण

भ्रम, प्यास, मूर्च्छा, पित्तज रोग, धुए के साथ साथ खट्टी २ डकारें पसीना, दाह ये होने हैं, यह पित्त से होता है।

३—विष्टब्धा जीर्ण

शूल, अफरा, वायु के रोग, मल और अधोवायु का रुकना, देह का जकड़जाना, उसमें पीड़ा होना, मोह ये होते है।

४—रसशेषा जीर्ण

अन्नसे दुश्मनी, हृदय में जड़ता, और देह में भारीपन रहता है।

५—दिनपाकी अजीर्ण

रात दिनमें भोजन पचना ही इसका चिन्ह है

६—प्राकृतिक अजीर्ण

यह प्रति दिन ही रहता, स्वभाविक हो जाता है, इसमें कोई विकृत नही होती ।

उपद्रव

वेहोशी, अनापशनापबकना, उल्टी होना, लार वहना, ग्लानि, भ्रम, ये सब अजीर्ण के उपद्रव है, और सबसे प्रधान उपद्रव है मौत।

डाक्टरी और हकीमी मत

डाक्टर इसे 'डसपेपसिया, कहते हैं। कारण भी प्रायः वही हैं. जो ऊपर वताये जा चुके हैं, क्षुधामान्द्य, पेटफूलना, कोष्ठवद्धता, उद्गार, मिचली, छाती में ज्वाला, पेट का भारीपन, लार वहना, खाने के वाद पेट में पीडा, श्वास में वदबू, छाती में धड़कन, सरदर्द आदि चिन्ह होते हैं।

हिकमत में भी इसके ऊपर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है, सब कारण और चिन्ह, आयुर्वेद से मिलते जुलते हैं, वल्कि इतना भी विवेचन उसमें नही है।

ग्रहण शक्ति की निर्बलता

सर्दी या तरीके कारण भोजन को ग्रहणकरने वाली शक्ति कमजोर हो जाती है, फिर गर्मी और खुश्की उसे और सहायता दे देती है, इसमें भोजन आमाशय के मुंह से देर में उतरता है, छाती में भारीपन मालूम होता है, घबड़ाहट, वेचैनी, करवट वदलना, धड़कन, अधेरी, घुमेरी, ये चिन्ह होते हैं। कभी जी भी मिचलाता है, और कै भी हो जाती है।

निरोध शक्ति की निर्वलता के ३ कारण हैं।

(१) गर्म मवाद उसकी शक्ति को जलाकर नष्ट कर देता है।

(२) चलने वाला ठंडा मवाद वहां आवे, और भोजन को हटावे।

(३) घाव और फुन्सियां हो जांय।

इन कारणों से निरोध शक्ति कमजोर पड़कर भोजन का निरोध ठीक तौर से नहीं कर पाती, जिससे रस नहीं बन सकता। कै दस्तो में भोजन निकल जाता है, आमाशय कांपता है, जिससे कभी कभी रोगी भी कांपने लगता है, ऐसे ही और भी चिन्ह हो जाते हैं।

पाचन शक्ति की निर्बलता

ठंडी दुष्ट प्रकृति चाहे वह सादा हो या मल-युक्त पाचन शक्ति में बाधा डाल देती है, तर दुष्ट प्रकृति भी समान सर्दी के साथ कुछ हानि पहुँचाती है। खुश्क दुष्ट प्रकृति पचाव को विशेष हानि पहुंचाती है, दूसरी से तो जलन्धर भी हो जाता है। इससे भोजन का पचाव नहीं हो पाता, वह निकल जाता है। सफेद दाग, खुजली, आदि और रोग भी पैदा हो जाते हैं, कमजोरी आ जाती है।

निस्सारक शक्ति की निर्बलता

आमाशय, जिगर, आंतो की शक्ति इनकी खराबी से और ऊटपटांग खा लेने से मल बहुत रुक जाता है, इसका विशेष वर्णन कब्ज के प्रकरण में देखना चाहिये।

विसूचिका (हैजा)

Cholera

यह बड़ा पाजी रोग है देखते-देखते मिनटो में आदमी को मार डालता है। आज कल अभागे भारत में प्रतिवर्ष लाखो आदमी इसके शिकार होते हैं। हैजे को आयुर्वेद में (विसूचिका) कहते हैं, इसमें अजीर्ण की वजह से, वादी से, देह में सुई चुभाने जैसी वेदना होती है और जिस तरह सुई चुभाते ही खून निकाल कर अपना प्रभाव दिखलाता है, उसी तरह यह भी होनेके साथ दम भर में आदमी को मार डालता है।

कारण

हैजा भी सबको नहीं होता, उन्हीं को होता है जो पेटू हैं, भोजन पर जान देते हैं और मिलने पर नाक तक ठूंस २ कर खाते हैं। ये कारण प्राचीन हैं, किंतु आजकल और भी संशोधिक कारण हैं। जोर से लू चलने पर, अनियमित वर्षा होने पर हवा के रुक जाने पर, गन्दी वस्ती में रहने पर, गन्दे पदार्थ खाने पर, समय वे समय खाने पर इत्यादि कारणो के होने पर हैजा होता है। आजकल प्रधान कारण गन्दगी ही है, भोजन के पदार्थ, रहने की वस्ती, पीने का पानी जब सब गन्दे रहते हैं, तब हैजा होना स्वाभाविक है। डाक्टरी वाले भी इन्हीं कारणो को मानते हैं।

सामान्य चिन्ह

दस्त और उल्टी होते ही समझ लिया जाता है कि हैजा हो गया, केवल दस्तो से हैजा नहीं समझा जाता। दस्त यद्यपि अतिसार में भी लगते हैं, किंतु दो एक दस्तो के बाद ही हैजे के दस्त पानी जैसे या चावलों के धोवन जैसे होने लगते हैं। पेशाब का बन्द होना, पतले दस्त होना और उल्टी होना ये सब हैजे के सामान्य चिन्ह हैं।

मूर्च्छा, पतले दस्त, उल्टी, प्यास, शूल, भ्रम जांघो में पीड़ा, जभाई दाह, शरीर का रंग बदल जाना, देह में कपकपी होना, हृदय और माथे में दर्द ये चिन्ह भी बाद में प्रगट हो जाते हैं।

डाक्टरी मत

ऐलोपैथी के विद्वान हैजे की तीन अवस्था मानते हैं।

(क) आक्रमण अवस्था।

(ख) वर्द्धमान अवस्था ।

(ग) पतन अवस्था ।

(क) इस अवस्था में—हमला होते ही देह शिथिल हो जाती है, पेट भारी हो जाता है, मुख मलीन हो जाता है और जी मिचलाने लगता है, सर घूमने लगता है, कानो में आवाज, औ दस्त, उल्टी होती है। शरीर कमजोर हो जाता है, और पानी जैसे थोड़े मल लिये हुये दस्त होते हैं।

(ख) इस अवस्था में—पहिले पतले दस्त होते हैं, बाद में उल्टी होती है, शुरू में दस्तो में थोडा मल रहता है, बाद में पानी जैसे दस्त होते है, कभी कभी झागदार भी होते हैं पेट में सुई चुभने जैसी वेदना होती है, थोडी देर बाद दस्त में अन्न के छोटे छोटे टुकड़े भी दिखलाई पड़ते हैं।

(ग) इस अवस्था में—लोके अदम का दरवाजा दिखाई पड़ जाता है, रो ी की हालत बहुत नाजुक होजाती है, उठने पर मुर्दे की तरह गिर पड़ता है कपड़े फैकने लगता है, ठंडी हवा मांगता है और चीखने लगता है, मु ह सूख जाता है, आखें गड्ढे में धंस जाती है, टट्टी और दस्त बन्द हो जाते हैं, पलक नहीं मिचती और ललाट पर पसीना आ जाता है ६० से ६६तक ताप रहता है।

उपद्रव

हैजे के पाँच उपद्रव है, जो एक से एक बढ़ कर हैं, नींद न आना, बेकली, कपकपी, पेशावका रुकना और अगर हो तो उसमें चीज चलना होशहवाश बिगड़ जाना, ये भयकर उपद्रव है।

मृत्यु चिह्न

बाइटो का जोर २ से और जल्दी २ आना, देह में उठने बैठने की ताकत न रहना, देह में भीतर जलन हो, और बाहर ठडा हो, पेशाब रुक २ के आता हो मारे प्यास के गले में कांटे पड़ गये हो बेचैनी के मारे सर इधर उधर घूमने लग गया हो, कण्ठ में कफ की घरघराहट हो, हिचकियां आने लग गई हो, नाड़ी रुक २ के चलने लग गई हो, हाथ पैर आदि ठडे पड़ गये हों, और होशहवाश बिगड़ गये हों, तो बहुत कम रोगी बच पाते हैं।

हिकमत से हैजा

हैजा शब्द ही असल में यूनानियो का है, आयुर्वेद में विसूचिका, और डाक्टरी में इसे कालरा कहते है। कारण भी प्रायः वे ही हैं, जिनका उल्लेख हो चुका है।

इसके ३ भेद हैं

(१) पहिला भेद

इसे पित्तज हैजा कह सकते हैं।

खाने पीने की गड़बडी से जब पेट में गर्मी अधिक हो जाती है, तथा पित्त विशेष तैयार हो, जाता है, तो तबियत उसे निकालने की आयोजना करती है, वह आयोजना ही बस हैजा है। जो मवाद, झागदार, निकम्मा, तथा आमाशय के ऊपर में है, वह कै के रूप में निकलता है, तथा आमाशय की गहराई में बैठा हुआ मवाद दस्तो के रूप में निकलता है।

प्यास की अधिकता, घबराहट, आदि पित्त के और भी चिन्ह होते है। निकम्मे मवाद के साथ फिर उपयोगी मवाद भी निकलने लगताहै, आमाशय में तथा कभी २ दिल में भी कठोरता हो जाती है, फुरफुरी का कष्ट होना है, पानी पीने से सतोष नही होता, वमन में कड़वा पित्त निकलता है, जब मवाद बिगड जाता है, तो हालत और भी नाजुक होने लगती है, बांयटे आने लगते हैं, आंतो में दर्द होता है, चैन नही पड़ती, नाड़ी धीमी पड़ जाती है, बेहोशी हो जाती है, नाक पतली हो जाती है और हाथ पाव ठडे होकर कभी रोगी मर भी जाता है।

(२) दूसरा भेद

यह कफज हैजा है।

भोजन जब बिगड़ कर कफ बन जाता है, तो पेट में भारीपन होता है, खिचाव होता है। फिर प्रकृति उसे निकालती है, तो उल्टी और दस्तो में कफ निकलता है, मुंह से पानी वहता है, और कै खट्टी होती है।

(३) तीसरा भेद

यह वातज हैंजा है।

निकम्मा, बिना पचा मवाद जब आमाशय और आँतो की तरफ पलट जाता है, तो वादी वढ़ जाती है, जिससे पचाव में बाधा पड़ती है, फिर प्रकृति चारो ओर रंगो में लगे हुये दोषो को निकालती है।

इसके तीन चिन्ह हैं

(क) हैजे से पहिले अजीर्ण होकर वादी इकट्ठी हो जाती है।

(ख) हैजे में टूंडो में दर्द तथा मरोड़होताहै

(ग) दस्त खूब होते हैं, और कै कम कभी २ तो कै होती ही नहीं, दस्त ही दस्त होते हैं।

अरोचक *Loss of taste*

जब खाने पर रुचि नहीं होती; भूख हो पर मुंह में दिया हुआ ग्रास अच्छा न लगे, तब अरुचि कहलाती है।

इसके कई कारण हैं

जब दोष बिगड़ते हैं, तब उनके बिगड़ने से; शोक से, भय से, पीड़ा से, लोभ से, क्रोध से, मन बिगाड़ने वाले पदार्थों के खाने से अथवा और कोई चीज देखने से, मन में सन्ताप करने वाली गन्ध से अरोचक होता है।

यह पांच प्रकार का होता है

(१) वातज।

(२) पित्तज।

(३) कफज।

(४) त्रिदोषज।

(५) आगन्तुक।

(१) वातज अरुचि

इसमें मुंह का स्वाद कसैला पड़ जाता है दाँत हर्षित हो जाते हैं, हृदय में शूल की सी पीड़ा होती है।

(२) पित्तज अरुचि

इसमें मुंह का स्वाद चरपरा, खट्टा पड़ जाता है, विरसता और बदबू आ जातीहै, मुंह में नमक सा घुला मालूम होता है, प्यास बहुत लगती है, जलन बहुत होती है, तथा आग खाने जैसी जलन होती है।

(३) कफज अरुचि

इसमें मुंह का स्वाद मीठा, चिकना, लिबलिबा रहता है, ठडक, भारीपन, तथा बदबू रहती है, थूक में कफ रहता है।

(४) त्रिदोषज अरुचि

इसमें सब चिह्न होते हैं। हृदय में शूल, प्यास जलन, कफ गिरना आदि सब चिह्न दिखाई पड़तेहैं

(५) आगन्तुक अरुचि

शोक से, भय से, लोभ से, आदि कारणोसे अरुचि होती है, उसे आगन्तुक अरुचि कहते हैं। इनमें मानसिक व्याकुलता, मोह, मूर्च्छा, जड़ता रस ज्ञान क्षीणता होती है।

हिकमत से अरुचि

हकीमो ने अरुचि के ११ भेद माने हैं, और उनका वर्णन भी खुलासा किया गया है।

११ भेद

पहिला भेद

गर्म सादा दुष्ट प्रकृति जब आमाशय के मुंह में आ जाती है, तो उसका मुंह सुस्त हो जाता है, उसकी शक्तियां कमजोर हो जाती हैं, और उसमें मवाद इकट्ठा होकर अरुचि पैदा कर देता है, इसमें डकार में धुआं की जैसी गंध आती है, प्यास खूब लगती है, ठडी चीजो से प्रेम रहता है।

दूसरा भेद

यह ठंडी दुष्ट प्रकृति है, जो आमाशय में पैदा होकर, जिगर को भी ठंडा कर देती है, भूख जाती रहती है, इससे कभी जलन्धर भी पैदा होजाता है।

तीसरा भेद

पित्त का दोष या नमकीन दोष आमाशय में आकर अरुचि पैदा कर देता है। इसमें जी मच लाता है उल्टी अधिक होती है, स्वाद कड़वा या खारी होता है, ठंडे पानी की इच्छा होती है।

चौथा भेद

बहुत सा चेपदार आमाशय में इकट्ठा होकर जब रुक जाता है, तो अरुचि हो जाती है, इसमें गर्म चीजे खाने से रुचि होती है, और खाने के बाद अफरा होता है, जी मिचलाता है, खिंचाव होता है डकार आने पर कुछ शांति मिलती है।

पांचवां भेद

आमाशय में बहुत से दुर्गन्धित दोष के इकट्ठे होने से अरुचि के साथ २ जी मचलाता है, मल गाढ़ा होता है, देह में बदबू आती है, कभी-कभी बदबूदार कै भी हो जाती है।

छटा भेद

कच्चे कफ के दोष जब शरीर में भर जाते हैं, तो अरुचि होती है।

सातवां भेद

शरीर की चमडी कड़ी होकर रोम पथ रुक जाताहै, जिससे पसीना नहीं निकल सकता मवाद रुकने पर भूख नहीं लगती चमड़ी कड़ी और खरदरी रहती है।

आठवां भेद

जिगर के कमजोर होने, तथा उसमें और मांस रीका रग में गांठ पड़ जाने से भी अरुचि हो जाती है। हरे, पीले, कई रंग के दस्त होते हैं, शरीर कमजोर पड़ जाता है।

नवां भेद

तिल्ली और आमाशय के बीचवाले रास्ते में गांठें पड़ने से, वादी, तिल्ली में रुक जाती है, आमाशय के मुंह पर नहीं गिरती, जिससे अरुचि होती है इसमें भूख नहीं लगती, किन्तु समय पर खाने से पचाव में बिगाड़ भी नहीं होता, तिल्ल बढ़ जाती है, अजीर्ण पैदा करने वाली चीजों के खाने से भूख लगती है, इसलिये कि वे चेपदार तरियो को नष्ट करती है, और सफाई भी करतीहै।

दशवां भेद

आमाशय के मुंह की ज्ञानशक्ति नष्ट होने से रगो के चूसने के असर का, और वादी की जलन का अनुभव नहीं होता, इसमें और सब काम ठीक रहते हैं केवल भूख नहीं लगती है।

ग्यारवाँ भेद

देह में खून कम होने, शराब की पड़ी हुई आदत को छोड़ने, चिन्ता आदि में लिप्त रहने, आदि से शक्तियां सुस्त और निर्बल हो जाती है। इसमें भूख नहीं, लगती और थोड़ा खाने पर लग जाती है, असलबात यह है कि चैतन्य शक्ति पर दबाव पड़ने से फिर वह होश हवासमें आजातीहै।

तृष्णा-प्यास

बार बार पानी पीना, और उससे भी प्यास नहीं बुझना, हरदम पानी ही पानी की रट लगना तृष्णा रोग कहलाता है।

कारण

क्रोध, और चिंता से, अधिक मेहनतसे शराब का सेवन करने से, धातुओ के क्षीण होने से, धूपमें अधिक फिरने से, आग में अधिक तपने से, ज्यादा उपवास करने से, डर लगने से, अजीर्ण होने से, घाव हो जाने से, रूखे सूखे खट्टे तथा गर्म पित्त वर्द्धक द्रव्यो के अधिक खाने से, प्यास रोग होता है, इन कारणो से पित्त और वायु बढ़

जाते हैं, बढ़कर जलवाही स्रोतो को दूषित कर, प्यास पैदा करते हैं।

पूर्व चिन्ह

प्यास रोग होने के प्रथम, तालु, होठ, गला और मुंह सूखने लगते हैं। दाह, संताप, भ्रम, मोह, बकवाद ये होने लगते हैं।

तृष्णा के भेद

(१) वातज।
(२) पित्तज।
(३) कफज।
(४) क्षतज।
(५) क्षयज।
(६) आमज।
(७) भोजनज।

(१) वातज तृष्णा

इसमें मुंह उतर जाता है, कनपटियो तथा मस्तक में दर्द होता है, मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है, जलवाहिनी नाड़ियों की गति रुक जाती है।

(२) पित्तज तृष्णा

इसमें बेहोशी होती है, भोजन में रुचि नहीं रहती, बकवाद होती है, जलन होती है, आंखे सुर्ख हो जाती हैं, मुंह सूखा रहताहै, ठंडे पानीकी इच्छा रहती है, मुंह का स्वाद कड़वा रहता है, गले से धुआँ सा निकलता है।

(३) कफज तृष्णा

इसमें नींद आती है, देह भारी रहती है, मुंह मीठा रहता है। कमजोरी हो जाती है।

(४) क्षतज तृष्णा

चोट लगने पर घावो से खून बहता है, उस समय प्यास जो लगती है, उसमें रोगी रात दिन पानी ही पानी पीताहै, नहीं मिलने पर चिल्लाताहै।

(५) क्षयज तृष्णा

इसमें धातुओ के क्षय होने के कारण लगातार पानी पीने पर भी प्यास नहीं बुझती। हृदय में पीड़ा कपकपी, आदि चिह्न भी हो जाते हैं।

(६) आमज तृष्णा

इसमें हृदय में शूल चलते हैं, मुंह से लार गिरती है, ग्लानि होती है,

(७) अन्नजा तृष्णा

इसमें बराबर जल्दी २ पानी पीने की इच्छा होती है।

हिकमत से तृष्णा के १३ भेद

यूनानी वैद्यों ने भी अधिक प्यास लगने का अच्छा निदान लिखा है। अलग २ कारणों के अनुसार उनके मत में १३ भेद हैं।

(१) पहिला भेद

कोई खारी गाढ़ा दोष आमाशय में इकट्टा होकर फालतू प्यास पैदा करता है, इसमें दोष के अनुसार ही मुंह का स्वाद रहता है, जी मचलाता है, बेचैनी होती है, कभी कै में कफादि निकल जाता हैं, सोने पर प्यास कम हो जाती है, और गर्म पानी की ही प्रायः इच्छा होती है।

(२) दूसरा भेद

गर्मी और खुश्की, दोनो ही या एक भी अगर आमाशय में आती है, तो प्यास लगती है।

(३) तीसरा भेद

छाती, फेफड़े या दिल में गर्मी पैदा होने से, बहुत प्यास लगती है। इनकी गर्मी का वर्णन अलग अलग है।

(४) चौथा भेद

जिगर में सूजन होकर उसके रास्ते को रोक लेती है, तो पानी वहां तक नहीं पहुँचता, जिससे वार बार प्यास लगती है।

(५) पांचवां भेद

जिगर में गर्म या ठंडी दुष्ट प्रकृति पैदा होकर अधिक प्यास पैदा करती है।

(६) छटां भेद

जिगर में गांठ पड़कर वह रास्ता रोक देती है, जिससे पानी वहां तक नही पहुँचता, फिर प्यास खूब लगती है।

(७) सातवां भेद

गर्म दुष्ट प्रकृति गुर्दे में पैदा होकर जिगर से पतलेपन (पानी) को बहुत खैंचती है, और मसानें की तरफ निकाल देती है, पानी जब जिगर में नहीं ठहरता तो प्यास बहुत लगती है।

(८) आठवां भेद

पुरानी शराब, खारीपानी, लहसन, प्याज, तथा गर्म चीजो के खाने से प्यास लगती है।

(९) नवां भेद

जुलाब लेने से असली तरियाँ निकलती हैं, फिर प्यास लगती है।

(१०) दशवां भेद

प्यास पैदा करने वाले मांसो के खाने से दिल तथा सब अगो में गर्मी पैदा होकर बड़ी जोर से प्यास पैदा करती है, एक मिनट भी पानी पिये बिना रहा नहीं जाता, इसके साथ ही पेशाब भी बन्द हो जाता है, और पेट फूलता जाता है. यह घातक प्यास है।

(११) ग्यारहवां भेद

फरफयून खाने से असली तरियां पच जाती हैं, और उसकी विशेष गर्मीके कारण प्यास बहुत लगती है।

(१२) बारहवां भेद

गाढ़ी, चेपदार, चीजें हरीमछली आदि खाने से प्यास इसलिये अधिक लगती है, कि कोई चीज मासारीका में चिपट जाती है, या आमाशय में गर्मी पैदा हो जाती है।

(१३) तेरहवां भेद

बर्फ खाने से, आमाशय की कफ और तरियां सिकुड़ती हैं, जिससे गर्मी रुककर प्यास लगती हैं।

भूख में खराबी पैदा होना

अन्न आदि न खाकर जब रूई, कोयला आदि खाने की इच्छा होती है, तो भूख की खराबी कहलाती है। यह रोग प्रायः फूहड़ स्त्रियो में होता हैं, गर्भवती स्त्रियां भी प्रायः ३ महीने तक इसकी शिकार हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि खराब दोष आमाशय की चुन्नटो में चिपट जाता है, फिर तबियत उसे निकम्मे दोष के विरुद्ध चीज चाहती है, बहुतो के मत में उसके अनुरूप भी ऐसी चीजें खानेसे स्वास्थ्य पर बुरा असर गिरता है, सब क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं। ऐसी स्त्रियां कभी गर्भवती नहीं होती।

जुउल बकर

इसे अरुचि नहीं कह सकते, इसमें और उसमें अन्तर है, यद्यपि बहुत से चिह्न दोनो के मिलते जुलते हैं, इसका वर्णन हिकमत में मिलताहै, और अरुचि का वर्णन उसमें अलग किया गया है।

इसके तीन भेद हैं

पहिला भेद

ठडी दुष्ट प्रकृति आमाशय के मुंह के सब भागो में अधिकतासे पैदा होजाती है, फिर उसकी ज्ञानशक्ति और खींचने की शक्ति नष्ट हो जाती है। वह खराबी सब आमाशय में फैल जाती है, जिससे एक ग्रास भी गले से, नहीं उतरता, खाने की रुचि एक दम नहीं रहती, उससे तो दुश्मनी हो जाती है फलस्वरूप कमजोरी आने लगती है। इसका असर सब अंगो पर पहुँचता है। बाद में बेहोशी भी होने लगती है।

दूसरा भेद

गाढ़ा चेपदार कफ आमाशय के मुंह पर लिपट कर उसको ढक देता है, फिर प्रकृति इसे हटाने की कोशिश करती है और भोजन से नफरत करती है।

तीसरा भेद

कफ का पतला दोष, या पित्त, आमाशय के मुंह के अंग में घुसकर, और उसकी झिल्ली में फैलकर उसकी प्रकृति को निकम्मा बना देता है। जिससे खीचने वाली शक्ति ढीली होकर कमजोर पड़ जाती है, कफ होगा तो कफ के चिह्न होगे, और पित्त होगा तो पित्त के।

आमाशय की सूजन

इसके ४ भेद हैं

पहिला और दूसरा भेद

ये दोनो भेद क्रमशः पित्त और खून से होने वाली सूजनो के परिचायक हैं। इन दोनो सूजनो में ही आमाशय में दर्द और जलन होती है, हरदम ज्वर बना रहता है, प्यास अधिक घवराहट, कै, भूख का लगना, जीभ और मुंह का लाल या पीला होना, हाथ पैरो का ठंडा रहना, ये चिह्न होते हैं। जब सूजन आमाशय के सब भागो पर कब्जा कर लेती है तो, चिह्नो और हालत में भयंकरता आ जाती है।

तीसरा भेद

यह सूजन कफ से पैदा होती है। इसमें ज्वर का हलकापन, लार बहना, सूजन का हलकापन, भूख का न लगना, अफरा, जीभ में विशेष सफेदी मुख में फूलापन, और सीसे जैसा रंग होना, ये चिह्न होते हैं।

चौथा भेद

यह सूजन बादी से होती है, इसमें कठोरता, तेजी, चिन्ता, आंखो का सूजना, शरीर का रंग बदलना, ये चिह्न होते हैं।

आमाशय की बड़ी सूजन

कुछ हकीमो का विश्वासहै, कि अंग के भीतर एक गड्ढा होकर उसमें मवाद इकट्ठा हो जाता है-और फिर पककर पीव बन जाता है, यह अक्सर गर्म सूजन के बाद में होती है, गर्म मवाद से होने वाली बड़ी सूजन को, फोड़ा कहते हैं, सूजन के पकने और फोड़ा होने के, ये चिह्न हैं।

ज्वर की अधिकता, तथा पीड़ा की विशेषता। सूजन के फटने पर रोमाञ्च होता है, दस्तो में, कै में, पीव और खून निकलते हैं।

आमाशय के घाव और फुन्सियां

सिर्का, राई आदि तेज चीजोके खाने से घाव और फुन्सियां होती हैं। चिह्न-दर्द होता है, दस्त अथवा कै में, खून और पीव आते हैं, मुंह सूख जाता है, जीभ खट्टी हो जाती है, डकार बहुत आती है जी बहुत मिचलाताहै, घाव और फुसियो के छिलके वमनमें निकलते हैं, और दस्तो में निकलते हैं, श्वास में तेजी आ जाती है।

छर्दि वमन *Vomiting*

जब खाया पिया मुंह के रास्ते उल्टी के रूप में निकल जाता है, तब हम उसे वमन, छर्दि, कै, वान्ति कहते हैं।

इसके कारण

अत्यन्त पतले, चिकने, आरोचक, प्रकृति, विरुद्ध पदार्थ खाना, पेटमें कीड़ेपड़ जाना, अधिक मेहनत करना, उद्वेग, भय, अजीर्ण, पेट में कच्चे अन्नका जमा रहना, इसका ठीक परिपाक न होना इन कारणो सेदोष कुपित होकर खाये पिये पदार्थो को उछाल कर बाहर फेंक देते हैं। उदान वायु, आमाशय में अन्नादि के जाते ही उसे उछाल कर मुंह के रास्ते बाहर फेंक देती है, डाक्टरी के मत से, अग्निमांद्य, अपरिमित भोजन, दुर्बलता, स्नायु पीड़ा, यकृत और जरायु की पीड़ा, गर्भ, कीड़े, सवारी आदि पर चढ़ना, इन कारणो से कै होती है। इस रोग में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ता है, प्राण तक चले जाते हैं।

छर्दि के प्रकार

(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) त्रिदोषज, (५) आगन्तुक इस तरह यह रोग पाच तरह का माना जाता है।

१--वातज वमन

इसमे छाती और पसलियो में पीड़ा चलतीहै मुंह सूख जाता है, सर और नाभि में वेदना होती है, खांसी चलती है, गला बैठ जाता है, पेट में दर्द सुई चुभाने जैसी पीड़ा होती है, आवाज के साथ २ डकारें आती हैं, काली, पतली, झागदार, कषैली, पृथक हुई सी, और थोड़ी २ उल्टी होती है, बड़े जोरो से, और बड़े दर्द के साथ होती है।

२—पित्तज वमन

इसमें वेहोशी होती है, रोगी उल्टी करते २ वेहोश होकर गिर पड़ता है, प्यास लगती है, मुंह सूखता है, सर में, तालु में और आंखो में, गर्मी रहती है आंखो के सामने अधेरा सा आता है चक्कर आने लगते हैं, पीली, हरी, कड़वी, गरम उल्टी होती है, उस समय धुआं निकलता है, और जलन होती है।

३—कफज वमन

इसमें मुंह मे मिठास रहता है, कफ गिरताहै तन्द्रा रहती है, नींद आती है, तृप्ति वनी रहती है. अरुचि, गौरव रोमाञ्च होजाते हैं। सफेद, चिकनी गाढी, और मीठी उल्टी होती है, उस समय अधिक वेदना नहीं होती।

४—त्रिदोषज वमन

इसमें अन्न का परिपाक नही होता है, अरुचि रहती है, जलन होती है, शूल चलते है, प्यास लगती है, वेहोशी होती है, श्वास उठता है, खट्टी, खारी, गाढ़ी, गरम, नीली, उल्टी होती है, उसमें खून भी मिला रहता है।

५—आगन्तुक वमन

वह पांच तरह की होती, (क) ऊटपटांग खाने से, (ख) पेट में कीड़े पड़ जाने से, (ग) पेट में कच्चे रस के रहने से, (घ) हृदय में उद्वेग करने वाले दृश्य देखने से, (ङ) स्त्रियों के गर्भ रहने से। इनमें जिस दोष के चिन्ह हों वही समझ लेना चाहिये।

हिकमत से कै

हिकमत में ९ तरह की कै मानी गई है, लक्षण वगैरह में ऐसा विशेष भेद नही है।

९ भेद

१--पहिला भेद

खासकर आमशय में ही, पित्त पैदा होकर, इस रोग को पैदा करता है। पित्त की अधिकता, प्यास, गर्मी, कै में कड़वापन, आदि चिन्ह होते हैं। यह पित्तज वमन है।

२--दूसरा भेद

आमाशय में कफ पैदा हो जाता है, अफरा और गुड़ गुड़ाहट आदि चिन्हो के साथ इसमें खारी कै, तथा मीठे और खट्टे कफ में मीठी और खट्टी कै होती है।

३--तीसरा भेद

यह वातज वमन है, खट्टी कै, गुड़गुड़ाहट, अफरा आदि चिन्ह होते हैं।

४--चौथा भेद

तिल्ली, कलेजे आदि दूसरे अंगो से दोष आमाशय पर गिरता है इसमें पहिले भेद के जैसे चिन्ह होते हैं, दूसरे अगो में भी तकलीफ होती है, और कै, के बाद आराम मिलता है।

५--पांचवां भेद

सारे शरीर से निचुड़ कर मवाद जब आमाशय पर, गिरता है तो कै होती है। यह अक्सर ज्वरो में होता है, और उनके साथ २ ही विदा भी हो जाता है।

६--छटा भेद

भोजन के निकम्मे होने से-सड़ा बुसा, खारी, चटपटे आदि खाने खाने से जी मिचलाने के साथ २ कै भी होती है।

७--सातवां भेद

आमाशय में दुष्ट प्रकृति पैदा होने से, और कमजोरी होने से, भोजन वहां रुकता नहीं है, कै के रूप में निकल जाता है।

८--आठवां भेद

बौहरान के तौर पर. यानीं दूसरे गर्म रोगो में कै होने लगती है।

९--नवां भेद

आमाशय में कीड़े पैदा होने पर भी उल्टी होती है।

खूनी कै

इसके २ भेद है

१--पहिला भेद

चोट धमाका लगते, अधिक चिल्लाने, मवाद के और खुश्की अधिक होने से, कंठनली की रगो में से किसी रग का मुंह फटजाता है, तथा गर्म ऋतु में पित्त बढ़कर खून में मिलने से, ठहराने वाली शक्ति की कमजोरी से, मवाद की अधिकता से रगों के मुंह खुलजाते है। खुलने तथा फटने पर कै में खून आता है, द्नोनो जगह (आमाशय, और कण्ठ में) दर्द होता है।

२--दूसरा भेद

जिगर, तिल्ली और सर में रोग होने पर जव खून वहा से आमाशय में आता है तव कै के साथ खून निकलता है। जिगरी खून में वदवू आती है, तिल्ली का खून काला, गाढ़ा, और खट्टा होता है, दिमागी खून नाक के रास्ते ही निकलता है।

आमाशय की कठोरता

आमाशय, अथवा उसके ऊपर पेट की झिल्ली में लगे हुये वन्धनों में कठोरता हो जातीहै। गाढ़ा वादी का दोष जब आमाशय में आ गिरता है तो कठोरता होती है, इसमें दोनो आंखों के कोयों में भरभराहट होती है थूक अधिक आता है, कभीं कभी खाती समय भी कष्ट होने लगता है, पेटकड़ा हो जाता है।

कभी तिल्ली की कठोरता के कारण भी उससे मिले हुये आमाशय के भागो में कठिनता हो जाती है। आमाशय की कठोरता हमेशा गोल और चौड़ी होती है।

आमाशय का खिचाव

मवाद के भरने या निकलने से आमाशय के पट्ठे के बने अगो और वंधनो में हो जाता है। जव खिचाव ठीक आमाशयमें होता है तो, भोजन की क्रिया ठीक नहीं होगी, बिना पचा भोजन निकल आता है .या अधपचा निकल आता है। अगर आमाशय को गुडियों से बांधने वाले वंधन में खिचाव होगा तो खाना आमाशय में ठहरेगा ही नहीं, आंतो में उतर आयगा। अगर हंसली और आमाशय के बीच वाले बन्धन में खिचाव होगा तो, रोगी कुवड़ा हो जायगा।

आमाशय का सुस्त होना;

इस रोग में आमाशय सुस्त और उसकी बनावट ढीली हो जाती है।

२ भेद

(१) पहिला भेद

अधिक दर्द या परिश्रम, तथा दस्त और कै की अधिकता से, आमाशय सुस्त हो जाता है, उसकी कार्यप्रणाली बिगड़ कर, कभी पचाव होता है तो कभी नहीं, वोझा मालूम होता है, कभी अजीर्ण होना आदि चिह्न होते हैं।

(२) दूसरा भेद

जव आमाशय तर मल से भीग जाता है तो या तो उसकी सुस्ती के कारण वह ढीला पड़

जाता है या आमाशय के जोड़ ढीले हो जाते है। जब आमाशय खुद ढीला पड़ जाता है तो उसकी झिल्ली भी सुस्त हो जाती है, छाती ऊंची होजाती तथा पीठ दब जाती है। पचाव विगड़ जाता है। जब बन्धनो के ढीले होनेसे आमाशय ढीला होता है तो, उन बन्धनो के तरफ ढीलेपन का झुकाव होता है।

आमाशय की खुजली और खुरचन

इसके २ कारण हैं

(१) खुजली पैदा करने वाला, कोई दाह युक्त तेज दोष किसी अंग से आमाशय पर गिरता है।

(२) छोटी-छोटी फुन्सियां आमाशय के भीतरी भाग में पैदा हो जाती हैं।

खुजली और खुरचन अगर फुन्सियो के कारण होती है तो खाना हजम नहीं होता दस्त और कै के रूप में निकल जाता है।

आमाशय के मुंह का तेज दर्द

आमाशय का मुंह दिल के पास में है और दोनो के बीच में एक बड़ी रग है। इससे इसका असर दिल पर भी जल्दी ही पहुँच जाता है।

इसके दो कारण हैं

(क) गर्म दुष्ट प्रकृति आमाशय के मुंह में पैदा हो जाती है।

(ख) पित्त का दोष दर्द की अधिकता और भोजन के विलम्ब में उस पर गिरता है।

इसके ये चिन्ह है—

आमाशय के मुंह में विशेष दर्द होता हैं, हाथ पांव ठंडे हो जाते हैं, कभी-कभी वेहोशी भी जोर से हो जाती है।

आमाशय का फडकना

२ भेद

(१) पहिला भेद

इसमें वास्तविक फडकन नहीं होती, किंतु वैसा मालम होता है। इसका कारण है, ठडा या गर्म दोष, जो या तो वही पैदा होता है, या जिगर से गिरता है। आमाशय का मुंह ही अगर फड़कता है तो जी मिचलाता है- उबकाई आती है, कभी अचेतना भी होती है, धड़कन होती है।

(२) दूसरा भेद

आंतो में कीड़े पड़ने से भी फड़कन होती हैं, इसमें अजीर्ण हो जाता है, जब पित्त वाला मवाद आंतो पर गिरता है तो, जलन के कारण कीड़े चलने भी लगते हैं। और जब अजीर्ण के कारण नीचे नही उतर सकते हैं, तो आमाशय में चढ़कर फड़कते हैं। इसमें अजीर्ण, आमाशय में दर्द, आमाशय में खुरचन, उसके भागो में सिकुड़न, हरदम जी मचलाना ये चिह्न होते हैं।

आमाशय की घबराहट

इसके २ भेद हैं

(१) पहिला भेद

पित्त का मवाद पैदा होता है या जिगर से गिरता है। आमाशय के अंग में अगर मवाद घुस जाता है तो घबराहट, वेचैनी, उबकाई ये पैदा करता है। मुंह में घुसता है तो, वेचैनी पैदा करता है।

(२) दूसरा भेद

ठडा मवाद जो या तो नमकीन होता है, या खट्टा या खारी, आमाशय में दुर्गन्धि इकट्ठी करके वेचैनी और घबराहट पैदा करता है। इसके चिन्ह आमाशय की दुष्ट प्रकृति तथा कफ और वादी की कै से मिलते जुलते हैं।

आमाशय का उलट जाना

इस रोग में खाया हुआ अन्न पचने के पीछे वमन में निकल जाता है। साधारण रूप से यह दो भागो में विभक्तहैं और इसका कारण है किसी तरह साइन (अगरा) रग का छिलना। छिलने के वाद भोजन आमाशय में पचकर उस रग में

उतर आता है। महीन महीन छिलके भी कै में निकलते हैं और खट्टी चीजों के खाने के बाद टूंडी के पास दर्द और जलन की अधिकता से होती है।

आमाशय में खून और दूध का जमना

आमाशय के अन्दर ही नहीं, आंतो के अदर भी खून और दूध जम जाते हैं। किसी अंग से खून निकलकर जब आमाशय में आता है तो गर्मी की कमी से वह वहां जम जाता है और जहरीला हो जाता है। इसी तरह दूध भी सर्दी के कारण जम जाता है। दोनो का चिन्ह यह है कि, बेहोशी सी होने लगती है, ठंडा पसीना आता है, शक्ति नष्ट हो जाती है।

हिक्का

Hiccup

इसको हिचकी बोलते हैं। जब प्राण और उदान बायु कुपित होकर बार-बार ऊपर की तरफ जाते हैं, तब हिक् हिक् की आवाज होती है। इसके कारण वही हैं जो खांसी और श्वास के हैं, उनके अलावा आम के दोष से, छाती में चोट लगने से, ऊटपटांग भोजन करने आदि कारणोसे भी हिचकी हो जाती है। हम लोगो का कुछ ऐसा विश्वास सा पड़ गया है कि जब किसी कारण से हिचकी चलने लगती है तब, फौरन ऐसा समझ लेते हैं कि हमारी याद हो रही है। हिचकी आना गोया किसी के स्मरण करने का सदेश है।

पूर्व चिन्ह

हिचकी होने के पहिले, गले और हृदय में भारीपन आ जाता है, मुंह का स्वाद, वायु के कारण कषैला पड़ जाता है, कोख में अफरा रहता है।

हिचकी के प्रकार

[१] अन्नजा।
[२] यमला।
[३] क्षुद्रा।
[४] गम्भीरी।
[५] महती।

इस तरह हिचकी पाँच तरह की होती है।

(१) अन्नजा हिचकी

जल्दी २ और अनापसनाप खाने से आमाशय का वायु कुपित होकर ऊपर की तरफ उठता है, उससे हिचकी चलती है। यह अपने आप मिट जाती है।

(२) यमला हिचकी

यह सर और गर्दन को हिलाती हुई, दो-दो बार निकलती है, अथवा रुकरुक कर दो-दो हिचकियां आती हैं। यह कष्टसाध्य समझी जाती हैं।

(३) क्षुद्रा हिचकी

यह देर से और हलके से उठती है, यह कंठ और हृदय के संधि स्थान से उठती है। यह सुख साध्य कहलाती है।

(४) गंभीरा हिचकी

यह नाभि के पास से उठती है, इसमें बड़े जोर का शब्द होता है। इसके साथ-साथ प्यास, श्वास, बुखार आदि कई उपद्रव होते हैं, यह असाध्य है।

(५) महती हिचकी

यह लगातार चलती है और उससे हृदय, सर आदि प्रधान मर्मस्थल में वेदना होती है, सारी देह कांपने लगती है। यह भी असाध्य है।

हिकमत से हिचकी

इसके ८ भेद हैं

पहिला भेद

गर्म या तेज दोषो में से कोई दोष या तेज भोजन वा तेज दवा, आमाशय के मुंह में जलन पैदा करती है जिससे हिचकी आती है।

दूसरा भेद

आमाशय के मुंह या पर्दों में या गलेमें गाढ़ी हवा रुककर खिचावट करती है, फिर आमाशय उसे निकालने के लिये हिचकी पैदा करता है। प्रायः यह हिचकी, बच्चो को दूध पीने के बाद में होती है।

तीसरा भेद

आमाशय में तरी अधिक होकर उस पर चिपट जाती है जिससे हिचकी चलती है। इसमें आमाशय में भारीपन होता है, पचाव बिगड़जाता है भोजन खट्टा हो जाता है और मुह में पानी भर आता है।

चौथा भेद

कसरत न करने, नहीं नहाने और गाढ़े भोजन करने से थोड़ी देर बाद ही हिचकी चलने लगतीहै

पाँचवां भेद

आमाशय में ठडी दुष्ट प्रकृति पैदा होकर हिचकी पैदा करती है। हकीमो ने इसके तीन ३ प्रकार माने हैं।

(१) दुष्ट-प्रकृति आमाशय को कष्ट देती है और पाचन नहीं होने देती, जिससे हिचकी चलती है।

(२) सर्दी आमाशय के भागो को सकोड़ देती है, जिससे आमाशय उसे ठीक करने के लिये हिचकी पैदा करता है।

(३) जब आमाशय सर्दी के विरुद्ध होजाता है तो, हिचकी पैदा करता है।

छठा भेद

जिगर में सूजन होने से भी हिचकी पैदा करती है, इसके भी कई भेद माने हैं।

सातवां भेद

आमाशय में सूजन से भी हिचकी होजाती है

आठवां भेद

आमाशय के मुह में विशेष खुश्की होने से भी हिचकी चलने लगती है।

जम्हाई और अंगड़ाई

Gape

जम्हाई में विवश होकर मुंह खुल जाता है। भाप के अपक्व अंश सिर की तरफ चढ़कर आते हैं, और होंठो के जोड़ो में इकट्ठे होकर गाढ़े हो जाते हैं, फिर प्रकृति उन्हे दूर करने के लिये जम्हाई लेती है। अगड़ाई का कारण भी भाफ ही हैं, यह सम्पूर्ण शरीर में होती है।

डकार और उबकाई

डकार एक प्राकृतिक होती है, दूसरी अप्राकृतिक। पहिली समानता पर होतीहैं, और आमाशय के भारीपन को दूर करती है। अप्राकृतिक डकार पचाव को बिगाडती है। मवाद होने पर जी मचलता है, और उबकाई आती है। विशेष मवाद होने पर कै हो जाती है, वर्ना उबकाई आती है।

मन्दाग्नि *Lossof vppetite*

खाये पिये का पाचन अग्नि से होता है, कोठे में जो अग्नि होती है वह जठराग्नि कहलाती है, शरीर का स्वास्थ्य इसी के ऊपर निर्भर रहता है. जठराग्नि चार तरह की होती है, (१) समाग्नि (२) विषमाग्नि, (३) तीक्ष्णाग्नि, और (४) मन्दाग्नि। समाग्नि में परिमित भोजन का पाचन हो जाता है, विषमाग्नि में कभी पचता है, कभी नहीं पचता, अफरा, शूल, अतिसार आदि विषमाग्नि के भाई बन्धु हैं, तीक्ष्णाग्नि में भारीभोजन भी पच जाता है और मन्दाग्नि में थोड़ा भोजन भी नही पचता।

कारण और चिन्ह

मिथ्या आहार बिहार से तथा और रोगो से जठराग्नि मन्द होती है। मिथ्या आहार विहार के कारण जठराग्नि ठीक काम नही करती, जिससे और रोग भी आ जुटते हैं। और रोगो के कारण

भी अग्नि मन्द पड़ जाती है, किंतु वे रोग भी आखिर मिथ्या आहार-विहारसे ही होते हैं, अतः प्रधान कारण मिथ्या आहार विहार ही है, इसमें कफ की अधिकता रहती है।

थोड़ा भोजन भीं नहीं पचता, वमन होती है, ग्लानि रहती है, लार गिरती है, सर और पेट में भारीपन रहता है।

भस्मक जुउल कल्ब

ज्यादा तीखे और रूखे पदार्थों के खाने से वात पित्त तो वढ़ जाते हैं और कफ का नाश हो जाता है, जिससे जठराग्नि खूब प्रदीप्त हो जाती है इसमें जो कुछ भी खाया जाता है, सब फौरनभस्म हो जाता है, अगर भूख लगने पर भोजन नहीं किया जाय तो, प्रदीपाग्नि रस, रक्त, धातुओ को खाने लगती है, अधिक प्यास दाह, मूर्छा आदि इसके उपद्रव हैं, इसका इलाज शीघ्र न होने से यह धातुओं को खाकर शरीर की सत्ता का नाश कर देती है। हिकमत में इसे जुउलकल्ब कहते हैं, इसके ५ भेद माने गये हैं।

आनाह *Canstipation*

जब कच्चा रस, मल पेट में इकट्ठा हो जाता है, और दूषित बायु उसे सुखा देता है तो, आनाहरोग होता है। पेट में सूखा हुआ मल गुदा के रास्ते निकलता तो है नही और पेट में पड़ा हुआ दर्द आदि पैदा कर देता है।

आनाह के दो भेद

यह दो तरह से होता है। (१) कच्चे रससे और (२) मल से।

(१) आमज आनाह

कच्चे रस से अगर आनाह होता है तो, जुकाम, प्यास, सर में जलन, आमाशय में शूल, शरीर में भारीपन, हृदय का जकड़ना और डकारो का रुकना ये चिह्न होते हैं। न खाने को इच्छा ही होती है और खाया हुआ हजम नहीं होता।

(२) मलज आनाह

पाखाना के जमा होने से जो आनाह होता है वह और भी भीषण होता है। कमर और पीठ रुक जाती है, दस्त पेशाव होते नहीं, दर्द चलता है वेहोशी तक हो जाती है, उल्टी होती है और उसमें पाखाना निकलता है। अफरा, अलसक, आदि हो जाते हैं।

आध्मान *Tympauitis*

हिकमत में इसे अफरा कहते हैं। जव अधोवायु रुक जाती है, तो पेट मसक की तरह फूल जाता है। पेट में गुड़गुडाहट होने लगती है और दर्द भी होता है। तिब्बे अकवरी में इसे नफ़ख लिखा है और इसके ४ कारण माने हैं।

४ कारण

(१) ठंडी सादा दुष्ट प्रकृति आमाशय में पैदा होकर उसकी प्राकृतिक गर्मी को नष्ट कर देती है जिससे पूरा पचाव न हो और भाफ के परमाणु अधिक पैदा होकर, गाढ़े रूप में रिहा बन जाते हैं; जिससे पेट फूलता है।

(२) अधिक खा लेने पर पेट में अफरा हो जाता है।

(३) वादी पैदा करने वाले पदार्थ खाने से पेट फूल जाता है।

(४) दुर्गन्धित और अरुचि कारक पदार्थ खा लेने से, पाचन शक्ति ठीक पचाव नहीं करती जिससे पेट फूल जाता है।

वास्तव में हिकमत ने ठीक-ठीक कारण बतलाये हैं।

अत्याध्मान

कफ के विगड़ने से, जब वायु की गति रुक जाती है, तो आमाशय में दर्द होता है और चसक उठती हैं।

उदावर्त-वायु का चक्कर खाकर ऊपर उठना मल, मूत्र, छींक, डकार, जंभाई आदि के

रोकने से उदावर्त रोग पैदा होता है। इस रोग में वायु का चक्कर ऊपर को जाता है, इसलिये इसे उदावर्त कहते है। मल, मूत्र आदि १३ वेग होने हैं इसके रोकने से अलग अलग खराबिया होती हैं, उन सबका उल्लेख यहां किया जाता है।

अधोवायुज उदावर्त

अधोवायु (पाद) के रोकने से, रुका हुआ वायु खराबी पैदा करना है वह वायु पेशाव और पाखाने को रोक देता है, चक्कर खाकर जब वायु ऊपर उठता है तो पेट फूल जाता है, शूल चलने लगता है, सहसा परिश्रम और पीड़ा का अनुभव होता है, वायुगोला आदि और भी उपद्रव पैदा हो जाते हैं।

पुरीषज-उदावर्त

पाखाना रोकने से—यानी पाखाना जाने की इच्छा होने पर न जाने से, पेट में गुड़गुड़ाहट होने लगती है, दर्द होने लगता है गुदा में कैंची सी चलकर दर्द करती है. कब्ज हो जातीहे, खट्टी डकारें आती हैं, कभी २ डकारो के साथ मल के कण भी आते हैं, इससे स्वास्थ्य का एकदम सफाया हो जाता है।

मूत्रज-उदावर्त

पेशाव को रोकने से, मूत्राशय और लिंग में कांटा चुभने जैसी पीड़ा होने लगती है, बाद में पेशाव रुक जाता है, खुलासा नहीं होता और दर्द होने लगता है सर में दर्द हो जाता है, पेड़ू में अफरा हो जाता है, इसी तरह और भी खराबी हो जाती है।

जभाई का उदावर्त

जंभाई से बुरी भाफ निकलती है. उसे रोकने से गले के पीछे की नस में रुकावट हो जाती है, कभी २ सारे गले में ही स्तम्भ हो जाता है; सर दर्द होने लगता है, आंख, कान, नाक और मुंह में पीड़ा होने लगती है।

आंसू का उदावर्त

आंसू—चाहे वह रोने से आये हो, चाहे खुशी के मारे, अगर रोक लिये जाते हैं, तो, आंखों के अन्दर बीमारी पैदा हो जाती है। सर में भारीपन हो जाता है। और पीनस होजाता है।

छींक का उदावर्त

छींक के द्वारा कई अगों का शोधन होता है। इसे रोकने पर, गरदन की पिछली नस रुक जाती हैं, सर में शूल चलने लगता है, आधे मुंह का टेढ़ा होना आदि और उपद्रव होजाते हैं।

डकार का उदावर्त

डकार से पेट की शुद्धी होती है, रुका हुआ वायु निकल जाता है, इसे रोकने पर हृदय और आमाशय में दर्द होता है मानों चींटे काटते हैं। पेट में कूजन हो जाती है, हिचकी आदि और भी उपद्रव हो जाते हैं। गला रुका हुआ सा हो जाता है।

कै का उदावर्त

कै होना चाहती हो और उसे रोक दिया जाय तो खुजली, चकत्ते, जलन, अरुचि, सूजन, पीलिया, बुखार आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। कै में मवाद निकलता है, या वह हिस्सा जिसे आमाशय नहीं रख सकता। फिर इसे रोकने से कई आफत होती है।

वीर्य का उदावर्त

वीर्य को हमेशा रोकना चाहिये, इससे शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है, मगर निकलते हुये स्थान भ्रष्ट वीर्य को भूलकर भी न रोके, ब्रह्मचर्य के अनुसार वीर्य को स्थान भ्रष्ट न होने देना चाहिये। किन्तु स्त्री प्रसंग के समय या स्वप्नदोष के समय निकलते हुये वीर्य को निकलने देना ही अच्छा है। इसे अगर हम लिंग पकड कर रोक लेंगे, तो यह अपने स्थान पर नहीं जायेगा फिर

रुककर पेशाव को रोक देगा। सूखकर पथरी पैदा कर देगा। मूत्राशय, गुदा और अंडकोशो मे सूजन और पीड़ा पैदा करता है। और भी उपद्रव इससे पैदा हो जाते हैं।

भूख का उदावर्त

भूख लगने पर, न खाने से, तन्द्रा, अङ्गो का टूटना, अरुचि, आंखो की कमजोरी आदि पैदा होते हैं। कभी २ वेहोशी भी हो जाती है।

प्यास का उदावर्त

प्यास रोकने से, गला और मुंह सूज जाता है। हृदय में पीड़ा, शरीर में खुश्की आदि पैदा होते हैं, जलांश कम होने पर पेट में खराबी हो जाती है, खाना ठीक नही पचता।

सांस का उदावर्त

थका हुआ आदमी या सांस का रोगी अगर सांस रोकता है, तो हृदय में पीडा, मोह, वायु, गोला, वेहोशी आदि पैदा होजाते हैं।

नीद का उदावर्त

नींद आने पर नही सोने से, जंभाई, अंगड़ाई, तन्द्रा, माथे, शरीर, आखो में भारीपन ये होते हैं।

अयोग्य भोजन का उदावर्त

सूखे, कसैले, तीखे और कड़वे पदार्थ ऊट पटाग तौर से खा लिये जाते है, तो कोठे में रहने वाला वायु तुरन्त उदावर्त पैदा करता है, अधोवायु, मल, मूत्र आंसू कफ और मेदा को वहाने वाली नाड़ियां रुक जाती हैं, पाखाना रुक जाता, या जोर लगाने पर थोड़ा होता है, हृदय और वस्ति में शूल उठता है, हल्लास हो जाता है, मूत्र अधोवायु, इनमें रुकावट होकर ये थोड़े २ होते हैं। सांस, खांसी, जलन, जुखाम, हिचकी आदि और उपद्रव हो जाते हैं, कुछ का कुछ सुनाई देने लगता है।

२८

मरण चिह्न

अन्तिम उदावर्त सबसे भयंकर है, जो रोगी प्यास और कै से व्याकुल हो जाता है, क्षीण हो जाता है। शूलो के मारे तड़फता है, कै में पाखाना निकलता है, वह मर ही जाता है।

आंतों के रोग

(*Disease of the intestinals*)

आंतें दो तरह की होती हैं।

(१) पतली आंतें Small entestinal

(२) मोटी आंतें Larg intestinal

पतली आंतें पेचीदा हैं, और आमाशय Stomach के नीचले मुंह से शुरू होकर पेट के निचले भाग में रहती है, ये २० फुट के बराबर हैं और इनका घेरा सा बना हुआ है। घेरे के ऊपर मोटी आँतें हैं।

मोटी आंतो के खास भाग तीन हैं।

सिकम

कोलन

रिकटम

आंतो का विशेष वर्णन शरीर शास्त्र में देखिये।

यहां आंतो से सम्बन्ध रखने वाले रोगो का उल्लेख होगा, आयुर्वेदिक समझ सकते हैं, कि यहाँ पक्वाशय के भी रोगो का उल्लेख होगा।

उदर पीड़ा

उदर कहते है, पेट को, पेट में जो रोग होते हैं। उन्हे उदर रोग कहते हैं। पेट के रोग भी बड़े भयकर होते हैं, देखते २ दम निकलतो नहीं जाता मगर हालत वैसी ही हो जाती है।

पेट के रोगो के कारण

सभी जानते है। आजकल ऊट पटांग खाने की तो लोगो को आदत पड़ गई है। पहिले खाये

हुये अन्न का परिपाक नहीं होता है, और फिर खा लेते हैं, बस जठराग्नि कमजोर हो जाती है। और अगर कमजोर न भी हो तो बेचारी बराबर अधिक मिहनत करते २ अपना काम ठीक नहीं कर पाती बिना आराम लिये आखिर वह कहां तक चक्की चला सकती है। उस हालत में भारी, चिकना, अहित भोजन करने से, सड़ा हुआ खाना खाने से, वमन विरेचनादि में गड़बड़ हो जाने से, कोठे में रहने वाले दोष बिगड़ जाते हैं, जिससे उनका संचय होने लगता है, बाद में वे प्रायः अग्नि और अपान वायु को दूषित कर देते हैं। मेदे और क्लोम व्यथित कर देते हैं जिससे पेटमें दर्द होने लगता है।

पूर्व चिह्न

पेट में दर्द चलने से पहिले बल वर्ण का नाश होजाता है, पेट की सलवारें तन जाती हैं, जिससे दिखाई नहीं पड़ती। रोमांच हो जाता है, भोजन पचने न पचने का ज्ञान नहीं रहता। जलन होने लगती है और मूत्राशय में पीडा तथा पात्रो पर सूजन के चिह्न प्रगट हो जाते हैं।

स्पष्ट चिह्न

पेट में आध्मान चलने से—जो घबराना, कमजोरी, अग्नि का कमजोर होना, देह में सूजन और परिसाद, मल मूत्र की रुकावट, पेट में जलन और तन्द्रा ये चिह्न स्पष्ट होते हैं।

प्रकार

पेट में आठ तरहके रोग होते हैं (१) वातोदर (२) पित्तोदर (३) कफोदर (४) सन्निपातोदर (५) प्लीहोदर (६) बद्धगुदोदर (७) क्षतोदर और (८) जलोदर। इन सबकी विवेचना भी की जायगी।

(१) वातोदर

पंसवाड़े, पेट, पीठ, नाभि, ये जकड़ जाते हैं। पेट फूल जाता है, और उसके ऊपर काली नसें चमकने लगती हैं। शूल, अफरा, और पेट में गुड़ गुड़ाहट हो, दर्द होना है।

(२) पित्तोदर

पित्त के द्वारा पित्त के विकार से जब दर्द होता है तो चूमन, जैसी पीड़ा होती है। ज्वर हो जाता है। पेट में जलन होती है पेट फूल जाता है। नसें तन जाती हैं। और उनका रंग पीला पड़ जाता है, आंखें, मलमूत्र, नाखून, मुंह ये पीले पड़ जाते हैं, और दर्द जल्दी ही बढ़ जाता है।

(३) कफोदर

इसमें पेट ठंडा रहता है, फूल जाता है, नसें सफेद दिखाती हैं और वह कड़ा हो जाता है, नख मुंह सफेद हो जाते हैं, चिकने हो जाते हैं और उनमें अति शोफपन आ जाता है, अंगों में ग्लानि होती है। और यह दर्द धीरे २ बढ़ता है।

(४) सन्निपातोदर

इसमें खून तथा तीनो दोष बिगड़ जाते हैं। जिससे यह बड़ा ही भयानक है, शैतान आदमी अपना बदला लेने के लिये अपने दुश्मनके भोजन में नाखून, किसी जीव के बाल, मल,मूत्र, रज आदि मिला देते हैं। उसे जहर दे देते हैं। जिससे बेचारे की यह हालत हो जाती है, इसके अभाव में दूषित जहरीला पानी पीने से, दूषी विष खाने से, भी यह रोग होता है। इसमें मनुष्य बराबर बेहोश होता है, देह पीली पड़ जाती है, दुबला हो जाता है, मारे प्यास के दम निकलने लगता है।

(५) प्लीहोदर Splenic enlargement

प्लीहा नाम है, तिल्ली का जो बायें पंसवाड़े में रहती है। इसमें तिल्ली बढ़ जाने से रोग पैदा होता है, दाह जनक तथा रस बाहिनी नसों को रोककर गुरुता पैदा करने वाले पदार्थों के अधिक खाने से, खून और कफ दूषित होजाते हैं, और तिल्ली को बढ़ा देते है, बाद में उसके ऊपर ठसक पहुँचने

से, दर्द उठने लगता है, इसमें रोगी हरदम कुम्हलाया सा रहता है, थोड़ा बुखार भी रहता है, मंदाग्नि हो जाती है. कमजोरी आकर देह पीली पड़ जाती है, सीहा के बढ़ने से सीहोदर होता है और यकृत के बढ़ने से—

(६) यकृद्दाली उदर (Hepatic oneos gement)

यकृत को जिगर कहते हैं। यह दाहिनी तरफ है, यह भी बढ़ जाता है, और उस समय सीहा की तरह विकार पैदा कर देती है, जो चिन्ह सीहोदर में होने हैं, वही इसमें होने हैं।

(६) बद्धगुदोदर (Entestinal clts ution)

यह रोग उन्हें होना है। जिनकी आंतें चिकनी पिच्छिल पदार्थों से लिप जाती है, और विना देखे भाले मिट्टी, राख, बाल आदि खालेते हैं। इससे दोष बिगड़कर मल को रोक देता है इच्छा करने पर और जोर करने पर भी पाखाना नहीं होता, और होता भी है तो बहुत कम, पेट में भयंकरदर्द चलता है, और पका हुआ मल, हृदय तथा नाभि के पास जाकर बढ़ता है, पेट में पाखाने जैसी बदबू उठती है और कभीर उल्टी भी होजाती है।

क्षतोदर *Wlvration ot the bomel*

यह उस हालत में होना है जब सूई, कांटे, आदि खाने के साथ अथवा और तरह पेट में घुस जाते हैं, यह नुकीली चीजें भीतर जाकर आंतो को चीर देती है, जिससे आंत में पानी की तरह स्राव होकर गुदा द्वारा निकल जाता है, नाभि के नीचे पेट बढ़ जाता है दर्द उठताहै जलन होती है।

जलोदर *Astites*

आयुर्वेदिक विद्वानों के मतानुसार घी खाकर पानी पीने से, अथवा दूषित जल पीने से, जल बहाने वाली नाड़ियां दूषित हो जाती हैं, जिससे यह रोग पैदा होता है, इसको दकोदर भी कहते हैं इसमें पानी भरता रहता है और १०-१५ सेर की तादात में पहुँच जाता है, पेट मशक की तरह फूलकर थल थलाता है, पानी हिलता है, इससे पेट में रहने वाले सब कल पुर्जों पर भारी आघात पहुँचता है, बड़ी आँतें और छोटी आंतें सब इस रोग में निकम्मी होती देखी गई हैं।

बोल चाल की भाषा में इसे जलन्धर रोग कहते हैं, और ऐसा ही हकीम भी। हिकमत में इसका खुलासा वर्णन किया गया है, लिखा है—

यह रोग मल से पैदा होता है, इसका मल बाहिरी और भीतरी जोडों के कानो में आकर अन्तर डालना है, और सूजन भी पैदा कर देता है। साधारण रूप से इसके २ भेद होते हैं। यहां यह बात भी याद करने की है कि हकीमों ने जलन्धर का वर्णन कलेजे के रोगो में किया है, उनके मत में कलेजे के विकारसे यह रोग होताहै।

जलन्धर के ३ भेद

(१) लहमी।
(२) जकी।
(३) तिबली।

(१) लहमी

लहमी में दोष बाहरी जोड़ो में होता है।

मल मांस के भीतर के छिद्रो में जाकर रुक जाता है। इसमें सब शरीर ढीला पड़ जाता है, सुस्त हो जाता है, और फूल भी जाता है, अंगुली से दबाने पर दब जाता है, पेशाब सफेद होता है, दस्त होते हैं मुंह में खट्टापन रहता है, प्यास की कमी रहती है, देह दबाने पर दब जाती है, और फिर क्षण भर ठहर के रबड़ की तरह अपने आप ही फूल जाती है।

साथ ही अगर बुखार भी होता हो तो, उसके चिह्न प्यास की अधिकता, मूत्र में ललाई, मुंह का कड़वापन आदि भी हो जाते हैं।

लहमी का पूरा कारण है

जिगर की शक्तियो का कमजोर होकर, उसकी प्रकृति में ठडापन होना। कभी २ जिगर की गर्मी से भी यह रोग होता है, चूंकि गर्मी होने के बाद जिगर निर्बल हो जाता है, उसमें गर्मी का विकार होता है, फिर अन्न का पाचन ठीक नहीं होता। अपक अन्न ही जिगर में आ जाता है, खून बनता नही इस कारण देह फूल जाती है। गाढी रतूबतों की दया से देह फूलती है, यह भी ध्यान करने की बात है। जिगर की ठड और कमजोरी के ५ कारण होते हैं।

(१) देह में से खून का अधिक बहना, और अधिक निकलना।

(२) मामूली रुधिर का, जिसका निकलना आवश्यक है, बन्द हो जाना।

(३) स्नान के बाद, मिहनत के बाद, संभोग के बाद, ठडा पानी पीना।

(४) जिगर के आस-पास के अवयवो में तिल्ली; फेफड़े, आदि में विकार होने से उसका असर जिगर पर गिरता है।

(५) सम्पूर्ण शरीर की दशा अस्त-व्यस्त हो जाती है, ऐंठन, पेचिश; कमर का दर्द, आदि से भी जलन्धर पैदा हो जाता हैं।

(२) जक़ी

इसमें पेट की रगो में पानी जमा होता है, फिर वह चाहे पर्दो के बीच में हो, चाहे पर्दो और आँतो के बीच में। इसके तीन कारण हैं।

(१) कलेजे की निस्सारक शक्ति और गुर्दे की ग्रहण शक्ति, इन दोनों में अथवा एक ही में किसी उपद्रव के होने से, तरी खून से जुदा नही होती है, इन दोनो का रासायनिक पृथकीकरण नहीं होता है। फिर शारीरिक प्रकृति इसे सहन नहीं करती, तरी मिले खून से वह असहयोग कर देती है, फिर वह चढ़कर वहां आ जाती है। जिससे जगह रुक जाती है।

(२) बहुत ठडा पानी पीने से भी यह रोग हो जाता है।

(३) देह की तरी पिघलने लगती है, और स्वाभाविक देहपथ, सूजन आदि से बन्द होजाता तो, वह पिघली हुई रतूबत वहां आ जाती है। इसके चिन्ह हैं—

पेट का भारी होना, और बढ़ना, तथा उसकी खालका खिंचना, और उस पर सफाई एवं चमक दिखाई देना, छूने पर भरी हुई मशक जैसा मालूम होना। पेट पर हाथ मारने से और चलने फिरने से, तथा कर्वट लेने से, पानी के चलने फिरने की आवाज होती है। कभी २ हांथ पाव, पपोटे और मूत्र स्थान में सूजन हो जाती है। इस रोग की पुरानी अवस्था में जब वह जड़ पकड़ लेता है, तो खांसी और श्वास में कठिनाई होने लगती है।

जब साथ में ज्वरांश नही होता हैं, तो प्यास का न होना, मल-मूत्र की सफेदी, सर्दी लगना, ये चिह्न होते है।

(३) तिबली

गाडी हवा, जो पिघल नही सकती, थोड़ी रतूबत मिलकर वहां इकट्ठी होजाती है, जहां जल्दी जलन्धर का पानी इकट्ठा होता है। इसे सूखा भी कहते है। इसका कारण है—जिगर की प्राकृतिक उष्णता, अथवा आमाशय की सर्दी, और रतूबत की अधिकता। इसके चिह्न हैं—जक़ी की अपेक्षा इसमें भारीपन बहुत कम होता है। खिंचावट होतीं है और बोझ मालूम होता है, पेट फूली हुई मशक की तरह होता है, और हांथ से बजाने पर नगाड़े की सी आवाज होती है, इसमें टूंडी बाहर निकल आती है। यही इसकी प्रधान पहचान है।

तिवली का एक दूसरा भेद और है उसका नाम है 'हव्न,।

(४) हव्न

जब तिल्ली में रतूवत और हवा पिघल जाती है, तथा गाढ़ी हवा जो पिघल नहीं सकती और भी कठोरता पैदा कर देती है। हव्न में कठोरता अलबत्ता बढ़ जाती है, किन्तु जिगर और रोगी की दशा अच्छी होजाती है। अन्न पचने लगता है, बांकी और भी दशा सुधरने लगती है।

कृमि कीड़े *Warms*

वाहरी और भीतरी, इस प्रकार कीड़े दो तरह के होते हैं। वाहरी कीड़े जू वगैरह है और भीतरी कीड़े आमाशय और रक्त में रहते है। भीतरी कीड़ो के तीन भेद वना दिये है, जिससे कीड़े चार तरह के हें।

(१) मैल या पसीने आदि से होने वाले।

(२)—(क) पाखाने से होने वाले।

(३)—(ख) कफ से होने वाले।

(४)—(ग) खून से होने वाले।

इनमें भी पाखाने से होने वाले, कीड़े सात तरह के, कफ से होने वाले ६ तरह के और खून से होने वाले सात तरह के होते हैं। इनके अलग २ स्थान भी हैं—

पसीने से होने वाले कपड़ो और वालो में रहते हैं। पाखाने से पैदा होने वाले, पकाशय में, कफ से होने वाले, आमाशय में, और खून से होने वाले, खून बहाने वाली नसो में होते हैं।

कारण

वाहरी कीड़े—

शरीर और कपड़ो में गन्दगी रहने से होते हैं, जो आदमी ठीक तौर से नहाता धोता नहीं, कपड़ो को गन्दा रखता है, इसके वालो तथा कपड़ा में जूं लीक वगैरह कीड़े पैदा होते हैं।

भीतरे कीड़े—

(१) अजीर्ण में भोजन करने से।

(२) प्रतिदिन खट्टा, मीठा भोजन करने से,

(३) कढी, रायता आदि पतले पदार्थो के अधिक और निरन्तर खाने से।

(४) मैदा आदि गुड़ मिले द्रव्योके खाने से

(५) मेहनत न करने से।

(६) दिन में सोने से।

(७) विरुद्ध भोजन दूध, दही, दूध नमक आदि खाने से आदि आदि कारणो से पैदा होते हैं।

(१) वाहरी कीड़े

जब देह और बस्त्रो में वाहरी कीड़े खूब हो जाते हैं, तब उनके काटने से फोड़ा-फुन्सी, दाद, खुजली आदि हो जाते हैं।

२-(क) पुरीषज कृमि

उड़द पिसा हुआ अन्न, जलेवी, लड्डू, रेवड़ी आदि ज्यादा खाने से, पाखाने से पैदा हुये कीड़े पकाशय में नाचने लगतेहैं। ये कीड़े अक्सर नीचे ही रहते हैं और पाखाने के साथ वाहर भी निकलते हैं। लेकिन उपचार न करने पर जब इसकी संख्या वढ़ जाती है, तव ये आमाशय की तरफ भी दौडने लगते है। जिससे डकार सांस आदि में पाखाने जैसी वदबू आने लगती है। पतले दस्त शूल, अफरा, कमजोरी, पीलिया, रोमांच, मन्दाग्नि गुदा में खुजली, शरीर की कठोरता, ये सब रोग उस अवस्था में हो जाते हैं, जब ये कीड़े दूसरी राह दौड़ने लगते हैं।

(ख) कफज कृमि

अधिकतर मीठा अधिक खाने से उड़द आदि खाने से ये कीड़े पैदा होते हैं। ये पैदा तो होते हैं आमाशय में किंतु घूमते हैं पेट में हर तरफ जब ये बड़े हो जाते हैं, तब बड़ी दिक्कत पैदा करते

हैं। अन्नाद, उदरावेष्ट आदि इनके सात नाम हैं इनसे उल्टी की सी इच्छा होती है, मुंह में पानी आता है, भोजन पचता नहीं, अरुचि, मूर्च्छा, सूजन, पीनस आदि रोग और पैदा हो जाते हैं। ये काले मंडल वाले होते हैं, मज्जा, कान, तालुको, खा जाते हैं आंखो को चट कर जाते हैं।

(ग) रक्तज कृमि

ये खून बहाने वाली नसोमें होते हैं। ये बारीक अपाद, गोल और तांबे के रग जैसे होते हैं। ये केशाद, रोमविध्वन्स, रोमद्वीप आदि नामोवाले ये कीड़े, खाज, खुजली; फोड़ा, फुन्सी आदि पैदा करते हैं।

सामान्य चिन्ह

जब देह में कीड़े पैदा हो जाते हैं, तब ज्वर होता है, शरीर का रग बदल जाता है, पेट में शूल चलते हैं, हृदय दुखता है, जी मचलाता है, चक्कर आते है, दस्त लग जाते हैं आदि चिह्न प्रगट होने सें कीड़ो की सत्ता का परिचय मिल जाता है।

हकीमी और डाक्टरी मत

हिकमत में लिखा है कि, आंतो में कफ युक्त मल के इकट्ठे होने से कीड़े होजाते हैं।

इसके ४ भेद है

(१) पहिला भेद

इन्हे हयात या गिड़ोये कहते हैं, ये सांप जैसे हाथ भर के होते हैं और ऊपर की आंतो में रहते हैं। मरोडे, नाड़ी की कमजोरी, बगलो में सर्दी, सूखी खांसी, सुस्ती, नीद में दांतो का पिसना, आमाशय के मुह में धड़कन और जलन' पेट फूलना आदि चिह्न होते हैं।

(२) दूसरा भेद

इन कीड़ो को कद्दू दाना कहते हैं, ये घीया के बीज जैसे होते हैं।

(३) तीसरा भेद

ये कीड़े गोल होते हैं, और भूख की अधिकता कभी २ कीड़ों का निकलना, रंग में पीलापन, लार बहना आदि चिह्न होते हैं।

(४) चौथा भेद

ये कीडे सिर्फ पानी के कीड़ों जैसे होते हैं, इन्हे चिनुना भी कहते हैं। अक्सर ये कीड़े मुस्त-कीम आंतो में होते हैं। गुदा में खुजली, कष्ट आदि चिह्न होते हैं।

डाक्टरी के मत से

कच्चे फल, अधिक मीठा खाना, गन्दगी आदि कारणो से पैदा होते हैं।

इसके ३ भेद हैं

१—ये छोटे २ सूत्र जैसे कीडेहोते हैं, जो दल बांधकर गुदा के पास रहते हैं, फिर कभी २ मूत्राशय की तरफ भी झपट मार देते हैं, फिर इन स्थानो में चिलक होती है, जलन होती है, कभी २ पेशाब में वीर्य भी निकल जाता है। नाक के जड़ भाग में तथा गुदा द्वार में खुजली चलती है, सांस में बदबू आती है, पाखाना फिरते समय बड़ा दर्द होता है, खुजली के मारे नींद हराम हो जाती है।

२—ये केंचुये जैसे कीड़े होते हैं, और अक्सर यह एक ही रहता है, तथा छोटी आंत में रहता है, कभी २ यह मुंह की तरफ चढ़ जाता है, कभी २ मल के साथ निकल जाता है, पेट फूलना, दर्द, दांत पीसना, सोते २ जग उठना, नासिकाग्र और गुह्य द्वार में खुजली, पेट की सख्ती और गर्मी, शरीर शीर्ण, पीलापन, आंखो का फैलाव, आम-मिश्रित मल, कभी २ बेहोशी, लार बहना आदि चिह्न होते हैं। यह कीडा ४ से १२ इञ्च तक लम्बा होता है।

३—यह फीते जैसा लम्बा कीड़ा होता है, चिपटा और गांठदार होताहै, यह भी छोटी आंत

में रहता है, इसकी लम्बाई १० से २०० फिट तक होती है।

कभी२ मल के साथ भी गिर जाया करता है।

अतिसार *Diarrhoea*

खाना न हजम हो, और दस्त लगने लग जाय उसे अतिसार कहते हैं, प्रचलित शब्दों में दस्त लगना अतिसार का पूरा मतलब है, अतिसार साधारण रोग नहीं है, इसमें बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। डाक्टरी में 'इसे डायरिया' कहते हैं।

कारण—

बहुत भारी, चिकने, रूखे, गरम, पतले, कड़े ठंडे, संयोग विरुद्ध, स्वभाव विरुद्ध, देश विरुद्ध, समय विरुद्ध, पदार्थों के खाने पीने से, भोजन पर भोजन करने से, बिना परिपाक हुये भी खा लेने से, अपनी प्रकृति के विरुद्ध आहार से, वमन विरेचनादि के अधिक हो जाने से, या मिथ्या योग से, जहर खाने से, डरने से, चिन्ता करनेसे, खराब जल पीने से, अधिक शराब पीने से, ऋतु विरुद्ध आहार विहार से, जल में अधिक तैरने से मल मूत्र आदि के वेगों को रोकने से, और पक्वाशय के दूषित कीड़ो से, अतिसार होता है। ठीक इसी तरह पाश्चत्य विद्वानो ने इसके कारण बतलाये हैं।

अत्यन्त गरम खाना खानेसे, लालमिर्च आदि तीखी चीजों के खाने से, उपवास के पश्चात गरम पदार्थ खाने से, अनियमित आहार विहार से, डर और चिन्ता आदि से, अतिसार *Diarrhole* पैदा होता है, इतने कारणों से अतिसार पैदा तो होता हैं, मगर होता कैसे है? यह भी समझ लेना चाहिये। जब हम इस तरह इन कारणों को काम में लाते है, तब रस, जल रुधिर मूत्र, स्वेद, मेद, कफ आदि पतली धातुये कुपित हो उठती हैं, और पाचकाग्नि को मन्द कर देती है साथ ही खुद भी मल में मिल जाती है, जब इतनी चीजें मल में मिल जाती हैं, तब अपान वायु सबको नीचे की ओर धकेल देता है, फिर वे जल्दी २ निकलने लगती है।

पूर्व चिन्ह

हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कांख में तोड़ने की सी पीड़ा होने लगती है देह दुखीं रहने लगती है गुदा वायु रुक जाती है, कब्ज हो जाती है, पेट फूल जाता है और कुछ खाया पिया नही जाता। इतने चिन्हो में से ऊपर पांच सात चिन्ह भी हो जांय तो समझ लेना चाहिये कि अब अतिसार होने वाला है।

प्रकार

आयुर्वेद में अतिसार ६ प्रकार का माना गया है, और डाक्टरो ने ४ प्रकार का माना है, पहिले हम आयुर्वेदिक अतिसारों पर,विचार कर लेना चाहते हैं, बाद में उस पर बिचार करेंगे।

(१) वातातिसार—वायु से होने वाला।
(२) पित्तातिसार—पित्त से होने वाला।
(३) कफातिसार—कफ से होने वाला।
(४) सन्निपातातिसार—त्रिदोष से होने वाला
(५) शोकातिसार—शोक से होने वाला।
(६) आमतिसार—आम से होने वाला।

१—वातातिसार

इसमें वायु बिगड़ता है, और बिगड़ कर पेशाब तथा पसीनों को मलाशय में ले जाकर उन्हे मल में मिला देता है, जिससे पतले दस्त होने लगते हैं वातातिसार में कुछ २ लाल, झागदार, रूखे आम से मिले हुये थोड़े २ दस्त होते हैं, दस्त होते समय थोडी आवाज के साथ दर्द भी होता है, पेशाब और पसीने कम आते हैं।

२—पित्तातिसार

पित्त के बिगड़ने के कारण पीले, नीले, और धूसर रंग के दस्त होते है, गुदा पक जाती है, प्यास लगतीहै, जलन होतीहै, और वेहोशी होतीहै

३—कफातिसार

कफ के कारण सफेद, गाढ़े, चिकने, कफमिले हुए, बदबूदार और ठडे दस्त लगते हैं, और रोमांच होजाता है।

४—सन्निपातातिसार

यह त्रिपोष के बिगडने से होता है, इसलिये तीनो के जैसे दस्त इसमें आते हैं सुअर की चर्वी जैसे या मांस के धोवन जैसे दस्त इसमें लगते है, इसमें तन्द्रा भी आती है, वेहोशी भी होती है, अग्नि मन्द पड़ जाती है, और तीनो दोपोके और चिन्ह भी प्रगट हो जाते है।

५—शोकातिसार

जब मनुष्य बरावर शोक करता रहता है, भाई बन्धु के मरने की, स्त्री पुत्र अदि के खोजाने आदि की चिन्ता करते रहने से, मनुष्य की पाचकाग्नि मन्द होजाती है। मारे शोक के आंख, नाक और कठ आदि से गिरने बाला जल, और शोक से पैदा हुई गर्मी, दोनो मिलकर कोठे में पहुँचते है, वहां जाकर वे खून को विगाड़ देते है, जिससे वह मलमें मिलकर गुदा के रास्ते निकलने लगता है, और उसमे वदबू आने लगती है, दस्त चिरमिटी के रंग के जैसे लाल होते हैं, यह सहज ही में दूर नहीं होता।

६—आमातिसार

खाये हुये पदार्थों के नही पचने के कारण, दोप इधर उधर चलायमान हो जाते हैं, फिर वे रस, रक्त आदि धातुओ को और मल मूत्र आदि को इधर उधर फेंकना शुरू कर देते हैं। जिससे पेट में मरोड़ उठती है, और कई तरह के कच्चे ही दस्त निकलते है, आम के मानी होते हैं, कच्चा। कच्चा मल पानी में डालने से फौरन डूब जाता है, सामान्य रूप से अतिसार के ६ भेद हैं, वहुत से विद्वान भयातिसार, रक्तातिसार, आगन्तुकातिसार आदि भी मानते हैं, किन्तु वे इन्ही में समझे जा सकते हैं।

नाडी आदि

नाड़ी—दस्त होने के बाद धीरे २ चलती है, वैसे जाड़े में जैसे जोक चलती है। वैसे ही चलती है।

मल—पतला पानी जैसा लाल, पीला, काला होता है, खून मिला हुआ भी होता है।

मूत्र—कभी कम और कभी नियमित गति से होता है, कभी खूब भी होने लगता है।

मुंह—फीका पड़ जाता है, कांति नहीं रहती।

डाक्टरी मत

डाक्टरी मत से अतिसार Diarrhoea चार तरह का होता है।

(१) व्लौस डायरिया

इसमें दस्त पतले होते हैं, कुछ २ गाढ़े होते हैं, और पीले रग के होते हैं।

(२) स्योक्स डायरिया

इसमे दस्त गाढ़े होते है, कभी पतले होते है, और उसमें गांठे निकलती है।

(२) सेरस डायरिया

इसमें दस्त पानी जैसे पतले होते है।

(४) सिम्पेथेटिक डायरिया

कभी पतले, कभी गाढ़े, लाल, पीले, कई रगो के दस्त होते है।

उपद्रव

सूजन, सूल, ज्वर, प्यास, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, बेहोशी, हिचकी, ये अतिसार में उपद्रव होते हैं। कभी दो चार, और कभी समस्त

हो जाते हैं। सब उपद्रव अगर एक साथ हो जाय तो जान की खैर नहीं।

मरण चिन्ह

जिसका मल पकी जामुन के समान, यकृत पिंड के जैसा, सूक्ष्म, घी जैसा, चरबी और मज्जा जैसा, दाल के पानी जैसा, दूध, दही जैसा, मांस के धोवन जैसा, काला, नीला, लाल, और कई रंगों का, खूब काला, चिकना, मोर की पूंछ के चंद्र के जैसा, चित्र विचित्र सघन, सड़े हुये मुर्दे की गन्ध जैसा, माथे के मगज जैसा, भारी बदबूदार, बहुत गरम हो, वह जल्द ही मर जाता है। तथा जिसे प्यास, सांस, हिचकी, दाह, और अरुचि हो, पसलियों और हड्डियों में शूल पैदा हो, मूर्छा हो, मोह हो, त्रिवलि पक गई हो, और खूब बकवाद करता हो, मरणासन्न समझ लेना चाहिये।

खूनी दस्त

आंतो के खूनी दस्त २ तरह के होते है।

खूनी दस्तो के २ भेद हैं

(१) आंतो में खुरसट होने पर होते हैं।

(२) आंतो की रगें खून से भर जाती है, और उनका मुंह खुल जाने पर खून निकलने लगता है, यद्यपि मरोड़ा नही होता।

अब इन दोनों का खुलासा वर्णन कर देनाभी आवश्यक है।

पहिला भेद

(७) भेद

(क)

पित्त आँतो पर गिरकर अपनी तेजी से ऊपरी भाग को छील डालता है, जिससे पहिले पित्त मिले दस्त होतेहैं और पित्त के दूसरे उपद्रव भी हो जाते हैं, आँतो में दर्द होने लगता है। पहिले पित्त पीछे खून और बादमें लस दार चीजें, ये दस्तमें क्रमशः निकलते हैं। दस्त के साथ मरोड़ अगर ऊपरी आँतो में होता है तो नाभि में दर्द, बेचैनी, प्यास, खून और लसदार चीजों का निकलना, ये चिन्ह होते हैं। छिलन अगर नीचे की आँतो में होती है, तो नाभि के नीचे दर्द, दस्त के पहिले ही खून और लसदार चीजें निकल जातीं हैं।कभी केवल मल ही आजाता है। ऊपरी आँतो के मरोड़े में दर्द विशेष होता है और पतले २ छिलके भी निकलते हैं। यह मरोड घातक है, इसका असर कलेजे पर भी पहुँचता है, नीचे की आँतो के मरोड़े में मोटे २ छिलके निकलते हैं, और हालत भयानक नहीं होती।

पित्त के दस्तो में सात दिन में मरोड़ा होने लगता हैं, और १५ दिनके अन्दर आँतें घायल हो जाती है, कभी २ घाव गहरा भी हो जाताहै, और छेद निकल आता है, जिससे मल उससे आकर पेट में इकट्ठा हो जाता है। कभी इससे पेट बहुत बढ़ कर जलन्धर की सी हालत कर देता है। जब आँतों में से शराब की सी गाद निकलने लगती है तो यह मौत का वारन्ट है।

(ख)

कफ से आँतो में मरोड़ा होने लगता है, फिर यह कफ यातो नमकीन होताहै, या खारी जो नमकीन पने के कारण आँतो में खुरचन पैदा करता है कभी चेपदार कफ भी होता है, जो मजबूती से चिपट कर उतरती समय गीले मल को खेंच कर आँतो को छील डालता है। इसमें कफ के दस्त पहिले आते है, हवा और गुडगुडाहटकी अधिकता होती है, फिर कफ मिले मल में खून भी आने लगता है। आतो में भारीपन और दर्द, होता है, दर्द नाभि के नीचे नही होता, और हल्का २ होता है। कफ के और उपद्रव भी हो जाते है। अक्सर ये दस्त जुकाम और नजले के पीछे होते है, और एक महीने में आँतो में घाव हो जाता है।

(ग)

सीधी आंत में कम सूजन होने से ये चिन्ह हो जाते हैं। इसमें ऐसा मालूम होता है मानो आंतो में मल रुक रहा है। असलमें ये पेचिश नही सूजन ही है, किन्तु रोगी के विचार सूजन को पेचिश में बदल देते हैं। सीधी रग की तरफ खटक होती है, दर्द और बोझा मालूम होता है, पेशाब कठिनता से निकलता है, कभी २ बुखार भी हो जाता है अगर सूजन ज्यादा है।

(घ)

सूखा मल यकायक आंतो में रुककर मुश्किल से निकलता है, जिससे पेचिश होजाते है। दस्त जाते समय कूखना पडता है' और कूखने पर मल के साथ छिलके भी निकलते है' मल थोडा २ और सीगनी जैसा होता है, पेट में भारापन, हमेशा दर्द मरोडा, ये इसके चिन्ह हैं।

(ङ)

भीतर से या बाहर से गुदा में ठड पहुँचने से ऐंठन पैदा हो जाती है, और सीधी आत में बोझ होताहै। जिससे पेचिश की सम्भवना हो जाती है। असल में ये गुदा की ठड है, पेचिश नही जो गर्म पानी का प्रयोग करने से दूर हो जाती है।

(च)

घोड़े पर बिना काठी वैठने से, नुकीली और कडी चीजो पर वैठने से, गुदा मैथुन कराने से, मल के कुखकर निकालनेसे, जब गुदा और सीधी आंत को कष्ट पहुँचता है तो पेचिश हो जाती है।

(छ)

आमाशय और आंत के खाली होने पर भूखे पेट खटाई खाने से पेचिश हो जाती है।

आंतों से पीव और पानी का निकलना

२ भेद

(१) आंतो की सूजन में पीव पड़कर उसके फूटने से पीव और पानी निकलता है।

आंतो के छिलके से घाव होकर पीव और पानी निकलता है।

कोष्ट वद्ध

Constipation

कोष्टवद्ध के मानी है,कब्ज रहना, दस्त साफ न होना, कब्ज रहना कई रोगों का लक्षण भी है। और स्वतन्त्र रूप से भी कब्ज हो जाया करता है शहरियो कोतो हमेशाही कब्ज़ की शिकायत रहती है। अधिक तर यह रोग आराम पसन्द, कसरत से दूर रहने वाले आदमियो को होता है। रात में जागना, काफी चाय का पीना, ऊटपटाग चीजे खाना, अनियमित समय पर खाना, कई बार खाना, यकृत् में पीडा, आदि कारण भी इस रोग को पैदा करते हैं। इससे कभी २ बन्द हैजा हो जाया करताहै, देह की शिथिलता, शर दर्द, अरुचि आदि इसके खास चिह्न है। कभी २ पेट दर्द करने लगता है।

प्रवाहिका पेचिश

Dysentry

प्रवाहिकाको हम पेचिश माने लेतेहैं, और इसके साथ ही इसका विवेचन किये देते है, पहिले आयुर्वेद की दृष्टि से इसका वर्णन करेंगे, बाद में हिकमत और डाक्टरीके दृष्टिसे भी बादीको बढ़ाने वाली चीजो को बे हिसाब खाने से वायु बढ़ता है और कफ को मल में मिलाकर उसे गुदा से बाहर निकालता है।इनमें मल थोडा थोड़ा निकलता है, और मरोडी के साथ, आयुर्वेद मे इसके ४ भेद माने है।

इसके ४ भेद हैं

(१) वात प्रबाहिका

रूखी चीजो के खाने के बाद यह रोग होता है, और इसमे मरोडा उठता है, साथ में शूल भी।

(२) पित्त प्रवाहिका

तीखे और गरम चीजो के खाने के वाद, मरोड़ो के साथ २ जलन भी होती है।

(३) कफ प्रवाहिका

चिकने पदार्थों के अधिक खाने के वाद, मल में सफेदी रहती है, और खूब कफ निकलताहै।

(४) रक्त प्रवाहिक

तेज और गरम चीजो-के खानेके वाद मरोडा उठता है मल मे खून निकलता है, यह नाजुक है।

डाक्टरी और हकीमी मत

प्रवाहिका को डाक्टरी मे Dysentry कहते हैं। कारण वही ऊटपटांग खाना. इसकी ३ दशाहैं

डाक्टरी मत से ३ अवस्था

(१) अवस्था—वडी आंतो मे सूजन होती है, अतः मरोड़ी के साथ पतले दस्त आते हैं।

(२) अवस्था—'खामेडस' पर्देमे जख्म होता है, जिससे आव और खून के दस्त आते है।

(३) अवस्था—वही पर्दा काला होकर कमजोर हो जाता है, जिससे हरे, पीले, काले, कई तरह के दस्त होते हैं। हिकमत मे इसके ६ भेद माने हैं, कारण का साथ ही उल्लेख है।

हिक्मत से ६ भेद

(१) पहिला भेद

हिकमत के अनुसार पेचिश में नाक के मल (रींट) जैसा थोडा मल निक्लता है, कभी २ शुद्ध खून भी निकल जाता है। जब सूजन युक्त खारी मल सीधी आंत पर आकर चुभन पैदा करता है तो, पेचिश हो जाती है। पेट फूलना मल का ऐंठन के साथ निकलना, गुडगुडाहट होना, प्यास कम लगना, गुदा में जलन होना ये चिह्न होते हैं।

(२) दूसरा भेद

यह पेचिश पित्त की खराबी से होती है, पित्त निकलना, प्यास लगना, गुदा में गर्मी और जलन ठडे पानी कीं इच्छा ये चिह्न होते हैं।

(३) तीसरा भेद

आंतो पर बादी गिरती है, जिससे वे छिल जाती है। ४० दिन में आंतो में घाव हो जाता है, पेट में हरदम पेचिश रहती है, बेचैनी बहुत रहती है, मल में खून, छिलनके टुकड़े, और सौदा आता है। दस्त, शराव की काली तलछट जैसा होता है इसमें वेहोशी बहुत होती है। दस्तो में स्राव वह बादी गिरती है तो जमीन उसकी खटाई से फद-फदा जातीहै, हकीम लोग इसे दुःसाध्य वतलाते हैं

(४) चौथा भेद

पहिले कली करने वाली चीजो के खाने से, पेट मे दर्द करने लगता है, मल सूखकर कठिनता से निकलता है। पीछे वह गाढ़ा और खुरखुरा मल आंतो को छीलकर दस्त पैदा करता है, पेट कड़ा रहता है।

(५) पांचवा भेद

हरताल नौसादर चूना आदि जहरीली दवाओं के खाने से, पेट में मरोड़ पैदा होता है, और बाद में आंतो में खुरसट पैदा होकर दस्त होने लगते है।

(६) छटां भेद

दस्त लगने वाली दवाओ के खाने सेआंतो में खुरॉट पैदा हो जाती है, यह ज्यादा भयानक नहीं होती और प्राय ४ दिन में ठीक हो जाती है।

संग्रहणी

Ducodinal diarrhoea

यह बड़ा शैतान रोग है, जिसे लिपट गया उसे बुरी तरह दिक करता है। यह अतिसार के अच्छा होजाने पर भी कुपथ्य से होजाता है।

कारण

वैसे तो हरएक संग्रहणी के अपने अलग २ कारण हैं, किन्तु सामान्य कारणों का निर्देश हम यहां किये देते है। जिस मनुष्य को अतिसार होता है, और वह आराम भी हो जाता है, किन्तु बाद में मन्दाग्नि मनुष्य कुछ कुपथ्य कर लेता है, भारी पदार्थ खा लेता है, या कुछ और बद परहेजी कर लेता है, तो अच्छी जठराग्नि खराब हो जाती है, एक तो वह अतिसार के कारण पहिले ही खराब थी, अब कुछ ठीक होने पर आई और कुपथ्य कर लिया तो वह चारो खाने चित्त हो जाती है।

ठीक आमाशय और पक्काशय के बीच में ग्रहणी नाम की एक कला है, वही अन्न को ग्रहण करती है, और पाचन क्रिया भी वही करती है, इसमें यह एकदम खराब होजाती है, और अन्न के आते ही उसे फौरन बाहर फेंक देती है। अस्तु

यहां यह भी बता देना अनावश्यक नही होगा कि, यह रोग मनुष्य को खिलखिला के मारता है, अन्न खाते ही पेट फूलने लगता है, और कच्चे ही दस्त होने लगते हैं। कभी कुछ दिनो तक दस्त बंद भी होजाते है। फिर उसी तरह लगने लगते हैं। भोजन करने से पहिले पेट फूलने लगता है, और खाने के बाद कुछ शान्ति होती है, उस समय ऐसा समझना मुश्किल है कि यह ग्रहणी है, गुल्म है, तिल्ली है, या क्या है. धीरे २ पेट का सब द्रव्य बाहर निकल आता है।

शरीर गलने लगता है, और खून तो रहे कहा से, रोगी लाठी जैसा दुबला होजाता है; दस्तो में राध, खून, सब कुछ आने लगते हैं। ऐठन खूब होती है। और दस्त जाते २ रोगी हाय मारने लगता है।

पूर्व चिह्न

संग्रहणी होने के पहिले प्यास लगने लगती है, आलस्य आने लगता है, बल का नाश होने से देह में कमजोरी आ जाती है, अग्नि के मन्द हो जाने से, अन्न विदग्ध होने लगता है, आग सी लगने लगती है। और पाचन क्रिया बहुत धीरे २ होती है। शरीर में भारीपन छा जाता है।

(१)-वातज ग्रहणी
कारण और चिह्न

कडवे, तीखे, कषाय, रूखे पदार्थों के अधिक खाने से, दूषित सड़े हुये भोजन करने से ठंडे हुये अन्नादि के खाने से, कम खाने से, अधिक उपवास करने से, अधिक घूमने से, मल मूत्रादि के वेगो के रुकने से, वायु कुपित हो जाता है, और ग्रहणी कला के ऊपर धावा करके, अन्नादि को गुदा पथ से शीघ्र बाहर निकालने लगता है। बाद में अन्न का पाचन बडी मुश्किलो से होता है, और उसका परिपाक खट्टा होता है, शरीर में खरखरापन होजाता है, कठ और मुंह सूखने लगते है, प्यास और भूख खूब लगने लगती है, आंखो के आगे अंधेरा सा आने लगे, कानोमें शर२ शब्द होने लगे, पसली, जंघा, वंक्षण और कंठ में पीडा होने लगे, खूब दस्त लगने लगे, मुंह और गुदा दोनो रास्तो से मल निकलने लगे।

हृदय मे पीडा हो, शरीरमें कमजोरी हो, मुंह में विरसता हो, पेट में कैंची चलने जैसी पीड़ा हो खट्टे, मीठे सब रसो के खाने की इच्छा हो, मन में ग्लानि हो, भोजन करने के बाद अन्न की जीर्णावस्था में, पेट में अफारा होजाय और भोजन करने के पहिले अशांति और बाद में शांति हो। रोगी को ऐसा मालूम दे कि, पेट में वायुगोला हो गया है, तिल्ली बढ़ गई है अथवा हृदय में रोग पैदा हो गया है, खाँसी होजाती है, श्वास होजाता

है और बहुत देर में, बड़े दुख से, पतला, सूखा, कच्चा और झागदार दस्त होता है, उस समय कुछ आवाज भी आने लगती है।

(२)–पित्तज ग्रहणी

कारण और चिह्न

चरपरे, कड़वे, दाहकारक, और खट्टे पदार्थ, तथा क्षार आदि से पित्त बढ जाता है, और जिस तरह गरम जल से जलती हुई अग्नि बुझ जाती है, उसी तरह बढ़े हुये पित्त से पाचकाग्नि नष्ट हो जाता है, रात दिन अजीर्ण रहने लगता हैं, रोगी पीला पड जाता है, खट्टी डकारें आने लगती हैं, हृदय और गले में दाह होने लगता है, अरुचि होजाती है, और प्यास के मारे रोगी का हाल बेहाल होजाता है। नीला, पीला, और पतला दस्त होता है।

कफज ग्रहणी

कारण और चिह्न

भारी चिकने और ठडे पदार्थो के खूब खाने से, अधिक मैथुन करने से, भोजन पर भोजन करने से, खाना खाने के बाद तत्काल सो जाने से कफ कुपित हो उठता है, और पाचकाग्नि को नष्ट कर देता है, जिससे परिपाक क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है। बाद में—

अन्न बड़ी कठिनता और दुख के साथ पचता है, जभाई आने लगती है, उल्टी होने लगती है, अन्न में अरुचि हो जाती है, मुह कफ से चिपचिपा रहता है और मिठास सहित रहता है, खासी आने लगती है, थूक खूब आता है, जुखाम होते देर नही लगती, हृदय स्तब्ध होजाता है, पेट मे भारीपन और जडता आ जाती है, मीठी और दूपित डकार आने लगती है, ग्लानि होने लगतीहै स्त्री प्रशङ्ग से एकदम अनिच्छा हो जाती है, शरीर के पुष्ट रहने पर भी निर्बलता और आलस्य छा जाता है। कच्चा, पतला, भारी और कफ से भरा हुआ दस्त होता है।

त्रिदोषज ग्रहणी

तीनो दोषो के कुपित होनेसे जो ग्रहणी होती है, उसे त्रिदोषज ग्रहणी कहते है। तीनो दोषो की ग्रहणियो के जो अलहदा२ कारण हैं, उनके इकट्ठा होजाने पर यह ग्रहणी होती है. और तीनो के जो अलहदा २ चिह्न हैं, वे सब भी इसमें होते है। इस तरह ग्रहणी के—

४ भेद है

१—वातज ग्रहणी।

२—पित्तज ग्रहणी।

३—कफज ग्रहणी।

४— और सन्निपातज ग्रहणी।

सामान्य रूप से ये ४ ही भेद होते हैं। किंतु इसके दो और विशेष भेद होते है।

१—संग्रहणी।

२—घटी यन्त्र।

१—सग्रहणी

पन्द्रहवे दिन, तीसवे दिन, अथवा प्रतिदिन, पतला, गाढ़ा चिकना, अल्प, कच्चा, लिबलिबा, मल निकले और उस समय कमर में वेदना हो, आवाज होती हो, आंतें गूंजती हो, तथा देह में आलस्य ने डेरा जमा लिया हो, कमजोरीके साथ२ ग्लानि हो, तो ग्रहणी न समझकर सग्रहणी समझना चाहिये, इसमे आमवायु का सग्रह रहता है. ग्रहणी मे नही, यह रोग दिन में तो खलबली मचाता है, और रात में शान्त रहता है। इसकी पहिचान भी मुश्किल से होती है, और पिण्ड भी यह दिक्कतो से छोड़ती है।

१—घटी यन्त्र

और बाते तो प्रायः वैसी ही रहती हैं, इसमे नींद खूब आती है, पसलियो में पीड़ा होती है,

मल निकलते समय उसमें गंद के पड़े से पानी निकलने जैसी 'घपघप' आवाज होतीहै। प्राचीन विद्वान इसे असाध्य मानते हैं।

हिकमत से ग्रहणी

इसके ७ भेद

१—पहिला भेद

पित्त की अधिकता के कारण आंत के अन्दर फुन्सियां पैदा हो जाती हैं, जिससे जो भी खाया पिया जाता है, वह चुभन होने के कारण बिना पचे ही आंतो में से निकल जाता है, इसमें भोजन थोड़ा पचता है, बाकी बिना पका ही रहता है फिर वह थोड़े पीले पानी के साथ निकल जाता है, प्यास की अधिकता, मुंह का कड़वापन, जीभ पर खुश्की, आंत में जलन, मल निकलने के समय गुदा मे जलन, आदि चिह्न होते हैं।

२- दूसरा भेद

यह फुन्सिया पित्त की अधिकता से आंतो के बाहरी भाग पर पैदा होती है, इसमें भोजन एक दम बिना पका निकलता है, भीतरी आंतो में जलन होती है, खुजली चलती है, इधर उधर दर्द होता है।

३—तीसरा भेद

बिगड़ा हुआ मीठा दुर्गन्धित मल आंतो में इकट्ठा हो जाता है, और चिपट जाता है, जिससे खाया हुआ भोजन वहा जाकर उनके चिकनेपन के कारण ठहर नही सकता, और जल्दी निकल जाता है। थोडा वह मल भी भोजन के साथ जाता है।

४—चौथा भेद

बिना किसी दोष के ही जब आंतो की प्रकृति में उपद्रव पैदा होजाता है, या तरी पैदा होजाती है तो,वहा ढीलापन और तरावट का राज्य हो जाता है, अवरोधक शक्ति की निर्बलता से भोजन नहीं ठहर पाता।

५—पांचवा भेद

चुभने वाला पित्त जनक दोष, दूसरे प्रकार से नरम आंतो पर गिरता है और, उससे चुभन के कारण वह, [illegible] पचता नहीं है, और निकल जाता है। इसमें पित्त भी साथ निकलता है, इसी के समय जलन और चुभन भी होती है, पित्त गर्मी तीव्र, ज्यादा प्यास और हल्की ज्वर होताहै।

६—छठा भेद

आंतो में पाये जाने वाले पट्ठों में ढीलापन होने से आंतों में भी कमजोरी आ जाती है, जिससे बिना पका भोजन निकल जाता है।

७—सातवा भेद

पित्त और कफ की खराबी से यह रोग होता है। अकसर यह मेवे खाने के बाद होता है। मल का पीला आना,साथ में कफ भी आना, जी मचलाना आंतो में गुड़गुड़ाहट ये चिन्ह होते हैं।

मरोड़ा

मरोड़ा के मानी हैं आंतों का दर्द।

इसके ६ भेद हैं

१—पहिला भेद

आंतो में खराब हवा रुक जातीहै, और बोझ के कारण दर्द पैदा करती है। पेट फूलना, गुड़-गुड़ाहट, बोझ ये चिह्न होते हैं, हवा निकलने पर आराम मिलता है।

२—दूसरा भेद

आंतो पर पित्त गिरता है और चुभन के कारण कष्ट पैदा करता है, जलन होती है, प्यास लगतीहै, दस्त पीला होताहै, गुदामें जलन होतीहै।

३—तीसरा भेद

आंतो की प्रकृति में उपद्रव होने से मरोड़ होता है। गर्मी, जलन, प्यास की अधिकता, भारीपन, ये चिह्न होते हैं।

४—चौथा भेद

खारी कफ आंतो पर गिरकर अपने खारीपन से, आंतो में मरोड पैदा करता है। मल में कफ निकलना और उस समय जलन होना, भारीपन, थोड़ी प्यास, ये चिह्न होते हैं।

५—पाचवा भेद

गाढा कफदार कच्चा दोष आंतो पर चिपट कर मरोड़ पैदा करता है। भारीपन की अधिकता, एक जगह दर्द, और उस जगह का ठडापन, कभी लसदार कफ का दस्त में निकलना ये चिन्ह होते हैं।

६—छटां भेद

सूखा मल आंतो में बन्द होकर मरोड पैदा करता है। इसके विशेष चिन्ह कुलज में देखिये।

७—सातवां भेद

आंतो में सूजन के कारण मरोड होता है, इसे भी सूजन में कुलज में देखिये।

८—आठवा भेद

पेट में कीड़े होने से मरोड होता है। कीड़ो का वर्णन अलग किया गया है।

९—नवां भेद

दस्त लाने वाली दवाओ के पीने के पीछे मरोड़ पैदा होता है।

कुलंज

इस रोग में दस्त की हाजत तो होती है, लेकिन पाखाना मुश्किल से होता है, कभी कभी कुछ भी नही निकलता। अक्सर यह रोग नीचे की आंतो में होता है।

इसके ८ भेद हैं,

आठवां कुलज ऊपर की आंतो में होता है।

(१) कफ कुलज

गाढा कफ लहसदार मल के साथ मिल कर ऐबर या कोलून में रुक जाता है, जिससे हाजत तो होनी है, लेकिन पाखाना साफ नहीं होता या एक दम नहीं होता। इसमें प्रकृति में दर्द होताहै, रुकाव होजाता है किनारे ठंडे हो जाते हैं, नीचे के अवयवो में दर्द होता है। कुलज के पहिले ही भूख मारी जाती है, बदहज्मी होजाती है, मल का कम और कफ युक्त निकलना, अधोबायु का रुक कर पेट को फुला देना आदि चिन्ह हो जाते हैं। कभी आंत के दर्दके मारे कलेजा भी गर्म हो जाता है, और प्यास बहुत लगती है। कूलज का दर्द कभी मरोड़ के साथ मिलता है, कभी गुर्दा, गर्भाशय, कलेजे, आमाशय और पेट के कीडो के साथ इस लिये पहिचान में धोखा हो जाता है इस लिये इनका अन्तर भी लिखे देते हैं।

कूलज और मरोड़े का अन्तर

कफज कूलज का दर्द भारी होता है। पहिले ही अजीर्ण हो जाता है, भूख मारी जाती है। ताजा तरकारी, ताजा मेवे, और अजीर्ण कारक पदार्थ इसके पूर्व रूप है, किन्तु मरोडे में ये चिन्ह नही होने, उसके चिह्न ही दूसरे हैं।

कूलज और गुर्दे के दर्द का अन्तर

गुर्दे का दर्द अपने स्थान से नहीं हटता, उसमें कोई चीज गढ़ी हुई सी मालूम होती है। पेशाब की कमी या बन्दी, और दूसरे चिह्न होते है, किंतु कूलज में दर्द एक जगह नही ठहरता खिचता है, सब तरफ फैल जाता है, कुलज का दर्द हमेशा दाहिनी ओर नीचे से उठता है। ऐसे ही और बहुत अन्तर है।

इसी तरह गर्भाशय के दर्द आदि में अन्तर है, लक्षणो से देखा जा सकता है।

विशेष कूलज दूसरे रोगो में, गठिया, पीठ का दर्द, बवासीर, मिर्गी, जलन्धर आदि में भी बदल जाता है।

(२) रीही कुलज

खराब हवा आंतो के भीतर रुक जाती है, और आतो में बोझ और मार्ग को तग करके कूलज पैदा करती है। इसमें चुभन के साथ दर्द होता है, दर्द बदलता है, साफ डकारे नही आती, पेट फूल जाता है, गुडगुडाहट होती है। कभी २ नर्म पाखाना निकलता है, और वह गोबर की तरह फूला हुआ होता है और यह पानी में तैरता है।

(३) सूजन का कुलज

इसके ४ भेद हैं

(१) पहिला भेद--आतो में खून की सूजन होकर रास्ता रोक देती है, जिससे पाखाना और हवा नही निकल पाती, और कूलज होजाता है। इसमें बुखार बड़े जोर से होता है, नसें फूल जाती हैं, सूजन में बोझ, दर्द और खटाक ये चिह्न होते हैं। कूलज धीरे धीरे पैदा होता है, एक साथ नही, कभी कभी मारे दर्द के पेशाब भी बन्द होजाती है।

(२) दूसरा भेद--आतो में पित्त की सूजन होकर कुलज पैदा कर देती है। जलन, प्यास, पित्त मिली कै, मुँह में कड़ुवापन, आदि चिह्न होते हैं।

(३) तीसरा भेद--कफ की सूजन नर्म आतो में पैदा होकर कुलज पैदा कर देती है। सुस्ती, आंतो में भारी पन, जलन आदि चिह्न होते है।

(४) कुलज इल्तवाई

आत अपनी जगह से हट जाती है, या उसमें गांठ सी पड जाती है। अक्सर यह ऐबर आत मे होता है इसके तीन भेद हैं।

(१) आत के बल खाजाने से उसमें गांठ पड़ जाती है।

(२) पीठ से मिले हुये पट्ठे टूट जांय।

(३) पेट का पर्दा फट जाय और झटपट कुलज पैदा हो जाय और आत अपनी जगह से हटकर उसकी ओर आ जाती है, फिर अगर यह पर्दा चड्ढो के पास से फटा है तो आंत अंडकोप की थैली में आ जाती है। अंत्रवृद्धि को कुदर कहते हैं, इसका वर्णन अलग हुआ है। कूदने, बोझ उठाने, गिर पडने आदिसे यह कुलंज होती है, इसमें दर्द एक जगह बना रहता है।

सिफिल (मल) आतों में रुक कर कुलज पैदा करता है। इसके कारण हैं—

(१) शुष्क भोजन-बाजरा ज्वार आदि।

(२) भोजन की कमी-जिससे निस्सारक शक्ति उसे निकाल नही सकती है।

(३) पित्ताशय की गर्मी आतो में आकर मल को कठोर बना देती है, जिससे वह रुक जाती है।

(४) जलीय अंश कम होने पर, मल कठोर होकर रुकता है।

(५) देह के रोम कूप खुजलाते हवा की गर्मी अधिक मिहनत, आदि से मल बन्द हो जाता है।

(६) नशीली चीजो के सेवन से, आंतो में नासूर होने से और उनकी अत्यन्त ठडी प्रकृति होने से मल रुक जाता है।

(७) पित्ताशय और आतो के बीच वाले मार्ग में गांठ पडने से, पित्त नही आपाता, फिर निस्सारक शक्ति की निर्बलता से मल रुकजाता है।

(८) आतो में कीड़े पड कर मल की तरी को खाकर, उसे सूखा बना देते हैं।

(९) कूलन आंत कमजोर होकर मल को नहीं निकाल सकती।

१-२ कारण में कोई विशेषता नही होती। उन कारणो से ही उसका परिचय मिल जाता है।

३-कारण में अगर गर्मी से पैदा होता है तो, प्यास की अधिकता, जलन आदि चिह्न होते है। खुश्की में उसके चिह्न होते है, ऐसे ही और भी

(६ पितज कूलज

आंतो में पित्त के मल के भर जाने से यह कूलज होता है। इसके चिह्न पित्तके मरोड़े से मिलते जुलते हैं।

७ कूलंज अर्जी

यह किसी दूसरे अवयव के मेल से होता है। मसाने की सूजन, गुर्दे की सूजन, कलेजे, तिल्ली और गर्भाशय की सूजन इन सूजनो के कारण यानी इनके मेल से यह सूजन होती है।

(८) ईलाऊस

यह कूलंज सबसे खतरनाक है, इन्हीं कारणो से, जिनका उल्लेख हो चुका है, यह कूलज ऊपर की दक्काक आँतो में होता है, इसमें सेडीके ऊपर दर्द होता है, कै के साथ मल निकलने लगता है, डकार और देह में बदबू आने लगती है, कभी कभी यह रोग जहरीली ठंडी हवाओ से और कभी गर्म हवाओ से भी होजाता है।

आंतों का फूलना और गुड़गुड़ाहट

इसके २ भेद हैं

(१) पहिला भेद

लोबिया आदि पेट फुलाने वाले भोजन,खराब भोजन, भैंसे का मांस आदि चीजो के खाने से पेट फूल जाता है, आंतों में गुड़गुड़ाहट होती है।

(२) दूसरा भेद

आंतों में दुर्बलता और ठंड होने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, फिर अच्छे भोजन होने पर भी पचाव नहीं होता।

आंतों का दर्द

हिकमत में इसके ७ भेद हैं।

(१) दुष्ट प्रकृति, आमाशय में पैदा होकर दर्द पैदा करती है, फिर वह चाहे मल रहित हो चाहे मल सहित, अक्सर मवाद वाली दुष्ट प्रकृति ही दर्द पैदा करती है।

(२) आमाशय में सूजन और घाव होने से भी दर्द होने लगता है। सूजन और घाव का वर्णन अलग किया गया है।

(३) आमाशय में गाढ़ी बादी पैदा होजाती है। फिर वह अपने गाढ़ेपन और अधिकता के कारण आमाशय में सटती नही और उसको खींच लेती है, फिर आमाशयमें दर्द पैदा होता है, इसमें डकारें भी बहुत आती है। हिचकी चलती है। पसलियां खिचती है। बाई तरफ तिल्ली में दर्द होता है।

(४) ऊटपटांग चीजें खा लेने से पेट में दर्द होता है, फिर इसके बाद दस्त कै आदि और भी उपद्रव हो जाते है।

(५) आमाशय की निर्बलता के कारण दर्द होता है, पचाव मे कमजोरी आने से भोजन में खराबी आ जाती है, रस ठीक नहीं बनने पाता, फिर रिहा पैदा होजाती है, खिचाव के साथ दर्द होता है, खाने के बाद दर्द होता है, और बिना कै या दस्त हुये रुकता नहीं।

(६) सुबह और शाम खाने से पहिले खाली पेट दर्द होता है। और खाने के बाद रुक जाता है, इसके ३ कारण है।

(१) रिहा बढ़ जाती है, और खाली पेट दर्द होता है।

(२) खाली पेट जिगर से पित्त आमाशय पर गिरता है, फिर उसकी जलन होती है।

(३) खाली पेट तिल्ली से बादी गिरती है। और दर्द होता है।

(७) आमाशय की ज्ञानशक्ति जब विशेष बलवान होजाती है, तो वह जरा से कारण से कष्ट पाने लगती है। थोडे से भी भोजन की भाप के परमाणु उसे कष्ट दे सकते हैं।

वृक्क रोग

Disease of the kidney

(गुर्दे की बीमारियां)

आयुर्वेद में जिस स्थान को वृक्क कहते हैं, हिक्मत में उसे गुर्दा कहते हैं, गुर्दा का डाक्टरी नाम किडनी है। गुर्दे का स्थान मूत्राशय यानी मलाशय के पास हा है, मूत्राशय के रोगों का असर गुर्दे पर भी गिरता है, स्वतन्त्र कारणों से भी गुर्दों में खराबियां पैदा हो जाया करती हैं, आयुर्वेद मे वृक्क रोगो का यानी गुर्दे की बीमारियो का कोई उल्लेख नही है, कहीं २ वृक्कशूलका पता अवश्य चलता है, वर्ना आयुर्वेद के प्रसिद्ध निदान, ग्रथ 'माधवनिधान' में वृक्क रोगो का तनिक भी उल्लेख नहीं है। हिकमत में अवश्य गुर्दे के रोगो का सविस्तार विवेचन किया गयाहै, उसी के अनुसार हम भी यहां वृक्करोगो का उल्लेख करेंगे।

ऐलोपैथी में भी सामान्यत. वृक्करोगो का उल्लेख किया गया है, किन्तु आयुर्वेद में नही है। मूत्राशय के रोगो का ही सम्बन्ध सम्भवत वृक्कोसे मानलिया हो, और इसलिय अलग जिक्र करने की आवश्यकता न समझी हो, ऐसा भी होसकता है। और यह भी हो सकता है, कि प्राचीन ग्रन्थो का वृक्करोग विषयक अश जमाने की हवा में उड गया हो, आजकल जो प्राचीन ग्रथ मिलते है,उनके वास्तविक होने मे भारतीय विद्वानो को भी सदेह है, चरक, 'सुश्रत' जैसे प्रसिद्ध२ ग्रन्थो की वास्तविक उपादेयता अभी तक अन्वेषण की अपेक्षा रखती है।

चरक की ठीक वही कापी तो हमें नही मिल रही है, जिसमें प्रारम्भिक काल में उसका उल्लेख हुआ था, तत्कालीन सम्पादक भी तो फिर अपने सम्पादक पद की लिहाज रखने के लिये कुछ न कुछ नमक मिर्च अवश्य लगाया करते है, आयुर्वेद में जो भी निदान है, वह सब सूक्ष्म रूप में है, विस्तृत नही और वह निदान अपेक्षाकृत पूर्ण है. यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही है।

हिकमत मे एक ही रोग के लक्षणो का अलग २ नाम से वर्णन हुआ है। यही हाल ऐलोपैथी का है, ऋषियो के बाद अभी तक कोई ऐसा आयुर्वेद विद्वान नहीं हुआ है, जिससे आयुर्वेदिक साहित्य का विस्तृत और परिष्कारात्मक वर्णन किया हो। अस्तु।

अच्छा तो यह है कि यहां समझ लिया जाय यह भी कि वृक्क क्या है ?

वृक्क क्या है *What is kidney*

प्रत्येक शरीर में २ गुर्दे हैं, और इनका काम है, पेशाब बनाना। बहुत सी पतली २ नलियो के समूह को वृक्क या गुर्दा कह सकते है। गुर्दे का निर्माण करने वाली नलिया चौड़ीकम और लम्बी अधिक होती है। इन नलियो के अतिरिक्त शिरायें वातसूत्र वगैरह भी इसमें पाये जाते हैं। गुर्दे उदर की पिछली दीवार से लगी हुई रीढ़ के दांये बांये हिस्से में रहते है। गुर्दे के सामने आंतो का घेरा भी पडा रहता है। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि १२ वी पसली के आगे गुर्दे का स्थान है। देखने मे गुर्दा बैंगनी होता है, तौलने मे १० तोले के लगभग और लम्बाई, मे ४ इच तथा चौड़ाई में २॥ और मोटाई में १ इच होताहै

गुर्दे के २ पृष्ठ हैं, जो दोनो ही उभरे हुये होते है, इसमे एक पृष्ठकेसामने है एक पीछे। किनारे भी दो ही होते है, जिनमे एक रीढ़ के पास रहता है, दूसरा उससे दूर। सिरे २ होते है. जिनमें ऊपर का सिरा नीचे के सिरे की अपेक्षा अधिक चौडा और मोटा होता है, यहीं पर हमें उपवृक्क *Atrenel* मिलता है वृक्क के ऊपर झिल्ली मढ़ी हुई रहती है।

वैसे तो गुर्दों का वर्णन बहुत ही विस्तृत है, किन्तु यहां बहुत ही कम शब्दों में इनका परिचय दिया गया है। गुर्दों में खराबी पैदा होनेसे पेशाब ठीक तैयार नही होता। मधुमेह असल में गुर्दों की अनियमितता का ही एक रूप है। अधिक पेशाब आना, पेशाब में चरबी आना, पेशाब करते समय कपकपी होना, पेशाब बन्द होना, आदि खराबियां वृक्कों से सम्बन्ध रखती हैं। जिस समय गुर्दों में कमजोरी आ जाती है, उस समय प्रमेह का होना कोई बडी बात नहीं है। जिनको हस्त मैथुन करने की आदत है, उनके गुर्दे किसी भी दशा में स्वस्थ नही रह सकते। लिंगसे मूत्राशयका सम्बन्ध है और मूत्राशय से गुर्दों का फिर हस्त संघर्षण से गुर्दों पर अनियमित और अनावश्यक बोझा गिर कर उन्हे कमजोर बना देता है।

पानी पीने के थोड़ी देर बाद पेशाब हो जाना दिन में कई बार पेशाब करना, इस बात का प्रमाण है कि गुर्दों ने अपने काम से अरुचि प्रगट करदी है। दिन रात सभोग में जुटे रहने वाले नौजवानो को क्या कभी गुर्दों का खयाल ही नही आता? आज कल मानव जीवन जिस धारा में बह रहा है उसको देखते हुये गुर्दों की बीमारियां स्वाभाविक ही जान पडती हैं। पहले तो होश आता नही और फिर जब पेशाब पर चीटी बैठने लगती हैं तो दिमाग चक्कर खाने लगता है, होशहवास बिगड़ने लगते है, तब किये पर अफसोस आता है और डाक्टरो तथा वैद्यो की खाक छानते है।

गुर्दे की प्रकृति के उपद्रव

इसके ४ भेद हैं

पहिला भेद

गुर्दे की गर्म दुष्ट प्रकृति का होना पहिला भेद है। इसमें नाड़ी और प्यास की तेजी, पेशाब में ललाई या पीलापन, जलन और दुर्गन्ध ये चिह्न होते है। गुर्दे में गर्मी मालूम होती है और पेशाब बार २ होता है, जरा भी रुक नही सकता और उसमें कुछ चिकनाई भी रहती है।

दूसरा भेद

खून से पैदा होने वाली यह दूसरी गर्मप्रकृति है। इसमें गुर्दे मे बोझा और दर्द मालूम होता है, खून की अधिकता प्रगट होती हैं, जिससे कभी २ गुर्दे की पीठ के आसपास ललाई भी होती है।

तीसरा भेद

पित्त से पैदा होने वाली गुर्दे की यह तीसरी गर्म दुष्ट प्रकृति है, इसमें पहले भेद के जैसे चिह्न होते हैं और उनमें पित्त की अधिकता रहती है।

चौथा भेद

ठडा पानी यानी-ठडी चीजे खाने, ठडी हवा लगने आदि ठडे कारणो से यह ठडी प्रकृति पैदा होती है, इसमें पेशाब की सफेदी, कमजोरी, प्यास का नष्ट सा होना, मुह की सफेदी, गुर्दे को ठडक पीठ का कमजोर होकर झुक जाना ये चिह्न होते है।

गुर्दे को निर्बलता

इसके ३ कारण हैं

(क) गुर्दे मे पैदा होने वाली प्रकृति के उपद्रवो से गुर्दे कमजोर हो जाते है।

(ख) अधिक वीर्य के निकालने से भी गुर्दे कमजोर हो जाते है।

(ग) पेशाब या दस्तोके साथ जब बहुत दोष निकल जाता है तो गुर्दे निर्बल हो जाते है।

इसके ये चिह्न है

पेशाब की सफेदी, शरीर की कमजोरी, शक्ति की निर्बलता, कमर और सर में पिछली तरफ हरदम हलका दर्द होना।

गुर्दे की निर्बलता का और भी बर्णन तिब्बे अकबरी में मिलता है। इसके भी यही ३ कारण

एक दुष्ट प्रकृति, दूसरे उसकी कमजोरी, तीसरे पेशाब लाने वाली दवाओं के खाने से या वीर्य के अधिक निकालने से, या गुर्दे पर चोट लगने आदि से गुर्दे कमजोर हो जाते हैं। इसकी रगें चौडी हो जाती हैं, कभी २ दर्द होता है और खासकर झुकने, सीधे होने और करवट लेने के समय।

गुर्दे के घाव

जिस कारण से मसाने मे घाव होता है, उसी कारण से गुर्दे में भी। इसमें पीठ तथा गुर्दे में दर्द आदि तो होते नहीं पेशाब में पीव, खून और खाल के छिल्को का आना, पेशाब की अधिकता, खाल के लाल टुकडो का निकलना, पेशाब में पीव मिलकर निकलना, आदि चिह्न होते हैं। मसाने और इसके घावो में अन्तर है। घाव अगर गुर्दे के पर्दे में होता है तो जलन तथा दर्द की अधिकता होती है और अगर गुर्दे तथा कलेजे के बीच वाली जगह में होता है तो दर्द दोनो कन्धों तक जा पहुँचता है, प्यास अधिक लगती है, घाव अगर गुर्दे तथा मसाने की बीच वाली नली में होता है तो, दर्द घुटने तक जा पहुँचता है।

गुर्दे की खुजली

खून को गर्म करने वाली वादी और पित्त को पैदा करने वाली चीजो के अधिक खाने से गुर्देमें छोटी २ फुन्सियां हो जाती हैं, फिर तेज होने एव खारी होने पर खुजली पैदा करती है, किन्तु फूटने पर, बिना फूटे खुजलो नहीं होती। इससे गुर्दे में खुजली, खटका, चुभन ये लक्षण होते हैं, किनारे ठडे रहते हैं, तथा खाजके पतले छिलके कभी खून और पीव के साथ पेशाब में निकलते हैं, फुन्सियां अगर बाहर की तरफ होती हैं तो हमेशा अधिक दर्द रहता है, अगर भीतर की ओर पेशाब के रास्ते में होती है तो, पेशाब करने के समय जलन होकर फिर बन्द हो जाती है।

ज़ियाबीतस

इस रोग में जैसा पानी पिया जाता है, वैसा ही उसी रूप में निकल जाता है।

२ भेद

१—पहिला भेद

गुर्दे में अधिक गर्म उपद्रव पैदा हो जाता है। जिससे उसकी ग्रहण शक्ति पानी अधिक लेती है, किन्तु निरोधक शक्ति नरम और कमजोर होने के कारण उसको रोक नहीं सकती, फिर मारक शक्ति उसे मसाने की तरफ निकाल देती है, बस फिर वह पानी निकल जाता है। प्यास की अधिकता और फिर उसीदम पेशाब वैसे का वैसा ये लक्षण होते हैं। पुराना होने पर यह रोग कलेजे को कमजोर कर देता है, तथा दिक् पैदा कर देता है।

२—दूसरा भेद

अधिक ठड पहुंचने, ठंडा पानी पीने तथा दूसरे और ठडे कारणो से ठंडी प्रकृति के उपद्रव पैदा होते हैं, फिर उनका असर शरीर के सब अगो पर या गुर्दे पर ही आता है। इसमें गर्मी के चिह्न तो नही होते' हां पेशाब उसी तरह होता है, तथा प्यास भी खूब लगती है।

पेशाब और मैथुन की इच्छा कम होजाती है। तथा पेशाब मल के धोवन जैसा होता है। देर तक पेशाब को रक्खा रहने दें। तो गाद बैठ जाती है उसके ऊपर नदी जैसे झाग उठने लगते है।

गुर्दे में हवा भरना

गाढे दोष के कारण यह गुर्दे के चारों ओर एक तरह की गाढी हवा पैदा हो जाती है। जिससे पीठ और गर्दन में बोझ के साथ दर्द होता है। और ऐसा ही कमर में होता। इसका जोर भरे पेट मे होता है।

गुर्दे का दर्द

हवाभरने, कमजोरी होने, गुर्दे के सूजने, उसमें पथरी या घाव होने, से गुर्दे मे दर्द होता है इनके (हवा भरने आदि के) लक्षण अलग २ वर्णन किये गये है।

गुर्दे की सूजन

इसके ३ भेद हैं

(१) पहिला भेद

यह सूजन गर्म होती है। और गाढे रुधिर या पित्त रुधिर से पैदा होती है। इसमे प्यास, सरदर्द, अनिद्रा पीठ में जलन और भारीपन, पित्तमिली कै, मलमूत्र का कठिनता से आना, ये लक्षण होते हैं, सूजन कभी एक गुर्दे में होती है, कभी दोनो में, कभी भीतर कभी बाहर, कभी उसपर लगी हुई झिल्लीके बराबर और कभी उसके ऊपर कभी, गुर्दे और कलेजे के बीच वाले हिस्से में, कभी गुर्दे और सामने की बीच वाली नली में जहां सूजन होती है' वही दर्द होता है। कभी इतना दर्द बढ़ता है, कि भेजे के पर्दों तक उसका असर जा पहुंचता है।

दूसरा भेद

यह कफ से पैदा होने वाली ठंडी सूजन होती है। कुतुन में खासकर खासरे के पास बोझ और भारीपन मालूम होता है। नाडी मन्दी, वीर्य मैंठ डक' मलमूत्र में सफेदी, मुँह, आख, और प्रायः सभी शरीर पर, खासकर कटि पर ढीलापन होता है। आदमी का खड़ा होना भी मुश्किल हो जाता है।

(६) तीसरा भेद

यह बादी से होने वाली कठोर सूजन होती है। अक्सर यह दोनो सूजनो के बाद में होती है, इसमें बोझ का अधिक मालूम होना, पेशाब की जर्दी और पतलापन, दर्द की कमी, चूतड़ो में, कटि में सन्नाटा होना, पिंडलियों का कमजोर होना आदि चिह्न होते हैं, यह रोग कभी जलंधर के रूप में परिणत होजाता है। और इससे कभी दिक् भी होजाता है, हृदय की ओर आने वाली नस दब जाती है, कमर झुक जाती है।

गुर्दे में पथरी और रेत का पड़ना

इसका विशेष विवेचन आयुर्वेदीय प्रकरण में मिलेगा, कच्ची, लसदार, दूषित रतूवत, इस रोग का कारण है। वह अगर अधिक गाढ़ी और लसदार, होती है, तो पथरी होजातीहै, वर्नारेत, इसके चिह्न हैं।

(क) शुरू में पेशाब गाढ़ाऔर गदला आता है। किन्तु बाद में साफ़।

(ख) कुतुन तथा पीठ में भारीपन और खिचावट होती है।

(ग) आंतों में मल भरने पर गुर्दे का दर्द जोर करता है।

(घ) पेशाव जर्द या सुर्ख होता है। और ऐसी ही रेत निकलती है।

(ङ) कभी २ गुर्दे का दर्द उसकी सीध वाले फोते और उसकी गोली में पहुँच जाता है।

(च) जिस गुर्दे में रोग होता है, उधर के पैर में सन्नाटे के साथ दर्द होता है।

मूत्राशय के रोग

Disease Bladder

मूत्रकृच्छ्र पेशाव की कठिनता *Dysuraia*

पेशाव करते समय दर्द होना, खुलासा पेशाव न होना, रुक २ के होना और मूत्राशय में पीड़ा होना मूत्रकृच्छ्र कहलाता है, मूत्रकृच्छ्र, रोग का सम्बन्ध मूत्राशय से है, आयुर्वेद में यह रोग तरह २ का माना गया है, यद्यपि इस रोग में भी लिङ्ग में दर्द होता है, फिर भी यह लिङ्ग का रोग नहीं माना जा सकता, वह दर्द स्थानिक नहीं, अपितु

सांयोगिकहै, पेशाव निकलनेका रास्ता होनेकेकारण ही उसमें दर्द हो जाया करता है। सोजाक Gonarrhoea में यद्यपि मूत्राशय में वेदना होती है किन्तु उसका अधिक सम्बन्ध लिङ्ग से ही रहता है, लिङ्ग चर्म की सूजन, घूंघट की तगी आदि से अधिक सम्बन्ध लिङ्ग से ही माना जा सकता है।

मूत्र कृच्छ्र क्यों होता है ?

अपने आप तो पेशाव में कठिनता नहीं होती, कुछ ऐसे कारण अवश्य होते हैं, जिनमें पेशाव में कठिनता होती है। इसके कारण आयुर्वेद में वत लाये हैं।

१—अधिक कसरत करना।
२—तीखी २ दवाओ का खाना।
३—बराबर रूखा भोजन करना।
४—नशीली चीजो का सेवन करना।
५—रोज खूब तेजी से दौड़ना।
६—सवारी पर चढकर उसे अधिक दौडाना।
७—जलचर जीवो का मांस अधिक खाना।
८—अजीर्ण रहना।
९—गिर पड़ने आदि से मूत्र वाहिनी नसों पर चोट पड़ना।
१०—टट्टी में रुकावट होना।
११—लिङ्ग में पथरी होना।
१२—लिङ्ग में वीर्य का बिगड़ कर रुकना।

ऐसे ही और भी कारण हो सकते हैं जिनसे पेशाव में कठिनता होती है, मूत्र में आघात करने वाले रोगों का वर्णन आगे चल कर होगा।

मूत्र कृच्छ के भेद

आयुर्वेद में यह रोग आठ तरह का माना गया है।

(१) वादी से मूत्रकृच्छ्र
(२) पित्त से मूत्रकृच्छ्र
(३) कफ से मूत्रकृच्छ्र
(४) त्रिदोष से मूत्रकृच्छ्र
(५) शल्य से मूत्रकृच्छ्र
(६) पुरीष से मूत्रकृच्छ्र
(७) पथरी से मूत्रकृच्छ्र
(८) वीर्य से मूत्रकृच्छ्र

इस तरह यह रोग ८ भागों में विभाजित है। सब के लक्षण भी क्रमशः यहां देखिये।

१—वादी से मूत्रकृच्छ्र

वायु के बिगडने पर जब यह रोग होता है तो उसस्थल, अण्डकोष और लिङ्ग में भयंकर वेदना होती है, पेशाव करते समम कठिनता होती है,और खुलासा नही होता, अत वार २ पेशाव करने के लिये उठना पडता है।

२—पित्त से मूत्रकृच्छ्र

बिगडे हुये पित्त के मूत्राशय पर धावा करने पर जब यह रोग होता है तो पेशाव पीला होता है, उसमें जलन होती है, और कुछ खून भी साथ में निकलता है, पेशाव करते समय दर्द के साथ प्रदाह होता है, और पेशाव वार २ होता है।

३—कफ से मूत्रकृच्छ्र

कफ के बिगड़ने पर जब यह रोग होता है तो मूत्राशय लिङ्ग में भारीपन होता है, कुछ सूजन हो जाती है, पेशाव सफेद, चिकना और बार-बार होता है।

४—त्रिदोष से मूत्रकृच्छ्र

तीनो दोषो के बिगडने पर जब यह रोग होता है तो, वडी आफत आ जातीहै, पेशाव कभी पीला होता है कभी सफेद, लिंग में दर्द होने लगता है। मूत्राशय सूज जाता है, जोरो से जलन होती है, इसमें तीनो दोषो के सभी चिह्न होते हैं।

५—शल्य से मूत्रकृच्छ्र

मूत्रवाहिनी नसो पर चोट लगने, ऊपर से गिर पड़ने आदि से, जब मूत्राशय पर आघात

पहुँचता है, तो पेशाब करते समय बड़ी वेदना होती है, लिङ्ग में दर्द जोरों से होता है, वस्ति तड़फने लगती है पेशाब थोडा २ और बार २ होताहै

६—पुरीष से मूत्रकृच्छ्र

मलाशय पर आघात होने से वह मूत्राशय से टकराता है जिससे वायु बिगड़ जाता है, फिर वह पेशाब पर हाथ सफा करता है पेट में अफरा होने लगता है, वादी का शूल उठने लगता है, पेशाब होने लगता है।

७—पथरी से मूत्रकृच्छ्र

लिङ्ग में पथरी होने से भी पेशाब में कठिनता होती है, इसमें तो जान ही आफत मे आ जाती है। पेशाब का होना बहुत ही मुश्किल होजाता है पथरी का वर्णन आगे किया गया है।

८—वीर्य से मूत्रकृच्छ्र

अधिक संभोग करने, स्वप्नदोष की बीमारी होने, हस्तमैथुन करने आदि से वीर्य स्थान भ्रष्ट होकर मूत्रपथ पर दौड़ता है। जिससे वह पशाब के साथ मे ही आने लगता है। निकलते हुये वीर्य को रोकने से भी यह रोग हो जाता है।

मूत्राघात-पेशाब में आघात होना

मूत्रकृच्छ्र से यह अलहदा रोग है मूत्रकृच्छ्र में जहां कठिनता अधिक होती है। और रुकावट कम होती है वहां मूत्राघात में कठिनता कम और रुकावट अधिक होती है। मूत्रकृच्छ्र में किसी तरह पेशाब हो जाता है। चाहे वह बूंद २ और रुक २ कर क्यो न हो। किन्तु इसमें पेशाब बहुत कम होता है। साथ ही दूसरे और उपद्रव भी हो जाते हैं। मूत्राघात एक ही रोग नही है। पेशाब में आघात करने वाले १३ रोग होते है। उनके अलग २ नाम भी हैं।

मल मूत्रादिका वेग रोकने से यानी पाखाना लगने पर टट्टी न जाने से और पेशाब की हाजत होने पर पेशाब न करने से, तथा ऐसे ही और वेगो को रोकने से यह रोग होता है। रूखे सूखे ऊटपटांग पदार्थ खाने से भी यह रोग हो जाताहै

मूत्र में आघात करने वाले १३ रोगों की संख्या इस प्रकार है।

[१] वातकुण्डलिका।
[२] अष्ठीला।
[३] वातबस्ति।
[४] मूत्रातीत।
[५] मूत्रजठर।
[६] मूत्रोत्संग।
[७] मूत्रक्षय।
[८] मूत्रग्रन्थि।
[९] मूत्रशुक्र।
[१०] उष्णवात।
[११] मूत्रसाद।
[१२] विड्विघात।
[१३] वस्तिकुण्डल।

(१) वात कुण्डलिका

जब मूत्रादि के रोकने से वस्ति मूत्र थैली में वायु कुपित हो जाता है, तब वहां पीडा होने लगती है, वायु वहां सर्प की तरह घेर मार कर फिरता है, जिससे पेशाब थोडा होता है और उस समय चीस सी चलती है। मूत्र का वेग होने पर भी जब पेशाब खुलकर नही होता है, तब जान आफत में फस जाती है।

(२) अष्ठीला

वायु के द्वारा मल मूत्र रुक जाते हैं, मूत्राशय तथा गुदा मे अफारा होता है, और वस्ति तथा गुदा के रस्ते को रोक कर एक गांठ पैदा होजाती है, जिससे न पेशाब होती है, न टट्टी, वह गांठ चचल ऊंची, और भयकर दर्द करने वाली होती है।

वातवस्ति

पेशाब का वेग रोक लेने से, वायु मूत्राशय के मुंह को बन्द कर देता है, जिससे पेशाब रुक जाता है, और बस्ति तथा कोख में दर्द होने लगता है।

मूत्रातीत

पेशाब को बहुत देर तक रोक लेने से, वह फिर जल्दी उतरता नहीहै, और अगर उतरता है भी तो बूंद बूंद थोड़ा थोड़ा।

मूत्रजठर

पेशाब का वेग रुकने से, अपान वायु पेट को फुला देता है, नाभि के नीचे दर्द भारी अफारा कर देता है, जिससे मूत्राशय के नीचे का हिस्सा रुक जाता है, रुका हुआ वायुअपान वायु के सहारे पेट में चर्खा सा चलने लगता है।

(६) मूत्रोत्सग

इसमें पेशाव मूत्राशय में, लिंग मे अथवा लिंग के अग्रभाग में रुक जाता है, जिससे भयकर वेदना होती है। जोर लगने पर थोडा थोडा बूंद बूंद पेशाव होता है और उसमे चीस के साथ खून भी निकलने लगता है।

मूत्रक्षय

जो आदमी रूखा है, म्लान है, उसी को यह रोग होता है। मूत्राशय मे रहने वाले वायु और पित्त मूत्र का क्षय करके जलन और दर्द पैदा कर देते हैं।

मूत्रग्रंथि

इसमें मूत्राशय में सहसा एक गांठ पैदा हो जाती है, वह गोल होती है, स्थिर होतीहै, आमले की गुठली जैसी होती है, और पथरी जैसी पीड़ा होती है।

मूत्र शुक्र

पेशाव का वेग होने पर—बिना पेशाव किये जो मूर्ख स्त्री के साथ सभोग कर लेते हैं, उन्हे इसका परिणाम भोगना पड़ता है। वीर्य पहिले तो स्थान भ्रष्ट होजाता है, बाद में वायु उसे ऊपर ले जाता है, जिससे पेशाव करते समय पहिले यापीछे राख मिले पानी जैसा गदला वीर्य निकलता है।

उष्णवात

आयुर्वेदिक विद्वान उसे उष्ण वात कहते हैं, जिसे प्रचलित भाषा में सूजाक कहते हैं, किंतु उष्ण वात और सूजाक में बहुत अन्तर है। सूजाक और कारणो से होता है, उष्णवात और कारणो से, सूजाक पर अलहदा ही हम प्रकाश डालेंगे अधिक कसरत करने से, ज्यादा रास्ता चलने से, बराबर तीक्ष्ण धूप में फिरने से, पित्त देवता वायु मिल कर मूत्राशय, लिंग और गुदा में जलन करदेता है। पेशाव बड़े कष्ट से होता है, उसका रग पीला, थोड़ा लाल, रुधिर मिला हुआ होता है।

मूत्रसाद

वायु जब पित्त कफको अलग २ या एक साथ टकराता है, तो पेशाब पीला, लाल या सफेद, शख की राख जैसा अथवा सब रंगो वाला होता है, पेशाव थोडा २ होता है, गाढ़ा होता है और उसमें जलन होती है।

विड्विघात

रूखे, कमजोर, अथवा मल वेग को रोकने वाले मनुष्यो का इसका नतीजा भुगतना पड़ता है। वायु के द्वारा मल मूत्र के मार्ग में घुस जाता है जिससे पेशाव मे या तो मलकण आने लगते है, या मल जैसी बदबू आने लगती है, थोड़ा कष्ट भी होता है।

वस्ति कुण्डल

चोट लगने आदि कारणो से वस्ति स्थान भ्रष्ट होकर मोटी होजाती है, उसमें शूल उठता है, कपकपी होती है, जलन होती है, पेशाव बूंद २ होता है, उसे दबाने से घाव भी होता है, किंतु

बाद में पीड़ा होती है और जड़ता आ जाती है। यह घातक रोग है।

शुक्रमेह

स्वप्न दोष, हस्तमैथुन, गुदा मैथुन, प्रमेह, गुर्दे की खराबी आदि से वीर्य पेशाब के साथ २ निकलता है ! या विना पेशाब ही निकलजाता है। ऐसे आदमियो की धोती वीर्य सेभीगी रहती है। स्नायुमंडल जरा से कारण से उत्तेजित होजाता है। और बात की बात में वीर्य गिरने लगता है। ऐसे आदमी स्त्री के पास जाते ही स्खलित होजाते है। या मैथुनकी प्रारम्भिक अवस्था में, पीठ और मज्जा की पीड़ा, बवासीर आदि रोग भी इसके सहायक होते हैं। किंतु खास कारण है। अप्राकृतिक मैथुन।

अजीर्ण, कब्ज, कमजोरी, सरदर्द, वहुमूत्र, स्मृति हीनता, हृद्रोग, श्वास, रोग आंखो का गड्ढे में घुसजाना, आदि इसके उपद्रव हैं, जो अवश्य होते हैं। आखिरी उपद्रव है। शीघ्र मृत्यु ऐसे आदमियो को पुत्र सुख कभी नहीं मिलता।

Nephritis

इसे मूत्रग्रंथि प्रदाह कह सकते है। और इसका अन्तर्भाव मूत्राघातमें कर सकते हैं। सहसा जाड़ा लगने, डटकर शराब पीलेने, रात में जगने तीखी चीजो के खालेने, चोट लगने आदि कारणो से मूत्र कोप में प्रदाह होने लगताहै। पेशाब थोड़ा २ होता है। कभी लाल पीला होता है, पेशाब करने पर दर्द होता है।

स्वप्नदोष

रात्रि मे सुषुप्तावस्था मे वीर्य के वहने को-स्वप्न दोप कहते हैं। हस्तमैथुन आदि अप्राकृतिक मैथुन करने वाले व्यभिचारी आदमियो को यह होता है। महीने में १०-१५ बार और प्रतिदिन भी उनको स्वप्नदोष होजाना है। मानसिक मैथुन करने वाले, गन्दे २ उपन्यास पढ़ने वाले, दिल बिगाड़ने वाले, सिनेमो, नाटक देखने वाले, भले आदमी भी इसके शिकार होजाते है। उसके हृदय में रात दिन मैथुन की कामना लगी रहती है। उनकी वासना प्रचण्ड रूप धारण करलेती है। जिससे वीर्य तै तै कर पहले ही अंडकोपो में आ जाता है। फिर रात को वैसे ही गन्दे स्वप्न आने से निकल जाता है। ऐसे ही रोगियो को शुक्रमेह भी जल्द होजाता है। कमजोरी, कब्ज, सरदर्द, दुर्वलता, आदि वीर्यनाश के अवश्य भावी उपद्रव इसमें भी होते हैं। स्तम्भन शक्ति एकदम नष्ट हो जाती है, कभी २ गरम चीजें खाने से भी स्वप्न दोप होजाता है।

अश्मरी पथरी

Stone calculus

यह रोग वड़ा शैतान है, बहुत ही जल्द जहन्नम का टिकिट देता है। बोल-चाल की भाषा में इसे पथरी कहते है, यूनानी विद्वान इसे 'हिसात' कहते हैं। बड़े २ नगरो में पथरी का बाजार बड़ा गर्म रहता है, जगह २ लगे हुये डाक्टरों के साइनवोर्ड इसकी गवाही देंगे। यह रोग कफ प्रधान सा माना जाता है और वे ही इसके शिकार होते हैं, जो शरीर का शोधन नही करते, बराबर कुपथ्य करते है, वेहिसाव-व्यभिचार करते है। अधिकांश आदमियो को आजकलअप्राकृति व्यभिचार, वेश्या व्यभिचार से यह रोग होता है। दूपित योनियो के सगम से लिंग सम्बन्धी बीमारियां होकर भी पथरी पैदा होजाती है। इस तरह जब कफ बिगड़कर मूत्र में मिल जाता है, तब मसाने में पथरी पैदा होती है। तरल कफ उस समय कठोर पत्थर रूप धारण कर लेता है। आकाश में पानी को, वायु और बिजली की अग्नि वांधकर ओले बना देती है, उसी तरह मूत्राशय में आये हुये कफ को

वायु से मिली हुई गर्मी जमाकर पथरी बना देती है। वीर्य से पैदा हुई पथरी बड़े आदमियों को ही होती है, मैथुन की इच्छा होने पर न करने से तथा निकले हुये वीर्य को रोक लेने से एवं अधिक मैथुन करने से, निकलने वाला वीर्य स्थान भ्रष्ट होकर भी बाहर न निकल कर उल्टा ऊपर को उठता है। फिर वायु उसे लिंग और अण्डकोषों के बीच में मूत्राशय के द्वार पर रखकर, गुर्दा के पत्थर जैसा बना देता है।

पथरी और शर्करा

छोटे दाने पेशाब के रास्ते निकलते हैं, उन्हें शर्करा कहते हैं। पथरी छोटी भी होती है और बड़ी भी, किन्तु वह होती है, एक ही। किंतु वायु जब उसके टुकड़े २ कर देता है तब वह पथरी नहीं रहती शर्करा बन जाती है। असल में जब पथरी घुल २ कर छोटे २ दानो के रूप में होजाती है, तब उसे ही शर्करा कहते हैं। सर्करा उतनी दुःख-दायक नही होती, जितनी कि पथरी होती है।

पथरी के पूर्व चिह्न

पथरी होने से पहिले ये चिन्ह प्रगट होजाते हैं। बस्ति में पीड़ा होने लगती है, अरुचि होती है पेशाब देर से उतरता है, लिंग और पोतों में वेदना होने लगती है, मारे कष्ट के बुखार होजाता है, हर दम ग्लानि रहती है, पेशाब में सड़ी हुई बदबू आती है।

स्पष्ट चिन्ह

पथरी पैदा होने पर, नाभि, वस्ति, सीवन, लिंग, इनमें पेशाव करते समय दर्द होने लगता है, पेशाव की धारा रुक रुक के चलती है, टपक २ के होती है। उसमें खून मिला रहता है, शरबती रंग रहता है, रेता मिला हुआ रंग दिखाई पड़ता है।

भागने, फिरने में पीडा होती है। इन चिन्हो को देखकर पथरी का होना समझा जाता है।

पथरी के भेद

पथरी चार तरह की होती है

(१) वाताश्मरी।
(२) पित्ताश्मरी।
(३) कफाश्मरी।
(४) शुक्राश्मरी।

(१) वात—पथरी

वायु की पथरी जब पेशाब को रोक देती है, तब बड़ी तेज पीड़ा होती है, मारे दर्द के रोगी दांत पीसने लगता है, नाभि को दबाता है, लिंग को मसलता है, हवा खाने की इच्छा करता है, अधोवायु निकलने लगता है, और मारे संताप के रोगी व्याकुल होजाता है। कभी २ जोर करने से, सिकुड़ने से, थोड़ा पेशाब या पाखाना आ जाता है। पथरी सांवले रंग की होती है, टेढ़ी और खुर-दरी होती है, और कदम्ब के फूल की तरह कांटे-दार होती है।

(२) पित्त—पथरी

इसमें मूत्राशय जलने सा लगता है, पेशाब रुक जाने से आग सी लगती है, पकता सा और ऐसा मालूम होता है कि मानो कोई चूस रहा हो, सूजाक हो जाता है। पथरी कुछ लाली लिये होती है, पीली, काली भिलावे की गुठली जैसी अथवा शहद के रंग जैसी होती है।

(३) कफ—पथरी

इसमें मूत्राशय फूटने सा लगता है, टूटने सा लगता है, सूई सी चुभती है और भारीपन रहता है और वहां ठंडक भी रहती है। पथरी सफेद, चिकनी, बड़ी मुर्गी के अंडे जैसी अथवा महुवे के फूल जैसी होती है।

(४) शुक्र- पथरी

वीर्य वेग को रोकने आदि से यह पथरी पैदा होती है। मूत्रपथ रुकने से बड़ी दिक्कत होती है

वस्ति स्थान को दबाने से यह बिलाय भी जाती है मूत्रकृच्छ, वस्तिपीड़ा, अंडशोथ ये उपद्रव भी हो जाते हैं। यह पथरी अगर छोटी होती है, तो निकल जाती है वर्ना इसके छोटे२ दाने हो जातेहै, जो शकरा कहलाते हैं। उस समय हृदय में पीड़ा सांथलो की थकावट, कोख में शूल और सूजन, प्यास और-डकारें कालापन, दुवलापन, पीलापन, अरुचि, हृदयपीडा, प्यास, कै ये सब इसके उपद्रव हैं। शर्करा रोगी प्रायः असाध्य हो जाता है मर ही जाता है।

मसाने में हवा भरना (फूलना)

इस रोग में सूजन यद्यपि नही होती है, फिर भी यह सूजनसे मिला हुआहै। इसके २ कारणहैं।

[क] लोबिया आदि पेट फुलाने वाले भोजन

[ख] मसाने में रतूवत हो जाय, और उसके नर्म होने की शक्ति खतम हो जाय।

पहिले कारण से अगर हवा भरती है, तो बोझ नहीं होगा, तथा फूलना स्थान बदलता रहेगा और दूसरे कारण में खिचावट के माथ बोझ मालूम होता है।

मसाने की रेत और पथरी

अक्सर यह पथरी लड़को, जवानो और कम-जोर आदमियों को होती है। स्त्रियो में यह पथरी बहुत कम होती है, इसका कारण है उसके मसाने की गर्दन का चौड़ा होना। यह रोग कभी लहसदार दूषित रतूवत से पैदा होता है, जो पथरा जाती है इसमें पेशाव की सफेदी और पतलापन तथा पेशाब के समय रोमांच होना और पेशाब के बाद फिर पेशाब की इच्छा, ये चिह्न होते हैं। मसाने की रेत चूल्हे की राख जैसी होती है। जब पथरी मसाने के मुंह पर आ जाती है, तो पेशाब में कठिनता होती है और बन्द भी हो जाता है पथरी जब मसाने में उतर आती है तो गुर्दे और चड्डो में दर्द होकर बन्द हो जाता है। पेशाब में निकलने वाले छिलके सफेद होते हैं।

गुर्दे तथा मसाने की पथरी में बहुत अन्तरहै। सो दोनो के लक्षणो से समझा जा सकता है।

पेशाब की जलन

इसके ४ भेद हैं।

(१) पहिला भेद

गुर्दे या मसाने की खुजली के कारण तथा उनके घाव की पीव के कारण पेशाब में जलन होती है।

(२) दूसराभेद

कलेजा गर्म हो जाता है, और पित्त बढ़ जाता है, जिससे पेशाव में तेजी जलन और खारापन हो जाता है। इसमें पेशाब पीला ही होता है।

(३) तीसरा भेद

ज्यादा संभोग करने, गर्म दवा खाने आदि से पेशाब की दुरुस्ती और नली के ठीक करने के लिये लगा हुआ चेपदार मल दूर हो जाता है, जिससे जलन होती है। देह में सूखापन भी आजाता है।

(४) चौथा भेद

लिङ्ग में घाव होने से पेशाब में जलन होती है, इसमें पीव भी आता है, जिसका विशेष वर्णन सुजाक में देखिये।

मसाने में खून जमना

यह रोग खूनी पेशाव के पीछे, या चोट लगने के पीछे पैदा होता है। इसमें वेहोशी, वेचैनी नाड़ी का छोटापन, और कभी कभी बन्द होना, शरीर का ठन्डा पड़ना, और कंप कपी होना ये चिह्न होते हैं।

मसाने का दर्द

इसके ७ भेद हैं।

१—मसाने में सूजन होने से दर्द होता है, सूजन का वर्णन हो चुका है।

२—मसाने में घाव होने से दर्द होता है।

३—मसाने में खुजली पैदा होने से दर्द होता है।

४—मसाने में पथरी होने से दर्द होता है, पथरी का वर्णन आगे होगा।

५—मसाने में हवा भरने से भी दर्द होता है, इसका वर्णन भी आगे होगा।

६—प्रकृति ठंडा या गर्म उपद्रव मसाने में आकर दर्द पैदा कर देता है। इसके २ भेद है।

(१) गर्म चीजो के खाने, तथा पेशाव लाने वाली दवाओ के खाने से, गर्म हवा पैदा होकर दर्द करती है। इसमें प्यास, जलन, दर्द पेशाव की जलन तथा जर्दी ये चिह्न होते है।

(२) यह ठंडी दवाओ के तथा ठंडे पदार्थों के खाने से ठंडा उपद्रव होता है। इसमें दर्द के साथ साथ पेशाव में सफेदी होती है कमजोरी आती है, और खासकर पट्ठेदार अवयव में।

बुहरान की रीति से, प्रकृति जब मल को मसाने के मार्ग से निकाल देती है तो दर्द होता है इस में पेशाव बहता है, और यह दर्द बुहरान के दिन पैदा होता है।

मसाने का स्थान भ्रष्ट होना

पी पर चोट लगने, सूजन जैसे रोगो के होने से मसाना अपनी जगह छोड़ देता है। चोट लगने से अगर पट्ठे में खिचाव होता है तो पेशाव बन्द हो जाता है, और अगर पट्ठा चौड़ा होजाता है तो सिलसिलबोल पैदा होजाता है। सिलसिल, बोल का वर्णन आगे आयेगा।

पेशाब का बन्द होना

इसके १५ भेद हैं

१—पहिला भेद

गुर्दे और मसाने की सूजन, तथा दोनो की पथरी, और मसाने में खून और पीव का जमना, तथा हवा भरना, इन कारणों से पेशाव बन्द हो जाता है।

२—दूसरा भेद

फालतू मांस पेशाव की नली में पैदा होकर पेशाव को रोकता है। अक्सर ऐसा उस समय होता है जब घाव भर जाता हैं, अपने आप भी कभी मांस बढ़ जाता है। फिर अगर यह मांस गुर्दे और मसाने के बीच वाली नली में, या गुर्दे तथा कमर की बीच वाली नली में होता है तो, कमर में भारीपन होता है। जब यह मांस मूत्र-वाहिनी नली में होता है, तो मसाने में भारीपन, कठोरता तथा पेडू में भारीपन, पैदा करता है। दर्द भी खूब होता है, और खिचाव भी होता है।

३—तीसरा भेद

मसाने की गर्दन दबाने और निचोडने वाले पट्ठे की सुस्ती होने पर भी पेशाव बन्द होजाता है फिर मसाने को दबाने पर तो पेशाव सुगमतासे निकल जाता है, वर्ना वही दशा होती है।

४—चौथा भेद

मूत्र बहाने वाले रास्ते में जब लसदार दोष इकट्ठा होकर चिपट जाता है तो गांठ पड़ जाती है जिससे पेडू में बोझ मालूम होता है और पेशाव में रुकावट होती है।

५—पांचवां भेद

तेज मल मसाने पर गिर कर उसे तथा पेशाब की नली के चेपदार मल को छील डालता है। जिससे पेशाव निकलने में दुःख होता है किन्तु बन्द न होकर बूंद २ निकलता है। पेशाब और मूत्र स्थान में जलन होती है।

६—छठा भेद

बहुत समय तक पेशाब को रोकने से टेढ़ापन और खिचावट पैदा होकर निस्सारक शक्ति कमजोर हो जाती है जिससे बाद में पेशाव में रुकावट होती है।

७—सातवां भेद

मूत्रेन्द्रिय की नली में घाव या फुन्सियां होने पर दर्द के मारे पेशाब रुककर आता है।

८—आठवां भेद

मसाने में सूजन होने या सुस्ती होने या ऐंठन होने से पेशाब में रुकावट होती है।

९—नवां भेद

पेशाब के मार्ग में अधिक गर्मी पैदा होने से. जैसा कि गर्म ज्वरो में होता है, रुकावट होती है, कब्ज और सूखापन होता है. इसमें थोडा पेशाव रुकता है, अधिक नही।

१०—दसवां भेद

पट्ठो तथा रगो में कफ के आने से, मसाने तथा पेशाब नली में ऐंठन पैदा हो जाती है, इसमें ऐंठन होती है तथा पेशाब रुकता है और कभी आता है तो, उछलकर बहकर नहीं।

११—ग्यारहवां भेद

अण्डकोषो के ऊपर चढ़ जाने से पेशाव बन्द हो जाता है, इसका वर्णन आगे देखिये।

१२—बारहवां भेद

किसी कारणवश जब मसाने की गति में कमजोरी आ जाती है तो उसे पेशावकी चुभन मालूम नहीं होती, जिससे वह उसे निकालने की तैयारी नहीं करता।

१३—तेरहवां भेद

मसाने के स्थान भ्रष्ट हो जाने से पेशाव बन्द हो जाता है, मसाने के हटने का वर्णन होचुकाहै।

१४—चौदहवां भेद

मसाने के पास वाले आँत, गुदा, टूढी आदि अवयवो में कडी सूजन होने से पेशाब बन्द हो जाता है, स्त्रियो के गर्भाशय हट जाने पर भी पेशाब में रुकावट होती है।

१५—पन्द्रहवां भेद

मसाने की सीधवाली हड्डियां अगर अपने स्थान से टल जाती है, तो पेशावबन्द हो जाताहै।

पेशाब का बूंद २ आना

इसके ३ भेद है

१—पहिला भेद

गर्भ दोषो के कारण पेशाब में तेजी आने से पेशाव खुलकर नही होता, अपितु बूंद२ होता है। पेशाव में जर्दी, जलन और बार२ करने की इच्छा ये चिह्न होते है। यह रोग सम्भोग की अधिकता गर्म चीजो के खाने, कड़ी मेहनत करने आदि से होता है।

२—दूसरा भेद

मसाने में कमजोरी आने, उसकी प्रकृति में ठंड पहुँचने और उसके चारो तरफ लगे हुये पट्ठे में ढीलापन आने से निरस्तारक शक्ति के कमजोर होने पर यह दशा होती हैं, पेशाव में सफेदी और अपने आप निकलना ये चिह्न भी होते हैं।

३—तीसरा भेद

सूजन और पथरी होने, मसाने में खून जमने खुजली होने, घाव होने आदि से भी पेशाव बूंद२ आता है।

इसका खुलासा वर्णन मूत्रकृच्छ्र में देखना चाहिये।

सिल-सिल बोल

इस रोग में पेशाब बेमालूम निकल जाता है। आदमी को मालूम ही नहीं पड़ता कि पेशाव हो रहा है और पेशाव हो जाता है।

इसके ६ भेद हैं

१—पहिला भेद

ठंड और तरी के कारण जब मसाना या उस पर मंढा हुआ पट्ठा जब ढीला पड़ जाता है तो पेशाव अज्ञात अवस्था में ही निकल जाता है।

पेशाब में सफेदी होती है तथा ठंडे उपद्रवों केचिह्न प्रकट होते हैं। अक्सर ठंडे और गीले रोगो में अन्त में ही यह रोग होता है।

२–दूसरा भेद

मसाने की सीधवालीं हड्डी अगर चोट लगने आदि से बाहर या भीतर टल जाती है तो यह दशा हो जाती है।

३–तीसरा भेद

मसाने में जब गर्म प्रकृति का अधिक उपद्रव पैदा हो जाता है तो यह हालत हो जाती है, इसमें पेशाब रगीन होता है। गर्म दवाओ से हानि होती है। और प्रकृति में भी अग्नि रहती है।

४–चौथा भेद

मसाने के आसपास वाले अवयवो में बड़ी सूजन होने से मसाना दब जाता है। फिर आंतो में फोक जमकर यह दशा कर देता है।

५–पांचवां भेद

शराब खरबूजा आदि पेशाब लाने वाली दवाओ के खाने से भी यह हालत हो जाती है।

६–छटवां भेद

मसाने के हट जाने पर भी यह अवस्था हो जाती है।

बिछौने पर पेशाब निकलना

अक्सर यह रोग बच्चो को होता है। कभी २ बड़े २ भी इसके शिकार हो जाते हैं।

पेशाब में खून आना

इसके ३ भेद हैं

१–पहिला भेद

गुर्दे की किसी नस के खुलने या फटने पर साफ खून पेशाब के साथ निकलता है।

२–दूसरा भेद

गुर्दे या कलेजे के कमजोर होने पर जल से खून ठीक साफ नहीं होता, कुछ उसमें मिला रहता है। पेशाब मांस के धोवन जैसा होता है। गुर्दे की कमजोरी में पेशाब सफेद होता है। कलेजे की कमजोरी में सुर्खी लिये पतला।

३–तीसरा भेद

पेशाब के अवयव की रगो में घाव होने से पीप मिला दुर्गन्धित खून निकलना है। इसका विशेष वर्णन सोजाक में देखना चाहिये।

मसाने की सूजन

इसके तीन भेद हैं

पहिला भेद

यह गर्म सूजनहै जो खुरखुरी पथरीके छिलने चोट लगने आदि से पैदा होती है। इसके ये चिह्न हैं।

(क) पेड़ू में अधिक दर्द होता है, चुभन, भारीपन और फुलाव होता है।

(ख) तप जनाने वाली गर्मी, प्यास, हाथ पावो का ठडापन, पागलपन और जीभ में काला पन होता है।

(ग) पेशाब या तो बन्द होजाता है, या थोड़ा निकलता है, ऐसी दशा में सूजन भी बढ़ जाती है और आंतें भी दब जातीं हैं। जब सूजन आगे की तरफ झुकी हुई होती है तो पेड़ू पर ललाई भी छा जाती है।

दूसरा भेद

यह वातज तरमल से पैदा होता है। इसमें मसाने में बोझ, पेशाब का कठिनता से आना और पिंडलियो का कमजोर होना ये चिह्न होते हैं।

तीसरा भेद

यह कठोर सूजन है, जो अक्सर गर्मसूजन के पीछे होती है। इसके कारण पहिले ही दिखलाई पड जाते है बाद में मल और मूत्र कठिनता से निकलते हैं।

मसाने का घाव

इसके ३ कारण हैं

(क) कड़वा दोष, मसाने में आकर उसको छील डालता है।

(ख) खुरखुरे रेत या पथरी के टुकड़ खरास पैदा कर देते हैं।

(ग) मसाने की सूजन फूटकर घाव पैदा कर देनी है।

इसके चिह्न हैं

पेशाव की कठिनता और जलन, साथ ही उसमें वदवू आती है और साफ छिलके तथा भूसी जैसी चीजें उसमें निकलती हैं। गुर्दे के घाव की अपेक्षा मसाने का घाव अधिक पीड़ा करता है।

मसाने की खुजली

जिस तरह गुर्दे में खुजली होती है उसी तरह मसाने में भी। इसमें पेशाव में जलन तथा वदवू और भुसी सी चीज का निकलना, दर्द की अधिकता, खुजली चलना ये चिह्न होते हैं। कभी २ पेशावमें पीव या पीला पानी और खून भी निकल जाता है। यह दशा उस समय होती है, जब फुन्सियो में घाव हो जाता है या वे पकने से पहले ही फूट जाती हैं।

मुहुर्मूत्रता

मूत्राशय में रहने वाले वायु की गड़बड़ी से वार २ पेशाब होने लगता है, वस्ति की कमजोरी गुर्दे की बीमारी आदि भी इसमें कारण हैं।

प्रमेह

प्रमेह को होमियोपैथी वाले तो सोजाक ही कह देते हैं। इससे ज्यादा वे इसका कुछ भी तारतम्य नहीं दिखलाते, किन्तु प्रमेह और सोजाक में आकाश पाताल का अन्तर है। यह शायद वेलोग नही जानते। सोजाक का सम्बन्ध केवल मूत्रनली से है। किन्तु प्रमेह का सम्बन्ध रस आदि धातुओं से या यो कहिये। सारे शरीर से है।

प्रमेह का रोगी दिन २ घुल २ कर मरता है। किन्तु सोजाक के रोगी की क्या ऐसी दशा होती है। सोजाक में जलन होना, पीव निकलना खास चिह्न है, किन्तु प्रमेह में न जलन होती है, न पीव ही निकलता है। पीव की जगह वीर्य अवश्य निकलता है। किंतु वह धोती पर पीला दाग नही करता।

हिकमत में प्रमेह को वीर्य बहना आदि में लिखा है। किंतु ऐसा कोई स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया है। हम प्रमेह को यहां प्रमेह ही कहेगे। यूनानी या डाक्टरी कोई पर्यायवाची शब्द हमें इसके भाव का द्योतक नही मिलता। प्रमेह का वर्णन यहां आयुर्वेदिक तरीके से किया जायगा।

आज ऐसे भाग्यवानों की संख्या बहुत ही कम है जो प्रमेह के शिकार न हो, किसी न किसी कारण से वे अवश्य प्रमेह के फदे में फस जाते हैं असल वात तो यह है। कि यह ऐसा रोग है। जो धीरे २ अपना फौलादी पजा फैलाता है। सहसा इसका कोई प्रकट प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता, फिर रोगियो की लापर्वाही से धीरे २ यह जड जमा लेता है। और अपना नग्न रूप दिखलाता है। उस नग्न रूप को देखकर रोगी काप उठता है।

प्रमेह के कारणो का हम खुलासा वर्णन करेंगे यह मनुष्य जाति का प्रधान शत्रु है, जो पर्दे की ओट में लूट करता है।

प्रमेह साध्य, याप्य और असाध्य तीनो है। प्रारम्भिक अवस्था में यह साध्य रहता है, उस समय दवा खिला कर रोगी को इसके पिंड से छुडाया जा सकता है, बाद में अगर उस समय कुछ ध्यान नही दिया और इसने शरीर में डेरा

जमा दिया तो, यह साध्य नहीं रह जाता, याप्य हो जाता है। फिर दवा खिला कर हम इसे शरीर से बाहर नहीं निकाल सकते, भीतर ही इसका शमन किया जा सकता है, जो बाद में फिर जरा भी गडबड़ होने से जिन्दा हो जाता है। अगर इस दशा में भी हम आखें मूंद कर बैठे रहे तो, धीरे २ यह रोग असाध्य हो जाता है। फिर चाहे आप रोगी को शिलाजीत चटाइये, चाहे सोना भस्म खिलाइये, यह तो शरीर से सटकने का नाम भी नहीं लेगा, यह बस उसी समय साथ छोड़ता है। जब मनुष्य चिता पर सोने को तैयार हो जाता है। ऐसा है यह प्रमेह राक्षस, जो भारत वासियों का सच्चा मित्र है।

जो हो, यह सभी जानते हैं कि जीवन कर्त्ता को नष्ट करने वाला कीडा यह प्रमेह है। फिर यह जान बूझ कर भी लोग इस बला को क्यों पालते हैं ? आंखो से देख भाल कर भी लोग क्यो इस राक्षस को लिपटाये फिरते हैं। यह कोई दैवी विभूति नहीं है, यह तो शैतानी ज्वाला है, इसे तो दूर से ही साष्टांग करना चाहिये। कोई भी जीने की इच्छा करने वाला व्यक्ति, प्रमेह को अपने पास बुलाना नहीं चाहता, कोई भी सुखी रहने की अभिलाषा वाला मनुष्य प्रमेह की सूरत देखना नहीं चाहता, और कोई भी स्वस्थ रहने वाला मानव, प्रमेह प्रियतमा से आलिङ्गन करना नहीं चाहता।

जानते है, सभी जानते हैं, कि प्रमेह वह प्रियतमा है जिससे आलिङ्गन करने पर वह हमारा कलेजा चूस कर ही छोडती है। फिर, समझ में नहीं आता कि आज इतने प्रमेही क्यो हैं।

कारण के बिना कार्य नहीं होता, बादल बिना पानी नहीं गिरता, कोठे मे खराबी हुये बिना ज्वर नहीं होता, युद्ध में तलवार चलाये बिना हत्यायें नहीं होती. इस तरह में पहिले कारण होता है। अतः सबसे पहिले विचारने की बात यह है कि—

प्रमेह क्यों होता है

प्रमेह के रूप तथा भेदों की विवेचना करने से पहिले यह विचार करना जरूरी है कि प्रमेह होता क्यों है ? कोई इसे चाहता नहीं, फिर भी यह सबके क्यों आ चिपटता है। अथवा क्या इसे सभी चाहते हैं। चाहते न हों, किन्तु इसके आने की राह तैयार कर देते हैं। इसमें यह आश्चर्य की बात ही मालूम होता नहीं है।

सब इससे नफरत करते हैं, सब इससे दूर ही रहते हैं, किंतु अपने अज्ञान से इसकी राह तैयार कर देते हैं, फिर भला राक्षस को तो राह मिलनी चाहिये, वह क्यों मुफ्त में अपनी बलि छोड़ेगा लोग इससे दूर रहना चाहते हैं, जरूर, परन्तु मूर्खता वश उसके आने का निर्माण कर देते हैं, फिर वह उस सुनहरी राह से बिना बुलाये अतिथि की तरह शरीर रूपी घर में आ घुसता है, यह वह अतिथि है जो स्वागत कर्त्ता ही की बलि लेता है।

तो फिर ऐसे कौन से कारण है जिनसे प्रमेह होता है ? ऐसे कौन से रास्ते हैं जिनसे यह राक्षस आता है। आयुर्वेद के निर्माताओ ने इस प्रश्न पर अलग अलग विचार किया है। चरक का मत अलग है, सुश्रुत का अलग, भाव मिश्र का अलग है, तो माधव का अलग, किन्तु हम उन सबका यहा उल्लेख नहीं करेंगे। उनके विचारो में भी रहस्य है, अतः किसी एक के विचार ही यहां हम रख देना चाहते हैं सुश्रुत के निदान में लिखा है।

"दिवास्वप्न, अव्यायाम, आलस्य प्रसक्त, शीत स्निग्ध, मधुर, मद्य, द्रवान्नपानसेविनं पुरुष जानीयात् प्रमेही भविष्यतीति"।

दिन में सोने वाले, शारीरिक श्रम न करने वाले, आराम पसंद, तकिये के सहारे लेटे रहने वाले, ठडे, चिकने, मधुर पदार्थों का अतिशय सेबन करने वाले, मद्य नशीली चीजो का सेवन करने वाले, पतले पदार्थों को ही रात दिन चरने वाले, मनुष्य को प्रमेह होता है, ऐसे मनुष्य खुद प्रमेह राक्षस का आवाहन करते है, वह उनके आवाहन को स्वीकार करता है और आकर उनके कधे से कंधा मिला देता है। इन उल्लिखित कारणो को हम पांच भागो में विभाजित कर उन पर थोड़ा विचार करना चाहते हैं।

प्रमेह के कारण

(१) दिन में सोना, (२) व्यायाम नही करना, (३) आराम पसद होना (४) प्रकृति विरुद्ध भोजन खाना, (५) नशीली चीजो का सेवन करना, ये पांच कारण है, जिनसे प्रमेह रोग पैदा होता है।

१–दिन मे सोना

एक छोटी सी कहावत भी है, कि-"हैं तुम दिन में सोते हो"? मानो दिन में सोना कोई बहुत भारी पाप हो। पाप चाहे न हो किंतु यह ऐसी बुरी बला है जिससे शरीर के स्वास्थ्य पर भारी धक्का पहुँचता है, ईश्वर हमसे बहुत अधिक समझदार था. जब उसने हमारी रचना की तब हमारे काम करने, और सोने के समय को भी अलग २ बनाया। दिन, काम करने के लिये, और रात, सोने के लिये, ऐसी ही व्यवस्था उसने हमारे लिये की थी। फिर सबसे पहले तो हम प्रकृति के नियम को भङ्ग करते है, यह कोई भद्र अवज्ञा नही है, अक्षम्य अपराध है, यह उतना ही अपराध है जितना दफा १२३ मे होता है।

प्रकृति हमें इसका दड देती है. दिन के सोने के अपराध में वह हमें, अकर्मण्य रोगी और दुखी बनाती है, हमारी कल्पनाओ के बाग को उजाड़ देती है।

बहुत सम्भव है ऐसी बातें पाठको को कोरी गप्प ही मालूम दे और वह इन विचारो की मजाक ही उड़ावे, किंतु जरा भी दिमाग को कष्ट देने से वे इसके भाव को समझ सकेंगे। इसे जाने भी दीजिये तो और बहुतसी बातें है, जिनसे दिन में सोना स्वास्थ्य के लिये घातक ही सिद्ध होता है। शरीर में तीनदोष है, बात पित्त और कफ, इन तीनो का घटाव वढ़ाव भी होता रहता है कभी बायु वढ़ता है तो कभीं पित्त, पित्त घटता है तो, कभी कफ।

दोषो का वृद्धि क्षय, ऋतु, अवस्था और काल के अनुसार होता है। मनुष्य जब खाना खा लेता है तब कफ कुपित हुआ करता है और जब अन्न की विदाहावस्था होतीहै, तब पित्त कुपित होताहै। एव जब अन्न का मधुरीभाव होता है, तब बायु कुपित होता है। इस तरह जब हम दिन में खाना खाकर सोते है तब एक तो स्वभाव से ही हमारा कफ कुपित रहता है। फिर खाने से इन्द्रियो को अकर्मण्य बना देने से बह और भी कुपित हो जाता है। किसी भी दोष का कुपित होना स्वास्थ्य के लिये जहर है।

स्वास्थ्य के मानी है—स्वस्थाने स्थिति., दोपो की समान रीति से स्थिति, तीनो दोपो की साम्यावस्था को ही स्वास्थ्य कहते है। जब एक भी दोष घट या बढ़ जाता है तब वह शरीर की धातुओ को उथल पुथल करना शुरू कर देता है। वाग्भट्ट में लिखा है—

,बिकृताऽविकृता देह घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च"

जब यह दोष विकृत होजाते हैं तब शरीर का सहार करते हैं। और जब ये स्वास्थ्य अविकृत. साम्य रहते हैं, तब शरीर के स्वास्थ्य को सुन्दर

रखते हैं। जब दिन में सोने से हमारा कफ कुपित होता है, तब उसका फल भी हमें क्यो न भोगना पड़े। प्रमेह के अन्दर कफ की विशेष महत्ता मानी गई है।

ईश्वर ने सूर्य क्यो बनाया है। इसी लिये न कि, इसकी किरणो से मनुष्य का मन और शरीर शुद्ध और स्वस्थ्य हो। जो आदमी दिन में सूर्य की प्रखर प्रतप्तावस्था में छाती खोल कर घूमता है। वह कभी-प्रमेह का-शिकार नही होता।

सूर्य की किरणे हमारे शरीर की शुद्धि करती है। फिर जबहम मकान के एक कोने में कुम्भकर्ण की पुनरा वृत्ति करते है, तव उसकी किरणे तो हमारे पास न पहुँचेगी। सब अवस्थाओ में दिन में सोना- एक बुरी बला है। इससे प्रकृति की आज्ञा का उलघन होता है। और दोष कुपित होकर रोगो को पैदा करने लगते हैं। यह प्रमेह का पहिला कारण है। अब दूसरा कारण।

व्यायाम नहीं करना

भी देखिये। व्यायाम को बोलचाल की भाषा में कसरत कहते है, कसरत केवल अखाड़ो में में डड पेलने से ही होती है। सो बात नही है, घरमें बैठकर भी कसरत कर सकते है। कसरत दो तरह की होती है (१) शारीरिक और (२) मानसिक, शारीरिक कसरत वह होती है। जिसमें शरीर से परिश्रम किया जाता है। डड पेलना, बैठक करना, मुग्दर फेरना, कुश्ती लड़ना, दौड़ना, जल में तैरना ये सब शारीरिक कसरत हैं, इसमें शरीर के अगो को परिश्रम करना पडता है, मानसिक कसरत वह है, जिसमें मानसिक शक्ति से काम लिया जाय किसी विषय का मनोयोग पूर्वक मनन करना, मानसिक कसरत है, निबन्ध लिखना मानसिक कसरत है। मानसिक कसरत में मस्तिष्क की विचारणा शक्ति से भी बहुत काम लिया जाता है। ये दोनो कसरते ही शरीर के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं।

जब कसरत की जाती है, तब शरीर की नश २ को परिश्रम करना पड़ता है। हृदय में जो खून रहता है, वह नाड़ियो के द्वारा सारे शरीर में फैलता है। और शरीर में जो अशुद्ध रक्त है, वह पेशियो द्वारा हृदय में जाता है, इस तरह व्यायाम करने से सब धातुओ को कुछ नकुछ खुराक मिलती रहती है। और वे अपना काम नियमित रूप से करते रहते है। कसरत करने से, शरीर सुडौल और सुगठित होता है, जब अग प्रत्यग कुछ मेहनत करलेते है। तव उनमें सच्ची शांति आजाती है। थकावट होने से मीठी नीद आती है। और वासना नष्ट होजाती है। मन के दूषित विकार भग जाते हैं। और अन्न की पाचनक्रिया अच्छी तरह से होती है। ठीक तौर से अन्न का रस बनता है, और रस का रक्त, आखिर जाकर जो वीर्य बनता है, और वह शुद्ध होता है। विचारो द्वारा दूषित नही।

शरीर में ओज खूब बनता है। जिससे शरीर बल शाली और पुष्ट होता है। आलस्य दूर हो जाता है। व्यायाम करने से शरीर में कष्ट सहने की ताकत होजाती है। प्यास, भूख, आदि में एक दम जी नही निकलता, इन्द्रियां उच्छृङ्खल नही होने पाती। उनपर काबू रहता है। फेफड़े मजबूत होजाते हैं। और हृदय वज्र बनजाता है। समय पड़ने पर अगर शरीर मे कुछ गड़बडी भी होजाय तो व्यायाम करने वाला उससे घबड़ाता नहीं, व्यायाम करने वाले को कब्ज की शिकायत तो कभी होती ही नही, न उसे दस्त ही होते है और न कभी पेट मे दर्द ही होता है, जो कसरत करता है, उसे स्वप्न दोष होता ही नही, उसका कीमती हीरा उसके शरीरके बाहर नही निकलता, वीर्यरक्षा से उसका शरीर हृष्ट पुष्ट और बलशाली होता है।

हृदय की जो चचलता है, वह व्यायाम से नष्ट होजाती है, व्यभिचार के भाव हवा होजाते हैं, व्यायाम करने बाला, विना किसी दिक्कत के संयमी जीवन विता सकता है। वह अपने जीवन को आदर्श बना सकता है। शारीरिक व्यायाम से, शरीर मजबूत और हृष्ठ-पुष्ठ होता है और मानसिक व्यायाम से, मन गम्भीर, दूरदर्शी और तेजस्वी होता है, इससे मन के फालतू विचार नष्ट हो जाते हैं, मन सदा शांत और सुखी रहता है। ज्ञान की वृद्धि के साथ २ ही प्रतिभा का बिकाश भी होता है। आज बड़े २ बैज्ञानिक दिखलाई देते हैं, जो मानसिक व्यायाम करते है।

यह है व्यायाम का लाभ। शरीर को बनाये रखने के लिये जैसे पानी पीना आवश्यक है, वैसे ही कसरत भी आवश्यक है। जो आदमी कसरत नहीं करता, शरीर और मन से कुछ परिश्रम नहीं करता, वह दुनियां का थोड़े दिन का मेहमान होता है। व्यायाम न करनेसे, शरीरकी नश२ ढीली पड़ जाती है उनमें कोईस्फूर्ति नही रहती। भीतरी कल पुर्जे धीरे २ अपना काम करते है, और कभी काम करने से जबाब भी दे देते हैं। उनकी सफाई न होने से घुन लग जाता है, जिससे उनका कार्य संचालन ठीक तौर से नही हो पाता, कल पुर्जों की सफाई व्यायाम ही है, इससे उनमें स्फूर्ति आती है, खराब खून निकलता है और नया खून मिलता है।

व्यायाम न करनेवाले के फेफड़े विलकुल कमजोर हो जाते हैं, उन्हे उनकी खूराक नहीं मिलती, यकृत बेजान होने लगता है, आमाशय मौनव्रत धारण कर लेता है, ग्रहणी स्तीफा दे देती हैं, मन सदा चचल रहता है, वासना जाग्रत रहती है, जो व्यभिचार की जननी है. शरीर में ठीक तौर से रस नहीं बनता, रस न वनने से खून फिर कहाँ से बने? नतीजा यह होता है कि, नस-नस रग रग सब सुस्त हो जाती है। आलस्य आ घेरता है, कुछ काम करने की इच्छा नहीं होती, और जी मार कर करते भी है तो पूर नहीं पड़ती।

आलस्य से जीव व्यभिचारी होताहै, यह एक साधारण बात है, व्यभिचार से उसका रहा सहा वीर्य भी निकल जाता है, आखिर वस्ति पर जोर पडता है तब वह भी अपने काम से जवाव देदेती है। मूत्राशय में मूत्र की पाचन क्रिया ठीकतौर से नही हो पाती। इससे केवल प्रमेह ही नहीं और सैकडो रोग पैदा हो जाते है। प्रमेह के होने में भी, व्यायाम नहीं करना एक कारण माना जाता है। यह तीसरा कारण है—

(३) आराम पसद होना

आरामपसंद होना के मानी अकर्मण्य होते हैं बात-बात में आराम चाहना, इस काम के लिये दो कोस जाना पडेगा, इस लिये हम नही जायेंगे, धोती धोने के लिये पानी लाना पड़ेगा, इस लिये हम नही धोयेंगे ऐसे आरामपसद आदमी जल्दी प्रमेह के शिकार होते हैं।

आज कल का जीवन, विलासी जीवन है। मनुष्य हर एक बात में विलासिता चाहता है। विलासिता भी कैसी, बिना हाथ पैर हिलाये खुद आनेवाली, जिसके लिये जराभी मिहनत न करनी पड़े, ऐसी हालत वेचारे गरीबो कीं तो, हो ही कैसे सकती है? कुछ अंशो में मध्यम स्थिति के बाबू लोग और सर्वांग में ऊंची स्थिति के लाला लोग ही, इस कारणसे प्रमेह के शिकार होते हैं। गरीब आदमी तो वेचारा दिनभर खटपटकर कही दोपैसे कमाता है, फिर आरामपसद हो ही कैसे सकता है? बिना खटपट उसके पेट में चूहे दौड़ने लगें।

मध्यम स्थिति के बाबू लोग कुर्सी पर बैठकर कलम घिसते रहते हैं, उससे उठने का नाम तक

नहीं लेते। आफिस से पिंड छुड़ाके आते हैं, तो घर में आकर पैर पसार देते हैं, किसी तरह भी अपने शरीर से कुछ काम नहीं लेना चाहते, इस तरह ये लोग धीरे २ जब बिलकुल ही आरामपसंद होने लगते हैं तब प्रमेह के भोजन बन जाते हैं।

अब रहे उच्चस्थिति के लाला लोग, जिनके पास लाखों करोड़ों रुपये हैं। ये लोग केवल विलासी ही नहीं विलासिता के अवतार होते हैं। अपने हाथों ये शरीर में कपड़े तक नहीं पहनते। इनका जीवन ही केवल आराम करने के लियेहै। जूता खोलने के लिये नौकर, धोती धोने के लिये नौकर और खाना पकाने के लिये नौकर, इनके आगे, पीछे चारों तरफ नौकर ही नौकर रहते हैं। अपने हाथों इन्हें कमीजके बटन तक नहीं खोलने पड़ते। बाजार जाने के लिये मोटर है ही, फिर पैदल जाने की जरूरत ही क्या है।

ये लोग अपने शरीर और मन से कुछ भी काम नहीं लेते, सर्वांग में आराम पसंद हो जाते हैं। रात दिन पशुओं की तरह चरते रहना इनका साधारण काम है। इसका नतीजा यह होता हैकि पड़े रहने से, बात २ में आराम पसंद होने से इनका आमाशय अपना काम करने में सुस्त हो जाता है। कफाशय में कफ का आधिक्य होजाता है, जिससे वह और धातुओं पर असवार होता है पित्त की गर्मी बढ़ जाती है, वीर्याशय शिथिल हो जाता है। अंत में प्रमेह हो जाता है, मूत्र के साथ साथ वीर्य भी गिरने लगता है। अब चौथे कारण पर भी विचार कीजिये।

(४) प्रकृति विरुद्ध भोजन खाना

मनुष्यों में हर एक की अलग २ प्रकृति होती है। कोई वात प्रकृति होता है, कोई कफ प्रकृति और कोई पित्त प्रकृति। प्रकृतियों के अनुसार ही मनुष्यों के स्वभाव होते हैं। कुल प्रकृति ७ होती हैं, जिनमें २ प्रकृति वालों के ३ भेद और तीन प्रकृति वालों का १ भेद भी सम्मिलित है। वायु स्वभाव से ही रूखाहै इस लिये वात प्रकृति मनुष्य का शरीर रूखा होता है, वायु चंचल है तो, बात प्रकृति वाला भी चंचल होता है। मतलब यह है कि तीनों दोषों के जैसे गुण हैं, उनका समावेश प्रकृतियों में भी है।

फिर जो मनुष्य वात प्रकृति होता है, उसका शरीर रूखा होता है, ऐसी अवस्था में अगर वह खट्टे, मीठे, चरपरेपदार्थ खायेगा तो उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। इसका भी एक कारण है, विरुद्ध पदार्थों से ही दोषों का प्रशमन होता है। जैसे—

मधुराज्जायते श्लेष्मा

मीठे पदार्थों के खाने से, शरीर में कफ पैदा होता है और इसके विरुद्ध रूखे, हलके, हरएक पदार्थों से कफ का प्रशमन होता है। जब शरीर में कफ बढ़ जाता है तब उसके प्रशमन के लिये वात कारी पदार्थ दिये जाते हैं ताकि वायु पैदा होकर कफ का प्रशमन करे। इसी तरह रूखे पदार्थों के अधिक सेवन से जब, शरीर में वायु अधिक बढ़ जाता है, तब उसके प्रशमन के लिये मीठे पदार्थ दिये जाते हैं। यही आरोग्य शास्त्र का नियम है। तब हमें समझना चाहिये कि वात प्रकृति वाले मनुष्य की यह प्रकृति ही होती है कि यह वायुको न बढ़ने देने वाले पदार्थों का सेवन करें।

यहां बहुत सम्भव है हमारे पाठकों के कदम शंकाग्रस्त होकर रुक जावें। उन्हें शंका हो सकती है कि ऊपर शीर्षक दिया है; हमने प्रकृति विरुद्ध भोजन खाना, जिसके माने होते हैं, स्वभावविरुद्ध भोज्य पदार्थों के खाने से प्रमेह पैदा होता है फिर यहीं हम बतलाते हैं कि प्रकृति विरुद्ध पदार्थों से स्वास्थ्य ठीक रहता है। किन्तु बात दरअसल ऐसी नहीं है। विरुद्ध पदार्थ खाने की मनुष्यों की

प्रकृति होती, यह मनुष्यो का स्वभाव है कि वह स्वभाव से विरुद्ध भोजन करे इसीसे उनका कल्याण है। किन्तु जो इस प्रकृति विरुद्ध भोजन से विरुद्ध होकर पदार्थों का सेवन करते है, उन्हे प्रमेह का शिकारी होना पडता है।

हां तो, वात प्रकृति वाले को मधुर पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, किन्तु अगर वह अपनी प्रकृति के विपक्ष में बगावत छेड़कर रूखे पदार्थों को ही खाता है, तो उसके शरीर में वायु बढ़जाता है, वायु बढ़कर कुपित हो जाता है। कुपित होकर वह इधर उधर चक्कर काटता है, सारे शरीर मे खलबली मचाकर वह शरीर के सारभूत शुक्र को दूषित करता है, मूत्राशय पर दबाव डालता है। नतीजा यह होता है कि, दूषित शुक्र पेशाब के साथ २ निकलने लगता है। बस फिर प्रमेह हुआ समझिये।

(५) नशीली चीजो का सेवन करना

नशीली-मादक चीजो के सेवन करने से भी प्रमेह होता है। इन चीजो में शराव, गांजा, अफीम, तमाखू, बीड़ी आदि हैं। इन चीजो के लिये तो एक स्वतन्त्र विषय होना चाहिये था ताकि विस्तार से कुछ लिखा जाता, किन्तु यहा सक्षेप में इतना बता देना है कि इनसे प्रमेह क्यो होता है। सब से पहिले आप शराब को ही लीजिये।

यूरोपीय सभ्यता ने भारत में शराब का इतना प्रचार किया है जिससे बेचारा भारत दिनोदिन कमजोर होता जा रहा है। जहां भारत के युवक संसार के अन्दर आदर्श समझे जाते थे वहा इस शराब के कारण महा पतित समझे जा रहे है। शराब-वास्तव में जीवन वाटिका को उजाड़ने वाली दवा है। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि शराब के अन्दर अलकोहल नाम का एक महा भयंकर विष होता है। जो पदार्थ शक्करदार होते हैं वे सब सड़ जाते हैं, तब उनमें से यह विष पैदा होता है। इस 'अलकोहल' विष के सम्बन्ध में भी खूब जांच पड़ताल हुई है। स्वीडन के डाक्टर मगनसहस ने प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध किया है कि शराब शरीर के अणु २ को घायल कर देती है।

लंदन के डाक्टर वैजामिन वार्ड रिचर्डसन ने अपने अनेक प्रयोगो द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि 'अलकोहल' ऐसा विष नही है जो उत्तेजक हो, बल्कि यह शरीर के जीवाणुओ को मारकर उन्हे सुन्न बनाने वाला है। पाठक इतने ही से शराब की बुराई समझ गये होंगे। दुःख है कि इस विषय पर यहां विशेष नही लिखा जा सकता, शराब सेवी मनुष्य के जीवाणु नष्ट होने लगते हैं और शरीर में नये २ रोग पैदा होने लगते हैं। शराब से मन चंचल हो उठता है, शराब सेवी को व्यभिचारी होना भी जरूरी है, फिर ऐसी स्थिति में प्रमेह का होना तो स्वाभाविक है।

गांजा और अफीम भी ऐसी नशीली चीजें हैं, जिनके सेबन के साथ ही दिमाग खराब हो जाता है। इनकी इतनी जबरदस्त गरमी होती है कि वीर्य बहाने वाली नाड़ियां बड़ी सुस्त पड़ जाती हैं, वीर्य एक स्थान पर भी रुक जाता है। ऐसे आदमी मौके पर छुरी तक भी छाती में भोक लेते हैं, वैज्ञानिको का विश्वास है कि अफीम में मेकोनिक एसिड, मार्फिया, मिबाइया, कोडाइया, नार्कोटिन इतने विष रहते हैं। इनमें एक-एक विष अलग-अलग भी जीवाणुओ का संहार करने के लिये काफी है।

तमाखू, बीडी, सिगरेट आदि नशीली चीजें ऐसी हैं जिन्हे आज सब कोई व्यवहार में लाते हैं, इनके अन्दर जो जहर होता है, वह हमें नही दिखलाई देता। तमाखू 'निकोटाइन' विष कहलाता है, इसका प्रभाव जल्दी नहीं होता है। इसकी तारीफ

ही यह है कि, मनुष्य इससे घुल घुल कर मरता है. तमाखू से ज्यादा विष बीड़ी और सिगरेट में है। सिगरेट का धुआ ऐसा जहरीला होता है, कि उसे किसी कुत्ते की नाक में घुसा देने पर वह बेहोश हो के गिर पड़ता है।

ऐसी ऐसी नशीली चीजें शरीर के अन्दर जो जो खरीबियां करती हैं, उनकी गणना यहा नहीं हो सकती। हम केवल इतना ही कह देना चाहते है कि, इन सब से प्रमेह रोग पैदा होता है। बीसवी सदी का भारत आज सिगरेट के धुओ से प्रमेह का शिकार हो रहा है।

नशा वास्तव में नाशक होता है यह तन, मन और धन सबका नाशक है।

जिन कारणो से प्रमेह होता है, उसका दिग्दर्शन यहां कराया जा चुका है। किन्तु इतने ही से यह नहीं कहा जा सकता कि, इन कारणोके सिवा और किसी कारण से प्रमेह नहीं होता, ये वे ही कारण है, जो सुश्रुत के पद्य में आये है । जहां तक कोई समझदार व्यक्ति ख्याल कर सकता है, वहां तक वह प्रमेह के और भी कई कारण वतलावेगा। आज कल के कुछ आरोग्य शास्त्रियो का विश्वास है, कि मन्दाग्नि होने से प्रमेह हो जाता है, किंतु इसमें सचाई का कोई अंश नही दिखलाई देता।

प्रमेह होने के बाद मन्दाग्नि जरूर हो जाती है, किन्तु प्रमेह से पहिले नही होती। प्राय ऐसा होता है कि प्रमेह की प्राथमिक अवस्था में मनुष्य बहुत अधिक खाने लगता है उसकी अग्नि जब कफादि धातुओ को खा लेती है. तब वह अपनी खुराक मांगती है, उस समय मनुष्य साधारण अवस्था से कई गुना भोजन करने लगता है, किन्तु मन्दाग्नि में तो मनुष्य अग्नि के मन्द हो जाने से. पहिले ही कम खाने लगता है। कहा जा सकता है कि प्रमेह की मध्यम अवस्था का उपद्रव मन्दाग्नि भी है।

प्रमेह के और कारणो में हस्त मैथुन, गुदा मैथुन, पशु मैथुन और व्यभिचार भी है, और कहना चाहिये कि आज कल अधिकतर इन्हीं कारणो से प्रमेह होता है । हमारा सामाजिक जीवन, ऐसा उच्छृङ्खल हो रहा है कि व्यक्तियों का चरित्र दिन दिन गिरता जा रहा है। प्रारम्भिक अवस्था से ही हमारे विचारो के विकार जागृत हो उठते हैं, हमारा हृदय वासना के विलासमय ससार की अनोखी छटा को देखने के लिये तड़फा करता है। उस कच्ची अवस्था में ही हमारे शरीर का राजा बाहर निकल जाता है। अब जरा इन पर थोडा विचार तो कीजिये।

हस्त मैथुन

किसी भी जातिका यह घिनोना पाप है। मनुष्य इतने कामुक हो गये हैं, जो प्रकृति के विरुद्ध बगावत करते भी नहीं हिचकिचाते। मैथुन केवल मैथुन, ही सबका ध्येय बना जा रहा है, मैथुन को मन्थन कहा जाय तो ठीक है, इस मन्थन से वीर्य बाहर निकलता है किन्तु मैथुन के अन्दर भी प्रकृति का ख्याल करना पड़ता है, प्रकृति के स्वभाव से ही योनि और लिंग के अन्दर ऐसी घर्षण शक्ति रक्खी है, जिससे मैथुन के समय वीर्य निकलता है। योनि बहुत ही मुलायम है, उससे जो घर्षण होता है. उसका प्रभाव लिंग पर बुरा नही गिरता है।

किन्तु हाथ की हड्डिया सख्त है, इसके घर्षण से लिंग की नसें ढीली पड़ जाती हैं, उनमें जान नही रहती, उभर आती हैं, लिंग टेढ़ा हो जाता है यह बुराई आज बड़े जोरो से फैली हुई है, यह वह चाट है, जिसे चखकर कोई छोड़ नहीं सकता।

स्कूलो और कालिजो के छात्र अपने वोर्डिङ्ग हाऊस में, धनियो के लडके पाखाने में, गरीबो के किसी एकान्त स्थान में, सब जान बूझ कर अपने जीवन का सत्यानाश करते है। हस्त मैथुन करने वाले के शरीर की रग २ ढीली पड़ जाती है, वीर्य वाहिनी नसें अपना काम छोड़ देती है। आमाशय में ठीक काम नही होता, मतलब यह है कि दुनियां भर की बुराई इस हस्त मैथुन से आ घुसती है। हस्तमैथुन करने वाले को स्वप्नदोष होता है, व्यभिचार में वह मग्न रहता है।

हस्त मैथुन करने वाले का हृदय इतना कमजोर हो जाता है, कि वह किसी काम में स्थिरता नहीं रख सकता, कोई भी विचार उसके मस्तिष्क की विचारशक्ति से स्वीकृत नही होता। आत्मघात भी ऐसे आदमी सहज ही में कर लेते है। डा० डैसेलैएड ने लिखा है—

"एक मनुष्य को क्षय हो गया था, और इस दशा में भी यदि उसे अकेले छोड दिया जाय तो, वह हस्तमैथुन कर बैठता था, आखिर तीन मास के बाद ही मर गया।

डाक्टर सैंकरिपर लिखते है—

हस्तमैथुन के कारण, उसके शरीर मे केवल अस्थिकंकाल ही रह गया, और धातु सूख गये थे, उसकी आंखें भीतर को घुस गई थी, आवाज फीकी पड़ गई थी। आखिर वह इतना दुवला हो गया कि ६ मास तक बीमार रहकर मर गया। इस तरह बडे २ वैज्ञानिक भी हस्त मैथुन की बुराइयो को बताते हैं, हस्त मैथुन का जन्म बीसवीं सदी से कुछ पहिले हुआ। यह वह राक्षस है, जो प्रमेह को पैदा करता है। हस्त मैथुन की खराब्रियो पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकताहै अडकोस लटक जाते है,छोटेहो जाते हैं, लिंगेन्द्रिय टेढ़ी पतली लम्बी हो जाती है, जो गर्भस्थिति के काम की नहीं रहती। स्वप्नदोष होने लगता हैं स्तम्भन की गोलियो की जरूरत होने लगती है ऐसे पुरुषों के अन्दर रुकावट जरा भी नही होती हस्तमैथुन से मूत्राशय निर्बल होजाता है, मूत्र बहुत आने लगता है, जो प्रमेह का एक अंग है, कब्ज रहती है, जिगर कमजोर होजाता है। मदाग्नि, कमजोरी, पाडु,उन्माद, आदि दुर्जनोरोग ऐसे पुरुष की पीठ पर सवार होजाते है। दिमाग में विचार शक्ति नहीं रहती कमर झुक जाती है,और न जाने क्या२ होताहै? पाठकोको समझना चाहिये कि जो होता है उसमें प्रमेह भी शामिल है। हस्तमैथुन केवल पुरुष ही करते हो सो बात नहीं है, स्त्रियाँ भी हस्तमैथुन करती है, किंतु इस पर अन्य प्रकरण में लिखा जायगा।

गुदामैथुन

हस्तमैथुन की तरह गुदामैथुन का भी आज बहुत अधिक प्रचार है। कालेजो के होटलो में, बाबुओ के रगमहलो में, जहाँ चाहे आप इसे देख सकते हैं। समाज के शोहदे छोटे २ बच्चो को ही वासना की शांत केलिये अपने पास रखते हैं। पाठशालाओ के पडित, स्कूलोके मास्टर, मिलो के मैनेजर, सब इस बुराई में लिप्त है। खूब सूरत बालको के साथ ये शैतान अपनी कामना की आग को बुझातेहैं। प्रकृति के विरुद्ध खुला विद्रोह है। भलो कहां तो गुदा को प्रकृति ने मलजाने का पथ बनाया है, और कहां इन राक्षसो ने उसे भग का दूसरा स्थान बना लिया है। गुदामैथुन भी बुरी चाट है, इससे सबसे अधिक नुकसान तो यह होता है। स्त्रियां जिन्हे प्रकृति ने स्वभाव से ही कोमल बनाया है, अपने पुरुषो की इस शैतानी से बहुत खिन्न होती है। प्रायः ऐसे पुरुष अपनी स्त्री के भी पास नही जाते।

इधर पति देव चटुक आराधना में मस्त हैं तो उधर पत्नी देवी की किसी और देव से आंखे मिल जाती है। बस, व्यभिचार का बाजार जोरों से होता है। कच्चे २ फूल मसल दिये जाते हैं। जहाँ हस्तमैथुन से केवल एक ही आदमी के जीवन का सर्व नाश होता है: वहाँ गुदामैथुन से, दो जीव खाकमें मिलतेहैं प्रकृतिकेसबसे सुन्दर पदार्थ कोमल बालक इससे बुरी तरह घायल होता है, उसकी गुदा में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। जो आदमी गुदा मैथुन करताहै, वह स्त्री के काम का तो रहता नहीं, गुदा की हड्डियो से टकराने से, लिंगकी नसे कमजोर हो जाती हैं, बाज २ वक्त जब लिङ्ग में मल भर जाता है पथरी और गर्मी जैसे भयकर रोग हो जाते हैं, बराबर गन्दे स्थान में जाने से लिङ्ग की चैतन्यता जाती रहती है, दूषित कीटाणु लिङ्गपथ से जाकर वीर्य के कीटाणुओं को घायल कर देते हैं। ऐसे मनुष्य की आँखें सदा लालऔर चढ़ी हुई होती हैं। माथे में सलवट पड जाती हैं।

जो आदमी गुदामैथुन करता है। उसके लिये यह जरूरी है कि, नित नये २ बालकों को अपने फदे में फसावे ऐसे शैतान समाज की जड पर कुल्हाड़े से वार करते हैं। अच्छा तो, गुदा मैथुन करने वाले को यह दड मिलता है, कि उसे सूजाक पथरी आदि भयंकर रोग होते हैं और उसके वीर्य के कीटाणु मर जातेहैं, ऐसे पुरुष किसी भी हालत में सन्तान पैदा नही कर सकते। वल्कि जिस स्त्री के साथ सभोग करते है, उसकी योनि को भी प्रद रादि रोगो से दूषित बना देते हैं। डाक्टरो ने यह खोज के साथ सिद्ध किया है, कि गुदामैथुन करने बाला अपनी दिमागी ताकत को खो बैठता है। वह अपने आपे में नहीं रहता। इधर जो गुदा मैथुन करता है। उसकी तो यह हालत है और जो गुदामैथुन कराता है, जिससे ये राक्षस गुदा मैथुन करते हैं, उसकी भी हालत सुनिये।

प्रकृति ने गुदा को मल निकालने का रास्ता बनाया है। मैथुन करने का स्थान नहीं, गुदा के ठीक थोड़े ऊपर शरीरमें तीन वलि होती है। जब लिङ्ग इन वलियों से टकराकर भीतर जाता है, तब प्रथम तो इनमें बड़ी वेदना होती है, जब ये स्थान से हटती हैं या चोट होती है तब इनमें से खून गिरने लगता है। पहिले तो तीनों वलि बेकार हो जाती है। जब इनमें दूषित खून इकट्ठा होजाता है, तब बवासीर रोग पैदा हो जाता है, गुदा में खाज चलने लगती है। त्रिवलि से आगे चलकर, 'मलाशय' टट्टी का स्थान है। यह कई मांसपेशियों से बना हुआ है। लिङ्ग जब आगे चलकर मला शय की पेशियों में टकराता है, तो वे पेशियां ढीली पड जाती हैं। फिर वह कच्चे मल को ही बाहर निकालने लगती है, त्रिवली के खराब होजाने से तो, बवासीर हुआ था, अब मलाशय के खराब होने से, अतिसार हो गया। दो रोग ये हो गये। जिन्दगी का नाश करने के लिये ये ही बहुत हैं, किन्तु इतना नहीं, कुछ और भी होता है, मलाशय के पास ही वस्ति और मूत्राशय है, जब इन दोनो पर चोट पहुँचती है। तब इन की भी पेशियां ढीली पड़ जाती हैं। नतीजा यह होता है, कि वह अधिक मूतने लगता है। जो प्रमेह का एक चिन्ह है, मलाशय के पास ही आमाशय है। फिर उस पर भी असर जरूर गिरता है। मतलब यह है, कि शरीर के भीतरी सब स्थानो में खलबली मच जाती है। केवल प्रमेह ही नही, इसके भाई बन्धु कई और रोग भी आ लिपटते हैं।

जो गुदा मैथुन करता है, वह नपुंसक बिल्कुल नामर्द हो जाता है, लिंग से सम्बन्ध रखने वाली नसो पर चोट गिरने से उसकी चैतन्यता कम हो जाती है। धीरे २ वह बिल्कुल नाकाम हो जाता है। वीर्य के मलाशय के पास गिरने से वहां

उसके कीटाणु गिरते हैं। फिर वह कीटाणु शान्त नहीं बैठने, उन्हें ऐसी कोई जगह मिलती नही जो आसन मार के बैठ जांय और वही बैठे २ ही उन्हें खुराक मिलती रहे, फिर वे रेंगने वाले कीटाणु मलाशय के आसपास दौड़ना शुरू करते है। इस तरह रात दिन गुदा में चरमराट बना रहता है। फिर अगर उन कीटाणुओ को उनकी खूराक पुरुष का वीर्य मिलता रहता है, तब तक तो शांति रहते हैं, किंतु खुराक के बन्द होते ही गुदा में कैंची सी चलने लगती है और केवल कैंची चलकर ही शांति नही होती फिर वे कीटाणु धीरे २ आगे बढ़ने की कोशिश करने लगते हैं। इसमें उन्हे सफलता भी मिलती है, आगे जाकर वे फेफड़ो पर भी अपना दूषित प्रभाव डालने है। नतीजा यह होता है। वह शीघ्र मुल्के अदम का टिकिट खरीदता है।

पशु मैथुन

जिनका ध्येय ही विलासिता है, उनकी शांति होने के जब चारो तरफ के रास्ते बन्द हो जाते है तव वे पशुओ से मैथुन करते है। गाय, भैंस, कुतिया, गधी ऐसे जानवरो से वे शैतान फिर अपनी आग ठडी करने का उपाय करते है। अभी तक यह मैथुन केवल पुरुषो मे ही होता है। भारत की सती स्त्रिया अभी इस पाप की छाया से दूर ही हैं। यूरोप मे जितना पुरुष स्त्री मैथुन नही वहां स्त्री पशु मैथुन है। फैशनेबिल लेडियां अपने पालतू कुत्तो से मैथुन करती है। इसके लिये पहले उन्हे कुत्ते को शिक्षित बनाना पड़ता है। जब कुत्ते को अच्छीं तरह शिक्षित बना लेती है, तब उसे अपना मैथुन पति बना लेती है। अदालतो तक मे ऐसे केश चलते है। बड़े २ घरो की लेडियां जज, बारिस्टर, सबकी स्त्रिया और लडकिया अधिकांश— मे ऐसा मैथुन करती है। कहा जाता है कि यूरोपीय मनुष्य समाज में इतना मैथुन नही होता, किन्तु यह सफेद झूंट है। वे फैसनेबिल लेडियां जब कुत्तो से अपनी शान्ति कर लेती है, तब उन्हे पुरुषो की क्या जरूरत ? इस तरह वे अपनी इच्छानुसार मैथुन करती है, उस तरह पतिदेव की इच्छा नही तो, उसकी इच्छा का ख्याल तो करना पड़ता है।

उधर पुरुष भी पशु मैथुन करते है, खैर जो हो पशु मैथुन है सब जगह, चाहे वह हो थोड़ी ही मात्रा में अथवा अधिक मात्रा में। भारतीय मानव समाज आज इतना कामुक हो रहा है कि, वह पशुओ से मैथुन करता है, गोया स्त्रियो का संसार नेस्तनाबूद हो गया हो। हमें कहना चाहिये कि ऐसे लोग पशु ही होते है, वे पुरुष के रूप मे कुत्ते, गधे, और बैल होते है, पशु मैथुन पर उनकी, दो एक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, उनमें इसकी भीषणता का नग्न स्वरूप दिखलाया गया है। किन्तु हम यहाँ केवल संकेत में थोड़ी बातें बतलाये देते है।

पशु और मनुष्य की शरीर रचना में बहुत विभिन्नता है। स्त्री योनि और कुतिया की योनि दोनो बहुत पार्थक्य को लिए हुये हैं। जहां स्त्री की योनि बिलकुल सीधीहै, वहा कुतिया की टेढी और ऊंची नीची। फिर ऐसी अवस्थामें सम्भोग करने पर जो दशा होती है, उसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते है। दुःख है कि ऐसी २ वेहूदा बातो पर भी हमें लिखना पड रहा है, लेखनी रुकजाती है, किन्तु हृदय को कठोर बनाकर लिखना ही पडता है। दयालु पाठक कृपया इसके लिये क्षमा करें। संयत भाषा का प्रयोग करने पर भी, ऐसी बातो का जिक्र आ जाना इस पुस्तक मे अस्वाभाविक नहीं है। जब कि इसमें लिङ्ग और योनि की बीमारियो का जिक्र हो रहा है, तव अगर दूवी

जवान में उनका स्वरूप भी बता दिया जाय तो सहृदय पाठक सम्भवत अपनी भृकुटी टेढ़ी करने की कृपा नही करेंगे।

पशु मैथुन का नतीजा स्पष्ट है, लिङ्ग मोटा पतला हो जाता है, केवल मोटा या पतला नहीं दोनो तरह का मूल में पतला और बीच में मोटा अथवा मूल में मोटा और बीच में पतला होजाना है, वह नीचे को लटक जाता है। अडकोश या तो शिथिल हो जाते हैं या पतले हो जाते है।

एक बार के पशु मैथुन से उतना ही वीर्य निकलता है, जितना कई बार के स्त्री मैथुन में निकलता है। गुदा मैथुन और हस्तमैथुन से जितना नुकसान नही होता, उतना पशु मैथुन से होता है। बस अब केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि पशुमैथुन करने वाला जीवाणु प्रमेह का शिकार हो जाता है।

व्यभिचार

व्यभिचार से भी प्रमेह होता है, ऐसा हम कह आये है। व्यभिचार का अर्थ है, बुरा सम्भोग व्यभिचार रडी के यहा जाने से ही होती हो, सो बात नहीं है, अपनी स्त्री से भी व्यभिचार हो सकता है, व्यभिचार के हम तीन हिस्से कर सकते हैं। (१) वेश्या व्यभिचार, (२) पर स्त्री व्यभिचार, (३) और स्वपत्नी व्यभिचार। पाठक शायद चौंकेगे कि अपनी स्त्री से व्यभिचार कैसे होता है! किन्तु वे घबडाये नही जरा ठढे दिमाग से पढ़े जांय। हां तो पहिला व्यभिचार है, वेश्या व्यभिचार। वेश्याओ को हम रडी कहते है, खानगी कहते चकले वाली कहते हैं, सब्ज परी कहते हैं, और वे ही जाने जो इस विषय के पंडित हैं।

वेश्या व्यभिचार, नैतिक, समाजिक, और धार्मिक तीनो दृष्टियो में बहुत बुरा है, यह महा पाप है। हम केवल आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से ही इस व्यभिचार की निकृष्टता को सिद्ध करना चाहते हैं, समाज में, हर एक सभ्य समाज में, विवाह की प्रथा होती है। विवाह से पति और पत्नी का जीवन एक तागे में बाध दिया जाता है। दोनों परस्पर के सहयोग से समाज की उन्नति कर सकते हैं। सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। सम्भोग मतलब केवल सन्तानोत्पादन है, वासना शान्ति नही जो सम्भोग सन्तानके लिये कहा जाता है, वह प्राकृतिक मैथुन कहा जाता है, इसके विपरीत जिस सम्भोग का उद्देश्य वासना की शान्तिहै, चाहे वह अपनी विवाहिता से ही हो, अप्राकृतिक मैथुन व्यभिचार कहलाता है, बस व्यभिचार का सच्चा अर्थ भी यही है।

वेश्याए, न कन्याहैं, और न विवाहिता, ये समाज की स्वरूपा हैं, यह, वह दीपक की लौ है, जिस पर समाज के बिगड़े दिल पतंगे जल मरने के लिये आते हैं वेश्याए अपने रूप की दुकान लगा देतीहैं या अपने सौन्दर्य की आग बिछा देती हैं, मनुष्य आते हैं और उस आग मे अपना सर्वस्व स्वाहा कर जाते हैं। आरोग्य शास्त्रियो ने निश्चय कियाहै वेश्या व्यभिचारसे पुरुषको सूजाक गर्मी प्रमेह जैसे भयकर अनेक रोग पैदा होते हैं। जो पुरुष अपनी धर्मपत्नी को छोडकररडियो के तलवे चाटने जाते है व उनकी भीषण दशा की कल्पना हम सहज ही मे कर सकते हैं। कहा जा सकता है कि, ऐसे पुरुषो की स्त्रियां भी व्यभिचारिणी हो जाती हैं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है।

रडियां एक पुरुष से नही, कई पुरुषो से व्यभिचार करतीं है, उनकी योनि मे कई तरह का वीर्य गिरता है, इससे वह दूषित हो जातीहै, फिर जो पुरुष उनसे सम्भोग करता है, वह भी लिंगेन्द्रिय की बीमारी से पीड़ित हो जाता है। समाज ऐसे

पुरुषो पर थूकता है, फिर भी वे इससे बाज नही आते। बड़े बड़े पगड़े धारी बड़े बड़े नेता वेश्या-व्यभिचार में लिप्त हैं। अफसोस ? इतना भारी पतन ? ऐसे पुरुष स्वयं रोगी बनकर फिर कई स्त्रियो को रोगिणी बनातेहैं, धीरे २ यह रोग वहुत फैल जाता है, ऐसे पुरुष कानून के द्वारा सूली पर लटकाने के योग्य हैं, ये समाज के दूषित कीड़े हैं, ये व्यभिचारियो के औलाद खुद व्यभिचारी हैं।

वेश्या व्यभिचार का तो यह नतीजा हुआ, अब पर स्त्री व्यभिचार का भी हाल सुनिये। हमें दुःख है कि, यहां केवल आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से ही इन विषयो पर विचार करना पड रहा है, नैतिक सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से यहां कुछ भी नहीं लिखा जा सकता।

पर स्त्री व्यभिचार, यानी दूसरे की स्त्रियो से व्यभिचार। रंडियां किसी की भी नही होती, वे अपनी इच्छा से अपने रूप की कीमत कर सकती हैं। किंतु ये स्त्रियां, जिनसे ऐसे गंधे, व्यभिचार करते हैं, किसी न किसी की स्त्री अवश्य होती हैं। ये स्त्रियां कह नही सकती, पुरुषो के चंगुलो में फंसकर न जाने किन २ कष्टो का अनुभव करती हैं। पर स्त्री व्यभिचार, दूसरे की स्त्रियो से, मैथुन करना नैतिक दृष्टि से तो पाप है ही, स्वास्थ्य शास्त्र की दृष्टि से घातक ही है। जहां रंडियो से मनुष्य बिना खौफ के व्यभिचार कर सकता है, वहां दूसरे की स्त्रियो से व्यभिचार करने की उसे हर तरह से शंकित और त्रस्त रहना पडता है। ऐसे मनुष्य की उस कुत्ते जैसी हालत होती है, जो मालिकिन की आंख बचा कर रसोईघर में से रोटी उडाने जाता है, उसे पग पग पर मालिकिन के आने की सम्भावना रहती है, इससे वह जल्दी ही जैसी मिले वैसी ही, रोटी उठा लाता है और अगर कभी मालिकिन का सामना होगया तो वेचारे की हड्डियां गर्म होती हैं। ठीक उसी तरह ये कुत्ते व्यभिचार करते हैं, जल्दी २ व्यभिचार करने से, मन के डरे रहने से, ये नामर्द हो जाते हैं, इनके मन की उत्तेजना शक्ति नष्ट हो जाती है इतने ही से समझा जा सकता है कि, वह कैसे प्रमेह के पात्र बन जाते हैं।

अब रहा स्वपत्नी व्यभिचार, अपनी स्त्री से व्यभिचार। इस व्यभिचार में और वेश्या व्यभिचार में बहुत अन्तर है। आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से तो कोई ऐसा विशेष अन्तर नहीं, किन्तु नैतिक सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से बहुत अन्तर है। अपनी स्त्री, विवाहिता है, वह धर्मपत्नी, हम उससे चाहे जितना सम्भोग कर सकते हैं, ऐसे विचार, इस बीसवीं सदी में उन्ही के हृदय में उठते हैं, जो अपनी अकल के चने खरीद लेते हैं। माना कि वह पत्नी है, विवाहिता है, किन्तु इसके अर्थ तो यह नहीं होते कि, आप उससे दिन रात मैथुन करते रहें। वह आपकी पत्नी तभी तक है, जब तक आप प्राकृतिक नियमो का पालन करते हुये उसके साथ व्यवहार करें, जब वासना के वशीभूत होकर, आप उसे केवल काम करने की मशीन बनाना चाहें तो आपका उस पर कोई नैतिक अधिकार नही है। वह आप की धर्मपत्नी है, मैथुन पत्नी है, धर्म पति की तरह ही आप उस के साथ व्यवहार कर सकते हैं, जब स्वयं अधर्म पति बन जाय फिर उसे भी लाजिमी है कि आप की इच्छियो का विरोध करे।

रात दिन अनियमित रूप से मैथुन करना ही व्यभिचार है, स्त्री की इच्छा के बिना, जब उससे सम्भोग किया जाता है तब, वह बलात्कार समझा जाता है। यूरोप में तो इस पर बड़े घर की हवा भी खानी पड़ती है। इस व्यभिचार का नतीजा यह होता है कि, स्त्री खिन्न हो जाती है, उसकी

उत्तेजना शक्ति नष्ट हो जाती है वह अपने पतिसे नफरत करने लग जाती है, आपकी वासुकता को देख कर वह भीतर ही भीतर कुढती है। केवल इतना ही नही, इस तरह उसका गर्भाशय भी खराब हो जाता है। उसका रजकोप विगड जाता है, मासिकधर्म नही होता।

सन्तान पैदा करने की, उसकी सबसे कोमल इच्छा उसके हृदय में खाक हो जाती है। ऐसे व्यभिचारी अपने आशाओं के बाग को उजाडते ही है, अपनी स्त्री की इच्छायो को भी घायल कर देते है, निरन्तर मैथुन करने का भयकर परिणाम यह होता है, कि वीर्य वहुत पतला हो जाता है, स्तम्भन शक्ति नही रहती, शरीर के अन्दर ताकत नही रहती। बराबर वीर्य निकलने रहनेका नतीजा आखिर यह होता है कि, ऐसे शरीर में वीर्य का अभाव हो जाता है, और नाना प्रकार के रोग पैदा हो जाते है। उन रोगो मे एक रोग प्रमेह भी माना जा सकता है।

मैथुन ८ तरह का होता है

दशन स्पर्शन केलिः प्रेक्षण गुह्यभाषणम्।

दूषित विचारो से प्रभावित होकर किसी सुन्दरी को देखना भी मैथुन होता है। देखना कोई पाप नही है, हम सच्ची आखो से, पवित्र विचारो से सृष्टि के सौंदर्य्य को देख सकते हैं, किंतु खराब दृष्टि से देखना मैथुन होता है। ऐसा मैथुन आजकल सबसे अधिक होता है, देखते ही तबियत मचल उठती है, दिमाग गर्म हो जाता है, नतीजा यह होता है कि बीर्य बाहिनी नसे गर्म होकर बीर्य को, या तो स्वप्न दोप से, या मूत्र पथ से वाहर निकाल देता है। इस तरह अगर यह दर्शन व्यभिचार जारी रहे तो, उसका भयकर परिणाम सहज ही में समझा जा सकता है।

स्पर्शन करना भी एक मैथुन है, इससे शरीर में विजली सी दौड जाती है। नसें फड़क उठती है, और वीर्य निकल जाता है। स्पर्श व्यभिचार यद्यपि विशेष नहीं होता है, फिर भी नहीं कहा जा सकता कि इसका नामोनिशान ही नहीं है। इसी तरह और मैथुनों को भी समझ लीजिये, हर एक का चरम परिणाम यह होता है कि मनुष्य प्रमेह रोग का, शिकार हो जाता है। अस्तु,

यह तो हुआ, जहाँतक हमारा अनुमान दौड़ता है, हमारा विश्वास है कि आज कल इन्हीं कारणों से अधिक प्रमेह होता है। सुश्रुत के जो कारण यहां बतलाये गये हैं, उन पर भी सहृदय पाठक विचार कर सकते है, किंतु उन कारणों में शायद ही सब कारण इस समय घटित होते हों, व्यभिचार, हस्तमैथुन, गुदामैथुन, खासतौरसे इन्हीं से आजकल प्रमेह पैदा होना है। खाने-पीने की गड़बड़ी भी यद्यपि आजकल कम नहीं होती, किंतु उसे विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। आराम पसन्द होने से प्रमेह केवल, पूंजीपतियो को ही हो सकता है, रात दिन लेटने के लिये गद्दी तकिये उन्हे ही मिल सकते हैं, सर्व साधारण को नहीं। अगर कहे तो कोई आश्चर्य नही कि आजकल के सद् गृहस्थो को जो प्रमेह होता हैं, उसका कारण स्वपत्नी व्यभिचार है, जो बद् गृहस्थ हैं वेश्या व्यभिचार करते हैं, गुदामैथुन कर सकते हैं, उन्हे इन्हीं कारणो से होता है। कालेज के लड़को को हस्तमैथुन से होताहै, और शहरी शोहदो को गुदा मैथुन से।

आशा है, इतना लिख देने पर पाठको की अभिलाषा किसी अश में जाकर पूर्ण हो जायगी। ऐसे विषयो पर पोथे के पोथे लिखे जा सकते हैं, किन्तु यह विषय अश्लील होने के साथ २ ही सहज में ही समझने के योग्य नही होते। अब आगे चल कर प्रमेह के रग रूप की बिवेचना की जावेगी।

अब यहां हम प्रमेह के चिन्हों को लिख देना चाहते हैं। प्रमेह २० तरह के होते हैं। उन पर विस्तृत विवेचन कुछ आगे चलकर किया जायगा, इससे पहिले प्रमेह के एक साधारण चिह्न को तथा प्रमेह में होने वाले दोष, दूष्यों को बतला देना चाहते हैं।

प्रमेह का सामान्य चिह्न

प्रमेह रोग जिस पुरुष को होताहै, वह अधिक मूतता है। बार २ मूतता है। उसका पेशाब सफेद रंग का होता है, पीले रंग का होता है। अथवा और किसी रंग का यह रोग मूत्र की नली से सम्बन्ध रखता है, मूत्राशय से उतर कर बार बार पेशाब मूत्र नली द्वारा बाहर निकलता है, इस लिये स्वभाव से ही शरीर में थकावट हो जाती है, बाद में जैसा प्रमेह हो वैसे ही चिह्न हो जाते हैं। अगर कफ प्रमेह होगा तो, उसके लक्षण उससे मिल जांयगे, वात प्रमेह होगा तो, उसमें प्रमेह की प्रारम्भिक अवस्था यही होती है। प्रमेह में शरीर की धातु पेशाब के साथ निकलती है। इस लिये मनुष्य की भारी स्थिति खराब हो जातीहै। आमाशय, पक्वाशय सबके सब उच्छृङ्खल हो उठते हैं।

दोष और दूष्य

जो दूसरों को दूषित करते हैं, वे दोष कहलाते हैं। हरएक रोग में दोष और दूष्य का होना स्वाभाविक है। शरीर में दोष तीन हैं, 'वात, पित्त, कफ जब इनमें कोई एकभी विकृत कुपित होजाता है, तब वह दूसरी चीजो को दूषित करने लगता है फिर यह तो सहज में ही समझा जा सकता है, प्रमेह में दोष तीन हैं। वात, पित्त और कफ ये तीनों ही एक रोग में बसा आदि को दूषित करते हैं, जो दूषित होता है, जिसको दोष दूषित करते हैं, वह दूष्य कहलाता है।

इस रोग में रस, रक्त, मांस, मेद, चरबी, मज्जा, लसीका, वीर्य और ओज ये दूष्य हैं इन्हीं को वे तीनो दोष दूषित करते हैं, बादमें क्या होता है सो भी सुनिये।

"अपरिपक्वा एव वात पित्त श्लेष्माणो यदा मेदसासह एकत्र मुपेत्यमूत्रवाहिस्रोतांसि, अनुसृत्य अधोगत्वा बस्तेमुखमाश्रित्य निर्भिद्यन्ते तदाप्रमेहां जनयन्ति"। (सु० नि० स्था०)

अपरिपक्व ही ये दोष जब मेद धातु के साथ मिल जाते हैं, तब मूत्रवाही शिराओं द्वारा बस्ति में जाकर मूत्रपथ से बाहर निकलने लगते हैं, मतलब यह है कि शरीरके तत्व भूत, रस, रक्त आदि धातु दोषो से दूषित होकर घुल २ कर पेशावद्वारा निकलने लगते हैं। इससे शरीर एक दम फीका पड़ जाता है।

प्रमेह के पूर्वरूप

पूर्वरूप उसे कहते हैं जो रोग के पहिले हो, रोग पैदा होने के पहिले जो चिह्न होते हैं उन्हे ही पूर्वरूप कहतेहैं। बुखार होने से पहिले जैसे शरीर गर्म होने लगता है। पेट में दर्द होने से पहिले जैसे आमाशय कठोर होने लगता है। उसी तरह के चिह्न प्रमेह रोग से पहिले भी होते है। पूर्वरूप देखकर ही किसी भी रोग का अनुमान सहज में ही किया जा सकता है।

सुश्रुत के निदान स्थान में लिखा है।

"तेषान्तुपूर्वरूपाणि, हस्तपादतल दाह. स्निग्ध पिच्छिल गुरुता, गात्राणां मधुर शुक्र मूत्रता तन्द्रा सादः पिपासा, दुर्गन्धश्च, श्वासः, तालु गल जिह्वा दन्तेषु मलोत्पत्तिः, जटिली भावः केशानां वृद्धिश्च नखाना। तत्राविल प्रभूत मूत्रलक्षणाः सर्व एव प्रमेहाः सर्वं एव सर्व दोष समुत्थाः सह पिडिकाभिः

प्रमेह के होने के पूर्वरूप ये हैं। हथेली और तलवे गरम रहने लगते हैं। शरीर में कुछ चिकना

पन गाढापन और भारीपन, होने लगना है। मूत्र मधुर और मस्द होने लगना है आंखे झपी सी रहने लगती हैं, शरीर में थकावट भी मालुम होने लगती है। प्यास अधिक लगने लगनी है। सांस में वदवू आने लगती है और तालु, गला जीभ, दांत इनमें मैल जमने लगता है, बालमैले और उलझे हुये से होने लगते हैं उंगलियों के नाखून जल्दी २ बढने लगते हैं। पेशाव का गंदला और अधिक होना ये प्रमेह के खास चिह्न हैं, इसमें फुन्सियां भी होने ल .ती हैं।

इन चिह्नो को देखकर आप समझ सकते हैं, कि प्रमेह राक्षस अपना जाल फैला रहा है। घन-घोर वृष्टि के आने से पहिले जैसे वायु का तूफान उठने लगता है ठीक उसी तरह प्रमेह के पहिले ये लक्षण पैदा होने लगते हैं। यह जरूरी नही कि सारे चिह्न एक साथ ही पैदा हो जांय, और एक ही रोगी को हो जांय, इन चिह्नो में से २-४ चिह्न ही प्रमेह के परिचायक होने लगने हैं।

प्रमेह के भेद

प्रमेह ३ तरह के होतेहैं, यह हम बता आये हैं उन भेदो पर ही हम अब विस्तार से विचार करना चाहते हैं।

(१) कफज प्रमेह।

(२) पित्तज प्रमेह।

(३) वातज प्रमेह।

इनमें भी वातज प्रमेह ४ तरह के होते हैं, पित्तज ६ तरह के, और कफज १० तरह के, ४+६+१० कुल २० प्रकार के प्रमेह होते हैं। अब कफादि के भेद से ही उन पर विचार किया जायगा।

१— कफज प्रमेह

कफ से पैदा होने वाले प्रमेह १० तरह के होते हैं। वात, पित्त और मेद के साथ जब कफ मिल जाता है, तब ये १० प्रमेह पैदा होते हैं। अथवा यो कहना चाहिये कि मूत्राशय में रहने वाली वसा को, मांस को, तथा क्लेद को, जब कफ आकर दूषित कर देता है, तब कफज १० प्रमेह पैदा होते हैं, जो भी हो, कफ के विकार से ही ये १० प्रमेह पैदा होते हैं। जो आदमी मीठी चीजो को ज्यादा खाते हैं, (क्योकि इनसे कफ पैदा होता है।) अधिक मैथुन करते हैं, खांसी आदि रोग से पीड़ित हो जाते हैं, उनको कफज प्रमेह पैदा होता है। सब तरह के पदार्थ जरूर खाना चाहिये, मगर इसकी भी कोई सीमा होती है, सीमा का उलघन होते ही सब कार्य गड़बड़ हो जाते हैं।

कफज प्रमेह के भेद

(१) उदक प्रमेह, (२) इक्षुप्रमेह, (३) सांद्रप्रमेह, (४) सुरा प्रमेह, (५) पिष्ट प्रमेह, (६) शुक्रप्रमेह, (७) सिकता प्रमेह, (८) शीत प्रमेह, (९) शनै. प्रमेह, (१०) लालाप्रमेह। ये १० तरह के कफ़ज प्रमेह होते हैं। जैसे २ इनके नाम हैं, वैसे २ ही इनके लक्षण होते हैं। इस पर भी यहां कुछ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है

(१) उदक प्रमेह *Jeiabetes*

प्राय. नाम के अनुसार ही रोग के लक्षण हुआ करते हैं। उदक नाम है जल का जब उदक प्रमेह होता है तब मनुष्य का पेशाव पानी जैसा होता है, उदक प्रमेही मनुष्य का मूत्र साफ, ठंडा अधिक और निर्गन्ध होता है। पेशाव के अन्दर जब ऐसे चिह्न पैदा होजांय तब आप सहज में ही समझ सकते हैं कि उदक प्रमेह हुआ है। इस प्रमेह में खास बात यह है कि मनुष्य बहुत पेशाव करता है।

(२) इक्षु प्रमेह

जिस मनुष्य को इक्षुप्रमेह होता है, उसका पेशाव गन्ने के रस जैसा होता है, स्वाद में मीठा

होता है। जिस जगह इक्षु प्रमेही मनुष्य पेशाब करता है वहां चीटियां आ जाती हैं। चीटियो का आना साधारण रूप से मधुमेह में समझा जाता है और ऐसा देखकर ऐसे प्रमेही को लोग मधुमेही करार दे देते है, किन्तु ऐसा नही है गन्ने के रस पर जैसे चीटियां आ जाती हैं वैसे ही इसके पेशाब पर भी भेद, इतना ही है कि मधुमेही के पेशाब मे शर्करा आने लगती है, इसके में नही स्वाद और रूप रंग में भी दोनों के अन्दर बहुत पार्थक्य है।

(३) सान्द्र प्रमेह

इस प्रमेह के रोगी का पेशाब, रात के अन्दर किसी बर्तन में रख देने से गाढ़ा हो जाताहै। ऐसा भी होता है कि नीचे से देखने से पेशाब गदला दिखाई देता है।

सान्द्रीभवेत्पयु पित सान्द्रमेहेन मेहति।

(४) सुरा प्रमेह

सुरा नाम है शराब का, जैसी शराब होती है वैसा ही सुरामेही रोगी का पेशाब होता है। शराब जैसे ऊपर से साफ और नीचे से गाढी होती, है ठीक वैसे ही इस रोगी का पेशाव ऊपर से शराब जैसे रंग का साफ और नीचे से गाढ़ा होजाता है। ऐसे रोगी का पेशाव किसी वर्तन में रख देने पर, वह नीचे से गाढा और ऊपर से पतला दिखाई देगा।

(५) पिष्ट प्रमेह

जिस मनुष्य को पिष्ट प्रमेह होता है, वह ज्यादा पेशाव करता है और पेशाव करते समय उसके रोमाच होजाता है। पेशाब चावलो के धोवन के समान सफेद होता है।

(६) शुक्र प्रमेह

जिस मनुष्य को शुक्र प्रमेह होजाता है, उसका पेशाव, वीर्य जैसे रग का होता है। उसमें वीर्य मिला रहता है इसीलिये किसी अश में पेशाव में कुछ गाढ़ापन रहता है, बदवू आती है।

(७) सिकता प्रमेह

बालू के छोटे २ कणो को सिकता कहते हैं। इस रोगी के पेशाव में, रेती के समान छोटे २ कफ के कण गिरते हैं, कभी २ पेशाब करते समय दर्द भी होने लगता है, जब यह कण किसी कारण बस लिंगेन्द्रिय के अन्दर चिपट जाते हैं, तब बड़ी वेदना होती है।

(८) शीत प्रमेह

शीत प्रमेही मनुष्य बारबार, मीठा और ठडा मूतता है। इस रोगी का पेशाव ठडा होता है। पेशाब करते समय रोगी, शीत के मारे थरथरा उठता है।

(९) शनै प्रमेह

जिस मनुष्य को शनैः प्रमेह होता है, वह धीरे धीरे पेशाब करता है, उसका पेशाब ठहर २ कर आता है। इसमें पीड़ा नहीं होती, केवल मूत्र धीरे २ उतरता है। ऐसा रोगी बहुत देर तक पेशाब करता रहता है।

(१०) लालाप्रमेह

इस प्रमेह के अन्दर जो पेशाव होता है वह लार के तांते के समान होता है, तारवाला और चिकना होता है। मूत्र के साथ जब वीर्य मिल जाता है तब उसके ताते से बध जाते हैं।

कफ से पैदा होने वाले ये दस प्रमेह है। इनके अलग अलग चिह्न भी यहां बता दिये गये है। किसी रोगी के पेशाब की परीक्षा करके यह सहज में ही निश्चय किया जा सकता है कि, इसको यह प्रमेह है। इनकी चिकित्सा आगे चल कर लिखी जायगी। अब पित्त से पैदा होने वाले प्रमेहो को भी देखिये।

पित्तज प्रमेह

अधिक गर्म, चरपरे पदार्थों के खाने से जब पित्त कुपित हो जाता है तब वह कफादि धातुओं का क्षय कर देता है, उनके दूषित होने पर पित्तज प्रमेह पैदा होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, कफ, वायु रुधिर, और मेद के साथ जब पित्त मिल जाता है तब ये प्रमेह पैदा होते है। पित्त से पैदा होने वाले ६ तरह के प्रमेह होते हैं।

पित्तज प्रमेह के ६ भेद

(१) क्षार प्रमेह, (२) नील प्रमेह, (३) काल प्रमेह, (४) हारिद्र प्रमेह, (५) मजिष्ठ प्रमेह, (६) रक्त प्रमेह।

(१) क्षार प्रमेह

जिसे क्षार प्रमेह होता है, उसका पेशाब खारी जल के जैसा होता है, वैसे ही स्पर्श, वैसा ही रंग, वैसी ही गन्ध, और वैसा ही रस, क्षार के अर्थ है खारी।

(२) नील प्रमेह

इस प्रमेह से पीड़ित मनुष्य का पेशाब नीले रंग का होता है, कुछ अधिक मूतता है जिस जगह पेशाब करता है वहां नीले रंग का दाग सा पड़ जाता है, किन्तु वह स्थिर नहीं रहता।

(३) काल प्रमेह

जिस तरह की काली स्याही होती है, ठीक वैसा ही इस रोगी का पेशाब होता है, देखने से ही जी खराब होने लगता है।

(४) हरिद्रा प्रमेह

हरिद्रा कहते है हल्दी को। इस रोगी का पेशाब पित्त से मिला होने के कारण हल्दी के रंग जैसा होता है, पेशाब में जलन होती है, और वह तीखा होता है।

(५) माजिष्ठ प्रमेह

माजिष्ट नाम है मजीठ का। इस रोगी का पेशाब बदबू वाला होता है, और उसका रंग मंजीठ के जैसा होता है।

(६) रक्त प्रमेह

इस रोगी का पेशाब, खून जैसा लाल, गर्म, खारी, जलन युक्त, और बदबू वाला होता है। पेशाब करते समय बड़ी वेदना होती है।

ये हैं पित्त प्रमेह हैं। अब वात प्रमेहों का हाल सुनिये।

वातज प्रमेह

वायु से पैदा होने वाले प्रमेह ४ तरह के होते हैं। शरीर मे ५ तरह का वायु है, जो भिन्न-भिन्न स्थानो में रहता है। वायु ही शरीर के कल पुर्जों का सचालक है यह सब धातुओ के हाथ पकड़ कर उन्हे स्थानान्तरमे लेजाता है। वायु के सहारा दिये बिना कोई भी कहीं नही जा सकता, इसलिये जब वायु बिगड उठताहै तब वह असाध्य सा हो जाता है। लिखा है—

पित्त पंगु, कफः पंगु पंगवो मल धातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।

(शार्ङ्गधर)

पित्त लगडा है, कफ लगडा है, और मल धातु भी लगड़े है, अपने पैरो से उठकर नहीं चल सकते। मेघ को जैसे वायु इधर उधर ले जाता है उसी तरह इन्हे भी शरीर मे इधर उधर पहुँचाता है। वायु सम्बन्धी रोग-जिन में वायु प्रधान होता है, भयकर और कष्टसाध्य होते है। आयुर्वेद शास्त्रियो का विश्वास है कि, वायु जनित प्रमेह असाध्य होते हैं। असाध्य चाहे न भी हो, क्योकि इनकी भी चिकित्सा लिखी है, कष्टसाध्य जरूर है और योग्य चिकित्सक ही इनका इलाज कर सकता है। हां तो,कफ पित्त, मज्जा और मेद के साथ जब वायु मिल जाता है, तब ये प्रमेह पैदा होते है। खुलासा यो समझिये, कि जब शरीर मे कफ और

पित्त क्षीण हो जाते हैं तब वायुकुपित हो उठता है, और फिर वह बसा, मज्जा, लसीका, और ओज, इनको खींचकर पेशाब की थैली पर ला गेरता है, फिर वे पेशाब द्वारा शरीर के बाहर निकल जाते हैं।

बातजप्रमेह के ४ भेद

वायु से पैदा होने वाले प्रमेह चार तरह के होते हैं।

(१) वसा प्रमेह।

(२) मज्जा प्रमेह।

(३) क्षौद्र प्रमेह।

(४) हस्ति प्रमेह।

(१) वसा प्रमेह

वसा नाम है चर्बी का। यह प्रमेह जिस मनुष्य को होता है, उसका पेशाब चर्बी के रंग जैसा होता है, और उसमें चर्बी मिली हुई रहती है।

(२) मज्जा प्रमेह

इसका रोगी जब पेशाब करता है तब उसके पेशाब की रंगत मज्जा जैसी होती है, और अणुवीक्षण यन्त्र से देखने पर उसमें, मज्जा मिली हुई दिखाई देती है।

(३) 'क्षौद्रप्रमेह मधुमेह'

क्षौद्र नाम है शहद का मधुका। इसलिये इसको मधुमेह भी कहते है। जिस मनुष्य को यह प्रमेह हो जाता है बस समझ लीजिये, उसके लिये नरक में सीट रिजर्व हो गई। इस रोगी का पेशाब कसैला, मीठा, रूखा और शहद के रंग जैसा होता है। जिस जगह यह पेशाब करता है वहाँ फौरन चीटियाँ आ बैठती है।

(४) हस्ति प्रमेह

जिसको यह रोग होता है, वह ठीक हाथी की तरह पेशाब करता है। इसका पेशाब देखने पर सहज में ही कहा जा सकता है कि यह हाथी का पेशाब है। यह मतवाले हाथी की तरह रुक २ कर बार २ पेशाब करता है। उनका रंग हाथी के मद जैसा होता है, और पेशाब में तार से भी निकलने लगते हैं।

ये २० तरह के प्रमेह होते है। इन लक्षणो को देखने से कैसे भी प्रमेह की जांच सहज में ही की जासकती है। ठीक तौर से जांच होने के बाद बिना किसी डाक्टर बैद्य की सहायता के उसका इलाज किया जा सकता है। सबसे प्रधान रोग का निदान है। सामान्य रूप से प्रमेह के तीन भेद है। वातज, पित्तज, और कफज, बाद में जाके उनके २० भेद हो जाते हैं। उनके लक्षणो से तो रोग की जांच की जा सकती ही है, किन्तु एक उपाय और है, जिससे समझा जा सकता है, कि यह प्रमेह कफ के दूषित होने से हुआ है. अथवा पित्त के या वायु के। इन तीनो के अलग २ उपद्रव भी होते है, तूफान आने से जैसे आंधी और पानी भी आते है, उसी तरह किसी एक के द्वारा प्रमेह होने पर उनके उपद्रव भी होते है। उन उपद्रवो का उल्लेख करदेना भी हम यहां आवश्यक समझते हैं।

कफ प्रमेह के उपद्रव

अविपाकोऽरुचिश्छर्दि निद्राकासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहाना कफ जन्मनाम् ॥

(भा० प्र०)

अगर प्रमेह कफ जनित होगा तो, अन्न का परिपाक ठीक नही होगा, अरुचि पैदा हो जायगी, वमन होने लगती है, नीद खूब आने लगती है; खासी होने लगती है, और जल्द २ जुकाम होने लगता है। इन छै उपद्रवो के अङ्गभूत और भी उपद्रव हो सकते हैं। परिपाक न होने की बजह से पेट का दुखना, खांसी से धीरे २ क्षय होना, जुकाम से सर में दर्द होना। अगर कोई मनुष्य,

जिसे प्रमेह हो, और वह बदहजमी की शिकायत करता हो; खूब सोता हो वमन करता हो, खांसता हो, तो आप समझ लीजिये कि इसका प्रमेह कफ से पैदा हुआ है।

पित्त प्रमेहो के उपद्रव

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणाज्वरः।
दाहस्तृष्णाक्लमो मूर्च्छा विड्भेदः पित्त जन्मनाम

पित्त से पैदा हुये प्रमेह में मूत्राशय में शूल सा उठता है, लिंग में चीस चलती है, पोते फटने लग जाते हैं, ज्वर कभी होने लगता है, प्यास खूब लगती है, दाह होता है. खट्टी डकारें आने लगती हैं, और दस्त पतला होने लगता है। इन उपद्रवो के साथ २ और भी उपद्रव हो सकते हैं।

बात प्रमेहो के उपद्रव

वात जानामुदावर्त. कम्प हृत् गृहलोलताः।
शूलमुन्निद्रताशोषः श्वास कासश्च जायते॥

वायु से प्रमेह पैदा होते है तब पेट फूलने लगता है, कपकपी होने लगती है, हृदय का वेग ठीक नही रहता, कभी रुकना और कभी जोर से धड़कन शूल उठने लगती है, नींद नही आती शोष, सांस और खांसी हो जाती है।

इन उपद्रवो का समुद्भव केवल प्रमेह रोग में ही होता हो, सो बात नही है और रोगो में भी ऐसे २ उपद्रव हो जाया करते है और यह भी आवश्यक नही कि एक ही आदमी के सारे उपद्रव हो हा कुछ २ जरूर दिखलाई देते है। अब आगे चलकर इनकी साध्यासाध्यता परभी विचारकरना जरूरी है।

कफ से पैदा होने वाले प्रमेह सहज में ही आराम हो जाते हैं, पित्त से होने वाले कष्ट से और देर में होते हैं। किंतु वातज प्रमेह असाध्य होते हैं, उनके लिये कितनी ही देर से चिकित्साकी जाय, करना कराना व्यर्थ है, यह आयुर्वेदशास्त्रियो का साधारण विश्वास है। ऐसा क्यो है और क्या यह सच है, यह भी बतलाया जायगा। जहां तक हो सके प्रमेह का पैदा होने के साथ ही उन्मूलन करदेना चाहिये, उसे शरीर में रहने के लिये थोड़ा सा समय भी देना अपने स्वास्थ्य का सर्व नाश करना है। देर तक शरीर मे रहने के कारण, उचित चिकित्सा के न होने के कारण सब प्रमेह मधुमेह में परिवर्तित हो जाते हैं, जो असाध्य है मधुमेह होने के कारण पेशाव में शर्करा आने लगती है, चीटियां बैठने लगती है, जिसकी चिकित्सा केवल कठिन हीं नही किसी अंश में असम्भव भी है।

प्रमेह के अन्दर प्रमेह फुन्सियां भी होती है, इन फुन्सियो पर भी आगे चल कर कुछ लिखा जायगा।

कफ प्रमेह साध्य है

यह हम बता चुके हैं, अब बताना यह है कि वह साध्य क्यो है ? बात यह है कि कफ से पैदा होने वाले प्रमेह. मेद आदि के विकृत होने से होते है, कफ के अधिक या कुपित होने पर होते है, इनके अन्दर कोई वैषम्य नही होता। फिर ये केवल कफ को ठीक करने पर ही शान्त हो जाते है, इनके अन्दर न किसी एक को घटाना पडता है और न किसी को बढाना, इसलिये कुछ काठिन्य नही होता है, जहा पित्तज प्रमेह कफ आदि सौम्य धातुओ के क्षय होने पर होते हैं, वहा यह केवल मेद आदि के दूषित होने से ही होते हैं।

पित्त प्रमेह कष्ट साध्य है

कष्टसाध्य के मानी होते हैं, याप्य, यानी औषध के प्रभाव से प्रशमन, जब तक शरीर में औषध का प्रभाव रहेगा तब तक तो वे चुपचाप पड़े रहेंगे, किन्तु जहां कोई गड़बड़ हुई वे फिर

सचेत हो जाते हैं, पित्तज प्रमेह जब होते है, जब कफ जैसी सौम्य धातुओ का क्षय हो जाता है, मेद आदि दूषित हो जाते है। जहा कफज प्रमेहो में कुछ वैषम्य नही, वहां यहां कुछ साम्य नही, वैषम्य है। एक को घटाते है तो, दूसरा बढ़ता है, दूसरे को घटाते है तो, एक घटता है, ऐसी स्थितिमें भला क्योकर जल्दी ही आराम हो सकताहै। अगर पित्त को शांत कर लेने के लिये मधुर और शीतल पदार्थ दिये जाते हैं, तो वे मेद को बढ़ाते हैं, और अगर मेद को शांत कर लेने के लिये गरम और कटु पदार्थ दिये जाते हैं, तो वे पित्त को बढ़ाते हैं।

वात प्रमेह असाध्य है

वायु से पैदा होने वाले प्रमेह असाध्य होते हैं, इसका भी कारण-है, वायु प्रमेह उस अवस्था में होते हैं, जब सारी धातुओं का क्षय हो जाता है। मज्जा जैसी कोमल चीज भी वायु पेशाब के रास्ते से निकाल फेंकता है। शरीर का सार ओज तक नहीं रहने देता। इसकी चिकित्सा में पहिले कफ और पित्तकारी पदार्थ देने पड़ते हैं, किन्तु यह उनके अभाव में शरीर की हड्डियो के रस तक को चूसता रहता है, जब शरीर में कुछ भी नही रहता तब यह वीर्य को निकालने लगता है। वीर्य के निकलते रहनेसे, कैसा भी मोटा-ताजा मनुष्य शीघ्र ही कमजोर और हतप्रभ हो जाता है। जहां पित्त प्रमेहों में केवल दो विरोधियो का इलाज करना पड़ता है, वहां, यहां पर तीन दुश्मनो को ठीक करना पड़ता है, फिर तारीफ यह कि तीनो ठीक रहे, किसी के हाथ पैर नही टूटे।

पहिले मधुमेह का जिक्र आ चुका है और उसका लक्षण लिखा जाचुका है, अब यहां मधुमेह से सम्बन्ध रखने वाली दो एक बातो का जिक्र और कर दिया जाता है। मधुमेह कष्टसाध्य होजाता है,लाख कोशिश करने परभी शीघ्र इसका इलाज नहीं हो सकता। किन्तु मधुमेह साधारण अवस्था में ही नहीं होजाता, जब प्रमेह बहुत दिन तक शरीर में अड्डा जमा लेता है, तब कहीं वह मधुमेह में परिणत होता है।

मधुमेह

Diabetes (Mellitus)

जिस क्षौद्र प्रमेह का जिक्र पहले किया जा चुका है, उससे इसमें थोड़ा अन्तर है, केवल नाम मात्र का यह दो कारणो से होता है।

क्रुद्धे धातु क्षयाद्वायौ

(१) धातुओ का क्षय होने पर, वायु के कुपित होने पर।

दोषावृतपथेऽपिवा

(२) दोषो से वायु का रास्ता रुकने पर।

यह दो कारण हैं, जिनसे मधुमेह होता है। पहिला कारण स्पष्ट है, जब शरीर में कोई कैसा भी कफज, पित्तज अथवा वातज प्रमेह हो जाता है और हम उसकी उपेक्षा करते हैं। तो वह बढ़ कर मधुमेह हो जाता है। शरीर की सब धातुओं को चूस लेने पर, खुराक के न मिलने से वायु देवता कुपित हो जाता है, तब मधुमेह हो जाता है।

दूसरा कारण हैं, जब दोष द्वारा वायु का रास्ता रुक जाता है। इसका मतलब यह है कि कफ पित्त आदि कोई भी दोष जब वायु के रास्ते मे रोड़े अटका देता है, तब वायु फनफना उठता है। जल्दी २ वह मूत्राशय में पेशाब ला गेरता है और जल्दी २ फेंक देताहै। ऐसी अवस्था में २४ घंटा में रोगी २० सेर तक मूतता है। मूतते २ उसके पैर थक जाते हैं, मगर वायु को दया नहीं आती।

मधुमेहमें मनुष्य के शरीरमें मिठास हो जाती है, जिससे मक्खियो का उससे खूब प्रेम हो जाता

है शरीर पर चीटियां चक्कर काटने लगती हैं और जहां वह पेशाब करता है, वहां फौरन चीटियां जा पहुँचती हैं। चरक में भी मधुमेह का कारण बतलाया है, लिखा है।

गुरुस्निग्धाम्ललवण भजतामति मात्रगः।
नवमन्नं च पान च निद्रामास्या सुखानि च॥
त्यक्तव्यायामचिन्तानां सशोधनमकुर्वताम्।
श्लेष्मा पित्त च मेद च मांस चाति प्रवर्धते॥
तैरावृत गनिर्वायुरोजआदाय गच्छति।
यदावस्तिं तदाकृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्तते॥॥

जो पुरुष भारी, चिकना, खट्टा और खारी पदार्थ ज्यादा खाते है, नया अन्न और नया जल खाते पीते है खूब सोते और आराम करते हैं। शरीर और दिमाग से कुछ काम नही लेते और न कभी कोठा साफ करने के लिये जुलाब ही लेते हैं। उनके शरीर मे कफ, पित्त, मेद और मांस बहुत बढ़ जाते हैं। वायु इनसे घिर जाता है। वह बेचारा मेद लेकर फिर वस्ति की तरफ जाता है, फिर मधुमेह हो जाता है।

जो हो इसमें कुछ नई बात नहीं है, वायु ही आखिर मधुमेह का निर्माण करता है। साधारण आदमी भी जानते हैं कि, मधुमेह में शक्कर आने लगती है। उसी शक्कर के लिये चीटिया आती हैं। शरीर के अन्दर खून में शक्कर का भी एक भाग रहता है। यह एक रासायनिक पदार्थ है। जब प्रमेह की जड़ जम जाती है और धातुओ का क्षय हो जाता है। तब शक्कर आने लगती है, शक्कर के साथ २ ही वीर्य भी आने लगता है। देखने से दोनो के अलग २ भाग देखे जा सकते हैं। डाक्टरी मत से शक्कर देखने का यह भी एक तरीका है, कि किसी काच के बर्तन में रोगी का पेशाब रख दिया जाता है, पेशाब से आधा उसमें 'लाइकर पोटास' मिला दिया जाता है, फिर उसे स्प्रिट लैम्प पर रखकर गरम किया जाता है गरम होने पर अगर पेशाब का रंग भूरा या पोर्ट वाइन जैसा हो जाता है तो, उसमें शक्कर समझी जाती है। शक्कर अगर प्रचुर प्रमाण में आने लगती है तो, रोगी को असाध्य समझ लिया जाता है।

आधुनिक विद्वानों का विश्वास है कि जब यकृत Lever अपना काम ठीक तौर से नहीं करता, तब शक्कर पेशाब में आने लगती है। यकृत काम उन्ही का नहीं करता जो मादक द्रव्यों का विशेष सेवन करते है, रात दिन रसगुल्ले उड़ाते हैं, और हरदम स्त्री को बगल में रखते हैं। इस लिये कहना चाहिये कि शराबी और सिगरेट तमाखू पीने वाले फैशनेबिलो को मधुमेह अधिक होता है। इन पंक्तियो के लेखक ने अपने लाहौरी जीवन में एक ऐसे पुरुष को देखा था जो पहिले बिल्कुल स्वस्थ था, किंतु शराब पीने के कारण कालान्तर में प्रमेह का शिकार होगया। थोड़े दिनो बाद ही उसके १ औंस पेशाब में १२ ग्रेन शक्कर आने लगी, डाक्टरो ने उसे असाध्य कहकर छोड दिया, किन्तु बाद में वह एक हकीम की दवासे अच्छा हो गया, मधुमेह जब प्रारम्भिक अवस्था में होता है, एव रोगी को उसका ख्याल नही रहता, किन्तु जब वह अपनी पूर्ण दशा में आजाता है, रोगी का होश हवाश बिगाड़ देता है।

मधुमेही २४ घंटो में २० पौंड तक पेशाब करता है, इतने पेशाब में १ छटांक से $\frac{1}{2}$ पौंड तक शक्कर निकल आती है। बार २ पेशाब करने पर उसे प्यास भी खूब लगती है, मगर पानी शीघ्र ही पेशाब के रास्ते से निकल जाता है. उसका कुछ भी रस नही बनता। अगर पेशाब को कुछ देर के लिये रोकता है, तो पेट फूलने लगता है, लिंग में चीस चलने लगती है, पेशाब का रंग

पीला हो जाता है, और पीव भी आने लगती है जब अवस्था बढ़ती जाती है, तब थूक में भी शक्कर आने लगती है, पेट में कब्ज रहने लगती है, नीद नहीं आती, हाथ पैर सब्ज होजाते हैं और थोड़ा २ ज्वर भी रहने लगता है।

सन्धियो में गठिया हो जाता है, आंखो में फीकापन आजाता है, दातो की जड़ें हिलने लग जाती है, मतलब यह है कि सारे शरीर में कुछ न कुछ गड़बड़ होने लगती है। इस तरह उसे मौत से आलिङ्गन करना पडता है। हर एक हालत में प्रमेह की प्रारम्भिक अवस्था में ही उसकी चिकित्सा कर देनी चाहिये, उसे जरा भी शरीर में तम्बू नहीं गाड़ने देने चाहिये, वर्ना वह फिर भयकर हो जाता है। अब जरा प्रमेह की फुन्सियो पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये।

प्रमेह फुन्सियां

भावप्रकाश में भावमिश्र लिखते हैं—

शराविका कच्छपिका, जालिनी विनतालजी।
मसूरिका सर्षपिका, पुत्रिणी सविदारिका ॥२८॥
विद्रधिश्चेति पिटिका, प्रमेहोपेक्षयादश।
सन्धि मर्मसु जायन्ते, मासलेषुचधामसु॥ २६ ॥

जब प्रमेह हो जाते हैं, और लोग उनकी उपेक्षा करते हैं, उनकी कोई चिकित्सा नहीं करते तब रोगी के दस तरह की फुन्सियां होने लगती हैं। ये सन्धियो में होती हैं मांस वाले स्थानो में होती है, और मर्म स्थानो में होती है।

फुन्सियों के भेद

१० तरह की फुन्सियां होती है—

(१) शराविका

वह फुन्सी मिट्टी के शकोरे जैसी होती है, बीच में नीची और अन्त में ऊंची।

(२) सर्षपिका

यह फुन्सिया सरसो जैसी छोटी २ होती हैं।

(३) कच्छपिका

कछुये की पीठ जैसी जलनदार फुन्सी होती है।

(४) जालिनी

इसके नस जाल दिखलाई पड़ते है, इसमें जलन भी बड़ी तेज होती है।

(५) विनता

यह बड़ी मोटी और पीली होती है और पेट में या पीठ में होती हैं।

(६) पुत्रिणी

एक फुन्सी तो बड़ी होती है और आस पास महीन २ फुन्सियां होती है।

(७) मसूरिका

यह फुन्सी मसूर की दाल जैसी होती।

(८) अलजी

यह लाल होती है, काली होती है और आस पास इसके और भी फुन्सियां होती है।

(९) विदारिका

विदारीकन्द के समान गोल और कठोर होती है।

(१०) विद्रधिका

विद्रधि का वर्णन अलग हुआ है, यह फुन्सी वैसी ही होती है।

विवरण—जिस दोष से जो प्रमेह होता है, फुन्सियो पर भी उसी दोष का प्रभाव होता है।

फुन्सियो के उपद्रव

प्यास, बेहोसी, मास का खिचाव, श्वास, हिचकी, मद, बुखार। विसर्प, मर्म स्थानो का अवरोध ये फुन्सियो के उपद्रव हैं।

फुन्सियो की असाध्यता

गुदा हृदय शिर पीठ इनके मर्म स्थानो में होने वाली सोपद्रव फुन्सियाँ आराम नही हो पाती साथ ही मन्दाग्नि वाले रोगी की भी आराम नहीं हो पाती।

नोट—प्रमेह ही से फुन्सियां हों यह कोई आवश्यक नियम नहीं है, बिना भी प्रमेह के मेद खराब वाले आदमी फुन्सियों के शिकार हो जाते हैं।

अण्डकोषों के रोग

अण्डकोषो का बढ़ना

कभी २ अण्कोष बढ़ जाते हैं. जिससे बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता है। अण्डकोषो का बढ़ना किसी अवस्था पर निर्भर नहीं रहता जैसा कि लोगो का विश्वास है कि बुढ़ापे में अण्डकोष बढ़ जाते हैं। ये किसी भी समय किसी भी अवस्था मे बढ जाते हैं। इससे पहिले कि अण्डकोष क्यों बढ़ते हैं, यह बतलाना कुछ आवश्यक है कि अण्ड कोष क्या है। इनका मनोरञ्जक और सरल वर्णन हिक्मत में अच्छा लिखा है।

जानना चाहिये कि अण्डकोष सफेद मांस से बने हैं, उनमें बहुत से मार्ग है, और आँते, रगे तथा पट्ठे आकर इनमें मिलगये हैं, ऊपर एकझिल्ली खिंची हुई है, जिसमें वीर्य इकट्ठा होकर पकता है, वीर्य सफेद क्यो होता है! इसका उत्तर यह है कि अण्डकोषो का सारभाग सफेद है। पुरुषो के अण्डकोष बड़े २ गोल २ और बाहर की तरफ दिखलाई देते है, स्त्रियो के छोटे २ हैं. जो अन्दर में हैं।

अण्डकोषो की सूजन और वृद्धि में बहुत अन्तर है।

अण्डकोष बढ़ते हैं उस समय, जबकि नीचे की तरफ जाने वाला वायु कारणवश अण्डकोषो में घुस जाता है, अण्डबाहिनी नाड़ियों में जब वायु घुसता है तो अण्डकोष बढ़जाते है। कभी २ बढ़े अण्डकोष पक भी जाते हैं। ग्रामो की अपेक्षा शहरो में यह रोग अधिक होता है। और दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में अधिक होता है। बगाल का आचार-विचार ही ऐसा है जिससे अण्डकोष बढते है। बंगालियों की धोती की कथा सब जानते हैं, ठीक धोती के बीच से एक चूहा आसानी से जा सकता है। लिंग और अण्ड-कोष बिना रुकावट के ढीले पड़े रहते हैं। बराबर लटकते रहने से आंतो से पानी उतर आता है और अण्डकोष बढ जाते हैं, अण्डकोषो के बढ़ने पर लिंग छोटा और सुस्त हो जाता है। कभी २ अण्कोषो का वजन ५ सेर तक पहुँच जाता है। जो आदमी धोती भीतर लंगोट नहीं रखते, उनकी आँतें बढ़ जाती हैं, कभी २ पेट की आँते अडकोषो में उतर आती हैं। चोटलगने, भारी बोझ उठाने, गिर पड़ने आदि कारणों से भी आँते बढ़ जाती हैं। कभी आंतो में पानी भरता है तो कभी बादी भर जाती है।

आपरेशन से पानी निकलवा देने पर भी फिर अण्डकोष बढ़ जाते हैं। इस लिये कि पानी आने का रास्ता बन्द नहीं होता है। खड़े २ पानी पीने वालो को भी यह रोग हो जाता है। आयुर्वेद में अण्डवृद्धि सात तरह की मानी है, किंतु हिकमत में और भी है, हम सबका अलग २ वर्णन करेंगे।

यह रोग बड़ा पाजी है, ऐसे आदमियो की देह में वीर्य तैयार नहीं होता और वे संभोग के अयोग्य भी हो जाते हैं। बराबर बैठे रहकर खटने वाले, मोटे पेट के मारवाड़ी और बंगाली बाबू एक तरह से अपने जीवन का आनन्द नष्ट ही कर देते हैं, ऐसे सेठ और बंगाली स्त्री के काम के नहीं रहते, यह वे खुद भी जानते हैं।

बादी से अंडकोषों का बढ़ना

बादी पैदा करने वाली चीजो के ज्यादा खाने, खा पीकर पड़े रहने, ज्यादा संभोग करने आदि कारणों से बादी, अंडवाहिनी नसो में आकर अंड कोषो को फुला देतीहै। उस समय अंडकोष मशक की तरह फूल जाते हैं, छूने में वे खरदरे मालूम

देते हैं। अपने आप ही वादी की खराबी, दर्द, चुभन आदि होने लगती हैं।

पित्त से अंडकोषो का बढ़ना

खारी, खट्टे, नमकीन गर्म पदार्थों की अधिक शौक करने, अधिक संभोग आदि कारणो से पित्त के कारण अंडकोष फूल जाते हैं। देखने में अंड कोष पके हुये गूलर जैसे दिखलाई देतेहै, वे जल्दी बढ़ते हैं और कभी फूलकर पक भी जाते हैं, जिससे घाव भी हो सकता है। जलन होती है, गर्मी मालूम देती हैं और बुखार भी कभी २ हो जाता है।

कफ से अंडकोषो का बढ़ना

जब कफ के कारण अडकोष बढ़ता है, तो खाज बहुत चलती है, उनमे हलका दर्द भी होता है, छूने में वे ठंडे और कठोर मालूम देते है।

खून से अंडकोषो का बढ़ना

अधिक सम्भोग करने पर जब वीर्य की जगह खून आने ललता है. गर्मी होने आदि कारणो से जब खून बिगड़ जाता है तो खून, अण्डबाहिनी नाडियो में जाकर फुलाव करता है। इसमे अण्ड कोषो के ऊपर काली २ फुन्सियां निकल आती हैं, और वे पक भी जाती हैं। जलन होती है, और कभी कभी बुखार भी हो जाता है।

मेद (पेट) के बढ़ने से अण्डकोषो का बढ़ना

बगाली बाबू और मोटे मारवाडी इसके उदाहरण हैं। खा पीकर पडे रहने, आदि कारणो से बढ़कर पेट फूल जाता है, बड़े पेट वाला आदमी यद्यपि खाता खूब है, मगर उसका वीर्य ठीक नहीं बनपाता। वीर्य की थैली पर दुबाव पड़ता है। अण्डकोष बढ जाते है, और लटकने लगते हैं, वे चिकने रहते है, नर्म रहते है, और उनमें खाज चलती है। पीड़ा बहुत कम कभी २ हो जाती है।

पेशाब रोकने से अण्डकोषो का बढ़ना

जिन्हे पेशाब रोकने की आदत है, वे अन्त में लम्बे, मोटे अण्डकोषो वाले हो जाते है, और दूसरे उपद्रव भी होजाते हैं। रुका हुआ पेशाब तत्रस्थ वायु को बिगाड़ता है, फिर वायु गुस्से में आकर उस पेशाब को अण्डकोषो की नाड़ियों में घुसा देता है, इसमें पेशाब मुश्किल से होती है, अण्डकोषो में सूजन भी हो जाती है।

आंतोंके उतरने से अण्डकोषों का बढ़ना

'इन्फलमिशन आफ दी टिस्टीकिल्स'

कभी २ पेट से भी आंतें उतर आती हैं, इसका खुलासा हाल यो है—

पेट के ऊपर मिराक नाम की झिल्ली है, दो झिल्लियां और है, जिनमें एक भीतर बाली है, जो आमाशय की ओर आंतो से लगी हुई है, इसका नाम है 'सर्ब' दूसरी झिल्ली पेट के ऊपर है, जो पोले अग के ऊपर लिपटे रहने के कारण सफाक कहलाती है। यही झिल्ली कूख और पट्ठो तक जाती है, और इस तरह दो छेद हैं, जो दोनो अण्डकोषो तक उतर आये हैं, दोनो छेद यहां आकर चौड़े हो जाते, और एक दूसरे से मिल जाते है।

कूदने, फांदने, भारी बोझ उठाने, कड़ी कै होने आदि से झिल्ली को कष्ट पहुंचता है, जिससे पेट के ऊपर की झिल्ली टूंडी की जगह से, या नीचे ऊपर से फट जाती है, अलावा इसके पेट की भीतरी झिल्ली और उसके नीचे की आंत दोनो फट जाती हैं, और अपनी जगह को छोड़कर नीचे उतर आती हैं, इससे भी आत अण्डकोषो में आने से वे बढ़ जाते हैं।

पेट की ऊपरी झिल्ली के अन्त में जो दो रास्ते हैं, वे ढीली रतूबत के कारण या दूसरे कारण से एक या दोनो खुल जाते हैं जिससे झिल्ली नीचे आजाती है, और आंतें फूल जाती हैं।

अण्डकोषो में जब आंत आती हैं, तो गांठ सी पड़ जाती है। हाथ से दबाने पर आंत ऊपर उठ जाती है, फिर नीचे आजाती है। आंत के उतरने पर कभी २ कूलज का दर्द भी होने लगता है।

आंतों के उतरने पर उनको दवाने से गुड़ गुड़ा हट होती है, किन्तु जब झिल्ली उतरती है तो गुड़गुड़ाहट नही होती कभी भीतरी झिल्ली ही आंतो के साथ उतर आती है, और कभी पेट की भीतरी झिल्ली फट जाने से आंत उतर आती हैं।

झिल्ली के फटने पर कभी २ आदमी मर भी जाता है, यह दशा संगीन होती है, आंतो के उतरते ही योग्य उपचार कराना चाहिये, वर्ना बहुत जल्द हालत खतरनाक हो जाती है।

पेट की गड़बड़, कब्ज, बदहज्मी, आदि उपद्रव भी इसमें हो जाते हैं।

एक अण्डकोष का बढ़ना

कभी २ बांयी तरफ का या दांयी तरफ का एक ही अंडकोष बढ़ जाया करता है, इस दशा में दूसरे अण्डकोष पर दबाव पड़ता है, सूजाकी पीव उतर जाने, पैर से दब जाने, आदि कारणो से ऐसा होता है, अगर सूजाकी पीव उतरने से अण्डकोष बढ़ता है तो साथ में जलन सी होती है पैर से दबने पर दर्द के साथ २ सूजन भी होती है

अण्डकोषों की सूजन

इसके ४ भेद हैं

१—गर्म सूजन

यह सूजन गर्म होती है, और खून, पित्त, तथा संभोग के समय वीर्य के बन्द होने से होती है। इसमें सुर्खी होती है, दर्द होता है, और गर्मी रहती है। खून से होने वाली सूजन बड़ी और बोझदार होती है, पित्तकी सूजन में गर्मी और जलन की बहुतायत रहतीहै। एक सूजन तो केवल खाल में ही होतीहै, इसमें रोग का जोर नहीं होता है दूसरी सूजन सारे भाग में होती है, और इसमें रोग का जोर होता है। इसमें बुखार और प्यास की अधिकता होती है।

२—ठंडी सूजन

यह ठंडी सूजन होती है, और कफ की अधिकता से होती है, इसमें सफेदी, छूने में नर्मी, और दर्द में कमी रहती हैं।

३—बादी की सूजन

बादी से होने वाली तीसरी सूजन होती है, कठोर होती है, और काली होती है, दर्द नहीं होता।

४—चौथा भेद

दवा आदि के कारण गोलियो की खाल सूज जाती है, दर्द वगैरह नही होता।

अण्डकोषों की पीड़ा

इसके २ भेद हैं।

१—पहिला भेद

प्रकृति की गरमी से जो पीडा होती है, उसमें जलन और गरमी होती है।

२—दूसरा भेद

प्रकृति की ठडक के विगाड़ से होने वाली पीड़ा में दर्दके साथ२ अण्डकोष सुन्न हो जाते हैं।

गोलियों का ऊपर चढ़ना और छोटी होना

जब गोलियो में ज्यादा ठंड आ जाती है, तो कमजोरी आकर गोलिया ऊपर को चढ़ जाती हैं कभी गर्म रोग के अन्त में भी ऐसा हो जाता है। गोली थैली से पेंडू की ओर चढ़ जाती है बाहर से बिल्कुल छिप जाती हैं, इस दशा में पेशाब थोड़ा २ निकलता है और दर्द होता है, चलने फिरने में भी कष्ट होता है, यह रोग असाध्य है।

रगो और खाल की खुरखुराहट

जब अण्डकोषो की रगो और खाल में खराब हवा रुक जाती है, तो खिचावट और फड़कना

पैदा हो जाता है कभी यह हालत हो जाती है तो चलना फिरना कठिन हो जाता है।

खाल का ढीला होना

जब अण्डकोषो की रगो और खाल में खराब हवा रुक जाती है, तो खिंचावट और फड़कन पैदा हो जाती है, कभी यह हालत बढ़ जाती है तो चलना फिरना कठिन हो जाता है।

खाल का ढीला होना

कमजोरी, अधिक मैथुन, हस्त मैथुन आदि से खाल लटक जाती है, किन्तु गोलियां अपनी दशा में रहती है, कभी ढीलापन बहुत अधिक बढ़ जाता है।

अण्डकोषो का घाव

लिंग की तरह फोड़ा फुन्सी होने आदि से अण्डकोषो के चारो तरफ भी घाव हो जाता है, यह सड़ता जल्दी है, अतः जल्दी ही इलाज करना चाहिये।

अण्डकोषो की खुजली

यह वृषणकच्छू रोग है. हकीमो के मत में तेज मल उतरने से यह रोग होता है। असल में अंडकोषो को साफ नहीं रखने से वहा मैल जम जाता है, जिससे खाज चलती है।

अंडकोषो का प्रदाह

कभी २ अंडकोषो में जलन होने लग जाया करती हैं, कभी २ तो जलन इतनी जोरो से होती है कि आदमी चिल्लाने लगता है, अधिक मैथुन करने जिससे कि वीर्य की जगह खून आने लगता है, अण्डकोषो में जलन होने लग जाया करती है। सूजाकी पीप के अण्डकोषो में उतरने से भी जलन होती है, किसी तेज दवा के अण्डकोषो पर लगने, गर्मी के घाव होने, तेज फुन्सी होने आदि कारणो से भी प्रदाह होने लगता है।

अण्डकोषों का छोटापन

हस्तमैथुन करने से अवश्य अण्डकोष छोटे हो जाया करते है, उसकी खाल सिकुड़ जाती है, किन्तु हरदम सिकुड़ी हुई नहीं रहती, ढीली पड़ी रहती है. केवल गोलियो में स्थाई छोटापन आ जाता है, अधिक सम्भोग करने, और लौंडेबाजी करने से भी अण्डकोष छोटे हो जाया करते हैं, अण्डकोष के छोटे होने पर सम्भोग शक्ति कम हो स्तम्भन में भी कमी हो जाती है।

लिंगेन्द्रिय के रोग

Disease of the Penis

सहृदय पाठक पाठिकाए हमें क्षमा करें, इसलिये कि इस प्रकरण में कही २ असभ्य शब्दो का प्रयोग होगा। यह विषय ही ऐसा है। इसलिये हमें क्षमा मांगने की कोई खास आवश्यकता भी नहीं है, किन्तु साधारण शिष्टाचार की दृष्टि से हम पहले ही क्षमाप्रार्थी हो जाते है।

लिङ्गेन्द्रिय को हम केवल लिङ्ग ही कहेंगे और कुछ नही इसका मतलब सभी समझ लेते हैं, लिङ्ग को गुप्तेन्द्रिय भी कहते हैं, यह पुरुषो का वह अंग है. जिससे संभोग किया जाता है।

स्त्रियो का सभोग अंग योनि है, योनि रोगो का वर्णन अलग किया गया है, यहां केवल पुरुषो के सभोग अंग लिंग के रोगो का वर्णन होगा,

पहिले लिंग में बहुत कम रोग होते थे इसका कारण यह था कि पुरुष सदाचारी और संयमी होते थे, व्यभिचार को नफरत की नजर से देखते थे, इसीलिये पहिले जिनके लिंग पर कोई रोग हो जाता था तो समाज उसे घृणाकी नजर से देखता था, किंतु आजकल तो हवा ही बदल गई है। आजकल के पुरुषो को सदाचार और संयम तो छू तक नही गया है, अपनी स्त्री से व्यभिचार करते हैं, दूसरे की स्त्रियो से व्यभिचार करते हैं।

और वेश्याओ से व्यभिचार करते है। लिखते हुये भी लज्जा आती है कि, आजकल के पुरुष सुकुमार बच्चो से भी व्यभिचार करते हैं, लौंडेबाजी का जितना प्रचार है, उसे देखकर दिल कांप उठता है अपनी स्त्री से व्यभिचार करने में आजकल के पुरुष कोई बुराई ही नही समझते, साथ में दूसरी स्त्रियो से भी व्यभिचार करने में भी उनकी दृष्टि में कोई ऐसा नैतिक अपराध नही होता।

बीसवीं सदी के पुरुष रजस्वला स्त्री से सभोग करते भी नहीं हिचकते महीने में तीन दिनभी यह अपनी वासना को सयम नही रख सकते, इससे खुद तो रोगी होते ही हैं, अपनी गृहणी को भी हमेशा के लिये रोगिणी बना देते हैं, प्राचीन शास्त्रो का उपदेश आजकल के पुरुषो की दृष्टि में किताबी चीज है, व्यावहारिक नहीं, उनके जीवन का उद्देश्य ही सभोग सुख है। स्त्री केवल काम वासना की मशीन है, बराबर उससे सभोग करते रहना चाहिये, वरना वह दूसरे पुरुषो से सभोग करने लग जाती हैं, इन शब्दों में अपने मनोभाव प्रगट करने वाले आदमियो की सख्या कम नहीं है। कहा स्त्री गृहदेवी मानी जाती थी। जीवन की सहचरी समझी जाती थी, वहां आज कल केवल काम करने की मशीन समझी जाती है, इससे अधिक पुरुषो का घृणित पतन और क्या होसकता है ?

रात दिन सभोग करने, रडीबाजी करने, रजस्वला स्त्री से मैथुन करने और लौंडेबाजी करने से आजकल लिंग में कई तरह के रोग होते हैं, असमय में ही नामर्दी आ जाती है, संतान पैदा करने की ताकत नही रहती, लिङ्ग टेढा हो जाता है, गल के गिर भी जाता है। गर्मी सूजाक के रोगियो की सख्या आज कल कम नहीं है शहरों, के डाक्टरो और वैद्यो का जीवन ही इन रोगियों पर निर्भर रहता है।

हमारा सामाजिक जीवन ही आजकल ऐसा घृणित हो गया है कि ऐसे रोग अधिक सख्यामें होने है। बाल विवाह से कितनी जल्दी नामर्दी आती है, यह सभी समझ सकते हैं। कि रातदिन गदे वातावरण में रहने से हृदय हरदम उत्तेजित रहना है, जिससे किसी स्त्री को देखते ही सभोग की उत्कण्ठा हो जाती है। संतान पैदा नहीं होती लिङ्ग के रोगो से और दोष दिया जाता है ईश्वर को। भला ईश्वर बेचारे का इसमें क्या देना आता है, उसकी तरफ से सन्तान हो चाहे न हो उसे पुरुषो की जायदाद पर तो कब्जा नहीं करना है, कितनी नफरत भरी बाते हैं।

यह भी सच है कि पुरुषो में सन्तान पैदा करने की ताकत नही है और दोष मढ़ा जाता है स्त्री के सर पर, उस बेचारी को बांझ करार दे दिया जाता है, सारा घर भर उसका दुश्मन हो जाताहै। नामर्द पुरुषो की स्त्रियां अगर व्यभिचार पथ पर चलती हैं तो, क्या बुरा करती हैं, ऐसे नामर्द फिर शादी क्या रसगुल्ले खाने के लिये करते हैं।

कमजोर पुरुषो की औलाद कमजोर होती है इसमें सन्देह करने की गुञ्जाइश ही नहीं है, प्रथम तो गर्मी सूजाक के रोगियो के सन्तान होती ही नही, अगर हो भी जाती है तो, वह भी रोगो के कीड़े साथ लिये आती है, और अकाल ही काल कवलित हो जाती है। रोना आता है उन पुरुषो की दशा पर, जो व्यभिचार करके गर्मी सूजाक के कीड़े पाल के, सन्तान न होने के लिये रोते हैं, और ईश्वर को तथा स्त्री को दोष देते हैं।

व्यभिचार करने से क्या शरीर में वीर्य की कमी नहीं होती, रन्डीबाजी करने से क्या खून खराब नहीं होता, और लौंडेबाजी करने से क्या लिंग टेढा होकर नामर्द नहीं हो जाता ? अगर यह सब कुछ हो जाता है तो धिक्कार है, आपके रोने पर और थू है आपकी जिन्दगी पर, लिंग में चैतन्यता तो उसी समय होती है न, जब कि देह में वीर्य रहता है, खून साफ रहता है, और मानसिक बिकार नहीं होते, खैर।

लिंगेन्द्रिय क्या है

लिंगेन्द्रिय पुरुषों के मैथुन का अंग है। इसके विषय में मोटी २ बाते जान लेनी चाहिये। इसकी बनावट के विषय में खास २ बाते यहां बतला दी जाती हैं।

लिंग सौत्रिक तंतु तथा अनैच्छिक मांस से बनता है। यहां हमें तीन बेलन के आकार के दंडे दिखाई पड़ते हैं। तीन दंडो में से दो दंडे पास २ और समानांतर लिंग के ऊपर के भागो में रहते हैं। तीसरा दंडा इन दोनो के नीचे रहता है, और यह खोखला रहता है। नीचे वाले दंडेमें एक नली रहती है, इसके रास्ते पेशाब निकलता है, अतः इसे मूत्रमार्ग कहते हैं। ऊपर के दोनो दंडे शिश्न दंडिका कहलाते हैं। नीचे के दंडे को मूत्र दण्डिका कहते हैं।

शिश्न दंडिकाओ के बेलनाकार होने के कारण उनके बीच में, ऊपर और नीचे एक अन्तर रहता है, ऊपर के अन्तर में शिश्न की दो धमनियां, एक शिरा, और दो नाड़ियां रहती है। धमनी की फड़क शिश्न को दबाने से मालूम पड़ती है। नीचे का अन्तर गहरा होता है। और यहीं मूत्र दंडिका रहती है। तीनो दंडो की बनावट एक जैसी है। ये सौत्रिक तन्तु से बनते हैं, और सूत्र दोनो तरह के श्वेत और पीले होते है सौत्रिक तन्तु से मिला हुआ कुछ अनैच्छिक मांस भी रहता है। इन दंडो के भीतर छोटे २ आशय या कोष्ट होते हैं, जिनकी दीवारें सौत्रिक तन्तु और मांस से बनती हैं।

उत्तेजनाके कारण ये आशय खूनसे भर जाते है, जिससे लिंग में कड़ापन आजाता है। सभोग के अन्त में रक्त लौट जाता है, और ढीलापन आ जाता है।

शिश्न दंडिकाएं मणि के शिखर तक नही पहुचती, ये मुँडखात के पास ही खतम हो जाती है, और नौकीली होजाती है, जिनपर मणिका आवरण चढ़ जाता है। मूत्रदंडिका आगे आकर मोटी हो जाती है। जिसके फूले हुये भाग को ही मणि कहते हैं।

पीछे जाकर तीनों दंडे एक दूसरे से अलग होजाते हैं और नुकीले होजाते हैं। यह नुकीला हिस्सा फिर अपनी तरफ की नितम्बास्थि से जुड़ जाता है। शिश्न दंडिका के पिछले भाग पर शिश्न प्रहर्षिणी पेशी लगी रहती है। इसके संकोच से यह होता है कि, जो रक्त धमनी द्वारा शिश्न दंडिका में पहुँचता है, वह शिरा द्वारा लौटने नहीं पाता, और आशयो में इकट्ठा रहता है। जब इस पेशी का प्रसार होता है तब रक्त लौट जाता है, आशय खाली होजाते हैं। और लिंग शिथिल हो जाता है।

मूत्रदंडिका मध्यरेखा में ही रहती है परंतु पीछे जाकर विशेष मोटी हो जाती है। इस भाग पर शिश्न मूलिका पेशी लगी रहती है, यही पेशी आगे जाकर शिश्न दंडिकाओं के पार्श्वों और शिश्नावरक से भी लगी रहती है। इसके सकोच से मूत्र मार्ग मूत्र से खाली होजाता है, जब वीर्य बाहर निकल जाता है, तब भी इस पेशी का सकोच हो जाता है। अंडकोष के पीछे शिश्न

मूल पर अंगुली रखने से इस पेशी का संकोच मालूम किया जा सकता है, और इस पेशी के संकोच से शिश्न में दृढ़ता आ जाती है।

मूत्राशय के नीचे के भाग से मणि के छिद्र तक मूत्र के बहने का जो रास्ता है, उसे मूत्रपथ कहते हैं, जिस जगह से इस पथ का आरम्भ होता है, उसे मूत्रांतर्द्वार कहते हैं, इसके नीचे शकु के आकार की एक ग्रंथि रहती है, जिसे प्रोस्टेट कहते है।

मूत्रमार्ग का प्रारम्भिक कोई १इञ्च लम्बा भाग इसी ग्रंथि में रहता है। प्रोस्टेट ग्रंथि के शिखर के नीचे का कोई ½ इंच लम्बा भाग दो झिल्लियों के बीच में रहता है। शेष भाग जो करीवन ६ इंच लम्बा होता है, मूत्रदण्डिका में रहता है। मणिवाले छिद्र को मूत्र वहिर्द्वार कहते हैं। कुल मूत्रभाग की लम्बाई पुरुषों में ७-८ इंच और स्त्रियो में १॥ इंच होती है।

लिंग का अगला भाग शंकु के आकार का होता है, उसे लिंगमुंड या लिंगमणि कहते हैं। मणि में एक छिद्र होता है। मणि की त्वचा ऊपर को हट जाती है, और फिर उसके ऊपर आजाती है, इसे लिंगमणि त्वचा कहते हैं। मुसलमानो में इसी त्वचा के काटने को खतना कहते हैं। कभी यह त्वचा तग हो जाती है, और आसानी से ऊपर नहीं सरकती, कभी २ तो संभोग करना भी मुश्किल हो जाता है, और जोरो से दर्द होने लगता है। सिफलिस होने पर यह त्वचा फूल जाती है, जिसमें बड़ी पीडा होती है, कभी २ यह उस छिद्र को भी रोक लेती है; जिससे पेशाव निकलता है।

मणि के पीछे एक धाई होती है इसे मणि खात कहते हैं, इसी जगह सफेद २ चिकनी वस्तु इकट्ठी हो जाती है, जिसमें बदबू आती है। मुंड के इस भाग की त्वचा में कुछ ग्रन्थियां होती हैं, यह चीज इन्ही ग्रन्थियों में बनती है, और शिश्न गृथ कहलाती है, जब यह अधिक हो जाती है तो, फुन्सियाँ भी हो जाती हैं। इनका साफ करते रहना ही ठीक है।

मणि और विटपदेश के वीच का भाग शिश्न शरीर कहलाता है, शिश्न का शेष भाग जो अंड-कोष से ढका हुआ है, शिश्न मूल कहलाता है। शिश्न शरीर की त्वचा के नीचे चर्बी नहीं होती, और यह अपेक्षाकृत पतली होती है, इसका रंग भी गहरा होता है, और इसके ऊपर बाल भी नहीं आते।

सिफलिस गर्मी

Syphilis

यह वही विभूति है, जो यूरोप वासियों ने भारतियो को दी है, इस पाजी रोग का नाम लेते ही घृणा पैदा हो जाती है, शारीरिक स्वास्थ्य को मिट्टी में मिलाने वालो रोगो में इसका पहिला नंबर आता है। व्यक्तिगत और सामाजिक शृंखला का जैसा उन्मूलन इस रोग ने किया है, वैसा किसी दूसरे ने नही। सौभाग्य है देहातियों का जो अभी तक इसके फौलादी पजे में नहीं आये हैं। शहरियो का तो यह रोग खास मित्र है, सैकड़ो डाक्टरो और कविराजो की रोजी ही इस रोग से चलती है। मैं जहां तक समझता हूँ बंगाल में जितने गर्मी के रोगी हैं उतने अन्यत्र नहीं, बहुत सी जगह तो लोग इसका नाम तक नहीं जानते कलकत्ते में इस रोग के कम से कम लाखो शिकार हैं। गली २ में गर्मी के डाक्टरो की दूकानें यह सबूत देती हैं, कि कलकत्ते का पारिस्परिक जीवन चारित्रिक दृष्टि से एकदम अधः कोटि को पहुँच गया है।

लाखों वेश्यायें इसका प्रचार करने बैठी हैं। गली २ में रंडियो के सैंकड़ो अड्डे हैं, जहां जाकर एक भला आदमी (!) गर्मी के कीड़ो के सिवा कुछ नही लाता। खैर, हमें इससे कुछ नहीं लेना है, अपने प्रकृत विषय पर प्रकाश डालना चाहिये।

भाव प्रकाश में इसे फिरग रोग कहा है, और कड़े शब्दो में इसकी भयंकरता भी दिखलाई है। पुरुष को जब गर्मी हो गई तो स्त्री को भी हुई समझिये, और स्त्री को हुई तो, फिर भावी सन्तान को भी हुई समझिये। यह रोग खानदानी भी है, जो पीढ़ियों तक अपना असर दिखलाता है।

आंखे इससे अन्धी हो जाती हैं, नाक इससे बैठ जाती है, और लिंग इससे गल जाता है. खुजली जैसा पाजी रोग होजाता है, देह में ताकत नही रहती, और हरदम कब्ज की शिकायत रहने लगती है, गर्मी के रोगियो के लिये मौत का वारन्ट भी जल्द ही आ जाता है, फिर कहना चाहिये कि भवसागर से पार करने में यह रोग अपनी शान का निराला ही है। बड़े २ आदमी बड़े २ नेता लेक्चरार, सम्पादक, प्रोफेसर, वकील सब गर्मी के शिकार मिलते हैं। बगाल के थोड़े से अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि, गर्मी के जितने रोगी यूरोप में नही हैं उतने बंगाल में हैं।

बाप, बेटा, स्त्री, लड़की, लड़केकी बहू, सबके सब गर्मी के शिकार। या खुदा, ऐसी हालत में मानव जीवन और उन्नत हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह रोग अपने आप भी कमाया जाता है, और मां, बाप से भी लग जाता है। स्वस्थ और सुबुद्धि सन्तान मां बाप की बेवकूफी से आजन्म गर्मी का उपचार करती रहती है।

पुरुषों के दोष की अपेक्षा स्त्रियो का दोष इसमें बहुत कम है।

सिफलिस क्यों होती है ?

जिन कारणो से सिफलिस होती है, उन पर भी जरा मुलाहिजा फरमाइये।

१-वेश्याओ के साथ व्यभिचार करने से।

२-रजोवती स्त्री के साथ सभोग करने से,

३-विदेशी स्त्रियो के साथ संभोग करने से, चाहे वह वेश्या न भी हो।

४-कुल्टा स्त्रियो के साथ गमन करने से चाहे वह अङ्गवाली न भी हो।

५-मां, बाप में रोग होने से।

६-गर्मी के रोगी की छूत लगने से, उसके कपडो के व्यवहार से, उसके साथ खाने पीने आदि से।

७-गर्मी वाली दाई का दूध पीने से।

८-डाक्टरो और वैक्सीनेटरो की गलती से, जब कि डाक्टर एक गर्मी के रोगी के शरीर से लगे हुये शस्त्रो को बिना अच्छी तरह सफा किये दूसरे आरोग्य शरीरपर प्रयोग करताहै, और टीका लगाने वाला, गर्मी रोग वाले बच्चे को टीका लगाके उसी लिम्फ से आरोग्य बच्चे के टीका लगा देता है।

९-कठिन प्रसव के समय दाई के नखो, या डाक्टरो के गन्दे शस्त्रो के द्वारा गर्भाशय, या योनि में घाव होजाने से भी कभी २ स्त्रियों को गर्मी होजाती है।

आयुर्वेद में फिरङ्ग रोग का निदान इन शब्दों में लिखा है—

गन्धरोगः फिरङ्गोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरङ्गिणोऽङ्गसंसर्गात् फिरङ्गिण्याः प्रसंगतः॥

यानी यह रोग गन्ध से होता है, फिरङ्गियो की गंध से मतलब यहां उनके साथ खान पान करने से हो सकता है, यह छूतदार रोग है, और फिरंगिणी स्त्रियों के साथ सभोग करनेसे होता है।

तत्कालीन भारतवासी इसलिये फिरंगियो के ससर्ग से वहुत हिचकते थे और उनसे दूर ही दूर रहते थे, सभवतः ऐसे ही कारणो से समुद्र यात्रा भी निषिद्ध होगई हो।...

भावप्रकाश के रचियता भावमिश्र ने केवल इस रोग का नाम निर्देशही किया है और कहीं भी आयुर्वेदिक साहित्य में इसका उल्लेख नहीं है। सबसे नवीन ग्रथ भावमिश्रका ही है, और उसी जमाने में गोरे चमडी वालो का शुभागमन हुआ था। भोले भारतियो ने उनके स्वागत और अतिथि सत्कार का यही इनाम पाया।

मानव जीवन को कलङ्क कालिमा से पोतने वाले इस वेश्या रोगको दूर ही से साष्टांग प्रणाम करना चाहिये। खैर!

रजोधर्म की खराबी से स्त्रियो को गर्मी नहीं होती, दूसरे रोग होते हैं, गर्भाशय की खराबी, योनिरोग, आदि अलवत्ता गर्मी से होजाते हैं। किंतु गर्मी इनसे नहीं होती. गर्मी में एक तरह का जहर होता हैं, जो उपरोक्त कारणो के सिवा पैदा नहीं होसकता।

वहुत से विद्वान चोट लगने, गन्दा रहने आदि कारणोसे भी गर्मी का होना मानते हैं, किंतु यह धारणा सत्य नह है, चोट लगने आदि से उपदश हो सकता है, गर्मी नहीं। गर्मी में तो घाव उस अवस्था में होते हैं। जब जहर देह में घुस जाता है।

व्यभिचारिणी स्त्रियो की योनि में, कई पुरुषो का कई तरह का वीर्य गिरता है, जिससे उन्हे गर्मी का शिकार होना पड़ता है फिर जो पुरुष उनसे सभोग करते हैं, लिङ्ग पथ से उसका जहर उनकी देह में घुस जाता है, और सबसे भयकर असर लिङ्ग पर ही होता है, रजोधर्म के समय स्त्री की योनि से सड़ा हुआ गन्दा खून निकलता है, जिसमें जहर की जैसी खराबी होती है, उस समय पुरुष अगर संभोग करता हो तो दूषित रज की कृपा से उसे गर्मी का शिकार होना पड़ता है, सोजाक में घाव अदर होता है। फिर अगर सोजाक ठीक नही होता तो, वह गर्मी के रूप में बदलकर लिंग के ऊपर भी घाव कर देता है, यह दशा अपेक्षाकृत खराब हो जाती है।

मां, वाप से गर्मी होती है, इसलिये कि उनका रज वीर्य गर्मी के जहर से खराब हो चुका होता है, उसका असर गर्भ पर भी गिरता है, और वह भी जहर को साथ लिये ही भूमिष्ट होता है, २-४ वर्ष के बच्चे क्यो गर्मी के शिकार होते हैं, इसका उत्तर यही तो है कि, उनकी देह में पहिले ही से जहर मौजूद रहता है, जो समय पाकर कभी भी अपना असर दिखला देता है, खानदानी गर्मी, स्वोपार्जित गर्मी की अपेक्षा कही अधिक खौफनाक होती है और वह लाख दवा खाने परभी आराम नही होती।

सिफलिस का रूप और उसके २ भेद

सिफलिस का रूप सभी जानते हैं, लिंग पर घाव होना, इसका प्रधान चिह्न है, इसका विशेष वर्णन आगे चलकर होगा, पहिले इसके भेदो का वर्णन करना आवश्यक है। वहुत से डाक्टर सिफलिस के २ भेद मानते हैं, वहुत ६, और ४, हम यहा २ ही भेदो का उल्लेख करेंगे, यद्यपि दूसरा भेद २ भागो में विभाजित हो जाता है।

(१) प्रारम्भिक सिफलिस आतशक इब्तदाई

(२) शारीरिक सिफलिस आतशक जिस्मी

अव इसके भेदो की कथा सुनिये।

(१) प्रारम्भिक सिफलिस

प्रारम्भिक सिफलिस को पहिला दर्जा कहते हैं। लिंग पर घाव हो जाता है, वांकी और शारीरिक गड़वड प्रगट नहीं होती, चाहे वह भीतर ही

भीतर होती है, किंतु बाहर दिखलाई नहीं पड़ती जब विष खून में घुसता है, तो ४० दिन के भीतर लिंग पर गोल घाव होता है, उसके किनारे कड़े होते हैं, आरम्भमें चमड़ेसे मिले, बादमें कुछऊंचे हो जाते हैं, उससे पतली पीव भी निकलती है। केवल लिंग पर ही घाव नहीं होता, कभी २ अंड-कोष पर भी पहिले घाव हो जाता है, यही घाव स्त्रियो के गर्भाशय, और भग में होता है।

इस घाव की छूत अगर निरोगी पुरुष के हाथ पैरो पर कहीं भी लग जाती है तो, उसके भी ऐसा ही घाव हो जाता है, जांघ की गांठ घाव होने पर सूज जाती है।

गर्मी में घाव दो तरह के होने हैं, जिनकी स्मृति रखनी चाहिये।

२ प्रकार के घाव

(१) नर्म घाव।

(२) कड़े घाव।

शारीरिक सिफलिस में भी घावो की परीक्षा करनी होती है, इसलिये यहां पर इनके विषय में पूर्ण जानकारी पैदा कर लेनीं चाहिये।

(१) नर्म घाव

(क) ३ दिन से १० दिन के अदर घाव हो जाता है, कभी इससे जल्दी दो दिन में ही हो जाता है।

(ख) घाव प्रायः छिल जाने या फुन्सी के फूटने से होता है।

(ग) प्रायः घाव घूंघट या लगाम पर होता है।

(घ) घाव अधिक संख्या में होने हैं, कभीर सारे लिंग पर घाव हो जाते हैं।

(ङ) घाव साफ होता है, उसके किनारे टेढ़े कटे हुये नरम होते हैं।

(च) गाँठ में पीप पड़ जाती है, और नये चिन्ह होने से बुखार भी हो जाता है।

(छ) घाव आराम होने पर किसी तरह का शारीरिक कष्ट नहीं होता।

(२) नर्म घाव

(क) १० से ४० दिन में घाव होता है, कभी इससे भी अधिक समय में।

(ख) कभी फुन्सी से और कभी खरोच आदि से भी घाव हो जाता है।

(ग) लिंग के सर या उसकी जड़ या उसके मु ह के भीतर घाव होता है।

(घ) एक या दो घावो से अधिक घाव नहीं होते।

(ङ) घाव की सतह कठोर होती है, उभरी हुई होती है, घाव के किनारे कुर्री जेसे होते हैं।

(च) गांठ में न पीप पड़तीं है न बुखार होता है, वह कड़ी अलबत्ता हो जाती है।

(छ) घाव आराम होने पर भी शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है।

यह भी याद रखने की बात है, कि दोनो तरह के घावो की छूत दूसरो के लिये हानिकर और रोगोत्पादक होती है, प्रारम्भिक सिफलिस में बद अवश्य हो जाती है।

Sypheatic Buleo इसे आतशकी गांठ कहते हैं। गांठ में कडा घाव होने पर पीप नहीं पड़ती नर्म घाव होने पर पड़ती है। यह ऊपर बताया जा चुका है।

शारीरिक सिफलिस

Constitutionol Syphilis

रोगका जहर घुसने, गर्मीकी छूत लगने आदि से, शरीरिक सिफलिस होती है, इसके यहां २ भेद किये जांयगे।

इसके २ भेद हैं

(१) Acquired constitutional Syphilis स्वोपार्जित सिफलिस।

(२)Hereditary Constitutional Syphilis पैतृक सिफलिस।

स्वोपार्जित सिफलिस के माने हैं, जो अपने आप पाई जाती है, अपने शैतानी कारनामों से जिसका आलिङ्गन होता है। पैतृक वह होती है, जो मां बाप से लगती है, अब दोनोकी कहानी भी ध्यान लगाकर सुनिये। इच्छा हो तो मानव जीवन पर दो आंसू भी बहाइये।

१-स्वोपार्जित सिफलिस

Acquired Constitutional Syphilis

इसको ३ अवस्थाओं में विभक्त करने पर ठीक समझ में आयेगा।

इसकी ३ अवस्थायें हैं

पहिली अवस्था

यह छूत का फल है, जो ६ सप्ताह से ६ मास तक रहता है, कभी इससे भी अधिक समय हो जाता है, उस समय तक प्रारम्भिक उपदश अच्छी हो जाती है, किन्तु उसका जहर भीतर में रहता है, जो बाद में अपना असर दिखलाता है, यह याद र ोकी बात है, कि शारीरिक सिफलिस में लिंग के ऊपर घाव नहीं होता। हाथ पैर गर्दन आदि में गांठें होती हैं, घाव नहीं होता। पहिली अवस्था में जगह २ गाठें होती हैं, और दवाने पर उनमें हल्की पीड़ा भी हो जाती है, हाथो के कोहनी के ऊपरी भागो में, गर्दन में, गले में, कांखो में, और सांथलों मे। स्त्रियो की इस अवस्था में उनको गर्भस्राव का रोग हो जाता है।

दूसरी अवस्था होने पर कुछ गडबड़ी विशेष होने लगती है।

(२) अवस्था

इस अवस्था में दूसरे रोग भी हो जाते हैं, जो सिफलिस के कारण ही होते है।

संयुक्त रोग

(क) सिफलिसी दुर्बलता

Sypheatic cacaesia

दूसरी अवस्था में रोगी विना मतलब दिनर कमजोर होने लगता है। देह का रंग मैला और काला होने लगताहै, पाचनशक्ति बिगड़ जाती है, कब्ज रहने लगती है, कभी २ पेट में दर्द भी हो जाता है। मुह का स्वाद विगड़ जाता है, स्वभाव चिडचिड़ा होजाता है, नींद ठीकनहीं आती,गिल्टियां सूज जाती हैं, गंज होनी शुरू हो जाती है।

(ख) सिफलिसी बुखार

Sypheatic fever

बुखार की शिकायत रहती है, शारीरिक ताप भी बढ़ जाता है, भीतर गर्मी मालूम होती है, धूप में बैठना मुश्किल हो जाता है। यह मालूम नहीं होता कि बुखार कब चढ़ता और कब उतरता है। किन्तु शिकायत हरदम रहतीहै, माथे में दर्द होता है चक्कर आते हैं, और कभी २ मुह में घाव भी होजाते हैं।

(ग) सिफलिसी गठिया

Sypheatic pheumatism

सभी छोटे बड़े जोडों में दर्द पैदा हो जाता है, खासकर घुटने और कोहनो के जोड़ो में, गांठों और जोड़ो पर, अस्तर लगाने वाली झिल्ली तथा आंतो में सूजन होजाती है, पैर के पंजे बेडौल होजाते हैं, सिफलिस के गठिया की सबसे खास पहिचान यह है कि पीड़ा रातमे अधिक होती है।

कभी चूनड़ में दर्द होता है, कभी छाती में। छाती की हड्डी, टागकी हड्डी और हसली की हड्डी को दवाने से दर्द होता है, रोगी कभी २ सोता २ चौक पड़ता है।

(३) अवस्था

रोगी की सम्पूर्ण शरीर की बनावट में रोग का जहर भर जाता है।

हड्डी और देहके भीतरी विभाग तकभी रोगाकान्त हो जाते हैं, खानेदार झिल्ली व पट्ठो में जगह २ गुमड़ियाँ पैदा हो जाती हैं, जिन्हे *Gumatus tumaur* कहते हैं।

इस दर्जे में रोगी की मौत ही होजाती है।

(२) पैतृक सिफलिस

Hereditary canstitutional Syphilis

इसके Inpantile syphilis भीकहते हैं इसका वर्णन बच्चो की गर्मी के नाम से बाल रोग प्रकरण में हुआ है। संक्षेप में भी इसके ऊपर दो शब्द लिख दिये जाते हैं।

पैतृक गर्मी में यह आवश्यक नहीं है कि लिंग पर घाव हो, शरीर के किसी भी हिस्से में चकत्ते हो जाते है। ऐसा भी होता है, कि यह गर्मी बचपन में न होकर भरी जवानी में होजाती है जिससे चरित्रवान् युवक के चरित्र पर भी सदेह होने लगता है।

सिफलिस की भयकरता

सिफलिस की भयकरता का ज्ञान सवसे अच्छा उन्हीं को होना है, जो इसके शिकार होते हैं। इसके रोगी के कपड़े पहनने, थूक लगने, घाव की पीब लगने. रोगिणी का दूध पीने, रोगी के साथ खान पान करने आदि से इसका असर दूसरे पर भी हो जाता है। ऐसी दशा में जहां छूत लगती है वही घाव हो जाता है। दैहिक स्वास्थ्य मिट्टी में मिलने लगता है। सारी देह में चकत्ते पड़ जाते है, खून एक दम खराव हो जाता है, और बड़ी दिक्कतो से कही ठीक हो पाता है। गर्मी से दूसरे रोग भी हो जाते हैं, जिनमें २-१ का वर्णन पहिले भी आया है। उनके अलावा निम्न पुरस्कार और मिलता हु।

सिफलिसी इनाम

(१) लिंग का घूघट वन्द हो जाता है, खुलता नहीं है।

(२) जांघ की गिल्टियां सूज जाती हैं।

(३) लिंग पर एक सुकड़ा हुआ दाग पड़ जाता है।

(४) सुपारी की लकीर के पास मस्से पैदा हो जाते है, और वहां खुजली चलने लगतीं है। घाव आराम होने के बाद में भी यह हो जाते हैं।

(५) लिंग के उपेक्षा करने पर सड़ और गल जाता है।

(६) वीर्य में गर्भ धारण की शक्ति नहीं रहती

(७) स्त्रियो के डिम्बकोष अस्तव्यस्त हो जाते हैं

आयुर्वेद से सिफलिस

आयुर्वेद में इसे फिरंगरोग कहते है। संक्षेप में इसे ३ तरह का माना है।

(१) बाहरी।

(२) भीतरी।

(३) बाहरी भीतरी दोनो।

(१) बाहरी फिरग फोड़े के समान होता है, उसमें पीडा होती है, और वह व्रण के समान फूटता है।

(२) भीतरी में सूजन होती है, आमवात की पीड़ा होती है, यह सन्धियो में होता है।

(३) दोनो जगह होता है, और सब चिह्न होने है। दुर्बलता, बलनाश, नाक का बैठजाना, हड्डियो का सूजना और टेढ़ी तिरछी होना, आदि इसके उपद्रव माने है।

सोजाक

Gonorrihoea

यह शब्द फारसी का है, डाक्टर लोग जिसे गनोरिया *Gonorrihoea* कहते हैं, उसे ही यूनानी हकीम सोजाक कहते है। सोजाक के नाम से ही हमे ऐसे मरीज का स्मरण हो जाता

है, जिसकी लिङ्गेन्द्रिय के भीतर घाव हो रहा हो, पेशाब करती समय जलन होती हो, और मूत्र नली के रास्ते पीव निकलती हो। मारे जलन के मरीज हाथ मारता है, यह देखकर ही हम उस के रोग की वास्तविक स्थिति का अनुमान कर लेते हैं सोजाक बड़ा पाजी रोग है, हम यह सिद्ध करेंगे कि यह पुरुषो को ही नही स्त्रियो को भी होता है. और इसका उद्‌गम स्थल भी स्त्रियो का योनिकेन्द्र ही है, पहिले यह रोग स्त्रियों को ही होता है और वाद में पुरुषो को, यद्यपि एक जगह इसका अपवाद भी है? वाद में इसका प्रचार होता है, एक दूसरे से एक दूसरे को होता रहता है।

हां तो, स्त्रियो को सोजाक होता है। किन्तु मूत्रपथ के चौडा होने के कारण उन्हें अधिक वेदना का अनुभव नहीं करना पड़ता, यद्यपि जलन और वेदना होती उनको भी है। स्त्रियो का रोग पहिले योनि में होता है, वाद में उसके जहरीले कीड़े मूत्रनली में पहुचते हैं, वहा से जलन शुरू होने लगती है, फिर धीरे २ वह कीड़े गर्भाशय तक पहुँच जाते हैं। वस, वहुत सी स्त्रियां तो तभी से जन्म भर के लिये वाझ हो जाती हैं। इस त ह स्त्रियो के हृदय की सबसे कोमलअभिलाषा जरा सी असावधानी से सदा के लिये कुचल दी जाती है। आधुनिक विद्वानो का यह विश्वास है, कि पुरुषो की अपेक्षा यह रोग स्त्रियो के लिये अधिक घातक और भयानक होता है, वास्तव में यह कथन युक्ति युक्त भी जान पडता है। अस्तु।

सोजाक क्या है? यह जानने के पूर्व यह भी समझ लेना आवश्यक है कि आयुर्वेदिक साहित्य में इसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। खींच तान के वहुत से विद्वन इसे प्र मेह सिद्ध करना चाहते हैं, कई इसे मूत्रकृच्छ्, ही करार देते हैं और कई कहते हैं यह मूत्राघात है। किन्तु असल में यह न औपसर्गिकमेह ही है, न मूत्रकृच्छ्र है और न मूत्राघात ही है। सोजाक स्थानिक रोग है सार्वाङ्गिक नहीं। किन्तु प्रमेह सार्वाङ्गिक रोग है, उसका सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से नही, किन्तु सारे शरीर से है। प्रमेह जहां मूत्र का विकार है, धातुओ की विकृत दशा का व्यापार है, वहां सोजाक लिङ्गन्द्रिय की स्थानिक विकृति हैं। प्रमेह वस्ति का रोग है, सोजाक लिङ्ग का प्रमेह होता है, वातादि दोष के विकृत होने पर और सोजाक होता है, दूषित सभोग से जहरीले जन्तुओ के विकार से, सोजाक का सम्बन्ध किसी और जगह से नही है। किन्तु प्रमेह का सम्बन्ध यकृत आदि से है। प्रमेह रोगी का शरीर दिन २ घुलता रहता है। किन्तु सोजाक में ऐसा नही होता।

प्रमेह जहा साधारण कारणो से हो जाता है, सोजाक वहां कभी दूषित संसर्ग के विना नहीं होता, जहां प्रमेह में धातुएं गिरती हैं वहांसोजाक में नही, सोजाक में तो केवल पेशाब नली के भीतरी घावो से पीप मात्र वहती है। इन दोनो रोगो के कारणो में वहुत अन्तर है, और चिह्नो में भी, इसलिये सोजाक प्रमेह से कोई दूसरी ही चीज है।

मूत्रकृच्छ्—मूत्राघात और सोजाक में थोडा सादृश्य जरूर है, किन्तु विभिन्नता भी जरूर है, सोजाक मे गिरने वाले पीप के चिन्ह किसी से भी नही मिलते। अलावा इसके कारणो में भी वहुत अन्तर है, यहां भी प्रमेह की तरह दोष ही कुपित होकर वस्ति स्थान कोक्षुब्ध वनाते हैं, जलन करते हैं, परन्तु सोजाक में ऐसा नही होता।

कहना ही पड़ेगा कि सुजाक इन सब से ही अलहदा एक रोग है, जिसके कीडे होते हैं, और 'गोनोकाकाई' कहते है, इसीलिये इस रोग को

गनोरिया Gonorrhoea कहते हैं सुजाक वाली स्त्रियो के साथ मैथुन करने से मूत्रनली के रास्ते वह कीडे लिंग में घुसकर अपनी कारस्तानी करते हैं। सुजाक में घाव होता है अदर और सिफलिस Syphilis में वाहर, यह इन दोनो का अन्तर है

सुजाक क्यों होता है

वैश्या व्यभिचार से रजस्वला के साथ संगम करने से नशीलीचीजें खाकर मैथुनकरनेसे सुजाक होता है आजकल ज्यो २ सभ्यता वढती जाती है त्यों २ हमारी विलासिता भी वढ़ती जाती है विलासिता के साथ ही कामुकता भी बहुत बढ गई है वासना ने हमारे ऊपर वड़ा जवरदस्त अधिकार जमा लिया है, जिसके फल स्वरूप हम वहुत ही ज्यादा व्यभिचारी हो गये हैं, शहरो की वैश्याओ की संख्या इसका प्रमाण है। हम वैश्या व्यभिचार करते हैं, अपनी गाढ़ी कमाई का रुपया उनके चरणो पर चढाते हैं, और उनसे लेते क्या हैं? सोजाक, गर्मी, जैसे घृणितरोग, इससे ज्यादा और पतन क्या होगा? घर की स्त्री से वैसे तो व्यभिचार करते ही हैं, रजोधर्म के समय भी उस वेचारी को चैन नहीं लेने देते। उस समय के मैथुन का परिणाम यह होता है, कि रज, दूषित रज के कीटाणु लिंग नली में घुसकर ये रोग पैदा करते हैं, फिर कालांतर में उसी तरह वे कीड़े स्त्री को रोगिणी वना देते हैं। वेचारी अवला इस तरह कितनी आफतो का सामना करती है, वहुत सी तो बांझ तक हो जाती हैं। जो स्त्री अपने जीवन में फूल जैसे कई बच्चे पैदा करती, वही वांझ होकर कैसे अपने आप को भार स्वरूप हो जाती है, यह सहज ही समझा जा सकता है, घरो के घर इस तरह वरवाद होजाते हैं, और कसूर मंढ़ते हैं ईश्वर के सर, भाग्य के सर, कितनी वीभत्सता है?

वेश्या गमन से भी इसी तरह सर्वनाश होता है, उनके यहां बीसियो आदमी आते हैं, और सबका वीर्य उनकी योनि में गिरता है, सड़ा हुआ वीर्य भी होता है, और ऐसा भी होता है जिसमें गर्भोत्पादक कीड़े नहीं होते, फिर रज के साथ मिलकर वहां ऐसे कीटाणु पैदा हो जाते हैं, जो कुत्ते के नाक में चढ़ाने से उसे मार देते है, वही कीटाणु जब लिंग के रास्ते मूत्रनली के भीतर जाकर जख्म कर देते हैं, तव हमें होश आता है, एक प्रसिद्ध डाक्टर ने हिसाव लगाके बताया है, कि शहर की वेश्या के द्वारा ५० आदमियो को केवल सोजाक हुआ, गर्मी वालो की सख्या अलग है फिर उन ५० आदमियो से उन ५० की स्त्रियो को हुआ, और इसी तरह जहां भी वे शैतान डूवे उन स्त्रियो को हुआ। कुल टोटल २१५ वैठा इतने जीवन तो हो गये न सदा के लिये वेकार।

इसका एक दूसरा पहलू भी है। वेश्या गमन करने वाला पुरुष कभी अपनी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकता, और अपनी कमाई सब वेश्या को सौंपता है, एक तो वह धन ही चुड़ैलके पास जाता है, दूसरे उस व्यभिचारी के घर के फांके उड़ाते हैं व्यभिचारियो की स्त्रियां भी अक्सर व्यभिचारिणी ही होती हैं, सारा का सारा घर ही वैकुण्ठ को पहुंच जाता है। जो हो, हम वेश्यागमन पर कुछ नहीं लिखते सोजाक की भीषणता पर लिखते हैं।

प्रथम तो ऐसे पुरुषो को सन्तान होती नहीं और जा-वजा होभी जाती है, तो वह सोजाक का जहर साथ लिये ही होती है। ऐसी औलाद कभी चिरजीवी नही होती, न कुछ कर सकने लायक ही होती है।

डाक्टरो का तो कुछ विश्वास है कि इसके कीड़े पीढ़ियो तक चलतेहैं, और एक दूसरे के पास पहुँचते रहते हैं, एवं न कभी दवा खिलाने से

मरते ही हैं, अलबत्ता दवा के प्रभाव से कुछ दिन के लिये निश्चेष्ट अवश्य हो जाते है। २० वर्ष का पुराना रोग फिर उभड़ जाता है, और उसी तरह तग करता है।

विदेशियो की यह विभूति हमारा सर्वनाश करने पर ही तुली बैठी है। गर्मी और सूजाक ये दो रोग भारत में नये हैं, इन्हे लाने का सौभाग्य इन सफेद चमडी वाले गोरो का है। शासको की दया से शासितो को ऐसीही विभूतिया मिलती हैं। ये रोग यूरोप से बगदाद वगैरह मुस्लिम देशो में होते हुये यहां आये इसीलिये प्राचीन आयुर्वेद में न गर्मी का जिक्र है, न सूजाक का। यूनानी हकीमो ने इसका स्वाद चख लिया था, इसलिये उन्होने अपने ग्रथो में इसका उल्लेख किया है, गर्मी सोजाक जैसे पाजी रोग और बहुत ही कम हैं, थाईसिस, कालरा, जैसे दो चार हैं, सो वे भी इतने नहीं, जो इनके पजे से बचा है, उसे धन्यवाद ही देना होगा।

सोजाक के चिह्न

आधुनिक विद्वानो के कथनानुसार इस रोग की चार अवस्थायें होती हैं, इनमें धीरे २ लक्षणो का भी परिवर्तन होता है।

(१) अवस्था

प्रसंग के ८ घटे बाद ही पहिली अवस्था के चिह्न प्रगट होजाते हैं। किसी २ को कुछ काल ठहरकर, इस अवस्था में मूत्रनली में प्रदाह होने लगता है, उसका मुंह गीला. लपलपा और सरसराहट के साथ कुछ खुजली भी मालूम होने लगती है, इस समय कइयो की नाडी भी पहिले की अपेक्षा जल्दी चलने लगती है। बाद में मूत्रनली का मुंह सुर्ख हो जाता है, भीतर से पतला एव सफेद श्राव होने लगता है, चमडा रूखा हो जाता है,कमजोर पुरुष, स्त्री को ज्वर भी होजाता है, हृदय में धड़कन होने लगती है, कब्ज होजाती है। ३-४ दिन तक यह दशा रहती है। इसमें सर में चक्कर सा भी आने लगता है, किसी काम में रुचि नहीं रहती। बाद में—

(२) अवस्था

शुरू होती है, यह १४-१५ दिन तक रहती है, यह बड़ी भीषण अवस्था है। इसमें भयंकर जलन होने लगती है, पीव खूब निकलती है. मूतने की इच्छा होती है, किंतु मूत्र नही उतरने से भीषण वेदना होती है। लिग एकदम कड़ा हो जाता है, जोरदार सनसनी होने लगती है डाक्टरी के अनुसार इस अवस्था को Chardı कहते हैं, इसमें कभी २ लिंग टेडा भी होजाता है. आगे बढ़कर मुण्ड चर्म Rıcpuce जलन के साथ २ फूलने लगता है। कोशिश करने पर भी मुण्ड बाहर नही निकल सकता, डाक्टरी वालेइसे Phyrmasıs कहतेहैं, कभीर मुण्ड चर्म पिछली तरफ भी होजाता है अडकोपोमें भी दर्द उठने लगता है।

(३) अवस्था

इसमें कोई विशेष बात नहीं होती। पुराने चिह्न ही रहते हैं, हा, जलन कुछ २ बढती और घटती रहती है. यह दशा कोई निश्चित समय तक नही रहती। जब वेदना कम होने लग जाय और पीप में भी कुछ रङ्ग बदल होजाय तब समझना चाहिये कि—

(४) अवस्था

प्रारम्भ होगई है, इस दशा में जलन कम होती है पीब का रग कभी २ पीला और कभी २ सफेद होजाता है; रोग पुराना होने पर आगे को बढ़ता है इसलिये वाह्य वेदना कम होजाती है। फिर इसके—

सोजाकी इनाम

शुरू होते हैं। अण्डकोष प्रदाह Aıchitıs प्रायः सोजाक के बाद में होता है। यह साधारण

उपद्रव नहीं हैं, मारे जलन के रोगी चिल्लाने लगता है। यह दशा कुछ खराबी करने से होती है, Prastategland अण्डकोष अर्द्ध स्थानीय जलन, यह दूसरा उपद्रव है। इसमें नीचे के भाग में जलन होने लगती है, मूत्र रुक' २ के और दर्द के साथ उतरता है, Stricture लिंग की सकीर्ण दशा, यह भी भयंकर उपद्रव है। मूत्र की धार बहुत पतली होजाती है, ऐठन मालूम होने लगती है और मूत्र रुक भी जाना है, जो कि दिक्कतो से कही बाहर निकलता है।

Gonorrhoea-'heumatism सुजाक से पैदा होने वाला वातरोग। जब पिचकारी देने से पीव बन्द होजाता है, बाहर नहीं निकल पाता, तब, उसे वायु इधर उधर ले जाता है, जहां वह जायगा वहीं दर्द होने लगेगा, इसके कीड़े जहां पहुँचेंगे वहीं गड़बड़ मचावेंगे इसके अलावा Gonorrhoeal-apthaemia सोजाकसे होने वाला चक्षु रोग भी भयकर उपद्रव है। रोग का जहरीला पीव जब किसी तरह आंखोमें लग जाता है, तब आंखें फूल जाती हैं, प्रदाह होता है, पक जाती हैं।

Deep बाघी यह भी साधारण उपद्रव नहीं, इसमें तो नाक दम होजाता है।

Phymosis घुंघट की तंगी, Chordea विना इच्छा ही लिंग की कठोरता।

Pasthaitis लिंग की सूजन, गुर्दे की सूजन, रक्त बहना, पेडू की सूजन आदि उपद्रव हो जाता है।

उपदंश

उपदंश और सिफलिस मेंआजकल के विद्वान कोई अंतर नहीं मानते, सब तो नहीं, हां कुछ संख्या ऐसी है जो उपदश का नवीन संस्करण सिफलिस को बतलाती है, उपदश और सिफलिस में उतना ही अन्तर है, जितना पूर्व और पश्चिम में है। लक्षणों का अन्तर तो है ही, एक और अंतर है जो विचारणीय है। आयुर्वेदिक साहित्य का सब से नवीन ग्रथ है भावप्रकाश, इसके रचियता भावमिश्र ने फिरग रोग का पृथक् ही निर्देश किया है, जिससे सहज ही समझा जा सकता हैकि आजकल के सभ्य भाषा के शब्दों में हम जिसे सिफलिस कहते हैं, वह उस समय के शब्दो में फिरंग रोग है, फिरग का आगमन गोरी चमड़ी वाले शैतानो के द्वारा हुआ है, ये भले आदमी ही इस बेहूदे रोग को लेकर भारत में आये थे। फिरंग रोग की भीषणता और व्यापकता ऐसी थी कि इसका नाम ही फिरंग पड गया। मुगल काल में विदेशो से अग्रेज फ्रेञ्च, आदि बहुत से आदमी आते थे' साथ म वे अपनी स्त्रियाँ को भी लाते थे, फिर जिन नीच भारतियो ने उन से सभोग किया, उन्ही को फिरंग रोग हो गया, बढ़ते २ इसका प्रचार बहुत हो गया।

सिफलिस के कीड़े होते है, किंतु उपदंश हाथ की चोट लगने से भी होता है। विना कीड़ो के किसी को सिफलिस नहीं हो सकता, और इसकी व्यापकता भी उपदंश से बहुत अधिक है।

सिफलिस का जहर एक दूसरे को फौरन लग जाता है, और सिफलिस का रोगी कालांतर में सभोग करने योग्यभी होजाता है. किन्तु फिर भी उसकी देह में सिफलिस का जहर रहता है, यद्यपि उपदंश रोगी भी कालांतर में सभोग योग्य हो जाता है मगर फिर उसके शरीर में कोई विकार नहीं होता, उपदश का प्रभाव केवल लिंग पर होता है, और भीषण दशा में केवल लिंग ही गल कर सडता है किंतु सिफलिस का प्रभाव तो सारी देह पर होता है हाथो, पैरो और गर्दन आदि में गांठें निकल आती हैं, नाक बैठ जाती है, और आंखें

अधी हो जाती है। यह भी बात ध्यान देने की है, कि उपदंश स्त्रियों को नहीं होता, किंतु गर्मी सिफलिस हो जाती है।

सिफलिस की और उपदंश की फुन्सियों में भी बहुत अन्तर है, जिसका परिचय दोनो का वर्णन अलग किया जायगा, यहा केवल उपदंश के विषय की बातों का उल्लेख होगा।

उपदंश क्यो होता है।

जिन कारणो से उपदंश होता है, अब उन पर भी नजर निक्षेप कीजिये।

(१) लिंग पर हाथ की चोट लगने से।

(२) नख या दांत से घाव हो जाने से।

(३) मैथुन के बाद लिंग को न धोने से, जिससे कि वीर्य लिङ्ग के ऊपर लिपट कर बदबू मारने लगता है, साथ ही स्त्री का रज भी लिंग पर लिपा रहता है।

(४) पशुओ में संभोग करने से।

(५) गुदा मैथुन करने से।

(६) व्यभिचार करने से।

(७) स्त्री की योनि की खराबी से, जब कि उसमें कोई रोग होता है। रजोवती स्त्री के साथ संभोग करने से भी उपदंश हो जाता है।

पहिले कारण से मतलब है, हस्तमैथुन से। इससे कभी न कभी लिंग पर चोट लग ही जाती है। फिर हस्तमैथुन करने वाले के शरीर में वीर्य तो रहता नहीं, खून निकले लगता है, वह खून कभी रुक कर उपदंश पैदा कर देता है। स्त्रियो की योनि में कई खराबियां होती हैं, जिनका उल्लेख स्त्री-रोगो में किया है, इन खराबियो से भी उपदंश हो जाता है। रजोरोध, अतिरज, योनिप्रदाह, आदि कारणो से रक्तज उपदंश होता है।

उपदंश के भेद

(१) वातज उपदंश

(२) पित्तज उपदंश।

(३) कफज उपदंश।

(४) त्रिदोष उपदंश।

(५) रक्तज उपदंश।

(१) वातज उपदंश

लिंग पर जो फोड़ा होता है, जो बाद में फट कर घाव भी हो जाता है, कलौंस लिये होता है। उसमें सुई चुभने जैसा दर्द होता है चीरने जैसी पीडा होती है, और उसमें रह२ कर चुभन होती है।

(२) पित्तज उपदंश

पीली, कुछ २ लाल, फुन्सिया पित्त के उपदंश में होती हैं, इनमें खुजली चलती है, जलन होती है, और क्लेद बढ़ता है, देखने में मास जैसी मालूम होती है।

(३) कफज उपदंश

कफ के उपदंश का फोड़ा, खुजली, युक्त सूजन दार, सफेद, कडा, बड़ा, और स्राव युक्त होता है।

(४) त्रिदोषज उपदंश

जिसमें सभी चिह्न होते हैं, वह त्रिदोषज उपदंश होता है।

(५) रक्तज उपदंश

फोड़ा काला होता है, खून बहुत बहता है, पित्त के लक्षण होते हैं, बुखार जलन और सूजन होती है। खूनका गिरना इसकीखास बिशेषता है।

उपदंश की असाध्यता

मांस गलने पर उपदंश असाध्य हो जाता है। उपदंश के होते ही इसकी दवा करनी चाहिये किन्तु जो इधर कुछ ध्यान नही देते उनके लिंग में कीड़े पडजाते हैं, और लिंग गलकर सड़ जाता और गिर पड़ता है।

नपुंसकता नामर्दी

नपुंसकता क्या है?

नामर्दी कितना घृणित शब्द है, पुरुषत्व हीन पुरुष, कितना लज्जित वाक्य है, लोग नामर्द हैं

कितनी शर्म की वात है, फिर भी नामर्दों की सख्या क्रम नही है। नपुंसकता के मानीहैं क्लैव्य नपुंसक आदमी कोक्लीव कहते है, हिजड़ा कहते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टि से विचार करने पर नपुंसक का लक्षण स्पष्ट है, जो संभोग नहीं कर सकता जिसकी लिङ्गेंद्रिय मैथुन के योग्य नही, जो रति सुख नही पा सकता, वह नपुंसक होता है।

चाहने और करने में बडा अन्तर है, वहुत से आदमी मैथुन शक्ति के होने हुये भी सभोग नहीं करते, नही चाहते, वे नपुसक नही कहला सकते, नपुंसक वे ही होते हैं, जिसमें मैथुन शक्ति होती ही नही, जो कर सकते हैं, किन्तु करते नही वे नपुंसक नहीं हाते, अपितु नपुंसक वे ही होते है जो चाहते हैं, किन्तु कर नही सकते। अस्तु नपुंसकों की वढ़ती हुई संख्या का अनुमान तो हम समाचार पत्रो के विज्ञापनो ही से कर सकते है, लोग दवा खा २ कर मैथुन करना चाहते है, यह सचाई स्पष्ट ही प्रतीत हा जाती है।

हमारा आधुनिक वातावरण भी नामर्दी की सृष्टि कर रहा है, यह कहना कुछ असगत नहीं हा सकता, गावो की वात छोड़िये, शहरो का घृणित जीवन आज इतना वीभत्स हा रहा है, जिसकी कल्पना भी नही कर सकते, लोग इस तरह बुराइयो में जकडे हुये हैं, जिसका जिक्र करना मुश्किल होगा। खुदा ही जाने आगे चल कर इसका भविष्य क्या होगा।

नपुंसकता वैसे तो वीर्य सम्बन्धी वीमारी है फिर भी इसका सम्वन्ध लिङ्गेन्द्रिय से पूरा२ है। यह पुरुषो का खास रिजर्व रोग है, स्त्रियो का सौभाग्य है जो प्रकृति ने उन्हे इस शैतान रोग से बचाया है।

हां तो नपुंसक उसे कहना चाहिये, जिसके हृदय में तरंगें तो उठती हैं, लेकिन संभोग करने की शक्ति नही। भावप्रकाश में लिखा है—

क्लीवः स्यात् सुरताशक्त स्तद्भावः क्लैव्यमुच्यते।
तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते॥

चरक में भी साफतौर से लिखा है—

"वीर्य दोषसे नपुंसकता होती है पुरुष नहीं रहता है बल्कि अपुरुष हो जाता है।"

उपरोक्त श्लोक में कहा है कि नपुंसकता सात प्रकार की होती है, हम इस पर भी प्रकाश डालेंगे कोई विद्वान चार तरह की नपुंसकता मानते है, कोई ५ तरह की, और कोई ७ तरह की। जो हो, यहांपर हम सभीपर विचार प्रकटकर देनाचाहते हैं।

नपुंसकता के ७ भेद

(१) मानसिक क्लैव्य।
(२) पित्तजक्लैव्य।
(३) वीर्यजन्यक्लैव्य।
(४) रोगजन्य क्लैव्य।
(५) शिराछेदजन्य क्लैव्य।
(६) शुक्रस्तम्भन जन्य क्लैव्य।
(७) सहज क्लैव्य।

यह सात तरह की नपुंसकता है। सबसे पहिले इसी का बिवेचन किया जाता है। पहिली नपुसकता का नाम है मानसिक क्लैव्य। क्लैव्य शब्द यहां नपुसकता का बाचक है, यह भी याद रखना चाहिये।

मानसिक क्लैव्य (नामर्दी)

अर्थात् मन से पैदा हुई नामर्दी। प्रश्न उठ सकता है, भला कहीं मन से भी नपुसकता पैदा हुई है? और ऐसा लठ है कौन, जो जानवूझकर नपुसक बनना स्वीकार करे? इसका उत्तर स्पष्ट है, सुनिये मानसिक क्लैव्य यानी मन से पैदा हुई नपुंसकता उस अवस्था में पैदा होती है, जब मन के ऊपर कोई सदमा गिर पड़ता है, मन ही तो सब कार्यों का विधायक है, जब तक मन सजग नहीं होगा, मनुष्यभला क्या खाक कर सकता है?

गीता में श्रीकृष्ण के सामने अर्जुन ने मन की अवस्था का स्पष्टीकरण किया है, मन ही क्षण २ में मनुष्य की मेधावी शक्ति को सचालित और स्थगित करता है, जब मन चाहता है, तभी मनुष्य खाना खाता है, बिना मानसिक इच्छा के ससार में कोई कार्य संचालित नहीं होता, और अगर होता है तो, वह परिपूर्ण अवस्था में नही पहुँचता जब मन किसी चीज पर से हट जाता है, फिर लाख समझाने पर भी मनुष्य उस चीज को स्वीकार नहीं करता।

मानसिक नपुसकता उस अवस्था में उत्पन्न होती है, जब मन दुःख, शोक, भय आदि विकारो से बिगड़ जाता है। कोई आदमी दुःखित मन से अगर संभोग करेगा तो वह फौरन नपुंसक वन जायगा, अथवा पहिले ही बन जाता है।

इच्छा विरुद्ध सभोग करने से मानसिक नपुंसकता पैदा होती है। अथवा मन के अदर नपुसकता के भाव भर देने से भी ऐसा होजाता है। सभोग शक्तिको क्षीण होनाही तो नपुसकता है, फिर सभोग के लिये उत्तेजना भी तो मन से ही होती है। प्रायः ऐसा भी होता है, कि मनुष्य, ऐसी स्त्री के साथ संभोग करता है, जिससे वह मानसिक घृणा करता है, ऐसी अवस्था में चैतन्यता नहीं रहती। मनुष्य का मन सदा के लिये इससे विरक्त हो जाता है।

निर्वेद, ग्लानि, भय, शोक आदि ही इसके जन्मदाता है। वीर्य के शुद्ध होने पर भी यह नपुसकता हो जाती है। मगर इसमें कोई आश्चर्य की बात नही। वहुत सी स्त्रियां ऐसी निर्लज्जाहोती हैं, जो स्वस्थ पुरुष को भी दुत्कार देती हैं, उनकी पुरुषता पर मजाक उड़ाती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि, वह स्वस्थ होता हुआ भी मन में समझ लेता है कि मै नपुंसक हो गया, बस सारी सभोग शक्ति खतम हो जाती है।

मानसिक नपुसकता कोई ऐसी नपुंसकता नहीं है, यह तो मानसिक भावो का दुष्परिणाम है। इस अवस्था में मनुष्य का मन ही प्रधान कारण है, सभोग के समय पुरुष का कर्तव्य है, कि वह किसी तरह का सकोच न करे. लज्जा न करे, और न अपने हृदय में विकारो को ही उठने दे। उस समय उसे अपने दिमाग को तरोताजा रखना चाहिये। मन के अदर सबलता रखनी चाहिये। ऐसे भाव हृदय में उठने ही नहीं चाहिये कि, मैं सभोग नही कर सकता, या स्त्री की उत्तेजना को शांत नही कर सकता। अस्तु,

पित्तज क्लैव्य (नामर्दी)

शरीर में तीन दोप हैं, वात, पित्त, कफ इनमें जब पित्त अपनी सीमा से अधिक बढ़ जाता है, फौरन नपुंसकता पैदा कर देता है। जो द्रव्य पित्त को पैदा करते है, बढ़ाते हैं, उनका सेवन करने से ही यह नपुसकता पैदा होती है, कुछ द्रव्य ऐसे है जो वायु को बढ़ाते हैं कुछ ऐसे है, जो पित्त को बढाते है, और कुछ ऐसे हैं, जो कफ को बढ़ाते हैं। हर एक की सीमा होती है। मधुर रस अगर उचित परिणाम में खाया जाय तो वह शरीर के स्वास्थ्य को सुन्दर वनाताहै, मगर वही मधुर रस जब अधिक मात्रा में खालिया जाता है, तो शरीर में कई रोग पैदा कर देता है।

पित्तमम्लाच्चजायते

अम्लादि रसो से पित्त पैदा होता है। पित्त का पैदा होना शरीरके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक नही अनिवार्य भीहै, मगर जब पित्ताशयमें अधिक पित्त इकट्ठा हो जाता है, तो वीर्य को नुकसान पहुचता है।

चरपरे, खट्टे, खारी, गरम, ऐसे पदार्थों के अधिक सेवन करने का नतीजा यह होता है कि, पित्त बढ़कर अपनी मर्यादा का उलंघन कर देता

है। बांध टूटने पर पानी जैसे इधर उधर फैल जाता है, ठीक वही हालत यहां पित्त की होती है. पित्त बढ़कर वीर्य पैदा करने वाली धातुओ को विगाड देता है। ठीक तौर से वीर्य बनने नहीं पाता, फिर वीर्य नही वनेगा तो नपुंसकता होगी ही, यह निश्चित है।

अति सर्वत्र वर्जयेत

महत्त्वपूर्ण पथ्यांश की पर्वाह न करने वालो को अन्त में नपुंसक होना पड़ता है।

बढ़ना और कुपित होना, साधारणतः एक ही बात है, बढ़ा और कुपित हुआ, बस इसका यही नियम है। शरीरस्थ धातुओ का तो सदा साम्य रहना ही श्रेष्ठ है।

यह सभ्यता का युग है, भारत में नौकरशाही का डका वज रहा है, लोगो की प्रवृत्ति दिन २ उच्छृङ्खल होनी जा रही है, प्रकृति और ऋतु विरुद्ध खान पान की लोग कुछ पर्वाह नहीं करते करें भी क्यो ? सभ्यता का युग जो ठहरा। नित२ नई चीजें जब तक उदरविवर में नहीं पहुँचती, श्रीमान की उदराग्नि शान्ति ही नही होती।

लालमिर्च, खटाई, चरपरी चाट खाना आज साधारण बात है फिर पित्त का बढ़ना और नपुन्सकता का होना भी साधारण बात है, चट पट्ट का कैसा मजेदार फैसला होता है ?

पित्त जब बढ़कर कुपित हो जाता है, फौरन वीर्य पर अपना कब्जा कर लेता है, जो मौजूद है, उसे तो विकृति बना देता है और पैदा, नही होने देता। बस सारा खेल खतम हुआ। विकृति वीर्य के जो परिपाक होते है, उनको वतलाने की इस समाज के नवीन युग में कोई विशेष जरूरत नही है। ऐसे नामर्दों का वीर्य बहुत पतला पानी जैसा होजाता है, और जब निकलता है, फटा हुआ सा होता है, ऐसी अवस्था में प्रथम तो, नामर्दी के कारण मनुष्य की संभोग शक्ति मारी जाती है और अगर मरपचकर, अपनी नाक रखने केलिये वह सभोग करता भी है, तो बहुत शीघ्र शिथिल और स्खलित हो जाता है, शीघ्र स्खलित होना, इसका एक साधारण सा फल है। फिर जिस स्त्री से यह सभोग करता है, वह स्त्री भी स्वस्थ नहीं रहने पाती, रजदोष से पीड़ित हो जाती है।

पित्त स्वभावतः गर्म है, फिर पित्त दूपित वीर्य जब योनि में जाता है, भीतर जाकर एक हलचल मचा देताहै, अपनी गर्मी से कुछ न कुछ अशांति कर ही देता है, योनि दाह अक्सर ऐसी दशा में होता है, यद्यपि उसके और भी प्रथक् कारण है। अस्तु।

(३) वीर्य जन्य क्लैब्य (नामर्दी)

इसका मतलव यह नहीहै किवीर्य, ही मनुष्य को नामर्द वना देता है। वीर्य स्तम्भन से भी यद्यपि एक प्रकार की नामर्दी पैदा होती है, जिसके विपय में हम आगे चलकर लिखेंगे, मगर यहां उससे अभिप्राय नहीं है। यहां तो वीर्य की कमी से जो नामर्दी होती है, उसका जिक्र है। मैथुन की प्रवृत्ति प्रायः सभी में है, अगर प्रायः शब्द को हटा दिया जाय तो और भी अच्छा हो। मनुष्य पशु, पक्षी सभी मैथुन करते है। एक मनुष्य जैसे मैथुन करता है, एक पशु भी उसी तरह मैथुन करता है। सभोग शक्ति जितनी मनुष्य में है, उतनी ही एक पशु और पक्षी में भी है। मनुष्य और पशु में इस विपय में कोई अन्तर नही है, जैसा ही मनुष्य है, वैसा ही पशु है।

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषः
धर्मेणहीनाः पशुभिः समा ः॥

कैसा सुन्दर पद्य है। आज की मनुष्य जाति के लिये बहुतही उपयुक्त है, कवि कहता है, मनुष्य भी खाता है, पशु भी खाता है, मनुष्य भी सोता है, पशु भी सोता है, मनुष्य भी डरता है, और पशु भी डरता है, फिर हम पूछते हैं, मनुष्य और पशु में, फर्क ही क्या है? जैसा मनुष्य वैसा ही पशु, कोई अन्तर नहीं, खाना, पीना, सोना, बैठना सब एक है। फिर फर्क काये का? कुछ भी तो नहीं। फिर मनुष्य और पशु एकसा है! हां, मगर नहीं, कुछ फर्क है, अन्तर है, विभिन्नता है।

धर्मोहितेषामधिको विशेषः

मनुष्यों में केवल धर्म ही उनसे अधिक है। धर्म के होने से ही मनुष्य, मनुष्य है और धर्म के न होने से ही पशु, पशु है। धर्म क्या है? इसका विश्लेषण करना यहां कठिन है। यहां पर हम धर्म के मानी।

धार्यते जगद्यः सधर्मः

समझते हैं। धर्म वह है, जिससे देश, समाज, और जाति की स्थिति अटल रहे, वे अचल रहे, आजाद रहे और उन्नत रहे, धारण करना, अपने हृदय में शुभ विचारो का धारण करना ही धर्म है। पशु, विचार शक्ति से हीन है, और मनुष्य विचारशक्ति से सयुक्त है। पशु अपनी पशुता के कारण विचार नहीं करता और मनुष्य अपनी मनुष्यता के कारण विचार करता है, पशु अपने हानि लाभ को नही सोचता और मनुष्य सोचता है, पशु अपने खान पान में मस्त-रहता है, उसको किसी के भले बुरे से कोई सरोकार नहीं। कोई मरे और कोई जिये, उसकी बला से। वह प्रकृति अनुसार काम करता है। उसकी प्रकृति विचारणा शक्तिहीन है। वह जिस माता के पेट से जन्म लेता है, उसीसे समय पर सभोग कर लेता है, उसकी प्रकृति ही ऐसी है, उसने प्रकृति को अपने काबू में नहीं किया है, यह खुद प्रकृति के काबू में है। प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध वह जरा भी नृत्य नहीं कर सकता, मगर मनुष्य धारणा शक्ति रखता है, विचार शक्ति रखता है, यह आंख मूंद के कोई काम नहीं करसकता। अपने दिमागसे जो अच्छा दिखलाई देता है, मनुष्य वही करता है, इससे प्रकृति पर विजय पाई है।

इसके मानी यह भी नहीं हो सकते कि, मनुष्य सर्व तन्त्र स्वतन्त्र है, प्रकृति पर विजय इसने पाई है जरूर, मगर आजादी के नशे में यह पाशविक काम नहीं कर सकता, और अगर करता है तो वह मनुष्य भी पशु है।

मनुष्य अपनी विवेचना शक्ति से अपने हानि लाभ को स्वयं सोच समझ लेता है, जिन कार्यों से समाज की समुन्नति हो, उनको सोच लेता है, फिर उसके लिये यह जरूरी है कि, वह नशे में मनुष्य से पशु न बने। धर्मात्मा बने, धारणशील बने, बस इसी में उसकी मनुष्यता है। वर्ना।

धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः

धर्महीन, धरणाशक्ति से हीन, मनुष्य नहीं पशु है, मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं। वह मनुष्य नहीं पशु है जो नशे में आकर, मानवीय प्रकृति विरुद्ध कामो का अनुष्ठान करे, उससे अच्छा तो वह पशु है, जो प्रकृति के आधीन रहकर भला बुरा करता है। प्रकृति से मतलब यहां स्वभाव से है। अस्तु।

हा तो, हम बीच में बहुत बहक गये। मनुष्य और पशु की आलोचना ही करने बैठ गये। तो पशु प्रकृति के विरुद्ध काम नहीं करता है, प्रकृति उसको जैसा नाच नाचती है, वह नाचता है, मगर मनुष्य इस तरह नहीं नाचता। नाचता मनुष्य भी है। मगर इस तरह अन्धा होकर नहीं वह या तो विचार शक्ति से प्रभावित होकर नाचता है या नशे में आकर नाचता है।

वह नशा ही मनुष्य को पशु बना देता है, एक तरफ नशा है, दूसरी तरफ विचारणा शक्ति। धारणाशक्ति नष्ट हुई और नशा आया। बस फिर मनुष्य मनुष्य नहीं, पशु है, और पशु से भी बद-तर है। मानव जाति के लिये ऋषियो ने बहुत जीवनोपयोगी नियम बनाये हैं, उन नियमो का पालन करने से मनुष्य मनुष्यता से बाहर नही होता। उन नियमो में एक नियम है।

"ऋतुकालाभि गामीः स्यात्"

ऋतु काल में ही स्त्री के साथ सहवास करे। बिना ऋतुकाल के सहवास करना स्वास्थ्य को हानि कारक सिद्ध हो रहा है, फिर तो यह विलासिता का युग ही ठहरा, जो होजाय वही थोड़ा है।

ऋतुकाल में सहवास करने से मनुष्य स्वस्थ रहता है, वीर्य व्यर्थ नहीं जाता, और ऋतुकाल तक वह एक जगह रुका रहता हैं, दिन २ निकलते रहने से एक तो वीर्याशय में वीर्य की कमी हो जाती है, दूसरे शरीर में चेतना नहीं रहती।

आज की मनुष्य जाति का गार्हस्थ जीवन पशु से भी गया बीता है। नशे के झोक में विलासिता के प्रभाव में इसने मृत्यु से आलिंगन किया है। आलिंगन हो, चाहे वह मृत्युशय्या ही से। समाज शास्त्र के विद्वान् मानव जाति के इस अधःपतन पर रोते हैं, बिलखते हैं। पशुओ से भी गई बीती इस मानव जाति का जीवन आज बड़े खतरे में है।

पशु अपने समय पर संभोग करता है, इस बात से कोई सर नहीं हिला सकता। गधा ग्रीष्म ऋतु में कुत्ता शीत ऋतु में, और भी पशु पक्षी अपनी प्रकृति के अनुसार संभोग करते हैं, वह रात दिन मनुष्यो की तरह संभोग सागर में गोते नहीं लगाते। इसी का फलहै कि आज प्रकृति पर विजय पाने वाला मनुष्य तो शीघ्र यमलोक का अतिथि होता है, और प्रकृति के आधीन रहने वाला पशु चिरञ्जीवि रहताहै। कोई भी पशुअपने समय के विरुद्ध संभोग नहीं करते। शेर अपने जीवन में बहुत कम सभोग करता है, शायद एक ही बार, मगर जब वह संभोग से हटता है, अपने पैर ऊपर को उछाल देता है।

शेर, बलशाली शेर, एक बार के संभोग में चारो खाने चित्त पड़ जाता है, और तीन दिन तक वह बेहोश रहता हैं।

मगर मनुष्य ? मनुष्य तो मनुष्य ही ठहरा, रात दिन संभोग में जुटे रहना उसका आधुनिक नियम है, आज का मनुष्य संयम को लात मारता है, और ब्रह्मचर्य की गर्दन मरोड़ता है, उसका उद्देश्य विलासिता है, कामुक मनुष्य अपने जीवन का ध्येय एक मात्र विलासिता ही रखता है। गुल-छर्रे उड़ाना, चाहे जान से ही हाथ धोना पड़े। इसका नतीजा आज हमारे समाने है।

मनुष्य न ऋतुकी अपेक्षा करताहै, न स्वास्थ्य पर ध्यान देता है, आँख मींचकर और ऊपर को हाथ उठाकर सभोग ही सभोग चिल्लाता है, वह नशे की धुन में सब कुछ भूल जाता है। रजस्वला स्त्री से संभोग कर लेने में भी वह कोई हर्ज नहीं समझता, यद्यपि बाद में उसे सर पीट कर रोना पड़ता है, और डाक्टर, वैद्यो के दरवाजे की खाक चाटनी पड़ती है।

अधिक सभोग करने से नपुंसकता का होना फिर जरूरी है। वीर्य न रहा और पुंसत्व न रहा, रही क्या नामर्दी ! अफसोस।

शरीरमें जो खाया जाता है उसका एक महीने में जाकर वीर्य बनता है, वह भी बहुत ही थोड़ा। इसलिये एक महीने में ही संभोग करना आयुर्वेद ने बतलाया है। मगर आयुर्वेद को माने कौन ? यह तो आज सारहीन और ढकोसला कहा जा रहा है।

स्त्री एक महीने में रजस्वला होती है, और पुरुष एक महीने में वीर्य के तैयार होने पर पुष्ट हो जाता है। बाद में सभोग करने से शरीर के स्वास्थ्य पर भी कोई धक्का नही पहुँचता, और गर्भ-स्थिति होनेपर गर्भ भी स्वस्थ और सबल होता है।

इसके विपरीत जब रात दिन सभोग किया जाता है, न केवल पुरुष को बल्कि स्त्री को भी हानि उठानी पड़ती है, वीर्य की थैली खाली हो जाने से, वीर्य के स्थान में रक्त आने लगता है, फिर बाद में वह रक्त स्त्री की योनि में जाकर रोगो को उत्पन्न कर देता है। वीर्य के स्थान में रक्त निकलना, साधारण बात नहीं है, इसका सौभाग्य तो आजकल की सभ्य मानव जाति को ही मिल रहा है।

बहुत से वेवकूफ ऐसे भी हैं, जो अपनी अशक्तावस्था में भी केवल इसलिये सभोग करते हैं, कि कहीं स्त्री मुझे नामर्द न समझ ले! कितना भीषण पतन है। स्त्री की नजर में मर्द बनने के लिये ही श्रीमान् अनिच्छा पूर्वक सभोग करते हैं, लेकिन उन वेवकूफो से पूछा जाय कि जब एकदम पैर तोड़कर बैठ जाओगे उस समय बीवी जी क्या समझेगी? यही समझेगी कि बड़े भारी दिग्विजयी हैं, अस्तु वीर्य की कमी से जो नामर्दी पैदा होती है, उसमें वीर्य के अभाव से मनुष्य का शरीर फीका पड़ जाता है, युवावस्था में ही चेहरा मुर्झा जाता है, लावण्य रहता नहीं और चेहरे पर विषाद नाचता रहता है। ऐसे नामर्द आवेश में पागलपन के नशे में आकर छुरी तक भी छाती में घोप लेते हैं।

(४) रोग जन्य क्लैब्य (नामर्दी)

वीर्य जन्य नामर्दी के पश्चात् अब हमें रोग जन्य नामर्दी पर प्रकाश डालना पड़ेगा। वीर्य जन्य की तरह आज रोग जन्य भी खूब उन्नत दशा में है, दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की होती जा रही है।

रोगो में उत्पन्न होने वाली नामर्दी को, रोग जन्य क्लैब्य कहा जाता है, आजकलके आदमियो का रोगी होना तो जरूरी ही है। रोग होनेके बाद में क्रमशः नामर्दी हो जाती है, स्वप्नदोष का होना आजकल एक साधारण बात है। फी सदी एक कम सौ आदमी इस रोग से जर्जरित रहते हैं। व्यभिचार से स्वप्न दोष होता है, रात दिन विचार करना, देखना, छूना, चूमना, आदि कारणो से स्वप्नदोष होता है। स्वप्नदोष के मानी है, स्वप्नावस्था में वीर्य का निकल जाना। जब रात दिन मनुष्य एक ही बात को विचारता रहता है, वह विचार उसके दिमाग में घर कर लेते हैं, बाद में स्वप्नावस्था में वे विचार अपना स्वांग दिखाते हैं। खट्टे चरपरे आदि पदार्थों से भी स्वप्नदोष होजाता है। इस तरह जब बिना स्त्री के ही वीर्य निकलता रहेगा, तो नपुसकता क्यो न होगी।

गर्मी, आतशक आदि रोगो से भी नामर्दी पैदा होजाती है। दूषित योनि स्त्री के साथ संभोग करने से रात दिन वीर्य निकलता रहता है पीप गिरता है, और सौ उपद्रव हो जाते हैं, मैथुन न कर सकना ही तो नपुसकता है? फिर जब वीर्य वाहिनी नशे ढीली पड़ जायगी, और लिंगेन्द्रिय चैतन्य रहित हो जायगी, सभोग कैसे किया जा सकताहै, संभोग न कर सकना, और नामर्द होना एक ही बात है।

कामोत्पादक शक्ति उसी अवस्थामें पैदा होती है, जब मनुष्य के शरीर में वीर्य रहता है, हृदय चैतन्यता रहतीहै और मस्तिष्क विचारणा शक्ति सयुक्त रहता है। ऐसे नामर्दो की हालत बड़ी भयकर होती है, वह सभोग कर ही नही सकते।

यहा पर भी ख्याल करना चाहिये कि, प्रकृति विरुद्ध द्रव्यो से रोग पैदा होकर भी नामर्दी पैदा

कर देते हैं, आज कल प्रकृति के विरुद्ध पुरुप व्यभिचार भी वहुत होता है। चाकलेट चर्चा की भर मारसी है! इससे दोनो को मदत्व से हाथ धोना पड़ता है, सक्षेपमें इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि, लिंगेन्द्रिय गुदा में जाकर अस्थियो से टकराती है, और मलाशय के पास जाने से उसमें बदवू भर जाती है। इससे लिंगेन्द्रिय की नसें मारी जाती हैं, और भीतर रोग पैदा हो जाता है, ऐसा पुरुष जिस जिससे सभोग करेगा, वह भी स्वस्थ नही रह सकता! उधर गुदा के पास में ही कुछ फासले पर वस्ति-मूत्र थैली है, उस पर चोट पड़ने से वह शिथिल हो जाती है बाद में चाकलेट अधिक मूतने लगता है, जो कुछ खाये पिये का रस होता है, सबमूत्र बनकर निकल जाता है, फिर उसे भी नामर्द बना सकता है। इसके अलावा लिंगेन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाली नसें, चोट पड़ने से निकम्मी हो जाती हैं। लिंग में चैतन्यता नहीं रहती। दोनो आखिर पुरुषत्व से हाथ धो बैठते हैं।

(५) शिरा छेद जन्य क्लैव्य (नामर्दी)

कुछ ऐसी नसे हैं, जो वीर्य वाहिनी कहलाती हैं, उनका काम होता है, वीर्य को बहाकर उसको निश्चित स्थान में पहुँचाना। कान के पीछे दो नसें हैं, जिनका सम्बन्ध अण्डकोपो से है, ये वीर्य को वहा पहुँचाती है, किसी कारणवश, जब ये नसें अपना काम करने से इन्कार कर देती हैं वीर्य का बहना बन्द हो जाता है।

आजकल साधारण बातो में भी कान पकड़कर खींच दिये जाते हैं, खासकर स्कूलो के मास्टर तो इस क्रिया में निपुण होते हैं। इससे कितना नुकसान होता है, यह वे क्या जाने?

आयुर्वेद में लिखा है—

वीर्य बहाने वाली नसो के कट जाने से, छिद जाने से, और मर्मस्थलो पर आघात पहुँचने से अंडकोपो के दबने, और कुचले जानेसे, गुदा की नसो पर अभिघात होने से, तथा और ऐसी ही नसो के कट जाने से, यह नामर्दी पैदा होती है। पुरुप व्यभिचार से ऐसी नामर्दीका पैदा होना भी कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

जब बैल को वधिया करना होता है, उसके पोतो की नसें छेद दी जाती हैं, इससे उसमें काम शक्ति नहीं रहती। प्राचीन जमाने में पुरुषो को भी वधिया कर दिया जाता था। आज कल माता पिता बच्चो की ऐसी नसो को गुद गुदाने में बडा आनन्द उठाते हैं, इससे बच्चा हंस उठता है, मगर इससे जो हानि होती है, वह उनकी समझ में नहीं आती, ऐसी गुदगुदी से नसें अचैतन्य बनी रहती है। बाद में जाकर वह और भयंकर रूप धारणकर लेती है।

ऐसे नामर्दों की सख्या भी आज, अधिक नहीं तो कम भी नही है। हस्तमैथुन इसका प्रधान कारण है, इससे लिंगेन्द्रिय की नसें ढीली पड़ जाती हैं और बेजान हो जाती है। हस्तमैथुन के विपय में हम अलग लिख रहे हैं। इससे लिंग बढ़ जाता है और बांकी टेढ़ा हो जाता है।

लिंग बढ़ने से नामर्दी हो जाती है।

महतामेढ़्रोगेण चतुर्थीक्लीवताभवेत्।

शुक्रस्तम्भन जन्य क्लैव्य (नामर्दी)

स्तम्भन कहते हैं, रुकावट को। अगर आज ससार में, कही भी ऐसी नामर्दी होती तो हम नपु सकता,जैसे लेख को लिखने में अपने को कुछ न कुछ कृतार्थ मानते वीर्य की रुकावट से यह नामर्दी होती है। हमारी तो इच्छा यह है भी नहीं कि इसे हम नामर्दी कहें, इस जमाने में हम

ऐसे नामर्दों को सच्चा मर्द कह सकते हैं,वीर्य को रोकना, हृदय को मसोसना, साधारण खेल नही है काम शक्ति का नाश करदेना,इस जमाने में मनुष्यो का काम नही, बल्कि देवताओ का काम कहा जा सकता है।

ऐसेनामर्दों से समाज की ताकत वढती है, दर असल ऐसे नामर्द ही वास्तविक मर्द कहे जाना चाहिये। कामशक्ति के क्षणिक प्रवाह में वहकर अपने पुरुषत्व से हाथ धो वैठना, आज कल साधारण वात है। असाधारण वात तो,उस प्रवाह को रोकने मे ही है. ब्रह्मचर्य के द्वारा, ऐसे प्रवाह को रोकदेना ही सच्चा पुरुषत्व है।

भारत का प्राचीन इतिहास ऐसे उदाहरणो से भरा है, कामशक्ति को या तो विल्कुल ही पैदा न होने देना, और पैदा हो भी जाय तो उसे दवा देना, उस समय के महात्माओ का साधारण काम था. विलासी ससार में ऐसे दृष्टान्तो का मिलना कठिन ही नहीं किसी अश में असम्भव भी है।

वीर्य को रोक लेना. जो तैयार हो उसे शरीर मे ही रख लेना (कितना पुरुषत्व है। भले ही विलासी उन्हें नामर्द कहें, मगर समाज शास्त्र के विद्वान उनकी गणना महात्माओ में करेंगे। अस्तु

अपने हृदय में मैथुनशक्ति को पैदा ही न होने देने, और पैदा होने पर भी उसे वही मसोस देने से, यह नपुसकता पैदा होती है।

सभोग न करसकना ही जब नामर्दत्व का परिचायक है, तव हमें इस वात पर विशेप लिख ने की जरूरत नही, मगर एक वात और है, जिसे भी हम यहा लिख देना चाहते हैं, ऊपर जिन नामर्दों के सम्बन्ध में हमने चित्र खीचा है, उसके अलावा एक चित्र और है। भाव और अभाव,ये दो हैं, भाव में अगर कामशक्ति को मार दिया जाय तो, वह खिलाड़ी योद्धा माना जासकता है।

मगर अभाव में जो कामशक्ति को नष्ट करते हैं,उन मेंउनका कोई वड़प्पन नहीं, और यों कहना चाहिये कि वे नष्ट नही करते, और न करना ही चाहते हैं, किन्तु वह स्वयं नष्ट हो जाती है।

हृदय में तरङ्गे उठती हैं, मगर साधन नहीं, अव उपाय क्या है ? चाहते हैं मगर मिलतानहीं, तथा मिलता है, मगर चाहते नहीं, सक्षेप में ये ही दो चित्र हैं। रात दिन चिन्तन करने पर भी जव कोई साधन नही मिलता, तव उनके भाव स्वय ठडे पड जाते हैं। जव सभोग नहीं किया जाता है, मूत्रेन्द्रिय चैतन्य रहित हो जाती है।

हम इस सिद्धान्त पर आक्षेप न करते हुए इतनाही लिख देना चाहतेहैं, कि यह चित्र सासारिको का है, मैथुन करके पुत्र पैदा करना उनका खास कर्तव्य माना जाता है, फिर जो मैथुन नहीं करते वीर्य का स्तम्भन करते हैं, उन्हे नपुसक मानने में क्या वात अटकती है ? जो आदमी दवा खाकर वीर्य रोकते हैं, उसके परिणाम स्वरूप जो नपुसक होते हैं, हम तो उन्हीं को मानेंगे।

(७) सहज क्लैव्य (नामर्दी)

सहज का मतलव है स्वाभाविक, प्राकृतिक। जो साथ २ पैदा हो, उसे सहज कहा जाता है। जो जन्म से ही नामर्द पैदा होता है, उसे सहज प्राकृतिक नामर्द कहते हैं। माता पिताके रज दोष के दूषित होने के कारण गर्भ गर्भावस्था में यथो, चित पुष्ट नहीं होने पाता, या और गर्भावस्था के अनुचित कृत्यों से गर्भ भीतरही नपुसक होजाताहै।

ऐसे नपुसको का जमाना उस समय था, जब भारत पर मुगल साम्राज्य का शासन था। अन्तः पुर में रहने के लिये ऐसे नपुसक ही उपयुक्त समझे जाते थे। ऐसे नपुसको को, हिजड़ा षंड, खोजा भी कहा करते हैं। सामान्यतः इनमें भी भेद होता है, कुछ नपुसक ऐसे होते हैं, जिनके

मूत्रेन्द्रिय के स्थान में लिंग नहीं होता,कुछ ऐसे हैं, जिनके लिंग तो होता है, मगर वह अचैतन्य होता है। खास कारण इसमें, मां बाप की खराबी, या गर्भावस्था की खराबी है। जिस माता पिता के रज वीर्य, बहुत कम हो दूपित हो, उनसे गर्भ नपुंसक होजाता है, अथवा गर्भाशय में, गर्भाशय के ऊपर कुछ बोझा पड़ने या और खास कारणो से ऐसा हो जाता है। वाग्भट्ट में लिखा है—

तयोः साम्ये नपुंसकः।

मतलब यह है कि, वीर्यके स्वस्थ और अधिक होने से पुत्र पैदा होता है, रज के अधिक होने से पुत्री, और दोनो के बराबर होने से नपुसक। ऐसे नपुंसक से यहां सहज नपुसक से मतलब है। रज और वीर्य बरावर होकर गर्भको नपुसक बना देते है, सहज नपुसको की कोई चिकित्सा नहीं होती। राजपूताना में कुछ हिजड़े ऐसे है, जो विवाह शादी के अवसर पर, पुत्र पैदा होने पर, आकर गाते हैं, वे लिंगेन्द्रिय विहीन होनेहैं। अस्तु

नामर्दों के ४ भेद है

सातो प्रकार के नपुसको पर हम सक्षेप में विचार प्रगट कर चुके हैं। पहिले हम बता आये थे कि कुछ विद्वान ४ तरह के, और कुछ ५ तरह के नपुसक मानने हैं। पाठको की जानकारी के लिये उन पर भी प्रकाश डाला जाता है।

भाव प्रकाश में लिखा है—

आसेक्यश्च सुगन्धीच कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा।
अमी सशुक्रा वोद्धव्या अशुक्रः षण्डसञ्ज्ञकः॥

(१) आसेक्य।
(२) सुगन्धी।
(३) कुम्भीक।
(४) ईर्ष्यक।
(५) षड।

ये पांच प्रकार के नपुंसक होते हैं। भाव मिश्र केवल ४ तरह के नामर्द मानते है, इनमें पहिले चार तो वीर्य सहित होते हैं, और अन्त का पांचवां वीर्य विहीन होता है। पूर्व के चार है, यद्यपि नपुसक, मगर उनके शरीर में वीर्य होता है, मगर षंड, पांचवें के शरीर में वीर्य नहीं होता है। भाव मिश्र ने साथ २ इनका इलाज भी बतलाया है।

(१) आसेक्य नपुंसक

पित्रोस्तु स्वल्प वीर्यत्वादा सेक्यः पुरुषोभवेत्।
सशुक्र प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसशयम्॥

माता पिता के अल्प रज वीर्य के होने के कारण अथवा उससे उत्पन्न होनेकेकारण आसेक्य नामक नपुंसक उत्पन्न होता है। इस नपुसक में पुंसत्व, जबकि यह दूसरे पुरुष का वीर्य खाता है, तब आता है, वीर्य खाने पर इसको मैथुन शक्ति उत्तेजित होजाती है। इसको मुखियोनि भी कहतेहैं।

(२) सौगन्धिक नपुंसक

यःपूति योनौ जायेत ससौगन्धिक सञ्ज्ञितः।
स योनि शेफसोर्गन्ध माघ्राय लभते बलम्॥

जो दुर्गन्धित योनि से उत्पन्न होता है, वह सौगन्धिक नपुंसक कहलाता है, यह नपुंसक जब लिंग, और योनि की गन्ध सूंघता है, तब चैतन्यता को प्राप्त होता है और तभी सम्भोग कर सकता है। इसका नाम नासायोनि भी है।

(३) कुम्भीक नपुसक

स्वेगुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषुपुंवत् प्रवर्तते।
स कुम्भीक इतिज्ञेयो गुदयोनिस्तु सस्मृतः॥

जो पहिले खुद गुदा भञ्जन करावे, और बाद में स्त्री से सभोग करे, वह कुम्भीक नपुंसक कहलाता है, इसको गुदयोनि भी कहते है।

(४) ईर्ष्यक नपुंसक

दृष्ट्वा व्यवाय मन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते।
ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृष्टियोनिस्तुसस्मृतः॥

जो दूसरे को मैथुन रत देखकर स्वय मैथुना सक्त होता है, वह ईर्ष्यक नपुंसक कहलाता है, इसका नाम दृष्टियोनि भी है।

(५) षंढ नपुसक

योभार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते ।
तत्र स्त्री चेष्टिताकारो जायते षडसज्ञितः॥

जो पुरुष खुद नीचे सोकर, और स्त्री को ऊपर करके, सभोग करे, और उसमें जो सन्तान पैदा हो वह स्त्री सदृश लक्षणो वाला, षड नपुसक होता है।

भाव मिश्र के मत से पांच तरह के नपुसक होते हैं, जिनका वर्णन ऊपर कर दिया गया है। साथ में चार नपुसकों का जिनका सुसाध्य था इलाज भी वतलाया गया है । ईर्ष्यक नपुंसक, केवल इर्ष्यावस ही उत्तेजित होता है, कुम्भीक गुदाभजन कराके ही उत्तेजित होता है और सौगन्धिक सूघकर मैथुन में समर्थ होता है। नपुंसको की भी कैसी मजेदार हिस्ट्री है। पांचवां षडनपुंसक सहज होने के साथ साथ ही चिकित्सा द्वारा भी असाध्य है।

हिकमत से नामर्दी के २ भेद

हकीमों के मत से नामर्दी दो प्रकार की होतीहै
इसके १ भेद हैं

(१) कामशक्ति निर्बल हो जाय, जिससे भोग शक्ति न रहे।

(२) लिंगेन्द्रिय सुस्त होकर सभोग के योग्य न रहे ।

(१) प्रथमभेद

पहिला भेद कामशक्ति का निर्बलहोकर संभोग शक्ति का न रहना ६ भेदो में विभाजित है।

इसके ६ भेद हैं

(१) पर्याप्त भोजन न मिलने से, हवा और खून कम होजाते हैं। जिससे कामशक्ति कमजोर पड़ जाती है, इसमें शरीर दुबला होजाता है, कमजोरी,रग का पीलापन, तथा भोजन की कमी ये चिह्न होते हैं।

(२) बीर्य की नलीमें सर्दी गर्मी होने, उसके सूखी और कमजोर होने आदि कारणो से वीर्य कम होजाता है. और नामर्दी होजाती है। इसका सीधा सा चिह्न यह है कि, इसमें बीर्य कठिनता से निकलता है. स्वाभाविक पतनपना नष्ट होकर तगी आजाती है।

(३) अफीम, भांग आदि नसीली चीजो के खाने से, बीर्य बाहिनी रगे स्तब्ध होजाती है, फिर वीर्य अपनी जगह से सरकता ही नहीं है। इसमें वीर्य खूब निकलता है, यद्यपि यह सहज में नहीं निकलता है। गाढा और ठिठुरा हुआ होता है, बहुत मिहनत के साथ निकलता है, जिससे थकावट और बेचैनी आती है।

(४) बहुत समय तक स्त्री के पास नही जाने से योनि मैथुन नहीं करने से, वीर्य की पैदायश बन्द हो जाती है। इनमें न स्वप्नदोष होता है, न मैथुन को इच्छा रहती है।

(५) हृदय मे किसी डर के या चिन्ता के घुस जाने से प्रकृति डर जाती है और मैथुन की इच्छा नहीं होती।

(६) अधिक मिहनत, लम्बी बीमारी, भूख, ठडी चीजो का खाना, इन कारणो से स्वाभाविक गर्मी दूर हो जाता है, और हृदय में कमजोरी आ जाती है जिससे काम शक्ति नहीं रहती। इमसे नाडी कमजोर और गर्म रहती है, सभोग बहुत कम, वह भी अनिच्छा से किया जाता है, बाद में सर फिरने लगता है, गर्मी होने से प्यास और पागलपन भी हो जाते है।

(७) आमाशय और कलेजे की कमजोरी से, अच्छा खून कम पैदा होता है, जिससे कामशक्ति में कमजोरी आ जाती है, इसमें भोजन तथा

दूसरे विषयो की इच्छा कम होजाती है, पाचन शक्ति कमजोर होजाती है, और प्रकृति के दूसरे उपद्रव भी पैदा होने लगते हैं।

(८) दिमाग के कमजोर होजाने से, वीर्य लिंग तक नही आपाता और नामर्दी होजाती है। इसमें इन्द्रियां विवेक शून्य होजाती है, सुस्ती छाजाती है सभोग की इच्छा बहुत कम होती है, अधिक जगने से दिमाग को हानि पहुँचती है।

(९) गुर्दे में कमजोरी होने, या कोई दूसरा रोग होने से काम शक्ति कमजोर होजाती है। गुर्दे के रोगो का वर्णन अलग किया है।

(२) द्वितीय भेद

इसके ४ भेद हैं

पर्याप्त खाना न मिलने से जब हवा और खून उचित मात्रा में तैयार नहीं होते, तो लिङ्ग सुस्त होजाता है और नामर्दी छा जाती है।

(२) बहुत समय तक सभोग न करने से, मूत्र स्थान में सकोचता आजाती है, फिर स्वाभाविकता के नष्ट हो जाने से नामर्दी का होना कोई असम्भव वात नही।

(३) सर्दी, गर्मी और खुश्की के कारण जब देह से निचले हिस्से में हवा और फुलावट कम पैदा होती है तो, शिथिलता पैदा हो जाती है। इसमे कामशक्ति नष्ट नहीहोती, अलबत्ता कम और कमजोर होजाती है। आदमी की दैहिक शक्तिया वलवान होती है और अवयव स्वस्थ होते है।

(४) पट्ठो में कफज फोक के गिरने से, ठडे पानी मे अधिक ठहरने से, बर्फ वगैरह पर बैठने से पट्ठे मे एक तरह का अर्द्धाङ्ग पैदा होजाता है। फिर पट्ठे की प्रकृति के खराब होने से, उस पर सभोग शक्ति का असर नहीं होता। इसमें वीर्य अधिक और पतला होता है और संभोग के विना ही निकल जाता है। लिङ्ग की गति कम होजाती है और पुराना होने पर यह रोग असाध्य हो जाता है।

लिंगेन्द्रिय का टेढ़ा होना

जब गाढा दोष मूत्र नली के अजलो में से किसी एक में चिपट जाता है, या सूखे बायटे आने लगते है, या मूत्र नली की तरफ आने वाले पठ्ठे में मवाद भर जाता है तो, लिंग टेढ़ा हो जाता है। फल स्वरूप लिंग गर्भाशय के ठीक समने नहीं पहुँचता, जिससे ऐसे आदमियो के औलाद नही होती है। इन कारणो के अलावा, हस्त मैथुन गुदा मैथुन, और पशु मैथुन से भी लिंग टेढ़ा हो जाता है।

लिंगेन्द्रिय के मस्से

सुपारी के पास मैल भरने आदि से छोटे २ मस्से पैदा होजाते है, इनका खुलासा वर्णन आयुर्वेद में अच्छा किया है, गर्मी होने के बाद प्रायः यह रोग होता है, सुपारीके आसपास छोटे२ मस्से होजाते है, फिर वे चारो तरफ फैल जाते है, बाद में बड़े भी होजाते हैं, फिर लिंग को ढकने वाली चमडी को वहां नहीं आने देते। कभी २ इनमें जख्म भी हो जाता है, लिंग को मैला रखने सेभी ये हो जाते हैं।

लिंग चर्म का नीचे उतरना

Paraphymasis

लिंग को दवाने, मसलने, कुमारीसे बलात्कार करने, हस्त मैथुन करने, चोट लगने आदि से लिंग चर्म नीचे की तरफ उतर जाता है और ऊपर नही चढता, गांठ की तरह लटकने लगता है, जिससे दर्द और जलन होती है, कभी २ पक भी जाता है। कफ का हिस्सा मिलने पर कड़ापन और खुजली भी हो जाती है।

निरुद्ध प्रकश

Phy Mosis

इसे घूंघट की तंगी कह सकते हैं। सूजाक, गर्मी होने आदि से लिंग चर्म सुपारी को ढक लेता है, जिससे पेशाब निकलने का छिद्र भी कभी २ ढक जाता है, उस समय पतली धार निकलती है।

लिंग से खून बहना

यह रक्त पित्त है।

अधिक धूप में फिरने, आग में तपने, अधिक मैथुन करने, खट्टे, गरम, पदार्थ खाने आदि कारणो से पित्त बिगड़ता है, फिर पित्त खून को बिगाड़ता है। बिगडा हुआ खून रक्त बाहिनी शिराओ के द्वारा किसी तरह पकाशय की तरफ जाता है, फिर वायु उसे लिंग की तरफ ले जाता है, फिर वह खून लिंग के रास्ते निकलने लगता है सोजाक होने परभीं लिंगसे खून निकलने लगताहै।

आकुना फड़कन

लिंग में या गर्भ स्थान के मुंह में फड़कन होने को आकुना कहते हैं। सूजन और कठोरता के कारण से वीर्य की नालियो मे खिंचाव भी हो जाता है।

लिंगेन्द्रिय का दर्द

यह २ तरह का होता है।

(१) प्रकृति के गर्म उपद्रवो से लिंगेन्द्रिय में गर्मी और जलन के साथ २ पीडा होती है।

(२) प्रकृति के ठंडे विगाड से दर्द होता है, और अवयव सुन्न होजाता है।

लिंगेन्द्रिय का घाव

फोड़ा फुंसी होने, गर्मी सूजाक होने आदि से लिंग में घाव हो जाता है, उपेक्षा करने से वह सड़ जाता है, और फैल जाता है, इसलिये होतेही उसका इलाज करना चाहिये। यह घाव चारो ओर फैलकर बड़ी आफत पैदा करता है।

लिंगेन्द्रिय की खुजली

उस जगह तेज मवाद उतर आने से खुजली हो जाती है, छोटी २ फुन्सियां हो जाती हैं, और दबाने पर वे फूट जाती है।

लिंगेन्द्रिय का फूलना

जिन कारणो से अंडकोष की गोलियां सूज जाती हैं, उन्ही से लिंग भी सूज जाता है, इसके चिह्न भी वैसे ही होने है।

लिंग चर्म का फटना

जब इस जगह सूखी तरी आजाती है, तो लिंग की चमडी फटने लगती है। आयुर्वेद के अनुसार कुमारी से संभोग करने, लिङ्ग चर्म को बलात् ऊपर चढ़ाने, हस्तमैथुन करने आदि से भी लिङ्ग चर्म फट जाता है।

लिंगेन्द्रिय की गाँठ

इसके ३ भेद हैं।

मूत्रनली में फुन्सियां पैदा हो जाती है, इसमें पेशाब मुश्किल से और जलन के साथ होता है।

(१) चेपदार गाढ़ा दोष जब लिङ्ग नली में चिपट जाता है तो, गांठ सी मालूम होती है, इसमें पेशाव कठिनता से होता हैं। और गाढ़ा मल पेशाव के साथ निकलता है।

(३) लिङ्ग नली के छेद में मस्सा पैदा हो जाता है, इसमें जलन वगैरह तो होती नहीं, पेशाव अवश्य कठिनता के साथ होता है।

वीर्य मे खून निकलना

अण्डकोषो की पाचन शक्तिमें कमजोरी आने से, वीर्य सफेद नहीं होता और उनकी जगह खून निकलने लगता है।

स्वप्नमेह

जिन कारणो से शुक्रमेह होता है, हकीमो के मत में उन्ही कारणो से स्वप्नमेह भी होता है। सोते समय वीर्य निकल जाय और मालूम भी न हो, इसी को स्वप्नमेह कहते हैं।

फ्रेसमूस

इस नाम की एक ऐसी मूर्ति है, जिसका लिंग चैतन्यावस्था में निर्माण किया गया है, उसी के नाम के अनुसार इस रोग में लिंग हरदम चैतन्य रहता है, कभी संभोग की इच्छा होती है, कभी नहीं और उस हालत में भी लिङ्ग शिथिल नहीं होता, लिङ्ग का विस्तार भी बढ़ता रहता है, इसलिये इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मूत्रस्थान में जब गाढ़ी हवा इकट्ठी होकर पिघिल नहीं सकती तब यह रोग होता है।

अजीता

यह बहुत गन्दा और पाजी रोग है। संभोग के समय अधिक आनन्द पाने के लिये ऊटपटाँग क्रियाओं को करने वाले शौकीन गधे इसके शिकार होते हैं, इसमें संभोग के बाद वीर्य के साथ २ ही गुदा से पाखाना भी निकल जाता है। बहुत से आदमी गुदामैथुन कराके फिर मैथुन करते हैं। उनकी भी यही हालत होती है, कमजोर गुदा पाखाने को रोक नहीं सकती और असल बात तो यह है कि, आंतें भी मल को नहीं थाम सकती। ऐसे आदमियो का वीर्य बहुत पतला और तेज होता है, खून पतला, पट्ठे सुस्त और रूह बहुत कम होती है। रगें औरपट्ठे बहुत कमजोर, प्रकृति मैली और उन्हे देखने छूने में ही लज्जा आती है।

उबना

लिखा तो ऐसा है कि यह रोग बूढ़ों को होता है। किन्तु आजकल जवानो और छोकरो को भी होता है। उबना के मानी हैं गुदामैथुन की वेहूदा आदत। इसके रोगियों को तब तक चैन नहीं पड़ती, जब कि उनकी गुदा में कोई ठोस चीज नहीं पहुंचती। यह तीन तरह का है।

१— शुरू ही से जब कोई नपुंसक के पास रहता है, तो यह बेहूदा आदत पड़ जाती है।

२— किसी पुरुष में स्त्री की प्रकृति का स्वभाव होता है, उसका लिङ्ग भीतर की तरफ झुकाव करता है।

३ —सीधी आंत में दोष के आने से खुजली पैदा होती है, बहुधा खारी कफ ही इसका कारण होता है।

शुक्रमेह

मजी और वदी का निकलना

कामेच्छा के समय लिंग नली के ऊपर के सिरे पर, तथा वीर्य की नली के ऊपर की नालीपर आने वाले मल को 'मजी' कहते हैं। चाहना पैदा होने पर लिङ्ग में चैतन्यता आने पर, यह मजी मल निकलता है, कभी २ मसाने की गर्दन वाले पट्ठे के दबने पर भी निकल जाता है, जब यह बहुत निकलने लगता है, तभी इससे हानि होती है साधारण रूप से निकलने पर नहीं।

पेशाब के साथ निकलने वाला वीर्यके जैसा एक लसदार मल होता है, उसे 'वदी' कहते हैं, यह मसाने की गर्दन के पास में लगे हुये पट्ठे में पैदा होता है पेशाब निकलते समय पट्ठे के दबने से यह मल निकलता है, और मजी तथा वदी दोनो एक ही नली से निकलते हैं। ये मल बिना कारण नहीं निकलते, किसीखास कारण सेही निकलते हैं।

इसके ६ भेद हैं

१ – पहिला भेद

सभोग छोड़ देने, तथा वीर्य पैदा करने वाली दवाओ के खाने से वीर्य अधिक हो जाता है, सभोग के समय वीर्य खूब निकलता है, और वह बीच की दशा का होता है, देह अगर कमजोर होगी तो कमजोरी और भी होगी।

२—दूसरा भेद

वीर्य में गर्मी और तेजी आ जाने से, तथा भ ने के कारण से प्रकृति उसे निकालती है,

इसमें वीर्य पीला होता है,तथा पेशाव में जलन होती है।

३—तीसरा भेद

ठंड और तरी के कारण वीर्य की नली में ढीलापन और सुस्ती आजाती है, जिससे यह वीर्य को रोक नहीं सकती। इसमें विना चैतन्यता के ही वीर्य निकल जाता है, पतला होता है,ठंडके और चिन्ह भी होते हैं।

४—चौथा भेद

वीर्य की नली के पट्टे में खिंचावट पैदा होने से, उसके दवाते ही वीर्य निकलने लगता है। वीर्य जल्दी से निकलता है, और उस समय लिंग में चैतन्यता भी आजाती है

५—पांचवां भेद

गुर्दा कमजोर हो जाय, फिर गर्मी और संभोग से उसकी चर्वी पिघल २ कर बहने लगती है। असल में यह वीर्य नहीं चर्वी है। संभोग के वाद पेशाव में गाढ़ी और सफेद चीज खूब निकलती है, कुछ आनन्द नहीं आता, साथ ही गुर्दे की वीमारी के और भी चिन्ह हो जाते हैं।

छठा भेद

संभोग की वात सुनने, किस्से कहानी पढ़ने, बराबर इच्छा करने आदि से, मजी, वदी, और वीर्य तीनो बहने लगते हैं।

संभोग शक्ति का बढ़ना

इसके ६ भेद हैं

पहिला भेद

शरीर मोटा होने तथा वीर्य केअधिक होनेसे संभोग शक्ति वढ़ जाती है, इसमें अधिक मैथुन करने पर भी शरीर पर बुरा असर नही गिरता, और न मैथुन शक्ति ही कम होती है।

२—दूसरा भेद

तेजी पैदा करने वाली चीजों के अधिक खाने से, जब वीर्य में तेजी आ जाती है तो उसके उबलने और निकलने पर मैथुन शक्ति भड़क उठती है, जिसके चिन्ह स्वरूप पेशाव में जलन और तेजी तथा मैथुन के पीछे निर्बलता होती है।

३—तीसरा भेद

वीर्य के रूप में परिणित होने वाला मल जब अधिक हो जाता है, तो काम शक्ति बढ़ जाती है, यद्यपि देह मे कमजोरी रहती है, खून में कमी रहती है, और शक्ति के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। इसमे वीर्य की अधिकता तथा सफेदी और फूलने के चिन्ह होते हैं।

४—चौथा भेद

जब वीर्य के अवयव सबल हो जाते हैं, तथा दूसरे प्रधान अवयव निर्बल हो जाते हैं, तो काम शक्ति बढ जाती है। इसमें कमजोरी, सुस्ती आदि चिह्न होते हैं।

५—पाचवां भेद

जब वीर्य की नली में फुन्सियां पैदा हो जाती हैं, तो उसके खटके से संभोग शक्ति अधिक हो जाती है। इसमें संभोग करने पर भी और चाहना बढ़ती है, वीर्य जल्द निकलता है, आनन्द अधिक आता है, और वीर्य निकलने पर भी कमजोरी नही आती। किन्तु जब फुन्सियो में घाव हो जाता है, तो अधिक वीर्य के निकलने पर दर्द होता है, पेशावमें पीव निकलने लगता है, तथा घाव के छिलके निकलने लगते हैं।

६—छठा भेद

देह में फूलन अधिक होने से, काम शक्ति बढ़ जाती है, फूलन होती है, फुलाने वाली दवाओ के खाने से, इसमें वीर्य में गाढ़ापन होता है

शीघ्रपतन

इसके ६ भेद हैं

१—पहिला भेद

तरी और खुश्कीके कारणजब निस्सारक शक्ति कमजोर हो जाती है, तो संभोग के समय वीर्य जल्दी निकल जाता है, वीर्य सफेद और पतला निकलना है, गर्मी के चिह्न बिल-कुल नही होते।

२—दूसरा भेद

वीर्य और खून के अधिक होने से भी वीर्य जल्द निकल जाता है, इसमें वीर्य अधिक होता है, और न अधिक गाढ़ा होता है, न अधिक पतला, तथा लिंग में ताकत होती है।

३—तीसरा भेद

वीर्य में गर्मी और तेजी के आने से, शीघ्र-पतन हो जाता है सहवास के समय स्त्री के पास जाते ही और इच्छा होते ही, जब गर्मी और तेजी अधिक हो जाती है, तो वीर्य निकल जाता है। वीर्य में पीलापन होता है, उसकी चाशनी हल्की होती है, तथा निकलते समय जलन और चुभन होती है।

४—चौथा भेद

प्रधान अवयव दिमाग के कमजोर होजाने से, सब अंगो में कमजोरी आजाती है, जिससे वीर्य जल्द निकल जाता है।

५—पाचवां भेद

हस्तमैथुन करने, अधिक संभोग करने, गुदा मैथुन करने से भी स्तम्भन शक्ति नष्ट होजाती है, और वीर्यजल्दी स्खलित हो जाता है।

६—छठा भेद

रात दिन गंदे उपन्यास पढ़ने, स्त्रियो की चिन्तना करने, संभोग की इच्छा रखने, रमणियो के कुच नितम्बो की आलोचना करने आदि मानसिक व्यभिचार से भी शीघ्रपतन होने लगता है।

शूक रोग

इस रोग का जिक्र अप-टू-डेट ऐलोपैथी में नहीं किया गया है, और न इस रोग के रोगी ही आजकल कहीं मिलते है सच तो यह है कि यह रोग ही लुप्तप्राय हो गया है, जो मानव जाति के लिये बहुत ही अच्छा हुआ।

शूक एक जहरीले जन्तु को कहते हैं, जो पानी के कीडे कहे जासकते हैं। इन कीडो को रगड पीस कर लेप करने से लिंग बडा हो जाता है, यह प्राचीन विद्वानो का विश्वास था। इसमें सचाई कहां तक है, यहतो खुदा ही जाने, हां, यह क्रिया थी आखिर गलतमी ही, यह हम भी कहसकते हैं जो भी हो उन शूक नामधारी कीड़ो के लेप करने पर जो खराबी होती थी, उसका जिक्र इसमें किया गया है। शूक के ठीक न होने, पुष्ट होने, बाद में मसल देने आदि से १८ व्याधियां पैदा होती हैं। उनका संक्षिप्त जिक्र यहां किये देते हैं।

इसके १८ भेद हैं

(१) सर्षपिका

शूक के ठीक उपयोगी न होने पर, कफ और रक्त के दूषित हो जाने पर लिंग पर सफेद सरसो जैसी छोटी २ फुंसियां पैदा हो जाती हैं जिन्हे सर्षपिका कहते हैं।

(२) अष्ठीलिका

ज्यादा जहरीले शूको के कारण लिंग पर कडो और अन्दर से टेढ़ी मेढ़ी फुंसियां होजाती हैं

(३) ग्रथित

इसमें बहुत से शूक भरे रहते हैं, और यहकफ से पैदा होता है। असल में ज्यादा शूकों द्वारा लेपादि करने पर कफ बिगड़ कर यह रोग पैदा करता है।

(४) कुम्भिका

दुष्ट शूक के अवचारण से रक्त और पित्त बिगड़ कर एक जामुन की गुठली जैसी फुंसी पैदा कर देते हैं।

(५) अलजी

प्रमेह से होने वाली जो अलजी फुंसी है उसी के लक्षणों से मिलती जुलती यह शूक दोष से फुन्सी होती है।

(६) मृदित

शूक लेप से जब दर्द होने लगे, फिर उसे मसला जाय, या दबाया जाय तो, वायु विगड़कर मृदित रोग पैदा करता है।

(७) समूढ़ पिडिका

बार २ दर्द होने पर अगर लिंग को हाथ से मसला जाय तो, यह रोग पैदा होता है।

(८) अवमथ

इसमें लिंग पर बड़ी २ बहुत सी फुन्सिया हो जाती है, इसमें वेदना होती है, और उसके मारे रोम २ कांपने लगता है।

(९) पुष्करिका

फुन्सी से फुन्सी मिलकर कमल कर्णिका की तरह लडी सी बाध देती है।

(१०) स्पर्शहानि

शूक दोष से खून की यह हालत हो जाती है, कि लिंग छूने ही नहीं बनता।

(११) उत्तमा

जब शूक जीर्ण नही होता तो, उड़द के बराबर लाल फुन्सी पैदा हो जाती है।

(१२) शतपोनक

इसमें लिंग पर छोटे २ मुंह वाले अनेको छिद्र हो जाते हैं।

(१३) त्वक्पाक

शूक दोष से पित्त और रक्त विकृत होकर चमड़ी को पका देते हैं, जिससे उसमें जलन होने लगती है।

(१४) शोणितार्बुद

काली और लाल फुन्सियां होती हैं, जिनमें खून भरा होता है, उनसे वदन में भयकर पीड़ा होने लगती है।

(१५) मांसार्बुद

इसी तरह मांसार्बुद भी होता है।

(१६) मांसपाक

इसमें मांस पककर बिखरने लगता है; सब दोषों की वेदना होती है।

(१७) विद्रधि

यह फोड़ा होता है, जो बड़ा भयंकर होता है।

(१८) तिलकालक

काले, कबरे, जहरीले शूकों के लेप करने से, जल्द ही लिंग पक जाता है, और उसका मांस काला होकर बिखर जाता है, यह भी सन्निपात से ही होता है।

स्त्री जननेन्द्रिय रोग

(महिलाओं की खास बीमारियां)

दो बात

यहां उन रोगो का उल्लेख होगा, जिनका सम्बन्ध स्त्रियो की जननेन्द्रिय, यानी योनि, गर्भाशय आदि से होता है। केवल जननेन्द्रिय कहने से पुरुषो की जननेन्द्रिय, लिंग का भी मतलब साथ में आ जाता है। जननेन्द्रिय के मानी होते हैं. पैदा करने वाली इन्द्रिय, यह मोटा अर्थ है। पुरुषो की जननेन्द्रिय है लिंग, जिसके रोगो का वर्णन अलग किया जा चुका है। यहां योनि, गर्भाशय, आदि बीमारियो का उल्लेख होगा।

जननेन्द्रिय के विषय में दो एक सीधी साधी बातें बतला देना भी यहां आवश्यक है इसलिये

कि बहुत से आदमी स्त्री जननेन्द्रिय से मतलव केवल योनि Vagina से ही समझते हैं। यद्यपि यह विषय शरीर शास्त्र Anatamy से सम्बन्ध रखता है, तथापि दो एक मोटी बातें बतला देना सम्भवतः अप्रासङ्गिक न होकर आवश्यक ही होगा।

आजकल स्त्रियो के रोगो की संख्या दिन दिन उन्नति करती जा रही है, ऐसी सौभाग्यवती स्त्रियां बहुत ही कम होतीहै, जिन्हे मासिक धर्म सम्बन्धी शिकायत न रहती हो। रज का अधिक गिरना, और कम गिरना, दोनो ही हालतें स्वास्थ्य के सौंदर्य के लिये घातक हैं। दो एक शब्दो में यहां यह भी बतलाया जायगा कि, ऋतुधर्म यानो मासिक धर्म क्या है ?

आजकल फैशनेविल लेडियां, मासिक धर्म से बहुत नाक सिकोड़ती हैं, रज स्राव के ३-४ दिन उनके लिये बहुँत ही बुरे होने हैं, और वे मासिक धर्म को रोकने के लिये ऊटपटांग दवाइयां भी खा लेती हैं, इसका परिणाम उनके लिये बहुत बुरा होता है। जरा सी नासमझी से हमेशा के लिये स्यास्थ्य खराब हो जाता है, प्रदर के कारणो में इसका खुलासा वर्णन किया जायगा।

सच तो यह है कि, जननेन्द्रिय के विषय की आवश्यक शिक्षा आजकल एकदम ही नहीं है। पुरुपो की बात छोडिये, वे तो आजाद हैं, जो चाहे कर सकते हैं, किन्तु स्त्रियो को जननेन्द्रिय विषयक शिक्षा सर्वथा नहीं दी जा रही है। इसके परिणाम स्वरूप वे जननेन्द्रिय का दुरुपयोग करने लगती हैं। मासिक धर्म को रोकना, हस्त मैथुन करना आदि दुरुपयोग ही तो है।

गर्भाशय Uteins क्या है, गर्भ स्थित कैसे होती है, गर्भ का पोषण कैसे होता है ? आदि आवश्यक बातें स्त्रियो को मालूम ही नही होती। गर्भ के विषय में उनकी वही धारणा है, जो वे अपनी सासुओ और बड़ी बूढ़ियो से सुनती आ रही हैं।

गर्भ नही रहता, इसमें वे कर्मोंका कसूर समझती हैं। असल में यह सब अशिक्षा का ही फल है। स्कूलों और कालेजो में वहियाद शिक्षा तो मनो की तादाद में मिलती है, किन्तु आवश्यक शिक्षा एक रत्ती भर नही मिलती। बहुत सी अप टूडेट लड़कियां तो कालेजो ही से बीमारी साथ लेके निकलनी है। आजकल का वातावरण भी निस्सन्देह स्त्रियो के रोगो की वृद्धि कर रहा है। बिलासिता, आराम पसन्दगी, रात दिन सिनेमा और नाटक देखना, कमरे में जगे हुये नग्न और अर्ध नग्न चित्र, गन्दे २ उपन्यास ये सब स्त्रियो के स्वास्थ्य को खाक में मिलाने वाले हैं। रात दिन बिचारो में उत्तेजना होने से, अतिशय रज का निकलना वैसे ही आवश्यक हो जाता है, जैसे पुरुषो के इसीं हालत में वीर्य स्राव का होना, आवश्यक हो जाता है।

अधिक मैथुन क्या स्त्रियो के स्वास्थ्य को सुन्दर बना रहने दे सकता है ? एक बच्चा दूध पी रहा है तो, एक पेटमें है, और एक कन्धे पर सवार होना चाहता है, ऐसी हालत हमारी महिलाओ की आज हो रही है। गर्भ स्थिति उन्हे बुरी क्यो मालूम देती है, और क्यो वे गर्भ स्थिति के लिये सैकडो वेहूदे उपाय करती है ? उसका सीधा उत्तर उनका अनियमित जीवन है। भरी जवानी में उनके चेहरो पर सफेदी नाचा करती है, आंखें धस जाती हैं, और केशो में कालिमा नहीं रहती, सन्तान या तो होती ही नहीं, या होतीहै तो कमजोर, कायर और गुलाम।

यह भी मानना ही पड़ेगा कि, बाल विवाह और वृद्ध विवाह से भी स्त्रियो को रोगिणी बनाना

पड़ता है, बाल्य अवस्था में अगर वे मैथुन करती हैं तो, उन्हे नये नये रोगो का सामना करना पड़ता है, और वृद्धो के साथ अगर मैथुन करती हैं तो, पतन के साथ २ उनका स्वास्थ्य भी मिट्टी में मिल जाता है। यह सच्ची बात है कि इस अवस्था में शारीरिक पतन तो होता ही है, चारित्रिक पतन भी हो जाता है।

बहुत सी स्त्रिया सन्तान न होने के लिये, यानी गर्भ स्थिति न होने के लिये, घातक दवाइया भी खातीहैं, जिसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य खराब होता है, ऐसी स्त्रियो की सख्या भी कम नही है, जो अपने पापाचार को चलाने के लिये गर्भ भी गिराती रहती हैं। गर्भ गिराने का दुष्परिणाम क्या है ? यह उन्हे मालूम नही।

गर्भाशय

Uterins

यही वह अग है, जिसमें गर्भ की स्थिति होती है, प्रतिमास, मासिकधर्म के बाद गर्भाशय विकसित हो जाता है फिर रज और वीर्य के सयोग से गर्भ की स्थित होती है। यहां गर्भाशय के विषय में खास २ बातेंबतला देनी हैं। आयुर्वेद के शब्दो में—

गर्भाशय गौरी नामक घेरे (वलि) के भीतर है त्रिवलिका जिक्र योनि के प्रकरण में किया जा चुका है। जैसे रोहू मछली का शिर भीतर की तरफविस्तृत और मुख की तरफ सकुचित होता है सुश्रुत में लिखा है कि पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में गर्भाशय होता है।

आधुनिक विद्वानो के मत में गर्भाशय' मूत्राशय और रेक्टम के बीच मे है। मूत्राशय को डाक्टरी में Bladder कहतेहैं रेक्टम Rectum का हिन्दी नाम मलाशय है।

गर्भाशय के चारो तरफ तीन आवरण है जिनसे तीन दीवारें बन जाती हैं। पहिला आवरण रस त्वचा से बनता है, दूसरा स्नायुओं से और तीसरा बलगमी त्वचा से। गर्भ रहने के पहले स्वाभाविक अवस्थामें गर्भाशय २ से ३ इञ्च तक लम्बा होता है और १ से २ इञ्च तक चौड़ा होता है, इसकी मोटाई १ इञ्च के लगभग होती है और वजन में यह ३ तोले के बराबर होता है। डिम्ब वाहिनी नाड़ियों के द्वारा गर्भाशय गर्भ को धारण करता और पकड़े रहता है। गर्भाशय के ऊपरी हिस्से को गात्र कहते हैं, इसलिये कि वह मोटा है, निम्न हिस्से को गर्दन कहते हैं, इसलिये कि यह योनि से जुड़ा हुआ है और पतला है। इसके नीचे गर्भाशय का मुख है, जिसे 'सन्तानपथ कहते है, प्रसव के समय बच्चा इसी रास्ते से निकलता है। उस समय सतानपथ चौड़ा हो जाता है।

गर्भाशय के सामने २ बन्धन हैं, पीछे २ बधन हैं और बगल में भी २ बधनहैं। इन बंधनों की सख्या ६ है। सामने के दोनो बन्धन गर्भाशय के मुख तथा मूत्राशय के पिछले भागमे अवस्थित है, जो देखने में दूज के चाद जैसे हैं। पीछे के दोनो बन्धन गर्भाशय को (Rectum) यानी मलाशय से जोड़तेहैं। अगल बगल के दोनो बधन वस्ति के किनारो तक फैले हुये हैं। ये बन्धन अपेक्षाकृत चौडे होते है! इन्ही दोनो बन्धनो के द्वारा वस्ति दो भागोंमे विभाजित होती है। पिछले हिस्से में मलाशय है, सामने के हिस्से में मूत्राशय (Bladder) है, मूत्रनली है और सतानपथ है। इन बधनो में जब कभी शिथिलता आ जाती है तो गर्भाशय स्थान भ्रष्ट हो जाता है, जिससे गर्भस्थित प्रायः असम्भव हो जाती है। कभी २ तो ऐसी अवस्था में सभोग करना ही मुश्किल हो जाता है और सभोग से बाद लिंग के साथ २ ही गर्भाशय बाहर निकल आता है।

गर्भाशय की धमनियों और शिराओं का जाल बड़ी ही विचित्र रीति से फैलकर गर्भ स्थिति के बाद गर्भ जाल की शिराओं से संयुक्त होकर गर्भ का पोषण करता है।

गर्भाशय का भीतरी भाग पोलाहै और इसकी अपेक्षा कुछ छोटा है, इसके ऊपर का हिस्सा देखने में तिकोना है। इसी तरह दो डिम्ब प्रणालियां अलग होकर दोनो तरफ चली जाती है। डिम्ब प्रणालियो के विषय में भी आगे चल कर खास २ बातें बतलाई जावेंगी।

गर्भाशय की बलगमी त्वचा में शोषक शक्ति रहती है, फैलने और सिकुड़ने की शक्ति भी रहती है, संकोच और विकास शील शक्ति को Power of Elasticity कहते हैं। विकास शक्ति के कारण गर्भाधान के बाद गर्भाशय बढ़ता है और सकोच शक्ति के कारण बाद मे सिकुड़ जाता है। प्रसव के बाद गर्भाशय का सिकुड़जाना आवश्यक है, जब प्रसव कालीन गड़बड़ के कारण गर्भाशय सिकुड़ता नही है तो, प्रसूता की अवस्था बड़ी नाजुक हो जाती है। गर्भाशय अगर सिकुड़ता नहीं है तो, खून अधिक तादाद में गिर जाता है, जिससे प्रसूत मरणासन्न दशा को पहुँच जातीहै।

डिम्ब प्रणाली

डिम्ब प्रणालियो का जिक्र पहिले आया है, प्रणाली के मानी हैं नली। गर्भाशय से प्रारम्भ होकर २ नलियां, दायी और बांयी तरफ से चल कर डिम्ब ग्रन्थियो में मिल जाती है। डिम्बग्रंथियो में डिम्ब पैदा होता है, फिर वह गर्भाशयमे जाकर गर्भ स्थित करता है। किंतु वीर्य के साथ मिलकर ही। बुढ़ापे में डिम्ब ग्रथियो में डिम्ब पैदा नहीं होता और उस समय गर्भाशय भी सिकुड़ जाता है। जिससे बुढ़ापे में सतान बहुत कम होती है। डिम्ब ग्रंथियां कबूतर के अंडे के बराबर होती हैं, इनकी लम्बाई १ इञ्च के लगभग, मोटाई आधे इञ्च के लगभग और चौड़ाई पौन इञ्चके लगभग होती है। डिम्ब ग्रंथियो का स्थान गर्भाशय के दोनो तरफ है और ये वस्तिद्वार के बगल की दीवारो से लगी हुई हैं। अस्तु।

डिम्ब प्रणालियां, गर्भाशय के बगल वाले, चौड़े बंधनो के ऊपरी भाग में भीतर में रहती हैं। लम्बाई ४ इञ्च होती है, चौड़ाई गर्भाशय के पास $\frac{1}{6}$ इञ्च तथा डिम्बग्रंथि के पास $\frac{1}{3}$ इञ्च होती है। डिम्बप्रणालियां यद्यपि डिम्ब ग्रंथियो से जुडी हुई नही है, तथापि इससे निकला हुआ डिम्ब, डिम्ब ग्रथियो के छिद्र द्वार तक पहुँच जाता है, इसलिये कि डिम्बप्रणाली का, ग्रन्थि के पास वाला शिरा फूला हुआ है और झालरो से विस्तृत है, इस झालर का ही कुछ अंश डिम्ब ग्रन्थि से मिला है, जिससे डिम्ब चला जाता है। डिम्ब प्रणाली की दीवार अनैच्छिक मांस और सौत्रिक तन्तुओ से बनी हुई है, इसके भीतरी पृष्ठ पर बलगमी झिल्ली में सलवट पड़ी हुई है।

भग *Vulva*

लिंग और अडकोषो के स्थान पर स्त्रियो के जो अग दिखलाई देतेहै, उन सबको भग Tulva भाग से सम्बोधित किया जाता है। भग के ठीक बीच मे एक दरार है, जो दो भागो में विभाजित हो रही है। दरार के दोनो भाग भगोष्ठ कहलाते हैं। भगोष्ठो के निर्माण चमड़े के झोलो से हुआ है, और ये उभरे हुये रहते हैं, इस लिये कि इनके नीचे चर्बी लगी हुई है। दरार को चौड़ा करके और भगोष्टों को हटा कर अगर हम देखें तो हमें और भी दो ओष्ठ दिखलाई पड़ते हैं। ये दोनों ओष्ठ पतले होते हैं, और चर्बी की कमी के कारण उभरे हुये नही रहते।

बाहरी ओष्टो को वृहदोष्ट कहते हैं, और भीतरी ओष्टों को लघुओष्ट। वृहदोठो को बहिओष्ट और लघु ओष्टो को आभ्यन्तरिक ओष्ट भी कह देते हैं। इन ओष्ठो को अगर चौडा करके देखा जाय तो, हमें भीतर में २ छिद्र दिखलाई देंगे, एक छिद्र बडा है, वह बृहत छिद्र कहलाता है।

बृहत छिद्र को योनिद्वार भी कहते हैं, और सभोग के समय लिंग इसी में प्रवेश करता है, पेशाव इस छिद्र से नही होता, हां मासिक रज और सभोगके समय निकलनेवाला रज इसी वृहत् छिद्र के रास्ते बाहर निकलता है। दूसरा लघु छिद्र इससे डेढ़ इच ऊपर होता है, पेशाव इसी के रास्ते निकालता है, इसे मूत्र वहिर्द्वार भी कहते हैं।

यह बात भी याद रखनी चाहिये कि योनिद्वार यानी वृहत् छिद्र के ऊपर चमड़े का एक वारीक पर्दा होता है। इसी पर्दे को योनिच्छद कहते हैं। इस पर्दे के अन्दर एक बारीक छिद्र होता है। जिसके रास्ते रज निकलता है। प्रथम सभोग के समय यह पर्दा थोड़ी पीडा केसाथ फटकर भीतर घुस जाता है, उस समय थोडा रक्त भी निकलता है। कभी २ गिर पड़ने से भी यह पर्दा फट जाता है, और कभी २ लिंग के पतलेपन के कारण नहीं फटता। नही फटने पर यद्यपि सभोग मे रुकावट नहीं होती, तथापि सभोग का वास्तविक आनन्द नही आता, ऐसी स्त्रिया इसी लिये सभोगके समय चिल्लाया करती हैं, और अपने पति से खुश भी नहीं रहती। सभोग के आनन्द के लिये इस पर्दे का फट जाना आवश्यक है, अगर नही फटता है तो, इसे डाक्टर की सहायता से फटवा देना उचित है।

बलात्कार के अभियोग मे डाक्टर इसी पर्दे की परीक्षा करता है, अगर पर्दा पटा हुआ है तो समझ लिया जाता है कि बलात् सभोग हुआ है नहीं तो नहीं। जज भी इसी पर अपना फैसला सुनाता है।

बृहत् भगोष्ट यानी वाह्य ओष्ट ऊपर जाकर आपस में मिल जाते हैं, दोनो के मिलन स्थान को कामाद्रि कहते हैं. कामाद्रि का दूसरा नाम भगपीठ है। यौवन के प्रारम्भिक काल में इसी स्थान पर बाल आते हैं, भगपीठके नीचे, और लघु छिद्र के ऊपर तथा दोनों वृहत् ओष्ठो के बीच में एक छोटा सा अकुर होता है, उसे भगनाशा कहते हैं।

भगनासा को भगाकुर और भग शिश्न भी कहते हैं। भगनासा को स्त्रियो का लिंग नहीं लिंगी कह सकतेहैं, चु कि यह छोटा अंकुर होताहै।

भगांकुर यानी भगनासा के भी लिंग की तरह दो डण्डे होते हैं, उन्हे भगांकुर दडिका कहते हैं। ये डण्डे लिन्ग डण्डो की अपेक्षा बहुत छोटे होते है। भगॉकुर का सिरा ठीक लिंगमुंड के समान होता है, किन्तु होता है सूक्ष्म। भगांकुर में लिंग की तरह कोई छेद नही होता, यह भी याद रखने की बात है, इसकी चमडी लघु ओष्टो की चमड़ी से मिली रहनीहै और ऊपर से हट भी सकतीहै।

मैथुन के समय स्त्रियो को जो आनन्द मिलता है, वह भगाकुर यानी भगशिश्निका यानी लिंगी और लिंग के घर्षण से। उस समय लिंगी भी लिंग की तरह खून से भरकर मजबूत होजाती है, जब स्त्री की इच्छा नही होती तव लिंगी में खून नहीं भरता, और न वह मजबूत ही होती है, जिससे मैथुन करने पर पुरुष को आनन्द नहीं आता और उस हालत में लिंग विना रुकावट के सरपट से ही अन्दर चला जाता है. मैथुन के वाद जैसे लिंग शिथिल हो जाताहै, वैसे ही लिंगी भी, शीघ्रपतन के रोगियो की स्त्रियो की लिंगी शायद ही कभी पूर्णानन्द के वाद शिथिल होती हो, चूंकि

पुरुष का वीर्य जल्दी निकल जाने से स्त्री को पूर्ण आनन्द नही आता।

योनि *Vagima*

आयुर्वेद के मत से योनि शंख की तरह तीन चक्करो वाली होती है, तीनो चक्करो का संस्कृत नाम त्रिवलि है, और तीनो का नाम भी क्रमशः भीतर से बाहर की तरफ गौरी, चन्द्रमसा और समीरणा है, गोरी वलि के भीतर गर्भाशय Uterns है. इसका वर्णन अलग होगा, यहाँ योनि विषयक दो एक बातें बतला देनी हैं। योनि एक नली है, जिसका ऊपरी भाग गर्भाशय की गरदन के निम्नांश से मिलकर गर्भाशय से वाहिरी मुख को ढकता है, नीचे का हिस्सा भग में, भगोष्ठो के बीच लघु छिद्र यानी मूत्रवहिर्द्वार से आध इञ्च नीचे खतम हो जाता है, निचले हिस्से का मुंह खुला हुआ रहता है योनि द्वार का अधिक भाग संभोग से पहिले योनिच्छद पर्दे से ढका हुआ रहने के कारण बन्द रहता है।

गर्भाशय और योनि का सम्मेलन जहां होता है, वहां पर एक समकोण बन जाता है, इसलिये कि गर्भाशय हमेशा सामने की तरफ झुका हुआ रहता है, योनि के भीतर गर्भाशय की गरदन का कुछ हिस्सा घुसा हुआ रहता है। जिससे गर्भाशय अग्रओष्ठ और योनि की अगली दीवार में कुछ अन्तर पड़ जाता है, ऐसा ही गर्भाशय के पृष्ठ ओष्ठ और योनि की पिछली दीवार में होता है। यानी दोनो में कुछ अन्तर रहता है, अग्र ओष्ठ और अगली दीवार के अन्तर को अग्र कोण कहते हैं तथा पिछले औष्ठ और पिछली दीवार के अन्तर को पाश्चात्य कोण। अग्र कोण की अपेक्षा पाश्चात्य कोण विशेष गहरा होता है।

लम्बाई में योनि ३ या ४ इञ्च होती है, इसकी सामने की दीवार पिछली दीवार की अपेक्षा कुछ कम लम्बी होती है, सौत्रिक तन्तुओं तथा अनैच्छिक मांस के द्वारा दीवारों का निर्माण होता है। और दीवारो के भीतर पृष्ठ पर बलगमी झिल्ली का आवरण रहता है, जो हमेशा कुछ तर रहता है। योनि के भीतर कीड़ा इसलिये नहीं घुस सकता कि दीवारें एक दूसरे से सटी हुई है। इसी तरह कमजोर लिङ्ग के घुसने में रुकावट होती है, अंदर वही चीज घुस सकती है, जो दृढ़ होती है योनि द्वार पर योनि का संकोचन करने वाली पेशियां लगी हुई हैं। जिससे मैथुन के बाद लिंग के निकलने पर योनि फिर सिकुड़ जाती है, जब संकोचन पेशियो में शिथिलता आजाती है तो, योनि चौड़ी रहती है। जिसके लिये विलासी स्त्रिया ऊटपटांग दवाओं का उपयोग भी किया करती हैं। कभी २ दवा की तेजी से पेसियां फूल जाती हैं, जिससे बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता है। योनि का चौड़ा होना है भी वास्तव में संभोग सुख के लिये अनुपयुक्त ही।

योनि की दीवारो पर शिरा जाल फैले रहते हैं, मैथुन की उत्तेजना होने पर उन शिराजालो में ही रक्त भरता है, जिससे योनि की दीवार पहिले की अपेक्षा उस समय कुछ मोटी होजाती है। योनि बीच में चौड़ी होती है, और गर्भाशय के पास जाकर तग हो जाती है, जिस जगह मूत्राशय के साथ इसका सयोग होता है, वहां भी यह तङ्ग हो जाती है। प्रसव के समय गर्भाशय की विकास शक्ति के कारण योनि चौड़ी हो जाती है। अस्तु

सक्षेप में जननेन्द्रिय का इतना वर्णन पर्याप्त होगा. इससे आवश्यक बातों का पता लग जायगा इनका विशेष वर्णन शरीरशास्त्र (Anatomy) में देखना चाहिये। हमारी इच्छा है, कि पाठक-पाठिकाओ की जानकारी के लिये यहां रजोधर्म के ऊपर भी आवश्यक प्रकाश डाल देना चाहिये,

रजोधर्म विषयक रोगों का यहां उल्लेख होगा, अतः रजोधर्म के विषय में खास २ बातें समझ लेनी चाहिये।

रजोधर्म *Menstruation*

इसको हम मासिक धर्म भी कहते हैं, स्त्रियां जब रजस्वला होती हैं, उस समय रजोधर्म कहलाता है। स्त्रियो के सौंदर्य और स्वास्थ्य को सुस्थिर रखने के लिये रजोधर्म का होना, न केवल आवश्यक ही है, अपितु अनिवार्य भी है। जिस युवती को नियमित समय पर रजोधर्म होता है, उसका स्वास्थ्य सुन्दर और सबल होता है, और उसकी सन्तान दीर्घ जीवी और स्वस्थ होती है रज दूषित स्त्री का पति अगर उससे सहवास करता है तो, उसे प्रमेह सुजाक गर्मी जैसी भयंकर बीमारियो का शिकार होना पड़ता है, उसके जीवन का पुष्प इन पाजी रोगो से असमयमें ही मसल दिया जाता है, इस लिये यह कहने में कोई संकोच नहीं कि पति के स्वास्थ्य के लिये भी रजोधर्म का नियमित और शुद्ध रूप से होना आवश्यक है।

रज और वीर्य दोनों से गर्भ की रचना होती है, औरगर्भावस्था में रज उसका पोषण करता है इसलिये सन्तान के स्वाथ्य का भी रजोधर्म से गहरा सम्बन्ध है। कहना चाहिये कि परिवार के लिये रजोधर्म का नियमित होना आवश्यक है। रजोधर्म जिसे मासिक धर्म भी कहते हैं, प्रत्येक स्त्री को प्रतिमास होता है,इस समय दूषित रज, योनि पथ द्वारा शरीर के बाहर निकलता है, गर्भाशय के आस पास महीने भर का इकट्ठा हुआ विकृति रज वायु-द्वारा शरीर के बाहर निकलता है। रजोधर्म का समय, शरीरशुद्धि का समय है. इसलिये उसका सीमित और नियमित होना जारूरी है।

अब प्रश्न उठता है, रज क्या है? और यह है भी स्वभाविक ही, रज का तत्व समझे विना रजोधर्म का रहस्य समझ में आना मुश्किल है। रज को दूसरे शब्दों में आर्तव भी कहते हैं और पाश्चात्य विद्वान इसे Ovum कहते हैं। शास्त्र में रज की मीमांसा करते हुये कहा है।—

"पाचिताः पित्ततापेन रसाद्याः सप्तधातवः।
शुक्लं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजोमयं"

फिर जब अपने स्वाभाविक तेज द्वारा रसादिक सप्तधातुओं का पाचन करता है, तब ठीक एक महीने में स्त्रियों का रज, और पुरुषों का वीर्य तैयार होता है। रज का उद्गम स्थल रस है, इसलिये इस रज को रसज भी कह सकते हैं. प्राचीन विद्वानों ने इस विषय पर खूब गहरी विवेचना की है, किन्तु इस रहस्यके जालमें न फंस कर आवश्यक बातों का ही उल्लेख करेंगे।

पाश्चात्य पंडितों का विश्वास है कि, पुरुष वीर्य की तरह स्त्री रज में भी जन्तु होते हैं। इन जन्तुओं का आकार, पुरुष वीर्य जन्तुओं से तिगुना होता है। पुरुष वीर्य जन्तु दुमदार होते हैं किन्तु रज जन्तु अंडे के सदृश होते हैं। न्यूक्लियस Nucleus तथा प्रोटोप्लाज्म Protoplasm इन रज जन्तुओं में, जो अंडे जैसे हैं, रहते हैं।

रज का जो परिपक्व कोष होता है वह व्यासमें $\frac{१}{२४०}$ से $\frac{१}{१२०}$ इञ्च तक होता है। यह हिस्सा साफ और पारदर्शक झिल्ली के समान है। इस झिल्ली की मुटाई $\frac{१}{५००}$ इञ्च के लगभग है इसे 'वायटेलीन मेम्बरेन' कहते हैं। अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखने पर झिल्ली चमकदार आकृति जैसी प्रतीत होती है। झिल्ली के दोनो तरफ लकीर होती है। इसमें ही मिली हुई द्रव पदार्थ के समान वाईटेलिस Vitellus होती है। अस्तु।

रज का प्रभाव स्त्री के स्वास्थ्य पर अनिवार्य रूप से गिरता है, इसलिये स्त्री को इस विषय में

सदा सचेत रहना चाहिये। रज इस बात की सूचना देता है कि अब युवती गर्भाधान के योग्य हो गई है। प्रतिमास नियत समय पर रजोधर्म होने से शरीर शुद्ध और निरोग रहता है। इसके विपरीत अनियमित रूप से जब रजोधर्म होने लगता है, शरीर के भीतरी हिस्से खराब होने लगते हैं।

स्त्रियों की तो बात ही क्या, आजकल के पुरुष भी रज के,सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नही रखते रज का सम्बन्ध स्त्रियों से है, इसलिये स्त्रियो को इस विषय का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये। रज क्या है, कितने दिन में रजो धर्म होता है और कितने दिन तक होता है शुद्ध रज कैसा होता है, अशुद्ध रज कैसा होता है? इत्यादि बातें प्रत्येक युवती को समझनी चाहिये।

स्त्री शिक्षा के लिये आज भारत बड़े २ कदम बढा रहा है, यूरुप की तरह शिक्षित स्त्रियां भारत कों भी पसन्द आने लगी हैं। यह अच्छे ही चिह्न हैं, मगर स्त्रियो को उनकी असली शिक्षा भी तो देनी चाहिये। जिस शिक्षा से उनके जीवन का सम्बन्ध है, उस शिक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिये। रजोधर्म की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये, ताकि रजस्वला होने से पहिले ही उन्हें रज सम्बन्धी ज्ञान हो जाय।

बहुत सी युवती स्त्रियां रज के दूषित होने के कारण ही अकाल में कालकवलिता हो जाती हैं। ऐसी स्त्रिया, जिन्हें किसी गड़बड के कारण रज—धर्म होना बन्द हो जाता है सदा के लिये बन्ध्या ही करार दी जाती है। गुलाब सा पुत्र पैदा करने की ख्वहिश उनके मन में ही ठडी हो जाती है। रजोधर्म सम्बन्धी जितनी बीमारियां हैं, उनके बिषय में प्रत्येक युवती को थोड़ा ज्ञान होना चाहिये।

जो युवती, प्रतिमास रजस्वला होती है, उसके शरीर का स्वास्थ्य स्वच्छ होता है' उसके मुख मण्डल पर लावण्य रहता है, और वह अपने सौंदर्य से पति के हृदय को भी आकर्षित कर सकती है, वह स्वस्थ सन्तान पैदा करके देश की सेवा भी कर सकती है, समाज में आजकल ऐसी शिक्षा का प्रचार होना चाहिये। जिससे वह अपने दायित्व को समझ सके। कहना चाहिये कि, रज का दूषित होना राष्ट्र की अवनति का चिह्न है।

अच्छे बीज से अच्छा फल पैदा होता है और सड़े बीज से सड़ा, फिर उसके पैदा होने में भी सन्देह है, आकाश में उडने वाली दुनियां की नजर क्या इधर उठती ही नहीं है?

रज भी वीर्य की तरह दूषित हो जाता है, जिससे स्त्री का शरीर प्रदर, गुल्म, क्षय आदि रोगो का खजाना बन जाता है. और शरीर का सारा सार योनि पथ से शरीर के बाहर निकल जाता है। आज भारत में रज का दूषित होना साधारण बात है, केवल रज दूषित होने पर ही वन्ध्यत्व रोग आ लगता है जैसे वीर्य दूषित होने पर नपुसकता आ लिपटती है। आजकल रज दूषित वन्ध्याओ की सख्या ही हमें अधिक देखने को मिलती है।

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्॥

यह पद्यांश का अर्थ भी यहां विचार लेना चाहिये। इसका मतलब यहहै कि, रससे बना हुआ रज, महीने २ में तीन२ दिन तक स्त्रियो का योनि से निकलता है। रज रस से बनता है, और रस अन्न से बनता है, इसलिये अन्न का प्रभाव भी रज पर अवश्य गिरता है, केवल खाने पीनेकी गड़बड़ से ही आजकल हजारो स्त्रियों को या तो रजोदर्शन होता ही नहीं, और होता है तो बहुत कम, अथवा लगातार कई दिनों तक और अधिक परिमाण में। भावप्रकाश में लिखा है—

स्त्रीणां रस एव मासेन आर्त्तवं भवति।

एक महीने में स्त्रियों का रस ही आर्त्तव बन जाता है। रज का रूप रंग कैसा है, यह भी सुनिये भावप्रकाश लिखता है—

मासेनो पचित काले धमनीभ्यान्तदार्त्तवम्।
ईषत् विवर्णं कृष्णञ्च वायुर्योनि मुखान्नुदेत॥

एक महीने का इकट्ठा हुआ आर्त्तव धमनी मार्ग में, कुछ विवर्ण तथा श्याम रंग का होजाता है, तथा वायु उसको योनि मुख पर ले आता है. इससे हम समझ सकते हैं, कि एक महीने में जो रज तैयार होता है, इकट्ठा होता है, उसमें कुछ न कुछ विवर्णता भी रहती है, रज का विकृत भाग, दोष कारक भाग जब नाड़ियों में इकट्ठा हो जाता है, तब वायु उसे योनि के मुंह पर ला पटकता है, फिर वह बाहर निकल जाता है, इन तीन दिनो तक में जो रज निकलता है- वह रज का विकृत भाग समझना चाहिये। शरीर के अन्दर इकट्ठा हुआ सड़ा माल इन तीन दिनो में शरीर से बाहर निकल जाता है जिससे स्त्री का गर्भाशय साफ और खुले मुंह का हो जाता है एक महीने में उसके ऊपर जो बोझा गिरता है, वह सब इन तीन दिनो में निकल जाता है, बाद में गर्भाशय का मुंह खुलने पर उसमें गर्भ स्थिति होती है, रज का रंग विवर्ण, और काला है, यह भी इस श्लोक से जाना जा सकता है, जब वात पित्तादि वीर्य की भांति रज को भी दूषित कर देते हैं, तब उसका भी रूप रंग बदल जाता है, काला, नीला, हरा, लाल और चितकबरा, रज योनिपथसे निकलने लगता है। जिसतरह सन्तानोत्पादन करने वाले वीर्य के लक्षण हैं, उसी तरह रज के भी हैं, जो हम यहां उद्धृत किये देते हैं। ऐसी विज्ञान सम्मत बातों पर हम जब विचार करते हैं, तब हमें उन लोगों की बुद्धि पर हंसी आती है, जो इन बातों को कोरी गप्प समझते हैं, शुद्ध, स्वस्थ, और सन्तानोत्पादन में सहायक रज का लक्षण इस तरह है।

शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वालाक्षारसोपमम्।
तदार्त्तवं प्रशसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥

मतलब यह है कि जो रज, खरगोश के रुधिर के समान हो, लाख के रंग जैसा हो, और वस्त्र पर गिरकर स्थायी न हो, धोने से छूट जाय वह रज शुद्ध है, और श्रेष्ठ संतान का कारण है।

इसके अलावा जो आर्त्तव इन लक्षणों से भिन्न हो, पीला, काला, बादामीहो, और साबुनसे धोने पर भी जिसके धब्बे न छुटें, तथा सड़ा हुआ हो वह अशुद्ध है। उससे गर्भधारण हो ही नहीं सकता, और अगर कदाचित गर्भ धारण हो भी जाय तो वह गर्भ बालक रूप में प्रगट ही नहीं होता, और अगर प्रगट होकर बालक रूप धारण भी कर लेता है, तो वह युवावस्था की सीढ़ी तक पहुँचने ही नहीं पाता, और कदाचित पहुँच भी जाय तो वह सुन्दर और बलवान होकर दुनियांमें चिरजीवी होकर कुछकरने काबिल नहीं हो सकता। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि, भारत में जो मृत्यु संख्या बढ़ रही है, आयु बहुत कम होती जा रही है, और नये २ रोग पैदा होते जा रहे हैं, उन सबका प्रधान कारण वीर्य और रज का अशुद्ध होना ही है।

जिन कारणों से वीर्य खराब हो जाता है, उनसे रज भी खराब हो जाता है, सुश्रुत के शरीर स्थान में लिखा है—

"आर्त्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणित चतुर्थैः पृथक् द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति, तदपि दोष वर्ण वेदनादिभि विज्ञेयम्। तेषु कुणपग्रथि पूतिपूय क्षीण मूत्र पुरीष प्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यत् भवति" ॥

यानी-अगर पुरुषो के वीर्य की तरह, स्त्रियो का आर्त्तव भी, वात, पित्त, कफ, इन तीनो से रुधिरसे तथा द्वन्द्वज दोषो से, सन्निपात से,दूषित होकर अशुद्ध होजाय तो, वह सन्तान उत्पन्नकरने योग्य नहीं रहता। जिस तरह वातदि दोषो के रंग रूपादि से वीर्य का स्वरूप लक्षणादि जान लिया जाता है, वैसे ही रज का भी जान लेना चाहिये।

जैसा रूप रग वीर्य का हो जाता है, उससे मिलता जुलता ही आर्तव का भी हो जाता है, उन में मुर्दे जैसी गन्ध वाला, गांठदार, सड़ा हुआ, राध सरीखा, क्षीण और मूत्रमल जैसा आर्त्तव असह्य अवस्था को पहुँच जाता है, उसकी कोई चिकित्सा नही। बांकी सब साध्य हैं, चिकित्सा द्वारा दूर किये जा सकते है।

वातादि दोषो से केवल पुरुष का वीर्य ही दूषित होता हो, सो बात नहीहै, स्त्रियो का आर्त्तव भी दूषित और अशुद्ध होजाता है, वीर्य के समान अवस्था ही रज की भी हो जाती है, प्रमेह और प्रदर में साम्य भी इसी लिये है।

रजोधर्म ११-१२ वर्ष की अवस्था से शुरू होता है, और ५० वर्ष की अवस्था तक जारी रहता है, इस बीच प्रत्येक मास में स्त्री रजस्वला होती रहती है, देश के जलवायु और शीतोष्ण से भी रजोधर्म का गहरा सम्बन्ध रहताहै, हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो में, जो गर्म है, जैसे बंगाल, विहार और मारवाड में रजोधर्म जल्दी होने लगता है, इसके विपरीत ठंडे देशो में रजोधर्म कुछ देर में होता है। जो युवतियां शरीर से हृष्ट-पुष्ट होती हैं, निरोग होती हैं, वे प्रायः जल्दी ही रजस्वला होने लगती हैं।

यह अवस्था उस समय की है जब युवतियो का बालिकाओ का वायुमण्डल पवित्र होता है, उस समय प्रकृति के अनुसार ही उन्हे रजोधर्म होने लगता है, किन्तु जब शुरू से ही बालिकायें दूषित वायुमण्डल में रहती हैं, प्रारम्भ से ही जब उनके विचार दूषित होने लगते हैं, तब जल्दी ही रजस्वला होने लगती हैं, जब रजोधर्म बन्द हो जाता है, स्त्री की काम वासना नष्ट हो जाती है, बाद में उसके अन्दर परिवर्तन भी होने लगता है बादमें इससे प्रायः स्त्री को कष्टभी होने लगता है।

रजस्वला होना इस बात को बतलाता है कि, अब बालिका ने स्त्रीत्व के भवनके दरवाजे पर पैर रख दिया है, और कुछ काल बाद वह गर्भाधान के योग्य हो सकती है।

रजोधर्म के समय गर्भाशय का मुंह खुल जाता है, ऊपर जमा हुआ कूड़ा करकट निकल जाता है, जो रक्त बाहर निकलता है, वह एक महीने के अंदर विकृति हुआ होता है, इसी रक्त स्राव को मासिकधर्म कहते हैं, जब रजोधर्म होने लगता है, तब यौवन के दूसरे चिह्नभी प्रगट होने लगतेहैं, प्रायः तभी से स्तनो में उभार होने लगता है। कामेन्द्रिय पर बाल भी उस समय से अथवा कुछ समय बाद से जमने लगते हैं,बालिका का मन भी रजोधर्म होने के बाद स्वाभाविक तौर से परिवर्तित होने लगता है, ऐसा भी होने लगता है कि, रजोधर्म हुये बिना भी स्त्री गर्भाधान स्वीकार कर लेती है, मगर यह शुभचिह्न नही है। इससेजो सन्तान पैदा होतीहै, वह किसी न किसी अंश में अस्वस्थ जरूर होती है।

जो स्त्री अधिक मैथुन पसन्द करती है, तथा रात दिन गन्दे उपन्यासो को पढ़ती रहती है, वे समय पर रजस्वला नहीं होती।

रजोधर्म का समय खतरे का है, इसलिये उस समय बहुत सावधानी से रहना चाहिये। प्रायः उस समय स्त्रियो के पेडू में वेदना होने लगती है, आलस्य अधिक दबा लेता है, और खाने पीने में

अरुचि होने लगती है। स्त्रियों का चिड़चिड़ा हो जाना भी उस समय सहज ही है, ये गड़बड़ें उन्हीं स्त्रियों के होती है, जिनके या तो विचार दूषित रहते हैं, या जिन्हें वासना अधिक सताती है, रजो धर्म कोई छूत का रोग नहीं है, यह तो स्त्रीत्व और जवानी का चिह्न है।

रजस्वला स्त्री के सम्बन्ध में आजकल हिन्दू जाति के बहुत गन्दे और नाशकारी विचार होरहे हैं। इन विचारों का जन्म आज नहीं कल नहीं बल्कि बहुत पहिले हुआथा, रजस्वला स्त्री स्वभाव से ही उस समय अशक्त हो जाती है। फिर हिंदू जाति उसे अछूत करार देकर उसकी और भी गति बना देती है, वह किसी चीज को छू नहीं सकती, खाना पका नहीं सकती, पानी पिला नहीं सकती, और घर के काम काज में हाथ लगा नहीं सकती, वह उस समय एक अछूत से भी पतित मान ली जाती।

इन बातों का असली उद्देश्य कुछ और भी था मगर दुर्भाग्य से और बातों की तरह इसका भी हमने उल्टा ही उद्देश्य समझ लिया। असली उद्देश्य तो यह था कि, इन दिनोंमें स्त्री पूर्णविश्राम करे, घर के किसी काम धन्धे में हाथ न लगावे। ताकि उसके स्वास्थ्य पर किसी तरह का धक्का न पहुँचे। असल में उद्देश्य था कि स्त्रीको इस समय शारीरिक और मानसिक कष्ट न उठाना पड़े, और वह ३ दिन तक पूर्ण विश्राम करे।

रजः स्राव में विलम्ब

Deloyed Menstruation

साधारण रूप से १२-१३ वर्ष की अवस्था से रजोधर्म होने लगता है, यहीहमारा भारतीय नियम है, कोई २ बालिका १७-१८ वर्ष की अवस्था होने पर भी रजस्वला नहीं होती, और किसी २ को प्राथमिक रजोधर्म होकर फिर बन्द हो जाता है। यह शारीरिक स्वास्थ्य की गड़बड़ी समझनी चाहिये।

स्नायुमंडल की दुर्बलता, दीर्घकालीन की पीडा भोग, दैहिक कमजोरी, खून की गर्मी, योनि च्छद का होन न होना आदि इसके कारण हैं। जिससे रजोधर्म में विलम्ब होता है। इसमें सर भारी रहता है, व्यथा होती है, नाक से खून गिरता है, छाती धड़कती है श्वास प्रश्वासमें कष्ट होता है कमर और जांघो पर बोझा सा मालूम होता है। पेट में दर्द चलता है, जी मचलाता है रुका हुआ खून और भी खराबी करता रहता है। कब्ज, सूखी खांसी आदि उपद्रव भी होते हैं।

रजोरोध

Amenorrhoea

कभी २ रजोधर्म शुद्ध होकर भी बन्द हो जाता है।

सेठों की सेठानियां और बाबू लोगों की बीबिया, जिन्हें खा पीकर पड़े रहने के सिवा कुछ काम नहीं हैं, अक्सर इस रोग की शिकार होतीहैं शारीरिक मिहनत न करने, आलसी बनकर पड़े रहने ऊटपटांग खाने, अधिक संभोग करने, ऋतु धर्म के समय बर्फ का अधिक सेवन करन, ठंडमें रहने, जल में भीगने, अधिक पर्यटन करने, चिंता शोक, भय अधिक होने आदि कारणों से यह रोग होता है। सोजाक, गर्मी, खून की कमी ये भी कारण हैं।

मासिकधर्म महीनों और सालों नहीं होता, बहुत सी स्त्रियों को मुलतानी मिट्टी खाने से भी यह रोग होता है। इसमें सर घूमता रहता है, आखो के आगे अंधेरी रहती है गर्भाशय और डिम्बकोष मे वेदना होती है-कभी २ हिस्टेरिया

भी हो जाता है छाती और पसलियों में चुभन होती है, आमाशय में दर्द होता है, योनिमें जलन, खुजली आदि हो जाती है। खाना हजम नहींहोता कभी २ देह फूल जाती है, पेट घड़े जैसा हो जाता है।

रुचि नष्ट हो जाती है, एकान्त प्रियता हो जाती है और बात बात में बिगड़ने की बेहूदा आदत पड़ जाती है।

रज का बन्द हो जाना

इसको आयुर्वेद में रजोरोध कहते हैं। इसका विवेचन यूनानियो ने भी अच्छा किया है।

इसके ८ भेद हैं

१—प्रथम भेद

शरीर में खून कम होने से रजोधर्म बन्द हो जाता है। इसमें शरीर निर्बल हो जाता है, रंग पीला पड़ जाता है।

२—द्वितीय भेद

सर्दी के कारण खून गाढ़े दोषो से मिलकर गाढ़ा हो जाता है, जिससे रजोधर्म नहीं होता। इसमें शरीर की सुस्ती, सफेदी, रगो का पीलापन, पेशाब की अधिकता, कफ का मल, नीद में भारीपन ये चिन्ह होते हैं। जो कुछ थोडा खून आताहै वह पतला होता है।

३—तृतीय भेद

गर्भाशय की रगों के मुह बन्द हो जाने से, रज नही निकलता हैं। इसके भी तीन भेद है।

इसके ३ भेद हैं

१—गर्भाशय में विशेष गर्मी हो, खुश्की हो, और अजीर्ण हो। इसमें गर्भाशय में जलन और खुश्की रहती है।

२—गर्भाशय में सकोड़ने वाली सर्दी पैदा हो जाती है, जिससे रंग में सफेदी, नाड़ी मे विरुद्धता और रगो में सर्दी होती है।

३—गर्भाशय में खुश्की होकर उसे सकोड़ देती है। इसमें रगें खाली हो जाती हैं, शरीर दुबला हो जाता है और योनि में खुश्की रहती है।

४—चतुर्थ भेद

गर्भाशय में सूजन हो जाने से, रज बन्द हो जाता है, विशेष बर्णन सूजनो में देखिये।

(५) पञ्चम भेद

घाव भर जाने से गर्भाशय की रगें बन्द होकर रजोधर्म को रोक देती हैं।

(६) छटा भेद

गर्भाशय के मुह और छिद्र पर मस्सा पैदाहो जाता है, जिससे न सभोग हो सकता है, और न मार्ग बन्द होने से रज ही निकल सकता है, रजोधर्म के समय विशेष कष्ट और खिचाव होता है।

(७) सातवां भेद

ज्यादा मुटापे से गर्भाशय के मार्ग दब कर बन्द हो जाते हैं, वहां की चर्बी बढ़ जाती है, है भी साला मुटापा वास्तव में बड़ा बुरा ही।

(८) आठवां भेद

गर्भाशय स्थान भ्रष्ट हो जाता है, इधर उधर फिर जाता है तो, रजोधर्म बन्द हो जाता है। इसका वर्णन हो चुका है।

रज बन्द होने से होने वाले रोग

गर्भाशय का मिंचना, उसकी सूजन, तथा भीतरी अगो की सूजन, आमाशयके रोग, अजीर्ण प्यास आदि, दिमाग के रोग मिर्गी आदि, सीनेके रोग खांसी आदि. गुर्दे के रोग, जिगर के रोग, जलन्धर, पीठ और गर्दन का दर्द, पित्त ज्वर, आख और कान का दर्द, ये रोग रज के बंद होने से होने है। भीतरही भीतर सड़ा हुआ खून इतने रोग पैदा करता है।

अनियमित ऋतु

Irregular menstruation

प्रति मास रजोधर्म हो जाना चाहिये। यही स्वास्थ्य शास्त्र का नियम है। प्रदर के प्रकरण में ही इस रजोधर्म के विषय पर खासा प्रकाश डाल चुके हैं। तीन दिन से पाच दिन तक रजोधर्म होता है. किन्तु बहुत सी स्त्रियो को कभी २ महीने में मासिकधर्म होता है, तो कभी १५ ही दिन में, इसीको अनियमित ऋतुकहतेहैं, बहुतसी स्त्रियो को महीनो रजोधर्म नहीं होता, और जब होता है तब १०—१५ दिन तक लगातार। इसके कारण है वही अनियमित आहार,विहार, सूजाक, गर्मी आदि पेट में दर्द, जलन, चुभन गर्भाशय की वेदना, शिर घूमना आदि चिन्हइसमें भी होते हैं

अनुकल्प रज

Vicarious Menstruotion

रजोरोध या अल्परज के कारण रुका हुआ रज, जो सड़ जाता है नाक के रास्ते, मुँह केरास्ते, और गुदा के रास्ते निकलने लगता है, बाद में इससे 'थाइसिस' भी हो जाता है रुका हुआ रज आक्रमण करके दिक् पैदा कर देता है। खूनी कै नकसीर, छाती में पीडा, दुर्बलता, मुँह की सफेदी आदि चिन्ह स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

स्वल्परज *Scantymenstruotion*

शरीर में खून कम होने, आमाशयिक गड बडी से खूनी कै होने, फेफडा की बीमारी होने, बवासीर होने आदि से रजोधर्म के समय बहुत थोडा खून आता है।

इसमें देह पीली पडजाती है, कै होती है, कोष्ट बद्धता होती है, देह पर फुंसियां निकल आती हैं पेट में दर्द होता है। स्नायुमडल क्षीण होजाता है

बाधक वेदना *Dysmenorrhea*

रजोधर्म कीगडबडी से जोवेदना होती है, उसे बाधक वेदना कहते हैं। सभोग की अधिकता गर्भाशय की स्थान भ्रष्टता जरायु में रक्त संचय, श्वेत प्रदर, गर्मी, सोजाक आदि कारणो से यह वेदना होती है, और खासकर मासिक धर्म के समय। पेडू और कमर में अधिक पीड़ा होती है, थोड़ा रजस्राव होता है, वह भ बहुत ही पीड़ा के साथ। रजोधर्म के समय, पेडू कमर, डिम्बाशय मेरुदण्ड, शिर इनमें वेदना होती हैं। आलस्य अग्निमान्द्य, सर घूमना, दुर्बलता,कै, मितली आदि चिन्ह उस समय होते हैं। आमाशयिक पीड़ा, मलोत्सर्ग के समय कष्ट, कनपटी में धमक, आखो और मुह का लालपन ये चिह्नभी उससमय दिखलाई पड़ते हैं।

श्वेत प्रदर

Leucorrhoea

योनि में गर्मी सूजाक जैसे पाजी रोगो के कीड़े पड़ने, उत्तेजक पदार्थो के अधिक खाने, स्वास्थ्य शास्त्र के नियमो का उलङ्घन करके अनियमित आहार विहार करने, अधिक सभोग करने बार २ गर्भ गिरने, योनि मे दाह होने, कफ के अधिक होने, ठड लगने आदि कारणो से यह रोग होता है, इसमें सफेद, नीला, पीला, काला, कई तरह का रज निकलता है, अतिरज और श्वेत प्रदर मे अन्तर है, यह ध्यान देनेकी बातहै पुराना होने पर पीव जैसा रज भी निकलने लगता है, और योनि के भीतर घाव भी हो जाता है।

कब्ज तो इसमें रहती हीहै, सिर जकड़ जाता है, पेट फूल जाता है, मुंह फीका रहता है। गर्भाशय में जलन, खुजली और वेदना होती है, पेट में दर्द होता है, पाचन ठीक नही होता, ऐसे ही और भी उपद्रव होते हैं।

रजोनिवृत्ति *Menopause*

साधारणत:४० वर्ष की अवस्था से स्त्रियो की जननेन्द्रिय का रक्त सचय घट जाता है, और

७-८ वर्ष में स्वस्थ स्त्रियो का रजोधर्म हमेशा के लिये बन्द हो जाता है, यही प्राकृतिक नियम है। बुढ़ापे और प्रारम्भिक अवस्था या मध्य अवस्था में, गर्भाशय का आकार छोटा हो जाता है, योनि संकुचित होजाती हैऔर थोड़ी दुर्बलता भीहोतीहै।

किन्तु बहुत सी स्त्रियो का रजोधर्म बुढापे में भी बन्द नही होता, यह ठीक नहीं है, जरायु की शक्ति घटती नही है, जिससे खून बढ़ते रहने से स्त्रियो का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

स्नायुमडल उग्र हो जाता है, बार २ गर्मी मालूम होती है, शिर में वेदना होती है। हृदय में धड़कन अधिक होती है, हिष्टीरिया भी हो जाती है। कै भी कभी होजाती है, कब्ज रहती है, पेट में वायु भर जाती है, पेशाब अधिक होता है,और कमजोरी बहुत आ जाती है। उस समय रजोनिवृत के लिये दवा का प्रयोग भी करना चाहिये।

हरित्पीड़ा
Chlorosis

अतिरज, हस्तमैथुन, अ धुक मैथुन, अनियमित ऋतु, आलस्य चिन्ता, शोक आदि कारण से यह रोग होता है। खून के लाल कणो का भाग इसमें घटजाता है, जिससे देह सफेद हो जाती है मुह पर कुछ पीलापन आ जाता है, कभी नियमित रजोधर्म नही होता, शरीर की प्राकृतिक गर्मी कम हो जाती है, ठड लगती रहतीहै आंखो की पलकें सूज जाती हैं, आंखो के चारो तरफ काले २ दाग पड़ जाते हैं, छाती धड़कती है। होठो पर सफेदी आ जाती है, नाड़ी धीरे चलती है, अरुचि बनी रहती है। कला चिडचिड़ापन आदि चिह्न भी होते हैं।

सोमरोग

यह रोग स्त्रियो को होता है, इस रोग वाली स्त्री बहुत दुबली पतली हो जाती है, इसमें पेशाब बहुत होता है, मिनट २ पर पेशाब होता है, और अपने आप ही होता रहता है, इस समय योनि भीगी हुई रहती है, शरीर का सारा जल भाग इस तरह पेशाब के रूप में निकलने से, स्त्री का जीवन खतरे में पड़ जाता है, मूत्रातिसार में और इसमें बहुत अन्तर है।

कारण

ज्यादा मैथुन करने से, रात दिन चिन्ता करने से, विशेष मिहनत करने से, अतिसार होने से, जहरीली चीजों के खानेसे, गर्मी, सूजाक होने से अथवा गर्मी सूजाक वाले पुरुष से संभोग करने से, शरीर के अदर रहने वाला समस्त जलांश क्षुब्ध हो जाता है, और अपने २ स्थानो से चू चू कर पेशाब के रास्ते निकलने लगता है।

गर्मी, सूजाक ये दो कारण प्राचीन विद्वानो ने नहीं बतलाये, किन्तु आजकल के विद्वानो का विश्वासहै कि, इन रोगोके जहरीले कीड़े भी शरीरस्थ जलांश को क्षुब्ध बना देते है, यह बात है भी दरअसल ठीक ही।

स्पष्ट चिह्न

सफेद, स्वच्छ, ठंडा, गध रहित, जल पेशाब के रास्ते से बार २ निकलता है, उस समय पीड़ा जरा भी नही होती, किन्तु उसका वेग क्षण भर के लिये भी नही रोका जा सकता, रोकते ही वह अपने आप निकल जाता है, स्त्री बेचारी इस तरह हरदम बेमन रहती है पेशाब करते २ थक जाती है, बेहोशी तक आने लगती है, माथा शिथिल होजाता है, मुह और तालु सूख जाते हैं, जभाई आती है, बकवादी होती है, चमड़ी रूखी पड़ जाती है, न पानी से पेट भरता है, न खाने से, फिर देह अत्यन्त दुबली हो जाती है।

मूत्रातिसार

जब सोमरोग पुराना हो जाता है तो, पेशाब बराबर बहता ही रहता है। यह उससे भी ज्यादा खतरनाक रोग है।

रक्त प्रदर

Menorrhagia

पुरुषो के लिये प्रमेह जैसे यमराज का रूप है स्त्रियो के लिये वैसे ही प्रदर हैं। प्रदर को हम प्रमेह का सगा भाई कह सकते हैं। स्त्रियो के हृदय की सारी हरी २ आशाए प्रदर के कारण खाक मे मिल जाती है। कामिनियो को कामना, वनिताओ का बिलास, स्त्रियो का सौंदर्य, और ललनाओ का लावण्य, ये सब प्रदर के कारण खाक में मिल जाते हैं।

जहा भरी जवानी मे नवयुवतियो के हृदय में एक विलक्षण और नवीन स्फूर्ति रहा करती है, वहां प्रदर के कारण युवतियो का हृदय, शुष्क, स्फूर्तिहीन, और वेजान हो जाता है, वे ही भारत रमणिया जो कभी वज्र जैसे कठोर, हास्य जैसे मनोरम, और सौंदर्य जैसे प्रिय बच्चे पैदा करती थी, आज या तो वांझ होती जा रही है, या अधे, लगड़े, काने कायर और गुलाम बच्चे पैदा करती हैं।

आज स्त्रियो का सौंदर्य खाक में मिल रहा है, भरी जवानी में ही उनके चेहरे पर लाली की जगह सफेदी चिलक रही है, ओंठो पर पपड़ियाँ जम रही हैं और वे सफेद हो रहे हैं, स्वास्थ शास्त्र के नियमो का उल्लघन करने से, आज उन्हे प्रदर जैसी घातक बीमारियो का मुकाविलो करना पड़ रहा है किसी को प्रदर है, तो किसी को अल्प रज है, किसी को रात दिन रजोधर्म होता है तो किसी को वर्षों मासिकधर्म नही होता। —

सभ्यता के इस नये युग ने भारत को विभूति दी है वह पुरुषो के लिये प्रमेह है, और स्त्रियोके लिये प्रदर, इस सत्यानासी सभ्यता के कारण आज स्त्री पुरुषो का जो जीवन है, वह हर हालत में घृणित, दयनीय, और हेय है। प्रमेह पर हम खुलासा विचार कर चुके हैं, अब प्रदर के ऊपर भी आवश्यक प्रकाश डाल देना हमारा कर्तव्य है, आज सौ में ९० स्त्रिया प्रदर की शिकार दिखलाई पड़ती हैं।

अफसोस! आज गृहदेवियो को बच्चे पैदाकरने के लिये भी दवाओ का सेवन करना पड़ रहा है।

अब देखना चाहिये प्रदर क्या है ?

प्रदर क्या है

पुरुषो के शरीर में उनके शरीर का पोषक वीर्य है, और स्त्रियो के शरीर में रज, रज को ही प्राचीन विद्वानो ने स्त्री का पोषक पदार्थ माना है रज ही स्त्री के स्वास्थ्य को सुन्दर रखता है, और रज ही स्तनो में जाकर दूध के रूप में परिणित होकर बच्चे का पोषण करता है। रज और वीर्य स्त्री के शरीर में सातवे धातु हैं। मतलब यो समझना चाहिये कि, पुरुषो के शरीर में सातवां धातु केवल वीर्य ही है, किन्तु स्त्रियो के शरीर में यह रज, और वीर्य दोनो रूपो में विभाजित हो जाता है। स्त्री के शरीर में यद्यपि वीर्य है, किन्तु प्राधान्य रज का ही रहता है।

कहना चाहिये कि, एक महीने में खाये हुये भोज्यादि पदार्थों का सार भाग, तत्व भाग रज है इस क्रिया में १ महीना और कुछ समय लगता है रज वह पदार्थ है, जो ६ महीनो में लगातार एक महीने में शुद्ध होता है। पुरुषो के शरीर में वीर्य का जैसा कोई खास स्थान नही है, वैसा ही यहा माना जाता है, किन्तु इसमें भी मतभेद है। किन्हीं विद्वानो का विश्वास है कि, वीर्य अलवत्ता सारे शरीर में व्यापक रहता है, किन्तु रज का एक नियमित स्थान है, और वह स्थान है रजकोष। किन्तु तर्क से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती। पुरुषो के शरीर मे भी वीर्यकोष रहता है, फिर क्यो नहीं वहां भी वीर्य का एक खास केन्द्र स्थान

मानना चाहिये। वीर्य जैसे संयोग के समय नाड़ियों द्वारा खिचकर अण्डकोषो में आ बैठता है, वैसे ही अगर यहां माना जाय तो कोई अयुक्तिक नही। खैर।

जो हो, रज एक धातु है—सामान्य धातु नही खास धातु जिसके ऊपर जीवन निर्भर रहता है। हर एक धातु जीवन के लिये उपयोगी है किसी भी धातु में जब कोई विकार पैदा हो जाता है। तब स्वास्थ्य पर गहरा धक्का पहुँचता है। रज का शुद्ध स्वरूप क्या है? यह यहां बतलाने की नहीं, फिर भी इतना कह दिया जाता है कि, लाख के रंग के जैसा, खरगोश के खून के जैसा रज शुद्ध होता है। और यह धोने पर हट जाता है, उसका दाग नहीं लगता। जब महीने के अन्दर योनिपथ से रज निकलता है, तब उस समय को मासिकधर्म, रजोधर्म कहते हैं और स्त्री को रजस्वला।

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्

महीनो २ में स्त्रियो के रजोधर्म होता है। वह कैसा होता हैं, यह ऊपर बताया जा चुका है। बरा बर तीन दिन तक रजोधर्म होता है। इन तीन दिनो में एक महीने का इकट्ठा हुआ दूषित रक्त, रज आदि सब निकल जाता है और गर्भाशय फिर साफ होजाता है। बाद मे शुद्ध रज, वीर्य के साथ मिलकर गर्भ स्थिर करता है। अस्तु।

पाश्चात्य विद्वान रज के अन्दर कीटाणुओ का होना मानता है, उसका विश्वास हैं कि वीर्य,की तरह रज में भी कीटाणु होते हैं, जो वीर्य के कीटाणुओ के साथ मिलकर गर्भाशय में बैठ जाते हैं। फिर बाद में जो गर्भ की वृद्धि होती है, उसे पाश्चात्य विद्वान एक रोग मानता है, जो हो, हमें इसकी विवेचना नही करनी है, हम केवल इतना बताना चाहते हैं, प्रदर क्या है? पिछली बातोका उल्लेख भी केवल इस लिये है कि इनका सम्बन्ध प्रदर से है। वह कैसे यह अब सुनिये।

प्रदर के मानी होते है अधिक गिरना, सीमा से अधिक निकलना, यह अर्थ हमने अभिप्राय समझने के लिये हीं लगाया है।

हा तो, रज जब महीने में तीन दिन तक गिरता है तब तो वह नियमित, अपनी मात्रा से गिरता है। किसी २ पुष्ट स्त्री के चार दिन तक भी गिर सकता है और वह २½ तो० के हिसाब से रोज गिरना चाहिये, रंगरूप भी उसका शुद्ध होना चाहिये। ऐसी अवस्था में रज में कोई दोष नहीं वह शुद्ध समझा जाता है।

किन्तु जब अनियमित रूप से, २० वें रोज २५ वे रोज अथवा ३५ वे रोज गिरने लगता है, कई दिन तक गिरने लगता है, अधिक गिरने लगता है, तब वह अपनी सीमा से बढ़ जाता है, मात्रा से अधिक हो जाता हैं। रज का अधिक और अनियमित रूप से गिरना, उसका रूप रंग विकृत हो जाना ही प्रदर है, प्रदर नाम की सार्थकता बस इसी में है।

खुलासा यो समझिये कि जब मासिकधर्म समय पर न होकर बेसमय, आगे पीछे होने लगता है अधिक या कम होने लगता है दूषित विकृत होने लगता है, तब वह प्रदर रोग है। ऐसी हालत का होना ही गोया प्रदर रोग है।

जो स्त्री महीनोमें अनियमितरूप से, रजोमती होती हो, जिसकी योनि से कई रोज तक रज निकलता हो, अशुद्ध रूप का हो, उसे समझना चाहिये कि इसे प्रदर रोग हो गया है हम यहां केवल प्रदर रोग की आलोचना करेंगे। सोम रोग जिसमें रात दिन योनि से सफेद पानी गिरता रहता है, अथवा रज का बिलकुल ही अभाव हो जाना आदि बातो पर लिखने के लिये यह स्थान नहीं है।

यहां केवल वे ही बातें लिखी जावेगी जिनका सम्बन्ध प्रदर रोग से है। आज कल प्रमेह रोगकी तरह प्रदर का भी खूब प्रचार हो रहा है, कोई घर ऐसा बाकी नही मिलेगा जिसमें प्रदर रोग न हो, यह रोग भी साधारण नही है, जिस स्त्री के हो जाता है। उसकी सन्तान के होता है और उस स्त्री को घुला २ कर मारता है। प्रदर होने पर प्रायः गर्भस्थित ही नहीं हो पाती, अगर किसी तरह हो भी जाय तो गर्भ नौ महीने तक सही सलामत नही रह सकता, अनियमितरूप से गिरने वाला रज उसे बाहर निकाल फेंक देता है। प्रदर रोग वाली स्त्रियो को ही अधिकतर गर्भस्राव से मुकाबिला करना पडता है।

केवल गर्भस्राव ही होता हो, सो बात नहीं है योनि के अन्दर और कई तरह के रोग हो जातेहैं, उससे सभोग करने वाले पुरुष को प्रमेह, सूजाक, गर्मी जैसे भयकर रोग हो जाते हैं यह निश्चय समझिये कि जिस स्त्रीको प्रदर होगा उसके पतिको प्रमेह होगा और जिस पुरुषके प्रमेह होगा, उसकी स्त्री के प्रदर-होगा।

यहां तक देखा गया है कि, प्रदर रोग वाली माता के सन्तान से पैदा हुई लडकी को प्रदरऔर लड़के को प्रमेह रोग होता है। अब विचारना यह है, कि प्रदर होता क्यो है, प्रमेह की तरह इसके भी कौन से कारण होते हैं, जिनसे यह पैदा होता है, प्रदर क्या है, इसके सम्बन्ध में आयुर्वेदिक साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित भावमिश्र अपने वैद्यक ग्रन्थ 'भावप्रकाश' में लिखते हैं।

असृग्दर भवेत्सर्वं सांगमर्द सवेदनम्।

दुष्ट रज का निरन्तर अधिक स्रावहोना, साथ में अंगों का टूटना, और शूल की पीड़ा होना प्रदर है। इसका खुलासा यों समझिये कि प्रदर रोग के होने पर योनि से खराब रज बराबर और खूब निकलता है, शरीर में वेदना होने लगती है, शूल उठने लगता है। यह है भी वास्तव में उचित ही शरीर का सारा तत्व निकलने पर अङ्गों में वेदना न हो तो क्या हो? ऐसा ही सुश्रुत में लिखा है।

तदेवातिप्रसगेन प्रवृत्ति मनृतावपि।

असृग्दर विजानीयादतोन्यद्रक्त लक्षणान्॥

जब आर्त्तव 'रज' अधिक निकलने लगता है, नियम का उल्लघन करके ऋतु विरुद्ध होने लगता है और उसका रंग रूप दूषित और विकृत हो जाता है, तब वह प्रदर रोग हो जाता है, इसी तरह चरक, माधव, आदि विद्वानो ने भी प्रदरकी व्याख्या की है। किन्तु उनका भाव आखिर एक ही है। प्रदर रोग का सामान्य और सीधा अर्थ वही है जो हम पहले बता चुके हैं, सुश्रुत के पद्य की दूसरी लाइन में जो 'असृक' शब्द आया है, उसका अर्थ आजकल के विद्वान केवल रक्तप्रदर से लगाते हैं और प्रदरों से नहीं, किंतु उनका यह विश्वास ठीक नही, हर एक प्रदर में खून ही तो गिरता है और रज स्वय खूनमय है, हर हालत में खून ही तो बाहर निकलता है।

प्रदर क्यो होता है

इस पर भी विचार कीजिये। पुरुषो की बात जाने दीजिये, ये तो आजादहै, धर्म व्यवस्थापक हैं, इन्हे जो रोग होजाय, वह भी थोडा ही है किन्तु स्त्रियां, गृहलक्ष्मियां, जिन्हे घरकी दीवार के सिवा और किसी से बात करने का मौका ही नहीं मिलता, क्योकर प्रदर से पीडित होजाती हैं। इन बातो पर अब जरा दृष्टि निक्षेप कीजिये।

विरुद्धमद्याध्यशनाद जीर्णात्।
गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च॥
यानाध्वशोका दति कर्षणाच्च।
भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च॥

तं श्लेष्म पित्ता निल सन्निपाते ।
श्चतुष्प्रकारं प्रदर बदति ॥

(१) विरुद्ध भोजन करने से ।
(२) शराब आदि नशीली चीजो के सेवन करने से ।
(३) भोजन पर भोजन करने से ।
(४) अजीर्ण से ।
(५) गर्भ के गिरने से ।
(६) अधिक सभोग करने से ।
(७) हाथी घोड़े आदि सवारियो पर चढ़कर उन्हे ज्यादा दौडाने से ।
(८) ज्यादा पैदल चलने या, दौड़ने से ।
(९) अधिक चिन्ता करने से ।
(१०) अधिक कर्षण करने से ।
(११) भारी बोझ को उठाने से ।
(१२) चोट लगने से, गिरपड़ने से ।
(१३) दिन मे सोने से ।

इन कारणो से प्रदर रोग पैदा होता है । वह चार तरह का होता है । वात, पित्त, कफ और तीनो दोषो से पैदा हुआ ।

इस पद्य में १३ कारण बतलाये हैं, जिनसे प्रदर रोग उत्पन्न होता है , अब पहिले थोड़ा २ इन कारणो में से प्रत्येक पर विचार करना चाहिये इन कारणो में ऐसे कारण हैं, जो प्रमेह के प्रकरण में आ चुके है । सब से पहिला कारण है ।

(१) विरुद्ध सेवन करने से

विरुद्ध भोजन के अर्थ होते हैं, प्रकृति विरुद्ध भोजन करने से । इस पर हम पहिले लिख आये हैं या केवल इस प्रश्न के दूसरे पहलू पर जिस पर पहले नही लिखा गया है थोड़ा विचार प्रकट कर देना चाहते हैं । प्रकृति विरुद्ध भोजन करने से जैसे प्रमेह होता है वैसे ही प्रदर हो जाता है फर्क केवल इतना ही है कि, वह पुरुषो को होता है यह स्त्रियो के ।

एक भोजन होता प्रकृति विरुद्ध, दूसरा होता है, भोजन विरुद्ध, दोनो के अन्दर यद्यपि कोई विशेष पार्थक्य नही है फिर भी दोनो जुदा२ काम करते हैं । प्रकृति विरुद्ध भोजन खाने से प्रकृति दण्ड देती है और भोजन विरुद्ध खाने से भोजन स्वाथ्य शास्त्र की दृष्टि से कुछ ऐसे भी नियम हैं जिनमें संयोग विरुद्ध भोजन खाना वर्जित है । दूध और दही दोनो का संयोग करके खाने पर शरीर के स्वाथ्य में गडवडी मच जाती है दही और केला दोनो पेट में अफारा कर देते हैं जिनके खाने से अनेक रोग पैदा हो जाते हैं शराव पीकर आप दूध पीजिये जरूर स्वप्न दोष होगा खिचड़ी खाकर आप खीर खाइये जरूर पेट दुखेगा ।

इस तरह जब बराबर भोजन विरुद्ध भोजन किया जाता है, शरीर के कल-पुर्जों में स्फूर्ति नहीं रह पाती, होता यह है कि जब कोई स्त्री ऐसे व्यवहार करती, तब उसका गर्भाशय विकृत होने लगता है ।

जब बराबर भोजन विरुद्ध खाया जाता है, नतीजा यह होता है कि ग्रहणी कला ठीक तौर से उसका पाचन नहीं कर पाती, पेट में कब्ज रहने लगती है, धीरे २ खून खराब होने लगता है उसका आखिरी परिणाम यह होता है, कि प्रदर हो जाता है । अब दूसरा कारण

(२) नशीली चीजो का सेवन करने से–

करना भी देखिये, कम और बहुत कम संख्या में स्त्रियां मादक द्रव्यो का सेवन करती हैं । मुगल शाही के जमाने से कही २ स्त्रियां तमाखू पीते देखी जाती हैं, किंतु उनकी संख्या नहीं के बराबर है, हां अब पाश्चात्य शिक्षा की गोद में पली हुई फैसनेबिल लेडियां अपने लेडो के साथ जाकर शराब की उपासना करने लगी हैं । सिगरेट,बीड़ी तो स्त्रियां शायद ही कहीं पीती हो, यह भारत की

स्त्रियो की वातें हैं यूरोप की स्त्रियों की नही, वहां तो मिनट मिनट में सिगरेट से धुआं निकला करता है। आज कल हमारे यहां अधिकतर स्त्रियां अफीम का सेवन करने लगती हैं। देखा जाता है कि योवन के प्रारम्भिक काल मे ही वे अफीम की उपासना करने लगती है, फिर यह लत जन्मभर उनसे नहीं छोडी जाती।

खैर, जो हो स्त्रिया नशीली चीजो का सेवन करें या न करें इससे हमें मतलव नहीं, हम केवल इतना ही वता देना चाहते हैं कि इनसे प्रदर रोग हो जाता है, क्यो होता है? वह भी सुनिये नशीली चीजों में एक न एक तरह का जहर जरूर होता है, जब यह जहर दिमाग में घुसता है तव विचारणा शक्ति को एकदम घाइल कर देता है, धीरे २ उसका प्रभाव हृदय, फेफड़े आदि पर भी पहुँचता है। ये जब साफ खून वनाने से इन्कार कर देते है तव प्रदर हुआ ही समझिये हृदय से सम्बन्ध रखने वाली नाडियां जब जहर के प्रभाव से स्तब्ध हो जाती है तव नीचे से लेकर ऊपर तक खलवली मच जाती है, गर्भाशय के ऊपर बोझा सा आकर गिर जाता है। देखा जाता है कि नशीली चीजों के सेवन करने से स्त्रियो के गर्भ तक गिर जाते हैं। कोई भी नशा खाने वाली स्त्री ठीक समय पर रज स्वला नही होती, कभी २० दिन में होती है, तो कभी २५ दिन में, और कभी दोदिन तक ही रज स्राव होता है तो कभी पाच दिन तक।

(३) भोजन पर भोजन करने से

जो भी हम खाते पीते हैं; उसे भोजन कहा जाता है, हरएक आदमी भोजन करता है, भोजन के सहारे ही सारे काम करते हैं। और भोजन के सहारे ही हम जिन्दा रहते है। भोजन के विना एक ही दिन मे तवियत फड़क उठती है। जब हम भोजन करते हैं, तव वह वायु के साथ २ या सहारे आमाशय में जाता है। वहां ये ग्रहणी नाम की कला उसका पाचन करती है, इस पाचन क्रिया मे कितना समय लगता है यह कोई नियम नही, किसीकी अग्नि तेज होती है, किसीकी मन्द, इसका पाचन जभी समझना चाहिये जब ठीक तौर से भूख लग जावे। जब ठीक तोर से भोजन का पाचन हो जाता है तव पेशाब और दस्त खुलासा हो जाता है, पेट में हल्कापन होजाता है, दिमाग मे तरावट होजाती है, इस तरह जब भोजन का ठीक तौर से पाचन होजाता है, तव फिर भोजन करना उचित है।

आजकल के विद्वानो का विश्वास है, कि एक वार खाये हुये भोजन की पाचन क्रिया मे कम से कम ८ घटा जरूर लगता है। आठ घटे में जाकर कही भोजन का ठीक तौर से पाचन होता है, फिर उसका रस वनता है, रस से खून, इस तरह सात वें नम्बर में जाकर स्त्रियो के रज और वीर्य, तथा पुरुषो के केवल वीर्य तैयार होता है, भोजन तभी करना चाहिये, जब कि पहिला भोजन अच्छी तरह से पाचन क्रिया को चक्की में पिस चुका हो

किंतु आज कल इन वातो की तरफ कोई ध्यान नही देता। आजकल जीने के लिये नहीं खाते, किंतु खाने के लिये जीते हैं। जितना खाया जाय उतना ही अपना है, बाद में पता नही कौन खावेगा। ऐसे विचार भी आजकल मौजूद है। भोजन पर भोजन, खाये परखाना, केवल स्वास्थ्य शास्त्र की दृष्टि से ही बुरा नही है, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी बुराई है। हमारे वड़ी तोंद वाले सेठ साहूकारो की सेठानिया, वावू लोगो की वीवियां ही इस भोजन पर भोजन से, प्रदर की शिकार वनती है, नीचे दर्जे की काम करने वाली स्त्रिया अव्वल तो खाये कहा से, और अगर खा

भी लें तो शारीरिक श्रम के कारण उन्हें वह 'भोजन पर ,भोजन' ज्यादा तकलीफ नहीं देता। किन्तु सेठानियां और बीवियां जो रात दिन पलंग तोड़ने के सिवा कुछ काम नहीं करती, इस रोग की ज्यादा इसी "भोजन पर भोजन" से शिकार होती हैं।

देखा जाता है कि जो स्त्रियां, अशिक्षिता हैं। स्वास्थ्य शास्त्र के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं, रात दिन कुछ न कुछ खाती ही रहती है, इससे उनका पेट भारी हो जाता है, हिष्टीरिया जैसे रोग भी ऐसी ही स्त्रियो के होते हैं, इस खाने पर खाने का नतीजा बड़ा भयंकर होता है, शरीर में ठीक तौर से रस नहीं बनने पाता, फिर इसके विना रक्त कहाँ से बने, जो होता हैं, वह भी ठीक नही रहता पेट में अफरा हो जाताहै फेफड़े की स्वास प्रश्वास गति बहुत मन्द हो जाती है, सुषुम्ना नाड़ी उदास हो जाती है, रज वहाने वाली नाड़ियो पर बोझा गिरने से, वे ठीक तौर से अपना काम नहीं कर पाती, इस तरह समझिये किप्रदर रोग कितनी जल्दी हो जाता है, ऐसी स्त्रियों के गर्भाशय में जो गर्भ रहता है, उसका भी ठीक तौर से, पोषण नहीं हो पाता, देखा गया है कि ऐसी अवस्था में या तो गर्भ गिर जाता है या वह अच्छी तरह पुष्ट नहीं होने पाता। दिन रात चरते रहने से शरीर भारी हो जाता है, सौंदर्य फीका पड जाता है, अङ्ग प्रत्यङ्ग ढीले पड़ जाते हैं, पेट में खूब मेद बढ़ जाता है, विना गर्भ के भी उनका पेट गर्भ जैसा मालूम होता है।

४—अजीर्ण से

अजीर्ण भी एक कारण है, जिससे प्रदर रोग पैदा होता है, अजीर्ण कई कारणो से होता है, वह ६ तरह का होता है। अजीर्ण क्या है, यह भी यहां बतला देना अप्रासङ्गिक नही होगा ?

ग्लानिर्विबन्धः प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम्॥

शरीर में ग्लानि का होना, दस्तों का न होना, या अधिक होना ही अजीर्ण होता है, सीधे साधे शब्दों में अजीर्ण के माने होते है, भोजन का न पचना, जीर्ण माने भोजन का ठीक ठीक तौर से पच जाना, और अजीर्ण माने नहीं पचना। जब अन्न ठीक तौर से पच जाता है, तब ठीक तौर से भूख प्यास लगती है, शरीर हल्का रहता है और पेट में कोई तरह की शिकायत नहीं होती, मलमूत्र ठीक होता है। अन्न पचने वाले शरीर में कोई रोग नही घुसता, सारी गड़बड़ी प्रायः अजीर्ण से ही होती है।

अजीर्ण ६ तरह का होता है, यह कहा जा चुका है।

(१) आमाजीर्ण।
(२) विदग्धाजीर्ण।
(३) विष्टब्धाजीर्ण।
(४) रसशेषाजीर्ण।
(५) दिनपाकी अजीर्ण।
(६) प्राकृतिक अजीर्ण।

ये ६ किस्में अजीर्ण की है। अजीर्ण शारीरिक और मानसिक, दो कारणो से होता है। इन दो कारणो के भीकई उपकारण है। शारीरिक कारणो मे अधिक जल पीना, वेसमय भोजन करना, मल मूत्रादि का रोकना, रात को जागना, दिन में सोना येपाच कारण मुख्य है इसी तरहमानसिक कारणो में ईर्षा, भय, क्रोध,लोभ, चिन्ता, दीनता मत्सरता ये सात कारण हैं। ये१२ कारणहै, जिनसे अजीर्ण पैदा होता है, जिनमें ५ शारीरिक और ७ मानसिक है। ये कारण आयुर्वेदिक है। सामान्य रूप से कहना चाहिये। कि, जो मनुष्य, स्त्री ऊटपटांग, गले तक ठूसकर खाते हैं, रात दिन खाते हैं, खूब खाते हैं। उन्हे अजीर्ण हो जाता है, कुछ भी हो,

अजीर्ण महा भयकर रोग है, यह वह रोग है, जिसके पीछे २ सैंकड़ों रोग शरीर में आ घुसते है।

आजकल शारीरिक और मानसिक, प्रायः दोनो ही कारणो से अजीर्ण होता है। शारीरिक कारणो से जो होता है, उससे बढ़कर मानसिक कारणो से पैदा हुआ अजीर्ण होता है। खैर, किसी तरह हो, अजीर्ण हो जरूर जाता है. आज कल की स्त्रियां जरूर अजीर्ण को पाल लेती हैं। कोई खूब खाती हैं, तो कोई रात दिन चिन्ता करती हैं, कोई दीनता से दबी हुई हैं, तो कोई क्रोध से जलती हैं, कुछ न कुछ कारण जरूर होता है, जिससे उन्हे अजीर्ण रोग होजाता है, अजीर्ण साधारण रोग नहीं है यह मौत का वारन्ट है। इसके उपद्रव हैं-मूर्च्छा, वमन, ऊटपटांग बकना, लार गिरना, ग्लानि, भ्रम, और मृत्यु। जब इतने उपद्रव होतेहैं, तब भला कहां शरीर सही सलामत रह सकता है?

जब शरीर में ठीक तौर से अजीर्ण हो जाता है तब, कहना चाहिये कि स्वास्थ्य रूपी कली को पाला मार गिराताहै। भोजन के न पचने से क्या २ गड़बड़ी होती है, यह हम जान चुके हैं। फिर जब सारे कल पुर्जे निकम्मे होजाते हैं, तब प्रदर तोहोना ही चाहिये, जो रज होता है, वह नाडियो में दूषित होकर, गर्भाशय के पास पहुँच जाता है, और बाहर निकल जाता है, और ताजा बनने नही पाता, जो है सो निकल जाता है। फिर शरीर शीघ्र खतम होने लगता है।

ऐसी स्त्रियो के बाद में जाकर रज बिलकुल ही गिरने से बन्द होजाता है जब है ही नही तब गिरे कहा से? यह भी तो विचारणीय बात है। वर्षो रजस्वला नही होती, गर्भाशय पर मैल जुट जाता है, गर्भस्थिति होती नहीं और शरीर दिन२ सूखता जाता है। हृष्ट पुष्ट स्त्रियां इस तरह दुबली पतली होकर काल के कराल गाल में घुस जाती हैं। उनका चेहरा पीला पड़ जाता है, आंखे बैठ जाती हैं नाक की हड्डी निकल आती है, शिर के बाल रूखे पड जाते है, स्तन सूख जाते हैं और शरीर तिनके जैसा हो जाता है, पेट में कभी २ फोड़ा भी हो जाता है। गर्भाशय का अर्बुद, रसौली, नासूर आदि रोग होने लगते हैं, यकृत कमजोर होने से धीरे २ शरीर सफेद पड़ने लगता है, फिर ऐसी सफेदी आती है, जो चिता में जाकर ही छुटती है

गर्भ के गिरने से

प्रदर होने में एक कारण गर्भ का गिरना भी है, गर्भ के गिरने से भी प्रदर रोग हो जाता है। गर्भ रज और वीर्य के संयोग से होता है, जब वह गर्भाशयमे जाकर स्थित होतेहैं तब गर्भपिंड बनता है। जिन स्त्रियो के गर्भ गिर जाता है, उनके भी प्रदर रोग हो जाता है। गर्भ गिरने के कई कारण होते हैं, ऐसे पदार्थोंके खाने से भी गर्भ गिरजाता है। जो गर्भिणी के लिये अहितकारक होते हैं, नीचे ऊंचे कूदने से भी गर्भ गिर जाता है, इस गर्भ के गिरने को आयुर्वेद में दो नामो से संबोधित किया है।

[१] गर्भस्राव।

[२] गर्भपात।

गर्भस्राव चौथे महीने तक होता है, इससमय तक गर्भ रुधिर रूप से स्रवता है, बहुत सी स्त्रियों के इस स्राव में ही गर्भ गिर जाता है, इससे आगे पांचवे छटवें महीने में गर्भ गिर जाता है, इनके कारण भी यो बतलाये हैं।

ग्राम्यधर्माध्वगमन यानायास प्रपीडनैः।
ज्वरोपवासोत्पतन प्रहाराजीर्ण धावनैः॥
वमनाञ्च विरेकाश्च कुन्थनात् गर्भपातनात्।
तीक्ष्णधारोष्ण कटुकतिक्तरूक्ष निषेवणात्॥
वेगाभिघाता द्विषमासनाच्छयनाद्भयात्।

(१) मैथुन करते रहने से।
(२) ज्यादा मार्ग चलने से।
(३) सवारी पर चढ़कर उसे दौड़ाने से।
(४) ज्यादा मिहनत करने से।
(५) अधिक दबने से।
(६) बुखार से।
(७) उपवास से।
(८) कूदने व गिर पड़ने से।
(९) अजीर्ण से।
(१०) ज्यादा दौड़ने से।
(११) वमन से।
(१२) विरेचन से।
(१३) चिन्ता से।
(१४) जानबूझकर गर्भ को गिराने से।
(१५) कड़वे, रूखे, गर्म आदि पदार्थों के खाने से।
(१६) मल मूत्रादि के वेगो को रोकने से।
(१७) ऊंचे नीचे स्थान पर बैठने से।
(१८) ऐसे ही स्थान पर सोने से।
(१९) डर से।

इन १९ कारणो से गर्भस्राव अथवा गर्भपात होता है।

अलग २ कारणो में एक कारण भी जहां मौजूद हो जाय वहीं यह गर्भ गिरा देता है। आज कल विशेषतः १४ वां कारण होता है, और भी कारण होते जरूर हैं, किंतु यही अधिक देखा जाता है। सौखीन स्त्रियां अपने सौंदर्य की रक्षा के लिये गर्भ गिराने में जरा भी नहीं हिचकती। एक जीव की हत्या करती हैं सो तो करती ही हैं। साथ में अपने स्वाध्य का भी नाश कर लेती हैं। यह कितनी भूल है, बतलाने की जरूरत नहीं, इसका दुष्परिणाम भी आज बड़ा भयकर हो रहा है।

गरम, कड़वे, तीखे, आदि पदार्थो के खाने से, गर्भिणी की दिनचर्या के न जानने से भी बहुत गर्भ गिरते हैं।

जो हो, गर्भ गिरने से प्रदर रोग हो जाता है, क्यो होता है ? यह बतलाने से पहिले हम भावमिश्र का एक श्लोक यहां रख देना चाहते हैं, जिसमें उन्होंने गर्भपात के उपद्रव बतलाये हैं।

प्रस्रसमान गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः।
पृष्ठरुक् प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च जायते॥

जलन, पसली और पीठ में पीड़ा, प्रदर, अफारा, और मूत्र का अवरोध ये गर्भ के गिरने से होने वाले उपद्रव हैं, इनमें चौथा उपद्रव प्रदर है, सो स्वाभाविक है। जब गर्भ गिरता है, तब कुछ न कुछ कारण तो ऐसा होता ही है, या होते ही हैं, जिनसे गर्भाशय पर दबाव पड़ता है, वह अपना मुंह खोल देता है, या वे कारण ही उसका मुंह खोल देते हैं।

मुंह के खुलने से वह गर्भ को निकाल कर बाहर फेंक देता है, अनुचित दबाव पड़ने पर हर एक चीज खलबला उठती है, जब गर्भाशय के अंदर से गर्भ गिर जाता है, तब वह खलबला जाता है, उसकी गर्मी रज को दूषित बना देती है, जिससे वह योनि पथ से निकलने लगता है। इसके अलावा गर्भ को गिराने वाले कारण गर्भाशय के आस पास की मशीनो पर भी अपना दखल जमाते हैं, गर्म चीज अपनी गरमाई से कोठे को गर्म कर देती है, हृदय की फड़कन पर अपना प्रभाव डालती है इस तरह समझ लेना चाहिये, कि गर्भ के गिरने से जो कुछ होता है, उसमें एक प्रदर भी है।

(६) अधिक संभोग करने से

ज्यादा मैथुन करने से भी प्रदर रोग होजाता है। मैथुन करना कोई पाप नहीं है, किन्तु सीमा से अधिक होने पर तो अमृत भी जहर हो जाता

है। जो स्त्रिया रात दिन पुरुष सहवास करती है, उनको प्रदर का शिकार होना पडता है। आजकल विलासिता का कितना प्रचार है, यह बतलाने की जरूरत नहीं। जीवन का एक मात्र ध्येयही बिलासिता हो रही है, हां आज जो दशा है, उससे उसकी कल्पना सहज में ही की जा सकती है। सहवास, मैथुन का उद्देश्य सन्तानोत्पादन है, किंतु आज कल मैथुन का उद्देश्य है, वासना शक्ति। हृदय की वासना की शान्तिके लिये स्त्री पुरुष रात दिन सहवास करते हैं। इसमें ज्यादा कसूर स्त्रियो का नहीं पुरुषो का है। स्त्रियां बेचारी उनकी दासी ठहरी, आज्ञापालन करने केलिये मजबूर है, अगर जरा भी चींचपर करतीहै तो त्यागपत्र मिलता है।

जो हो, कसूर चाहे पुरुषो का हो या स्त्रियो का हो, अधिक सभोग का नतीजा दोनो के लिये ही घातक होता है, रात दिन संभोग करते रहने से स्त्री का हृदय खिन्न हो जाता है, पशु भी तो ऐसा नहीं चाहते, फिर इन बेचारियो परतो बलात्कार किया जाता है, खुद इनके पति ही उनकी इच्छा के विरुद्ध जब उनसे सभोग करते हैं, तब वह बलात्कार नही तो क्या है? अखिरी दर्जे स्त्री इससे बहुत नफरत करने लग जाती है, उसकी सहवास कामना नष्ट हो जाती है। इससे उसके गर्भ से सन्तान तो हो ही नहीं सकती होगी भी तो कमजोर, कम जीने वाली, गर्भाशय चौड़ा हो जाता है, रज कोष उसकी सीमा को छोड़ देता है, और रज बहाने वाली नाड़ियो पर जब निरन्तर दबाव पड़ता है, तब वे रज को खूब निकाल कर योनि पथ पर ला फैंकती है, पेट के इर्द गिर्द शूल उठने लग जाता है। कुछ ही दिनो में प्रदर के चिह्न दिखलाई देने लगने हैं।

सोम रोग भी ऐसी स्त्रियो के बहुत जल्द होता है, प्रदर के साथ २ अगर वह भी हो गया तो, खैर नहीं। और भी बहुत से उपद्रव हो जाते हैं, गर्भपात, गर्भाशय का उलट जाना, स्थान भ्रष्ट हो जाना, रज कोष का नष्ट हो जाना, दूषित हो जाना, योनि के भीतरी हिस्सोंमें वेदना होने लगती है। बडे २ डाक्टरो ने बतलाया है कि अधिक संभोग करने वाली स्त्री के गर्भ से कोई सन्तान नही हो सकती, और वह प्रदर, सोमरोग, आदि रोगो से जरूर पीडित होगी, इन के साथ २ और भी बहुत से रोग आ घेरते हैं, बुखार, सांस आदि रोगो का होना तो ऐसी हालत में आवश्यक हो जाता है, प्रदर होने से धीरे २ उसका कुन्दन जैसा शरीर पीला, और सफेद पड़ जाता है। अफसोस।

(७) सवारियो पर चढ़ने से

प्रदर के कारणो को बतलाने के लिये हमने ऊपर जो पद्य उद्धृत कियाहै, उसकी तीसरी पंक्ति में "यान" पद आया है, जिसके मानी होते हैं, सवारियो पर चढ़ने से प्रदर रोग होता है, प्राचीन विद्वानो ने आधुनिक विद्वानो ने "यान" का यही अर्थ समझा है, किंतु हमें यह युक्ति संगति नहीं दिखलाई पडी, इसीलिये पद्य की व्याख्या के समय हमने 'यान" का अर्थ सवारियोपर चढ़कर उन्हे ज्यादा दौड़ने से किया है, इसमें भी यद्यपि कलम रुकती ही रही यह तो कहना व्यर्थ और अनुचित होगा कि प्राचीन विद्वानो ने यह गलत लिखा है। किन्तु यह कहना भी किसी अंशमें ठीक ही है, कि इस कारणसे शायद ही प्रदर रोग होता है। अपनी इच्छा को दबाकर भी हमें इस पद के विरुद्ध यहां लिखना पड रहा है, अपने२ समय के अनुसार भी रोग पैदा होता है, हो सकता है, जो कारण उस समय न हुये हो, और अब हो गये हों और हो सकता है जो कारण उस समय हुये हों, और अब न रहे हो।

प्रमेह के कारण हमने हस्तमैथुन, गुदामैथुन, आदि भी बतलाये हैं। जो प्राचीन विद्वानो ने नही लिखे, इसी तरह हम यहां यह भी बतला देना चाहते है कि, केवल सवारी पर चढ़ने से प्रदर रोग नहीं होता है। इसमें कोई विचित्रता नहीं है, यह कारण यद्यपि प्राचीनकाल में ठीक रहा होगा मगर बीसवीं-सदी में मान्य नही होसकता। यान' शब्द से पहिने केवल ऊंट घोड़ा, गाड़ी का मतलब लिया जाता था, मगर आजकल रेल, मोटर, साइकिल आदि भी यान शब्द के अर्थ में आजाते है। जिन पर चढ़ने से प्रदर रोग नहीं हो सकना।

हां ? किसो अंश में यह जरूर मना जा सकता है कि, ऊंट घोड़ा, आदि जानवरो को ज्यादा दौड़ाने से प्रदर होजाता है ये जगली जानवर है। मशीन की कले नहीं जब ये दौडते हैं तब स्वभाव से ही सवारो को ऊंचा नीचा होने पडता है। सवारी करना एक तरह का व्यायाम ही है, उससे स्वास्थ्य खराब होने के वदले अच्छा ही रहता है, किन्तु ज्यादा दौड़ने से मात्रा अधिक हो जानेसे प्रदर रोग की सम्भावना है। गर्भाशय आदि कोमल जगह इन सवारियो के ज्यादा दौडाने से बहुत संभव है, स्थान भ्रष्ट होजांय और उससे प्रदर रोग होजाय।

प्रथम तो आजकल ऐसी स्त्रियां हीं नही हैं। जो घोड़े की सवारी करे या हाथी पर चढ़कर शिकार खेले, और अगर कुछ हैं भी तो वे प्रदर से पीड़ित होने की अपेक्षा, सुन्दर स्वास्थ्य बाली, और लावाण्य शालिनी होती है। कुछ समय पहिले हिन्दुस्तान में स्त्रियां भी सवारी करती थीं, शिकार खेलती थीं और हाथ में तलवार लेकर दुश्मन का मुकाबिला करती थी, मगर यह तो बीसबी सदी है, जिसमें भारतियो ने स्त्रियो को पिंजड़े की चिड़िया समझ रक्खा है। किसी भी हालत में 'यान' शब्द प्रदर का अस्तित्व स्थापक नही हो सकता। हिन्दुस्तानी न सही, यूरोप की ही समझिये, आज कल स्त्रियां घोडे पर चढ़ती है। उसे खूब दोड़ाती भी है, और शिकार भी करती है। मगर कभी उन्हे प्रदर नहीं हुआ। और न यही सुनने में आया कि प्राचीन भारत की युद्ध कला निपुण रमणी में प्रदर की शिकायत होती थी।

(८) अधिक पैदल चलने या दौड़ने से

शरीर के लिये शारीरिक और मानसिक व्यायाम करना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है, जब तक शरीर के कल पुर्जों को ठीक तौर से परिश्रम नहीं करना पड़ता, तब तक वे अपने कार्य का सचालन ठीक तौर से नही कर सकते, और न वे शरीर के स्वास्थ्य को ही ठीक रख सकते हैं, शारीरिक व्यायाम अब स्त्रियो में नहीं रहा है, वे तो घर की बीवियां बनी हुई हैं हां अलबत्ता मानसिक व्यायाम वे करती हैं।

पैदल चलना और दौड़ना भी शारीरिक व्यायाम है। प्राचीन काल में स्त्रियां, घर की चहार दीवार में बन्द नहीं रहतीं थीं, पुरुपो की तरह काम करतीं थीं, किन्तु आज कल ये बातें इतिहास की सामिग्री मात्र ही अवशिष्ट हैं, छोटी स्थितिकी हीन जातियो की स्त्रियां ही आज कल शारीरिक व्यायाम करती हैं, ऊंचे और मध्यम स्थिति की नहीं, इसी से उनका स्वास्थ्य पलगा पर सोने बाली और मोहन हलुआ खाने वाली स्त्रियो की अपेक्षा अच्छा होताहै, यह भी निसकोच कहा जा सकता है, कि शारीरिक व्यायाम न करने के कारण ही स्त्रियां, ऊंचे और मध्यम वर्गकी स्त्रियां आजकल इस तरहसे बीमार हो रही हैं जिसकी कोई सीमा नहीं, दुनियां भर के रोग उनके पल्ले आ पड़ते हैं,

इस परहम आगे चलकर लिखेंगे, यहां केवल इसी बात पर विचार करना है कि, अधिक पैदल चलने या अधिक दौड़ने से पदर होता है या नहीं

अधिकता प्रत्येक बातो में बुरी है, हर एक बात की सीमा होती है, सीमा से बाहर जरा भी अधिक होने से, सारा मामला गडबड़ हो जाता हैं, पैदल चलना चाहिये, मगर उतना ही कि जितना शरीर को सह्य हो, दौड़ना चाहिये, किन्तु उतना ही जिससे कि पलग पर तेल की नालिश न करवानी पडे, पैदल चलने, और दौड़ने से शरीर ठीक रहता है, किंतु जब इनमे अधिक शब्द लगा दिया जाता है, जब वे ठीक के बदले वे ठीक हो जाते है घी खाना यद्यपि शरीर के स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उपयोगी और आवश्यक है, मगर ज्यादा ठूसने से वह भी अजीर्ण पैदा कर देता है, कुछ दिनो के लिये रोटी खाने से पिण्ड छुटा देता है।

पुरुषो के शरीर में जैसे ज्यादा परिश्रम और व्यायाम करने से कई रोग हो जाते है, वैसे ही स्त्रियो को भी समझना चाहिये, यद्यपि आजकल स्त्रियां परिश्रम और व्यायाम से कोसो दूर हैं। अधिक पैदल चलने, और दौड़ने का नतीजा स्त्रियो के लिये यह होता है कि उनका जिगर भारी हो जाता है, गर्भाशय स्थान भ्रष्ट हो जाता है, या उसमें और कोई गड़बड़ी हो जाती है, रज कोष बिखर जाता है, प्रदर रोग फिर हुआ ही समझिये।

इतना लिखने की हमें कोइ जरूरत ही न थी, क्योकि यह कारण इस समय हमारे समाज में है ही नही, अधिक पैदल चलना और दौड़ना तो दूर, थोडा सा पैदल चलना और दौड़ना भी आजकल मुश्किल है, फिर यह कहना भी व्यर्थ है कि इस कारण से प्रदर रोग होता ही नहीं, और होता भी है तो बहुत कम-अगण्य। जो यहां लिखा गया है, केवल इसीलिये कि विद्वानों ने उसे प्रदर का कारण माना है।

अधिक चिन्ता करने से

यहा भी 'शोकात्'की जगह हमने अतिशोकात् कर दिया है चिन्ता और अतिचिन्ता, शोक और अतिशोक में विभिन्नता जरूर है, और इस दृष्टि से 'अति' शब्द बढ़ा देना हमारा अक्षम्य अपराध हो सकता है, किंतु इस कारण की युक्ति संगता दिखाने के लिये ही हमने ऐसा किया है। शोक, और चिंता शब्द में भी कुछ विभिन्नता जरूर है। शोक, शोक ही है और चिंता चिंता ही, यह कहने वालो की भी कमी नहीं है, किंतु इस विभिन्नता का यहां पर कोई असर नहीं पड़ेगा, जो वास्तविक अर्थ है, वह शब्दो के जाल में नहीं छिप सकेगा।

चिंता भी मानसिक व्याधि है और शोक भी मानसिक व्याधि है। शोक के मानी होते हैं दुख और चिंता के मांनी होते हैं चिंतना, किंतु शोक अस्थाई होता है, चिंता स्थाई और शोक होने से ही चिन्ता पैदा होती है। किसी की स्त्री मरती है, तो पहले पति को शोक होता है और फिर उसकी चिंता होती है, रात दिन अपने तरफ की और उसकी तरफ की चिन्ता उसके दिमाग को चाटती रहती है। शोक से और चिंता से, जो रोग पैदा होता है, उसके लिये दोनो में से एक ही का उपयोग किया जाता है। खैर,

शोक या चिंता से जो रोग पैदा होता है, वह असाध्य होता है यह प्राचीन विद्वानो का विश्वास है, अर्वाचीनो का भी इससे कुछ विपरीत नहीं है रात दिन किसी बात की चिंता करने से मानसिक रोग पैदा हो जाता है, मस्तिष्ककी विचारणाशक्ति थक जाती है। देखा जाता है कि किसी चिंता से चिन्तित होने के कारण खाना पीना हराम हो

जाता है, नींद कोसों दूर भाग जाती है और हृदय पर सदा बोझ सा लदा रहता है, इस तरह जीवन भी खतरे में आ जाता है। अधिक चिंता से स्त्री पुरुष का जीवन उस समय मुर्दा हो जाता है।

प्रथम तो मारे चिता के कुछ खाया भी नहीं जाता और अगर मन मसोस कर कुछ खाया भी जाता है, तो अच्छा ठीकतौर से परिपाक नहीं हो पाता. खाये हुये अन्न का रस या तो बनता ही नहीं है और अगर बनता भी है तो बहुत कम जिससे बहुत ही कम संख्या में रक्त पैदा होता है, रक्तकी कमी से शरीर में सफेदी और रूखाई आ जाती है या रक्त दूषित होकर, अपनी मात्रा की कमी से कुपित होकर, यकृत पर आक्रमण करके पित्त से मिल जाता है, जिससे रक्त पित्तरोग भी प्राय, हो जाता है। उधर ग्रहणी कला अन्न को न पचाने के कारण बाहर फेंक देती है, जिससे असाध्य संग्रहणी रोग पैदा हो जाता है। जो हो, चिन्ता ही चिन्ता में जीवन समाप्त हो जाता है। जो स्त्री रात दिन निरन्तर चिन्ता करती रहती है, उसका दिमाग समय २ पर काम नही देता, मस्तिष्क से सम्बन्ध रखने वाली नाड़ियां, अपने काम का संचालन ठीक तौर से नही कर पाती, उधर हृदय खून शोधन के काम में लेट रहने लगता है, फेफड़े प्रश्वास क्रिया से इस्तीफा देने की तैयारी करने लगते हैं, खून बनता नही, और जो है भी वह गरम होकर, रजको दूषित बना देता है, कभी २ उसमें पित्त भी आ मिलता है।फिर रजस्राव जोरो से होने लगता है।

स्त्रियो का यह प्रदर बड़ा ही भयानक होताहै इसमें रज कई रंग का हो जाता है, और दिन रात गिरा करता है, वीच बीच में बन्द भी हो जाताहै बाद में जोरो से गिरने लगता है, ज्यो ज्यो चिन्ता बढ़ती जाती है त्यो त्यो रोग भी बढ़ता जाता है।

(१०) अधिक कर्षण करने से

ज्यादा कर्षण करने से भी प्रदर रोग होता है कर्षण का साधारण अर्थ है, लंघन, उपवास,कर्षण उपवास करना शरीर रक्षा के लिये आवश्यक है जरूर, मगर उसकी भी सीमा होती है। उपवास का महत्व बहुत बड़ा है और आजकल तो उपवास द्वारा चिकित्सा भी होने लगी है, बड़े २ विद्वानो का विश्वास है कि केवल उपवास द्वारा बिना किसी औषध के लिये, असाध्य रोग भी ठीक किया जा सकता है, यह बात दर असल है भी सच ही, इसलिये प्राचीन काल से हिन्दू धर्म में व्रतादि का उल्लेख होता आया है। १५ दिन में एकबार उपवास करने से शरीर की सफाई हो जाती है। आमाशय, ग्रहणी आदि को थोडा विश्राम मिल जाता है. जिससे फिर वे अपने काम में गड़ बड नहीं होने देते। फेफड़े! हृदय, जिगर ये सब भी विश्राम पाकर सब खराबी को निकाल देते हैं। कोठे में सड़ा हुआ मल निकल जाता है, जिससे पेठ साफ हो जाता है।

यह तो है उपवास का महत्व, और इसीलिये यह हर एक के लिये आवश्यक है। किन्तु यह एक पक्षीय बात है। उपवास न करने पर कल पुर्जों को कुछ देर तक विश्राम न देने पर जो दशा होती है, वह सब जानते ही हैं, कभी नमक सुलेमानी की जरूरत होती है तो कभी अग्निमुखचूर्ण की कभी दस्तो की दवा लेनी पड़ती है तो कभी खून साफ करने की, कभी सर में सन्नाटा है तो कभी पेट दर्द करता है, कभी पसली दुखती है तो कभी पेशाब में जलन होती है। इस तरह के सैकड़ों उपद्रव उपवास के न करने पर होते हैं, बड़े २ घरो में हमारी इस बात के सैकडो उदाहरण मिल सकते हैं। जो स्त्रियां रात दिन पशु की तरह चरती रहती हैं, कभी उपवास नहीं करती,

उनकी दशा देखिये और जो महीने मे ३-४ बार उपवास करती हैं उनकी दशा देखिये, दोनो में कितना अन्तर दिखाई देगा। अस्तु।

यह तो उपवास करने और न करने की बात हुई, अब उपवास के अधिक करने पर जो दशा होती है, वह विचारणीय है। यह तो निश्चय ही है कि भूख लगने पर मनुष्य को जरूर खाना चाहिये, इसके वेग को नहीं रोकना चाहिये। जब भूख लगती है, तब हमें इस बात की सूचना मिलती है, कि खाये हुये अन्न का ठीक तौर से परिपाक हो चुका, अब और खाना चाहिये। शरीर में वात,पित्त, कफ, तीन धातु हैं, उनका काम तो निरन्तर चलता ही रहता है, चाहे आप खाइये या न खाइये। जब हम खा लेते हैं, तब उन्हें खुराक मिल जाती है और उसके सहारे वे अपना काम करते रहते है। हम जो खाते हैं पहिले वह आमाशय में पहुँचता है, वहां ग्रहणी कला के सहारे वायु उसका पान करता है, जब ठीक तौर से पाचन हो जाता है, तब रस भाग अलग हो जाता है, मल भाग अलग और मूत्र भाग अलग। इससे फिर रक्त बनता है, मल और मूत्र बाहर निकल जाते हैं। यह तो है एक साधारण बात। अधिक उपवास किया जाता है और उनकी खुराक नहीं मिलती तब सबसे पहिले कोठे में रहने वाला वायु कुपित होता है, उसका कुपित होना साधारण नहीं होता। वह एकदम शरीर में खलबली मचा देता है। जब यह देखता है कि कुछ अन्नादि नहीं आया, तब रस और खून पर हाथ सफा करता है, ये जब खतम हो जाते है तब मांस और मेदा पर धावा बोलता है। मतलब यह है कि धीरे २ यह वीर्य और रज तक छापा मारता है। उधर हृदय का काम है, खून का साफ करना और सब जगह पहुंचाना, किन्तु वायु जब बीच में ही गारना रोक देना है, तब यह क्या खाक काम कर सकताहै, लाचार उसे अपनी रफ्तार धीमी करनी पड़ती है।

जिगर तो पित्त का केन्द्र है पित्त के आने से वैसे खलबला उठता है, रहा कफ सो उसे कौन खाली बैठने देता है, वायु के झपेटे में आकर वह रज से मिलकर योनि पथ पर पहुँचता है, और वहां से बाहर निकल जाता है, इस दशा में कुछ दिनो तक तो भीषण रजस्राव होता है, जो भी रस रक्तादि होता है। निकलता रहता है. किंतु आखिर में रज का गिरना एकदम बन्द होजाता है महीनों तक मासिकधर्म रुका रहता है, चेहरा फीका और सफेद पड़ जाता है, यह प्रदर वास्तव में बड़ा ही भयकर होता है।

(११) भारी बोझा उठाने से

अधिक बोझा उठाने से भी प्रदर होता है, यह प्राचीन आयुर्वेदिक विद्वानो का विश्वास है आज कल यह कारण बहुत ही कम देखने में आता है। उच्च स्थिति की स्त्रियो को तो बोझा उठाने से मतलब ही क्या होता है? अलबत्ता मजदूर पेशा और खेती बारी करने वाली स्त्रियो को बोझा जरूर उठाना पड़ता है। बोझा उठाने से, अगर वह साधारण परिणाम में हो तो कोई हानि नहीं, एक तरह इससे शारीरिक व्यायामही होजाता है, किन्तु जैसे ज्यादा दौड़ने से, कसरत करने आदि से शरीरस्थ धातुओ में खलबली मच जातीहै, वैसे ही इसमे होता है, भारी बोझा उठाने से, या दूर तक ले जाने से, गर्भाशय इधर उधर होजाता है, रज कोष स्थान भ्रष्ट होजाताहै, हृदय पिण्ड संकुचित हो जाता है, इस तरह और भी उपद्रव हो सकते है। उनका फल स्त्रियो के लिये प्रदर, और पुरुष के लिये प्रमेहादि होता है। अस्तु।

यह कारण नही के बरावर है, इसलिये इसपर कुछ लिखनेकी जरूरत नही थी, किन्तु प्रसङ्ग वश थोड़ा लिख देना पड़ा है।

(१२) चोट लगने या गिर पडने से

हाथ, पैर, शिर, आदि की चोट साधारण होतीहै, अगर भयंकर भी होतीहै तो, उससे शरीर के भीतरी हिस्सो में गड़बड़ी होती, किंतु जो चोट भीतरी हिस्सो पर होती है वह बड़ी नाजुक और नाश कारिणी होती है भीतरी हिस्सो से मतलब है हृदय, फुस्फुस, यकृत, गर्भाशय, आदि इन पर बैठी हुई चोट बड़ी ही भयकर होती है, सामान्य दशा में ही प्राणो पर खतरा होता है, यह एक ऐसा कारण है। जो विचित्र हीकहा जा सकता है।

बहुत से मूर्ख लोग, मदान्धता वश अपनी स्त्रियो को मारते हैं, वे इसलिये कि मूर्ख हैं, उसके परिणाम को नही सोचते। परिणाम यह होता है, कि किसी भी चीज पर चोट पहुंचनेसे वह वेकाम सी होजाती है। कमर के आस पास चोट लगने से ग्रहणी आमाशय आदि स्थान अपने स्थान से हट जाते हैं। और अपना काम ठीक तौर से नही करते, छाती पर चोट पहुँचने से, हृदय पर खपक पहुँचती है इस तरह इसका परिणाम अत मे भयकर ही होता है। यहा पर दो एक बातो का और उल्लेख कर दिया जाता है। ताकि यह कारण साफ समझ में आ सके। अधिक अवस्था के पुरुप अपनी बाल पत्नियो से, उनकी इच्छा के विरुद्ध व्यभिचार करते है। वे सुकुमार बालिकाए उस नारकीय कुत्ते के वेग को सहन नही कर सकती, उनका गर्भाशय उलट पुलट होजाता है, उससे बीसो रोग पैदा होजाते है, यहा तक कि वेचारी स्त्री घंटो तक वेहोश रहती है।

गर्भाशय की बीमारी का प्रभाव रज कोप पर आवश्य गिरता है। इसके अलावा देखा जाता है, कि, प्रसूत अवस्था में मूर्ख, अशिक्षित दाइयां वेचारी स्त्री के गर्भाशयतक वेहूदा तरीके से हाथ पहुँचाती हैं, उनके हाथ की चोट गर्भाशय पर बुरी तरह गिरती है।

इसतरह प्रसूता अवस्था की जरा सी असावधानी से वेचारी स्त्री को जन्मभर के लिये रोगोसे युद्ध करना पड़ता है। यह एक निश्चय बात है कि प्रसूतावस्था कोमल होने के साथ ही साथ अधिक महत्व पूर्ण है,उस समय की पैदा हुई बीमारी बड़ी दिक्कतो से पिन्ड छोड़ती है।

गर्भाशय पर चोट पडने के और भी बहुत से कारण है, जैसे बलात्कार। गिर पड़ने से भी प्रदर रोग होजाताहै, ऊंची नीची जमीन पर गिर पड़ने का सबसे ज्यादा असर गर्भाशय पर ही गिरता है। डाक्टरो ने अपने अनुभव से बतलाया है कि गिर पड़ने पर गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है, और रजकोष अनार के दाने की तरह विखर जाता है, जो सतान उत्पादन के लिये वेकाम हो जाता है।

यह भी कह देना अनुचित नही होगा कि, जहाँ गिर पडने से स्त्रियाँ रोगिणी होती है, वहाँ चोट लगने से केवल रोगिणी ही नही होती, अपितु शून्य हृदय भी हो जाती है। यद्यपि गिर पड़ने से भी कभी २ संक्रामक रोग खड़ा होजाता है। गिर पड़ने से भी चोट लगती है, यह सही जरूर है, किंतु आजकल पति देवता के विशेष प्रेम से भी स्त्री पर चोट पड़ती है।

(१३) दिन मे सोने से

प्रमेह के जिक्र मे हम बतला आये है कि, दिन में सोने से पुरुपो को प्रमेह का शिकार होना पड़ता है, अब यहाँ बतलाना पड़ रहा है कि, दिन में सोने से स्त्रियो को प्रदर रोग होताहै, दिनमें सोना वास्तव मे ऐसा ही बुरा है, और उसका परिणाम

भी ऐसा ही भयकर होना चाहिये। प्रकृति के शासन में उलट पुलट करने वालो को ऐसी ही सजा मिलनी चाहिये।

दिन में सोने से क्या होता है. यह हम बतला आये हैं। दिन में सोनेवाली स्त्रियो को रात में जरूर जगना पडेगा, इससे उन्हे रात में ऊटपटाग सोचने का अवसर भी जरूर मिल जाता है, दिन में सोने वाली स्त्रियो की सख्या कम नही कही जा सकती, हर एक स्त्री, सिवा मजदूर पेशाओ के दिन में आराम करना चाहती हैं। बड़े२ घरो की सेठा-नियां जो खा पीकर केवल सोनाही अपना कर्तव्य समझती हैं, जरूर प्रदर रोग की शिकार बनती है। देखा जाता है कि सेठो और बाबू लोगो की, सेठानिया और बीबियाँ दिन में खूब मजे से सोती हैं, घण्टो सोती है, सोने के साथ २ वे दिन भर केवल पलग पर पड़ी रहती हैं, प्रत्येक बड़े घर में ऐसी स्त्रियां जरूर मिलेगी जिन्हे प्रदर होगा, और जिनके पतिओ को प्रमेह होगा। दिन मे सोना ही एक तो शरीर के स्वास्थ्य को खाक मे मिलाने के लिये काफी है फिर वे तो रातमें भी १–२ बजेतक जगती हैं, सच तो यह हैं कि उन्हे नीद आती-ही नहीं।

न उसके शरीर में अन्न का पाचन होता है, और न समय पर उन्हे रजोधर्म ही होता है, वे सदा कुछ न कुछ बीमारी पाले ही रहती है, भला समय का वे कैसा सदुपयोग करती हैं। दिन में सोने से स्त्रियो का मिजाज चिरचिरा हो जाता है, बात २ में भड़कने की भी एक खास आदत हो जाती है।

एक, दिन में सोने वाली, और नही सोने वाली स्त्री की दशा का मिलान करने पर कितना फर्क दिखलाई पड़ता है, ऐसी हालत में यह सहज ही समझा जा सकता है, कि दिन में सोने वाली स्त्री समय का उपयोग नहीं कर सकती, सोते रहने से न उनका शारीरिक व्यायाम होता है न मानसिक, इसके अलावा रात्रि का समय उन्हें अशान्तिकारक हो जाता है, नींद नहीं आती, पड़े २ विचार विकृत होते रहते हैं। रात्रि की अंतिम समय में, उस समय जब कि प्राणवायु चलती है, तब उन्हे नीद आती है, और जब दिवाकर अपनी किरणो से उन्हे थपेड़ता है, तब उनकी आंखे खुलती हैं।

ऊपर जो कारण बतलाये हैं, वे आयुर्वेदिक हैं, प्राचीन विद्वानो ने प्रदर होने में जो कारण बतलाये हैं, ऊपर उन्हीं का उल्लेख किया गया है, किन्तु जैसे इनमें कई कारण असामयिक हैं, इस समय नही होते, वैसे ही कई कारण ऐसे हैं, जो सामयिक हैं और जिनका उल्लेख प्राचीन विद्वानो ने नही किया है। अब वेही कारण बतलाये जायेगे जो कि आज कल बहुतायत से होते हैं और जिन्हे साधारण आदमी नहीं जान सकते। वे कारण भी अब आप क्रमश: देखने जाइये। सबसे पहिला कारण है—

(१) रजोधर्म की अशिक्षा से

रज के विकृति होने पर ही प्रदर होताहै और रज ही निरन्तर निकलता है। रज स्त्रियो के स्वा-स्थ्य और सौंदर्य का जनक है, अगर वह शुद्ध हो रज के बिगड़ने पर स्त्रियो का सौदर्य भी बिगड़ जाता है। रज क्या है और सौंदर्य क्या है ? इन बातो को बहुत कमसौ मेंदस पन्द्रह, स्त्रियां जानती है। रजोधर्म का सम्बन्ध हर एक स्त्री से रहता है और उसे वह जरूर जानना चाहिये। कितने दिनो में, कितने दिन तक रजोधर्म होताहै और यह क्या है, तथा किस बात का परिचायक है ? इन बातो की शिक्षा स्त्रियो को नहीं दी जाती, वे इस विषय से शून्य रहती है, इसमें कसूर जितना स्त्रियो का

है, उतना और उससे भी अधिक पुरुषों का भी है स्त्री शिक्षा का एक तो वैसे ही बहुत कम प्रचार है और जो है वह भारतीय सभ्यता तथा स्त्रियो के जीवन को अवनत बनाने वाला नहीं तो, उन्नति बनाने वाला भी नही है।

कालेजो और स्कूलो में पढ़ने वाली वयस्क बालकायें, रजोधर्म की अशिक्षा के कारण अपने जीवन का सर्वनाश कर लेती है, मासिकधर्म के महत्व को न जानने के कारण वे उससे बहुत घबडाती हैं और उससे दूर२ भगने की कोशिश करती रहती है। वे नहीं जानती मासिक धर्म यौवन के विकास का परिचायक और शरीर के स्वास्थ्य को सुन्दर बनाने वाला है, वे केवल उसे एक शैतानी बला समझती हैं, इसीलिये उससे झिझकती और भय खाती हैं, ऐसा होता है, और निश्चय होता है कि, वे रजोधर्म को रोकने वाली दवाओं का सेवन करती हैं। ऐसी २ दवाओ को वे चाटती हैं, जिनसे रजोधर्म नहीं होता और महीने का दूषित रज भीतर ही भीतर रह जाता है। कितना भयकर और लज्जा स्पद कुकाण्ड है, दुस्साहस का भी अन्त हो जाता है।

ऐसी दवायें जो रज को निकलने से रोकती हैं साधारण नहीं होती, वे जहरीली होती हैं, शरीर के स्वास्थ्य-पर उनका बहुत बुरा असर गिरता है, जिसका फल उन्हे जिन्दगी भर भुगतना पड़ता है वे जहरीली दवायें जरूर कुछ काल के लिये निकलने वाले दूषित रज को रोक देती है। किन्तु उनका प्रभाव अस्थायी होता है, स्थिर नहीं। इसलिये उन्हें वारवार ठीक मासिकधर्म के समय उस जहरीली दवाई का सेवन करना पडता है। वह रुका हुआ सडा और दूषित हुआ रज भीतर रहकर एक कोने में पड़ा रहता हो सो वात नहीं है वह रास्ता रुक जाने पर भी शरीर के वाहर निकलने की कोशिश करता है और उसमें वह सफल भी होता है। वह आखिर पेशाव के रूप में निकलने लगता है। इसका भीतरी भयकर परिणाम क्या होता है यह यहां खुलासा बतलाने की जरूरत है जिसे पाठक पाठिकायें इसका रहस्य समझ सकें।

एक प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान का कहना है—

"रज स्त्रियो के यौवन का परिचायक है और वह उनके स्वास्थ्य का प्रधान रक्षक है। रज का नियमित और शुद्ध होना. केवल आवश्यक ही नही. अनिवार्य भी हैं. हर एक युवती को रज विषयक ज्ञान अवश्य होना चाहिये। किन्तु आज कल की फैशनेविल लेडिया इसे (रज को) सौंदर्य का विनाशक यौवन का अनुपयोगी समझने लगी हैं। और इसके प्रतीकार में जहरीली दवाओं द्वारा उसे भीतर ही भीतर रोकना चाहती हैं। इसमें वह सफल होती हैं जरूर, किन्तु उन्हें, अपने स्वास्थ्य और सौंदर्य से हाथ धो लेना पड़ता है। वह वच्चे पैदा नही कर सकती, जो युवतियो के हृदय की खास अभिलाषा है मेरे जीवन में मुझे सैकड़ो ऐसी स्त्रियो के देखने का मौका मिला है, जो भरी जवानी में भी रजस्वला नहीं होती थी, यद्यपि इसमें उन्हीं का दोष था, तथापि इसके लिये उनके हृदय में पश्चाताप भी था

वात सोलह आने सही है. सभ्यता की इस धुआंधार आधी ने इस वात की शिक्षा पर कि 'रज क्या है' अन्धकार फैला रक्खा है ऐसी युवतियां जो केवल चार दिन की बला से वचने के लिये जहरीली दवाओ का सेवन कर रज का अवरोध करती हैं, अपने जीवन का तो सर्वनाश करती ही हैं। किन्तु उसका जिसके साथ कि उनका विवाह होता है, जीवन और मिट्टी में मिला देती हैं।

होता है और ऐसा जरूर होता है कि उनका भीतर रुका हुआ, सड़ा हुआ, रज उनके पतिदेव को भी बीमारियो का शिकार बना देताहै, जिसका परिणाम उस बेचारे को जन्म भर भोगना पड़ता है। एक की बेवकूफी से दूसरे का जीवन भी खतरे में पड़ जाताहै। रोगो का विनिमय दो जीवनो पर काला पर्दा डाल देता है। इन पक्तियो का लेखक इस बात से खूब अच्छी तरह परिचित होचुका है कि, स्त्रियो की कामनाये उस समय ही नष्ट करनेमें एक कारण रज विषयक शिक्षा का अभाव भी है अस्तु। एक आजकल की सुशिक्षिता देवी का पत्र, लेखक के पास आया था। उसके थोड़े अश को उद्धृत कर देना यहां आवश्यक है। इससे पाठक पाठिकायें समझ सकेंगी कि इन पक्तियो म कुछ सचाई भी है, या नही।

श्रीमान वैद्य जी।

शिष्टाचार

'हिन्दू पच' मेंआपका विज्ञापन देखकर, मुझे इतना साहस हुआ कि मे भी आपसे पत्र व्यवहार करूं। मेरी अवस्था, इस समय २२ साल की है, मैंने अभी कालेज छोडाहै, मैंने बी० ए० पास किया है और इस समय मै स्कूल में पढ़ती हूँ। मेरा विवाह गतवर्ष हुआ था, मैं ·· · ·· की रहने वाली हूँ, इसलिये मेरे 'वे' भी आजकल वहीं हैं, मुझे उनके पास रहने का केवल ४ मास का समय मिला है, इस बीच में मैं देख रही हूँ, उनके चेहरे पर आनन्द की जगह विषाद की रेखा नाचने लगी है। इसका कारण भी है मुझे 'मन्थली कोर्प' नहीं होता। आज से ८ साल पहिले मै शुरू में रजस्वला हुई थी, उस समय मैं स्कूल में पढ़ती थी कुछ दिन बाद मैं यहा ·· ··आई, मुझे 'मन्थली कोर्प' बहुत बुरा मालूम दिया और मुझे उससे बहुत नफरत हुई थोड़े दिन बाद ही मैंने 'लेडी डाक्टर" से सलाह ली, मेरे विचार जानकर उसने मुझे दवा दी, जिससे मन्थली कोर्स बन्द हो गया, उस समय मुझे इससे बेतहाशा खुशी मालूम हुईकिंतु थोड़े दिन बादही मेरा 'स्टमक' दर्द करने लगा और 'लीवर' पर बोझा सा मालूम देने लगा फिर मैने कुछ दवा खाई जिससे दर्द वगैरह तो मिट गया किंतु 'लङ्गस' बहुत कमजोर हो गये, जिससे 'हार्ट' पर भी चिन्ता सवार रहती है। बाद में रजस्वला तो मै हुई ही नही, हां पेशाब बहुत ज्यादा होने लगा, वह भी सफेद अब तक मेरा यही हालत है। उनके पास रही, उन्हें भी थोड़े दिन में 'गनोरिया' हो गया अब मेरी हालत बहुत बुरी है, अपनी गलती को मै अब समझ सकी हूं मै आपसे पूछना चाहती हूँ, क्या मेरी हालत में भी कुछ परिवर्तन हो सकता है, मैं नही समझती कि मुझे जन्मभर क्या ऐसी हालत में रहना होगा और मेरी ख्वाहिश क्या मेरे कलजे में ही रहेगी इत्यादि।

इस देवी की दशा पढकर हमें आश्चर्य चकित नही होना पडा। ऐसे २ पत्र तो आते ही रहते हैं जिसमें देवियो की करुणकथा भरी होती है, यह भी इस सभ्यता का एक कलक ही है।

अब भी यादहै हमारे एक मित्रने अपनी श्रीमती के लिये दवा मगाते समय उसकी दशा का जिक्र किया था जिसमें बतलाया था कि, ऊटपटाग दवा खा २ कर रज का एक दम सर्व नाश कर दिया, शरीर में रज रहा तक नही और अब चेहरा पीला पडा हुआ है, आँखे धसी जा रही हैं, कनपटी भडकतीहै, कब्ज बनी रहती है, खाना हजम नहीं होता और घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो रहा है।

ऐसी २ घटनाये, एक, दो, दस, बीस-की सख्या में होती है। बहुत सी युवतियां मुलतानी खा खा कर रज का अवरोध कर लेती हैं।

हस्तमैथुन से

बात वास्तव में घृणित और असभ्य होने के साथ २ पाठकों के सामने रखने के अयोग्य भी है और खासकर उस अवस्था में, जबकि इसका सम्बन्ध स्त्रियों से हो, स्त्रियां और हस्तमैथुन करें यह बात बहुतों के लिये आश्चर्यजनक हो सकती है, किंतु यह है सोलह आने सच। पुरुषों का बिगडे दिल नौजवानों का हस्तमैथुन केवल हाथ तक ही सीमित रहता है, किन्तु स्त्रियों में इसकी हद बहुत लम्बी हो जाती है। हस्तमैथुन के साथ अगर यहां अप्राकृतिक मैथुन और जोड़ दिया जाय तो विषय का स्पष्टीकरण अच्छी तरह से हो सकता है।

अप्राकृतिक मैथुन में उन सब बातों का समावेश हो जाताहै, जो सभ्यता की, मानव जीवनकी सीमा से बाहर है। विवाहित अवस्था में ही नहीं अविवाहित अवस्था में भी बहुत सी युवतियां हस्तमैथुन करने लग जाती हैं। दम्पती जीवन के पहिले ही अक्सर ऐसा होता है, कि वे सभोगसुख की कल्पना करने लग जाती हैं, उनके दिमाग में विवाहित जीवन का चित्र खिंच जाता है, जिससे उनके विचारों के बिकार बहुत बढ़ जाते है, दूषित वायुमंडल उनके विकारों को उत्तेजना दे देता है। फिर वे अधखिली युवतियां, उस आनन्द के लिये जो कि क्षणिक और जीवन को गहरे गड्ढे में डालने वाला होता है, उतावली हो जाती है तथा उसके अनियमित साधन जुटाने की कोशिश करने लगती हैं। हस्तमैथुन का रूप ही बहुत बुरा है, किन्तु वे, इससे भी २ कदम आगे बढ जाती हैं। हाथकी अंगुलियोंसे पेंसिलसे, फाउन्टेनपेनसे, मूली से, गाजर से, और न जाने किस २ चीज से ये योनि मैथुन करने लग जाती है, वह अस्वाभाविक मैथुन उनके लिये, खुदा ही जाने क्यो कर शांतिप्रद हो सकता है।

यह बेहूदी लत, गिरे पीछे छूटती भी मुश्किल से है, विवाहित अवस्था में भी पति की अनुपस्थित के न होते हुये भी वे इस लत का पुनस्संस्करण करती रहती हैं। इस तरह खिलने से पहिले ईश्वर जाने कितनी कलियां मुर्झा जाती हैं इस अप्राकृतिक मैथुन से उनके जीवन की प्रारम्भिक अवस्था कैशोर भी उपयोगी नही ठहरती फिर जवानी की तो बात ही दूर है। यह तो हुई अविवाहिताओं की कथा, फिर बिवाहिताओं की तो बात ही जुदी है, पति के विदेश चले जाने पर या जरा भी मनमुटाव हो जाने पर, वे इस गन्दी आदत की शिकार हो जाती है, इस गन्दी गंगा में फिर वे बेखौफ होकर गोने मारने लगतीं हैं, परिणाम उन्हे सूझता तक नही।

यह जरूरी बात है कि युवतियों के बिगड़ने का सारा कसूर पुरुषों पर ही है, और अवस्था में अधिकतर, जब कि वह उस पर शाशन करने की डींग मारता है।

फिर भी युवतियें सर्वांशमें निर्दोष नहीं मानी जा सकती है, अस्तु ?

इस हस्त मैथुन–अप्राकृतिक मैथुन का, परिणाम आखिर में बुरा और बहुत बुरा होता है, स्त्रियों की गुप्तेन्द्रिय कोमल और पुरुषों की गुप्तेन्द्रिय से भी ज्यादा कोमल होती है, उसके भीतर झिल्लियां हैं, और ऐसी ही और ग्रथियां हैं। कोमल होने के कारण, कठोर वस्तु का घर्षण उनके लिये घातक होता है, पुरुषों की गुप्तेन्द्रिय कोमल है, फिर भी अगर स्त्री पुरुष अधिक मैथुन करें तो योनि घायल हो जाती है, सूज जाती है। फिर हाथ की अगुलियां, पेंसिल, मूली बगैरह तो बहुत ही कठोर हैं. हाथ की अगुलियों से मैथुन करने वाली स्त्री किसी भी दशा में रजस्वला होकर बच्चा पैदा नही कर सकती, यह एक निश्चय बात है।

अंगुलियोके नखो का जहर भगके आसपासजाकर अपना प्रभाव दिखलाता है और उनकी हड्डियाँ कोमल झिल्लियो को पीड़ित कर देती है। भगोष्ठ स्थान भ्रष्ट हो जाते है और योनि सम्बन्धी कई बीमारियाँ पैदा हो जाती है।

अंगुलियो की हड्डियो का ही जब ऐसा असर होता है फिर पेंसिल तो आखिर काठ है उसका घर्षण जो कर दे वही थोड़ा है, यही बात मूली गाजर वगैरह के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जो हो, इसका आखिरी नतीजा यह होता है कि रजकोप छिन्न भिन्न हो जाता है गर्भाशय इधर उधर हो जाता है और उसमे अर्बुद पैदाहो जाता है योनि भी ऐसी दशा में स्थान भ्रष्ट हो जाती हैं, भगोष्ट या तो उलट पलट हो जाते हैं या रजकोप के ऊपर अपना फौलादी पंजा टेक लेते हैं, जिससे वह बाहर निकल ही नही सकता ऐसा भी होता है कि रज बहाने वाली नाड़ियां, अनियमित रूप से ही अपना काम करने लग जाती हैं, कुछ दिनो तक उसका असर यह होता है कि रजस्राव होता रहता है और वह अपनी सीमा से बाहर हो जाता है। प्रदर, सोमरोग, बांझपना ये फिर लगे ही समझिये।

हमारे एक डाक्टर मित्र ने बतलाया था कि युवतियां मूली, गाजर आदि से मैथुन करने के कारण, न केवल रोगग्रस्ता ही होती हैं, अपितु जीवन से भी हाथ धो बैठती हैं। उन्हे एक स्त्री का इलाज करना पड़ा था, जिसे 'सिफलिश' हो गई थी। अच्छी से अच्छी दवा से भी रोग दूर न हो सका, और योनि की दायी दरार पर सूजन उठने लगी। थोड़े दिन में ही उसमें कीडे पैदा हो गये आखिर एक लेडी डा० से आपरेशन कराने पर योनि के भीतर भगोष्ट के पास मूली का एक सड़ा टुकड़ा मिला। आपरेशन सफल हुआ जरूर किन्तु दस दिन के बाद ही बेचारी स्त्री को जीवन लीला सवरण करनी पड़ी।

कितनी भयकर और लोमोत्पादक यह लत है, जो आजकल घटती नही बल्कि बढ़ती ही जा रही है।

ऐसी २ सैकडो बातें हैं, उनका निदर्शन कराना जरा अश्लीलतोत्पादक है। इतने ही में समझा जा सकता है कि, हस्तमैथुन से प्रदर किस तरह पैदा होता है।

हस्तमैथुन से जितना नुकसान पहुँचता है, उतना ही, और उससे भी अधिक आजकल की अविद्या से पहुँचता है। हस्तमैथुन से जहां अत्यधिक जीवनो का सर्वनाश होरहा है, अविद्या के कारण वहां घरो के घर बर्बाद हो रहे हैं। रजोधर्म की अशिक्षा, एक अलहदा चीज है। और अविद्या, अलहदा, विद्यासे जीवन की उपयोगिता का पता चलता है, और मानव जीवन में होने वाली घटनाओ का चित्र अक्षिसमक्षी भूत होता है। आज कल स्त्रियो में जितनी, अविद्या है, उसे देखने यह सहज ही कहा जा सकता है, कि दो सौ वर्ष बाद अगर यही दशा रही तो बच्चे पैदा होने बन्द हो जावेगे। शिक्षित होना जितना पुरुष के लिये आवश्यक है, उतना ही स्त्री के लिये भी, किंतु आज कल तो उलटी गगा बहरही है। बालिकायें उस आवस्था में जब कि आदतें बनाई और बिगाड़ी जाती है, पढ़ने के बजाय ऊटपटांग बातें किया करती है। बाल्याबस्था में वे जिस वायुमडल में रहती हैं, वह उनके हृदय पर कुछ अच्छा असर नही डालता आलसी आदमी शैतान का शिकार होता है, यह एक निरपवाद नियम है, फिर ऐसी बालिकायें जो सिवा मामूली काम के कुछ करती ही नही, और पढ़ना चाहती

नहीं, या पढ़ सकती नही, क्योकर शैतान की ज्वालाओ की लपट से बच सकती है।

पढ़ने से समय का ठीक उपयोग होता है या यो कहिये, शिक्षिता बालिका या स्त्री समय का दुरुपयोग नहीं करती।

अविवाहिता अवस्थामें बालिकायें जिस दूषित वातावरण में रहती हैं, उससे उनके विचारो का बिगड़ना स्वाभाविक ही है। उस समय पैदा हुये विचार लम्बी अवधि तक उनके दिमाग से नही निकलने, समाज की सांप्रतिक दुर्दशा के कारण जातीय जीवन आज बेजान सा होता जा रहा है, स्त्री पुरुषो के हृदय में स्फूर्ति का नामोनिशान भी नहीं रहा, वाल्यावस्थामें ही विवाह होने से पहिले ही विचारों के दूषित सस्कार हो जाते है, जिसमे उनके दिमाग की शक्ति को क्षीण हो जाने का साफ रास्ता मिल जाता है।

ऐसा होता है, कि छोटी २ बालिकाये आस-पास के दूषित वातावरण को देखकर अपने हृदय में भी उन बातो के लिये स्थान दे देती है, जो किसी भी प्राणी के लिये विनाशक हो सकती है।

हमारी मूर्खता के कारण स्त्री पुरुषो का प्रेम-मय व्यवहार भी उनकी आंखो के सामने आ जाता है, जिससे उनका निर्दोष दिमाग अनेक कल्पनाओ का केन्द्र बन जाता है, इसके अलावा हम खुद भी उन नन्हीं २ बालिकाओं को पति पत्नी की बेहूदी कहानी सुनाया करते है, नाना प्रकार के काल्पनिक चित्र उनके सामने रख देते हैं, जिससे उनका चरित्र उन्नत अवस्था को नहीं प्रत्युत अवनत दशा को प्राप्त होता है।

रात दिन दाम्पत्य जीवन का चित्र जब उनके सामने रहता है तब उस भयकर दशा में ईश्वर ही उनके मनोभावो को उन्नति के पथ पर ले जा सकता है। विचारो से ही जीवन बनता है और बिगड़ता है, जैसे हमारे विचार होंगे उसी तरह के रचनात्मक भाव हमारे सामने आवेंगे। रात दिन ओजस्वी विचार रखने वाला, युबक समय पड़ने पर, नगी तलवार लेकर रणांगण में जूझ मरता है किंतु हरदम विलासिता की उपासना करने वाला, दिन रात शृङ्गार की नदी में गोते मारने वाला, तलवार पकड़ना तो दूर रणाङ्गण के नाम से ही कोने में छिपने की कोशिश करेगा। फिर यह तो मानना पड़ेगा ही कि, हार्दिक विचार ही हमारे सामने कार्य क्षेत्र तैयार करते हैं। स्वप्न दोष के रोगियो को देखकर इस बात की पुष्टि की जा सकती है। स्वप्नदोष, सुषुप्ता वस्था में वीर्य का निकास, उन्हीं के होता है, जिनके विचार पहिले ही से विकृत और भ्रष्ट हो जाते है।

जो आदमी हरदम केवल विषय सुख की कामना करता है, वह सोते हुये भी उन भावो से पिंड नही छुटा सकता, फिर वही कामना कुछ उत्तेजक रूप में उसके दिमाग में सवार होती है, नतीजा यह होता है कि उसकी वीर्य वाहिनी नाडिया गर्म होकर, वीर्य को तपा तपा कर बाहर निकाल देती है, धीरे धीरे वह उस मर्ज का मरीज होजाता है। और इसीलिये स्वप्न दोष का रोग, दवाइयो के सहारे दूर करना, टेढ़ी खीर होता है। बिचारो के विकार दूर होने पर ही रोग से पिंड छूट सकता है, अन्यथा नही लिखने का मतलब यही है कि-इस तरह कच्ची अवस्था मे ही, योवन के प्रथम ही उन बालिकाओं के दिमाग गर्म होकर मनोभावो को बुरी तरह घायल कर देते हैं। जिसका सत्यानाशी परिणाम किसी भी दशा में उनके लिये हित कर सिद्ध नहीं हो सकता, ऐसा केवल एक जगह ही नही, सैंकड़ो जगह देखा गया है कि दस वर्ष की अवस्था में ही बालिकाये रज-स्वला हो जाती है, और विवाह होने से पहिले ही

प्रदर को पाल लेती हैं। उस समय जब कि पति पत्नीका प्रथम मिलन होता है, उस समय जब कि सुहाग रात की पवित्र तथा मंगलमय घड़ी होती है, अभागा पति, अपनी विवाहिता को प्रदरपीड़ित देखता है, तब उसके हृदय पर क्या बीतती होगी।

लेखक ने खुद एक ऐसी कन्या को देखा है, जिसको मासिक धर्म के समय जबरदस्त वेदना होती थी, पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि. उसकी अवस्था महज १० साल की थी। उसके विकारो ने-विचारो के भ्रष्ट विकारो ने उसे बुरी तरह रोग जर्जरिता बना रक्खा था। ४ से ८ दिन तक रजस्राव होता था।

यह भी उस अवस्था में जब कि वह कन्या और उस अवस्था की पहिली सीढ़ी पर भी नहीं पहुँची थी जिस के कि यौवन के चिन्ह प्रगट होते हैं। ऐसी बालिकायें अक्सर चरित्र भ्रष्ट ,भी हो जाती हैं, और खासकर उस अवस्था में जब कि उनके विकारो को उत्तेजित होने का ही अवसर मिलता है।

चरित्र भ्रष्ट हो, चाहे न हो। किन्तु मनोभ्रष्ट जरूर हो जाती है और उसके फल स्वरूप रजस्राव रोग को भी पाल लेती हैं। विचारो के विकारो से उनका रज बाहर निकलने को बाध्य होता है। और यह निकलता भी है। दिन रात की भ्रष्ट भावना फिर क्या अपना असर दिखाये विना थोडी रह सकती है।

यह उस अवस्था का चित्रहै, जब कि कन्या शिक्षा हमारे लिये जहर होती हैं। और किसी भी सुधारो के पक्षपाती होना हम अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। हम अपने घातक विचारो से अपनी सन्तान का जीवन और खराब करते हैं हमारी सामाजिक बुराइयां भी किसी न किसी रूप में बालिकाओं के मनोभावों को भ्रष्ट बनाने का मौका देती हैं।

वहीं बूढ़ी स्त्रियां ऐसे २ गन्दे गीत गाती हैं। जिनका भाव हृदय के कोने २ को फड़का देताहै और वहां एक नई चाह पैदा कर देता है। उन गीतों का प्रभाव निर्दोष हृदयों पर कितनी जल्दी होता है यह बतलाने की जरूरत नहीं।

गीतों के भ्रष्टभाव किस निर्दयता के साथ उनके दिमाग पर सवार होते हैं, यह एक समझ बूझने की बात है। कहना पड़ेगा कि गीतों को, उन भद्दे गीतों को, जिनमें सद्भावों का नामो-निशान भी नहीं है.इस भद्दी प्रथा ने ऐसे नपुंसक भाव पैदा कर दिये हैं जिनमें पिंड छुटाना,असम्भव नही तो, कठिन अवश्य है। नन्हीं बालिकायें ऐसे बेहूदे गीत गाती हैं, जिन्हें सुन २ दांतो अगुली दबानी पड़ती है, भला आदमी तो उन्हें सुन भी नहीं सकता।

यह बात प्राय हर जगह देखी जाती है कि खुद मातायें अपनी छोटी २ बच्चियों को ऐसे मनो-रंजक वर्णन सुनाया करती हैं, जिनका प्रभाव उनके कोमल हृदय पर एक स्मृति छोड़ देता है। समाज की इस भ्रष्ट प्रथा ने जातीय जीवन को तहस नहस करने का बीड़ा उठाया है।

हम केवल इतना ही बताना चाहते हैं, कि हमारी सामाजिक बुराइयां भी रोग को पैदा करने मे सहायक होती हैं।

गीतो की कुप्रथा, उन गीतो की, जिनका भाव किसी सदुद्देश्य को लेकर न हो, स्त्रियो में कई रोगो की प्रचारक सी हो रही है। अस्तु।

इसका एक पहलू और है। यहा केवल अशिक्षिता, एकदम अपढिता बालिकाओ का ही जिक्र किया गया है। किन्तु ऐसी भी कुछ है, जो मामूली पढ़ लिख लेती हैं और अपने को पढ़ी लिखी

समझने में जरा भी नही हिचकती। ऐसी पढ़ी लिखी युवतियो की भी एक श्रेणी है, जो पत्र लिखना सीखकर और मामूली किताबें पढ़ पढ़ा कर, अपने को शिक्षिता सिद्ध करती हैं। जो हो, वे अर्धशिक्षिता बालिकायें अथवा युवतियें और भी खास कारणों से रोगों का शिकार होती हैं।

ऐसी पढी लिखी युवतियां, फालतू गपशप में समय का दुरुपयोग नही करती, किन्तु उनका समय यापन भद्दे २ उपन्यासो, गन्दे २ ख्यालो में होता है। वे रात दिन मनोवृत्ति के भडकाने वाले उपन्यासो का रस पीती हैं, जिससे उनका हृदय अशान्त और क्षुब्ध हो उठता है। गन्दे २ नाटको में नायक नायकाओं की दूषित प्रेम लीला को देखकर उनके हार्दिक भाव ऐसे भ्रष्ट हो जाते हैं,जिन्हें दरोदीवार से भी सरोकार नहीं रहता

रात दिन प्रेम कथाओं को देखते २ उनके हृदय पर क्या प्रेम का चित्र नहीं खिंचता ? और अगर वह युवती हुई अविवाहिता, तो बस आगे खुदा ही मालिक है। पति की अनुपस्थिति में या अविवाहित अवस्था में, गन्दे उपन्यास चटकीली कहानियां पढ़ते २ कौन कह सकता है कि उनके भावो में असत की छाप नही लगती ? रात दिन का अध्ययन भ्रष्ट उन बेचारी युवतियो की तो बात ही क्या, बड़े बड़ो के छक्के छुडा देता है। इस असभ्य साहित्य का अध्ययन, भीतर ही भीतर उनके विचारो पर काली छाप लगा देता है जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें भी प्रेमलीला का उत्कट अभिलाषा होती है।

पाठक पाठिकायें क्षमा करें, अगर कोई वेहूदी बात उनके सामने रखदी जावे। प्रकरण के लिहाज से ऐसी बातो का उल्लेख करना कुछ आवश्यक सा होगया फिर भी बहुतसयत भाषा का प्रयोग किया जाता है। ऐसा होता है कि, तोता-मैना, भटियारिन का ख्याल ऐसीकितावें भीतर ही भीतर एक साथी की तरह युवतियो को उकसाती है। हृदय की चाह के लिये उन्हें नये २ हथकण्डे रचने पड़ते हैं। जो ही रात दिन के विचारो की गर्माई उनको प्रदर का शिकार बना देती हैं। छिपे २ उपन्यासो को पढ २ कर भावो को बिगाड़ने वाली युवतियां आखिर बिना सहारे मैदान में कहां तक दौड लगा सकती हैं, उन्हें तो आखिर रुकना ही पड़ेगा। ऐसा भी होता है कि सुन्दरी युवतियां भी जिनका शरीर सुडौल और गठित होता है, पुष्ट होता है, रात दिन गन्दे उपन्यासो को पढ़ने से मानसिक व्यथा को छाती से लिपटा लेती है, उनके हृदय मे जलन होने लगती है, और हताशा उन्हे घेर लेती है।

इतने ही से समझा जा सकता है, कि गन्दा साहित्य किस तरह मनोवृत्तियो को भड़काकर रोगों का शिकार बनाता है, और अगर बुरा न मानें तो चरित्र से भी भ्रष्ट बना देता है। मैं एक ऐसी स्त्री को बता सकता हूं जो विवाह होने के तीन वर्ष बाद तक सुन्दरी और पुष्ट थी, किंतु बाद में उसका चेहरा फीका पड़ गया, सौंदर्य भी गायब हो गया, पुष्टई भग गई, और चेहरे पर मुर्दनी सी छागई, और उस हालत में जब कि उसका पति विदेश में था। जांच करने पर मालूम हुआ कि उसका कमरा गन्दे उपन्यासो का, भद्दे ख्यालो का केन्द्र बन रहा है। रात दिन भ्रष्ट साहित्य पढने २ उसकी मनोवृत्तिया बुरी तरह भडकी फिर जबर्दस्ती उसने उसका दमन किया।

अब हमे प्रदर के स्वरूप और भेदो तथा चिह्नों पर विचार करना चाहिये।

रक्त प्रदर के सामान्य चिह्न

नीला, पीला, काला, कई तरह का रज निकलता है नियमित, मासिकधर्म नही होता, कभी१५

वें दिन होता है, तो कभी २५वें दिन, बराबर ५-७ दिन तक होता रहता है, अङ्ग २ में टूटने जैसी पीड़ा होती है, (रजोधर्म के समय) योनि में तथा दूसरे स्थानो में भी सुई चुभोने जैसी वेदना होती है। रज का दाग छूटता नहीं, उसमें बदबू आती है।

रक्तप्रदर के भेद

(१) वातज।
(२) पित्तज।
(३) कफज।
(४) त्रिदोषज।

(१) वातज रक्तप्रदर

जो रक्त निकलता है, वह सूखा होता है, लाल होताहै, उसमें झाग होते हैं, निकलती समय यानी मासिकधर्म के समय वेदना होती है, थोड़ा २ निकलता है, और मात्रा से अधिक निकलता है। उसका रग मासके धोवन से भी मिलता जुलता है, उस समय वायु के और भी उपद्रव होते हैं।

(२) पित्तज रक्तप्रदर

रज, पीला, नीला, काला, लाल, कई रग का होता है, और वह गर्म होता है, यही इसकी खास पहिचान है. रजोधर्म के समय जलन भी होती है जी घबड़ाना, गर्मी होना, आदि पित्त के और भी उपद्रव हो जाते हैं।

(३) कफज रक्त प्रदर

जो रक्त निकलताहै, वह कच्चे रसवाला होता है। गोंद की तरह चिकना होता है कुछ सफेदी होती है, और देखने में चावलो के धोवन जैसा होता है।

(४) त्रिदोषज प्रदर

शहद, घी, और हरिताल इनके रग जैसा रज निकलता है। कभी शहद जैसा, थोड़ा लाल और कभी घी जैसा सफेद। उसमें चर्बी और शख की जैसी गन्ध आती है, रजोधर्म के समय, जलन पीड़ा, घबड़ाहट, शूल, आदि भी विकार होते हैं।

साधारण पहिचान

वातज—रूखा, झागदार और लाल होता है।

पित्तज—नीला, पीला, काला, कई रग का गर्म होता है।

कफज—सफेद, चिकना होता है।

त्रिदोषज—सभी रंग का, घी जैसा, शहद जैसा चर्बी की बदबू वाला होता है।

डाक्टरी और हकीमी मत

डाक्टरी और हकीमी में, आयुर्वेद की तरह से विस्तृत विवेचन नहीं है, पाठकों की जानकारी के लिये दोनों मतो का यहां संक्षिप्त उल्लेख कर दिया जाता है।

डाक्टरी में प्रदर के ३ स्थान

(१) योनि मुख।
(२) योनिमार्ग।
(३) गर्भाशय।

योनिदर्शक यन्त्र Vegina cspeculum के द्वारा रज के प्रवाह को देखकर ही वे निश्चय करते हैं, कि उद्गम स्थान कौन सा है? स्थानो के अनुसार ही वे इसके ३ भेद भी मानते हैं।

स्थानो के अनुसार ३ भेद

(१) योनिमुख प्रदर।
(२) योनिप्रदर।
(३) गर्भाशय प्रदर।

इन तीनोके अलग२ चिह्न हैं, वह भी सुनिये

(१) योनिमुख प्रदर

यह अक्सर छोटी बालिकाओं को होता है, कभी वयस्क स्त्रियों को भी हो जाता है। इसमें पहिले खुजली चलती है, खुजाने से योनि ओष्ठपर छाले पड़ जाते है, सूजन हो जाती है, घाव हो जाता है, और कभी २ कीड़े भी पड जाते हैं, खून अधिक गिरता है।

(२) योनिप्रदर

दूसरा योनि प्रदर होता है, उसमें सफेद धातु गिरता है, कभी २ उसका रंग पीला भी होजाता है, अक्सर ऐसा भी होता है कि योनि मार्ग के भाग में कमलकन्द के ऊपर जलन और सूजन भी हो जाती है, कभी २ उपत्वचा का आवरण भी हट जाता है।

(३) गर्भाशय प्रदर

तीसरा गर्भाशय प्रदर बड़ा भयंकर माना जाता है यह यौवन के प्रारम्भिक अथवा मध्यम अवस्था में होता है, इसमें गर्भाशय में जलन होने लगती है, दाह होने लगता है। वह दाह दो प्रकार का होता है।

दो तरह का दाह

(१) तीक्ष्ण दाह

(२) दीर्घ दाह

दाह की अवस्था के अनुसार भी दशा में परिवर्तन हो सकता है, कभी कपड़े पर चिकना दाग होता है। कभी पीला और कभी सफेद, कमलकन्द के ऊपर सूजन हो जाने से अर्बुद आदि रोग भी पैदा हो जाते हैं। दाहो के विभिन्न अवस्थायें होती है।

तीक्ष्ण दाह में कभी २ ज्वर भी हो जाता है। किंतु ज्वर का वेग कम ही रहता है, कमर में दर्द होजाता है, पेशाब की भी हाजत होने लगती है। गर्भाशय में वेदना होने लगती है, कभी २ प्रवाह रुक जाता है। और कभी २ खूब होने लगता है।

दूसरी हालत दीर्घ दाह में प्रवाह खूब होता है। पीडा भी होती है, हिष्टीरिया का वेग भी होने लगता है। कभी इस दशामें रद्दोबदल भी होजाता है संक्षेप में इनतीनो प्रदरोंमें निम्न दशा होती है।

(१) योनि मुख प्रदर में

रज का रंग कोई खास नहीं होता, रज पतला होता है, और चिकना होता है।

(२) योनि प्रदर में

एसिड, (अम्ल) सफेद दही जैसा होता है।

(३) गर्भाशय प्रदर

चिकना स्वच्छ साफ पानी जैसा आल्बलाईन गिरता है।

इसका स्पष्टी करण यो है—

जरायु की यान्त्रिक क्रिया में परिवर्तन होने, उसके दूषित होने, जरायु उसकी गर्दनऔर डिम्बकोषमें खून भरने, अधिक उभोग करने, मानसिक चिन्ता करने, बार २ गर्भ रहने आदि कारणो से यह रोग होता है, ऐसा डाक्टरो का मत है। इस रोग में।

बहुत रजस्राव होना है और अनियमित होता है। आलस्य अगड़ाई, तबियत का गिरना, सरदर्द पीठ और कमर की वेदना, अरुचि, पैरो के तलवों में ठण्डक आदि चिह्न इसमें दिखलाई पड़ते हैं।

बाद में मुंह पीला पड़ जाता है, आंखे गड्ढे में धस जाती हैं, हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं, कान शून्य होजाते है, नजर कमजोर होजाती है, नाड़ी धीरे२ चलने लगती है। बेहोशी सी भी आने लगती है। निब्बे अकबरी में भी इसका खुलासा वर्णन है। अस्तु।

रक्त प्रदर को हिकमतमें अधिक रजका बहना कहते हैं और उसके भेद उपभेद भी माने गये हैं।

हिकमत के २ भेद

१-रजोधर्म के समयही अधिक खून बहता है,

२-रजोधर्म के समय के बाद भी बहुत दिनो तक बहता रहता है।

आगे चलकर हकीमों ने इसके ९ उपभेद भी माने हैं—जिनमें साथ २ कारणों और लक्षणों का भी निदर्शन कर दिया है।

९ उपभेद

१-शरीर में खून के अधिक होजाने पर रजो-

धर्म की मात्रा बढ़ जाती है। सारी देह, खासकर मुंह भर भराया हुआ और लाल रहता है, रगे भरी हुई रहती हैं।

२-कारणवश जब खून तेज और पतला हो जाता है तो, गर्भाशय की पतली रगें खून बहाने लगती हैं, वे विना मौकेही खूनको फैंकने लगतीहै।

इसमें खून पतला होता है, उसमें पीलापन भी होता है, निकलते समय जलन होती है और वह रुक २ के नहीं, जल्दी २ आता है। शरीर म कमजोरी और पीलापन आजाता है।

३-जब शरीर में पानी की तरी विशेष हो जाती है, तो खून पतला होजाता है, रगो के मुंह सुस्त होजाते है, जिससे खून अधिक बहने लगता है, इसमें खून पतला होता है, सफेद होता है, साथ ही कफ के और चिह्न भी होते हैं।

४-पित्त बढकर गर्भाशय की मुंह वाली रगें खोल देता है, इसके चिह्न दूसरे भेद से मिलते है।

५-वादी के गर्म दोष गर्भाशय की रगो के मुंह खोल देता है। तो काला खून खूब बहता है, कभी रगमें स्याहपन और हरापनभी आजाता है।

६-गर्भाशय में जब मस्से पैदा होजाते हैं, तो खून अधिक बहता है इसका विशेष वर्णन अन्यत्र देखिये।

७-गर्भाशय में घाव होने से भी खून अधिक निकलता है, इसमें दर्द होता है, जलन होती है और खून के साथ२ पीव, पीला पानी और बदबू भी निकलती है।

८-पैदायश की कठिनता के कारण गर्भाशय कमजोर हो जाता है, उसकी रगें फट जाती है, झिल्ली टूट जाती है जिससे खून बहुत बहता है।

९-यौवन के प्रारम्भिक काल में बड़े लिङ्ग से सभोग करने के कारण उसकी रगें फट जाती हैं, जिससे प्रदर हो जाता है।

योनिप्रदाह *Vaginites*

सोजाक गर्मी होकर, पीव लगने (चाहे वह किसी दूसरे का ही क्यो न हो) रजोधर्म के समय मैथुन करने, बलात्कार, प्रसव काल में चोट लगने ठड लगने आदि कारणो से योनि में प्रदाह होने लगता है, यह बड़ा पाजी रोग है। योनि लाल, गर्म, सदर्द और स्फीत हो जाती है, योनि से पीव निकने लगती है, और उसमें खुजली होजाती है।

इसकी दो दशा है।

(१) नयी।

(२) पुरानी।

१—पहिले में ठड के साथ बुखार चढ़ता है, कमर, जाघ और चूतड़ो में बोझा सा मालूम देता है, योनि से कफ सा गिरता है, पेशाब मे जलन आदि चिन्ह होते है।

२—योनि के भीतर वाली झिल्ली में लाल लाल फुन्सियां निकल आती है, योनि ढीली पड़ जाती है। सफेद, पीला, नीला कई तरह का पीव भी खूब निकलता है. जलन, क्षत ये भी हो जाते हैं

योनि का आक्षेप

Vagenismus

किसी स्त्री का योनि पथ बहुत संकीर्ण होताहै और उसे ढकने वाली, झिल्ली की अनुभव शक्ति की Hyperolsthesia अतिशयता के कारण योनि की चारो तरफ पेशियां सिकुड जाती हैं, जिससे योनि में आक्षेप होता है। सभोग के समय लिंग अन्दर जा ही नही सकता, इसलिये बहुत सी नववधू ससुराल के नाम से ही कांपने लगती हैं, पेशियो में आक्षेप होकर पीडा होती है, और कभी २ तो स्त्री बेहोश तक भी हो जाती है।

अवरुद्ध योनि

बहुत सी युवतियो की यह झिल्ली जो योनि को ढकती है, और जिसे कुमारी झिल्ली कहते है.

यौवन में भी नहीं कटती है, और बहुत सी युवतियों की कुमारी झिल्ली इतनी सख्त होती है कि संभोग करने पर भी नहीं फटती।

ऐसी युवतियां संभोग नहीं कर सकती असल में लिंग का प्रवेश ही नहीं हो पाता, बहुत सी युवतियों की झिल्ली सभोग करने पर भी इस लिये नही फटती कि पुरुष का लिंग बहुत पतला और छोटा होता है। रज आने जाने में इसमें कोई बाधा नही होती है बाधा होती है केवल सभोग समय।

योनि भ्रंश

Protapsusbaqinal

इसे योनि की स्थान च्युति भी कहते हैं, कभी जरायु के स्थान च्युत के कारण भी योनि निकल पड़ती है, अधिक संभोग करने, सभोग के समय ऊटपटांग आसनो का प्रयोग करने, हस्त-मैथुन करने से प्रसव कालीन गडबड़ी होने, मलाशय में कठिन मल सञ्चित होने, आदि कारणो से योनि बाहर निकल पड़ती है, यह सभोग के बाद लिंग के साथ २ ही बाहर आजाती है, इसमें पेडू पर बोझा मालूम होता है, चलने फिरने में गड़बड़ा होती है। कभी डिम्ब कोषों तक भी इसका असर जा पहुँचता है, श्वेतप्रदर आदि और भी उपद्रव हो जाते है।

योनि की खाज

Pruritis volvae

इसे आयुर्वेद में योनिकण्डू कहते हैं, योनिको साफसुथरी नही रखने के कारण तरह २ की छोटी फुन्सियां होकर उसमें खुजली चलने लगती है। यह खुजली बड़ी खराब है, और खासकर शहरी स्त्रियो में इसका अधिक जोर होता है। बडी कष्टकर खुजली है, इसमें बाद में जलन भी होने लगती है। रात को खुजली का जोर होता है, और कभी २ फुन्सियो में से पानी भी बहने लगता है। बाद में अवस्था और भयानक हो जाती है, जब कि इसकी उपेक्षा करदी जाती है।

कामोन्माद

Nymphomania

यह बड़ा बेशर्म और पाजीरोग है, और उन स्त्रियो को होता है, जो या तो बालविधवा है, या जो बुड्ढों या बच्चो की स्त्रियां हैं, ऐसी स्त्रियों की कामतृप्ति नही होने से उन्हे कामोन्माद हो जाता है। मैथुन शक्ति बहुत उत्तेजित होने के कारण वे चरित्र भ्रष्ट भीहो जाती है, बराबर उत्तेजित रहने के कारण, उनकी योनि में एक प्रकार के कीटाणु होजाते हैं, जिनसे उत्तेजना और भीबढ़ती हैइच्छापूर्ण नहीं होने पर ऐसी स्त्रियां अभ्यापभी करनेलग जाती हैं, उन्मत्त होकर अनाप सनाप बकने लगती है। निर्लजता तो उनकी सहचरी बनजाती है। मैथुन की प्रबलतम इच्छा होती है। गन्दे २ उपन्यास और सिनेमा उत्तेजना को और भी वृद्धि करते हैं।

योनि में सुरसुराहट चलती है। और बिना मैथुन ही रजस्राव होने लगता है, ऐसी स्त्रियां श्वेत प्रदर की बहुत जल्द शिकार हो जाती हैं।

वन्ध्यात्व

Sterelity

जरायुडिम्ब कोष, तथा योनि में कोई रोग होने आदि कारणो से गर्भ स्थिति नहीं होता इसे ही बाझपन कहते है। एक तो सहज बांझ होती है, दूसरी कृत्रिम, इस लिये वन्ध्यत्व को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है।

सहज-वह होती है, जिनके जन्म से ही डिंब कोष नहीं होते, और रजोधर्म होता ही नहीं।

कृत्रिमवह होती है, जो बाद में किसी रोग के होने पर गर्भ धारण नहीं कर सकती। सहज वन्ध्या स्त्री की कोई दवा नहीं।

पिकचक्षु पीड़ा

Coccypodynia

मेरुदण्ड के निम्न प्रान्त भाग को पिकपक्षु Coccyx कहते हैं। चोट लगने पर, गर्भपात होने आदि कारणों से पिकचक्षु की पेशी और उसके विधान तन्तु में कभी २ बड़ी जोर की पीड़ा होती है। उठने बैठने, पाखाना फिरने, रजोधर्म के समय तथा मैथुन के समय यह पीड़ा होती है।

मेरुदण्ड का उपदाह

Spinal irritation

शरीर के क्षीण होने आदि से यह दाह जैसी वेदना होती है, आघात लगने जरायु की पीड़ा, आमवात स्नायुशूल आदि में इसका विशेष जोर होता है।

योनि रोग

योनि के अन्दर भी बहुत से रोग पैदा होते हैं, गर्मी, सूजाक भी योनि में ही होते हैं किंतु अपनी सुविधा के लिये प्राचीन विद्वानों ने इनका उल्लेख एक साथ नहीं किया, और न उस समय ये पाजी रोग थे ही। जमाने की माग के अनुसार रोग भी होते रहते है। गर्मी सूजाक इनका जिक्र हमभी अलहदा ही कर रहे हैं, विना विस्तार पूर्वक लिखे इनका रहस्य समझ में नहीं आसकता साधारण रूप से योनि के जो रोग हैं, उनका संक्षिप्त जिक्र यहां कर दिया जाता है।

कारण प्रकार

आहार विहार में खराबी पैदा होने से अनियमित जीवन चर्य्या से, आदि कारणों से, दोष कुपित होकर योनि सम्बन्धी रोग पैदा करते हैं। रज और बीर्य का दोष भी इसके कारण हैं।

वातज—५

पित्तज—५

कफज—५

त्रिदोषज—५

योनिकन्द—१

२१

वातज ५

(१) उदावृतायोनि

बहुत कष्ट से, झागदार, खून निकलने पर योनि को उदावृता कहते हैं।

(२) वन्ध्या–बांझयोनि

रज का सर्वथा नाश होकर योनि कभी भी गर्भधारण नहीं करती।

(३) विप्लुता योनि

इसमें हरदम पीड़ा रहती है, रात दिन योनि में व्यथा होती है।

(४) परिप्लुता योनि

मैथुन समय में योनि में जोरदार दर्द होता है मारे पीड़ा से स्त्री छटपटाने लगती है। यह रोग उन स्त्रियों को होता है जो कची अवस्था ही में संभोग की शिकार हो जाती हैं।

(५) वातला योनि

योनि कड़ी होती है, स्तब्ध रहती है, उसमें शूल चलते हैं और तोड़ने जैसी पीड़ा होती है।

पित्तज ५

(१) लोहितक्षरा योनि—रजोधर्म के समय जब खून गिरता है तो जलन होती है।

(२) प्रस्रंसिनीयोनि—मर्दन करने से संभोग समय ऊटपटांग आसनों की परीक्षा से यह रोग होता है। पित्त बिगड़कर फिर योनि को स्थान भ्रष्ट कर देता है, जिससे जो सन्तान होती है वह भी विकृत होती है।

(३) वामनी योनि

इसमें गर्भ टिकता ही नहीं है, वायु के साथही रजमिलित वीर्य को वाहर फेंक देती है।

(४) पुत्रघ्नीयोनि

टिके हुये गर्भ को रक्तस्राव के मारे निकाल देती है।

(५) पित्तलायोनि

इसमें जलन होती है, पाक होता है और बुखार होता है।

कफज ५

१—अत्यानन्दा योनि

मैथुन की अभिलाषा हरदम बनी रहती है। कभी भी सभोग से शांति नही होती।

२—कर्णिका

कफ और खून से मांस की डेली जैसी गांठें पड़ जाती हैं।

३—आनन्दचरणायोनि

मैथुन के समय यह योनि पुरुष से पहिले ही स्खलित हो जाती है, जिसमें वीर्य निकलता है, टिकता हो सो बात नहीं।

४—अतिचरणा योनि

यह योनि सभोग काल में पुरुष से पहिले कई बार स्खलित हो जाती है।

५—श्लेष्मला योनि

योनि बहुत चिकनी होनी है, खुजली चलती है और बहुत ही ज्यादा ठंडी होती है।

त्रिदोषज ५

१—पण्डी

यह योनि मैथुन समय में खरदरी मालूम होती है, रज रहित होती है। इस स्त्री के स्तन छोटे २ होते हैं।

२—अंडिनी

जिसकी योनि का छिद्र तो छोटा हो और मोटे लिंग वाला पुरुष उससे मैथुन करे, तो योनि अण्ड कोष की तरह लटक जाती है।

३—विवृता

इस योनि का छिद्र बहुत बड़ा होता है।

४—सूचीवक्त्रा

यह योनि बहुत छोटे मुंह वाली होती है।

५—त्रिदोषिणी

इस योनि में तीनों दोषो के सारे रोग चिह्न होते हैं। यह पांचो प्रायः असाध्य होती हैं।

१—योनिकन्द

राध के समान, खून के समान और बडहल के समान, योनि में गांठे पैदा हो जाती हैं। उन्हें ही योनिकन्द कहते हैं। यह रोग दिन में सोने से ज्यादा क्रोध करने से ज्यादा श्रम से, ज्यादा मैथुन करने से, नख दांत आदि के घाव से, अपने २ कारणों से दोष कुपित हो जाने पर होता है। यह रोग ४ तरह का होता है।

१—वातज

रूखा, विवर्ण, फटा सा होता है।

२—पित्तज

इसमे जलन होती है लाली रहती है और बुखार होता है।

३—कफज

यह तिल के फूल जैसा होता है, इसमें खुजली चलती है।

४—त्रिदोषज

इसमें सब चिह्न होते हैं।

जरायु की उग्रता *Hysteralgia*

यह स्नायविक पीड़ा होती है, जिससे जरायु में उग्रता आजाती है। शुरू में जरायु में वेदना होकर सारे बस्ति प्रदेश में बढ़ जाती है। ऋतु के समय तो इसका खास जोर होता है। भूख की कमी, अस्थिरता, मितली, तन्द्रा, पाकाशय की हलचल आदि इसके चिह्न होते हैं।

हिस्टिरिया

Hysteria

जरायु की मूर्च्छा

इस रोग का नाम सभी जानते हैं। वड़े २ घरों की स्त्रियां तो खासकर इसकी शिकार होती है। इस रोग का नाम करण में अभी वहुत गड वडी है, हिस्टिरिया को कोई अपतन्त्रक कहते है, कोई उन्माद, और कोई योषापस्मार और वहुत से गर्भाशयोन्माद भी कहते हैं। असल में यह रोग गर्भाशय का है, उसके मूर्छित होने पर इसके चिन्ह दिखलाई देते है।

अतिमैथुन, हस्तमैथुन, अतिरज, पतिवियोग, आदि कारणं से यह रोग होता है, हिस्टिरियाका दौरा होने के पहिले छाती में दर्द होने लगता है, उवासी आने लगती है, ग्लानि होने लगती है सांस लेनेमें कठिनाई होती है, और वेहोशी आना मांगती है फिर दौरा होने पर कोई हंसती है, कोई चीखती है, कोई वुरी तरह चिल्लाती है उटपटांग बकना, पैर पीटना ये चिह्न भी होने लगते है।

कोई स्त्री आह भरने लगती है, कोई सिसकने लगती है, फिर डकारें आती है, और वाद में थोड़ा २ होश आने लगता है, हलका सरदर्दभी इस समय होजाता है।

जरायु प्रदाह

Metritis

यह दो तरह का होता है।

(१) नया।

(२) पुराना।

(१) नया प्रदाह

इसे तरुण जरायु भी कहते है। प्रसवकालीन गड़वड़ी, रज के दूषित होने आदि कारणो से जरायुमें जलन होने लगती है। गर्मी सूजाक आदि तो इसके प्रधान कारण हैं शीत लगना, ज्वर, खुजली, पेड़ू में पीडा, आदि इसके चिह्न होते हैं।

(२) पुराना जरायु प्रदाह

प्रसव के वाद, गर्भाशय के सकुचित होने, कृत्रिम उपायो द्वारा गर्भ सचार को रोकने, गर्भावस्था में भी सभोग करने, वहुत समय तक हरित्पीडा भोगने आदि कारणों से जरायु कठोर और वडा होजाता है उसमें वेदना होने लगती है।

पेट का भारी जान पडना, वाधक वेदना, स्तन और कमर में पीडा, रजोरोध, सभोग के समय वेदना, मूत्रस्थली और मल द्वार में वेग, हिस्टिरिया आदि उपद्रव भी होते हैं।

जरायु में रक्त सचय

Hematometra

जरायुमें जलन होने, घाव होनेआदि कारणो से, कभी २ जब जरायु का मुह वन्द हो जाता है, तो वह बढ़ने लगता है, और झिल्ली से रक्त गिरकर उसमें भर जाता है। गर्भाशय की वेदना, रजोरोध, सभोग की अनिच्छा, आदि उपद्रव इसमें स्पष्ट होते हैं।

जरायु में जल सञ्चय

Hydrometra

जिस तरह खून भरता है, उसी तरह जल भी भर जाता है। गर्भाशय का भारी होना आदि वही उपद्रव इसमें भी होते है। हिकमत में लिखा है कि पानी भरने से रज वन्द होजाता है, चलते समय पेट में गुड़गुड़ाहट होती है, जलन्धर की सी दशा होजाती है और कभी २ तरी भी निकलने लग जाती है।

जरायु में वायु सञ्चय

Physometra

प्रदाह, क्षत आदि कारणों से जरायु में वायु उत्पन्न होतीहै। और उस पर दबाव पड़ने से वायु

फस २ करके बाहर निकलता है। हिकमत में लिखा है कि—

साधारण ठडी दुष्ट प्रकृति, प्रसबकाली, कठिनता जाड़े की सर्दी इन कारणो से गर्भाशय की शक्तियो में कमजोरी आ जाती है जिससे भोजन हवा वन जाता है। फिर वही हवा गर्भाशयकी गहराई उसके कोनो तथा उसकी महीन रगो में जाकर उसे फुला देती है।

जरायु अर्बुद

Uterine-tumaurs & Cancer

कभी २ जरायु की देह या जरायु गह्वर में तरह २ के दाने निकल आते हैं। ये मटर के जैसे होते हैं, इसकी सख्या भी वीसो तक पहुँच जाती है, किसी २ दाने से खून और पीव निकलता है कभी २ इससे श्वेत प्रदर भी हो जाता है और खून की कमी, वाझपन आदि और भी रोग हो जाते है।

जरायु की स्थान भ्रष्टता

Desplacement of the Uterns

गिर पड़ने, चोट लगने, उछलने, कूदने कस कर साडी पहिनने आदि कारणो से गर्भाशयस्थान भ्रष्ट हो जाता है। इसे सूंडी का हटना भी कहते है। इसकी २ दशा मानी जाती है।

(१) गर्भाशय स्थान छोडकर वस्ति गह्वर के भीतर चला जाता है।

(२) योनि के बाहर निकल आता है।

इसमें पेडू की वेदना, पेशाब में पीड़ा, श्वेत प्रदर, रजस्वला या रजोरोध, बाधक पीड़ा वांझपन सभोग समय असह्य वेदना, पेट में दर्द, कब्ज आदि उपद्रव होते हैं।

गर्भाशय का घाव

बाहरी और भीतरी इस तरह गर्भाशय में दो तरह के घाव होते हैं। चोट लगने, अधिक मैथुन करने, गर्मी और सोजाक होने, प्रसव के समय झिल्ली कटने आदि कारणों से घाव होते है। गर्भाशय में फोड़ा होकर उसके फूटने, से भी घाव पड़ जाता है।

इसमें हर समय दर्द रहता है खून और पीव मिले हुये या अलग २ निकलते हैं, रगो के फटने पर लाल खून आने लगता है। मांस के गलने पर काला खून आता है और घाव के सड़ने पर मांड़ के पानी जैसा पीव निकलता है।

गर्भाशय का फटजाना

खुश्की की अधिकता से, तथा अधिक सभोग करने से, गर्भाशय फट जाता है। इसमें हरदम दर्द रहता है और सभोग के समय गर्भाशय पर अगुली रखने से विशेष दर्द होता है। पुरुष का लिंग खून से लिपा हुआ निकलता है

गर्भाशय की सूखी खुजली

पित्तके तेज दोष से तथा नमकीनी बादी के दोष से, और कभी वीर्य में तेजी आजाने से खुजली पैदा हो जाती है। रज के रग से दोष का निर्णय किया जा सकता है। जब खुजली अधिक हो जाती है तो स्त्री सभोग की बडी इच्छा करती है, जितनी अधिक सभोग करेगी, उतनी ही और इच्छा होगी, इसमें कमजोरी भी आ जाती है।

गर्भाशय के मस्से

बादी के दोष से गर्भाशय में भी मस्से हो जाते है। बाहर में होते है तो साफ दिखलाई पड़ते है भीतर में होते हैं तो गर्भाशय के मुह को खोल देते है।

गर्भाशय की फुन्सियां

पित्त मिले खून से और बिगड़े हुये खून से कभी गर्भाशय में फुन्सिया पैदा हो जाती हैं, यह अगुली रखनेसे मालूम हो जाती है, और मूत्रपथ को खोलकर देखने पर भी दिखलाई पडती है, इनमें कभी खुजलीभी चलती है।

गर्भाशय का नासूर

चालीस दिन के बाद, उस घाव को नासूर कहते हैं, जिसे फूटकर पुराने हुये ४० दिन बीत जाते हैं। इसमें हमेशा पीला पानी निकलता है, और दर्द रहता है।

गर्भाशय का वहना

हरदम गर्भाशय सेतरी बहती रहती है, इसमें भोजन पहुंचाने वाली शक्ति कमजोर होती है तरी या तो पित्त की होती है, या कफ और बादी की, विशेष खून के कारण भी ऐसा होता है। इसमें स्त्री की भूख मारी जाती है, रंग मलीन हो जाता है, तथा मुंह और आंखो पर फीकापन आ जाता है।

गर्भाशय से वार्य का वहना

जिन कारणोसे पुरुषो का वीर्य वहता है उन्हीं से स्त्रियो का वीर्य भी बहता रहता है।

रतक

पेट के ऊपर की कडी झिल्ली, स्त्रियो की जननेन्द्रिय के मुंह पर, अथवा उसके और गर्भाशय के मुंहके बीच में, अथवा केवल गर्भाशय के मुंह पर आ जाती है, उस रोग को रतक कहते हैं। अगर पहिली जगह यानी जननेन्द्रिय के मुंह पर आती है, तो सभांग काल में लिंग को नही घुसने देती, उसे रोक देती है। दूसरी जगह आती है तो लिंग का प्रवेश थोडा रोकती है, यानी थोडा अंदर जा सकता है, सब नहीं, जिससे वीर्य गर्भाशय के मुंह तक नही जा सकता, ऐसी स्त्रियो के औलाद नहीं होती। अगर तीसरी जगह आती है, तो लिंग के प्रवेश को तो रोकती नही गर्भ और रज को रोकती है।

गर्भाशय का निकलना

इसके २ भेद है

(१) पहिला भेद

गर्भाशय अपनी हालत में ही नीचे की तरफ आ जाय, और उसकी गर्दन मूत्रपथ के बाहर आ जाय।

(२) दूसरा भेद

गर्भाशय अपनी असली दशा से उलटकर इस तरह निकलता है कि, उसका सब अंग दिखलाई पड़ता है, किन्तु गर्दन की छेद प्रगट नहीं होती।

इसके ४ कारण हैं

गर्भाशय के निकलने मे चार कारण होने हैं।

(१) बच्चा मरा हो, जिससे झिल्ली बेढंगे तौर से खिच आती है।

(२) स्त्री ऊंची जगह से चूतड़ों के बल गिर पड़े, भारी बोझ उठावे, अथवा खींचे।

अथवा ऊपर से कूदे, जिससे गर्भाशय के बन्धन ढीले पड जाते हैं, या कट जाते हैं, और मनका अपनी जगह से हट जाती है।

(३) गर्भाशय के बन्धन कमजोर और ढीले हो जाय।

(४) कफ की रपदार तरी गर्भाशयमें आकर उसे शुस्त और ढीला कर देतीहै, जिससे गर्भाशय हटकर उलट जाता है।

निकलने के चिह्न

गर्भाशय के निकलने पर पेडू और चूतडो के बीच की जगह, तथा पीठ में बहुत दर्द होता है। आगे पीछे खिंचाव, कपकपी आदि चिह्न होते हैं।

गर्भाशय का एक ओर झुकना

सगम में दर्द होता है, मलमूत्र भी कभी बन्द हो जाते हैं, और कभी मरोडा भी उठता है, कड़ी सूजन आदि से ऐसा होता है, इसका जिक्र पहिले आ चुका है।

गर्भाशय की सूजन

इसके ३ भेद है

(१) पहिला भेद

गर्भाशय में गर्म सूजन होती है। इसके कारण ये हैं—

(क) गर्भाशय पर चोट और धमाका पहुँचना।

(ख) रज का रुक जाना।

(ग) गर्भ गिरना, प्रसवकाल की वेदना, अधिक सभोग तथा प्रथम संभोग।

इसके चिन्ह ये हैं—

(क) तेज ज्वर और जीभ का कालापन।

(ख) शिर का दर्द खासकर तालु में।

(ग) नाभि और पेट का दर्द। यह उस हालत में होता है, जब सूजन अगले हिस्से में होती है।

(घ) चूनड़ो के बीच में और पीठ में दर्द, (अन्त में सूजन होने पर)

(ङ) दोनो तरफ सूजन होने से दोनो कांखो में दर्द होना है कभी २ टूंडी और चूनड़ो में भी दर्द आकर वहां से जांघ, चूतड़ तथा दोनो आंखो की तरफ आकर जोरोसे खिंचाव करताहै, जिससे उठना भी मुश्किल हो जाता है।

(च) आगे के हिस्से में ऊपर की तरफ सूजन होती है तो, पेशाब कठिनता से आता है।

(छ) अन्त में नीचे की तरह अगर सूजन होती है तो, मल भी कठिनता से आता है।

(ज) प्यास बार बार लगती है, तथा आमाशय और दिमाग बिगड़ जाते हैं।

(२) द्वितीय भेद

कफ वाली ठंडी सूजन गर्भाशय में हो जाती है, जिससे पेडू के आसपास भारीपन रहता है।

(३) तृतीय भेद

गर्भाशय में वादी की कड़ी सूजन पैदा हो जाती है. यह सूजन अक्सर गर्म सूजन के पीछे होती है। रज के जलने पर तथा दूसरे कारणो से भी यह सूजन हो जाती है।

इसके चिह्न ये है।

(क) गर्भाशय में बोझ मालूम होता है, जिससे चलने फिरने में भी थकावट होती है।

(ख) कठोरता होती है, खासकर पेडू में।

(ग) चलने पर पिंडलियां कापने लगती है, सूजन एक तरफ है तो एक तरफ की पिंडली कांपती है।

गर्भाशय की बड़ी और फैली हुई सूजन

गर्म सूजन के बाद में यह सूजन होती है, जो बाद मे फैल जाती है, तथा बहुत बड़ी हो जातीहै, इसमें कठोरता, गर्मी रीसें चलना, छाती के पर्दा तक की पीड़ा, कभी आंख का दर्द, आधासीसी, कमजोरी ये चिह्न होते हैं, पांवकी पीठ सूज जाती है, कभी जलधर रोग भी हो जाता है, पिंडलियां दुबली हो जाती हैं। कभी घाव भी हो जाता है, जिससे पेडू पीठ तथा पेट के नीचे और चड्डो मे दर्द होता है। काली, हरी, सफेद इनमें से कोई सी तरी भी बहने लगती है।

गर्भाशय का फोड़ा

इसे दबीला कहते हैं। सूजन पक तो जाती है, किंतु फूटती नही। इसका वर्णन पहिले आ चुका है।

गर्भाशय का घुट जाना

इसे हिस्टिरिया भी कह सकते हैं। इसमें मृगी और अचेतना के चिह्न होते हैं। वादी, अंगो में खिंचाव, इठाव और गिरपड़ना, हाथ पेर का ठंडा होना, रंग का पीलापन, नाड़ी और साँसका छोटा पन, ये चिह्न मृगी और अचेतना के ही हैं, इसका प्रधान सम्बन्ध गर्भाशय से है, किंतु सांयोगिकता के कारण दिमाग आदि की बीमारियां भी होती हैं। जब मवाद के न निकलने से वीर्य इकट्ठा होकर जहरीला हो जाता है, और गर्भाशय कष्ट के भय से भाफ के ऊपर की तरफ सिमिट कर

सिकुड़ जाताहै तो, निकम्मे भाफके परिमाणु दिल और दिमाग की तरफ आकर इस रोग को पैदा करते हैं।

मवाद अधिक होनेपर यह रोग रोज होताहै, वर्ना इसका असर बारी पर होता है। बारी के पास आने पर बुद्धि बिगड़ जाती है, चिन्ता में खराबी पैदा हो जाती है। सर में दर्द, आंखो में अधेरा, रग में पीलापन, अगो में थकावट, आंखो मे पानी सा भरना, कमजोरी आदि चिह्न होते है। और समय आने पर ऐसा मालूम होता है, मानो कोई चीज पेडू के आसपास से दिल की तरफ चढतीहै। फिर मुँह और नाक की ज्ञान शक्ति नष्ट हो जाती है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, रोगी बेहोश हो के गिर पड़ता है।

वन्ध्यत्व

गर्भ न रहना और गिर जाना

हकीमो के मत से यह रोग दो तरह का होता है।

(२) भेद

१–स्त्री के कारण उसकी बीमारियो आदि से जो यह रोग होता है, वह पहिला भेद है।

२–पुरुष की खराबी उसके रागो के कारण जो होता है, वह दूसरी तरह का है। यह याद रखना चाहिये कि इसमें स्त्री की कोई खराबी नहीं होती उसका गर्भाशय ठीक रहता है। किन्तु पुरुष की खराबी से सन्तान नही होती।

(१) प्रथम भेद के
१३ भेद हैं

गर्भाशय में ठंडी दुष्ट प्रकृति पैदा होजाती है, जिससे वीर्य और खून जमकर सूख जाताहै, इसमें रजोधर्म देर में होता है, रुधिर थोड़ा लाल और पतला आता है और जल्दी बन्द नही होता। ऐसी स्त्री के बाल भी कम होते हैं और जब ठंडी प्रकृति सारी देह में फैल जाती है तो, रग में सफेदी तथा छूने में सर्दी होती है।

२–गर्भाशय में गर्म दुष्ट प्रकृति पैदा होकर, वीर्य को जलाकर खराब कर डालती है। इसमें रज में गर्मी, गाढ़ापन और कालापन होता है, बाल अधिक होते हैं। गर्मी फैलने पर शरीर दुबला और पीला हो जाता है।

३–गर्भाशय में खुश्क दुष्ट प्रकृति पैदा होकर वीर्य को सुखा देती है। इसमें स्त्री रजस्वला बहुत कम होती है। खुश्की फैलने पर शरीर कमजोर हो जाता है और योनि हरदम सूखी रहती है।

४–तर दुष्ट प्रकृति गर्भाशय में पैदा होकर, गर्भधारण शक्ति को कमजोर कर देती है, जिससे गर्भ नहीं रहता, अगर कभी रह भी जाता है तो क्षीण होता है और ३ महीने से अधिक नहीं रहता इसमें हरदम गर्भाशय से तरी बहती रहती है।

५–कफ, वायु या पित्त का दोष गर्भाशय पर गिरकर, गर्भाशय और वीर्य दोनो को बिगाड़ देता है, जिससे गर्भ नही रहता। कफ के कारण सफेद पित्त के कारण पीली और बादी के कारण काली तरी बहती है, यह स्मरण रखना चाहिये।

(६) जब स्त्री अधिक मोटी हो जाती है तो, शरीर तथा गर्भाशय दोनो पर चर्बी चढ़ जाती है जिससे गर्भ नही रहता, इसमें स्त्री का पेट बड़ा और ऊंचा होता है, चलने फिरने में दम टूटता है। जरा सा भी मल इकट्ठा होने पर दर्द होता है योनि तग हो जाती है, साथमें गर्भाशय भी जिससे गर्भ गिर जाता है।

(७) स्त्री जब अधिक कमजोर हो जाती है, तो अगो के भोजन का फोक नहीं रहता, न रजही पैदा होता है, जिससे गर्भधारण की ताकत नहीं रहती।

(८) किसी कारणवश जब रज बन्द हो जाता है तो, स्त्री रजस्वला नही होती फिर गर्भ कैसा।

(९) गर्भाशय मे गर्म सूजन, निकम्मे घाव, कड़ापन इनके होने से गर्भ नहीं ठहरता, इनके चिह्न उनके खास २ स्थानो पर देखना चाहिये।

(१०) गर्भाशय में जब गाढ़ी हवा पैदा हो जाती है तो वह वीर्य को निकाल कर फेंक देती है इसमें पेडू हर दम फूला हुआ रहता है और बादी की चीजो से कष्ट पहुँचता है, कभी गर्भ रह भी जाता है, तो गिर जाता है, और सभोग के समय हवा का जैसा शब्द होता है।

(११) गर्भाशय के मुंह में कडी सूजन, रतक, मस्सा, आदि के पैदा होने से वह (मुंह) बन्द हो जाता है। जिससे वीर्य ठीक जगह नहीं पहुँच सकता।

(१२) गर्भाशय स्थान भ्रष्ट हो जाता है तो, लिङ्ग की नौक उस तकनहीं पहुँचती, जिससे वीर्य दूसरी जगह गिरता है, इसके कारणो आदि का स्पष्ट विवेचन अन्यत्र किया गया है इसमें सभोग के समय दर्द होता है, कभी मरोडा होता है, कभी मलमूत्र बन्द हो जाते हैं।

(१३) गर्भाशय यद्यपि आरोग्य होता है, किंतु कोई ऐसा कारण ही हो जाताहै, जिससे गर्भ नहीं रह पाता या गिर जाता है।

(१) सभोग के समय स्त्री स्खलित होते ही उठ जातीहै, जिससे वीर्य गर्भाशयमें नही पहुँचता।

(२) कड़ी महनत करने, भूखे रहने, गर्भिणी अवस्था में ही सभोग करने आदि से टिका हुआ गर्भ भी गिर जाता है।

(२) द्वितीय भेद

इसके ३ भेद हैं

१—पुरुष के वीर्य की प्रकृति विगड़ जाती है जिससे सर्दी गर्मी के कारण वह वीर्य गर्भ धारण करने की ताकत खो देता है, सर्दी के कारण वीर्य सफेदऔर पतला, तथा गर्मीके कारण पीला थोड़ा और सजलन होता है।

२—कुक्रियाओ के कारण जब लिंग के सिरे का बन्धन छोटा हो जाता है तो, निकला हुआ वीर्य गर्भाशय के मुंह मे नहीं पहुँचता। ऐसे सज्जनो (!) के लिगका सिरा टेढ़ा और झुका हुआ होता है, पेशाव भी सीधा जल्दी नही निकलताहै।

३—वीर्य से सम्बन्ध रखने वाले अगो की ताकत नष्ट होने पर भी पुरुष की गर्भ धारण शक्ति नष्ट हो जाती है, जैसे अडकोषो की रगे कट जाय, या कानो के पीछे की रगे कट जांय।

डिम्बकोष प्रदाह

Ovaritis

इसकी २ अवस्था होती है।

(१) नया।

(२) पुराना।

चोट लगने, रजोधर्मके समय ठंड लगने, और उसी समय मैथुन करने आदि कारणो से यह रोग होता है, अक्सर नीच कर्म करने वाली वेश्यायें और मैथुन के लिये मरने वाली स्त्रियें जो रजोधर्म के समय भी सब्र नहीं कर सकती, इस रोग की शिकार होती है।

१-नये प्रदाह में—पेशाव के समय कष्ट होता है, पेट के भीतर दर्द खूब होता है, हाथ लगाने से ही दर्द बढ़ता है, ज्वर, वमन, संभोग की इच्छा आदि चिह्न होते हैं।

२-पुराने प्रदाह में—डिम्बकोषो में असह्य वेदना होती है, वे कठोर भी हो जाते हैं कभी २ पीव भी पैदा हो जाताहै, पेशाव में जोरो से जलन होती है और पेडू के आसपास पीड़ा होती है।

डिम्बकोप का शोथ
Ovarian-dropsy

कभी २ डिम्बकोप में जल की तरह पीवपूर्ण कोप पैदा हो जाताहै, इसी को डिम्बकोप का शोथ कहने है पेट मे सूजन, मल और मूत्र के समय कष्ट, श्वास प्रश्वास मे दिक्कत, वमन, स्तनमें दुग्ध सचय, गर्भ की दशा सी मालूम होना, पेशाव की कमी प्यास का प्रभाव आदि चिह्न होने है।

डिम्बकोप का स्नायु शूल
Ovaralgia

यह स्नायविक वेदना है। वेदना एकाएक शुरू होकर चारो तरफ फैल जाती है कै, पेट फूलना, हृत्स्पन्दन, पेशाव घटना, इसके प्रधान चिह्न हैं।

गर्भिणी रोग
Primigravide Disease

गर्भावस्था में स्वभावतः ही स्त्रियो को कई रोगो का सामना करना पड़ता है। जो स्त्रिया स्वस्थ और सवल होती है, उन पर रोगो का असर अधिक नही होता, किंतु जो पहिले ही से अस्वस्थ और निर्वल हैं, उनका तो उस समय दिवाला ही निकल जाता है। दुर्भाग्य से ऐसी स्त्रियो की सख्या थोडी ही है, जो गर्भावस्था में भी प्रसन्न और सुखी रहती है, वर्नः किसी को दस्तो की शिकायत है तो किसी को कब्ज की किसी के दांतो में दर्द होता है किसी के सर में

अव गर्भिणी स्त्रियो के होने वाले कुछ रोगो का निदर्शन करा देना भी आवश्यक है।

वमन (कै)

गर्भ स्थिति के २–३ महीने वाद यह रोग होता है, जिससे खाया पिया सव कुछ निकल जाता है, अक्सर सुवह इसका जोर होता है, किन्तु कभी कभी हरदम ही कै होती रहती है, जिससे गर्भिणी की दशा वड़ी खतरनाक हो जाती है। कै में खट्टा पित्त भी निकलने लगता है, और खाने के नाम से ही उबकाई आने लगती है। कभी कभी वेहोशी भी होने लगती है। जी मिचलाना, कमजोरी, मलिनता, वेचैनी, पेट में दर्द आदि उपद्रव हो जाते है। वाद में हालत और भी नाजुक हो जाती है तो, कै में खून भी आने लगता है, नाडी कमजोर पड़ जाती है, बुखार भी आने लगताहै और मुंहमें वदवू आने लगती है। धीरे धीरे कमजोरी वढ़ कर और सन्निपात होकर मौत भी हो जाती है।

गर्भिणी के दस्त

खाने पीने की गड़वडी से, कच्चा पक्का खाना खाने से, तथा उन कारणो से, जिससे सवको दस्त होते हैं, गर्भिणी स्त्रियो को भी दस्त हो जाते हैं। वहुत दिन तक कब्ज रहने से भी आखिर दस्त हो जाते है। लगातार अगर दस्त होतेहैं तो, गर्भिणी की हालत वड़ी नाजुक हो जाती है, वहुत ही सावधानी के साथ गर्भिणी के दस्तो की दवा करनी चाहिये।

गर्भिणी का बुखार

दिन में सोने, और रात में जगने, कब्ज होने, दस्त लगने, वमन का जोर होने, रक्त सचार में विकार पैदा होने, आदि कारणोसे गर्भिणी स्त्रियो को बुखार हो जाता है, जिस दोष का प्रकोप हो उसके चिह्न देखने चाहिये, अगर दूसरे रोगो के कारण बुखार हो तो खास रोगको हटाना चाहिये। गर्भिणी का ज्वर कालान्तरमें भयानक सिद्ध हुआ है, गर्भपात तक हो जाता है।

रक्त सञ्चार की विकृति

खूनको विगाड़ने वाले पदार्थों के खाने आदि कारणो से जव खून का सञ्चार ठीक नहीं होपाता तो, गर्भिणी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। वहुत सी स्त्रियां उन्मत भी हो जाती हैं।

कम्पन वायु

रक्त सचार की खरावी, तथा शुष्क प्रमेह आदि कारणो से यह रोग हो जाता है, जिससे गर्भिणी को कंपकंपी होती है।

मूत्राघात

गर्भ के दवाव के कारण जब गर्भाशय टल जाता है, इधर उधर होजाता है तो या तो पेशाव रुक २ के आता है, या विलकुल ही बन्द हो जाता है।

मूत्रातिसार

गर्भस्थ बालक के नियत स्थान से टेढ़ आती है होने से, मूत्राशय की गरदन की रगड़ से और गर्भाशय के दवाव से गर्भिणी को पेशाब बहुत होती है।

श्वेत प्रदर

इसका वर्णन पहिले आ चुका है, गर्भिणी स्त्रियो को अगर यह रोग हो जाता है तो उन्हेवडी कमजोरी सताती है, गभ का पोषण नहीं होपाता और गर्भ गिर भी जाता है।

भग प्रदाह

पहिले श्वेत प्रदर होता है, वाद में खुजली, फिर उन फुन्सियो पर रगढ़ पहु चने से भग में जलन होती है, कभी २ योनि को गन्दी रखने और खून की खरावी से यह रोग हो जाता है, खुजली दिनमें कम चलतीहै, और रात में अधिक जिससे रात को सोना भी हराम हो जाता है।

शुक्त प्रमेह

डाक्टरी में इसे 'एलव्यू मिनोरिया' कहते हैं, इसमें पेशाव के साथ 'एलव्यूमन' पदार्थ निकला करता है। इसके २ कारण हैं।

(१) प्रथम गर्भ के समय जरायु की दीवारें बहुत कड़ी होती हैं, जिससे गुर्दा के ऊपर दवाव गिरता है, और उनके रक्त सचार में रुकावट पड़ती है, फिर पेशाव के साथ 'एलव्यूमन' निकलने लगता है।

(२) ज्यादा नहाने, ठंडी हवा लगने आदि कारणो से गर्भिणी को सर्दी लगने पर भी यह रोग हो जाता है, इसके चिन्ह हैं।

सर में दर्द, और उसका घूमना, कै होना, अधेरी आना, नींद न आना, स्वभाव का चिड़चिड़ा होना, पेशाव का कम होना, और उसमें लाली रहना, आदि।

इस रोग से गर्भिणी स्त्रियो को कम्पवायु, हिस्टिरिया आदि और भी रोग होजाते है।

शिरा आध्मान

शिरा आध्मान के मानी होते हैं। रगो का फूलना। गर्भाशयपर दवाव गिरने के कारण पैरो की टांगो की, और भगकी अशुद्ध खून को बहाने वाली नसें फूल जाती हैं।

गर्भिणी का शोथ

ज्वर, खांसी आदि रोगो के कारण भी शोथ होजाता है। और खून की खराबी से भी कभीर गर्भाशय की वृद्धि से भी शोथ होजाता है, जालीदार झिल्लियो में जल भर जाना शोथ कहलाता है, पैरो, गुर्दो, मु ह, हाथ और कभी २ गले में यह शोथ होता है।

खून की कमी

गर्भिणी का खून गर्भ की पुष्टि के लिये अपने रूप को कई रूपो में बदल देता है। इससे कुछ कमी तो आही जाती है, मगर यह कुछ खरावी पैदा नहीं करता। शुक्त प्रमेह होने, पहिले ही से स्त्री को प्रदर होने, आदि से जब खून की कमी वढ़ जाती है, तो गर्भिणी का शरीर फीका और सुस्त पड़ जाता है। जल्द उपाय न करने पर मौत भी होजाती है।

सरदर्द

नसो में खिंचाव होने, रक्त सचार में विकार पैदा होने, दस्त, कै और बुखार होने आदि से गर्भिणी के सर में पीड़ा हो जाती।

गर्भिणी का बवासीर

गर्भाशय के दबाव और वस्ति गह्वर में मल भरे रहने के कारण कभी २ बड़ी आंतों में गर्मी पैदा होकर गर्भिणीको बवासीर होजाता है, खाने पीने की और गडबड़ी भी, जिससे यह रोग होता है, इसमें कारण है, मस्से अगर भीतरी होते है, और उनसे खून भी गिरता है तो, गर्भिणी की दशा नाजुक हो जाती है और गर्भ का उचित पोषण भी नहीं हो पाता।

गर्भिणी की खांसी

रूखा, सूखा खाना खाने, नाक औरमुह में मिट्टी जाने, जल्दी खाने, और गर्भ की वृद्धि के कारण फेफडो में दवाव पड़ता है, जिससेखासी हो जाती है। कभी २ साधारण खांसी भी कुक्कुर खांसी का रूप धारण कर लेती है, इससे जब खाँसी बढ़ जाती है, तो गर्भ गिरने तक का भय रहता है।

दन्त वेदना

गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था मे कभी२ गर्भिणी स्त्रियो के दातो में दर्द होने लगता है। और पीछे यह दर्द अपने आप ही मिट जाता है। इसलिये दवा करने की कोई दरकार नही होती।

हृदय वेदना

यह रोग अधिकतर उनको होता हैं जो पहिले पहल गर्भ धारण करती है, या किसी बीमारी मे फंसी रहती है। हृदय की कमजोरी, बेचैनी, घबड़ाहट, डरना आदि उपद्रव होजाते है। कभी २ गर्भ की स्वाभाविक वृद्धि के कारण भी हृदय में विकृति पैदा हो जाते हैं।

फेफडे का विकार

गर्भ वृद्धि के कारण कै होने, दस्त होने, हृदय में कोई विकार पैदा होने, आदि कारणो से फेफड़ो में विकार पैदा हो जाता है, जिसके फल स्वरूप श्वास, खांसी क्षय, फेफड़ो की जलन आदि रोग हो जाते है।

वेहोशी

गर्भ के स्पन्दन करने, लगातार दस्त और कै होने, आदि कारणो से स्त्री को बड़ा कष्ट होता है जिससे वह कभी२ वेहोश भी हो जाती है, दूसरे रोगो के हटने पर यह रोग बिना दवा के अपने आप ही हट जाता है।

इन रोगो के अलावा और भी रोग गर्भिणी स्त्री को हो जाते हैं। हैजा, पेचिस, दिक् आदि सांघातिक रोग भी हो जाते हैं, जिनसे गर्भिणीकी स्थिति बहुत नाजुक हो जाती है, इन रोगो का निदान पहिले होचुका है, अब अलग फिर लिखने की आवश्यकता नही। जो भी रोग हो उसका निदान सावधानी के साथ करना चाहिये, और उसका प्रतीकार करना चाहिये।

अब गर्भस्राव और गर्भपात के कारणो और चिह्नो पर भी बिचार कर लेना आवश्यक है।

गर्भस्राव

गर्भावस्था में भी सभाग करने, अपनीस्थिति की उपेक्षा करके पैदल ही रास्ता चलने, हाथीघोड़े की सवारी पर चढ़ने, अधिक मिहनत करने, किसी के भीच देने, कसकर आलिगन करने, तेज बुखार होने, उपवास करने, कूदने, गिर पड़ने, अजीर्ण होने, दौड़ने, कै होने, दस्त लगने, रात दिन क्लेश करने, गर्भ गिराने वाली दवाओ के खाने, तेज, गर्म, खारे, कड़वे, और रूखे पदार्थ खाने, मल मूत्र को रोकने, ऊंची नीची जगह पर बैठने और ऐसी ही जगह पर सोने, डर लगने, इन कारणों से गर्भस्राव होता है।

अलावा इन कारणो के पति के मारने, पड़ोसियो से लडने झगड़ने, श्वेत प्रदर होने, खून की गति में बाधा पडने, आदि कारणोसे भी गर्भस्राव हो जाता है।

चौथे महीने तक अगर गर्भस्थान भ्रष्ट हो जाता है, गिरता है तो उसे गर्भस्राव यानी गर्भ का बहना कहते है, चार महीने तक गर्भ बहुत नाजुक होता है, इस कारण वह रक्त के रूप में गिरता है, गर्भस्राव होने के समय कोई खास चिह्न नहीं होते, चूंकि यह सहसा हो जाता है, हां जब कारण पहिले ही से बलवान होता है तो कुछ चिह्न दिखाई भी पड जाते हैं। असल में गर्भस्राव के २ चिह्न हैं—

[१] शूल

[२] खून बहना।

गर्भावस्था में मासिकधर्म बन्द हो जाता है, उस समय योनिपथ से कोई प्रकार का खून नहीं निकलता, अगर गर्भिणी को कोई रोग है तो, श्वेत प्रदर आदि रोगो में खून गिरने लगता है, स्वस्थ स्त्री के गर्भस्राव के समय खून बहता है, इसका कारण यह है, कि अपरा का सम्बन्ध गर्भ से दूर रहता है, फिर सहसा गर्भ के बहने से शूल होते हैं, योनि में, गर्भाशय में, वस्ति में और कमर में। बहुधा इसमें गलती भी हो जाती है, किंतु जरा अक्ल से काम लेने पर सब बातें समझ में आ जाती हैं।

गर्भ जब बहता है, तो बराबर बहता है, उसमें मांस के लोथडे से भी निकलते हैं। साथ ही इसके पेडू के ऊपर जो भार रहता है, वह भी हट जाता है।

गर्भपात

चार महीने के बाद जो गर्भ निकलता है तो उसे गर्भपात कहते हैं।

जिन कारणों से गर्भस्राव होता है, उन कारणो से गर्भपात भी हो जाता है। आजकल तो बहुँत सी स्त्रियां खुद जानबूझ के गर्भ गिराती है समाज की अव्यवस्थित दशा के कारण सैकड़ो गर्भ गंगा और यमुना की गोद में बहादिये जाते हैं सड़कों पर फेंक दिये जाते हैं, और जमीन में गाढ़ दिये जाते है, शैतान कामियो की वासना कितनी भयंकर होती है

गर्भाशयमें सलग्न डिम्बजब गर्भिणीके गिरने उसके भारी बोझ उठाने आदि कारणो से क्षुब्ध होजाता है अथवा चेचक या डिम्ब पीड़ाके कारण दूषित हो जाता है तो माता व गर्भ के पर्दे के बीच में रक्तस्राव होने से गर्भ गिर जाता है, स्त्री पुरुषो में से किसी को गर्मी होतीहै तो डिम्ब रोगी और विकृत हो जाता है। इसी तरह सोजाक, प्रमेह से भी डिम्ब दूषित और निर्बल हो जाता है इस डिम्ब से जिस गर्भ की रचना होती है, वह असमय में ही मर कर निकल जाता है।

गर्भकोष के रोग अथवा नाभिरज्जु में ठीक रक्तसचार नहीं होने से भी गर्भ गिर जाता है। प्लेग जैसे रोग भी गर्भ को गिरा देते है। तेज दवा खाने आदि से भी गर्भ गिर जाता है।

हिकमत में गर्भपात के ८ कारण है, कारणों के अनुसार ही ८ भेद माने हैं।

८ भेद

१—चोट लगने, गिरपड़ने, उछलने, कूदने से गर्भ गिर जाता है। यह बाहरी कारणो से गिरताहै

२—अधिकचिंता, क्रोध, भय आनन्द, सर्दी, गर्मी आदि से गर्भ गिर जाता है।

३—अजीर्ण होने, सभोग पर संभोग करने, भूखे रहने और किसी रोग के होने आदि से भी गर्भपात हो जाता है।

४—गर्भ में ही जब बालको को रोग हो जाते हैं, वे कमजोर हो जाते हैं, मर जाते हैं, तो गर्भ गिर जाता है, ऐसी गर्भिणी बीमार रहती है, दस्त लगते है।

५—गर्भाशय का मुंह अधिक चौडा होताहै, या उसमें से हरदम तरी बहती है तो, गर्भ गिर जाता है।

६—गर्म या ठडी दुष्ट प्रकृति, या हवा गर्भाशय-में आकर गर्भ को गिरा देती है।

७—गर्भिणी का रजबन्द होकर खून बढ़ जाता है, और वही गर्भ को निकाल फेंकता है।

८—स्त्री बहुत कमजोर हो, उसे पर्याप्त भोजन न मिले, जिससे गर्भ का पोषण नहीं होने से वह गिर जाता है।

उपविष्टक

गर्भ की शरीर रचनाके बाद, अगरनेज और गर्म आहार के कारण रज बहने लगता है, या श्वेत प्रदर हो जाता है, तो गर्भ का ठीक पोषण नहीं हो पाता, और न उसकी उचित वृद्धिही होती है। इससे गर्भ दसवे महीने में पैदा न होकर बहुत पीछे पैदा होता है।

नागोदर

अधिक उपवास, सूखे, थोड़े और वायु को बढ़ाने वाले आहार करने आदिसे गर्भ में स्निग्धता नहीं आती वह सूख जाता है, उसका नियमित विकास नही हो पाता, इस लिये बहुत समय तक गर्भ-बाहर नही निकलना, वायु की अधिकता से यह धड़कता भी रहता है।

अस्वाभाविक गर्भ

दो-तीन और विकृत गर्भो का पैदा होना अस्वा भाविक कहलाता है। गर्भाशय में नही किन्तु दूसरी जगह गर्भ स्थिति होने को भी अस्वाभाविक गर्भ कहते है

माता जब ऋतु नियमो का ठीक पालन नहीं करती तब अन्तर्जननेद्रिय तथा गर्भाशयस्थ रज वीर्य के अनेक हिस्से हो जाते हैं।

ऐसी सन्तान को यमज कहते हैं। कभी कभी ज्यादा हिस्से हो जाते है तो, ३ सन्तान भी हो जाती है एक से अधिक अस्वाभाविक गर्भ का होना इसी कारण में समझा जाता है।

कभी २ ठीक गर्भाशय में गर्भ स्थिति नहीं होती, दूसरी जगह हो जाती है इसे भी अस्वाभाविक गर्भ कहते हैं, अस्वाभाविक गर्भ आज कल ३ भागो में विभाजित किये जाते हैं।

(१) Tublo
(२) Abadominal
(३) Ovarion

ऐसे गर्भो का निर्णय बड़ी मुश्किलो से होता है कभी २ तो इन गर्भोसे गर्भिणी मर भी जाती है।

रज मय गर्भ

यह बडा विचित्र रोग है और साथ ही इसकी पहिचान भी बड़ी मुश्किलों से होती है इसमें स्त्री की जान इसलिये जाती है कि रोग समझ में नही आता। यह रोग होता है वियोगिनियो को विधवाओ और कामोन्मत्त स्त्रियो को। ऐसी स्त्रियां जब रजस्वला होकर स्वप्न मैथुन करती है। दिन रात वासना की उपासना करने से उन्हे स्वप्न ही ऐसे आतेहै जिनमें ये मैथुन करती हैं। उससे रज गिरता है, फिर बिगड़े हुये वायु देवता इसी रज को लेकर गर्भाशय में पहुँचते है और गर्भ की सृष्टि कर देते हैं। अलावा इसके जब दो स्त्रिया आपस में घर्षण करके मैथुन करती हैं, तो उनका रज निकलता है और गर्भाशय में पहुँच कर गर्भ स्थित कर देता है। वीर्य के बिना सर्वांग पूर्ण गर्भ की रचना नही होती, इसीलिये इस गर्भ में पिता के अश हड्डियां केश वीर्य आदि नहीं होते, केवल उसमें माता के अश होते हैं और वह मांस का लोथड़ा सा होता है। ऐसे गर्भ की स्थिति के बाद चिह्नभी गर्भिणी केजेंसेहोजातेहै, जिससे वास्तविक गर्भ का अनुमान होजाता है। किंतु यह ठीक समय पर पैदा नही होता, बहुत दिनो तक भीतर पड़ा रहता है। असल में है; तो मासका लोथड़ा ही न ?

रक्त गुल्म

इसका वर्णन 'गुल्म' प्रकरण में आचुका है। इससे गर्भ का अनुमान होजाता है। बिगड़ा हुआ वायु जन रजवाही स्रोतो और योनि मुख को बन्द कर देता है तो, रजोधर्म रुक कर भीतर ही भीतर जमा होने लगता है।

इसके चिह्नो को जिनका वर्णन पहिलेहोचुका है, देखकर इसकी उचित:चिकित्सा करानी चाहिये और गर्भ का अनुमान हटा लेना चाहिये।

रिजा-मिथ्यागर्भ

वास्तव में गर्भ नही रहता, किंतु स्त्री की दशा गर्भिणी जैसी हो जाती है. रज बन्द होना, भूख नष्ट होना, छाती फूलना, आदि गर्भिणी के जैसे चिह्न हो जाते हैं, जिससे धोखा हो जाना है।

इसके ४ भेद हैं

१—गर्भाशय में या उसके मुंहमें कड़ी सूजन पैदा हो जाती है, जिससे रज बन्द हो जाता है, और उससे उसके अनुरूप चीज पैदा होजाती है।

२—बहुत से गर्मदोप गर्भाशय पर गिरते हैं, उनमें से पवित्र और हल्के तो नष्ट हो जाते हैं, बांकी गाढ़े जम जाते हैं फिर यह गाढ़ा दोष गर्मी के कारण मांसकी गांठ के रूप में गर्भकी कल्पना करा देते हैं।

३—गर्भाशय के पर्तों में जब गाढ़ी हवा रुक जाती है, तो फुलाव, खिचाव और जलधर के से चिह्न होकर झूठे गर्भ की कल्पना करा देता है।

४—केवल स्त्री का रज ही गर्भाशय में ठहर जाता है. और गर्भ के रूप में हो जाता है यद्यपि वह सर्वांगपूर्ण गर्भ नहीं होता।

मूढ़ गर्भ

Deifficalt labaui

कारण

जो गर्भवती स्त्री मैथुन करती है, घोड़े आदि पर चढ़ कर उन्हें दौड़ाती है, ज्यादा चलती, दौड़ती है, गिर पड़तीहै, शरीर को ऊटपटांग रीति से रखती है, वे इसकी शिकार होती है। इनके अलावा, चोट लगने से, ऊंची नीची तरह से बैठने से, अहित भोजन करने से, मल मूत्र रोकने से, ज्यादा रूखा, खट्टा, कडुआ भोजन करने से ज्यादा शाक खाने से, दस्त लग जाने से, कै होने से, विरेचक दवा खाने से, हिंडोले आदि पर झूलने, अजीर्ण गर्भ गिराने की कुक्रिया करने से, गर्भ अपने बन्धन से छूट जाता है, और योनि में अटक जाता है।

आजकल समाज में ऐसी स्त्रियों की संख्या भी कम नही है, जो दवा खा खा के गर्भ गिराती है। काशी, मथुरा, आदि पवित्र स्थान इन कामो के अड्डे हैं। तीर्थ यात्राके बहाने न जाने कितनी स्त्रियां गर्भ गिरा के गंगा में फेंक देती हैं। यह व्यापार वहां होता भी सहज में है। इससे दुराचारिणी स्त्रियो को व्यभिचार में प्रोत्साहन भी मिलता है। जो भी हो ! इस तरह से गर्भ अपने बधन से छूटकर गर्भाशय से निकल कर यकृत् लीहा और आंतो के द्वारा झरता हुआ सा मालूम होता है, फिर समान वायु पेटको क्षुभित कर देता है जिससे अपान वायु अपनी चाल को छोड़कर उल्टा चलने लगता है, जिससे फंसवाड़े, वस्ति मुख पेट और योनि में शूल तथा अफरा होता है, पेशाब रुक जाता है, और गर्भ पीड़ित होकर मूढ़ दशा को पहुँच जाता है। उसकी चार दशायें होती हैं बहुत विद्वान ८ भी मानते हैं।

इसके ४ प्रकार हैं

(१) कील, (२) अतिखुर, (३) बीजक, और परिघ ये चार भेद हैं।

(१) कील

इसमें हाथ, पैर, शिर ऊपर को होकर योनि

पथ को कील की तरह रोक लेते हैं। जिससे वह बाहर भी नही निकल सकता।

(२) अतिखुर

इसमें हाथ, पांव शिर इनमें से कोई निकल आवे और बाकी शरीर भीतर रहता है, कभी केवल शिर निकल आताहै, बाकी हाथ पांव आदि भीतर ही रह जाते हैं, कभी पैर निकल आते हैं, बांकी सब भीतर रहता है।

(३) बीजक

इसमेंएक हाथ निकलताहै, और शिर निकलता है, बांकी एक हाथ दोनो पैर आदि भीतर रहते हैं,

(४) परिघ

यह वज्र की तरह योनि के मुख से सट जाता है, न इधर निकलता है न ऊपर होता है।

८ गतियां

१—दोनो साथलो से योनि पथ में आकर अटक जाना, यह पहिली गति है।

२—इसमें एक साथल संकुचित होकर दूसरी योनि पथ पर आ जाता है।

३—इसमें साथल और शिर संकुचित होजाते हैं, और टेढ़ा होकर चूतड़ो के वल योनि पथ पर आता है।

४—पेट, पसली, पीठ इनमें से किसी के एक के बल योनि पथ को रोक देना चौथी गति है।

५—इसमें शिर पसवाड़े में झुककर एक साथ ही निकल आता है।

६—इसमें शिर सकुचित होकर दोनो हाथ निकलते हैं।

७—इसमें मध्य शरीरको झुकाकर हाथ, पांव या शिर से योनि पथ पर आता है।

८—इसमें एक साथल योनि पर और एक गुदा की तरफ हो जाती है।

विकृति वस्ति

वस्ति की विकृतिसे गर्भ अटक जाता है, और मूढ गर्भ की जैसी यातनायें भोगनी पड़ती है, कई तरह की वस्तियां होतीहैं जिनमें गर्भ अटक जाता है। वस्ति के ठीक होने पर भी उसमें अर्बुद वगैरह के होने से गभ निर्गमन में रुकावट होती है। किसी की वस्ति सकुचित होती है, जिससे प्रसव में वाधा होती है। किसी की अधिक चौड़ी होती है। अतः गर्भ छूटने की शंका रहती है। इसी तरह शैशव वस्ति, पौरुष वस्ति, आदिकई तरह की वस्तियां होती हैं।

कुछ के नाम भी हम यहां दिये देते हैं।

(१) सकुचित वस्ति।

(२) विस्तृति वस्ति।

(३) शैशव वस्ति।

(४) पौरुष वस्ति।

(५) रिकेट ग्रस्त वस्ति।

(६) OsteC-malakea वस्ति।

(७) स्वार्टेर वस्ति।

प्रसूता रोग

Delivere disease

स्त्री केजीवन मे उसकी सबसे गम्भीर अवस्था है, प्रसूतावस्था। साधारण जनता के विश्वास के अनुसार, यह वह अवस्था है, जिसके बाद स्त्री का दूसरा जन्म होताहै, और हमारी शहरी स्त्रियो की दशा देखते हुये है भी यह ठीक है, वहुत कम ऐसी स्त्रियां होती हैं, जो प्रसव के समय और उसके वाद स्वस्थ और प्रसन्न रहतीहैं, वर्ना अधिकांश या तो सौरिगृह में ही रोगिणी वन जाती हैं, या बाद मे वहुतो की तो जीवन लीला भी वहां खतम हो जाती है।

प्रसूता स्त्रियों के रोगों का वर्णन हम करेंगे, किन्तु उसके पहिले हमें अपने समाज की रूढ़ियो

पर रोने की इच्छा होती है। प्रसव का समय है, बहुत सावधानी और सफाई का। उस समय हर एक बात में सफाई और सावधानी की नितान्त आवश्यकता है, किन्तु ऐसा होना नहीं है। सौरिगृह एक ऐसी जगह तैयार किया जाना है, जहा न हवा का ही प्रवेश होता है, न सूर्य की किरणों का. हवा और प्रकाश का इतना बायकाट दुनियां में शायद ही कहीं होता हो।

बीसवी सदी के सत्याग्रही भारतीय उतनी तत्परता ब्रिटिश गवर्नमेंट के बायकाटमें नही दिखलाते, जितनी हवा और प्रकाश के बायकाट में स्त्रियां दिखलाती हैं. वे पढ़ी स्त्रियों का विश्वास है. कि हवा और प्रकाश के साथ २ भूत प्रेत भी आ जाते हैं, और फिर प्रसूता का जीवन खतरे में पड़ जाता है। उसके जीवन की रक्षा के लिये, जीवन के खास आधार वायु का बहिष्कार करना कितनी बुद्धिमानी का काम है? प्रकाश से हमारे जीवन में प्रकाश होता है, यह बात भी उनकी समझ से कोसो दूर है। हवा और प्रकाश के बहिष्कार का परिणाम भोगना पडता है प्रसूता को, जो या तो सौरिगृह में ही जीवनलीला का सवरण कर देतीहै या उससे रोगिणी होकर निकलती है। प्रसूता के साथ २ नवजात बधू को भी इसका भयकर परिणाम भोगना पड़ता है।

ऐसा होता है कि हवा के घुसने के डर से, अभिभावकाए सौरिगृहके छोटे सेछोटे झरोखे को कपड़ेसे ठूस २ कर बन्द कर देती है यह तो बात आगे की है. पहिले तो सौरिगृह के चुनाव की बात ही बहुत भयकर है घर का सबसे गन्दा कमरा जहा न कभी सफाई होती है, न जहा कभी हवा और प्रकाश जा पाते हैं, सौरिगृह के लिये चुना जाता है।

जहां जिसके घर के आस पास जानवर बधते हैं, और जहां गोबर सड़ा करता है, बहुमत से सौरिगृह का निर्माण वही होता है, मच्छरो और दूषित कीटाणुओंको लथ पथ तथा कूड़ेकी गन्दगी एक हट्टे कट्टे जवान के स्वास्थ्य को ही खतरे में डाल देतीहै, फिर गर्भिणीकी वहां क्या दशा होती है, यह समझना सहज ही है।

इतने से भी जब सतोष नहीं होता तो, बस कमरे को पर्दों से सजा दिया जाता है, और हवा का आगमन एकदम बन्द कर दिया जाता है, गर्मी के दिनो में वैसे ही इतने गन्दे स्थान में नहीं रहा जाता, फिर पर्दा तानने पर होने वाली दशा का अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। फिर रात भर आगी सुलगाना, जिससे भूत प्रेत आवें तो वहीं जलकर राख हो जाय, प्रसूता तक न पहुँच सके। यह सच है और एकदम सच है कि हमारे सौरिगृहो का निर्माण इसी तरह होता है।

इसमें बेवकूफी स्त्रियो की नही पुरुषो की है, वे पढ़ी लिखी नहीहोतीं, एकदम निरक्षर भट्टाचार्य होती हैं, इसके परिणाम कोवे नही समझ सकती वे जैसा देखती हैं, वैसा ही करतीहैं, उनको पढ़ाना लिखाना हम बुरा समझते हैं, और उनको शिक्षता बनाना अपनी नाक काटने के समान समझते हैं।

दुःख और अफसोस तो यह है कि, इन बुराइयो को जानते हुये भी हम पुरुष उन्हे हटाना नहीं चाहते, अधिक नही तो हम उन्हे साधारण शिक्षा हर हालत में दे सकते हैं चाहे वह किताबी नहीं हो, स्त्रियो का दिमाग बहुत सीधा और सारग्राही होता है, हमारी इन बातो के समझने में उन्हेंकोई दिक्कत नही हो सकती।

इससे उनका भी भला हो सकता है, और हमारा भी। हमें आये दिन डाक्टरो और वैद्योकी खिदमतमें न जाना पड़ेगा, और उन्हे रोगिणी नही बनना पड़ेगा, हमारी सतान भी इससे सबल और स्वस्थ होगी इससे सबका हितही हित होगा। अस्तु

शुद्ध वायु के न मिलने से प्रसूता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, और नवजात शिशु का, भीतरही भीतर अशुद्ध हवा दोनो का अनिष्ट करती है। अलावा इसके हमारे यहां दाइयो की भी समस्या बड़ी विचित्र और खतरनाक है, दाइयां वे पढ़ी अशिक्षिता, और छोटी जाति की स्त्रियां होती हैं।

वे प्रसवकर्म को न अच्छी तरह करा सकती हैं, और न वे उसके दायित्व को ही समझ सकती हैं, उनका यह खानदानी पेशा होता है, जिसमे उन्हें कुछ सीखने की भी दरकार नहीं होती।

दाइयो की सावधानी के कारण भी बहुत सी स्त्रियां अकाल काल कवलिता हो जाती हैं।

बड़े घरो की, यानी बड़ी जातियो की स्त्रिया दाई का काम करने में अपना अपमान समझती हैं, और समझती हैं कि हमारी इज्जत हतक होती है। दाई का काम करने वाली स्त्रियो की संख्या होती भी बहुत कम है, और यह कहना व्यर्थ है कि, वह संख्या एकदम निरक्षर होती है।

बहुत सी जगह चमारियां दाई हैं और बहुत सी जगह भंगिनें, कहीं२ मुसलमानी दाइयां भी हैं जो भी हो दाई की असावधानता, और अज्ञानता के कारण प्रसूता और उसके बच्चे दोनो को ही हानि होती है। वे बहुत ही लापरवाही से योनिमें हाथ डाल देती हैं, और यह भी सच है कि उनके बड़े २ नाखून (नख) होतेहैं, नखो का जहर गर्भाशय को बेहोश बना देता है, और नखो के कारण कोमल झिल्लियां फट भी जाती हैं।

साथ ही बहुतसी दाइया अन्धी और बहरी भी होती हैं वे बहुत ही निर्दयता के साथ योनि में हाथ डाल कर बच्चे को खींच लेती हैं गर्भिणी चिल्लाती हैं मगर उन्हे इसकी कुछ परवाह नही उनका काम तो किसी तरह बच्चे को निकाल देना है फिर चाहे वह जिन्दा हो मरा, स्त्री की जान निकले या न निकले इन बुराइयों को देखते हुये हम चू नहीं करते।

बच्चा पैदा होने के बाद में नाल काटनादाइयां बहुत ही साधारण काम समझती हैं, और जल्दी में काट देती है जिससे प्रसूता और नवजात शिशु दोनो को दिक्कते उठानी पड़ती है सौरिगृह और दाइयों के विषय में हमें सतर्कता से काम लेना चाहिये दाइयो का काम पढ़ी लिखी वे ही स्त्रियां करे जो धात्री विद्या से परिचित है। खैर

हमें दाइयो और सौरिगृहो की आलोचनानहीं करनी है इसलिये विशेष लिखना अप्रासङ्गिक और अनुचित होगा यहां केवल इतना ही बतला देना आवश्यकहै कि सौरिगृह कीअसावधानी के कारण और दाइयों की मूर्खता के कारण प्रसूता स्त्रियो को रोगो का शिकार बनना पड़ता है शुद्ध हवा के न मिलने से वे अस्वस्थ हो जाती है दाई के अनिमियत प्रसवकार्य कराने से वे रोगिणी हो जाती हैं।

सूतिका रोग

आयुर्वेद में सूतिका रोगों का अलग २ बर्णन नही किया गया है। सूत्र रूप में होने वाले रोगो का निदर्शन करा दिया गयाहै स्वभाव से ही प्रसव होने के बाद प्रसूता कमजोर हो जाती है अगर गर्भावस्था में निरोग रही है तो उसे ज्यादा दिक्कतों का सामना नही करना पड़ता वर्ना जो स्त्री गर्भावस्था में भी रोगिणी रही है प्रसूतावस्था में उसे विशेष दिक्कते उठानी पड़ती हैं रोगो के कारण उसका शरीर पहिले ही अस्तव्यस्त रहता है फिर जरासी असावधानी से प्रसूता बनने पर वह मौत की शिकार हो जाती है।

प्रसूतावस्थामें ठीक उपचार न होने हवा और प्रकाश न आने, दाइयो की असावधानी होने अनाप शनाप खा लेने से वह अस्वस्थ हो जाती हैं। उस समय उन्हे खांसी हो जाती है। ज्वर हो

जाता है इसी तरह और भी बीमारियां हो जाती हैं। सबका अलग २ बर्णन करने की ऐसी खास् आवश्यकता भी नही है जब कि सब रोगो का बर्णन कर दिया गया है। फिर भी आधुनिक मत से प्रसूताओ के रोगो का उल्लेख किया जायगाजो रोग हो उसका इतिहास उसी के प्रकरण में देख लेना चाहिये।

हां तो जब स्वभाव से ही प्रसूता के बल और मांस में कमी रहती है तो कुछ भी अव्यवस्था होने पर वायु विगड जाता है। और रक्तसचालन को रोक देता है और न दस्त ही साफ आने देताहै और न पेशाब, जिससे मल मूत्र के भीतर रुकने से कोठे में खराबी हो जाती है रक्त सचालन न होने से शिराओ का मुह बन्द होकर गर्भाशय के भीतर वायु भर जाता है फिर कई उपद्रव होते है।

सूतिका रोग के लक्षण

अङ्गो में पीडा ज्वर खासी प्यास भारीपन होना सूजन शूल चलना और दस्त लगना ये लक्षण होते हैं।

यह आवश्यक बात नही है कि सब एक साथ ही हो और जरूर हो थोड़े भी हो सकते हैं और अधिक भी, हां कठिन अवस्था में प्रायः सभी लक्षण हो जाते है।

नफास के खून का बन्द होना

बच्चा पैदा होने के बाद जो खून निकलता है। उसे नफास कहते है, प्रसव के समय कुछ खराबी होने से यह बन्द हो जाता है। अन्दर ही रुक जाता है। हिकमत के अनुसार रज बन्द होने से जो खराबिया होती है, वही इसके बन्द होने से होती हैं, उन खराबियो का हाल रजोरोध के प्रकरण में देखना चाहिये।

श्वेतपद

Phlegmasia alba dolens

इसके मानो हैं पैरो की सफेदी, जब खून में प्रसूता विष घुस जाता है या लोथड़ा अटक जाता है या खून जम जाता है तो यह रोग होता है। गर्भाशय में अर्बुद होने और क्षय के कारण भी यह रोग हो जाता है। चमड़ी में इतना तनाव हो जाता है, कि अंगुली से दबाने में थोड़ा सा भी गढ़ा नही होता। इस रोग में भयानक पीड़ा होती है, जो कभी पिण्डली से लेकर पेड़ू तक और कभी चूतड़ो से शुरू होकर जांघो और पिंडलियो तक फैल जाती है। एक दिन बाद पीडा कुछ कम होने लगतीहै। वेचैनी, अनिद्रा और घबराहट ये चिह्न भी इसमें होते हैं।

रोग के वढ़ने पर नाड़ी निर्बल तेज और अनियमित हो जाती है। जीभ मैली, सफेद और चिकनी हो जाती है, प्यास अधिक लगती है। भूख कम लगती है और केब्ज भी रहती है। टेम्परेचर १०२ तक पहुॅच जाता है।

सूजन अक्सर जाघो से शुरू होकर नीचे आती है, कभी सारा पैर सूज जाता है और कभी जाघ ही। नीचे से भी कभी ऊपर आ जाती है। जांघ की नाडिय मे खून जम जाने से काली नाड़ियां फूल जाती है और उनके आसपास की जगह लाल हो जाती है। छूने या दबाने से दर्द भी होता है। एक दो सप्ताह में लक्षण कम होने लगने है कभी २ सूजन के चले जाने में महीनो भी लग जाते हैं, कभी २ रोग के अच्छे होते ही चलने फिरने पर भी रोग लौट आता है और शरीर के जोड़ो, झिल्लियो और गिल्टियो मे पीब भी पड़ जाती है।

खून जमना और लोथड़े का अटकना

काले रक्त की नाडियो में खून जम जाता है, और उसमें लोथड़े अटक जाते हैं, यही यह रोगहै यह रोग प्रसव के २-३ दिन वाद, गर्भाशय, पेड़ू या जांघो की नाड़ियो में पैदा होता है।

रक्तस्राव के कारण खून के अधिक निकल जाने पर नाड़ियों का रक्त का प्रवाह बहुत मन्दहो जाता है, जिससे खून जमकर उसके लोथड़े नाडियो में अटक जाते है।

प्रसूता विष छूतदार विष आदि से भी ऐसा हो जाता है। कभी २ प्रसूता के स्वास्थ्य के अच्छे होने पर भी बुखार होकर यह रोग हो जाता है। कभी २ लाल खून भी जो शुद्ध होता है, प्रसूता विष का शिकार हो जाता है। जिससे शुद्ध खून को बहाने वाली लाल रंग की नाडियो में भी खून जम जाता है और लोथड़े पड जाते हैं। ऐसीदशा में फौरन शोथ होता है और प्रसूता मर जाती है।

जब अधिक रक्तस्राव के कारण यह रोग होता है तो प्रसूता मुह फाड़ के हांफने लगती है, मुहपर फीकापन आ जाता है। हृदय जल्दी २ धड़कने लगता है, घबड़ाहट होती है और कभी २ वेहोशी भी हो जाती है।

नाड़ी निर्वल और अनियमित चलती है, श्वास, प्रश्वास की क्रिया बढ़ जातीहै। जिसजगह लोथड़े अटकते हैं, उसके आगे खून नहीं जा पाता और उसके ऊपर नाडी तड़फती हुई दिखाई पड़ती है जिस जगह खून जमता है, वह ठडी और शून्य हो जाती है। कभी २ वहा सूजन भी आ जाती है। यह रोग इतना घातकहै कि इसमें दवा करने का अवसर ही नही मिलता, तत्काल मौत हो जाती है।

प्रसूतोन्माद

इसे प्रसूता स्त्रियों का पैतृक उन्माद भी कहते हैं। खून के बहने और बारम्बार प्रसव होने आदि से जब प्रसूता अधिक निर्वल हो जाती है तो यह रोग होता है। प्रसव की कठिनाइयो और गर्भावस्थामें बच्चे को दूध पिलाने आदि से शरीरमेखून कमी होकर कमजोरी आ जातीहै। अलावा इसके अधिक अवस्थामे गर्भाधान होने, भय,शोक आदि मानसिक व्याधियोके कारण भी यह रोग होजाता है, इस रोग में २ तरह की अवस्थाये होती हैं।

पहिली अवस्था

अधिक निद्रा, अधिक अधीरता,और भयानक स्वप्नो से इसका आरम्भ होता है, नींद उचटने पर मन में अनेक प्रकार के विचार पैदा होते। अपने कुटुम्बियो से द्वेष रखना, उन पर आक्रमण भी कर बैठना, सबको दुश्मन समझना, किसी पर विश्वास नही करना आदि चिह्न इसमें होते हैं। और कभी२ अपने बच्चे को मार भी डालती है।

अनाप शनाप बकवाद, कभी हंसना, कभी चिल्लाना, केशो और कपडो को नोचना, खाना छोड देना, और कभी आत्महत्या के लिये तैयार भी हो जाना आदि चिह्न भी देखे जाते है। ऐसी हालत मे स्तनो में दूध आना रुक जाता है, पेशाव में सफेदी आ जातीहे, मल कम निकलता है, कमजोरी आ जाती है।

दूसरी अवस्था

यह धीरे २ शुरू होती है। प्रसूता स्त्री विना मतलब ही शोक, चिन्ता करने लगती है, डरने लगतीहै मन मे कई तरह के विचार उठते हैं,और सन्देह करने की लत सी पड जाती है। कभी धार्मिक विचारो मे मग्न रहती है, तो कभी उसे भूत-प्रेत दिखाई पडते हैं।

कभी मूर्ति की तरह अचल बन बैठ जाती है, कभी आकाश को देखती है।

इस दशा में उछलना कूदना नहीं होता, अलबत्ता आत्महत्या करने की इच्छा हरदम रहती है, और मौकापाकर वह कर भी लेती है, बादमें हृदय शून्य सा हो जाता है, सरदर्द, वेचैनी, अनिद्रा, कब्ज आदि चिह्न दिखलाई पड़ने लगते है।

प्रसूतज्वर

यह सक्रामक और भयानक ज्वर है। यह एक दूसरे से लगने वाला छूतदार रोग है। इस रोग का कारण है छूतदार विष, जिसमें छोटे२ कीटाणु होते हैं, और बिन्दुओं की भांति होते हैं। ये बहुत जल्द शरीर में व्याप्त होते हैं, और अपना प्रभाव दिखलाते हैं।

डाक्टर, वैद्यो, दाइयो आदि के द्वारा यह रोग एक दूसरे के पास जा पहुँचता है। इस रोग का जहर गभाशय, भीतरी भग आदि से होकर खूनमें घुसता है और फिर अपना रग दिखलाता है। रोग के कीटाणु तीन तरह शरीर की हानि पहुँचाते हैं।

त्रिपथ

१—अपने पालन के लिये रोगी के शरीर में एक तरह का विष पैदा करते हैं।

२—नीरोग शरीर का पोपण करने वाली शक्तियों को नष्ट कर देते हैं।

३—नाड़ियो के किसी एक ही भाग में इकट्ठे होकर उनमें खून और गिल्टिओ का बहना रोक देते है।

चेचक, खसरा आदि रोग की छूत से भी यह रोग हो जाता है, ऐसा भी बहुतो का विश्वास है। इस रोग के पैदा होने के २ तरीके हैं।

२ तरीके

१—रोग का विष प्रसूता के शरीर में ही पैदा होता है।

२—प्रसूता की देह मे इसका विप बाहर से आता है।

प्रसूता के शरीर में विषपैदा होने के पाच कारण हैं।

अब प्रत्येक पर थोड़ा बिचार कर लेना आवश्यक है।

४६

विष पैदा होने के ५ कारण

१—प्रसव के पीछे गर्भाशय का छोटा होना,

२—प्रसव में किसी तरह की रुकावट का होना।

३—खेड़ी या झिल्ली के किसी टुकड़े, या खून के थक्को का गर्भाशय में रहकर सड़ जाना और प्रसव के बाद निकलने वाले जल का अन्य पदार्थों में परिवर्तित होना, या सड़ना।

४—सर्दी बायु, आदि का लगना, या अधिक मिहनत करना।

५—शोक, चिंता अथवा किसी अन्य प्रकार से हृदय पर आघात पहुँचना।

इन पांच कारणो से प्रसूता के शरीर में विष पैदा होता है। बाहर से आने वाले विष के विषय में आगे चलकर लिखा जायगा।

(१) गर्भाशय का छोटा होना

गर्भाशय से जब बालक निकल जाता है तो, गर्भाशय स्वभावतः बड़े जोर से सिकुड़ताहै, इससे यह लाभ होता है कि उसकी खुली हुई नाड़ियोका मुह बन्द हो जाता है, जिससे झिल्ली लाल,रक्त के टुकड़े, खेडी वा उसका कोई अश जो गर्भाशय में रह जाता है, वह सब बाहर निकल जाता है, प्रसव के बाद गर्भाशय अपना यह कार्य निरन्तर करता है और चार पाच दिन मे वह अपना स्वाभाविक दशा पर आ जाता है।

जिस समय यह सकोच होता है, उस समय रक्त के बहुत से बुरे पदार्थ खून में घुस जाते हैं। अगर शरीर की वह शक्ति, जो शरीर में घुसे हुये हर प्रकार के दूपित पदार्थो को नष्ट करती हैं, अपने कार्य से असमर्थ हो जाती है तो, दूपित, विषैले और हानिकारक पदार्थ खून में मिल कर विष का प्रभाव प्रगट करते है. और प्रसूत ज्वर हो जाता है।

(२) प्रसव में किसी प्रकार की रुकावट का होना यह भी कीटाणुओ के लिये रोग पैदा करने का अच्छा अवसर है। कठिन प्रसवमें वालक के सिर से रगड़ खाकर जननेन्द्रियो में कई जगह घाव हो जाते है। इन स्थानो से कीटाणु सहज ही खून में घुस जाते हैं। कुचले हुये स्थानो के खूनमें वीमारी के कीटाणुओ को मार भगानेकी शक्ति नही रहती बस फिर से कीटाणु खून में घुस कर रक्त वीज की तरह दिन दूने और रात चौगुने बढ़ते है।

झिल्ली आदि का गर्भाशय में सड़ना

प्रसूत ज्वर के विष को पैदा करने वाला यह सर्व प्रधान कारण है। दाइयो की असावधानी से झिल्ली का कोई टुकड़ा भीतर रह जाता है, अथवा खून का थक्का भीतर रहकर सड़ने लगता है, या जल परिवर्तित हो जाता है तो, बड़ी विकट दशा हो जाती है, अगर भग द्वारानिकलने वाला प्रसव जल वदबू मारने लगे तो, समझ लेना चाहिये कि कोई चीज भीतर रहकर सड गई है। सड जाने पर कीडे पैदा होकर ज्वर पैदा करत हैं।

(४) ठण्डी वायु के लगने, प्रसव के बाद मिहनत करने आदि से प्रसूना के शरीर पर बुरा असर होता है, कमजोरी के कारण जो प्रसूताओ को होतीहै, उससेभी रोगका शिकार होनापड़ताहै।

(५) चिन्ता, भय आदि मानसिक विकारो के कारण शारीरिक क्रियाओ का कार्य ठीक नही हो पाता, जिससे प्रसूत ज्वर हो जाता है।

अब उन कारणो का उल्लेख करना भी आवश्यकहै, जिनसे प्रसूत ज्वर का वाहरी जहर प्रसूता के पास पहुँचता है। ऐसे ४ कारण हैं।

वाहरी विष आने के ४ कारण

(१) छूतवाले ज्वरो से छूत लगती है।

(२) प्रसूत ज्वर की रोगिणी से ही दूसरी प्रसूता को छूत लग जाती है।

(३) कई तरह के दूसरे छूतदार रोगों से छूत लग जाती है।

(४) स्वास्थ्य रक्षा के नियमो का उल्लङ्घन करना।

अब प्रत्येक पर खुलासा प्रकाश डाल देना आवश्यक है।

(१) छूत वाले ज्वरो से छूत लगती है

लाल वुखार Scarlet fever चेचक, सान्निपातिक ज्वर Typhoid fever आदि रोगो का छूत अगर प्रसूता के पास पहुँच जाती तो उसे प्रसूत ज्वर हो जाता है।

(२) प्रसूत ज्वर की रोगिणी से छूत लगती है

एक स्त्री को अगर प्रसूत ज्वर है तो, उसकी छूत दूसरी स्त्री तक पहुँच जाती है। दाइयो के हाथ और डाक्टरो के शस्त्र जो ठीक साफ नही किये जाते, तो कीटाणुओ को उस जगह पहुँचा देते हैं एक स्त्री से दूसरी प्रसूता को लगने वाली छूत वड़ी भयानक होती है, और इसका असर भी बहुत जल्द होता है।

(३) छूतदार दूसरे रोगो से छूत लगती है

घाव या मोजाक की पीव लगने, और सव तरह की सड़नो से यह रोग होजाता है। छूतवाले रोगियो के शव मे भी कुछ देर छूत रहती है। अगर ऐसी लाश को चीरने के वाद डाक्टर किसी प्रसूता को देखने जावे तो, उसे छूत लग जाती है

(४) सूतिका ग्रह के चारो तरफ वदबू होना

उसमें हवा का न आना, स्त्रियो की भीड के कारण वायु का दूषित होना, सौरिग्रह में धुआं रखना, चिमनी चासना, आसपास गन्दे तालाबो का होना, पाखाना होना आदि कारणो से यह रोग पैदा हो जाता है

हमारे यहां सवसे अधिक इसी कारण से प्रसूताओ की ज्वर होता है। सौरिग्रह मे हवा और

प्रकाश का आगमन नहीं होने से, वहां दूषित कीटाणु पैदा हो जाते हैं।

प्रसूत ज्वर के लक्षण

प्रसव के वाद पांच दिनो के भीतर यह ज्वर हो जाता है। दूसरी रोगिणी प्रसूता की छूत लगने से तीसरे दिन ज्वर हो जाता है। कभी सात दिन के वाद भी यह ज्वर हो जाता है।

ज्वर एकाएक शुरू होता है, और शारीरिक ताप १०२ डिगरी और कभी इससे भी अधिक हो जाता है। ज्वर के साथ जाडा भी लगता है, कभी पहिले और कभी पीछे, भयानक दशाओ में टेम्परेचर १०६ डिगरी तक पहुँच जाता है।

नाडी- की गति ज्वर की गर्मी के अनुसार वदलती है, ज्यो ज्यो ज्वर वढ़ता है त्यो २ नाड़ी की गति वढ़ती है। साधारण दशा में प्रति मिनट १२० बार और कठिन दशा में १४० बार नाड़ी चलती हैं, मरणासन्न दशा में १५०—१६० तक पहुँच जाती है।

गर्भाशय में पीड़ा-गर्भाशय के दवाने से दर्द होना है, और उसके सिकुडने और घटने में भी अन्तर पड़जाता है, यह इसका खास चिह्न है।

तिल्ली वढ़ना-इस ज्वर में तिल्ली वढ़ जाती है छूने और दवाने से उसमें पीडा भी होती है।

जीभ—शुरू में कुछ तरऔर साफ होती है वाद में उस पर मैल जम जाता है, और भी वाद में वह भूरी हो जाती है।

स्वेद—ज्वर के उतार चढ़ावहोने पर पसीना वहुत निकलता है।

कै औरदस्त—कठिन दशा में झिल्ली की सूजन के कारण कै भी होने लगती है। दो दिन वाद ही दस्त आने लगते हैं, और उनमें वदवू भी आती है।

फुंसियां—पसीना की अधिकता के कारण अन्हौरी के जैसे दाने निकल आते हैं।

कठिन अवस्था मे—प्रसव के वाद रुधिर मिश्रित जल कम निकलना है, या वन्द हो जाता है, और इसमें दुर्गन्ध भी आने लगती है, प्रसव के पहिले ही अगर ज्वर आया है तो खून पहिले ही से वन्द हो जाता है स्तनो में दूध की भी यही हालत होती है, अगर प्रसव होते ही ज्वर होजाता है तो, दूध पैदा ही नही होता। रोगी की दशा के अनुसार दूध की पैदायश में भी कमीवेशी रहती है।

इसमें रोगिणी वकती, झकती नही है, कभी २ रात में प्रलाप करने लगती है, किंतु वोलने पर वह वन्द हो जाता है।

प्रसूत ज्वर के साथ २ ही और भी कई रोग पैदा होते हैं, इसलिये उन्हे 'सयुक्त रोग' कहते हैं ऐसे कई रोग हैं अव उनका वर्णन भी यहां कर दिया जाता है।

संयुक्त रोग

जनरल प्रोटोनाइटिस

प्रसूत ज्वर में, पेट के नीचे अस्तर लगाने वाली झिल्ली में जो साधारण सूजन होती है, उसे 'जनरल प्रोटोनाइटिस' कहते हैं। इसमें पहिले जाड़ा देके वुखार चढ़ता है, और वाद में शीघ्र ही पेट की पीड़ा पैदा होती है। पीड़ा का प्रधान स्थान है गर्भाशय वही से पीड़ा उठकर सारे पेट में फैलती है जिससे प्रसूता स्त्री दोनो घुटने उठाये चित्त पड़ी रहती है। पेट की वड़ी तथा कमी करने वाली नाडियो का काम रुक जाने, और आंतों में हवा भरने से पेट फूल जाता है। नाड़ियां उभर भी आती हैं, अन्तिम दशा में पेट अधिक फूल जाता है।

के बहुत होती है, नाडी की गति मन्द और सूक्ष्म होकर बाद में वह एक दम निर्बल हो जाती है। पहिले साधारण दशा में कब्ज रहती है, लेकिन बाद में कठिन दशा में पतले और बदबूदार दस्त आने लगते है। सांस में भी दुर्गन्ध आने लगती है, और चमडी पीली या भूरी हो जाती है, पीड़ा हमेशा नहीं बनी रहती, कभी २ होती है

किंतु जब सूजन में पीब पड़ जाती है तो पीड़ा बन्द हो जाती है, पेट को दबाने से भी कुछ दर्द नही होता, किंतु दस्त बन्द होकर पेट जरूर फूल जाता है, बाकी चिह्न प्रसूतज्वर के होते हैं भयानक दशा में मौत के पास आने पर हाथ पांव टेढ़े पड़जाते हैं, सन्निपात के चिन्ह दिखलाई देने लगते हैं। नाडी का पता नही चलता और बेहोशी आकर प्रसूता मर जाती है।

सेप्टिसीमिया

इसमें और प्रसूत ज्वर में कोई विशेष अन्तर नहीं है कारण भी एक ही है। इसका बिष बहुत प्रबल होता है, और यह 'प्रोटोनाइटिस' के पहिले ही रोगिणी को मार डालता है। गर्भाशय में बड़ी जोर की पीडा होती है, और उसके मुह तथा योनि की नली पर घाव हो जाते हैं। इसमें पहिले जाड़ा चढ़ता है, फिर बुखार होकर गर्मी बढ़ने लगती है, और पेट फूल जाता है।

अक्सर दस्त भी लग जाते हैं, और सन्निपात के चिन्ह भी होते है। बढी हुई तिल्ली को अगर दबाया जाय तो उसमें पीडा होती है। इसमे ३-४ दिन में प्रसूता परमधाम को पधार जाती है।

असल में इसकी पहिचान करने में ही गलती हो जाती है, इसका निदान होने के पहिले ही स्त्री मर जाती है। शुरू में साधारण रोग समझकर उपेक्षा करने का फल आखिर मौत है।

वारक्यूलर सेप्टिसीमियां

सड़े और रुके हुये खून के लोथड़े का बिष सारे खून में फैल जाता है। अक्सर २-३ दिन बाद ही यह रोग हो जाता है, कभी २ अधिक दिन बीतने पर भी हो जाता है। शुरू में जाड़ा देकर बुखार चढ़ता है, और वह चढ़ता उतरता रहता है, नाड़ी की गति और ज्वर की गर्मी बढ़ जाती है। बुखार उतरने पर पसीना भी खूब निकलता है, और गर्भाशय के भीतर सूजन हो जाती है, ज्वर की तेजी में शीत लगता है। यह रोग कभी २ पाइमियां नामक रोग मे परिणित हो जाता है।

पाइमियां

ज्वर जब अधिक दिनो तक रहता है, तो छूत का जहर रक्त सञ्चार के साथ भ्रमण कर अपने आरम्भिक स्थान के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागो में भी सूजन पैदा कर देता है। यह सूजन बाजुओ की झिल्ली, जोडों की झिल्ली, फेफड़े और दूसरे भीतरी विभागो की झिल्लियो में अधिक पैदा होती है हृदयावरक झिल्ली में भी सूजन होजातीहै कभी२ भीतरी विभागो में पीब भी पड़ जाती है।

सेप्टिक इन्टाक्सिकेशन

यह भी बुखार ही है, किन्तु इसमें कीटाणु नहीं होते, गर्भपात के उपरान्त जब खेड़ी गर्भाशय में रहकर सड़ने लगती है तो, यह बुखार पैदा होता है, फिर उस सड़े हुये अंश के दूर होते ही ज्वर भी दूर हो जाताहै। ज्वर के साथ२ सर और पेट में पीड़ा, वमन और कभी २ प्रलाप होता है, जाड़ा देकर ज्वर १०२ से १०४ डिगरी तक और कभी इससे भी अधिक हो जाता है, नाड़ी प्रति मिनट १६० बार तक चलने लगती है। कभी कभी इसमें 'सेप्टीसीमियां' के चिह्न भी दिखाई दे जाते है।

छूतवाले ज्वर

Epedemic fever

छूतवाले और रोगो का वर्णन पहिले ज्वर के प्रकरण में किया जाचुका है। यहां केवल 'इरिसिपेलिस' का वर्णन कर दिया जाता है, इसकी छूत से भी प्रसूत ज्वर हो जाता है अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे अधिक होता है। प्रसव के वाद यह तीसरे चौथे दिन प्रगट होताहै, यह रोग जब भीतरी अगो के प्राचीरो मे आरम्भ होता है तो, इसके साथ पेडू के भीतर का झिल्ली भी रोग ग्रस्त हो जाती है, ऐसी दशा में 'प्रोटोनाइटिस' के चिह्न भी भयानक होते है, इस प्रसूत ज्वर में चेचक. खसरा, लालबुखार, अदि भयङ्कर छूत वाले ज्वर भी पैदा हो जाते हैं।

पेल्विक सेल्यूलाइटिस

Falvic cellulitis

इसके मानी हैं पेडू और उसकी झिल्ली की सूजन। इसके और पेल्विक प्रोटोनाइटिस के लक्षण और कारण मिलते जुलते ही हैं, प्रसूता के सिवा दूसरी स्त्रियो को भी यह रोग हो जाता है।

पेल्विक प्रोटोनाइटिस

यह प्रसव में भी होता है। किन्तु इसकी अपेक्षा अन्य समयो में अधिक होता है। दोनों रोग प्रायः एक साथ ही प्रसूता को पीडित करते हैं। प्रसवके बाद७ दिन पीछे इसकी छूत नाड़ियो में घुसकर उभार पैदा कर देती है, गर्भाशय में पत्थर के आकार का एक शोथ होजाता है, जो गर्भाशय को एक तरफ ढकेल के उसे काम करने के आयोग्य वना देताहै, इस रोग वाली स्त्रियो का गर्भाशय या तो काम करने में एक दम असमर्थ हो जाता है, या बहुत कम काम करता है। यह शोथ, ऊपर की ओर जांघ और पेडू की नाडी से कई इञ्च ऊपर तक फैल जाता है, कभी २ बढ़कर दिखाई भी पड़ता है और पेट पर हाथ रखने से इसका पता लग जाता है।

शुरू में जाड़ा और बुखार दोनो साथ आते हैं और टेम्परेचर १०२ से १०४ तक पहुँच जाता है। झिल्ली मे शोथ होने से, पेडू में किसी एक ओर दर्द होता है, वाद में दर्द नही होता, केवल छूनेसे होजाता है, अधिक शोथ होने पर उबकाई और कै होने लगती है। शोथ जब मूत्राशय और आंतों तक पहुंच जाता है तो, मल मूत्र करने के समय पीडा होती है। जब शोथ गर्भाशय के वडे बन्धनो मे होता है तो, पैर पसारने में दर्द होता है। खून की नाड़ियो पर दबाव पड़ने से कमर और जांघ में पीडा होने लगती है, ज्वर प्रातः काल कुछ कम हो जाता है और उतर भी जाता है और उतार चढ़ाव होने पर पसीना खूब निकलता है। साधारण दशा में ज्वर २-३ दिन मे अच्छा होजाता है, कठिन दशा में ७दिन और इससे अधिक भी ठहर जाता है. शोथ में जव पीव पड़ जाती है तो, वरावर जाड़ा लगता है, और ज्वर बढ़ जाता है। जब शोथ सूख जाता है तो, गर्भाशय अपना काम करने लगता है, ६ से ८ सप्ताह तक शोथ अच्छा होजाता है, कभी अधिक समय भी लग जाता है।

पेल्विक प्रोटोनाइटिस में पेडू का सारा आवरण एकदम कठोर हो जाता है, और उसके केन्द्र में गर्भाशय बलपूर्वक स्थित रहता है। प्रसव के पश्चात् बहने वाला खून और स्तनो का दूध ये कम होजाते हैं, या बन्द हो जाते हैं और खून में बदबू आती है। न्यूमोनियां या हृदयावरक झिल्ली की शोथ भी साथ ही हो तो, खैर नही।

प्रसूतापस्मार

यह मृगी से मिलता जुलता रोग है, इसी से इसे प्रसूतापस्मार कहते हैं। इसके चिह्न सहसा होते हैं। इसमें सरल और कठिन दोनो तरह के

चिह्न होते हैं। मस्तक और नाडियोमें पीडा होती है कभी २ दृष्टि विचार, और बुद्धि में भी अन्तर पड़ जाता है, शुरू में पट्ठो में जोर से आक्षेप होता है, जिससे खिचाव के कारण फीका रूप भयानक हो जाता है, आंखो की पुतलिया ऊपर चढ जाती हैं दात और जीभ बाहर निकल आती है। कभी२ जीभ दातो से दबकर पिस भी जाती है शुरू में मु ह फीका रहता है, बाद में नीलापन लिये हुये काला होजाता है, गले की नाडिया फूल जाती हैं, और धमनियां जोरसे चलने लगती है मु ह बदल सा जाता है, और उसमे झाग आ जाते है, शरीर के पट्ठो में ऐठन सी होती है, पहिले हाथ और भुजाये कठोर हो जाती हैं, जिससे अगुठा मुठ्ठीमें बध जाता है। पीछे हाथ पैर थर्राने लगते हैं और सारी देह में कपकपी और ऐठन होती है।

शुरू में सास रुक जाता है। बाद में अनियमित चलता है। स्त्री साप की तरह फु फकारती है वेहोशी होजाती है, और वेहोशी ही में मलमूत्र निकल जाते हैं। ३-४ मिनट तक ही दौरा होता है, बाद में उसे अपनी वेहोशी आदि का कुछ भी ध्यान नही होता। अगर आक्षेप जोरो से होता है, तो हालत नाजुक हो जाती है।

मस्तिष्क की नाडी पर रक्त का दबाव

गर्भ के कारण गर्भिणी के रक्तमें अनेक परिवर्तन होते हैं, उनमें से एक परिवर्तन है, रक्त का पानी के समान होजाना। अगर साथ ही गुर्दे का रोग होता है, तो रक्त और भी पतला पड़ जाता है। अक्सर ये दोनो रोग साथ ही होते हैं। रक्त बिकार के कारण मस्तिष्क की नाडियो में तनाव होता है, गर्भावस्था में हृदय के कुछ बढ़ जाने से, तनाव और भी जोरो से होता है, नतीजा यह होता है, कि मस्तिष्क की तरफ रक्त का जल वेशी जाता है, और उसकी छोटी २ नाड़ियो में घुसकर उनपर दबाव डालता है, इससे आक्षेप होता है। और आक्षेपसे "गर्भोन्मादियाँ" आक्षेप के कारण वेहोशी भी आजाती है। श्वास लवे २ आने लगते हैं।

दूध का खराब होना

प्रसूतावस्था में जब अनुचित आहार विहार किया जाता है, तो दूध खराब हो जाता है, विगडा हुआ दोष दूध में मिलकर उसे अस्वास्थ्य कर बना देता है, अगर दूध में बादी की खराबी है, तो पानी में डालने से दूध तैरने लगता है, और स्वाद में कसैला हो जाता है, पित्त की खराबी में पानी में डालने से पीली २ धारा हो जाती है, स्वाद खट्टा और चरपरा होजाता है कफ की खराबी में दूध की बूंद पानी में डूब जाती है औ लिबलिबापन आजाता है।

शुद्ध दूध पानी में डालने से, पानी में मिल जाता है, न तार छूटते हैं, न उसका स्वाद ही बिगड़ता है। सफेद और पतला होता है। पीने में सुस्वादु होता है।

स्तन रोग

Disease of the breast

स्तनो में रोग अक्सर बच्चा पैदा होने के बाद ही होते हैं, कभी २ पहिले भी हो जाते हैं। किंतु दूध की कमी, दूध की खराबी, ऐसे रोग तो बाद ही में होते हैं, पहिले वे हो ही कैसे सकते हैं? बच्चा पैदा होने के पहिले सूजन, फोडा जैसे रोग ही हो सकते हैं। अपनी आंखो हमने एक स्त्री को देखा है जिसका स्तन फूल के फुटबाल के बराबर हो गया था। स्तनो का फोडा उस समय औरभी खतरनाक होजाता है, जब बच्चा दूध पीनें वाला होता है, विगड़े हुये दोष के स्तनो में आने से, और स्तनो पर छूत लगने से भी फोड़ा फुन्सी हो जाते हैं, कभी २ बच्चे के काट लेनें पर भी स्तनो में घाव हो जाता है, बहुत सी स्त्रियां दांत निकलने

के बाद मे भी बच्चो को दूध पिलाया करती है, यह उसी का पुरस्कार हैं।

स्तनो का दूध अगर खराब हो जाता है तो, बच्चे का स्वास्थ्य भी खराब होने लगता है।

स्तनो में दूध क्यो खराब होताहै, और खराब दूध कैसा होता है, ये बातें अलग बतलाई गई है, यहां केवल स्तनो के रोगो का ही वर्णन होगा। स्तनो का परिचय देने की आवश्यकता नही, यह विश्वविदित अग है। कवियो की लेखनी भी स्तनों के वर्णनो में टूट गई है, स्तन मडल, और कुच काठिन्यम् का वर्णन करते २ बहुत से कवि परम धाम को पहुँच गये, मगर इसका सौंदर्य अब भी काव्य जगत् की सामिग्री बना हुआ है।

यह भी बतला देना यहां अनावश्यक न होगा कि स्तनो का वेशी वडा होना, और वेशी छोटा होना भी एक तरह की वला ही है, स्तनो का सौंदर्य इसी में है, कि वे न अधिक वड़े हो, न अधिक छोटे। स्तनो की जैसी दुर्दशा विलायती लेडियां करती हैं, उसे देखकर तो खुदा याद आ जाता है। कहते हुये भी शर्म आती है, कि वे अपने प्रेमी का हाथ भी स्तनो तक नही पहुंचने देती, और उनको न वढने देने के लिये वे बराबर कृत्रिम व्यवहार करती रहती है। नये २ तरीकोसे वे, उन्हे कसती है, बाधती है, जिससे स्तन छोटे ही रहते है, बढने नही, फिर भी विलायती लेडियो के स्तन नाभि तक लटकने रहते हैं। कई जाति की स्त्रियां तो कधे पर वैठे हुये बच्चे को स्तनपान कराती है, उनका स्तन इतना लटका हुआ होताहै कि आसानी के साथ कन्धे पर वैठे हुये बच्चे के मुंह तक चला जाता है।

स्तनो का लटकना तो स्त्रियो के लिये बहुत ही बुरा है, इससे उनका सौंदर्य कम हो जाता है। कड़े और उभरे हुये स्तन हमेशा आकर्पक और सुन्दर होते हैं।

हिन्दुस्तान में मारवाड़ की स्त्रियों के स्तन अच्छे होते है। पजाबी स्त्रियो के स्तन तो भरी जवानी में लटक जाते है। यही हाल बगाल में होता है। यू० पी० में भी इस दशा से भिन्न दशा नहीं है। खानपान का असर तो स्तनो पर पडता ही है, एक और कारण है, जिससे स्तन बड़े होकर लटक जाते हैं. पजाबी और बंगाली स्त्रियां चोली नहीं पहनती, उनके स्तनो पर कोई रुकावट नहीं रहती, जिससे वे लटकनेमें देर नहीं करते। पजाब में कुर्त्ता तो पहिन लेती है, बङ्गाल में कुर्त्ता भी नही पहिना जाता। चोली पहिनने से स्तन रुके रहते है, लटकते नही, यही कारण है कि, मारवाड़ की स्त्रियो के स्तन लटके हुये और और अधिक बड़े नहीं होते। छोटी जाति यानी मजदूर पेशा स्त्रियो के स्तन कड़े रहते है, उनकी शारीरिक मिहनत के कारण, हरदम गद्दी तकियो पर लेटी रहने वाली आराम पसन्द स्त्रियो के स्तन बहुत जल्द लटक जाते हैं, इसलिये कि वे कोई शारीरिक श्रम नही करती।

कसरत करने वाली स्त्रियो के स्तन हमेशा कडे रहते हैं, विलासी स्त्रियो के नही। स्तनो के वेशी वडे होने मे उनका अधिक मर्दन भी एक कारण है, स्तनो के सौंदर्य के लिये चोली हमेशा पहिननी चाहिये, साथ में पुरुपो के अधिक मर्दन से भी उनकी रक्षा करनी चाहिये। अधिक दिनो तक बच्चे को दूध पिलाना ठीक नहीं है, शारीरिक व्यायाम तो स्तन सौंदर्य का एक खास अङ्ग है। खैर! उपरोक्त स्त्रियोके उल्लेख के कारण हम अपने पाठक पाठिकाओसे क्षमा प्रार्थना करते हैं, स्तनो के रोगो के बर्णन में इन बातो का उल्लेख आवश्यक जानकर ही हमने ऐसा किया है, स्त्रियो के स्तन क्यो बढ़ते है? इस विषय में हिकमत में लिखा है—

जब मनुष्य युवा होता है तो, उसके स्तनो में गांठ सी पड़ जाती है, सो पुरुषो में तो गर्मी की अधिकता से, जो उनकी प्रकृति के योग्य है, नष्ट होजाती है, और स्त्रियो में रजस्वला के मवाद की अधिकता और गर्मी की निर्बलता से, जो उनका स्वभाव है, प्रति दिन अधिक (गाठ) होती है, यहां तक कि दूध पीने वाले (बच्चो के) अन्नपान का स्रोत बन जाती है और छाती की गर्मी, तथा आत्मा को सन्तुष्ट करने वाली हो जाती है।

स्तनो में दूध की कमी

यह रोग बच्चा पैदा होने के बाद होता है। बहुत स्त्रियो के स्तनो में दूध कम आने लगता है, जिससे बच्चे का पोषण ठीक तौर से नही होता. दूध की कमी के विषय में हिकमत में अच्छा विवेचन हुआ है।

दूध की कमी के तीन कारण

खास कारण ३ हैं, फिर उनके भी और उप-कारण बन जाते हैं।

वे ३ ये है।

(१) शरीर में खून की कमी।

(२) खून की अधिकता।

(३) खून का विगड जाना।

(१) दूध का वास्तविक मवाद खून है उसके कम होने पर दूध का कम होना तो आवश्यक ही है। शरीर में खून कम होने के निम्न कारण है।

(क) निफास में खून का अधिक निकल जाना, यानी बच्चा पैदा होने के बाद अधिक खून निकल जाना।

(ख) भोजन की कमी के कारण रस का कम तैयार होना, और खून में कमी होना।

(ग) ठंडी खुश्क चीजें खाने से खून का कम तैयार होना।

(घ) प्रसूतावस्था में—या पहिले ही किसी रोग के होने, गुस्सा, चिन्ता, भय और विषय से खून का कम तैयार होना।

(ङ) शरीर में दुष्ट प्रकृति के पैदा होने से, खून पैदा होने में बाधा पहुँचती है।

(२) खून की अधिकता

शरीर मे खून के अधिक होने पर-तबियत उसका पाचन नही कर सकती, जिससे दूध पर्याप्त मात्रा में तैयार नही होता है।

(३) खून का बिगड़ जाना

(क) तीनो दोषो में से कोई सा दोष खून में मिलकर उसको खराब कर देता है, जिससे खूनके निकम्मेपन के कारण दूध कम बनता है।

(ख) शरीर में सादा दुष्ट प्रकृति पैदा होकर खून को विगाड देती है।

(ग) गर्भावस्था में गर्मी होने, या पहिले होने से भी खून खराब हुआ करता है।

(घ) कठिन प्रसव में दाइयो के हाथो और डाक्टरो के शस्त्रो की छूत से खून खराब हो जाता है।

ऐसे ही और भी कारण है।

स्तनो में दूध की अधिकता

यह कोई ऐसा उल्लेखनीय रोग तो नही है, किंतु उल्लेख यहा कर ही दिया जाता है। दूध की अधिकता के कारण वही है, जो दूध की कमी के नही है, यानी ठीक उन कारणो से विरुद्ध कारणो से दूध की अधिकता होती है, देह में शुद्ध खून अधिक होने, बच्चे पर अधिक प्रेम होने, क्यो कि बच्चे पर प्रेम होने से ही दूध उतरता है, हृदय के प्रसन्न रहने, खून पैदा करने वाले पदार्थ खाने आदि कारणों से दूध अधिक हो जाता है, जिससे वह अपने आप ही धार के रूप में निकलने लगता है।

स्तनो की सूजन

कभी २ स्तनो में सूजन हो जाया करती है। और कभी २ वह बड़ा कठिन रूप धारण कर लेती है। स्तनो मे दुष्ट प्रकृति के आजाने, दूध के जम जाने, दूध में खराबी पैदा होने और दूध के सूख जाने आदि कारणो से स्तन सूज जाया करते हैं। बच्चे के दूध न पीने पर रुका हुआ दूध सूजन पैदा करता है। दूध अगर ठंडी प्रकृति के कारण ठिठुर जाता है तो खरावी पैदा करताहै स्तनो में घाव होने आदि से भी सूजन हो जाया करती है। यह सूजन चूचुक पर हलकी होती है। अगल वगल में अधिक।

स्तन वेदना *Pain*

वेदना बच्चा होने के पहिले भी हो जाया करती है, विकारी पदार्थ के स्तनो मे आ जाने, सूजन हो जाने, दूध के रुकने, खून के खराब होने ऋतुधर्म मे रुकावट होने, प्रभृति कारणो से, कभी दोनो स्तनो में वेदना होती है कभी एक स्तन में।

स्तनो का फोडा *Abscess*

बिजातीय द्रव्य के स्तनो में इकट्ठे होने, दूध के गाढ़े होकर ठिठुर जाने आदि कारणो से कभी कभी स्तनो में फोड़ा हो जाया करता है, फोडा वड़ा भी हो सकता है और छोटा भी, उस समय स्तन लाल गर्म और कड़ा हो जाता है। वेदना वहुत होने लगती है, कभी फोड़ा जल्द पक जाता है, कभी दूर मे, यह मवाद के ऊपर निर्भर है जब फोड़ा पुराना हो जाता है तो Tumour कहते है इसमें पीव निकलती रहती है। और नासूर होने का भय रहता है।

स्तनो का दूषित फोडा *Cancer*

यह फोड़ा वहुत खराब होताहै, पीव निकलता रहता है और पकता रहता है। कभी अच्छा हो जाता है, कभी खराव हो जाता है, स्तन मे गांठ पड़ जाती है और दाग पड़ जाता है।

भुटनी का क्षत *Sore nipples*

बच्चे के काट लेने, नाखून लगने, आदि से कभी २ भुटनी में क्षत हो जाता है। कभी २ फुन्सियो के निकलकर पकने पर भी क्षत हो जाता है उन फुन्सियो के दबाने पर पानी सा निकलने लगता है। इस दशा में वच्चे को दूध पिलाना भी मुश्किल पड़ जाता है।

स्तन प्रदाह

प्रसव के बाद कभी २ स्तनो में प्रदाह होने लगता है स्तनो का सख्त होना, घाव होना दूध की खराबी, फुन्सियां आदि कई कारणो से ऐसा होता है। प्रदाह के कारण ज्वर भी हो जाता है।

बाल रोग

Children Disease

बच्चो की बीमारिया

बच्चो को बुखार, खासी दस्त आदि रोग वैसे ही होते है, जैसे कि बडो को होते हैं। बच्चों के २ भेद मानने से ठीक रहता है।

(१) केवल दूध पीने वाला बच्चा।

(२) दूध के साथ कुछ २ खाने वाला बच्चा।

केवल दूध पीने वाले वच्चो को जो रोग होतेहैं वे प्राय: माता के कारण होतेहै, माता की खरावी से उसे कोई रोग होने, या उसके ऊटपटांग खाने पीने से बच्चो को रोग का शिकार होना पड़ता है। नियमित आहार बिहार करने वाली माता के बच्चे वे बच्चे जो केवल दूध ही पीते है। कभी भी रोगी नही हो सकते और न बाद मे उनके स्वास्थ्य पर ही कोई घातक आक्रमण होता है। वे बच्चे, जो खाते भी है और दूध भी पीते है, अपने स्वतन्त्र कारणो से भी रोगी हो सकते है। माता अगर खुद स्वस्थ है, तो भी बच्चे जब अनाप सनाप खा लेते है, तब बीमार हो जाते हैं। आज बच्चे जितनी तादाद मे बीमार होते हैं, उसकी कल्पना

करने मात्र से रोमाच हो जाते है ससार के भावी शासक अकाल ही काल के कराल गाल में जाकर मूर्ख माता पिता की अक्लमन्दी (!) पर जरूर दो आंसू बहाते होगे।

कहना नही होगा, बच्चो के रोगो का उत्तरदायित्व उनकी माताओ पर है। वे अपनी मूर्खता से लाड प्यार में बच्चो को ठूस २ कर खिला देती हैं, उसके मना करने, भींकने, चिल्लाने पर भी जबरन वे उसके मुंह में खाना ठूस देती है। स्वय भी रात दिन अनियमित आहार बिहार करके बच्चो के हृदय में दूषित दूध पहुँचाती है। अस्तु

उन सब रोगो का जो बच्चो को भी बडो की तरह ही जाते हैं, उल्लेख करने की यहां आवश्यकता नही है, उनके कारण और चिह्न पहिले लिखे जा चुके हैं। हा, जो रोग केवल बच्चो को ही होते है, तथा वे रोग, जो बच्चो मे अक्सर होते है, यहा लिख दिये जाते है।

मृतवत् बालक

बच्चा जब पैदा होता है तो, दीर्घकालीन प्रसव वेदना, जरायु दोष आदि के कारण मरा हुआ सा प्रतीत होता है, यद्यपि वास्तव मे वह मरा नही है, किंतु रक्तसचालन यन्त्र की क्रिया के रुकने से वह श्वास प्रश्वास नहीं ले सकता और न रोता ही है, जो पैदा होने के बाद का खास चिह्न है। उस अवस्था मे उसका ठीक उपचार करना चाहिये। अभी तक वह मरा नही है, जिन्दा ही है योग्य उपचारो से रक्तसचालन होने पर, वह सास लेने लगता है और रोताहै। वेबकूफी के कारण मूर्छित बच्चे को ही बहुत सी जगह मरा हुआ समझ लिया जाता है। गले में कफ भरा रहने से भी

बच्चे को नाभि का रोग

दाइया अक्सर नाल काटने मे असावधानी कर देती है, इधर उधर काट देती हैं, ठीकतौर से बाद में उसे बाधती नहीं है। या तो कस के बांध देती हैं या हलकेतौर से, जिससे खून निकलता रहता है। कभी कच्चा बन्धन टूट भी जाता है, जिससे बच्चे के स्वास्थ्य पर गहरा धक्का पहुँचता है, पाच दिन में नाल सूख के गिर जाती है, किंतु असावधानी होने से यह समय पर सूखता नही, उसमें से पीव निकलने लगता है, वहा जख्म हो जाता है, जलन होने लगती है, दर्द होता है, नाभि फूल जाती है और लाल हो जाती है, कभी २ खून भी गिरता रहता है, जिससे बच्चा निर्बल होकर बेहोश हो जाता है, कभी २ कापने, खासने, पेट में दर्द होने आदि से जब नाभि पर अधिक दबाव गिरता है तो, आंते बाहर निकल आती हैं।

दूध न पीना

गले मे कफ लिपे रहने, श्वास क्रिया के ठीक न होने दुर्बलता रहने पर, नवजात बच्चा दूध नही पीता, उसके मुह मे चूची देने पर भी वह खेचना नही है। कुछ दिनो के बाद मे, बुखार खासी होने, पेचिश होने आदि से भी बच्चा दूध पीना छोड़ देता है।

बालक का पीला होना

मां-बाप को अगर पहिले पीलिया रोग थातो इसका असर बच्चे पर भी गिरता है। जिससे वह कभी २ तो पीला ही पैदा होता है, अलावा इसके खून के सारी देह मे न पहुँचने से गर्भावस्था में ठीक पोषण नही होने से भी बच्चा पीला हो जाता है, २-१ दिन के बाद उसकी देह पीली दिखाई देने लगती है।

बच्चे का धनुष्टन्कार
Tetanus

कभी २ बच्चो को इस भयकर रोग से सामना करके अकाल मे ही काल कवलित हो जाना पड़ता हैं, दूध की खराबी से, पेट में खराबी होने, आदि

से बच्चा दूध पीना छोड़ देताहै, हाथ पैरोमें खिचा-वट होती है, पीठ टेढ़ी हो जाती है, आगे पीछे झुक जाती है। टेम्परेचर १०५ डिगरी तक पहुँच जाता है, नाभि में दाह होता है, और बच्चा मर भी जाता है।

बच्चे की सर्दी खाँसी

यह खांसी सर्दी लगने से होती है, और सर्दी के साथ २ ही चली भी जाती है, इसलिये ज्यादा खौफनाक नही होती। नाक से बलगम निकलता है, कभी नाक रुक भी जाती है। सर दर्द होजाता है, कभी बच्चा हाफने भी लगता है। और दूध पीना छोड़ देता है। सर्दी की वजह से कभी २ हिचकियां भी चलने लगती है।

बच्चे की नींद हरामी

माथे में खून के ज्यादा होकर सचित होने माता के अनुचित आहार करने, पेट में कीड़े पड़ जाने, मरोड़ा चलने आदि से बच्चे को नींद नही आती, वह रात में भी नहीं सोता, और रोने लगता है, बहुत सी मातायें खास कारण को तो देखती नही और चट से अफीम की डली बच्चे के गले में उतार देती है, इससे नशे के मारे बच्चा खूब सोता रहता है, किंतु कभी २ ऐसा भी सोता है, कि फिर उठाये भी नहीं उठता, मर ही जाताहै, यह बहुत बेहूदा आदत है। खास रोग को हटाने से नींद अपने आप आने लगती है और बच्चा खुद ही नही जागता, अगर वह निरोग है, कब्जी रहने अपस्मार होने, आंखो में जलन होने आदि से भी नींद नहीं आया करती है।

बच्चे का नेत्र प्रदाह

पैदा होने के बाद बच्चे की आंखे सफा नही की जाती, और अगर सौरिगृह में किरासन तेल की चिमनियां जलती है तो, अक्सर बच्चे की आंखो में खराबीं पैदा हो जाती है, अलावा इसके माथे में खून भरने आदि से भी नवजात बच्चे की आंखे बीमार हो जाती है। आंखें फूल जाती हैं, लाल हो जाती हैं, उनसे मवाद निकलता है, और उनमें जलन होतीहै, जिससे बच्चा तडफता है पलकें सिच जाती है, और फूल भी जाती हैं। कभी २ जख्म भी हो जाता है, जल्दी ही अगर इसका उपचार नही किया जाय तो आंखे सदा के लिये साथ छोड़ देती है।

बालापस्मार

बच्चेपन में स्नायु मंडल सहज ही उत्तेजित हो जाता है, जिससे बच्चा बेहोश सा हो जाता है। इसमें मृगी या हिस्टीरिया जैसी दशा बच्चे की हो जाती है। अक्सर दांत निकलते समय, चेचक होने के समय, पेट मे कीड़े पड़ने, बच्चे के गिर पड़ने आदि से बच्चा इस रोग का शिकार होता है बुखार हो जाता है, पुतलिया फैल जाती हैं, माथा गर्म हो जाता है, आखें स्थिर हो जाती हैं, और बच्चा बेहोश हो जाताहै। अस्थिरता, नींद न आना, चौंक पडना, चिल्ला उठना, डरना, आंखें और मुंह का लाल हो जाना, मुंह का फीका पड़ जाना कपकपी होना, गले में खरखराहट होना, कब्ज रहना आदि चिह्न भी इसमे दिखाई पड़ते हैं।

दूध फेकना

जब तक बच्चा केवल दूध ही पीता है, तब तक उसकी कै को दूध फेकना ही कहते हैं। जब खाने लगता है तो, दूसरी दशा हो जाती है, दूध फेकने मे प्रधान कारण है, प्रसूता का अनाप शनाप खा लेना, जिससे दूध बिगड जाता है, बिगड़ा हुआ दूध बच्चे को ठीक हजम नहीं होता; वह कै करने लगता है। मातायें इसमें अक्सर अपने दूध की खराबी नही देखती, बच्चे को ही रोगी समझकर उसे कुछ न कुछ दवा दे देती हैं, दूध के शुद्ध होने पर भी कभी २ स्नायुमण्डल की उत्तेजना होने,

पेट मे कीड़े पडने आदिसे बच्चा दूध फेंकने लगता है किन्तु इन कारणो से थोड़े ही दिन यह दशा रहतीहै, दूध की खरावी में यह रोग की वात होने लगती है, और जमा हुआ दही जैसादूध निकलता है। कब्ज रहने, पेट में खरावी होने आदि पर, दूध में पित्त, कफ भी आने लगता है, इस दूध मे जो फेका जाता है. खट्टी २ वदवू आने लगती है और बाद में बच्चा कुछ अप्रसन्न सा हो जाता है, इस रोग में चू कि ठीक पोषण नही हो पाता, बच्चा जल्दी ही मर जाता है।

बच्चे की कब्ज

गर्भावस्था मे माता के कब्ज रहने से, उसके अनुचित आहार विहार करने से, बच्चे को मातृक कब्ज हो जाती है, मां के दूध के बदले गाय, भैंस वकरी आदि का दूध पीने से, यकृत में खरावी होने से, दूध की खराबी आदि से कब्ज हो जाया करती है, जिससे बच्चा २-३ दिन तक पाखाना भी नहीं फिरता। कब्ज होने में एक कारण और है। बहुत सी मातायें रात में जगने के डर से, वार २ दस्त धोने के डर से बच्चो को अफीम खिला दिया करती है, जिससे उन्हे कब्ज हो जाता है। इस कब्ज को पैदा करने वाली मातओ की सख्या आज थोड़ी नही है। वे अपनी जरा सी दिक्कत से वचने के लिये, बच्चे के जीवन में खतरे की खाई खोद देती है।

बच्चे की उदर पीडा

पेट में कीड़े पडने और दात निकलनेके समय अक्सर यह पीडा बच्चो को भोगनी पडतीहै माता का अनाप शनाप खाना भी इसमें कारण है बच्चा मारे दर्दके छटपटाता है रोता है, चीखता है, और कभी २ वेहोश भी हो जाता है, कब्ज हो जाती है, मरोड़े चलते हैं, जी मिचलाता है, कै होती नही, दस्त होता भी है तो, उसमे खट्टी २ वदवू आती है, यह कीचड जैसा होता है, कभी२ उसमें खूनकी धारियां भी दिखलाई पड़ती हैं, और दस्त कभी सफेद होता है।

बच्चे के मरोड़े

मा के ऊटपटांग खाने बच्चे को ही वाहियात चीजे खिला देने, देर में पचने वाली चीजे खिला देने, गौ का दूध अधिक पिलाने, बच्चे के मिट्टी खाने, पेट में कीड़े पैदा होने, ठड लगने आदि से बच्चे के पेट में मरोडे चलते हैं, पेट फूल जाताहै, खिंच जाता है और रह२ के दर्द उठता है, या तो दस्त होता नही और होता तो थोडा २ वदवूदार कभी हरा, और पतला, कभी वधा हुआ दस्त होता है। जी मचलाता है, कै भी हो जाती हैं, इससे बच्चे को थोडी शांति मिलतीहै, बच्चाघुटने छाती में सटा लेता है और खूब रोता है, रुक २ कर रोता है, दैन्य हो जाता है।

पेशाव की खराबी

स्नायु मडल के उत्तेजित होने, पेट में कीड़े पडने, किसी दूसरे रोग के होने आदि से मूत्राशय की धारणशक्ति कमजोर होजाती है, जिससे बच्चे सोते २ ही पेशाव कर देते हैं, इस पर बहुत सी माताओ का ध्यान ही नही जाता। कभी २ पेशाव सफेद होने लगता है, कभी२ पीला और वदवूदार कभी२ पेशाव रुक जाता है, जिससे लिङ्गेन्द्रिय फूल जाती है, पेडू में दर्द होने लगता है। और भी पेशाव के उपद्रव हो जाते हैं, जो मूत्राशय के रोगो के प्रकरण में देखने चाहिये।

बच्चे का हैजा

पेट की खरावी, दूध की खरावी, माता को हैजा होने आदि से बच्चो को भी हैजा होजाता है, इसका वर्णन हैजे के प्रकरण में अच्छी तरह हुआ है।

Intertrigo

मैल जमने, फि देह म जोर से घिसने, फोड़ा फुन्सी होनेपर, उसके फोडदेने आदिसे वच्चे की चमडी छिल जाती है और वहां जख्म भी हो जाता है, चमडी फूल जाती है फिर लाल २ पानी निकलता है। पेड़ू के पास, कानो के पीछे, गर्दन आदि मे ही यह विशेष होता है, चूके ये स्थान मैल जमने के हैं।

इन्फेन्टाइल रेमिटेण्ट फीवर

यह वच्चो का टाइफाइट फीवर है। इसकी दो अवस्था है।

(१) मन्दी।

(२) तीव्र।

(१) अवस्था

वच्चा सुस्त होजाता है भूख भग जाती है और उसे प्यास खूब लगती है वाद मे वच्चा पडा ही रहता है, उसका मिजाज बिगड़ जाता है, छेड़ने पर भुंझलाने लगता हैं। सांझ को गफलत में पड़ा रहता है और रात में नीद नही आती। नाड़ी की चाल तेज होजाती है, देह कभी गरम हो जाती है, तो कभी ठंडी। मुंह में वदवू आने लगती है, दस्त पतला और मडा हुआ होता है। प्रातः काल में तवियत जरा ठीक रहती है और सांझ होते २ विगड जाती है दूसरे सप्ताह मे वेचेनी और भी बढ़ जाती है, वच्चा रात को चौक २ कर चिल्लाता है, दात पीसने लगता है, कराहता है, वेहोश तक हो जाता है। बुखार दिन में एक वार २ वार होजाता है, १२ बजे चढ़कर ३ वजे उतर जाता है और रात को चढ़कर सुवह उतर जाता है। जीभ बीच में मैली और किनारो पर लाल होजाती है, पेट फूल जाता है, वच्चा नाक तथा मुंह को वार २ नोचता है। १५ मैं दिन तक यह हालत रहती है, वाद में हालत सुधरती है और १ सप्ताह में विल्कुल सुधर जाती है।

(२) अवस्था

पहिले सात दिन तक चेहरा भारी सा रहता है, माथे मे भयङ्कर पीड़ा होती है, उल्टी, वेहोशी आदि भी होती है। सप्ताह के आखीरी दिनो में पेट, पीठ और छाती पर लाल २ छोटी २ फुन्सियां होती है, और वेहोशी बढ़ती है, कै अधिक होती है, हृदय में शूल चलता है, सूखी खांसी चलती है, पतले मिट्टी के रग के दस्त होते हैं।

दूसरे सप्ताह में वच्चा बिल्कुल कमजोर होकर हड्डियो का ढांचा मात्र रह जाता है, मांस सब सूख जाता है, उठ बैठ भी नही सकता हैं, वेहोश पड़ा रहता है और नाडी धीरे २ चला करती है, टेम्परेचर १०८ तक पहुच जाता है।

तीसरे सात दिनो में कमजोरी वेहद बढ़ जाती है, हाथ पैर एठने लगते है, वेहोशी बढ़ जाती है, इस अवस्था में वहुत ही कम बच्चे बचते हैं।

आराम होने के समय यह ज्वर धीरे २ घटता है, कभी पसीना आकर ज्वर उतरता है, कभी दस्त और पसीना दोनो होकर, और कभी कै होकर पित्त निकलने से उतर जाता है। ३० दिन में रोगी या तो मर जाते है या आराम हो जाते है।

खुजली

Eczema

यह एक तरह की खुजली है, जो वच्चो को अक्सर होजाती है। छोटी २ फुन्सियां भी कभी २ होजाती है, और पीवपड जाता है, कपड़े पर अगर यह पीव लग जाता है तो, कपड़ा कड़ा हो जाता है।

मस्तिष्क भिल्ली का प्रदाह

Meningitis

माथे की भिल्ली में प्रदाह होता है, वहां पर खून भरने आदि कारणा से। वच्चा सर हिलाता

है रोता है कै करता है। भूख नहीं लगती, नाडी कमजोर हो जाती हैं, श्वास की गति अनियमित हो जाती है, नजर टेढ़ी हो जातीहै, धीरे२ खिंचाव होने लगता है, नींद बहुत आने लगती है, टेम्प-रेचर १०४ डिगरी तक पहुँच जाता है, फिर नाडी भी तेज हो जाती है, माथे में और गरदन में दर्द होता है।

माथे में जल सचय

Hydrocephalus

पैदा होने के बाद माथे में जल भरने से वह सूज जाता है. और दवाने से पिलपिलापन मालूम होता है, ५-७ वर्ष बाद यह रोग जड पकड लेता है। इसमे धीरे २ सर बढने लगता है, और नीचे के अंग बिना किसी खराबीके कमजोर होने लगते है, नीद हरदम वनी रहती है, धारणा शक्ति कम होती २ नष्ट होजाती है, इद्रिया शिथिल होनेलगती है। और एक दिन मौत का वारण्ट आजाता है।

हड्डियो का विकार

Rickets

बच्चो की हड्डियो में जब चूने का भाग कम हो जाता है तो, हड्डिया ठीक गठित नही होती, कोमल हो जाती है, टेढ़ी मेढी हो जाती है. लम्बी हो जाती है, शीर्ण हो जाती है, इस रोग में दस्त पतला होता है. माथा गर्म रहताहै, समय पर दात नही निकलते। हाथ पैर की गाठो मे पीडा, माथे की हड्डी का बढ़ना और पीठ की हड्डी का टेढा होना, ये चिह्न दिखलाई पडते हैं।

ट्यूबर कुलोसिस

यह एक ऐसा रोग है, जिसमें बच्चे के फेफड़े माथे आदि अगो में गाठे निकल आती है, दूध की खराबी, वायुमण्डल की गन्दगी आदि कारणो से यह रोग होता है, किसी भी शारीरिक यन्त्र में गाठें निकल आतीहै और दिक्कत पैदा कर देती है। शुरू में यह गांठे छोटी २ मटर जैसी होती हैं और कोमल होती हैं, बादमें बढकर कडी होजाती हैं, गांठो का रग कभी पीलापन लिये होता है, कभी सफेदी, इनमें बहुत से जीवाणु पैदा होकर रोग पैदा करते है, फेफडे में गांठ होने से सांस खांसी, क्षय, ये रोग हो जाते है, माथे में होने से उसकी झिल्ली में प्रदाह होने लगता है।

ये ही गाठे धीरे २ गण्डमाला के रूप में बदल जाती है।

Infantile syphilis

बच्चो की गर्मी

माता पिता के गर्मी होने का असर बच्चे पर भी गिरता है सचतो यह है कि वह गर्मी के कीड़े साथ में लेकर ही पैदा होता है, कुछ दिन बाद बच्चे को भी गर्मी हो जाती है, वह हमेशा रोने लगता है, धीरे २ कमजोर होता जाता है, देह में खुजली हो जाती है, फोड़े फु सी भी हो जाते हैं, और जख्म भी पड जाते है, गर्मीका विशेष वर्णन अलग किया गया है, वही देखना चाहिये।

Marasmus दुर्बलता

यह दुर्बलता से मिलता जुलता रोगहै, जिसमें खाना हजम नही होने से बच्चा धीरे २ दुवला होने लगता है, टेम्परेचर घटने लगता है, धीरे २ भूख घटने लगती है।

बच्चे का रोना

बहुत कम ऐसी माताए है, जो बच्चो के रोने पर ध्यान देकर उसका कारण समझती हैं बच्चा उसी हालत मे रोता है, जब उसके शरीर में कोई खराबी होती है। या उसे भूख लगती है।

बहुत से बच्चो को रोने की आदत से भी उनकी माताए पटक देती हैं, बच्चा अगर पेट के दर्द के मारे रोरहा है, तो माता उसके रोने पर ध्यान न देकर जबरन उसके मुहमें चूची डालकर

उसका रोना बन्द करने की कोशिश करती है। यह सब व्यर्थ की और हानिकारक बातें है।

बच्चा अगर रोते समय मुंह मे उंगली दता है तो, समझना चाहिये कि दांत निकलने की या मसूड़े फूलने की बीमारी है, अगर कान पर हाथ रखता है, तो कान की बीमारी, नाक पर रखताहै तो नाक की, छाती की बीमारी में खांस २ कर रोता है, गले की बीमारी में कर्कश स्वर से, फेफड़े की बीमारी में बिलख २ के और करुण स्वर से रोता है। पेट की बीमारी में तड़फ २ के रोता है, ठहर ठहर के रोता है। और घुटनो को कभी पेट से सटाता है। कभी इधर उधर फेंकता है। चींटी वगैरहके काटने पर भी रोता है। और काटे हुये स्थान पर हाथ मारता है।

माथे की झिल्ली में प्रदाह होने पर माथे पर हाथ रखता है इसी तरह उसके रोने का कारण समझना चाहिये। रोने को बातो में नहीं उड़ा देना चाहिये।

हूपिंग कास (कुकुर खासी)

यह बड़ी शैतान खासी है, और बच्चो को होती है। इसको काली खासी, कड़वी खांसी, और जहरीली खासी भी कहते है। इस खांसी मे सास लेते समय बच्चा हुप हुप करने लगता है। इसीलिये इसका नाम 'हुपिंग कास' है प्रायः दस साल से छोटी अवस्था के बच्चो को यह खांसी होती है, इसमें बच्चा खासी की तरह खासता है। और यह छूत वाली है। एक से दूसरे को लग जाती है।

कारण

इसका कारण एक तरह का विष है, या यो कहना चाहिये कि जहरीले कीड़ो से यह खांसी पैदा होती है, जहरीले कीड़े हवा के साथ फेफडो में जाकर मज्जातन्तुओं को क्षुब्ध बना देते हैं। जिससे खांसी, बुखार, आदि पैदा होते है।

अवस्था

इसकी ३ अवस्था होती है। जिनमें रोग क्रमशः बढ़ता है।

(१) अवस्था

इस अवस्था मे सूखी खांसी चलती है, और थोड़ा बुखार भी होता है। खासते २ बच्चे के चेहरे का रंग भी बदल जाता है।

(२) अवस्था

इसमे बड़ी भयानक दशा हो जाती है। खांसी बड़ी जोर से उठती है और जब तक बलगम नहीं निकलता, या कै नही हो जाती, तब तक नही रुकती, खांसते २ बच्चा बेचैन हो जाता है और उसके नेत्र लाल हो जाते है, किसी २ के नाक से खून गिरने लगता हैं और किसी के कफ या कै के साथ खून आता है।

(३) अवस्था

जब हालत और भी जोर पकड़ लेती है तो तीसरी दशा समझी जातीहै। २४ घटोमे २०से४० बार खासी चलती है, रोग का वेग कम होनेपर खासी भी घटने लगती है।

बहुत से बच्चोके सिर में खून जमा हो जाने से वह बेहोश हो जाते हैं। रोग के पुराने होने पर हृदय में दाह आदि उपद्रव भी होने लगते है।

४५ से ६० दिन में कही यह मिटती है।

बालग्रह

अब आयुर्वेद में कहे हुये बालग्रहो का वर्णन भी कर दिया जाता है। आजकल के विद्वान बाल ग्रहो को कोरी गप्प समझ लेते हैं, किंतु अगर वे किसी बच्चो के अस्पताल मे रहकर देखें तो मालूम हो जाय कि बालग्रहो का वर्णन वास्तविक और अनुभूत है। बालग्रहो मे उनसब रोगो का वर्णन आजाता है, जो आजकल अलग २ दिखलाये जाते है।

वालग्रह बच्चो के रोगोत्पादक हैं, सही, किंतु वे बच्चो को रोगी नहीं बनाते अगर वालग्रहो का बच्चो से स्थायी सम्बन्ध होता तो, आज इतने बच्चे जिंदा नहीं रह सकते थे और बच्चे ही आगे चलकर बड़े होते है।

वालग्रह क्यो होते हैं

इसका विचार करने पर हमारी झूठीं कल्पना अपने आप धराशायिनी हो जाती है ?

लिखा है—

मिथ्या आहार-विहार से बच्चो के ऊपर इन ग्रहो का आक्रमण होता है, जो बच्चे मिथ्या आहार विहार के शिकार नही होते, जिनकी माताए अनाप शनाप खाके, उनके हृदय को एव दुग्ध को दूषित नही करती हैं, वे बच्चे इन ग्रहो के शिकार नही होते है

आगे चलकर और भी लिखा है—

आचार विचार की परवाह नहीं करने वाले सदाचार और नैतिक नियमो का उल्लघन करके अनीति की राह पर चलने वाले, अखाद्य पदार्थो को खाने वाले, व्यभिचार करने वाले, घर की सफाई नही रखने वाले, दूषित वायुमडल मे रहने वाले, दरिद्रता की छाया में रहने वाले, ऐसे माता पिताओ के घर में जो औलाद होती है, उनपर इन ग्रहो का आक्रमण होता है।

इतने कारणो पर विचार करने के वाद इन ग्रहो की वास्तविकता मे सदेह करने की गुन्जाइश नहीं रहती।

ग्रहो के ९ भेद

(१) स्कन्द।
(२) स्कन्दापस्मार।
(३) शकुनी।
(४) रेवती।
(५) पूतना।
(६) अन्धपूतना।
(७) शीतपूतना।
(८) मुखमडिका।
(९) नैगमेय।

ये ९ ग्रह हैं, जिनके आक्रमण करने पर वालको की भिन्न २ दशा होती है।

जव बच्चे पर ग्रह का आक्रमण होता है, तब उसकी जो सामान्य दशा होती है, पहिले उसका उल्लेख कर दिया जाता है—

क्षण भर में बच्चा व्याकुल हो जाता है, क्षण भर में हंसता २ रोने लगता है। कभी नख और दांतो से अपने शरीर को तथा माता के शरीर को काटता है, ऊपर को देखने लगता है, दांत चवाने लगता है, किलकारी मारने लगता है, जभाई लेता है, भौओ को टेढ़ी करता है, होठ चवाता है, वरावर झागदार कै करता है, दुवला हो जाता है, रात मे उसे नीद नही आती, उसका गला पक जाता है, पतले दस्त आता है, उसकी देह में मछली जैसी तथा खून जैसा वदवू आती है, भूख कम हो जाती है, शक्ति नष्टहो जाती है, अग मलिन हो जाते हैं, वेहोश हो जाता है।

इन चिह्नो में से कुछ भी चिह्न अगर प्रकट हो जाय तो, समझ लेना चाहिये कि माता के मिथ्या आहार विहार का बच्चा शिकार हो गया है, उसे 'वालग्रह' ने धर दवा लिया है। फिर कौन से ग्रह का आतङ्क है यह भी देखना चाहिये और शान्ति पूर्वक उसकी व्यवस्था करनी चाहिये

अब नवो ग्रहो की आक्रमणावस्था में जो अलग अलग चिन्ह होते हैं, उनका निर्देश भी करते है।

(१) स्कन्द पीड़ित बालक

जव स्कन्द ग्रह का आक्रमण होता है तो—वालक की आखे सूज जाती हैं, उसकी देह में

खून की सी बदबू आती है दूध नही पीता, उसका मुह टेढ़ा हो जाता है, आंखे खराब होकर चचल तथा एक पलक हो जाती है। उसकी आंख पानी से भरी रहती है, वह बिह्वल बेचैन रहता है, थोड़ा रोता भी है, और हाथ की मुट्ठी जोर से बांध लेता है और उसका मल कठिन हो जाता है

(२) स्कन्दापस्मार पीड़ित बालक

जब स्कन्दापस्मार का धावा होता है तो—बच्चा बेहोश हो जाता है, फिर होश में आ जाता है, उसकी देह जकड़ जाती है, हाथ पैर हिलते हैं, मानो नाच रहाहै, मलमूत्र बराबर होते है, जंभाई जोर से लेता है और उसके मुह में झाग भरे रहते हैं।

(३) शकुनी पीड़ित बालक

शकुनी से मतलब यहां कौरवो के मामा से नहीं, अपितु ग्रह से है। इसके धावेमें बच्चेके अंग ढीले पड़ जाते है, वह भय से चकित रहता है, उसमें पक्षी की गध आती है, बहने वाले व्रण हो जाते हैं, फोड़े होजाते है, जिनमे जलन होती है, और वे पक जाते हैं।

(४) रेवती पीडित बालक

जब रेवती ग्रह का आक्रमण होता है तो—बच्चे का मुंह लाल हो जाता है, हरा दस्त होता है, देह पीली हो जाती है, या काली, बुखार आता है, और मु ह पक जाता है, देह मे व्यथा होती है, जिससे नाक और कान को मलता है।

(५) पूतना पीडित बालक

बच्चे के अग ढीले पड जाते हैं, दिन रात में बेचारा कभी चैन से नही सोता, दस्त पतले होते, हैं, कौवेकी जैसी गध आती है, कै की पीडा होती है, रोमांच हो जाते हैं, और उसे बार२ प्यास लगती है।

(६) अन्ध पूतना पीड़ित बालक

दूध नहीं पीता, बुखार, खांसी, दस्त, हिचकी कै ये पांचो रोग साथ ही आक्रमण कर देते है। (कभी २ नही भी) देह का रंग बिगड़ जाता है, हमेशा उल्टा सोता है, देह में खून की बदबू आती है।

(७) शीत पूतना पीडित बालक

चीख मारता है, डरकर घबडा जाता है, कांपने लगता है, फूल जाता है, उसके पेटमें आंतो का शब्द होता हैं, अगो में बदबू आती है, दस्त बहुत पतला होता है।

(८) मुखमण्डिका पीड़ित बालक

अग मुरझा जाते है हाथ, पांव तथा मुह में से खून गिरता है, बच्चा उद्विग्न हो जाता है, खाता बहुत है. पेट की नसें भद्दे रग की हो जाती हैं, देह में पेशाब की गध आती है।

(९) नेंगमेय पीड़ित बालक

बच्चा झागदार कै करता है, बीच में झुक जाता है, उद्विग्न हो जाता है, ऊपर को देखता है, और हसता है, गू जता बहुत है, देहमें चरबी और खून की गध आती है, बेहोश हो जाता है।

नवग्रहो का वर्णन हो चुका।

दुष्ट दुग्धज रोग

भारी, विषम तथा दोषो को बढ़ाने वाले भोजन करने से मां के शरीर मे दोष बिगडते है। फिर वे दूध को भी बिगाड़ देते हैं। दूध कैसे बिगडता है, और बिगड़ा हुआ दूध कैसा होता है इन बातो का जवाब गर्मीके रोगो के वर्णनमें मिल जायगा साधारण रूपसे दूध३ तरह दूषित होताहै।

(१ बात दूषित।

(२) पित्त दूषित।

(३) कफ दूषित।

(१) वात दूषित दूध की खराबी से खराब दूध पीने से बच्चा वायु सम्बन्धी रोगो से पीडित होता है, आवाज मन्द पड जाती है, देह दुबली हो जाती हैं, मलमूत्र और वायु रुक जाते हैं।

(२) पित्त दूषित दूध की खराबी

के पीने से बच्चे को पसीना अधिक आता है दस्त पतला होता है, कामला रोग हो जाता है, पित्त के और भी रोग, घबडाहट, बेचैनी, दाह आदि होते हैं।

(३) कफ दूषित दूध की खराबी

जब बच्चा कफ दूषित दूध पीता है तो लार बहुत गिराता है, कफ के विकार से पैदा होने वाली और बीमारिया हो जाती हैं, नींद हरदम आंखो में रहती है, शरीर भारी हो जाता है सूजन हो जाती है, आखे टेढ़ी हो जाती हैं और उसे कै होती है।

ये हुआ दूषित दूध के पीने से होने वाले रोगो का वर्णन।

तालु कण्टक

तालुओ के मांस मे जब कुपित कफ विकार पैदा करता है, तो तालुआ लटक आता है, जिससे दूध पीने मे बड़ी गडबडी होती है, दूध गले के नीचे उतरता ही नहीं और थोडा २ उतरता भी है तो बडी दिक्कतो से, दस्त पतला होता है और प्यास लगती है। आंख, गले और मुंह में पीडा होती है, गरदन झुक जाती है और कै होती है।

महापद्मक

बच्चो के माथे और मूत्राशय मे लाल रंग का विसर्प होता है, जो तीनो दोषो के बिगडने से होता है, और जल्द ही बच्चो को मार डालता है जो विसर्प माथे में होता है, वह कनपटियो मे होता हुआ हृदय मे पहुँचता है, और वहा से गुदा मे पहुँचता है। मूत्राशय मे जो विसर्प होता है, वह गुदा में होता हुआ हृदय में जाता है, और हृदय में से मस्तक में जाता है। वह घातक रोग है, इसका उपचार तत्काल करना चाहिये।

कुकूणक

यह रोग भी दूध की खराबी से होता है। पलकों में इसका अड्डा है, जिसमें आंखों में दर्द होता है, उनमें खुजली चलती है और स्राव होता है। बच्चे की आँख न रोशनी को देख सकती है नखुलती ही है। बच्चा, मस्तक आंखे और नाक को घिसता रहता है।

तुण्डी

बहुत से बच्चा की नाभि फूलकर बडी हो जाती है, यह वही रोग है। इसमें वायु की व्यथा होती है, और व्यथा भी होती है।

गुदपाक

पित्त के कारण बच्चे की गुदा जब पक जाती है तो,उसे गुदपाक रोग कहते हैं। चटपटी, मसालेदार तरह २ की चीजो के खाने वाले शौकीन माताओ के बच्चो को ही यह रोग होता है।

अहिपूतना

यह बडा पाजी रोग है, गन्दी और बेसमझ माताओ की सन्तान को यह रोग होता है। जो बच्चे गन्दे रहते हैं, पाखाना फिरने के बाद जिन की गुदा ठीक साफ नहीं की जाती बिस्तरो पर पडे २ ही पाखाना फिर देते है, और पेशाब कर देते हैं फिर उसमें लिपे रहते हैं, उनको यह रोग होता है। अलावा इसके जिसका गुदा के आस पास पसीना आता है और वह पोछा नहीं जाता वह मैल के रूप मे वहा जम जाता है तो, वहा खुजली चलने लगती है। मल मूत्र और पसीने के साफ न करने से वहा बदबू फैलकर खुजली चलती है, और वह कफ और खून के बिगाड़ से चलतीहै, जो गदगीके कारण पहिले खुद ही बिगड़

जाती है। खुजली चलने के बाद में बच्चा वहां खुजाता है, और खूब खुजाता है। फिर वहां फोड़े हो जाते है और वे फोड़े फिर बहने लगते है, धीरे २ वहां एक बड़ा सा व्रण होजाता है जो बडी दिक्कत पैदा कर देता है। बच्चे का खाना, पीना, सोना, बैठना सब हराम हो जाता है।

अज गल्लिका

ये फुंसियां है जो गन्दगी के कारण कफ और खून के बिगड़ने से होती है। ये फुंसिया शरीर के रंगसे ही मिलती जुलती होती हैं, चिकनी होती है, गुंथी सी होती हैं, हां इनमें दर्द अलबत्तः नहीं होता।

परिगर्भिक

ऐसी मातायें भी बहुत होती हैं जो स्वास्थ्य शास्त्र के नियम को न मानकर, गर्भावस्था में भी बच्चो को दूध पिलाती है। पहिले ही आदत न छुटाने से बच्चा झीखता है, कलपता है फिर मा उसे दूध पिला देती है, इससे गर्भस्थ बालक को तथा दूध पीने वाले बालक को, दोनो को ही हानि पहुँचती है। गर्भस्थ बालक का ठीक पोषण नही होता और दूध पीने वाले को नये २ रोग होते है यह रोग भी अक्सर इन्हीं बच्चो को होता है।

खांसी, मन्दाग्नि, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम और पेट का बढना, ये रोग इसमें होते है, कभी सब एक साथ ही हो जाते है, कभी कम।

दांत निकलना *Dentition*

दांतो के रोगो से मतलब है, दांत निकलने के समय होने वाले रोगो से। जब बच्चो के दात निकलते हैं, तब उन्हे इन रोगो का मुकाबिला करना पडता है, यह समय सभी रोगो के होने का है, खासकर बुखार, दस्त, खांसी, कै, सर पीड़ा, आंख का दुखना, पलकोका रोग विसर्प आदि हो जाते हैं।

गुदा के रोग

Disease of the anus

गुदा को मलपथ यानी पाखाने का रास्ता भी कहते हैं, मलाशय से मल इसी के द्वारा निकलता है। ववासीर होने पर खून भी इसी रास्ते से निकलता है। शरीर रक्षा के लिये गुदा का स्वस्थ रहना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है, गुदा केवल मलद्वार है, इसके रास्ते पाखाना ही निकलता है, ऐसा प्राकृतिक नियम है। किन्तु।

आजकल जिस तरह इस प्राकृतिक नियम की अवहेलना की जाती है, उसे देखकर तो कलेजा काप उठता है, हृदय रो पड़ता है। ओफ ! आज कल के शैतानो ने इस मलद्वार को भी मैथुन का अग बना लिया है। कमीने राक्षस गुदा मैथुन करने लगे हैं, कितनी घृणित और पतित बात है, प्रकृति के नियम का किस तरह उन्मूलन किया जाता है। लिखते भी शर्म आती है, कि बड़े २ तिलकधारी पडित कालेजो के प्रोफेसर स्कूलों के मास्टर और अदालतो के वकील भी गुदा मैथुन करते है।

कालेजो के होटलो में गुदा मैथुन होता है भगवान के मदिरो में गुदा मैथुन होता है, और शिक्षको के घर मे गुदामैथुन होता है।

लिखते भी शर्म आती है इस घृणित विषय पर हम इसके दुष्परिणाम पर ही थोडे शब्द लिख देना चाहते है, उन पापियो के जीवन पर तो थूकने की भी इच्छा नही होती।

गुदा में तीन आटियां होती हैं, उन्हे त्रिवलि कहते है। त्रिवलि से आगे मलाशय है जिसमें मल इकट्ठा होता है उससे आगे पकाशय आमाशय आदि है। गुदामैथुन करने से मलाशय पर लिंग की टक्कर लगती है, त्रिवलि चौडी हो जाती है, और आंतोपर आघात पहुँचता है, इससे मलाशय

के स्वाभाविक कार्य में अन्तर आजाता है, जिससे कब्ज रहना, दस्त होना, आदि बीमारियां पैदा होती हैं, प्रमेह हो जाता है, सभोग शक्ति कम हो जाती है। यह दशातो गुदामैथुन कराने वालों की होनी है।

जो गुदा मैथुन करते है, उनका लिंग टेढ़ा हो जाता है, लम्बा हो जाता है, और अंडकोप लटक जाते हैं, लिंग में मलकस घुस जाने से जान सेभी हाथ धो लेना पडता है। गुदामैथुन करने वाले, स्त्री-मैथुन से घृणा करने लगते हैं, उनकी स्त्रिया फिर खुले मैदान व्यभिचार करती हैं। ऐसे आदमियो के सन्तान बहुत कम होती है। अस्तु

प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करने से कई रोग पैदा होते हैं। गुदा के रोगो का उल्लेख यहां किया जा रहा है, अर्श, भगन्दर आदि सभी रोगो का उल्लेख यहा होगा।

अर्श बवासीर

Piles heamorrhoids

आयुर्वेद में जिसे अर्श कहते हैं, बोल चाल की भाषा में उसे बवासीर या मस्से का रोग कहते हैं, यह रोग भी आज खूब उन्नति पर है। अर्श जिन्हे मस्सेहै, यद्यपि लिंग, नाक, कान आदि पर भी होते है, किंतु आजकल अर्श से फौरन बवासीर का मतलब समझलिया जाता है। जब बात आदि दोष चमडा मास और मेद को दूषित कर देते है तब गुदा मे मास के अकुर पैदा हो जाते हैं, उन अकुरो को ही मस्से कहते हैं, गुदाके अंदर तीन वलियां या आटे होती है, उन्हे आवर्त भी कहदे हैं, इनके नाम भी अलहदा २ होते हैं, और ये तीनो काम भी अलहद २ ही करती हैं। अर्श के अकुर इनमें ही पैदा होते है, मस्से गुदा के बाहरी और भीतरी दोनो हिस्सो मे होते हैं। डाक्टरी में इसे हिमरोइड कहते हैं।

अर्श के ६ प्रकार

(१) वातज अर्श।
(२) पित्तज अर्श।
(३) कफज अर्श।
(४) सन्निपातज अर्श।
(५) रक्तज अर्श।
(६) सहज अर्श।

सामान्यचिह्न

जब किसी को बवासीर होता है, तब कब्ज रहने लगती है, पाखाना सख्ती से होता है, उस समय दर्द होता है, और खून गिरता है।

डाक्टरी मत

ऐलोपैथी वाले बवासीर के वेही दो साधारण बाहरी और भीतरी भेद मानते हैं।

(१) इण्टरनैल।
(२ ऐक्सटरनैल।

(१ वातज अर्श

कारण और चिह्न

कड़वे, कपैले, चरपरे, सूखे ठडे और इकदम हलके भोजन करने से, बहुत ही थोड़ा खाने से, असमय भोजन करने से, तेज शराब पीने से, अधिक स्त्री प्रशग करने से, अधिक अनशन करने से, ठडे दश में रहने से, जाड़े में गरम नही रहने से, ज्यादा व्यायाम करने से, ज्यादा शोक करने, और धूप तथा हवा मे घूमने से वायु बिगड जाता है, और गुदा की वलियो में अर्श पैदा कर देता है, हेमन्त मे या जाडे मे प्राय. वातज अर्श होता है।

मस्से सूखे होते है, उनमें पीडा होती है, किंतु खून नही गिरता। मुरझाये हुये, काले, लाल, टेढ़े, कठोर, खरदरे तीखे, फटे मुह के, कदूरी, बेर, खजूर या कपास के फूल जैसे होते है। कोई सरसो जैसे कोई कदम्ब फूल जैसे होते है. शिर पसवाड़े कधे, कमर, जाघ और पेडूमें पीड़ा होती

है छींक और डकारें रुकजाती हैं पेट भारी रहता है और हृदय बधा हुआ सा रहता है, अन्न से दुश्मनी होजाती है, खांसी, श्वाश डेरा जमा लेते हैं, कानो में आवाज होती है, अन्न कभी पचता है कभी नही पचता। वायुगोला, तापतिल्ली, अष्ठीला वातगांठ, इनके उपद्रव होते है, चमड़ा, पेशाव, आंखें, मुंह ये काले होजाते हैं, कडा, थोडा सशब्द ससूल, भागदार चिकना धीरे २ दस्त होते है।

(२) पित्तज अर्श

पित्त को कुपित करने वाले कारणों से बवासीर पैदा होता है, यह गरमी में होता है, और उसी समय जोर पकडता है, मस्सो के मुंह नीले, लाल, पीले और सफेद होते हैं, खून गिरता है, और उसमें बदबू आतीहै मस्से महीन, ढीले और कोमल होते हैं, जोक के मुह जैसे, तोते की जीभ जैसे होते हैं, गुदा पक जाती है, देह मे जलन होती है। ज्वर पसीना, मूर्छा, प्यास, मोह, अरुचि ये उपद्रव हो जाते है, मस्से पक भी जाते है, और एक खून कीबारीक धार निकलतीहै, चमडा, नाखून, आंख आदि हरे पीले हो जाते है, नीला, पीला या लाल रग का मल होता है।

(३) कफज अर्श

कफ को बढ़ाने वाले पदार्थों के खाने से व्यायाम नही करने से, दिन में सोने से, गद्दो पर आराम करने से, ठडे देश मे रहने से, पूर्वीय वायु के सेवन से, एकदम निश्चन्त रहने से, और ठडे रहने से कफ कुपित होकर अर्श पैदा करता है,यह शीत प्रधान देश में, शीत काल मे पैदा होता और जोर पकडता है, ये अर्श गहरी जड वाले, कठिन थोडी २ पीड़ा वाले सफेद, लम्बे, मोटे, चिकने,कटे गोल, भारी, गाढे, स्थिर कफ से, लिपे, मणि जैसे साफ होते है। करील के कांटो जैसे अथवा गाय के थनो जैसे होते हैं। पेट में अफरा, गुदा, वस्ति नाभि में पीड़ा होती है। श्वास, खांसी ओकारी, अरुचि, पीनस, प्रमेह मूत्रकृच्छ, शीतज्वर, नपुसकता, अग्निमांद्य, अतिसार, सग्रहणी। ये रोग हो जाते है, प्रवाहिका के चिन्हो से मिला चर्बी जैसा मल होता है, खून नही गिरता, शरीर का रग सफेद पीला होता है, मल मूत्रादि चिकने पीले हो जाते है।

सन्निपातज अर्श

इसे त्रिदोषज बवासीर कहते है, तीनो दोषो के कुपित होने से जो गुदा मे मस्से होते हैं उनके चिन्ह तीनो दोषो के अलग २ चिन्हो से मिले हैं, यानि तीनो दोषो के इकट्ठे चिन्ह हो, वह सन्निपातज अर्श कहलाता है।

(५) सहज अर्श

इसे खानदानी अर्श कहते हैं, मां बाप के बवासीर होने से प्रसव के समय अर्शोत्पादक आहार विहार से यह बवासीर होता है। मस्से स्वाभाविक यानि जान्मिक होते हैं, रग लाल यापीला होता है। और छूने से वे कठोर मालूम होते हैं। सहज बवासीर वाला मनुष्य, दुबला, अल्पाहारी, मन्द स्वर होता है, क्रोधी होता है, शरीर में नसजाल झलकता है, आंख, नाक, कान, और सर में दर्द रहता है, पेट में गुडगुडाहट होती है, आँतें गूजती है, साथ में मन्दाग्नि अरुचि आदि उपद्रव भी होते है। शरीर मे जिस दोष की अधिकता होगी, उसके अर्श चिह्न भी साथ में दिखाई देने लगते हैं। यह असाध्य माना जाता है।

रक्तार्श खूनी बवासीर *Bleeding piles*

पित्तज अर्श के जो कारण होते हैं, उन्हीं से खूनी बवासीर होता है, मस्से चिरमिटी जैसे लाल २ और बडके अकुरो जैसे होते है मल कडा निकलता है, जिससे वे दब भी जाते हैं, मस्सो से गरम २ और बदबूदार खून गिरता है खून के

अधिक गिरने से रोगी, वर्षाकाल में मेंढक जैसा पीला होजाता है। चमड़ा कठोर होजाता है, नाड़ी शिथिल पड जाती है, और ठडी, खट्टी चीजो की इच्छा से रोगी दुख पाता है। वर्ण वल, उत्साह सब किनारा कर लेते हैं, दशों इन्द्रिया व्याकुल रहती हैं। गुदा में से हवा नहीं निकल पाती। रूखा, कडा और काला मल निकलता है।

विशेप विवरण

अगर खूनी ववासीर के साथ वातज अर्श के भी चिह्न प्रगट हो जांय तो उसे 'वातानुवन्धीय रक्तार्श' कहते है, वायु का सम्बन्ध रक्तार्श से हो जाता है तब मस्सो से लाल और झागदार किंतु थोड़ा खून निकलता है। कमर, जाघ और गुदामें वेदना होने लगती है। कमजोरी और रूखापन ये भी आ लिपटते हैं।

इसी तरह रक्तार्श के साथ पित्त का सम्बन्ध होजाय तो, उसमें और भी विशेपता होजाती है, उसे 'पित्तानुवन्धीय रक्तार्श' कहते हैं पित्तज और रक्तज अर्शों में कोई विशेप भेद नही होता।

कफ अगर साथ होगया तो, शिथिल, सफेद पीला, चिकना, भारी, और ठडा दस्त होता है। गाढा तांदूदार पीला और झागवाला खून गिरता है, गुदा गीली सी रहती है, और ववूले युक्त हो जाती है 'इसे कफानुवन्धीय रक्तार्श' कहते हैं।

सुखसाध्य ववासीर

बाहर की आंटी मे यानी गुदाकी वाहरी वलि में पैदा होने वाला, एक दोप की प्रधानता वाला, एक वर्ष से कम पुराना ववासीर जल्द ही आसानी से आराम होजाता है।

कष्टसाध्य ववासीर

दो दोपो से पैदा होने वाला, दूसरी आंटी मे होने वाला, एक साल की आयु वाला ववासीर कष्ट से आराम हो जाता है, आराम जरूर हो जात है, किंतु उसमे दिक्कत उठानी पडती है।

याप्य ववासीर

जिसमें सभी चिह्न असाध्यता के हों, किन्तु रोगी की अवस्था अवशेप हो, और वैद्य, औषधि, परिचारक, तथा रोगी, सारे ठीक हों तथा रोगी की अग्निमन्द नहीं हुई हो तो, वह ववासीर याप्य कहलाती है। यानि दवा आदि के प्रभाव से कुछ दिन शान्त रहती है। फिर समय आने पर जोर पकड लेती है।

असाध्य ववासीर

जन्म से होने वाली, तीनों दोपों से होने वाली और गुदा की तीसरी आंटी में होने वाली ववासीर असाध्य होती है।

उपद्रव

सोपद्रव अर्श रोगी नहीं वचता, यह पहिले कहा गया है, इसके विपय में लिखा है—

हाथ, पेर, गुदा, नाभि, मुख, पोते, इनमें सूजन होगई हो, हृदय और पसवाड़ो में पीडा हो, इन्द्रियों और मनमें मोह हो, वमन होती हो, अङ्गो में पीडा हो, ज्वर हो, प्यास खूब लगे, गुदा पक गई हो उसपर पीले २ फोड़े हो गये हों, अरुचि हो, शूल चलते हो, खून खूब गिरता हो, सूजन के साथ में अतिसार हो, ये ववासीर के उपद्रव हैं, और पैदा होने वाद रोगी का खातमा करके ही शान्त होते हैं। इन उपद्रवो को—

मृत्यु चिन्ह

कहते हैं, ये ववासीर के अरिष्ट चिन्ह कहलाते हैं। मतलब इसी से समझा जा सकता है कि उपद्रव रहित ववासीर साध्य है और सोपद्रव असाध्य

हिकमत से ववासीर

हिकमत के मत से ववासीर के २ भेद

(१) रक्ती मस्से

१—गुदा की रगो के सर पर गाढ़े वादी के के खून से मस्से पैदा होते हैं।

इसके ७ भेद है

(१)

पित्तका सिरा फूल जाता है जिससे कुछ २ मल टपकता है।

(२) नख्ल

इसमें शाखा और जड होती है।

(३) इनबी

ये अगूर के दाने की तरह गोल और चौड़े होते हैं।

(४) तीनी

ये आकार में अजीर के जैसे होते हैं।

(५) लूयी

मसूर के जैसे छोटे और बड़े मस्सो को लूयीं कहते हैं।

(६) तिमरी

छुहारे की गुठली की तरह जो लम्बे और कठोर होते हैं उन्हे तिमरी कहते है।

(७) तूती

शहतूत की तरह जो लम्बे और नर्म हो, उन्हे तूती कहते है।

इन सातो के भी अलग २ दो २ भेद है।

(१) पीब रिसने वाले।

दामी —इनमें छिद्र भी होते हैं।

(२) न रिसने वाले।

उमिया—ये बिना छिद्र के होते है।

भीतरी मस्से और बाहिरी मस्से, इस तरह इनके २ २ भेद और हो सकते है। बवासीर का दूसरा भेद है।

(२) रिहाई बवासीर

यह एक खराव हवा होती है, जो कठिनतासे पिघलती है. इसमे कुलज का जैसा दर्द होता है, कभी हवा पीठ की तरफ चढ़ती है. कभी स्रोनो और गुदा के इधर उधर आती है, कभी इससे पेट में गुडगुडाहट भी होती है। पेटमे कब्ज रहती है, कभी खूनी दस्त होने लगते है, वह हवा कभी हाथ पांवो मे चली जाती है जिससे वे चटकते हैं।

भगन्दर *Fistule in ano*

भग, गुदा, और वस्ति इन तीनो के विदारण से इस रोग का नाम भगन्दर है। अपक दशा में इन्हे फोड़े फुन्सी कहते हैं, किन्तु जब पककर फूट जाते है, तब इन्हे भगन्दर कहते है।

पूर्व चिन्ह

कमर के हाड में दर्द, गुदा में, उसके आस पास खाज, जलन और सूजन ये पूर्व चिह्न हैं।

इसके ५ भेद है

वायु से (१) शतपोनक, पित्त से (२) उष्ट्रग्रीव, कफ से (३) परिस्रावी, त्रिदोष से। (४)शम्बूकावर्त, और शस्त्रादि आगन्तुक कारणो से, (५) उन्मार्गी ये पांच तरह के होते हैं।

(१) शतपोनक

कुपित वायु रुककर गुदा के एक दो अंगुल दूर पर मांस और खूनको खराब करके लाल रग की फुन्सी पैदा करता है। उसमें शूल चलता है, दर्द खूब होता है, और जल्दी दवा न करने पर वह पक जाती है। मूत्राशय के पास में रहने के कारण घाव गीला होकर कई छेद वाला हो जाता है, उन छेदो में से झाग मिली हुई पीव वगैरह निकलती है। घाव फटता सा है, टूटता सा है, छिदता सा है. उसमे सुई चुभने जैसा दर्द होता है। गुदा फटी सी जाती है। छेदो के रास्ते मल मूत्र तक निकलने लगते हैं।

(२) उष्ट्रग्रीव

कुपित पित्त को अपान वायु नीचे की तरफ फेंक देता है, फिर गुदा के आसपास वह एक लाल रग की फुन्सी पैदा करता है, वह ऊपर को उठी हुई होती है, और ऊट की गर्दन जैसी होती है उसमे चूसने की, जलाने की, पीडा होती है, बाद

में वही पककर घाव के रूप में बदल जाती है, वह घाव हरदम आग से जलते हुये की तरह जलन करता है सडी पीव निकलती है फिर उसमें से मल, मूत्र आदि भी निकलने लगते हैं। यह सब उसकी अपेक्षा करने से होता है।

(३) परिस्रावी

पहिले की तरह यह फुन्सी कफ से पैदा होती है, रग सफेद होता है, उसमें खाज बहुत चलती है। शुरू में ही इलाज न किया जाय तो पककर घाव होजाता है, घाव कडा, ढीले से बहने वाला और खाजदार होता हैं, गाढ़ी पीव निकलती है। बाद में उपेक्षा करने पर मल मूत्रादि निकलने लगते हैं।

(४) शम्बूकावर्त

कुपित अपान वायु पित्त कफ को साथ लेकर अगूठे जैसी फुन्सी पैदा कर देता है, इसमें सब चिह्न रहते हैं,चीस, दाह, खाज आदि सभी चिह्न होते हैं। पकने के बाद में राध आदि झरने लगती है. वात, पित्त, कफ तीनो के सारे विकार इसमें देखने में आते हैं इसमें शख की जैसी अटी होती है, इसलिये इसे शम्बूकावर्त कहते है।

(५) उन्मार्गी

इसे आगन्तुक भगन्दर भी कहते हैं।

बवासीर के मस्से अगर ठीक न काटे जाय तो उसमें घाव पैदा हो जाता है इसी तरह गुदा के आसपास चोट लगने, कट जाने आदि से भी घाव होता है, इन घावों के होने पर भगन्दर हो जाता है, अलावा इसके मास के साथ हड्डी खाने से, वह पाखाने में मिलकर अपान वायु के द्वारा नीचे आई हुई आडी, टेढ़ी होकर गुदा में घाव पैदा कर देती है। घाव में से पीव के साथ साथ खून मिला मांस भी निकलने लगता है, बाद में घाव में कीड़े पड़ जाते हैं, वे कीड़े आसपास के मास को खाकर घाव को चीर फाड़ कर छेद देते हैं, जिनसे उन छेदों में से, वायु मल, मूत्र वीर्य ये निकलने लगते हैं।

यह है भगन्दरों का इतिहास, यूनानी वाले इन्हे नासूर मिकअद कहते हैं। गुदा के आसपास होने वाली हरएक फुन्सी भगन्दर नहीं होती सादी फुन्सिया भी वहा हो जाया करती है।

एक और फुन्सी होती है, जिसे—

भगन्दरी

कहते हैं, यह गुदा से ठीक दो अगुल की दूरी पर एक फुन्सी होती है. इसकी जड गडी हुई होती है, इसमें चीस चलती है, बुखार भी उसके साथ साथ रहता है।

मल गाढ़ना

पाखाने का हमेशा गाढ़ा ही आना भी एक रोग ही है, दूध जैसे तरल पदार्थ खाने पर भी मल हमेशा गाढ़ाही आता है. और त्याग के समय दिक्कत भी होती है। यद्यपि इस रोग का सम्बन्ध मलाशय या आमाशय सेही है तथापि गुदा रोगों के प्रकरण में हमने इसका उल्लेख कर दिया है।

तूनी (गुदा में चीस चलना)

यह वह रोग है, जिसमें बिगडे हुये वायु के कारण गुदा में चीस चलने लगती है, साथ में लिंग में भी इस रोग का सम्बन्ध गुदा और लिंग दोनो से ही है। मिर्चों जैसी तेज चीजों से भी गुदा में चीस चलने लगती है।

प्रतितूनी

इस रोग मे गुदा और लिङ्ग के साथ २ पेडू में भी वेदना होने लगती है।

सनिरुद्ध गुद

Strictvre of the rectam

मल का वेग रोकने से, वायु बिगड़ कर गुदा मे मल पथ को रोक देता है, तंग कर देता है, जिससे मल निकलने मे बड़ा कष्ट होता है।

अहिपूतन
Pruritus anii

यह रोग वैस तो वालकों को होता है, किन्तु उनके लिये ही 'पेटेन्ट' नही है, और सब बालकों को भी नहीं होता। चाहे वह बड़ा हो या बच्चा पाखाना फिरने के बाद गुदा को ठीक तौर से जो सफा नहीं करता, बराबर गन्दा रखता है, वह इसका शिकार होता है, अधोवायु निकलती है, और वहीं सड़कर गन्दगी पैदा करती है, फिर इसके फल स्वरूप खाज पदा होतीहै, फिर खुजाने पर वहां छोटी २ फुन्सियां पैदा हो जाती हैं, जो झिरने लगती है, फिर वहां घाव होते २ एक छत्ता सा हो जाता है।

गुद भ्रंश
Prolapsus ani

दस्तों से तथा ज्यादा किनछने से, रूखे और कमजोर बच्चो की गुदा बाहर निकल आती है, कभी २ यह रोग बड़े बूढ़ो को भी हो जाया करता है।

गुदा का नासूर

यह एक घाव होता है, जो गुदा में होता है, इसकी गहराई बहुत होती है, और यह कठिनता से अच्छा होता है, यह पैदा भी होता है सीधी आंत की तरफ, और इसमें से हमेशा पीला पानी निकला करता है।

इसके २ भेद हैं

यह सीधी आंत में होता है और इसके चिह्न ठीक वे ही हैं जो दूसरे के नहीं हैं।

२—यह घाव आंत केभीतर तक जा पहुँचता है, इसमें हवा और टट्टी अपने आपही इसके रास्ते निकल आती है।

गुदा की सूजन
इसके २ भेद हैं

१—खुजली होने के बाद, गर्म दवाओ के खाने के बाद, बवासीर के काटने के बाद, यह सूजन होती है। इसमें दर्द, जलन, पेशाब का बूंद बूंद उतरना आदि चिह्न होते हैं।

२—अपने अपने कारणों से दोष गुदा में ठंडी सूजन पैदा करते हैं, और उनके अपने अलग अलग चिह्न हैं।

गुदा का फट जाना
इसके ५ भेद हैं

१—अग्नि और सूखेपन से गुदा फट जातीहै।

२—गर्म सूजन होने से गुदा फट जाती है, जगह का ऊंची होना और दर्द होना ये चिह्न होते हैं।

३—सूखा मल जब गुदा के रास्ते निकलना है तो गुदा फट जाती है।

४—बवासीर के कारण गुदा फट जाती है।

५—गुदा की रगो में खून भरने, दस्त लगने, इनसे भी गुदा फट जाती है।

नोट—गुदा मैथुन कराने से भी गुदा फट जाती है।

सर्ज का इस्तरखा
४ भेद

१— गोली और गुदा के बीच वाले स्थान को सर्ज कहते हैं, जब वह ढीला हो जाता है तो अधो वायु बिना रुकावट के निकलने लगती है। पहिला भेद वह है जिस में गुदा के पट्ठे के टूट जाने या खिसक जानेसे ढीलापन आजाता है। यह तत्काल होता है।

२—बवासीर के काटने से पट्ठे को तकलीफ पहुँचे और सर्ज ढीला हो जावे, यह भी तत्काल होता है।

३—ठडी जगहो में बैठने आदि कारणो से भीतरी या बाहरी ठड भी पैदा होकर सर्ज को ढीला बना देती है, इसमें गुदा कुछ विशेष ढीली हो जाती है।

४–गुदा की सूजन भी सजे को ढीला कर देती है।

हस्त-पाद-रोग

(हाथो और पैरों की बीमारियां)

(*Discease of the hands anh of feet*)

हाथ और पैरों के रोगों का वर्णन हम एक ही जगह कर देना चाहते हैं। आयुर्वेद में हाथों के रोगो का वर्णन वातरोग प्रकरण में हुआ है, अलग नाम निर्देश करके नही। वातरोगो काहमने एक जगह उल्लेख नही किया है, जो रोग जिस अङ्ग से सम्बन्ध रखता है, उसका उसी अङ्ग के रोगो के वर्णन मे उल्लेख कर दिया है, इससे पाठकों को सुविधा भी होगी और पुस्तक का कलेवर भी नहीं बढ़ेगा।

ऐसा ही पैरो में रोगों के विषय में है—पैरो की बीमारियो का पता भी अलग पाद रोग नाम से नहीं हुआ है, जिससे देखने वाले को बड़ी असुविधा होती थी। हाथों के रोगो का वर्णन हमने एक ही जगह कर दिया है कि इससे पाठक पाठिकाओं को सुविधा ही होगी। उचित तो यह था कि हाथो के रोगो का वर्णन, गले के रोगो के बाद होता।

चूंकि क्रमशः, गले के बाद हाथों का ही नम्बर आता है, मगर कुछ समझ बूझ के ही हमने वहां उल्लेख नही किया, हाथो के रोग थोड़े मे है और पैरों के रोगों का वर्णन एक ही जगह करने के लिये हमारा हृदय भी उत्सुक था। अस्तु।

हाथो के मतलब उस अङ्गसे हैं, जिसे यूनानी में दस्त कहते हैं, सस्कृत में हस्त और डाक्टरी में Hand कन्धे से लेकर अगुलियो पर्यन्त अङ्ग हाथ के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कधे के पास वाले हिस्से को भुजा भी कहते हैं।

हस्त रोग

Discease of the hands

हाथों की बीमारिया

शरीर में दो हाथ होते हैं और दोनों हाथों का स्वस्थ होना भी इस जीवन में आवश्यक है। हाथों की आवश्यकता हमें प्राय. सभी कामों में पड़ती है, खाने के लिये, मुंह में अन्न पहुंचाने के लिये हाथों की दरकार होती है, आंख में जानवर घुसने पर उनके निकालने के लिये हाथ की जरूरत होती है, प्रेमिका से आलिङ्गन करने के लिये भी हाथों की दरकार होती है। किसी को पत्र लिखने के लिये हाथों ही से तो कलम उठाई और चलाई जाती है। किसी को पीटने के लिये भी हाथ ही अपेक्षित होते हैं।

यह एकदम सची बात है कि हाथ हीन आदमी एकदम बेकार है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। हाथों में ऐसे २ रोग भी होजाते हैं, जिनमें हाथ एकदम बेकार होजाते हैं हिलने, डुलने, से जवाब दे देते हैं। ऐसी अवस्था में मुंह पर मक्खी बैठने पर हाथ उसे हटा नहीं सकते, लाचारी होजाती है। यहां पर हाथों के खास २ रोगों का जिक्र किया जायगा। कोहनी से ऊपरके हिस्से को बाहु कहते हैं, जो कन्धे तक है।

विश्वाची

Arm Parlysis

यह वह रोग है, जिसमें हाथ लकड़ी की तरह सीधा होजाता है। बाहु की पीठ से लेकर हाथ की अगुलियो तक मोटी नसे होती हैं, जिन्हें कण्डरा कहते हैं। बिगड़ा हुआ वायु जब इन मोटी नसों में घुस जाता है और इनकी कार्यात्मक शक्ति को स्तब्ध कर देता है तो, हाथ न सिकुड़ सकता है, न ऊपर नीचे हो सकता है, न उससे लाठी चलाई जा सकती है और न उससे मुंह तक खाना ही पहुँचाया जा सकता है।

बाहुदोष

कन्धों में रहने वाला वायु बिगड़कर उनके बन्धनों को सुखा देता है, जिससे हाथ सूख जाता है, उसकी मांसलता नष्ट हो जाती है और उसमें दर्द होने लगता है, हाथ का सौंदर्य नष्ट होजाता है और नसें दिखलाई देने लगती हैं।

अपबाहुक

बाहु की नसें वायु की खराबी से सिकुड़कर तग होजाती है, जिससे हाथ बेकार होजाता है, लिखते समय हाथ कांपने लगता है।

अलावा इसके हाथों पर फोड़ा, फुन्सी आदि भी होजाते हैं, हाथों की अंगुलियों में खुजली चलने लगती है, इन सब बातो का वर्णन अपने२ स्थानों पर हुआ है। पैरों के फटने के हिसाब से ही हाथों के फटने का हिसाब समझना चाहिये।

नसों में गांठें पड़ना

कोहनी के ऊपर भुजा की नसों में कभी २ गाँठें पड़ जाया करती हैं इनकी संख्या प्रायः २-३ ही होती है, कभी एक भी होती है। यह गांठें पड़ती हैं गर्मी होने से, गर्मी का, Syphilis जहर देह में घुस जाने पर। जब गर्मी का असर हट जाता है, तब ये गांठें भी मिट जाती हैं, इनके दबाने से, हाथ में सनसनी होने लगती है। कांखके रोगो का जिक्र भी किये देते हैं।

कक्षा-कांखलाई
Bails

कन्धो के नीचे जो स्थान है उसे कांख कहतेहैं इस जगह बाल भी उगते हैं भुजा, पसवाड़ा और कन्धे का यह निम्न और अधः स्थान है योनि कन्धो और भुजा के नीचे का, और पंसवाड़े के ऊपरका इस स्थान में मैल बहुत आता है। मैल जमने से गन्दगी के कारण या भीतर में विकारी द्रव्य के संचित होने के कारण एक काली २ फुन्सी होती है, जो शुरू में छोटी होकर धीरे २ बहुत बढ़जाती है, इसमें पीडा बहुत होती है हाथ लटकाने में दिक्कत होती है। यह कभी जल्दी पक जाती है, कभी बहुत दर में।

अग्निरोहिणी (फोड़े)
Plague

ठीक कांख की जगह में यह फोड़े होते हैं जो आग की तरह जलते हैं। इनकेहोने पर मांस कड़ा हो जाता है, भीतर भी जलन होती है, और जलन के मारे बुखार भी हो जाता है। साथ ही दूसरे उपद्रव भी हो जाते हैं। इनकी संख्या नियमित नहीं है। कभी २ कई फोड़े होकर एक ही में गुथ जाते हैं। येफोड़े खतरनाक हैं, और ७-१०या ५ दिन में मौत का रास्ता दिखला देते हैं।

कांख में बदबू आना

बहुत से आदमियो के कांख में इतनी बुरी बदबू आया करती है, जिससे पास में बैठने वाले आदमी भी नाक सिकोड़ने लगते हैं। यह बदबू गन्दगी से आती है, कभी २ बिगड़े हुये दोष के कारण वहां आने पर भी बदबू आने लग जाया करती है

विदारिका फुन्सी

यह फुन्सी गोल और लाल होती है,यह कांख में होती है, और सांथलो मेंभी हो जाती है। इसमे दर्द भी होता है, जलनभी होती है, टीस भीचलती है, और बुखार भी हो जाता है। कभी २ एकसाथ ही दोनो कांखो में हो जाती है।

पाद रोग
Disease of the feet

उरु स्तम्भ

बोल चाल की भाषा में उरुस्तम्भ के मानी होते हैं, जांघ रुकना। जब जांघें अपना काम नहीं करतीं, रुक जाती हैं, ठहर जाती हैं, क्रिया हीनहो जाती है तो समझ लिया जाता है, कि उरु स्तम्भ

हो गया इस रोग में जांघे ऐसी मालूम होती हैं, मानोकिसी दूसरे कीहो, वे शून्य निर्जीव और बहुत भारी हो जाती हैं। हिलने, चलने, उठने, बैठने में बडी तकलीफ होतीहै। सीधे साधे शब्दों में जांघों का बे काम होना ही उरुस्तम्भ रोग कहलाता है।

कारण

ठंडे, गरम, भारी रूखे, पतले, चिकने पदार्थों के बे हिसाब खाने से, रात में जगने और दिन में सोने से, ज्यादा मेहनत करने, लाठी वगैरह की चोट पड़ने, चित्त के क्षोभ, भय तथा अजीर्ण से यह रोग पैदा होता है।

इन कारणों से वायु कफ तथा मेद ये तीनों दूषित होकर आम से लिपट जाते हैं, बांकी बचे पित्त को अपने काबू में करके जांघों में घुस जाते हैं, फिर जांघों की हड्डियों को गीले कफ से भर देते हैं। तब दोनों जांघें ठडी, निर्जीव, सुन्न अचल हो जाती हैं; यही इसका उत्पत्ति क्रम है।

पूर्व चिह्न

रोग होने के पहिले नींद बहुत आती है, ध्यान खूब लगाया जाता है, कर्मण्यता भग जाती है, कभी ज्वर हो जाता है रोमाञ्च होता है, अरुचि वमन तथा पिंडलियों और जांघोंमें दर्द होने लगता है। इन चिह्नों के बाद में रोग अपना असली रूप दिखलाता है।

स्पष्ट चिन्ह

पावों के सोने आदि लक्षणों से प्रायः इसके समझने में ही भूल हो जाती है। लोग, बड़े २ वैद्य भी इसे कलाय खंजता आदि समझ लेते हैं और वातज रोग समझ कर उसकी दवा करते हैं, किंतु इस तरह रोग घटने की अपेक्षा कही बढ़ता है।

इस रोग में अंग टूटते हैं, अगडाइयां आती हैं, देह ढीली पड़ जाती है, रोमाञ्च हो जाता है दर्द होना तथा ज्वर होना है, इनके अतिरिक्त दोनों जांघें सोई हुई सी निर्जीव क्रिया हीन भारी और नर्म हो जाती है, वे शून्य हो जाती हैं, जिस से मनुष्य को मालूम होता है, यह मेरी जांघ ही नहीं है।

असाध्य चिन्ह

जिस रोगी को दाह, पीड़ा सुई चुभने जैसी वेदना हो, तथा कांपता हो वह आराम नहीं हो सकता। यह रोग ज्यों २ पुराना होता है त्यों २ कष्ट साध्य होता जाता है।

श्लीपद *Elephantiosis*

इसे बोल चाल में हाथी पांव कहते हैं, फील-पांव कहने से भी इसका बोध हो जाता है। यह वैसे तो सभी देशों में होता है किंतु विशेषतः इन देशों में होता है, जहां वर्षा का जल बहुत दिनों तक भरा रहता है, और हमेशा ठंड रहा करती है बंगाल के देहाती इसीलिये इस रोग के ज्यादा शिकार होते हैं।

सामान्य चिह्न

शुरू में जांघनों की जड़ में थोड़ी सूजन होती है, उसमें पीडा भी खूब होती है वही सूजन धीरे धीरे घुटनों के नीचे पैरों पर जा पहुँचती है, जिससे पांव सूजकर हाथी के जैसे होजाते हैं, काशी में गंगाजी के ऊपर मोटे पांव वालों की संख्या बहुत होती है।

इसके ३ भेद हैं

१—वातज हाथी पाव

वायु से पैदा हुआ सोजा काला, रूखा, फटा हुआ, तीव्र पीडा वाला होता है, उसमें सहसा वेदना होती है, और बुखार बार २ होता है।

२—पित्तज हाथी पांव

पीला, जलनदार और ज्वर युक्त होता है।

३—कफज हाथी पांव

स्निग्ध होता है, सफेद होता है, उसमें थोड़ी पीड़ा होती है।

असाध्य चिह्न

जो सांप की बामी के समान, काँटेदार, पीड़ा वाला, एक साल का पुराना होजाता है, वह असाध्य होजाता है। जो कफ जन्य आहार विहारो से पैदा हुआ अधिक कफ वाले मनुष्य के पैदा हुआ झरने वाला, ज्यादा ऊंचा, खाजदार तथा तीनों दोषो के चिह्नो वाला भी असाध्य माना जाता है।

हिकमत से दो भेद

हिकमत के अनुसार इस रोग का मवाद पिंडली, रगे, तलवे, और भिल्लियों में होता है।

१—पहिला भेद

वादी का जला हुआ गाढ़ा खून पांवपर गिरता है, कठोर सूजन, गर्म, रंग का पहिले लाल होना, फिर नीला होना, और हरा होना, कभी थोड़ा फट भी जाता है, घाव होकर उसमें मवाद निकलने लगता है, दृढ़ होने पर सोजा पांव की ताकत को नष्ट कर देता है।

२—दूसरा भेद

कफ का गाढा दोष पांव में इकट्ठा होकर पांव को फुला देता है। इनमें नर्मी और सर्दी होती है।

वातरक्त *Mycosis fungoules*

पैरो की फटी हुई चकत्तेदार चमड़ी को देखकर समझ लिया जाता है कि इसे वातरक्त हुआ है। इस रोगमें बिगड़ता है यद्यपि खून, और उसी के सारे विगाड़ होते हैं, फिर भी प्रधानता रहतीहै इसमें वायु की ही। वायु ही खून को इधर उधर फिराकर शरीर को खराब करता है। डाक्टर बतलाते है कि इस रोग के शुरू में हाथ पैरो का चमड़ा फूलता है, फिर वहा फुन्सियां होकर घाव हो जाते हैं। घावो से खून पीव तथा नर्म मास झरता है, घावो में कीड़े पड़ जाते हैं।

कारण

नमकीन, खट्टे, चरपरे, चिकने, गरम, खारी पदार्थों के बिना हिसाब खाने से, सड़े, सूखे मांस खाने से, तिलो की खल, उड़द की दाल, कुल्थीकी दाल, लोविया पत्तो के साग, बैंगन वगैरहके साग दही, छाछ, कांजी, ईख, मछली, शराब, गांजा, आदि को खूब खाने से, रात में जगने और दिन में सोने से, हाथी, घोड़े आदि पर चढ़कर उन्हे खूब दौड़ाने से,ज्यादा दौडने फिरने से, बदहजमी में खाने से, विदग्ध पाक पर खानेसे, इन कारणों से वायु और खून, दोनो कुपित होते हैं. यह रोग अधिकतर उन लोगो को होता है, जो बहुत ही नाजुक होते हैं, गद्दी तकियो पर पड़े रहते है, शुद्ध हवा का सेवन नहीं करते, कभी कसरत वगैरह नहीं करते।

पूर्व चिह्न

इन कारणो से जब देह का खून विगड़ जाता है, और वह नीचे उतर कर पांवो में इकट्ठा हो जाता है, फिर वहां उसे वायु मिल जाता है। रोग अपना सारा मसाला तैयार करके जब बाहर निकलने को तैयार होता है तो, अपने सूचनादूतो को पहले बाहर भेज देता है। वे ये हैं. अंगो में दर्द जलन, खाज, सूजन, जकडाव, खरदरापन, शिरा, स्नायु और धमनियो में फड़कन, जांघो में कमजोरी, हाथो की हथेली, पैरो के तलवे, अगुलियो और टखने वगैरह में अकस्मात् काले २ चकत्ते हो जाते हैं।

वाद में उपेक्षा करने पर रोग प्रगट होता है, इसका और भी खुलासा यो समझिये, पैर या तो ठडे रहते है, या गरम रहतेहैं। या तो पसीनेआते है, या आते ही नहीं। पैर पीले पड जाते हैं रंग बेरंग हो जाता है, पैर सोते रहते हैं, उनमें दर्द रहता है, भारीपन रहता है, और जलन होती है।

वातरक्त ६ तरह का होता है।

(१) वाताधिक्य वातरक्त।
(२) पित्ताधिक्य वातरक्त।
(३) रक्ताधिक्य वातरक्त।
(४) कफाधिक्य वातरक्त।
(५) द्विदोषाधिक्य वातरक्त।
(६) त्रिदोषाधिक्य वातरक्त।

(१) वाताधिक्य वातरक्त

वातरक्त में वैसे तो वायु रहती ही है, फिर भी जब और दोष बहुत कम तथा वायु प्रचन्ड होता है तो शूल अधिक चलते हैं, अङ्ग फड़कने हैं, वेदना होती है, सूजन होती है, उसमें रूखापन और कालापन होता है। सूजन कभी बढ़ती है, कभी घटती है नाड़ियों और अंगुलियों के जोड़ सिकुड़ जाते है, अङ्ग रह जाते हैं, ठंडी चीजें छूने में बुरी लगती है, शरीर अकड़ जाता है, कपकपी होती है, और स्पर्श ज्ञान नष्ट होजाता है।

(२) पित्ताधिक्य वातरक्त

इसमें सूजन लाल होती है, उसे छूने से दर्द होता है, उसमें जलन होती है, वह पक भी जाती है और उसमें गर्मी बहुत ज्यादा रहती है। दोनो पैर सूजे हुये, गरम, लाल एवं नर्म होते हैं, मोह, स्वेद, वेहोशी, प्यास मद तथा दाह ये चिह्न होतेहैं।

(३) कफाधिक्य वातरक्त

इसमें ऐसा मालूम होता है, जैसे शरीर पर भीगा हुआ कपड़ा रक्खा हो। भारीपन, चिकनापन, ठंडापन, खुजली तथा थोड़ी पीड़ा ये सब होते हैं। स्पर्श शक्ति में कमी होती है पांवो में सफेद सूजन खुजली ये दो चिह्न देखकर ही कफ की अधिकता का परिचय मिल जाता है।

(४) रक्ताधिक्य वातरक्त

इसमें जिस खून की अधिकता रहती है, वह रोग पैदा करने वाले खून से अलहदा होता है। लाल या तांबे के रंग जैसी सूजन होती है, उसमें से मवाद बहता है, और खुजली के साथ २ उसमें तोड़ने की सी पीड़ा होती है।

(५) द्विदोषाधिक्य वातरक्त

जब एक साथ ही दो दोष अधिकता से रहते हैं, तो दोनों के लक्षण होते हैं। जहां वात और पित्त अधिक होते हैं, वहां सूजन लाल, काली होती है, उसमें जलन होती है। आदि।

(६) त्रिदोषाधिक्य वातरक्त

यही हाल त्रिदोष का है, इसमें सभी चिह्न होते हैं, अक्सर त्रिदोष का वातरक्त पैरोंके तलवों में होता है, वहां छोटे २ सफेद रंग के हजारों छाले पड़ जातेहैं हाथों में भी कभी२ यही हाल होजाता है। छालों में खाज चलती है और जलन होती है।

विशेष स्थान

हाथ, पैरों में ही नहीं वातरक्त सारे शरीर में होजाता है। चूहे का विष जैसे धीरे २ सारे शरीर में घुसता है, वही दशा यहां होती है।

उपद्रव और असाध्यता

नींद न आना, अरुचि, श्वास, मांस का का गल२ कर गिरना, सरदर्द, वेहोशी, कम दीखना, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी वेगुना चक्कर होना, हाफना, सुई चुभोने की पीड़ा भ्रम, क्लम, ग्लानि, अंगुलियों का टेढ़ा होना, फूटना, दाहहोना मर्मस्थानों में दर्द और गांठें ये उपद्रव होते हैं, उपद्रव वाला रोग असाध्य होता है, त्रिदोष वाला, पांवो से लेकर घुटनो तक फैला हुआ, बल और मांस क्षय वाला, चमड़ी फटने वालारोग असाध्य हो जाता है।

खञ्जता-लगड़ापन

कमर में रहने वाली वादी बिगड़कर, जब कमर से लेकर टखनों तक की मोटी नसो को खेंचती है, हिलाती है तो आदमी चलने के समय

लंगड़ाता हुआ चलता है। यह रोग गर्मी में भी पैदा हो जाता है, और चोट लगने, गिर पड़ने आदि वायु को कुपित करने वाले कारणों से बाद में भी।

पगुता-लूलापन

वही कमरस्थ पवन जब जांघो की नसों को पकड़ के उनकी गति को नष्ट कर देता है तो आदमी लूला हो जाता है, यह दोनो पांवो की खराबी है।

कलाय खञ्जता

Spastic paraplegia

संधियो को बांधने वाली नसे जब ढीली पड़ जातीहैं तो, आदमी चलते समय कांपता है और कुछ लगड़ा के चलता है।

क्रोष्टु शीर्ष-घुटने की सूजन

Synavitis the knel jaints

चोट लगने वगैरह से, और विना चोट लगे भी बिगड़ी हुई बादी के घुटने में आ जाने से, और खूनकी खराबीसे घुटने पर एक गहरा सोजा आ जाता है, सोजा कड़ा होता है, और उसमें पीड़ा भी होती है। देखने में घुटना गीदड़ के सर जैसा मालूम होता है, इसलिये इसे क्रोष्टु शीर्ष कहते हैं। यह रोग अक्सर बहुत कम होता है।

पैरो की जलन

Burming of the feet

पैरो की जलन से खास मतलब है तलवो की जलन से, किसी २ के तलवे हरदम जला करते हैं। पित्त और खून के साथ मिली हुई बादी पैरों में उतर कर फिर जलन पैदा करती है।

पैरो में झनझन करना

Anaesthesia

इसे आयुर्वेद में पाद हर्ष रोग कहतेहैं, जिसमें पैर झनझनाके सो जाते हैं। बादी कफ को साथ लेके जब पैरो पर उतरती है तो पैर झनझन करने लगते हैं, और थोड़ी देर में पैर को दवाने से या विना दवाये ही झनझनाहट मिट जाती है।

टखने का दर्द

पैरो के ऊटपठांग तौर पर रख कर चलने, उनसे ज्यादा मिहनत लेने, गिर पड़ने आदि से टखनो में पीड़ा हो जाया करती है।

खल्ली

यह वह रोग है, जिसमें बादी के कारण पांव, जांघ, साथल और हाथ का मूल स्थान ये सब ठिठुरा जाते हैं।

पैरो की बिवाई (फटना)

जाड़े के दिन में अक्सर पैर फट जाते हैं। इसका कारण ठडे पानी का अधिक उपयोग और ठंडी हवा है। किन्तु बहुत से आदमियों के पैर गर्मियो में भी फटे रहते हैं। नगे पैर फिरने से रूखापन आकर भी पैर फट जाते हैं।

पैरो का खारुआ (अलस)

कीच में फिरने, मिट्टीमें काम करने से, अंगुलियो में खाज चलने लगती है और गीलापन रहने के साथ २ जलन भी होने लगती है। यह रोग गरीब मजदूरो को जो कि मिट्टी को गीली करने आदि का काम करते हैं और किसानों को अधिक होता है।

अनुशयी (पैर की फुन्सी)

यह एक सूजनदार गम्भीर फुन्सी होतीहै, जो पैरो पर ही होती है, यह भीतर ही भीतर पकती है और इसका रग ठीक पांव जैसा ही होता है।

आटन पड़ना (कदर) *Carns*

छोटी २ ककरियो के पैरो में छिदने पर, कांटे वगैरह के पैरो में टूटने पर, पैरो में आटन पड़ जाते हैं किसी२ के पैर में तो यह बहुत होते हैं। तलवो में जगह २ आटन पड़ने से पैर खराब

होजाते हैं। अतः इन्हे कटवा के साफ करा देना चाहिये।

गुट्ठा *Bunion*

तङ्ग जूता पहिनने से अगूठे के जोड़की उपरली आन्तरिक झिल्ली सूज जाती है। कभी २ जलन होकर पीव भी जारी होने लगती है।

पैरों का अधिक पसीना

किसी २ के पैरों में हरदम पसीना आता रहता है, जिससे पैर गीले ही बने रहते हैं, वह खराबी होती है, हरदम जुर्राब पहिन के बूट डालने से और पैरो की खराबी के नीचे उतर आने से।

अंगुली का जख्म *Whitlow*

यह जख्म हाथों की अंगुलियों में भी हो जाता है। अंगुलियो पर चोट लगने, नाखूनो के वेशी कटने, किसी विषाक्त पदार्थ के अंगुलियों में लगने आदि से अंगुलियों में जख्म हो जाता है। जिससे जलन के साथ २ अंगुली लाल होजाती है, पीव भी आने लगती है।

नख रोग

चिप्प *Whitlow*

वायु और पित्त से पैदा होने वाला, नाखून के मांस का यह वह रोग है, जिसमें मांस पक जाता है, जलन होती है और दर्द होता है, इसे उपनख भी कहते है। यह एक तरह से अंगुली का जख्म ही है।

(२) कुनख

चोट वगैरह से नाखून, रूखे, काले और खरदरे होजाते हैं।

(३) नखों की सफेदी

जब एक तरह की निकम्मी गाढ़ी तरी नखों के नीचे आजाती है, तो नख सफेद होजाते है। खून के कम होने, तथा तरीके पथराने से नख अवरख जैसे सफेद होजाते हैं।

(४) नखों का पीलापन

खून के कम और पित्त के अधिक होजाने से नख पीले होजाते हैं।

(५) नख दर्द

चोट लगने' कट जाने, मिच जाने आदि से नखो में दर्द होने लगता है।

(६) जुजाम (नखों का मोटा होना)

तेज वादी के दोष से, जो पित्तके जलने से पैदा होता है यह रोग पैदा होता है। इसमें नख मोटे ३ हो जाते हैं. खुश्की के मारे उनकी जड़ें कमजोर हड्डी की जैसी हो जाती हैं और खुजाने से नख चूर २ होने लगते हैं।

(७) नखों का फटना

शरीर में वादी के इकट्ठे होने और खुश्की होने के कारण नख फटने लगते है।

(८) नखो का उखड़ना

इसके दो कारण हैं—

जिनसे यह दो तरह का होता है।

(१) ढीला होना। इसमें तरी की अधिकता से नख जड़ से ही उखड़ जाते हैं, दर्द नही होता।

(२) जड़ का खराब होना, खून तेज होकर नखो की जड़ को खराब कर देता है, इसमें जोरदार दर्द होता है।

(९) नखो की खुजली और फूलना

गन्दगी होने आदि कारणों से नख फूल जाते हैं।

(१०) नख के नीचे खून भरना

चोट लगने आदि कारणो से नख के नीचे खून भर जाता है, यह रग खुलने से होता है।

चेचक

Small pox

इसे शीतला कह सकतेहैं, ममूरिका नही जैसा कि कई विद्वान कहते है। यह छूतदार रोग है

और एक ही घर में कभी २ सब आदमियो को हो जाता है, बच्चो को चेचक विशेष होती है आजकल सीहुसका टीका भी लगाया जाता है; जिससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। मारवाड़ में चेचक को माता निकलना कहते है, बगाल में इसे बसन्त रोग कहते हैं।

श्वास द्वारा-स्पर्श द्वारा—कपड़ो के व्यवहार द्वारा आदि से यह रोग एक दूसरे को लग जाता है। गन्दगी रखने, घरो में कूड़ा करकट पड़ा रहने शरीर को मैला रखने आदि कारणो से इसकी छूत पैदा होती है। ऋतु परिवर्तन के समय वायु-मण्डल से भी कभी इसकी छूत पैदा होजाती है।

पसीने, श्वास, फुन्सियो के पीब खुरड आदि के द्वारा वायु के द्वारा और रोगो के समीपस्थ चीजों द्वारा इसकी छूत दूर २ पहुँच कर अपना असर दिखलाती है। घरों के किवाडो तक में इसकी छूत मौजूद रहती है। चेचक के दानो मे पीब पड़ने पर छूत लगना बहुत सरल होजाता है एक ही आदमी को कई बार चेचक निकल आती है। यह चार अवस्थाओं में विभक्त है।

चार अवस्था

(१) अवस्था

सहसा छूत का जहर सब शरीर में घुसता है, तो ७दिन तक और छूत का असर जब वायु द्वारा होता है तो १२ दिन तक कोई असर प्रगट नही होता। थोड़ी सी मलिनता, सुस्ती और अकर्मण्यता आजाती हैं, इसे छूत प्रवेश काल कहते है।

(२) अवस्था

शुरू मे सहसा जाड़ा देकर बुखार चढता है, शारीरिक ताप १०४ से १०६ तक हो जाता है। नाड़ी भी बहुत तेज चलने लगती है। आखे लाल हो जाती हैं, मुंह तमतमाया सा हो जाता है और गले की खून की नाली तड़फने लगती है। सर में दर्द हो जाता है, शरीर की रगें और पट्ठे फड़कने लगते है रोगी प्रलाप करने लगता है बच्चों को ऐंठन Convulsion होने लगती है रीढ़में जोरसे दर्द होने लगता है, आमाशय पर बोझा मालूम होता है। उबकाइयां आने लगती हैं, कभी कै भी हो जाती है। कभी जुकाम भी हो जाता है और गले में घाव भी।

(३) अवस्था

ज्वर के ३-४ दिन बाद फुन्सियां निकलनी शुरू होती हैं, जो पहिले मुंह, मस्तक और हथेली के पीछे निकलती है, १-२दिन बाद धड़ और हाथ पैरो में निकल आती है।

फुन्सिया कभी अधिक तादाद में निकलती हैं कभी कम तादाद में, कभी पास २ निकलती हैं, कभी फासले पर, कभी कभी इतनी सटकर निकलती हैं कि वे आपस में मिल जाती हैं। मुंह पर कुछ विशेष फुन्सियां निकलती हैं।

फुन्सियो की दशा में परिवर्तन होता है वह भी देखिये।

शुरू में चमड़ी पर एक लाल चमकदार बिन्दु प्रकट होता है, जो चमडी से कुछ ऊंचा होता है दूसरे या तीसरे दिन वह बिंदु चपटा, कठोर,उभरा हुआ और छूने पर राई या सरसो की तरह सख्त जान पड़ता है। बाद में इन फुन्सियो में साफ पानी भर जाता है। पांचवे दिन दानो के केन्द्रो पर एक गड्ढा सा पड़जाता है। पीछे दानो के किनारे साफ और उनके भीतर का पानी गदला होने लगता है। दानो के चारो तरफ लाल घेरा सा पड़ जाता है। ज्यो २ पीब पडती है दानो का स्राव भी कम होने लगता है और दाने नोकदार होने लगते है सुई से छेदने पर भी दानो का पानी एक साथ निकलने में समर्थ नही होता।

आठवें दिन दाने खूब भर जाते हैं, और उनके सर पर एक काली बूंद दिखलाई देने लगती है पीछे दाना फूटता है और पीव बहने लगती है। कभी पीव सूखकर खुरड भी बन जाती है और उसका रग भूरा होता है, कोई २ दाने मुरझा जाते हैं फूटते नही।

चार अवस्था

इसमें फुन्सिया मुरझाने लगती हैं और खुरड बधने लगता है, ११ से १४ दिन के भीतर खुरड अलग होने लगता है और उसके अलग होने पर भूरे रग का एक निशान रह जाता है। अगर फुन्सियां गल जाती हैं तो आरोग्यावस्था में गड्ढे पड़जाते हैं।

चेचक के २ भेद

आधुनिक विद्वान चेचक को २ भागो में मानते हैं।

(१) सरल चेचक।

(२) कठिन चेचक।

१– सरल चेचक

यह तो सरल है ही इस पर विशेष लिखने की दरकार नहीं। इसमें दाने दूर २ और कम निकलते हैं, चिह्न भी सरल होते हैं, और हानि भी कम ही होती है। इसे ' डिस्टक्टस्मालपाक्स ,, भीकहतेहैं

२—कठिन चेचक

इसमें सभी चिह्न कठिन और भयानक होते हैं दाने पास २ और बहुत निकलते हैं। दाने आपस में सट जाते हैं,और निकलते भी जल्दी ही हैं शुरू में सारी देह पर छोटी २ फुन्सियां होकर फैलती हैं वे गुच्छेदार और चमड़े से कुछ ऊंची होती है, इनमें पीव भी बहुत जल्दी पड़ती है और दाने मुंह पर अधिक हो जाते हैं दाने चपटे फैले हुये और मिलने पर फफोले जैसे मालूम होते है, पीप या तो पानी मिला या बदबूदार खून निकलता है दानो के चारों तरफ की चमड़ी लाल काली होती है। जब दाने सूखने लगते हैं, तो बड़े २ काले रग के नर्म खुरड निकलते हैं। चमड़ा गल जाता है और गड्ढे पड़ जाते हैं। यह बहुत दिनों में आराम होती है इसमें जब लुवाबी झिल्लियां सूज जाती हैं तो हालत बड़ी खतरनाक हो जाती है झिल्लियो के सूजन की कथा कठिन लक्षणो में लिखी है।

कठिन चेचक के दो भाग हो सकते हैं।

कठिन चेचक के २ भेद

(१) मेलिगनेन्ट स्माल पाक्स

(२) एबोर्टिव पाक्स

(१) मेलिगनेन्ट स्माल पाक्स

इसका असर हृदय पर होता है, फुन्सियो के निकलने के पहिले ही रोगी मर जाता है। इसे महा असाध्य चेचक समझना चाहिये। इसके भी ३ भेद हैं।

इसी के ३ भेद

(1) Black pox

यह काली शीतला है, इसमें देह से जगह २ खून निकलने लगता है, दानो में भी खून ही निकलता है। निर्बलता बहुत आ जाती है, दाने बहुत देर में और अंड-बंड निकलते हैं, कभी २ दाने दिखाई देकर भी समा जाते है। रग में दाने काले होते है। इसे Hemorrhagic भी कहते हैं।

(२) अल्सरेटिव स्माल पाक्स

इसमें दाने फूट २ कर घाव बन जाते हैं, जिससे बुरी सूरत हो जाती है, कभी २ गहरे घाव भी हो जाते है।

(३) गैंग्रीनस स्माल पाक्स

इसमें दाने सड़ गल कर घाव बन जाते हैं, घाव भी सड़े ही होते हैं, उनमें बदबू बहुत आती है, इसी से इसे सड़ी शीतला कहते हैं।

(८) एवोर्टिव पाक्स

पहिली से यह सरल है, इसमें न दाने सड़ते हैं न घाव भी पड़ते हैं वर्ना दाने मुरझाकर सूख जाते हैं। इनके भी दो भेद हैं।

इसके दो भेद

(१) क्रिष्टे लाइन पाक्स

शुरू से आखिर तक दाने साफ और एक से होते हैं।

(२) माडीफाइड स्माल पाक्स

एक बार होकर फिर उसी मनुष्यको यह रोग होता है तो 'माडीफाइड' कहते हैं। इसमें खुरन्ड उतरने पर कोई निशान नहीं रहता।

भयानक चिह्न

चेचक के भयानक चिह्नो पर भी जरा दृष्टि निक्षेप कीजिये।

दाने खूब निकलते हैं और आपसमें सट जाते हैं, दानो के मिलने की जगह सूज जाती है, और वहां तड़प तथा तनाव होता है, गले से ऊपर का कुल भाग सूज जाता है, यानी सर, मस्तक, पपोटे सूज जाते हैं और आखें बन्द हो जाती हैं, दानोमें खुजली चलने लगती है, जलन होती है और उनका चमड़ा लाल हो जाता है। खुजाते २ दानो में घाव होजाते हैं। कुछ झिल्लियां भी इसमें रोगाक्रांत हो जाती हैं।

(क) मुह की लुआवी झिल्ली

रोगग्रस्त हो जाती है तो गला दुखने लगता है पानी निगलने में भी दर्द होता है, लार बहुत बहती है, और इनसे भी खून फैलती है। बोलना मुश्किल हो जाता है।

(ख) नाक की लुआवी झिल्ली

जब सूज जाती है तो नाक सूजकर बन्द हो जाती है, रोगी मुह से सांस लेने लगता है।

(ग) आंख की लुआवी झिल्ली

जब आक्रात हो जातीहै तो, आंखो से कीचड़ बहुत निकलने लगता है, जरा सा भी प्रकाशआखो को सह्य नही होता। पलकों के अदर दाने निकल आते हैं, आंख का सफेद भाग सड़ जाता है, उसमें दाने निकल आते हैं। बहुत से तो इससे अंधे या काने हो जाते हैं।

(घ) आमाशय और आंतो की लुआवी झिल्ली

जब रोगाक्रांत हो जाती है तो, हाजमा बिगड़ जाता है दस्त आने लगते है।

(च) मूत्रेन्द्रिय की लुआवी झिल्ली

के रोग ग्रसित होने पर पेशाब में जलन होने लगती है, पेशाब बूद २ आने लगता है और कभी २ बन्द भी हो जाता है। कभी २ खून भी निकल जाता है।

सयुक्तरोग

चेचक से और कई रोगो की दोस्ती है। वह भी दोस्ती का फर्ज अदा करने के लिये आ जाया करते है, यह आवश्यक ही नहीं है कि सब एक ही रोगी को आवें। कभी कम कभी वेशीं आते हैं।

उन रोगो की सूची यह है—

(१) आंखो में सूजन और उसके सफेदभाग में Cornla में, घाव हो जाता है।

(२) कान में Otitis (सूजन) Htorrhala (बहना) आदि कान के रोग हो जाते।

(३) नाक सड़कर बैठ जाती है या गलकर गिर जाती है।

(४) हलक की सूजन, साधारण खांसी, न्यूमोनियां आदि श्वासेन्द्रिय के रोग हो जाते हैं।

(५) मुह से लेकर गुदा तक जाने वाली भोजन की नली के रोग, जीभ का सूजना, आमाशय और आंतो में सूजन आदि।

(६) गुर्दे में खून जमना, गुर्दे में घाव होना आदि गुर्दे के रोग।

(७) मसाने की सूजन पेशाव का रुक २ के आना आदि मूत्राशय के रोग।

(८) भग, लिंग और दूसरे गुप्त विभागो मे सूजन होना, अड कोषो का सड़ना।

(९) सेप्टीसेमिया यानी शरीर का सडना।

(१०) देह के विविध भागो मुंह, नाक, गुदा, आदि से खून बहना।

(११) पेट के अस्तर लगाने वाली झिल्ली की सूजन।

(१२) गज होना, मुंह पर छाजन होना।

ऐसे ही और भी रोग हो सकते हैं।

चिकिन पाक्स

Chicken Pox

इसे दुलारी माता कहते हैं, यह भी छूतदार रोग है; और अक्सर १२ वर्ष की आयु से कम उम्र वाले बच्चो को होता है. इसमें भी साफ दाने देह पर निकल आते हैं, छूत द्वारा यह रोग भी एक दूसरे को लग जाता है, इसकी छूत और चेचक की छूत में अन्तर है, जो लक्षणो से ही मालूम होजाती है, यह दो दर्जों में विभक्त है।

२ दर्जे

(१) सरल।

(२) कठिन।

दोनो का वर्णन इन शब्दो में है।

१—सरल दर्जा

तीन चार दिनतक कोई चिह्न प्रकट नही होना बाद में सरल ज्वर होता है, ज्वर के २४ या ३६ घटेबाद लाल चमक दार दाने निकलते हैं, जो पहिले छाती और कंधो पर बाद में हाथ और पैरो पर। एक के बाद एक दाना निकलता है, और कठोर नहीं होता। फुन्सियो को अंगुली से दबाने पर उनकी लाली मिट जाती है, किन्तु अंगुली हटाने ही लाली आजाती है, सरमें भी थोड़ी २ पीडा होजाती है, दाने गोल अडे की भांति होते हैं। चेचक की तरह इसके चारो ओर लाल घेरा नही होता, छेद करने पर दानो में से कुछ जल निकल जाता है। ३ दिन से ५ दिन तक दाने फूट जाते है और खुरड बध कर उतर जाता है। इन दानो में भी खुजली चलती है, और खुजाने से घाव होजाता है।

२—कठिन दर्जा

दाने अधिक और पास २ होते हैं, और वे जले हुये फफोलो के जैसे होते हैं, दस बारह दिन तक दाने निकलते और गायब हो जाते हैं, खांसी और ज्वर भी कुछ विशेष हो जाते है, इसमें दूसरे रोगो का उपद्रव नही होता।

मीजिल्स खसरा *Measles*

इसकी छूत बहुत तेज होती है, पूर्व में इसे केजिमा पेजिमा माता कहते है, इस रोग में लाल फुन्सियां होती है, इसकी छूत आस पास तो बहुत सरलता से पहुँच जाती है, प्राय. बच्चो को भी यह रोग होता है।

इसकी २ दशा हैं

१—सरल दशा

छूत लगने के १०-१२ दिन तक तो कुछ खांसी के अलावा कोई उपद्रव नही होता, बाद में ज डा लग के बुखार चढ़ता है जो १०३ तक पहुँच जाता है, सर में दर्द होजाता है और वह भारी हो जाता है. जुकाम के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। आंखो के पपोटे लाल हो जाते हैं, सूज जाते हैं, आखो और नाक से पानी बहने लगता है, छींक आने लगती है, कभी २ नाक से खून भी निकल जाता है, गले में सरसराहट और दर्द होता है,

आवाज भारी होजाती है, खांसी ठहर२ के चलती है, बच्चों को रात में ऐंठन होने लगती है, और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, किसी २ के पेट में भारीपन भी हो जाता है, और कभी २ कै भी हो जाती है।

ज्वर से ४ या ६ दिन कभी इससे भी अधिक समय में फुन्सिया निकलनी शुरू होती है, जो पहिले माथे पर. फिर छाती पर, और हाथ पैरो में निकलती हैं, वे कई तरह की और कड़ी होती हैं, रंग उनका लाल होता है, गुलाबी होता है काला और पीला भी हो जाता है। १२ घंटे तक दाने बराबर निकलने और बढ़ते रहतेहैं दाने मिल-मिल कर दूज के चन्द्रमा की शक्ल तैयार कर देते हैं। अधिक दाने पर कोई सूरत नहीं बनती, दाने जब मुरझाने लगते हैं, तो तांबे की रंगत हो जाती है, और भूसी उड़ने लगती है। किसी २ के चमड़े में जलन और दर्द होता है, किसी २ को दस्त लग जाते हैं, हाथ और कानके भीतर सूजन फैल जाती है, १२ घन्टे से ७ दिन तक इसकी अवधि है।

सम्मिलित रोग

(१) क्रूप (एक तरह की खांसी)
(२) गले में झूठी झिल्ली पैदा होना।
(३) फेफड़े के लोथड़े की सूजन।
(४) ठंडा पड़ जाना।
(५) फेफड़े की पतली २ रगों का सूजना।

आदि २ रोग इसमें हो जाते हैं कभी २ क्षय भी हो जाता है, ये रोग अगर साथी बन जाते हैं, तो बचना सहज नहीं होता।

२—कठिन दशा

शुरू से ही खराब २ चिन्ह प्रगट होने लगते हैं, सन्निपात के सब लक्षण प्रगट होने लगते हैं, फेफड़ा सूज जाता है, उसमें खून जम जाता है, दाने काले या नीले होते हैं, उनमें खून बहता है, पेशाब में अलब्यूमन (दही का जैसा लबदार) मूत्रांश) निकलने लगता है, बेहोशी होती है, आंख कान, नाक में सूजन होती है।

कृत्रिम खसरा *Germen measles*

इसे जर्मनी खसरा कहते हैं, संभवतः यह जर्मनी का रोग है, इसमें खसरे और लाल ज्वर दोनो के चिन्ह होते हैं, यह प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक मनुष्य को हो जाता है, बुखार, जुखाम आदि खसरे के चिह्न होते हैं किंतु हलके रूप में, गले में सूजन भी हो जाती है, इसके दाने लाल बुखार के दाने जैसे होते हैं, और धड़ में विशेष निकलते है, दानों के निकलने पर ज्वर भग जाता है, ४-५ कभी १०-१२ दिनमें दाने मुरझाकर भूसी उडने लगती है।

इसमे सम्मिलित रोग नही होते।

मसूरिका।

जैसे उपदंश को सिफलिस कह देते हैं, वैसे ही आजकल के विद्वान्, मसूरिका को Small pox कह देते हैं। Small pox मसूरिका तो नहीं है इसे चेचक कहना ठीक होगा और कुछ विद्वानो की धारणा है भी ऐसी ही। चेचक का वर्णन अलग होगा, इसमें और चेचक में अन्तर भी बहुत है, जो दोनों के लक्षणो से जाना जा सकता है। चेचक को आयुर्वेद में शीतला कहते हैं। मसूर के दाने जैसी फुन्सियां इस रोग में होती हैं, इसलिये इसे मसूरिका कहते हैं। मसूरिका रोग क्यो होता है इसका बर्णन आयुर्वेद में इन शब्दों में हुआ है—

तीखे, खट्टे, नमकीन और खारी पदार्थों के अधिक खाने से, विरुद्ध आहार करने से, ज्यादा खाने से, लोबिया, उड़द आदि चीजें खाने से. वायुमण्डल के दूषित होने से, जल के बिगड़ने से राहु, शनिश्चर आदि क्रूर ग्रहो की दृष्टि देश पर

पड़ने से, वात, पित्त आदि दोष बिगड़ते हैं और दूषित खून के साथ मिलकर इस रोग को पैदा करते हैं।

मसूरिका के पूर्व चिह्न

जब मसूरिका होने लगती है तो, पहिले बुखार आजाता है, खुजली चलने लगती है, अंग टूटने लगता है, अरुचि हो जाती है, भ्रम हो जाता है, चमड़ी सूजने लगती है, वर्ण बदल जाता है और आंखो में लाली छा जाती है।

मसूरिका के भेद

१–वातज मसूरिका।
२–पित्तज मसूरिका।
३–कफज मसूरिका।
४–त्रिदोषज मसूरिका।
५–रक्तज मसूरिका।

दोषो के भेद से मसूरिका ५ तरह की होती है। किन्तु धातुगत होने के कारण इसके ७ भेद और हो जाते हैं, साथ ही चर्मगत और रोमगत होने से २तरह की और हो के ९ भेदोंमें विभाजित हो इन पांच भेदो से मिलके १४ तरह की हो जाती है।

धातुगत और चर्म तथा रोमगत मसूरिका का उल्लेख आगे चलकर होगा।

(१) वातज मसूरिका

काली लाल रूखी तीव्र दर्द वाली कड़ी और देर में पकने वाली फुन्सियां होती हैं।

(२) पित्तज मसूरिका

लाल पीली सफेद जलनदार तीव्र पीड़ा युक्त और जल्द पकने वाली फुन्सियां होतो हैं। सन्धि अस्थि और पर्व स्थानो में टूटने जैसी पीड़ा होती है, खांसी हो जाती है, कम्प और अरुचि हो जाती है, भ्रम होने लगता है तालु होठ और जीभ सूख जाती है। प्यास बढ जाती है।

(३) कफज मसूरिका

सफेद चिकनी बहुत मोटी बहुत देर में पकने वाली खुजलीदार और थोड़ी पीड़ा वाली फुन्सियां होती हैं।

(४) त्रिदोषज मसूरिका

नीली, चपटी, फैलने वाली, बीच में नीची और दर्द भरी फुन्सियां होती हैं। उनमें बदबू आती है स्राव होता है और बहुत देर में पकती है

(५) रक्तज मसूरिका

खून की मसूरिका पित्तज जैसी होती है दस्त लग जाते है अङ्ग टूटने लगता है जलन होती है प्यास अरुचि मुंह आंखों का पकना और जोरदार ज्वर आदि ये चिह्न होते हैं।

सप्तधातुगत मसूरिका

अब ७ धातुगत मसूरिओं का वर्णन होगा।

रसगत मसूरिका

इसमें होने वाली मसूरिका थोड़े दोष वाली होती है, पानी के बबूले जैसी होती है और दबाने से पानी निकलता है।

रक्तगत मसूरिका

खून में होने वाली मसूरिका लाल जल्द पकने वाली चमड़ी वाली और दबाने पर खून बहाने वाली होती है।

मांसगत मसूरिका

कड़ी चिकनी, देर में पकने वाली, पतली चमड़ी वाली और जलनदार होती है। इनमें खुजली चलती रहती है बेहोशी और देह में शूल चलना ये चिह्न भी होते हैं।

मेदोगत मसूरिका

मण्डलाकार, घिरी हुई कोमल, कुछ ऊंची, मोटी, दर्द युक्त, भयकर, सज्वर, सबेहोशी, सव्याकुलता और ससन्ताप होती है।

अस्थिगत मसूरिका

छोटी, देह के रग वाली रूखी, चिपटी कुछ ऊंची, अत्यन्त मोह, व्याकुलता और दर्दसे युक्त होती है। यह घातक है।

मज्जागत मसूरिका

मज्जा, हड्डियो का सारहै विना मज्जाके हड्डियां २ ही नहीं रहती। मज्जागत मसूरिका घातक होती है, इसमें अस्थिगत मसूरिका के ही सब चिह्न होते हैं।

शुक्रगत मसूरिका

वीर्य तक पहुँच जाने वाली फुन्सियां पकती नही। किन्तु देखने में पकी हुई मालूम होती है। चिकनी कोमल और भारी दर्दयुक्त फुन्सियां होती है। जड़ता, वेचेनी, मोह दाह और उन्माद ये भी साथ ही रहने हैं, यह घातक होती है।

चर्मगत मसूरिका

चमडी में जब मसूरिका होतीहै, यानी उसकी तह तक पहुँच जाती है तो, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेचैनी ये चिह्न होते है।

रोमगत मसूरिका

पहिले बुखार आता है, बादमें फुन्सियां होती हैं। रोमाञ्च होना, खांसी और अरुचि ये इसके चिह्न हैं। फुन्सियां लाल और रोम छिद्रो के बराबर ऊची होती है। यह कफ और पित्तसे होतीहैं।

नोट—रस, रक्त आदि सातो धातु विना दोषो के विगडे खराब नही होते। पहिले दोष खराब होते हैं, बाद में धातु अतः धातुगत मसूरिकाओं में भी दोषो की पहिचान कर लेनी चाहिये।

मसूरिका में सूजन

मसूरिका केअन्त मं, कोहनी के ऊपर या कन्धों के ऊपर दरुण सूजन हो जाती है, वह सूजन बड़ी दिक्तों से आराम होती है, और कभी २ खातमा भी कर देती है।

मरण चिह्न

प्रलाप, बेचैनी, बेहोशी, तृषा, हिचकी, प्रमेह खांसी, भयकर ज्वर, दाह, अत्यन्त निद्रा, दुर्गन्धता, मुंह, नाक, और आंखों से खून बहना, कण्ठ में घुर घुर शब्द होना, और दारुण श्वास इनसब उपद्रवों के होने पर रोगी आराम नहीं होता।

नाक से खूब सांस लेनेपर, बहुत प्यास लगने पर, और वायु की बीमारियां, शिरोग्रह, अपतानक आदि के होने पर रोगी के बचने की आशा नही रहती।

त्रिदोषज मसूरिका, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्रगत मसूरिका में भी बचना असभव है।

विसर्प *Erysipelas*

विसर्प को प्रसरण शील प्रदाह मय और पुन्सी रोग कह सकते है, प्रसरण करने से ही इसे विसर्प कहते हैं, शरीर में और उपद्रव तो होते ही है, जलनदार फुन्सियां भी होती है, जो आज यहां है तो कल वहां। दोषों के विगड़ने वाले आहार विहार से यह रोग होता है आजकल खाने पीने की गड़बडी के अतिरिक्त गर्मी, सोजाक आदि रोगो के कारण खून बिगड़ने पर भी विसर्प हो जाता है, विसर्प का विशेष परिचय आगे देखिये।

तीनो दोषों के द्वारा इस रोगमें खून,लसिका चमड़ी और मांसये चारो चीजें बिगाड़ी जातीहैं यानी वात पित्तऔर कफइन तीनो दोषो केकारण खून लसिका आदि चारो चीजें बिगडती हैं, इसलिये तीनों दोष तो इसमें दोष रूप है, और खून आदि चारो धातु दूष्य रूप हैं। डाक्टरों के मत से चोट लगने, खून खराब होने आदि कारणों से यह रोग होता है।

विसर्प के भेद

विसर्प आठ तरह का होता है।

(१) वातज विसर्प।

(२) पित्तज विसर्प ।
(३) कफज विसर्प
(४) वात कफज विसर्प ।
(५) वात पित्तज विसर्प ।
(६) पित्त कफज विसर्प ।
(७) त्रिदोषज विसर्प ।
(८) आगन्तुक विसर्प ।

१—वातज विसर्प

वादी से जब विसर्प होता है, तो वात ज्वरकी जैसी वेदना सर में होनी है, हृदय पेट और शरीर के अन्य अगों में शूल चलने हैं, दर्द होता है, चुभन होती है सूजन हो जाती है, अंग फड़कने लगते हैं, सुई चुभोने जैसा दर्द होता है, ऐसा मालूम होता है, मानो कोई चीर रहा है या चूस रहा है इसमें रोमाञ्च भी हो जाता है, वादी के विसर्प का रंग देखने में अक्सर काला होना है।

२—पित्तज विसर्प

पित्त से पैदा हुआ विसर्प फैलने में देरी नहीं करता, और रंग में लाल होना है घबड़ाहट, जलन आदि पित्त ज्वर के सभी चिह्न इसमें दिखलाई पड़ते हैं।

३—कफज विसर्प

कफ के विसर्प में खुजली चलती है, और चिकना होता है, इसमें कफ ज्वर के सभी चिह्न होते हैं।

४—वात पित्तज विसर्प

वादी और पित्त दोनो दोषो की खराबी से अगर विसर्प होता है, तो दशा भयानक हो जाती है। ज्वर, कै, वेहोशी, दस्त, प्यास, भ्रम, हड़फूटन अग्नि की मन्दता, अंधेरी आना और अरुचि ये रोग हो जाते हैं, देह में जलते हुये अंगारो की जैसी आग जलती है, जिस जगह यह विसर्पजाता है, वह जगह लाल होजाती है, या नीली होजाती है, या काली हो जाती है, और उस जगह आग से जलने के जैसे फफोले पड़ जाते हैं। यह बड़ी जल्दी चलता है, पेट और हृदय में जल्दी ही पहुँच जाता है जिससे अंग २ में व्यथा होती है, वेहोशी होती है।

इसमें नींद बहुत आती है, श्वास का वेग बढ़ जाता है, और हिचकी बहुत आने लगती है, इस दशा में रोगी को बड़ी वेचैनी हो जाती है, न वह लेट सकता है शान्ति से, और न वह कहीं बैठ सकता है आराम से। इसमें रोगी प्रायः मर ही जाता है इस विसर्प को आग्नेय कहते हैं।

५—वात कफज विसर्प

इसको ग्रंथि विसर्प भी कहते हैं।

वायु और कफ बिगड़ते हैं, फिर वायुकफ को और भी बिगाड़ देता है। वायु और कफ की यह बिगड़ी हुई जोड़ी फिर बढ़े हुये खून पर आक्रमण करती है, चमड़ी, शिरा स्नायु और मांस इन चारो जगह के खून पर जब धावा होता है, तो वह भी वेचारा वेहोश होजाता है, और अपने स्वाभाविक धर्म को छोड़कर बिगड़ जाता है, फिर लम्बी, गोल मोटी, लाल और खुरदरी गांठें पैदा हो जाती हैं, और किसी भी जगह होजाती हैं फिर धीरे २ यह अपनी लाइन बांधकर फैलने लगती है।

तीव्र वेदना, ज्वर, श्वास, खांसी, दस्त सूजन हिचकी, कै, भ्रम, मोह, वेहोशी, पचाव की कमी आदि उपद्रव होते है, गांठ अगर हृदय, फेफड़े आदि विशेष स्थानो में होती है तो उपेक्षा करनेसे जल्दी ही मौत का वारन्ट आ जाता है।

६—कफ पित्तज विसर्प

इसे कर्दम विसर्प भी कहते हैं।

यह एक ही स्थान में जम जाता है, खासकर आमाशय इसका प्रधान स्थान है।

ज्वर, जड़ता, निद्रा, तन्द्रा, सरदर्द, ग्लानि, हाथ पांव का इधर उधर पटकना, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, बेहोशी, अग्नि की मन्दता, हड़फूटन, तृषा, भारीपन, आम सहित दस्त, मुख आदि स्रोतो में कफ का लिपटे रहना, ये उपद्रव होते है। एकदम पीली, लाल और सफेद फुन्सियां होती हैं। यह विसर्प चिकना रूखा, काला, मलिन, सूजन युक्त भारी, गम्भीर पाक वाला छूने से काला होजाने वाला, फठने वाला और मुर्दे जैसी गंधवाला होता है, चमड़ी का रंग कीचड़ जैसा होता है, मांस गलकर गिर जाता है, स्नायु और शिराओ तक इसका धावा होता है।

(७) त्रिदोपज विसर्प

तीनो दोषो के उत्पन्न हुये विसर्पमें सब लक्षण होते हैं और यह घातक होता है।

(८) आगन्तुक विसर्प

चोट लगने, शेर, चीते आदि जानवरोके दांत या नखो की चोट लगने आदि आगन्तुक कारणो से घाव होता है. फिर विगड़ा हुआ वायु पित्त और खून की सहायता से विसर्प पैदा करता है। इसमें, ज्वर, सूजन, वेदना, दाह और खून का कालापन ये चिह्न होते हैं। कुल्थी के दानो जैसी फुन्सियां चारो तरफ होजाती हैं।

विसर्प के उपद्रव

ज्वर, दस्त, कै, चमडी का फटना, मांस का फटना, ग्लानि, अरुचि और पकना ये सब बिसर्पो के उपद्रव हैं।

बिसर्प की असाध्यता

त्रिदोपज विसर्प, क्षतज बिसर्प, और पित्त से पैदा हुआ काले रग का विसर्प, तथा मर्म स्थान में होने वाला विसर्प असाध्य होता है।

जाल गर्दभ सोजा

यह पित्त से पैदा होने वाला सोजा है, जो विसर्प की तरह फैलता है, यह पकता नही है। किन्तु जलन खूब होती है, और मारे जलन के बुखार भी हो जाता है, इसमें भारीपन नहीं होता है। देखने में पीला होता है, पतली चमड़ी वाला होता है।

शूल *Colic*

जब हृदय, आमाशय आदि स्थानों में कांटा सा चुभता है सुई चुभोने जैसा दर्द होता है, तो कहते हैं कि शूल चल रहा है। शूल के मानीहैं कांटा, इस रोग में कांटा चुभने जैसा दर्द होता है, इसलिये इसे शूल कहते है। बस्ति, हृदय, आमाशय आदि स्थानो में कई जगह शूल चलता है। कभी एक साथ ही सब स्थानो में शूल चलता है, कभी अलग २ समय में। शूल क्यो चलता है, इसका वर्ण आगे चलकर दोषो के भेदो में होगा।

शूल के भेद

(१) वातज शूल।
(२) पित्तज शूल।
(३) कफज शूल।
(४) वात पित्तज शूल।
(५) वात कफज शूल।
(६) पित्त कफज शूल।
(७) त्रिदोपज शूल।
(८) आमज शूल।
(९) परिणाम शूल।
(१०) अन्नद्रव शूल।

इस तरह शूल दश प्रकार का होता है, आयुर्वेदमें प्रधानतः आठ शूलो का ही उल्लेखहै, अन्तके दो शूल भेदो में न मानकर साधारण रूप से उल्लिखित किये गये हैं।

कौन शूल कहा होता है, यह बतलानेके पहिले इन भेदो का विवेचन कर देना आवश्यक है।

(१) वातज शूल

कसरत, मैथुन और सवारी अधिक करने से, रात में अधिक जगने से, ठडा पानी बहुत पीने से,

चोट वगैरह लगने से, मल, मूत्र, वीर्य और अधोवायु के रोकने से, वायु को बिगाड़ने वाले पदार्थों के खूब खाने से, विरुद्ध आहार करने से, सूखे मास और सूखे साग खाने आदि कारणों से, जिनसे कि वायु बढ़ता और कुपित होता है, यह शूल होता है। हृदय, पीठ, मूत्राशय पसली त्रिकस्थान इन पाच स्थानो मे वादी का शूल होता है। यह शूल बराबर जोर देता है और अन्न के पकने पर, सध्या के समय, वर्षा और शरद् के समय इसका जोर विशेष होता है। इसमें न पेशाब होता है और न दस्त, अंगो में पीडा होती है और वे टूटते हैं। तेल की मालिश करने, गरम चीजें खाने आदि से यह शूल कम होता है।

(२) पित्तज शूल

यह शूल नाभि में होता है।

गर्म चीजे खाने, शराब पीने, मैथुन अधिक करने आदि पित्त के बिगाड़ने वाले कारणों से पित्त बिगड़ता है और नाभि में आमाशय के पास शूल पैदा करता है। इसमें प्यास, मोह, जलन, पसीना, वेहोशी भ्रम और सूजन ये चिह्न होते है। दुपहर के समय, आधी रात में, गर्मी और शरद् में इसका विशेष जोर होता है।

(३) कफज शूल

यह शूल आमाशय में होता है।

कफ को कुपित करने वाले कारणो से जब कफ बिगड जाता है तो, वह आमाशय में शूल पैदा करता है। उबकाई, खांसी, ग्लानि, अरुचि, लार बहना, पेट और मस्तक भारी रहना ये इसके चिह्न हैं। खाने के बाद, सुबह के समय, शिशिर ऋतु मे और बसन्त मे इसका जोर रहता है।

(४) वात पित्तज शूल

वायु और पित्त दोनो की खराबी से यह शूल होता है, इसमें दोनो के चिह्न होते हैं।

(५) वात कफज शूल

इसमें कफ और वायु दोनो के मिले हुये चिह्न होते हैं।

(६) पित्त कफज शूल

इसमें पित्त और कफ दोनों के मिले हुये चिह्न होते हैं।

(७) त्रिदोषज शूल

यह सब स्थानों में होता है, और इसमें सब चिह्न होते हैं। रोगी को इसमें बड़ा कष्ट का अनुभव होता है, और वह मर भी जाता है।

(८) आमज शूल

ज्यादा खाने आदि कारणों से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है वह ठीक पचाव नहीं करती, फिर वह कच्चा अन्न, कोठे में पड कर सड़ता है, और वादी उसके चारो तरफ घेरा लगा देती है, जिससे वह मल दस्त के रास्ते निकलता है, न कै के रास्ते। फिर शूल उठता है। वेहोशी, अफरा, जलन, हृदय पीड़ा, बिलबिका, कम्प कै, अतिसार और प्रमेह, ये रोग फिर इससे पैदा होते हैं। इसमें अलग अलग दोषों का सम्बन्ध होजाता है, जिस से यह आम शूल भी फिर अलग अलग स्थानों में उठता है। वादी के सम्बन्ध से आमाशय में पित्त के सम्बन्ध से नाभि में, कफ के सम्बन्धसे हृदय मे, पसलियो में और उदर मे होता है। कफ और वायु के सम्बन्ध से, मूत्राशय हृदय, कमर और पसलियो मे होता है। कफ और पित्त के सम्बन्ध से आमाशय, हृदय और नाभि में होता है। वायु और पित्त के सम्बन्ध से नाभि आदि स्थानो में होता है। वादी और पित्तसे मिला हुआ आमसूल भयानक है, इसमें बुखार भी हो जाता है और जलन भी होती है।

(९) परिणाम शूल

यह भी दोषों के भेद से ४ तरह का है।

१—कुपित वादी जब कफ पित्त से मिल कर परिणाम शूल पैदा करती है तो पेट का फूलना, गुडर गड़ होना, मल मूत्र का रुकना, बेमनी होना, और कर होना ये चिन्ह होते हैं। यह शूल भोजन पचने के समय में होता है।

(२) पित्तज—

परिणाम शूल में खाना पचने के समय, प्यास जलन, अरति, पसीना ये चिह्न होते हैं।

(३) कफज—

परिणाम शूल में पचाव के समय कै, उबकाई मोह और हलका दर्द होता है, यह बहुत दिनो तक रहता है।

(४) द्वन्द्वज—

जब दो दोष मिल जाते हैं, तो द्वन्द्वज परिणाम शूल होता है, इसमें दोनो दोषो के मिले हुये चिह्न होते हैं।

(५) त्रिदोषज—

परिणाम दोष में तीनो दोषों के सब चिह्न होते हैं।

(१०) अन्नद्रव शूल

परिणाम शूल केवल पचाव के समय होता है किंतु यह पचाव के बाद में भी हो जाता है। अलावा इसके परिणाम शूल पथ्य से रहने से, और खाना न खाने से नहीं होता, किंतु इसके लिये यह बात लागू नहीं है। पथ्य से रहने पर भी और उपवास करने पर भी, यह शूल चलता है

शूल के स्थान

वैसे तो शूल आंखो में चलता है दातो में भी शूल चलता है, और कान में भी चलता है। किंतु इसके खास स्थान ये हैं।

(१) हृदय, (२) नाभि, (३) मूत्राशय, (४) आमाशय, (५) पसली, (६) त्रिकस्थान, और ७) पीठ।

शूल के उपद्रव

पीड़ा अधिक प्यास, बेहोशी, कब्ज, भारीपन अरुचि, खांसी, श्वास, वमनऔर हिचकी ये १० शूल के उपद्रव हैं।

शूल की मारकता

दस उपद्रव ऐसे हैं जिनके होने पर रोगी नहीं बच सकता वे ये हैं—

वेदना, अत्यन्त प्यास, बेहोशी, अफारा,भारी पन, ज्वर, भ्रम, अरुचि, दुर्बलता और बल क्षय

हृदय शूल

कफ और पित्त से रुकी हुई तथा इससे बढ़ी हुई हृदयस्थ वायु में जब सांस रुकती है, तो शूल उठता है, इसे हृदय शूल कहते हैं।

पार्श्व शूल

कफ बायु की सहायता से पसलियो में अफारे केसाथ शूल पैदाकरता है, इसमें मुंह से ही ऊंचा ऊंचा सांस लिया जाता है, नाक से नहीं, नींद नहीं आती और खाना अच्छा नहीं लगता।

वस्ति शूल

मल मूत्र आदि के वेगो को रोकने से वायु मूत्राशय में भर जाता है जिससे वस्ति नालियो में शूल उठता है, फिर न दस्त होता है, न पेशाब, अधोवायु भी रुक जाती है।

गुल्म (वाय गोला)

इसको बोल-चाल में "वायुगोला" कह देते हैं। मूत्राशय से लेकर हृदय तक इतने स्थान में गुल्म फिरता रहता है, यानी एक गोला सा कभी मूत्राशय के पास रहता है, तो कभी हृदय के पास चला जाता है, इसका इधर उधर चलना मालूम भी देता है, बहुत से डाक्टर तो गुल्म को कोई स्वतन्त्र रोग नही मानते, हिस्टिरिया का उपलक्षण मात्र मानते है। मगर यह उनकी समझ की भूल है। उनकी समझ में हिष्टिरिया में जो ऊपर से

नीचे की तरफ एक गोला सा चढता मालूम होता वही गुल्म है, और कुछ नहीं। हां यह माना जा सकता है, कि रक्तगुल्म से हिष्टिरिया होजाता है, क्योंकि रज के रुकने से वस ही स्त्रियो को कई रोग हो जाते हैं, यह भी ठीक है कि रक्तगुल्म ही हिष्टिरिया है।

यह क्यो होता है यह भी सुनिये।

खाने पर, फिर खाने से, ऊटपटांग खाने से, बलवान से लडने आदि मिथ्या आहार विहारो से गुल्म होता है, यह मौत्रिक कारण है, विशेष अलग २ भेदो के वर्णन में बतलाया जावेगा।

गुल्म के भेद

गुल्म ५ तरह का होता है।

(१) वातज।

(२) पित्तज।

(३) कफज।

(४) त्रिदोषज।

(५) रक्तज।

गुल्म के स्थान

१-पसलियां।

२-हृदय।

३-नाभि।

४-मूत्राशय।

इस तरह गुल्म के चार स्थान हैं, इन स्थानो में ही गुल्म होता है, और जहां होता है हाथ से टटोलने पर मालूम पड़ जाता है।

गुल्म के पूर्व चिन्ह

डकारों का बहुत आना, मलबन्ध, तृप्ति हो जाना, कमजोरी आना, आंतो का बोलना, पेट में गुड़गुडाहट और अफारा होना अन्न का पाचन नहीं होना, और उससे पीड़ा होना, इन चिन्हों को देखकर समझ लेना चाहिये, कि गुल्म की सवारी आ गई है। सभी गुल्मों में पेशाब, मल और अधोवायु का कष्टसे उतरना, अरुचि, आंतों में शब्द होना, अफारा होना, डकारें आना, ये चिन्ह होते हैं।

(१) वातज गुल्म

रूखे विषम, पदार्थों के खाने से और नाक तक ठूसकर खाने से, मल मूत्रादि को रोकने से अनुचित साहस करने से, चिन्ता करने से, चोट वगैरह के लगने से, ज्यादा विरेचन होने से, अधिक उपवास करने से, और रस के एकदम क्षीण होने से, वादी का गुल्म होता है, इसमें जगह २ पीड़ा होती है, मल और अधोवायु में रुकावट होती है, गला और मुह सूख जाते हैं। देह नीली या लाल हो जाती है शीतज्वर होजाना है, हृदय, कांख, पसली, कन्धा, और शर इनमें दर्द होता है, अन्न के पचने के समय गोला भारी होजाना, और बाद में हलका हो जाता है।

(२) पित्तज गुल्म

चरपरे, खट्टे, तीखे गर्म रूखे, और विदाही पदार्थों के खाने से, शराब पीने आदि कारणों से जिनसे कि पित्त बिगड़ता है पित्त का गुल्म पैदा होता है। इसमें—

बुखार, प्यास ग्लानि, अंगों का लाल होना पचाव के समय भारी शूल होना, पसीना आना, और जलन होना, येचिन्ह होते है। गुल्म की जगह हाथ लगाने पर असह्य पीडा होती है।

(३) कफज गुल्म

ठंडे, भारी, और चिकने पदार्थों के अतिशय खाने, दिनमें सोने कसरत न करने आदि कारणो से कफ का गुल्म होता है। इसमें—

देह का गीलापन, शीतज्वर, ग्लानि, उबकाई खांसी, अरुचि, देह में भारीपन और हल्की पीड़ा, अग्निमांद्य ये चिह्न होते है।

(४) त्रिदोषज गुल्म

जब तीनों दोषों से गुल्म होता है, तो—

पीड़ा और जलन बहुत होती है, गोला ऊपर को उठा हुआ और पत्थर की तरह कड़ा होता है। जल्दी उखीदम, विदग्धा जीर्ण पैदा होजाता है, मन में भ्रम होता है देह दुर्बल होजाती है। और भी तीनो दोषो के सब चिह्न होजाते हैं। इसमें मौत होजाती है।

नोट—कभी दो दोषो से भी गुल्म हो जाता है, उसमें दो दोषो के ही चिह्न होते हैं।

(५) रक्तज गुल्म

इसका वर्णन गर्भिणी के रोगो में भी किया गया है।

जब प्रसूता स्त्री अगर आहार विहार में गड़-बड़ी करती है। गर्भिणी अगर गर्भ को गिराकर या गर्भपात होनेपर अहित आहार विहार करती है युवती स्त्री अगर रजोधर्म के समय नियमित आचरण नही करती है तो उसके खून को वायु गर्भाशय में भेजता है, जिससे रक्तगुल्म होता है। इसमें, पीड़ा, जलन और पित्तजगुल्मके चिह्न होते हैं, गुल्म होने पर रजोधर्म नही होता, जिससे गर्भ का भ्रम भी हो:जाता है।

गुल्म की असाध्यता

त्रिदोषज गुल्म होने पर रोगी मर जाता है।

जो गुल्म धीरे २ बहुत बढ़ जाता है और फैल जाता है, जिसमें शूल चलते हैं, और जो गुल्म शिराओ से बंधकर कछुये की तरह ऊंचा होजाता है, जिसमें अरुचि, दुर्बलता, हृल्लास खांसी, कै, अत्यन्त ज्वर, तृषा, तन्द्रा और जुकाम ये रोग होते हैं, वह रोगी को मार देता है, जिस गुल्म में—

ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार हो, और हृदय, नाभि, हाथ, और पांवो में सूजन होती है, वह भी मार डालता है। जिस गुल्म में—

श्वास, शूल, तृषा, अरुचि, दुर्बलता और गुल्म का सहसा अदृश्य होना ये चिह्न होते हैं, वह भी मार डालता है।

पीठ का दर्द *Backach*

पीठ को झुकाकर लिखने की आदत डालने चलते समय छाती को झुकाकर चलने, जमीनपर सोने, ठंड लगने आदि से कभी २ पीठ में दर्द हो जाया करता है। यह दर्द लेखको को, मोचियो को और दर्जियो को अधिक होता है। अच्छे २ साहित्यक लेखक, इस दर्द के शिकार इसलिये होते हैं, कि बेचारो को बहुत समय तक कमर झुका के लिखना पड़ता है।

पीठ का फोड़ा *Carbuncle*

विकारी पदार्थ के पीठमें इकट्ठे होने पर कभी २ फोड़ा हो जाया करता है, यह पीठ में किसी भी जगह हो सकता है, कभी छोटा होता है, कभी बड़ा कभी अपने आप ही बैठ जाताहै, और कभी घाव के रूप में बदल जाता है। गर्मी होने, खूनके खराब होने पर अक्सर यह फोड़ा होता है।

त्रिकशूल

कमर की, पीठ की, और चूतड़ो से ऊपर की हड्डी में जब एक साथ ही शूल उठता है तो, त्रिकशूल कहलाता है। हस्तमैथुन करने, पीठ पर चोट लगने, कमर पर चोट लगने, आदि से ऐसा हो जाता है।

बेरीबेरी

यह रोग एक तरहका स्नायु प्रदाह है, बेरीबेरी शब्द सिंहल देश का है, जिसके मानी हैं, अतिशय कमजोरी। इस रोग की प्रारम्भिक यानी पहिली दशा में पैर में तनाव होता है, और टकना फूल जाता है, इसके बाद दोनो पैर फूल जाते हैं और उनमें जलन होने लगती है। धीरे२ सब अंग फूल उठते हैं, और उनमें प्रदाह होने लगताहै पक्षाघात की तरह फिर सारी देह निकम्मी हो जाती है,

पक्षाघात में एक तरफ तो कुछ सजीवता रहती है इसमें वह भी नही रहती। चमडी सूख जाती है, कब्ज रहने लगती है, या दस्त लगने लगते है, पेट में दर्द भी होने लगता है।

पेशाब लाल रंग का होने लगता है, हृदय के ऊपर दबाव पडने से श्वास प्रश्वास मे कठिनता होने लगती है, और छाती धडकने लगती है। पेशाब और पसीने की रुकावट, खून की एकदम कमी, तनाव और सारे अंग का फूलना, ये चिह्न प्रायः घातक होते हैं।

यह रोग नवीन ही है, प्लेग से भी नवीन है इसके विषय मे अभी तक कोई निश्चित मत नहीं हुआ है।

और प्रान्तों की अपेक्षा यह बगाल में अधिक होता है इसकी खोज अभी तक जारी है। तेल मिली चीज खाने से यह रोग होता है। इतनी बात अभी अभी तक मालूम हुई है, उसी के बल पर कहा जाता है कि बगाल मे यह रोग अधिकता से इसलिये होता है कि बगाली बाबू तेल मिली चीजे खाते है। मछली को भी तेल मे छौकते हैं और मूंगफलियो को भी तेल में ही भूनते हैं। बगाल में रहने वाले मारवाडियो और हिन्दुस्तानियो को (बगालियो के शब्दो में) यह रोग बहुत कम होता है।

विश्वास तो यह है कि कलका आटा भी इस रोग को पैदा कर देता है। जो भी हो, हमारा, अपना विश्वास तो यह है कि तेल मिश्रित चीजो कोकारण बतलाना तो एक बहाना मात्रहै. बगाली तो हमेशा ही से ऐसा खाते आये है, फिर अभी यह रोग क्यो हुआ ?

इस रोग का खास कारण है, सारहीन चीजें खाना, जैसे वेजिटेबिल घी, कल का आटा, कृत्रिम आटा, मैदा की चीजें आदि। शहरो में सभी चीजे सारहीन मिलती है, घी शुद्ध नहीं मिलता, आटा ठीक नही मिलता, और न दूध ठीक मिलता है. दूध में आरारोट मिला दिया जाता है, जो स्वास्थ्य के लिये घातक है। घी में नारियल का तेल मिला दिया जाता है, या विलायती घी मिला दिया जाता है, आटे में लकडियों का चूरा तक मिला दिया जाता है, कोई भी चीज पोषक नहीं होती। यह सब विलायती गवर्नमेंट का प्रताप (!) है और इसकी स्थिति तक ही ऐसे रोग होंगे।

शोथ-सूजन

Dropsy

शोथ को हिकमती भाषा और बोलचाल की भाषा में सूजन कहते हैं। एलोपैथीमें इसे 'ड्राप्सी' कहते हैं इसका सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन जितना अच्छा आयुर्वेद मे है, उतना अन्यत्र नहीं। यूरोपियन विद्वानो का विश्वास है कि समस्त शरीर या किसी अंग में जलसंचय होने को शोथ कहते हैं। किंतु बात ऐसी नहीं है, जिसे वे जल संचय कहते हैं वह कुछ और ही है। बात यो है—

अपने२ कारणों से तीनो-दोषऔर खून बिगड़ते हैं, और बाहरी शिराओ में आके रुक जाते हैं फिर चमडी और मास में फुलाव होता है, यही सूजन है। दोषो की और खून की गति नही होने से सूजन होती है। सूजन बडी भी हो सकती है, और छोटी भी, बहुत दिनो में भी आराम नहीं होती,और थोड़े दिन में ही आराम हो जाती है। सूजन सारी देह मे भी हो सकती है और किसी एक अङ्ग में भी।

सूजन क्यो होती है

(१) वमन विरेचन आदि पंच कर्म के ठीक न होने से।

(२) कच्चा गर्भ गिराने, या गर्भपात होने से

(३) प्रसव के समय कुछ खराबी होने से।

(४) शरीर में मल एकत्रित होने से।

(५) बवासीर होने से।

(६) आलसी बनकर पड़े रहने से।

(७) पीलिया, हृदयरोग, तिल्लीरोग, आदि रोग के होने से।

(८) अन्न के न पचने से।

(९) खारी, खट्टे, तीखे, गरम, भारी और विरुद्ध पदार्थोंके आहार विहार से, दही के अधिक खाने से, मिट्टी खाने से भी सूजन हो जाती है।

(१) चोट लगने जहर खाने, आदि कारणों से सूजन होजाती है।

अक्सर तगड़े और मजबूत आदमी शोथ के शिकार नहीं होते. दुबले और कमजोर ही होते हैं और भी कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे कि सूजन हो जाती है. यहां थोड़े कारणों का उल्लेख किया गया है।

सूजन के ८ भेद

(१) वातज।

(२) पित्तज।

(३) कफज।

(४) द्वन्द्वज।

(४) त्रिदोषज।

(६) अभिघातज।

(७) विषज।

(८) रक्तज।

आठवी सूजन का उल्लेख हिकमत मे किया गया है।

(२) वातज सूजन

वादी की सूजन में दर्द होता है, रोमांच होता है, छूने पर कोई दर्द नहीं होता। किन्तु भीतर ही भीतर दर्द होता है। यह इधर उधर हटने वाली होती है, कडी होती है, लाल और काली होती है, इसकी चमड़ी पतली होती है और दबाने पर यह ऊंची होजाती है, दिन में इसका विशेष जोर रहता है।

(२) पित्तज सूजन

मुलायम होती है, इसमे गंध भी आती है, काली पीली होती है। भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास मद और दाह ये साथ रहते है, आंखो में लाली आजाती है इसके पकने पर वडी जलन होती है।

(६) कफज सूजन

इसके पैदा होते और नष्ट होते समय वडा दु:ख होता है। यह भारी, स्थिर, सफेद होती है। अरुचि, नींद, कै, लार गिरना, पचाव की कमी ये इसके साथ होते है। दबाने से ठीक उतनी ही रहती है और रात में इसका जोर होता है।

(४) द्वन्द्वज सूजन

दो दोषो की सूजन मे दो दोषो के चिन्ह होते हैं।

(५) त्रिदोषज

तीनो दोषो से होने वाली सूजन मे सब चिह्न होते है।

(६) अभिघातज

चोट लगने, घाव होने, कट जाने, कौंच की फली छूने आदि कारणों से जो सूजन होती है, वह नर्म होती है, फैलने वाली, जलनदार लाल और पित्त के लक्षणो से मिलती जुलती होती है।

(७) विषज सूजन

देह पर जहरीले जानवरो के फिरने, मूतने से, जहरीली चीजोके खाने से, मल मूत्र, वीर्य मिली चीजो के किसी तरह खा लेने से, मनुष्य आदिके दांतो के काट लेने से, जहरीले वायुमण्डल मेंरहने आदि कारण से जब शरीर पर वीर्य का प्रभाव गिरता है तो सूजन होजाती है। यह सूजन मुलायम, चचल, लटकती हुई, तत्काल होनेवाली और अधिक दर्द वाली होती है।

(८) रक्तज सूजन

गर्मी, दर्द, खिचाव, टीस की अधिकता सूजन में लाली, नाड़ी बड़ी, पेशाब की लाली ये चिन्ह होते हैं।

सूजन के उपद्रव

कै, सांस, अरुचि, प्यास, ज्वर, दस्त, अत्यन्त पाक और कमजोरी ये सूजन के उपद्रव हैं, इनमें से छठे उपद्रव को छोडकर अगर बाकी उपद्रव होजाते हैं तो, दशा मौत के दरवाजे तक पहुँच जाती है।

गृध्रसी *Sciatica*

यह बादी की खराबी का वह रोग है, जिसमें चूतड़, कमर, पीठ जाघ, घुटने और पिंडलियां ये सब या थोड़े, एक साथ या अलग २ क्रमशः जकड़ जाते हैं, और इन स्थानो में सुई चुभाने जैसी वेदना होने लगती है, कंपकपी होने लगती है, और पैरो की गति मन्दी पड़ जाती है।

इसके २ भेद है

यह दो भागो में विभक्त है।

(१) वात गृध्रसी।

(२) वात कफ गृध्रसी।

(१) वात गृध्रसी—

देह टेढ़ी हो जाती है, दर्द अधिक होता है, सधियो में, घुटनो में, और जांघो में रुकावट होने लगती है, और फूटनी चलने लगती है।

(२) वात कफ गृध्रसी—

सारा शरीर भारी हो जाता है, अग्नि मन्द पड जाती है, और मु ह से लार गिरने लगती है, बाकी के वात गृध्रसी के सब चिह्न तो होते ही हैं

आक्षेपक *Canulsians*

(शरीर का झूमना)

जब बिगड़ी हुई बादी सारी धमनियो में घुस जाती है तो, उसके कारण शरीर हिलने लगता है जिस तरह हाथी के सवार की देह झूमती है, उसी तरह इस रोगमें शरीर झूमने लगता है।

इस रोग का कारण है वायु का खराब होना, फिर वायु को बिगाडने वाले खास कारण हैं। जिनका जिक्र प्रथम हो चुका है।

आक्षेपक के ४ भेद

यह रोग ४ भागो में विभाजित किया गया है

(१) वाताक्षेपक।

(२) वातकफाक्षेपक।

(३) वातपित्ताक्षेपक।

(४) अभिघाताक्षेपक।

अब चारो का लक्षण वैभिन्यभी देखिये।

(१) वाताक्षेपक (दंडकाक्षेप)

हाथ, पैर, मस्तक, पीठ, और श्रोणि मंडल ये स्थान जकड़ जाते हैं, सारी देह लकड़ी की तरह स्तब्ध हो जाती है, और चूंकि वायु चचल है, शरीर भी हिलता रहता है। इसे दण्डकाक्षेप भी कहते हैं। इस रोग में सचमुच बड़ी बुरी दशा होती है, शरीर किसी काम का नही रहता, नहाथ उठाये जाते हैं न पैरो से चला जाता है।

२—वात कफाक्षेपक *Hystompajor*

वायु के साथ कफ भी मिला रहता है, प्रधान लक्षण वायु के ही होते हैं, उसी तरह देह का जकड़ना और हिलना ये दोनो चिह्न होते हैं। कफ के कारण मु ह से लार गिरना, देह में भारीपन होना आदि चिह्न और हो जाते हैं, इसे दण्डापतानक भी, कहते है।

३—वात पित्ताक्षेपक

खास चिन्ह वही है, पित्त के कारण देह का गर्म होना, टेम्परेचर बढ़ाना जलन होना आदि चिन्ह और हो सकते है।

४—अभिघाताक्षेपक

कभी २ चोट लगने से भी यह रोग हो जाता है, चोट लगने पर शरीरस्थ वायु कुपित होता है,

यह खास नियम है, फिर इसमें भी वही चिन्ह होते है।

अन्तरायाम *Emprosthatonis*

(छाती की तरफ झुकना)

अंगुली टकने, पेट, हृदय, छाती और गलेमे रहने वाला वायु जब बिगड़ता है, और स्नायुमण्डल के ऊपर झपटता है, तो आदमी आगे की तरफ झुक जाता है, स्नायुसमूह, शिराएं और कठ कांपने लगता है, आंखे पथरा जाती हैं, ठोडी जकड जाती है, पसली टूटने भी लगती है, और कफ मिली कै होने लगती है।

वाह्यायाम (पीठ की तरफ झुकना)

नाड़ी में और पीठ में रहने वाली पिछली शिराएं स्नायु मण्डल और मोटी नसें जब बिगड़े हुये वायु की दया से सूख जाती है तो, आदमी पीठ की तरफ झुक जाता है, उल्टा हो जाता है, मारक अवस्था में, छाती कमर, और सांथलो में तोड़ने जैसी पीड़ा होने लगती है।

धनुस्तम्भ *Tetanus*

इस रोग में आदमी धनुषकी कमान की तरह नव जाता है, अंग शिथिल पड़ जाता है' भद्दे हो जाते हैं पसीना आने लगता है, मुंह फैल जाता है रंग बदल जाता है। अन्तरायाम में अंगुली आदियो में आक्षेप होने के साथ २ आंखे पथरा जाती हैं, किंतु इसमें ऐसा नही होता।

कुब्जक (कुबडापन)

यह एक रोग है जिसमें या तो छाती अपनी जगह से आगे की तरफ ऊंची हो जाती है, या पीठ, कुबड़े आदमीकी पहिचान सहजही की जा सकती है। साथ में दर्द भी होता है, यह सब होता वायुके बिगडने पर जो चोट लगने, आदि कारणो से बिगड़ता है।

अपतन्त्रक

यह वह रोग है जिसे हिस्टिरिया भी कह देते है।

कुपित वायु जब पक्वाशय में से उठकर हृदय में ठसक मारता है तो मस्तक और कनपटियां भन भना उठती हैं, देह कमान की तरह झुक जाती है, और कांपने लगती है, चित्तमोहित हो जाने से सास लेने में भी कठिनता होने लगती है और ऊंचा सांस आने लगता है। आखे या तो मिच जातीहै या खुल जाती है, कभी २ वेहोशी हो जाती है, और रोगी कबूतर की तरह कूजने लगता है।

अपतानक

शरीर से खून अधिक निकलने, गर्भस्थिति होने, चोट लगने आदि से यह रोग पैदा होता है जिसमें आखो की रोशनी, और होशहवाश नष्ट हो जाते हैं, गले में घबराहट होने लगती है, थोड़ी देर बाद होश आ जाता है।

पक्षाघात *Hemiplegia*

आधे शरीर का वेकार होना

शरीर के आधे हिस्से को जब वायु जकड़ लेता है तो, शिरा और स्नायुजाल सूख जाते है, उनमें रक्त का सञ्चार नही होता, और सन्धि बन्धन ढीले पड जाते हैं। धीरे २ स्पर्श आदि ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। यह रोग बड़ा ही भयानक है, इसमें आधा हिस्सा तो एकदम बेकार होजाता है, और आधे की शक्ति से कुछ कमी आजाती है। सन्निपात ज्वर में हवा लगने पर प्रायः यह रोग हो जाता है। वायु के साथ अगर पित्त का अंश भी है तो सन्ताप, मूर्छा आदि चिन्ह भी होते हैं, कफ का अंश साथ मे होने पर सूजन और ठडक आदि चिह्न भी हो जाते है।

सर्वाङ्गवात *Genei al pai alysis*

जब सारी देह में वायु देवता का कोप होजाता है तो सब शिरायें कांपने लगती हैं, अंग प्रत्यङ्ग टूटने लगते हैं, और सन्धि वन्धन मारे दर्द के फटने लगते हैं।

बाघी *Bubo*

देहाती आदमी तो सम्भवतः इसका नाम ही नहीं जानते होंगे, शहरी इससे खूब परिचित हैं, बाघी यद्यपि कोई स्वतन्त्र रोग नही है, गर्मी *Syphilis* का लक्षण मात्र है किंतु इसकी भयकरता कम नही हैं साथ में गांठ पड़ना बाघी का पूर्व चिह्न है, कभी एक तरफ गांठ पडती है, कभी दोनो तरफ गर्मी होने के कुछ दिन बाद में गाठें पडती हैं। फिर धीरे २ बढ़कर सूज जाती हैं, कभी जल्दी पकती हैं कभी बहुत देर में, इनमें दर्द बहुत होता है। चलना फिरना हराम हो जाता है कभी ३ ४ गाठे भी हो जाती हैं।

विद्रधि (कडी सूजन)

विद्रधि को भयकर सूजन कह सकते है, यह सूजन पकती भी है और बड़ी शैतान होती है। विद्रधि में हड्डियों में रहने वाले दोष बिगड़ते है। ये याद रखने की बात है। जब हड्डियो के दोष बढ़ जाते हैं तो वे, चमड़ी, खून, मास और मेद को खराब करके धीरे २ छोटी या बड़ी दर्द भरी सूजन को पैदा करते है, इसकी जड़बडी मजबूत होती है।

यह सूजन बाहर भी होती है, और गुदा नाभि आदि अङ्गो के भीतर भी। पहिले बाहरी विद्रधि का वर्णन होगा।

विद्रधि के भेद

(१) बादी की विद्रधि।
(२) पित्त की विद्रधि।
(३) कफ की विद्रधि।
(४) त्रिदोप की विद्रधि।
(५) क्षत की विद्रधि।
(६) खून की विद्रधि।

(१) बादी की विद्रधि।

काली या लाल होती है, क्षण में छोटी और क्षण में बडी हो जाती है, इसमें दर्द बहुत होता है। धीरे २ उठती है, और देर में पकती है, इसका स्राव पतला होता है।

(२) कफ की विद्रधि

सफेद होती है, ठंडी और चिकनी होती है, दर्द थोड़ा होता है, मिट्टी के सकोरे के समान बड़ी होती है, वह भी देर में उठती और पकती है, इसका स्राव सफेद होता है।

(३) पित्त की विद्रधि

पके हुये गूलर जैसी होती है, या कुछ काली होती है, इसमें ज्वर भी हो जाता है, और जलन होती है, यह उठती भी जल्दी है, और पकती भी जल्दी ही है, इसका स्राव पीला होता है।

(४) त्रिदोष की विद्रधि

काली, लाल, या सफेद होती है, इसमें तोड़ने सरीकी पीड़ा होती है, जलन होती है, खुजली चलती है। ऊंची होती है और कभी ऊंचीनीची होती है कभी सफेद स्राव होता है तो कभी पीला इसमें तीनों दोषो की विद्रधियो के सब चिन्ह होते हैं।

(५) क्षत की विद्रधि

लकड़ी, पत्थर, तलवार आदि, भी चोट लगने घाव हो जाने, खून बहाने वाले घावो के होने से यह विद्रधि होती है। और पित्त बिगड जाता है और इसमें पित्त की विद्रधि के चिन्ह होते हैं।

(६) खून की विद्रधि

काले फोड़े होते हैं क्लेश लिये होती है, तीव्र पीड़ा होती है, जलन और ज्वर दोनो ही

बहुत होने, बाकी चिन्ह सब पित्त की विद्रधि के होते हैं।

भीतरी विद्रधि

भारी पदार्थों के खाने से, प्रकृति विरुद्ध खाना खाने सूखे शाक और खट्टी चीजो के खाने ज्यादा मैथुन करने, मल मूत्रादि के वेगो के रोकने, गर्म पदार्थों के विशेष खाने, आम रहने आदि कारणो से दोष बिगड़ते हैं। फिर अलग २ या मिलकर वे भीतरी विद्रधि पैदा करते है।

भीतरी विद्रधि के १० स्थान

भीतरी विद्रधि इन स्थानो में होती है—

१-गुदा के भीतर।

२-मूत्राशय के मुंह में।

३-नाभि के भीतर।

४-साथलो की सधियों के भीतर।

५-कांख में।

६-वक्षणों में।

७-प्लीहा में।

८-यकृत् में।

९-हृदय में।

१०-क्लोम में।

ये १० स्थान है। भीतरी विद्रधि गुल्म जैसी या सांप की बाँबी जैसी होती है। इनके चिह भी बाहरी विद्रधियो के अनुसार होते है। फर्क इतना ही है, कि ये भीतर है। जो दोष होता है उसके चिह्न भी होने हैं।

अब इनकी पहचान भी समझ लीजिये जिससे यह मालूम होजाय कि फला जगह में विद्रधि है। गुदा में विद्रधि होने पर अपान वायु रुकजाती है मूत्राशय के मुंह मे विद्रधि होने पर पेशाब थोडा थोड़ा होता है, नाभि के भीतर विद्रधि होने पर हिचकी और जभाई आती है। कोख के भीतर विद्रधि होने पर वायु का कोप होता है सांथल की संधियों में विद्रधि होने पर कमर और पीठ जकड़ जाती है, वृक्कों में विद्रधि होने पर सांस रुकने लगत है। हृदय में विद्रधि होने पर खांसी हो जाती है। और सारे अग रुक जाते हैं यकृत में विद्रधि होने पर श्वास और हिचकी हो जाती है क्लोम मे विद्रधि होने पर प्यास बढ़ जाती है, इन चिह्नो के अलावा और भी गड़बड़ होती है, प्रायः सभी विद्रधियो की कड़ी सूजन के नाम से अगल २ वर्णन हो चुका है।

नाभि से ऊपर की विद्रधियो का स्राव मुंह के रास्ते होना है, और नीचे की विद्रधियो का स्राव गुदा के रास्ते। नाभि की विद्रधियो का स्राव दोनो रास्तो से होता है।

ग्रन्थि (गांठ)

शरीर मे जगह २ गांठें पाई जाया करती है, वे गाठे ५ तरह की होती है।

(१) बादी की।

(२) पित्त की।

(३) कफ की।

(४) मेद की।

(५) शिराओ की।

(१) वातज ग्रन्थि (गांठ)

यह गांठ फूली हुई होतीहै, इसमें दर्द होता है, चीस चलती है, चमचमाहट होती है चरपराहट करती है, फटती सी रहती है, इसका रग सांवला होता है, यह कर्कश होती है और मशक की तरह फैली हुई रहतीहै, फूटने पर या फोड़ने चीरने पर साफ, लाल खून निकलता है।

(२) पित्तज ग्रन्थि

इसमें जलन होती है, संताप ज्यादा होता है और खूब गर्म रहती है, ऐसा मालूम होता है मानो यह पकाई जा रही है। रग लाल होता है या पीला, फूटने पर बहुत सा गर्म २ खून निगलता है

(३) कफज ग्रन्थि

यह छूने से ठंडी होती है, रंग चमड़े जैसा ही होता है, थोड़ी पीड़ा होती है, इसे मलने से या दबाने से थोड़ी चैन मिलती है, बहुत धीरे २ बढ़ती है, फूटने पर सफेद गाढ़ी राध निकलती है

(४) मेदज ग्रन्थि

यह बहुत ही स्निग्ध होती है, इसमे पीड़ा कम होती है, खाज खूब चलती है, ज्यादा दबाने से तिलकी पिट्ठी और घी जैसा मेद निकलता है, यह शरीर के वृद्धि ह्रास की तरह बढ़ती घटती है

(५) शिराज ग्रन्थि

इसे नसो की गाठ कह सकते हैं, यह होती उन्हे है जो अपनी हिम्मत से अधिक कसरत करते है इस तरह वायु कुपित होकर नसो के जाल को इकट्ठा करके दबा के, सिकोड के, शोषके, एक फैली हुई ऊंची गॉठ पैदा कर देता है।

यह अगर दर्द वाली हो, इधर उधर सरकती हो तो कष्ट साध्य होती है अलावा इसके दर्द तो हो नही, स्थिर रहती हो, बड़ी हो और किसी मर्म स्थान् मे हो तो असाध्य होती है।

शरीर के किसी भी हिस्से में कुपित हुये दोष मांस और खून को खराब करके स्थिर थोडी पीडा वाले, बड़े २ फैले हुये, धीरे २ बढ़ने वाले, और न पकने न फूटने वाले मांस के पिण्ड पैदा कर देते हैं, वे ही अर्बुद कहलाते हैं। इसके लक्षण सब ग्रन्थि से मिलते जुलते हैं, फर्क इतना ही है कि वह फूट भी जाता है, यह फूटते ही नहीं, रक्तार्बुद भी पक जाता है।

रक्तार्बुद

बिगड़ा हुआ पित्त खून तथा नसो को पीड़ित और संकुचित करके पक जाता है, फिर मांस पिंड को मांस के अंकुरो को पैदा कर देता है, उससे दूषित खून निकलता है, और खूब निकलता है, यह असाध्य है, रोगी पीला पड़ जाता है।

मेदोवृद्धि (पेट बढ़ना)

मेद सात धातुओ में से एक धातु है, जब यह बढ़ती है तब पेट फूल जाता है। पेट फूले हुये आदमी को देखकर यह पहिले ही कहा जा सकता है कि यह मेदोवृद्धि का शिकार है।

यद्यपि पेट फूलता है जलन्धर रोग में भी, किंतु दोनो में बहुत फर्क है और दूसरों की संख्या भी बहुत कम होती है। मोटे पेट के मारवाड़ी, जिनका पेट मशक की तरह फूला रहता है, अक्सर इसके रोगी होते हैं, बंगाली बाबू भी इससे नही बचते।

पेट बढ़ने के कारण

यह रोग होता है उस हालत में जब आदमी कसरत नही करता, खा लेता है और पड़ा रहता है दिन में भी सोता रहा है, कफ को पैदा करने वाले पदार्थ, मधुर अन्न, मीठे रस खाता है, घी, तेल आदि स्नेहो का सेवन तो करता है। किन्तु उन्हे पचा नही सकता। ऐसी दशा में मेद बढ़कर पेट को फुला देता है, जिससे दूसरी धातुओ का पोषण नही हो पाता।

स्पष्ट चिह्न

वैसे तो इसके चिह्न प्राय: सभी जानते हैं और खासकर बंगाल में रहने वाले। बंगाल कफ प्रधान देश है, फिर कफ जन्य पदार्थों के सेवन करने से मेदोवृद्धि होना स्वाभाविक ही है, इसी लिये यू० पी० सी० पी० आदि प्रान्तो की अपेक्षा बंगाल में मोटे पेट वालों की अधिक संख्या है। मेद बढने से, क्षुद्र श्वास, प्यास, मोह, निद्रा, पीड़ा ग्लानि, क्षुधा, पसीना, दुर्गन्ध, ये सब शरीर के साथी होजाते हैं। मोटे पेट वाला आदमी खाता बहुत है, इसका भी कारण है? मेद बढ़कर वायु का रास्ता रोक देती है, जिससे बेचारा कोठे में ही चक्कर काटता रहता है, जिससे अग्नि प्रज्वलित रहती है और अन्न का पोषण भी जल्द ही हो

जाता है, शरीर में वीर्य कम रहता है, शक्ति कम होजाती है, और मैथुन शक्ति बहुत कम होजातीहै मोटा आदमी विषयी बहुत कम होता है पेट में बढी हुई अग्नि खाने को जल्दी२ मांगती है किन्तु बाद में वही वायु को साथ लेकर खराबी पैदा करने लगती है दावानल जैसे वन को जला देती है, ठीक वैसेही यह अग्नि मोटे आदमीको खाक में मिला देतीहै, मेद के साथ २ मांस भी बढ़ जाताहै जिससे मनुष्य के, फूले, पेट और स्तन हिला करते हैं। मोटे आदमियों को कोढ विसर्प, भगन्दर, ज्वर अतिसार, अर्श, प्रमेह हाथीपांव अपची, कामला, ये रोग दुस्तर होजाते हैं, कभी पैदा हो जाता है तो निकलने बड़े मुश्किल होजाते हैं, मेदोवृद्धि रोग बहुत बुरा है अक्सर शक्ति हीनता के कारण इनकी स्त्रिया व्यभिचारिणी होती हैं। बार २ खाने से और पेट फूलने से लोग इसे अच्छे लक्षण कहने लगते हैं, मगर यह है उनकी पूरी गल्ती येचिह्न तो नामर्दीके चिह्न हैं। मोटाआदमी भग नहीं सकता, चल नही सकता, बहुतो को तो उठने तक में बडी दिक्कत होती है।

कार्श्यरोग *Debility*

कृशता (दुर्बलता)

प्राय. कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है. कि कृश मनुष्यों को कमजोर कह दिया करते हैं। कृशता को दूसरे शब्दों में दुबलता कह सकते है, कमजोरी नहीं। जो आदमी मोटा नहीं होता वह कृश दुबला होता है, दुबला के मानी बलहीन नहीं और न मोटेपन के मानी बलशाली ही होता है। कमजोरी-न कृशता पर निर्भर है न मुटापे पर। बहुत से आदमी दुबले होते हुये भी बड़े मजबूत और ताकतवर होते हैं तथा बहुत से मोटे होते हुये भी कमजोर होते है।

मेद का हिस्सा ज्यादा होने से मुटापा आता है और कम होने से दुबलापन, यह एक निरपवाद सत्य है।

गर्भाधान के समय वीर्य का भाग अधिक आता है, और मेद का कम तो उससे पैदा होने वाली सन्तान दुबली होती हुई भी बलवान होती है, ठीक इसी तरह अगर वीर्य का हिस्सा कम आता है और मेद का अधिक आता है तो उससे पैदा हुई संतान मोटी ताजी होती हुई भी कम जोर होती है।

कारण

वायु, रूखा खानपीन, लघन, अल्पभोजन, वमन, विरेचन, आदि के अतियोग होने से यानी सीमा से अधिक होने से, बराबर शोक करने से, मूत्र आदि के वेगों को रोकने से, नींद आ रही हो और उस समय न सोने से, बराबर रोगी रहने से नित्य विषय करने से, डर लगने से, रात दिन रुपये आदि की चिन्ता करने से. मनुष्य दुबला हो जाता है, इन कारणों से पाचकाग्नि या तो बिगड़ जाती है, या उसे पूरा आहार न मिलने से, बिगड़ जाती है।

साधारण दुबलापन होने से कोई विशेष हानि नहीं होती, किन्तु जब ज्यादा दुबलापन आ जाता है तो कई रोग घेर लेते हैं।

अतिकृशता

से सीहा, खांसी, श्वास, गुल्म, बवासीर, पेट के रोग, ग्रहणी आदि पैदा हो जाते हैं।

खून की अल्पता *Anaemia*

प्रदर होने, रक्तपित्त होने, बवासीरहोने, चोट लगने से खून निकलने, आदि कारण. से देह में खून की कमी हो जाती है। कब्ज और अजीर्ण रहने से खून तैयार नहीं होता। हस्तमैथुन करने से भी देह मे खून की कमी होने पर शरीर पर लाली नहीं रहती, चक्कर आने लगते हैं, और

वीर्य नहीं रहता। उत्तेजना शक्ति कम होते २ नष्ट हो जाती है।

रक्त पित्त

Haemarrhagic disease

मुंह, नाक, कान, गुदा, लिंग आदि से जब खून गिरने लगता है तब उसे रक्त पित्त कहते हैं, इसमें जब अनेक कारणों से पित्त जलने लगता है तब वह अपना एक साथी और बना लेता है, वह साथी कोई दूसरा नहीं खून ही है।

इसके कारण—

वही पित्त को कुपित करने वाले, अधिक धूप में फिरना, आग का अधिक सेवन करना, अत्यन्त स्त्री प्रसंग करना, खट्टे, गर्म पदार्थ खाना आदि है। इनसे पित्त को कुपित होना पड़ता है, अथवा यों समझिये–इन कारणों से पहिले रक्त बिगड़ता है, बाद में वह पित्त को कुपित करता है, फिर पित्त खून को बिगाड़ता है। बिगड़ा हुआ खून ऊपरी रास्तों, मुंह, नाक, कान आदि से, अथवा निचले रास्ते गुदा, लिंग आदि से शरीर के बाहर निकलता है। नीचे और ऊपर, कभी २ दोनों जगह खून निकलने का रास्ता बना लेता है, यों भी है बिगड़ा हुआ खून, खून बहाने वाली नसों के द्वारा उलट पुलट रास्ते से चलकर, आमाशय या पक्वाशय की तरफ आता है। अगर खून आमाशय में आयेगा तो कफ से सम्मिलित होकर ऊपर के रास्तों से निकलेगा। इसके विपरीत अगर खून पक्वाशय में आयेगा तो वायु के अनुगत होकर वह गुदा, लिंग द्वारा निकलेगा।

रक्त पित्त के ३ भेद

(१) वातज रक्त पित्त।
(२) पित्तज रक्त पित्त।
(३) कफज रक्त पित्त।

इस तरह से यह तीन तरह का होता है, इसके

पूर्व चिह्न

देह में ढीलापन, ठण्डे पदार्थ खाने की इच्छा गले में धुआं सा घुटना, सांस में लोहे जैसी बदबू आना ये है। इन्हें देखकर इसके आगमन की सूचना समझी जाती है।

(१) वातज रक्त पित्त

जब इसमें वायु की अधिकता रहती है, तो खून या तो गुदा से निकलता है, या लिंग से, अथवा दोनों से, खून काला या लाल होता है, रूखा होता हैं, झागदार और पतला होता है।

(२) पित्तज रक्त पित्त

अगर पित्त की प्रधानता होती है तो खून काढ़े की तरह काला होता है, गौ के मूत्र की तरह मोर की पूंछ की तरह, अञ्जन की तरह काला होता है।

(३) कफज रक्त पित्त

इसमें खून मुंह, आंख, कान और नाक की राह से निकलता है। खून गाढ़ा होता है, पाण्डु रंग का होता है, थोड़ा चिकना और पिच्छल होता है।

उपद्रव

कमजोरी, श्वास, खांसी, बुखार, उल्टी, नशा देह का पीलापन जलन, मूर्छा, भोजन के पश्चात दाह, बेचैनी हृदय में वेदना, प्यास गला बैठना सर में गर्मी रहना थूक में बदबूदार पीप आना, अन्न से अरुचि, और उसका अपरिपाक तथा अविश्राम। ये सब रक्त पित्त के उपद्रव हैं।

मृत्यु चिन्ह

जो खून निकले, वह मांस के धोवन जैसा हो काढ़े जैसा काला हो, मेद रथ मिला हुआ कीचड़ जैसा हो, कलेजे जैसा हो, पके हुये जामुन के फल जैसा हो, नीले रंग का हो, उसमें मुर्दे जैसी बद बू आती हो इन्द्र धनुष के रंगों जैसा हो और

साथ में कमजोरी आदि उपद्रव भी हो तो रोगी काल के फन्दे में फस चुका। मरने वाला रोगी प्रकाश आदि को लाल देखता है, उसकी आंखे लाल होजाती है, खून की उल्टी होती है, और बराबर होती है डकारो में भी खून आने लगताहै।

हिकमत और डाक्टरी में इस पर उल्लेखनीय बात नहीं मिलती।

अम्ल पित्त *Acidity*

कारण

विरुद्ध पदार्थ दूध मछली, आदि खाने से, सडा हुआ भोजन करने से, खट्टे रसो का सेवन करने से, दाह जनक, तथा पित्त को कुपित करने वाले पदार्थों के खाने से, वर्षा ऋतु के अम्ल पाकी जल के पीने से, तथा वैसी ही दवाओ के सेवन से, संञ्चित पित्त, पहिले विदग्ध होता है। फिर अम्ल पित्त रोग पैदा करता है।

अम्ल पित्त के २ भेद

(१) ऊर्द्ध्वगामी।

(२) अधोगामी।

पहिले में मुंह के रास्ते दूषित पदार्थ निकलते हैं, दूसरे में गुदा के रास्ते। इनके चिह्न भी पृथक पृथक है।

(१) ऊर्द्ध्वगामी अम्ल पित्त

इसमें हरे, काले, नीले, पीले, गुलाबी, लाल स्वच्छ, मछली के धोवन जैसे, चिकने, लिबलिबे, खारे, तीखे, कडवे, रसवाले पित्त मुंह के रास्ते ऊल्टी क रूप में गिरते है, उनमे कफ भी मिला रहता है।

(२) अधोगामी अम्ल पित्त

इसमें जो निकलताहै वह गुदा के रास्ते निकलता है। जलन, प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, उदासी रोमाञ्च, शरीर का पीलापन आदि चिह्न प्रगट होते हैं।

साधारण चिह्न

अम्ल पित्त में कड़वी और खट्टी डकारें आती हैं, अन्न नहीं पचता, उबकाइयां आती है, छाती और गले में जलन होती है, शरीर भारी रहता है अन्न से दुश्मनी और ग्लानि रहती है।

दोष भेद से ३ भेद

(१) वातज।

(२) कफज।

(३) वात कफज।

(१) वातज अम्लपित्त

इसमें कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, मद, देह में सनसनी, ग्लानि, तमोमय, भ्रम, रोमाञ्च और मोह ये सब वायु के कारण है।

(२) कफज अम्ल पित्त

इसमें कफ के कारण देह में भारीपन रहता है, थूक के साथ कफ निकलता है। जड़ता आ जाती है, अन्नसे अरुचि होजाती है। मुंह में तथा छाती में कफ लिपा रहता है पाचकाग्नि में ताकत नही रहती, नींद खूब आती है। देह में खुजली हो जाती है।

(३) वात कफज अम्ल पित्त

इसमें कड़वे और चरपरे रस की डकारें आती है, छाती, कोख, और गले में जलन होती है, भ्रम मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, सर में दर्द, मुंह से पानी गिरना, और स्वाद मीठा रहना, ये सब चिह्न होते है।

अम्ल पित्त के उपद्रव

भोजन करने से पहले तथा भोजन के बाद पदार्थों के विदग्ध होने के पश्चात् कडवी और खट्टी डकारें आती है, ऐसी ही उल्टी होती है, गले में, हृदय में, कुक्षि में दाह होता है। शरीर गर्म रहता है। अन्न से काफी दुश्मनी बढ़ जाती है, ज्वर होता है, खाज और फुन्सियां आदि होजाती हैं।

कफ पित्त के चिह्न

वेहोशी होती है। अरुचि, वमन, आलस्य सर की पीड़ा, मुह से लार गिरना, और उसका मीठा रहना य चिह्न रहते है।

दाह-जलन

शराब पीने आदि कारणो से पित्त कुपित हो जाता है, जिससे हाथ पैरो के तलवो में, आखो में, सभी देह में जलन होती है, वही दाह रोग कहलाता है।

दाह के ७ भेद

(१) मद्यजदाह।
(२) पित्तजदाह।
(३) तृषा निरोधज दाह।
(४) रक्तजदाह।
(५) शस्त्राघातजदाह।
(६) धातुक्षयजदाह।
(७) मर्माभिघातजदाह।

इस तरह दाह रोग ७ तरह का होता है।

मद्यज दाह

शराव पीने से पित्त कुपित होता है, पित्त की गर्मीसे पित्त रक्त बढ़ते हैं और दाह जलन होतीहै।

(२) पित्तज दाह

इसमें पित्तज्वर के चिह्न होते हैं, किंतु ज्वर नहीं होता।

(३) तृषा निरोधज दाह

प्यास रोकने से जलीय धातु क्षीण होती है, फिर पित्त की गर्मी से, भीतर वाहर जलन होतीहै जिससे कंठ, तालु और ओष्ठ सूखते हैं, रोगी जीभ निकाल कर हाफता है।

(५) शस्त्राघातज दाह

शस्त्रो की चोट से देह में घाव हो जाते है, घावो से निकले हुये खून से जव कोठा भर जाता है, तो उसकी गर्मी से वड़ी भयकर जलन होती है रोगी मारे दाह के पानी २ चिल्लाता है।

(४) रक्तज दाह

जव देह में खून वहुत वढता है, तव वह भी कुपित होकर जलन पैदा करता है रोगी को इतनी जलन होती है कि सारा संसार ही उसे आग से जलता हुआ दिखाई देता है, प्यास के मारे छट-पटाता है आखें और देह तांबे के रंग जैसी हो जाती है, गरम लोहे पर पानी डालने से जैसी गन्ध उठती है, ठीक वैसी ही गन्ध उसकी देह और मुंह से निकलती है।

(६) धातु क्षयज दाह

रस, रक्त, मांस आदि धातुओ के क्षीण हो जाने से जो जलन होती है, उसमें रोगीको प्यास वहुत लगती है, वेहोशी आती है स्वर क्षीण हो जाता है, कुछ करने धरने की हिम्मत नहीं रहती।

(७) मर्माभिघातज दाह

मूत्र की थैली, लिंग, मस्तक, हृदय आदि मर्मस्थानो में चोट लगने से भयकर जलन होती है, रोगी तड़फता है।

असाध्य चिह्न

जिसके भीतर में, कोठे के भीतर जलन हो और वाहर में ठंडक हो, उस रोगी का वचना असम्भव है।

आमवात (गठिया)

Acute Rheumatism

जव शरीर जकड़ जाता है तो समझते है कि गठिया हो गया, शरीर की कार्यात्मक शक्ति नष्ट होकर मनुष्य को किस तरह निकम्मा वना देती है यह किसी गठिया के रोगी को देखकर समझा जा सकता है? इस रोगका खुलासा यो समझिये।

खानेके वाद जो कच्चा रस रहताहै उसे 'आम' कहते हैं। पकारस वाद मे रक्त के रूप में परिणित होजाता है, कच्चा रस जिसे आम कहते हैं, खूव इकट्ठा होकर आमाशय आदि स्थानो में जमा हो

जाता है फिर वायु अपनी कार्य करने की सीमा को संकुचित देखकर बुरी तरह बिगड़ता है और कच्चे रस को लेकर, इधर उधर कफ पित्त से मिल कर उसे खट्टा बना देता है बाद में वही खट्टा रस और बिजातीय द्रव्य शरीर के जोड़ो आदि में घुसकर, गठिया रोग पैदा करता है।

कारण

प्रकृति, समय, तथा संयोग विरुद्ध आहार विहार, अनियमित कार्य पद्धति, अहित चेष्टाएं, ज्यादा आराम, चिकनी चीजे खाकर परिश्रम न करना, सड़े गन्दे, गीले घरो मे रहना, पसीने में नहाना, और पानी पीना, ठडी हवा लगना, आदि कारणो से वायु तो बिगड जाता है। और कच्चा रस इधर उधर चक्कर काटता है। कफ और पित्त भी शान्त नही रह सकते। बिगड़ा हुआ वायु साथियो को लेकर कच्चे रस को घसीट कर रस बहाने वाले स्रोतो में घुसा देता है, उन्हे रोक देता है। उन छेदो के बन्द होने से क्या २ कारण हो सकते हैं, यह सब समझ सकते है। कूडा करकट बाहर नहीं निकल पाता, शरीर कमजोर हो जाता है, हृदय पर बोझा गिर पड़ता है। आदि चिन्ह होने लगते है।

इन कारणों के अलावा आजकल की भयकर गर्मी भी इसके खास कारणो में से है। सिफलिस का जहर जब शरीर में व्याप्त हो जाता है तो बडी भयकर गठिया पैदा करता है।

सामान्य चिन्ह

शरीर टूटना अरुचि, प्यास, आलस्य, भारीपन, बुखार, अन्न का पचना, अङ्गो की शून्यता और सूजन ये चिन्ह हैं। जिन्हे देखकर आमवात समझ लिया जाता है।

इसके विशेष चिन्ह ये हैं।

हाथ पाव शिर, गुल्फ, त्रिक, जानु, तथा घुटनों के जोड़ो में पीड़ा, और सूजन, साथमें ज्वर

तीनो दोषो के कुछ साधारण चिन्ह अलग २ होते हैं। इसलिये इसके तीन भेद किये जा सकते हैं, वैसे भेद और भी हो सकते हैं।

आमबात के ३ भेद

१—वात प्रधान

इसमें और सब चिन्ह तो होते ही हैं, शूल चलते है, सूजन ज्यादा न होकर शरीर में तोड़ने जैसी पीड़ा होती है।

२—पित्त प्रधान

और चिन्हो के अलावा शरीर सूजन से फूलकर एकदम लाल हो जाता है, और जलन बहुत होती है।

३—कफ प्रधान

शरीर ऐसा रहता है मानो गीले कपड़े से लिपटा हुआ हो, और खुजली चलती है।

उपद्रव

वैसे तो आमवात की साधारण अवस्था ही दर्द जनक है, किन्तु जब साथ में उपद्रव और हो जाते हैं तो वेदना का कोई ठिकाना ही नही रहता कच्चारस Foine mettrs जिस जगह इकट्ठा हो जाता है, वही विच्छू के डक मारने जैसादर्द होता है। खाना हजम नही होता, मुंह और नाक से पानी गिरता रहता है, खाने पीने से दुश्मनी हो जाती है, मुंह का स्वाद बिगड जाता है, उत्साह नष्ट हो जाता है देह पर बोझ सा गिर पड़ता है, जलन होती है, पेशाब खूब होता है, पेट कड़ा हो जाता है, शूल चलतेहैं, नींद आती है, प्यास और उल्टी खूब होती है, और बीसियो उपद्रव आ लिपटते हैं।

भग्न *Fractura*

भग्न नाम है टूटने का।

भग्न के २ भेद

ऊपर से गिरने, दब जाने, चोट लगने, फलांगने, जानवरो के चबाने, काटने आदि से हड्डी

टूट जाती है, उसका टूटना दो तरह का होता है, (१) वह, जिसमें जोड पर, हड्डी हट गई हो, जैसे पैर के घुटने पर। (२) वह, जिसमें ठीक बीच में से हड्डी टूट गई हो जैसे घुटनो से नीचे और टकनो से ऊपर, पहिली को 'सधिभग्न' कहते हैं, दूसरी को 'कांडभग्न' कहते हैं।

१-संधिभग्न

६ तरह का होता है। पसारने, सिकोड़ने, हिलाने, रखने आदि मे बडी जोर से पीड़ा होती है, और हाथ लगाना भी सह्य नही होता। यह संधिभग्न के साधारण चिह्न है।

संधिभग्न के ६ भेद

१-उत्पिष्ट

जिसमें दोनो भाग रगड़ते जाते हैं, या पिस जाते हैं,दोनो तरफ सूजन और पीड़ा होती है, रात में विशेष पीड़ा होती है।

२-विश्लिष्ट

टहल जाने या अलग हो जाने को विलिष्ट कहते है, इसमें सूजन अधिक नही होती, वेदना हर दम रहती है, सधि काम नही देती।

३—विवर्तित

इसमें संधि बराबर की तरफ आसपास में हट जातीहै, जिससे अंग टेढ़ा होजाताहै, और पीड़ा होती है।

४— अवक्षिप्त

इसमे संधि दोनों तरफ हटजातीहै दूर टहल जाती है और उसमे तीव्र वेदना होती है।

५—अतिक्षिप्त

इसमें सन्धि और हड्डी दोनो हट जाती हैं, दोनो में फर्क पड़जाता है, जिससे वेदना होती है।

६— तिर्यक्क्षिप्त

एक तरफ की हड्डी टेढ़ी होकर पास में चली जाती है, इसमें भी वेदना बहुत होती है।

२—कांड भग्न

सोजा खूब हो, टहलने, हिलाने, छूनेसे असह्य पीड़ा होती हो, रगड़ने से आवाज निकलती हो। अंग ढीले हो गये हों, मारे दर्द के चैन नहीं पड़ता हो तो, समझ लेना चाहिये कि बीच में से ही, वही हड्डी टूटी है।

काण्ड भग्न के बारह भेद

१—कर्कटक

दोनों तरफ से हड्डी उठी हो, बीच से टूट गई हो, गांठ सी उभरी हो तो उसे कर्कटक कहते हैं।

२—अश्वकर्ण

टूटी हुईहड्डी घोड़े के कान की तरह ऊंची हो जाती है।

३—चूर्णित

इसमें हड्डी चकनाचूर हो जाती है, जो आवाज और छूने से जानी जा सकती है।

४— पिच्चित

हड्डी पिचकर चौड़ी हो जाती है, और जोरसे सूज जाती है।

५—अस्थिच्छलित

इसमें हड्डी एक तरफ नीची होकर, टूटाभाग ऊपर को हो जाता है।

६—काण्डभग्न

हड्डी के डंडे के टूट जाने को काड भग्न कहते हैं, यह हिलाने से अलहदा हुआ मालूम होताहै

७—मज्जानुगत

हड्डी टूटकर दूसरी हड्डी में घुसकर उसकी मज्जा को बाहर निकाल लेती है।

८—अतिपातित

हड्डी बिलकुल कट जाय, टूट जाय उसे अतिपातित कहते है।

९—वक्र

हड्डी टेढ़ी हो जाय, टूटे नही उसे वक्र कहते हैं

१०—छिन्न

एक तरफ से कट जाय, टूट जाय और एक तरफ से बाकी रह जाय तो छिन्न कहते है।

११—पाटित

इसमें हड्डी थोड़ी बहुत फट जाती है, और उसमें पीड़ा होती है।

(१२) स्फुट

हड्डी फूल जाती है, टूटती नहीं।

घावोंका वर्णन

आयुर्वेद में घाव को व्रण कहते हैं, और डाक्टरीमें Wound आयुर्वेदमें बहुत विस्तार से घावों का वर्णन हुआ है, जो अरुचि के साथ साधारण जनता की समझ में भी नही आ सकता। यहां पर सीधे शब्दो में घावो का वर्णन होगा और कोई आवश्यक बात भी नही छुटेगी।

साधारण रूप से घाव ६ तरह के होने है

घावों के ६ भेद हैं

(*1*) *Incised wounds*

धार वाले शस्त्रो से होने वाले घावों को छिन्न व्रण कहते हैं, ऐसे घाव छुरी, तलवार आदि से होने हैं और इनमें जल्दी ही खून आजाता है। और बहुत देर तक बहता है।

(*2*) *Lucerated wounds*

गाड़ी के नीचे पैर आने, सिर पर लाठी गिरने, आदि से होते हैं, इन्हें कुचले हुये घाव कहने हैं। इनके आसपासकी चमड़ी भी कुचल के फट जाती है और थोड़ा खून भी निकलता है।

(*3*) *Contused wounds*

इन्हें पिच्चित व्रण कहने हैं। चोट वगैरह से उस जगह निशान पड़ जाता है, और कुछ सूजन भी हो जाती है, बाद में यह सूजन नीली पड़ जाती है, इसमें खून नहीं निकलता। ठेठ हिन्दी में पिच्चित व्रण को कुचलना कहते हैं।

(*4*) *Punctured wounds*

इन्हें सूचीमुख घाव कह सकते हैं। तीर जैसे लम्बी नोक के शस्त्रों से प्रायः ये घाव होते हैं, इन घावो का मुख सुई जैसा पतला होता है, छोटा होता है कभी इनकी गहराई अधिक भी होजाती है। ऐसे घाव अगर पेट या फेफड़े या हृदय आदि स्थानो में होते हैं तो दशा नाजुक होजाती है।

(*5*) *Gunshot wounds*

ये घाव बन्दूक या पिस्तौल की गोलीके घुसने से होने हैं, वह जगह छिद जाती है, कभी २ गोली अंदर ही अटक जाती है, जिससे आदमी मर जाना है।

(*6*) *Toisoned wovnds*

ये जहरीले घाव होते हैं, पागल कुत्ते, सांप, बिच्छू आदि के काटने से ये घाव होने हैं। जिन की चिकित्सा में बडी दिक्कत होती है, भर २ के फिर हो जाते हैं, फिर अगर जहर अन्दर व्याप्त हो जाना है तो आदमी का बचना ही मुश्कल हो जाता है।

विस्फोटक फोड़ा

Bails

कारण

जब देह में मल सञ्चित होजाता है। तो वह किसी एक स्थान में एकत्रित होकर फोड़े के रूप में दर्शन देता है, या यों कहिये कि प्रकृति ही चमड़ी के रास्ते फोड़े के रूप में उस मल को निकालती है फोड़े के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानो का ऐसा ही विश्वास है। फोड़ा एक भी हो सकता है। और फोड़े कई भी हो सकते हैं, एक ही शरीर में कभी २ बीसो फोड़े निकल आते हैं। छोटी २ फुन्सियो को फोड़ा नहीं कहते, और न गांठो को ही फोड़ा कहते हैं, गांठे पकती नही, किंतु फोड़ा अवश्य पकता है। साथ ही फोड़े में मवाद भरता है, टीस चलती है और वह पककर फूटभी जाताहै।

खट्टे, तीखे, गरम आदि दोषो के बिगाड़ने वाले आहार विहार से, अजीर्णसे धूप में अधिक फिरने, आदि कारणो से दोष बिगड़ते हैं। और

खून, मांस, और हड्डियो को दूषित करके फोड़ा पैदा करते हैं, फोड़े में पित्त और खून की प्रधानता रहती है। एक फोडा ऐसा भी होता है जो अंदर ही अंदर होता है बाहर में दिखलाई नहीं पड़ता।

फोड़े के ८ भेद

(१) बादी का फोड़ा।
(२) पित्त का फोडा।
(३) कफ का फोड़ा।
(४) बादी और पित्त का फोड़ा।
(५) बादी और कफ का फोडा।
(६) कफ और पित्त का फोडा।
(७) त्रिदोष का फोड़ा।
(८) खून का फोड़ा।

इस तरह फोडा आठ तरह का होता है।

(१) बादी का फोड़ा

बादी का फोड़ा काला होता है, इसमे माथे में सुई चुभने जैसा दर्द होता है बुखार भी हो जाता है, प्यास लगती है, और सधियां टूटने लगती है। यह पकता बडी देर में हैं।

(२) पित्त का फोड़ा।

पीला, कभी२ लाल, जलनदार होता है। पक जाता है। और पीब बहने लगता है, इसमें टीस चलती है, मारे दर्द के बुखार भी होजाता है और प्यास लगती है।

(३) कफ का फोड़ा।

यह सफेद होता है बहुत दिनों में पकता है। और इसमें पीडा नहीं होती। इसमे खुजली भी चलती है, और कड़ापन भी रहता है कै, अरुचि, अगों में जड़ता ये तीन उपद्रव और होजाते हैं।

(४) बादी और पित्त का फोडा।

यह पीलापन लिये हुये काला होता है कभी लाल होजाता है। जलन, प्यास पीब गिरना आदि बादी और पित्त दोनों के चिह्न होते हैं।

(५) बादी और कफ का फोड़ा।

खुजली, भारीपन, अंगो में जड़ता, देर में पकना, सुई चुभना आदि बादी और कफ दोनों के चिह्न इसमें होने हैं।

(६) कफ और पित्तका फोड़ा

खुजली, दाह, ज्वर, वमन, आदि चिन्हहोतेहैं

(७) त्रिदोपज फोडा

त्रिदोष का फोडा बीच में नीचा, और चारो तरफ ऊंचा, कडा, थोड़ा पकने वाला, जलनदार तथा लाल होता है। तृषा, मोह ज्वर, कै, बेहोशी प्रलाप और कम्प ये उपद्रव भी उसमें होने है, यह असाध्य है।

(८) खून का फोडा

खून के विगड़ने पर खून के फोड़े होते है। ये कई भी होजाते हैं, और कभी २ एक ही होता है, ये लाल होते हैं और जलनदार होने हैं, और पीब भी इनसे लाल ही बहता है।

फ़ोड़े के उपद्रव

तृषा, श्वास, मांस, का सडना, दाह, हिचकी मद, ज्वर विसर्प और मर्म स्थानोंको पीड़ा इतने उपद्रव फोड़े के अदर होते हैं।

नहरुआ

आयुर्वेद में इसे स्नायु रोग कहते हैं।

यह रोग होता है, हाथ पाव आदि शाखाओ में जब कोई दोष बिगडता है तो पहिले वह विसर्प जैसी सूजन पैदा करता है, फिर सूजन मिट जाती है, उसका गरम मास सूख जाता है, और उसमें से एक डोरा सा निकलताहै, इसे ही नहरुआ कहते हैं। इस डोरे पर अगर छाछ में पिसे हुये सत्तुओ की लूपड़ी बाध दी जाती है, तो डोरा धीरे २ घाव से बाहर निकलता है। अगर डोरा टूट जाता है तो, भयकर सूजन पदा हो जाती है, पूरा निकलने पर सूजन मिट जाती है।

यह पाजी रोग एक जगह शांत होकर दूसरी जगह भी हो जाता है हाथ पावों में जब डोरा टूट जाता है तो वे टूटे ही समझने चाहिये।

शर्करार्बुद

यह बडा शैतान रोग है। मांस, सिरा और स्नायु इन तीन स्थानो में से किसी स्थान में कफ मेद, तथा वायु के कारण (क्रमश.) गाठें पड जाती है, फिर उनके फूटने पर या फोडने पर घी शहद और चर्बी जैसा पीव निकलता है पीछे वायु के कारण मांस सूख जाता है, और रेत पैदा हो जाती है फिर बदबूदार, कई तरह का खून नसो से निकलता है।

नाड़ीव्रण नासूर

इसके मानी हैं रगो का स्राव, जब घाव अंदर जाकर नाडियो तक पहुँच जाता है तो उसे नाडी व्रण कहते हैं। जब फोडा पक जाता है और उसमें पीव भर जाती है तो उसे साफ कर देते हैं, उसकी पीव वगैरह निकाल देतेहै, जिससे वहस्थान साफ हो जाता है किंतु बहुत से भले आदमी (!) ऐसे भी हैं, जो पके हुये फोड़े को कच्चा ही समझ लेते हैं, और पीव पड़ने परभी उसकी सफाई नहीं करते, बल्कि खून पित्त को बिगाडने वाली ऊट-पटांग चीजें खा २ करके उसे और भी बिगाड देते हैं। फिर वह पीव वहां सड जाता है, सडा हुआ तो पहिले ही होता है, और भी जहरीला होजाता है। बाद में वह चमड़ी मांस, सिरा,मोटी नसें, हड्डी, कोष्ट और मर्मस्थानो के छिद्रो के रास्ते अदर पहुँचती है और नाड़ीव्रण पैदा करती है। कभी २ यह पीव जिगर तक पहुँच जाती है, यह एक कारण है जिससे नड़ीव्रण होता है। दूसरा कारण है, हाथ पैर आदि किसी अग में कोई कांटा टूट जाता है, और या तो वह छोटा होनेके कारण दिखलाई नहीं पड़ता, या जिसके टूटता है, वह उसकी उपेक्षा करके नही निकलाता है। फिर वह कांटा स्नायु, संधि आदि स्थानो में घुसकर घाव पैदा करता है, जिससे नाडीव्रण होता है, सुई के टूट जाने, आदि से भी कोई टुकड़ा भीतर रहकर नाड़ीव्रण पैदा कर देता है।

हिकमत में लिखा है—

जिस घाव को फूटे ४० दिन हो जांय, उसे नासूर कहते है। यह भीतर से गहरा और गहराई में चौडा होता है। उसके भीतर हर तरफ कडा और सफेद मास रहता है हरदम उसमें से तरी बहती है, और उसमें दर्द कम होता है, कभी तरीका बहना बन्द भी हो जाता है, कभी घाव का मुंह मिल जाता है, और फिर खुल जाता है, गहराई कभी सीधी होती है, कभी टेढी। जब नासूर जिगर तक पहुँच जाता है तो उसके अदर सलाई डालने से कडापन मालूम होता है, और उसमें से तरी बहती रहती है। जब नासूर जिगर की रगतक पहुँच जाता है तो, पतला, गर्म, लाल, पीला खून आने लगता है।

नासूर के ५ भेद

(१) वातज नासूर।
(२) पित्तज नासूर।
(३) कफज नासूर।
(४) त्रिदोषज नासूर।
(५) शल्यज नासूर।

(१) वातज नासूर

इसका मुंह छोटा होता है, और कड़ा होता है, इसमे सुई सी चुभती है. और झागदार स्राव होता है, बिना झाग के भी कभी२ पीव निकलता रहता है।

(२) पित्तज नासूर

पित्तके नासूर में जलन होती है, प्यास लगती है, और ज्वर भी हो जाता है, पीला, और गरम पीव निकलता है, विशेषकर दिन में।

(३) कफज नासूर

यह कड़ा होता है, अकड़ जाता है, और दर्द बहुत करता है, इसमें खुजली भी चलती है और सफेद तथा चिकना पीब निकलता है।

(४) त्रिदोषज नासूर

यह भयंकर और घातक नासूर है, इसमें सब तरह का पीब निकलता है, और तीनो दोषो के सब चिह्न होते हैं, जलन, ज्वर, श्वास, मूर्च्छाऔर मुखशोष ये पांच और साथी बन जाते हैं।

(५)शल्यज नासूर

सुई, कांटे आदि के टूटने से पहिले घाव होता है, फिर गाढ़ी छाछ (तक्र) जैसाखून मिला पीव निकलता है हरदम पीड़ा रहती है टीस चलती है।

कुष्ठ (कोढ़)

Leprosy

कोढ़ को आधुनिक विद्वान केवल खून की खराबी समझते हैं. इसलिये ऐलोपैथी में इसके दो ही भेद किये गये हैं, किन्तु प्राचीन विद्वानो का मत इससे भिन्न है, उनके मत में दोष त्रयी का बिगड़ना भी कोढ़ मे आवश्यक है, केवल खून की खराबी से कोढ़ होता है यह सिद्धान्त मान्य भी नहीं हो सकता, जब कि प्रत्यक्ष रूप से दोषो की विकृति दशा का अनुभव हमारे सामने आता है। इस रोग में वात, पित्त, कफ ये तीनो दोष रस, रक्त, मास और लसिका ये दूष्य होते हैं, मतलब यह है कि, अपने २ कारणो से दोष बिगड़कर रस रक्त आदि को विगाड़कर कोढ़ पैदा करते हैं, खून स्वतः दोष नही है, दूष्य है, इसलिये इसकी प्रधानता नही मानी जा सकती। कोढ़ का रोग छूत वाला माना जाता है, यह है भी सच ही। इसके कीटाणु Garems फौरन दूसरे शरीरमें घुसजाते हैं, और घुसने हुये दिखाई भी नहीं पडते। कोढ के कीटाणु साधारण नहीं होते, बड़े शैतान होतेहै नख, रोम, दांतो तक को खाने में उन्हे कोई असुविधा नहीं होती।

साथ खाने, बैठने, सोने, आलिङ्गन करने आदि से, इसके कीड़े दूसरे को भी लग जाते हैं। कोढ़ की व्याख्या भी इन शब्दों में की जाती है। To teal To select अर्थात् फाड़ डालना, खीच लेना। आयुर्वेदिक साहित्य में बताया है कि कुष्ट के उत्पन्न होने पर अगर उसकी उपेक्षा की जाती है तो, उसका विष सारे शरीर में घुमकर धातुओको क्लेदित करके बहुत ही छोटे२ कीड़ेपैदा कर देता है, जो अनुक्रम से चमड़ी Skin स्नायु tenp n धमनी, तरुणास्थि को खाकर समस्त शरीर को फाड डालते हैं।यह रोग सहज साध्य भी नहीं होता, इसको ठीक करने वाले वैद्यो की सख्या थोडी ही है। यह रोग बहुत पुराना है, वेदो में भी इसका जिक्र आता है, और सस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रथो में भी इसकी भीषणता का बर्णन है।

कुष्ट के कारण

इसके कारण भी बहुतहैं। दूध, मछली आदि विरुद्ध पदार्थों के खाने से. मल मूत्रादि के रोकने, आदि बहुत से कारणो से तीनो दोष अलग २ या एक साथ कुपित होकर, रस,रक्त, मांस और लसिका को बिगाड़ कर कोढ़ पैदा करते हैं। तिल तेल, कुल्थी, बल्मीक रोग, गर्मी, सुजाक, भैस का दही, बैंगन ये भी कोढ पैदा करते हैं।

कोढ़ के ७ भेद

कोढ १८ प्रकार का होता है, जिसमें ७ महा कोढ माने जाते हैं। बाकी ११ साधारण, महाकुष्ट बड़े ही शैतान होते हैं, इनकी चिकित्सा भी बहुत कम सफल होती है। इनके लक्षण भी यहां बतलाये जाते हैं।

पूर्व चिन्ह

जिस जगह कोढ़ होना है, वहां छूने से व देखने पर, कोमलता, चिकनापन अथवा खरदरापन मालूम होता है। पसीना आने लगता है, या गर्मी में भी पसीना नहीं आता, जलन, खुजली, चमड़े का सूनापन, सुई चुभने जैसा दर्द, चकत्ते, मोह, शूल, व्रणों का उत्पन्न होकर जल्दी नष्ट नहीं होना और उनके भरने पर उनमें रूखापन होना, जरा से कारण से ही उनका कुपित हो जाना, रोमाञ्च होना, खून का काला होजाना ये चिह्न होने लगते हैं। इन्हें देखकर समझ लेना चाहिये कि अब कोढ़ की सवारी आने वाली है।

७ महा कुष्ट

(१) कपाल

यह कोढ़ वायु की प्रधानता से होता है। शुरू में खून बिगड़कर छोटे २ चकत्ते होते हैं, जो रूखे और खरदरे होते हैं, बाद में उसका रूप बढ़ता है, इसमें कुछ कालापन और ललाई होती है। यह मिट्टी के खपरे जैसा होता है, रूखा, खरदरा, पतली चमड़ी वाला होता है। इसमें पीड़ा बहुत होती है। यह विषम कोढ़ है, इसकी चिकित्सा में बड़ी दिक्कत होती है पहिले यह चमड़ी में होता है, किंतु बाद में मांस में घुस जाता है। इसे ठीकरा कहते हैं।

(२) औदुम्बर

यह पित्त की प्रधानता से होता है।

इसमें गूलर के फल जैसी गाठें होती है। जो पीली और मुंह के नीचे लाली लिये होती है। इनमें रोम होते है, और खाज के साथ ही इनमें सुल सुलाहट होती है। यह शुरू में ही लसीका ग्रथियों को दूषित करके गाठों के रूप में प्रकट होता है, बाद में मांस को पकाकर घाव पैदा कर देता है, कीड़े बहुत बढ़कर घाव को सड़ा भी देते हैं। इसका पीव गाढ़ा होता है।

(३) मण्डल

यह भी पित्त की प्रधानता से होता है।

यह कुछ लाल और कुछ सफेद होता है, गीला और पसीनेदार गोल गोल चकत्तोदार होता है। इसके चकत्ते आपस में मिले हुये होते हैं। इसमें खून और चमड़ी खराब होकर चकत्ते पैदा करते है जो मुश्किलों से आराम होते है।

(४) सिध्म

यह वात और कफ की प्रधानता से होता है यह सफेदी लिये हुये लाल रंग का होता है, पतली चमड़ी का होता है, इसे घिसने से घुआं जैसी, या सफेद भुस्सी गिरती है, यह तूम्बी के फूल जैसा होताहै। यह अक्सर छातीमें होता है, और जगह भी हो सकता है, बाद में यह फैल जाता है, इसके कीड़े दूर तक जगह बना लेते हैं।

(५) काकणक

इसमें तीनो ही दोष बहुत बिगड़े हुये होते हैं यह घुंघची जैसा बीच में काला और आखीर में लाल होता है। यह स्वतः पकता भी नहीं है इसमें वेदना खूब होती है।

(६) पुण्डरीक

यह पित्त और कफ की प्रधानता से होता है। यह ठीक सफेद कमल के पत्ते जैसा होता है। आखिर में खूब लाल और ऊंचा होता है।

(७) ऋक्ष जिह्व

इसमें वायु और कफ की प्रधानता होती है। यह कर्कश होता है, यह किनारों पर लाल और बीच में कलाई मिला लाल होता है। यह रीछ की जीभ जैसा होता है, इसमें पीड़ा भी होती है।

यह है ७ महा कुष्ट अब छोटे ११ कोढ़ो का वर्णन किया जायगा, इनके अपने २ अलहदा चिह्न हैं, इसलिये सहज ही समझे जा सकते हैं।

(११) क्षुद्रकुष्ट

(१) एक कुष्ट

इसमें वायु और कफ की प्रधानता होती है। छोटे ११ कोढ़ो में सबसे जोरदार कोढ़ यही होता है। इसमें पसीने बिल्कुल नही आते, यह घेरदार होता है, मछली की चमड़ी जैसा होता है, अभ्रक के पत्तों जैसा होता है।

(२) गज चर्म

इसमें वही वायु और कफ प्रधान रहते है। यह कोढ हाथी के चमडे की तरह मोटा, खरदरा रूखा और काला होता है।

(३) चर्मदल

इसमें वायु और पित्त प्रधान रहते हैं। इसका रंग लाल होता है, इसमें शूल चलते हैं, खुजली और फोडे फैल जाते हैं, चमड़ी फट जाती है, कोई भी चीज छूना असह्य हो जाती है।

(४) विचर्चिका

इसमें पित्त की प्रधानता रहती है।

इसमें काली २ या धूसर रग की छोटी २ फुन्सियां होती हैं, जिनमें से मवाद भी वहता है और उसमें खुजली वहुत चलती है।

(५) विपादिका

इसमें वायु और कफ प्रधान होते हैं। हाथ पांव फट जाते हैं और उनमें बड़ा दर्द होता है, किसी चीज के छूने से जान सी निकलती है।

(६) पामा

इसमें पित्त और कफ की प्रधानता रहती है। यह एक प्रकार की खुजली है, इसमें छोटी २ बहुत सी फुन्सियां होती हैं। उनमें जलन होती है, खुजली चलती है और उनमें मवाद भी बहता है

(७) कच्छु

इसमें बड़ी फुन्सियां बड़ी २ होती हैं और पोरों में जलन होती है, यह हाथों में और खास कर चूतड़ों में होती है।

(८) दद्रु

इसमें खुजली बहुत होती है, लाल २ फुन्सियां होती है, यह पैदा होते ही उठ जाता है और मण्डल के समान गोल हो जाता है।

(९) विस्फोट

यह एक तरह के फोड़े होते हैं, इनकी चमड़ी लाल और पतली होती है।

(१०) किटिभ

यह कोढ़ काला सूखा व्रण के जैसा रूखा और खरदरा होता है।

(११) अलसक

यह कोढ़ लाल रग की फुन्सियो वाला होताहै और इसमें खाज बहुत ज्यादा चलती है।

(१२) शतारू

इस कोढ़ का रग लाल होता है, इसमें फोड़े बहुत होते हैं, जलन होतीहै और कांटे से चुभतेहैं।

धातुगत कोढ़

कोढ रस आदि धातुओ में घुसकर शरीर के सौंदर्य को तो नष्ट करता ही है, होने वालीसन्तान के अनिष्ट का कारण भी होजाता है। कोढ़ी बाप की औलाद कोढी ही होती है, यह सब जानतेहैं।

(१) रसगत

जब कोढ के कीड़े रस में घुस जाते हैं, तो अगोंमें विवर्णता और रूखापन होजाता है, चमड़े का स्पर्श ज्ञान नष्ट होजाता है, रोमाञ्च होने लगता है, पसीने बहुत आते हैं।

(२) खून गत

रस में घुसकर कीड़े जब खून तक जा पहुँचते है, तो खुजली बहुत चलती है और राध बहुत गिरने लगती है।

(३) मांसगत

कीड़े जब मांस में घुस जाते हैं, तो मांस को फुला देते हैं, मुंह सुखा देते हैं, देह कठोर होजाती

है, फुन्सियां निकलती हैं, सुई चुभने जैसी पीड़ा होती है, वड़े २ फोड़े होजाते हैं और वे स्थायी से होजाते हैं।

(४) मेदगत

कीड़े मेद में घुसकर आदमी को लूला वना देते हैं, अंग भंग होजातेहै, घाव होकर फैल जाते हैं, खुजली चलती है, राध वहती है और मांस में घुसे के चिह्न होजाते हैं।

(५-६) अस्थि मज्जागत

कीड़े जव हड्डियो तथा मज्जा में घुस जाते है, तो नाक वैठ जाती है, आंखे लाल होजाती है, घावों में कीड़े पड़ जाते हैं, गला वैठ जाता है। और व्यथा होती है।

(७) वीर्यगत

कीड़े जव वीर्य तक पहुँच जाते है तो उससे पैदा हुई सन्तान कोढ़ी होती है।

श्वित्र 'धवल कुष्ट'

कोढ़ और श्वित्र में अन्तर इतना ही है कि पहिला टपकता है, पर दूसरा टपकता नहीं। कोढ़ तीनो दोषो के कोप से होता है, पर श्वित्र एक के प्रकोप से। कोढ़ सातो धातुओंमें घुस जाता है, पर श्वित्र तीन खून, मास और मेद में ही रहता है।

इसकी प्रारम्भिक अवस्था में छोटे २ गोल २ धव्वे होते हैं, जो सफेद होतेहै, दूसरे रग के धव्वे इसमें नहीं होते। अक्सर यह कोढ हाथो पर, पैरो पर, और मुंह तथा छाती परहोता है. इसका रग दूध से भी ज्यादा सफेद होता है, गारो में यह कोढ़ दिखलाई कम पडता है, पर कालों में फौरन दिखलाई पड़ता है, किसी २ क सारा शरीर ही सफेद होजाता है, यह उनके ही ज्यादा होता है, जिनके माता पिता कोढ़ी होते हैं। सफेदी में कभी २ लाल रग की चमक भी रहती है, वस यह न गलता है, न चूता है।

श्वित्र के भेद

(१) किलास. (२) अरुण, येदो भेद धवल कुष्ट के होते हैं। पहिला 'किलास' खून से सम्बन्ध रखता है, दूसरा 'अरुण' मांसके आश्रित होताहै।

१—वातज श्वित्र

वायु से पैदा हुआ रूखा होता है, उसमें थोड़ी लाली होती है, और वह खून में ही रहता है।

२—पित्तज श्वित्र

यह कमल के पत्ते की तरह बीच में सफेद और आखिरी में थोड़ी ललाई लिये होता है, यह रोमो को नष्ट कर देता है, इसमें जलन होती है, और यह मांस में रहता है।

३—कफज श्वित्र

यह सफेद एकदम सफेद, भारी और पुष्टहोता है, इसमें खुजली चलती है, और यह मेद में रहता है।

मस्से *Warts*

शरीर में हाथ पांव आदि किसी भी अग पर मस्से होते है, मस्से छोटे २ और कालेरग के होते हैं। कभी २ मस्से बड़े होकर लटक भी आते हैं, उस दशा में इनका कटवा देना ह अच्छा है।

लशुन (जतुमणि)

यह थोड़ी लाली लिये हुये चकत्ते होते हैं, जो जन्म से ही होते है, न ये ऊंचे नीचे होते हैं, और न खरदरे ही होते है।

तिल *Male*

हाथ, पांव, मुंह नाक, कान आदि पर यह तिल का जैसा निशान होता है। कभी २ एक ही शरीर पर वहुत से तिल होजाते है, ये जन्म से ही होते हैं, स्त्रियो की ठोड़ी पर अगर तिल होता है, तो उनका सौंदर्य वढ़ जाता है।

चर्मकील

शरीर के किसी भी हिस्से में जो कीलें होतीहैं उन्हे चर्मकील कहते हैं।

न्यच्छ (चकत्ते)

छोटे २ काले या सफेद चकत्ते होते है, उन्हे न्यच्छ कहते हैं।

फफोले पड़ना

खून खराब होने, रक्तपित्त होने, आयोडाइड खाने आदि से देह पर फफाले पड़ जाते है, कारण दूर होने पर फिर ये अपने आप ही मिट जाते हैं।

अजगल्लिका फुन्सी

यह फुन्सियां बच्चो को होती है, इनका रग चमड़ी जैसा होता है, औरदेखने में मूंग जैमी होती है, इनमें दर्द नहीं होता और किसी भी जगह होजाती है।

यवप्रख्या फुन्सी

यह जो की जैसी फुन्सियां होती हैं, इनके होने पर बाद में गाठ सी पड़जाती है, ये फुन्सियां कड़ी होती हैं और इनके ऊपरमांस फैल जाताहै।

अधालजी फुन्सी

यह फुन्सियां या तो ऊपर उठी हुई होती हैं, या नीचे फैली हुई होती हैं इनमें थोड़ा पीव भी गिरता है, किन्तु इनके मुह नहीं होता, दबाने पर पीव निकल जाता है, और फुन्सी चिपक जाती है

विवृता फुन्सी

इन फुन्सियों का मुह फैला हुआ होता है, और जलन होती है, देखने में यह पके हुये गूलर जैसी होती है।

कच्छपी फुन्सी

कफ और वायु के कारण ५ ६ कड़ी २ गाठे जैसी फुन्सी होजाती हैं।

बल्मीक फुन्सी

हथेली, तलवे जोड, गरदन और ऊपर के जोते, इन स्थानो मे यह फुन्सी होती है, जो धीरे२ बढ़कर सांप की बवई जैसी होजाती है, बाद में व्रण होजाता है जिससे दर्द होता है जलन होती है, खाज चलती है, और गीलापन रहता है।

इन्द्र वृद्धा फुन्सी

यह ऐसी फुन्सी होती है। जिसके अंदर कई फुन्सियां होजाती हैं, यहबादी और पित्त से होती है अत. देखने में कलौस लिये हुये पीली होती है, जलन होती है, और दर्द भी होता है।

पद्मिनी कण्टक फुन्सियां

यह फुन्सियां कमलिनी के कांटों जैसी अंकुर युक्त, गीली, खाजदार और पीली जड़ वाली होती है।

शीत पित्त

ठडे पवन के लगने से, कफ और वायु बढ़ते हैं, फिर दूषित पित्त के साथ मिलकर चमड़ी खून आदि में फैलकर, शीत पित्त उदर्द और कफ़ठोर इन तीन रोगो में से किसी को पैदा करते हैं। इन रोगो के होने के पहिले—

प्यास, अरुचि, उबकाई, ग्लानि, देह में भारीपन और आंखो में लाली ये चिह्न होते हैं, और बाद में फिर स्पष्ट चिह्न दिखलाई देते हैं। शीत पित्त में ये चिह्न होते हैं।

ततैया के काटने के समान देह में चकत्ते पड़ जाते है जिनमें खुजली चलती है, जलन होती है, और दर्द बहुत होता है, इसमें कै भी होती है। बुखार भी होजाता है. वायु का इसमें बड़ा जोर होता है।

उदर्द

ये भी चकत्ते ही होते हैं, जो बीच में नीचे होते है लाली लिये हुये होते हैं, इनमें खुजली भी चलती है, ये चकत्ते शिशिर ऋतु में होते हैं,इनमें कफ का जोर रहता है।

उत्कोठ

ठीकतौर से वमन नही होने पर ये चकत्ते होते हैं असल बात तो यो है कि कै के समय कफ, पित्त ऊपर में आते हैं, साथ ही अन्न भी आता है, लेकिन जब कै ठीक तौर से नहीं होती तो वे वहीं

रुक जाते हैं, फिर लाल २ खुजलीदार चकत्ते होते हैं, एक चकत्ता जब मिट जाता है, तब फिर दूसरा चकत्ता होताहै ।

विष (जहर)

Poisan

जहर का नाम सुनते ही रोंगटे खड़े होजाते हैं मृत्यु की बिभीषिका सामने आजाती है । जहर ? कितना भय कर शब्द है । ऐसी घातक चीज का अस्तित्व ही संसार में क्यों हुआ ? केवल भारत में प्रतिवर्ष लाखो आदमी जहर के कारण वे मौत मरते हैं ! इसका एक दूसरा पहलू भी है, पुण्य के साथ पाप, सुखके साथ दुःख और हंसी के साथ रुदन, तथाजैसे स्वर्ग के साथ नर्कहै, वैसे ही अमृत के साथ जहर है जिसका होना भी आवश्यक है

वीत रागी के लिये सुख दुःख में कोई अन्तर नहीं, वैसे ही आत्मज्ञानियों के लिये जहर और अमृत में कोई फर्क नहीं । अमृत पीके सब अमर होना चाहते हैं। किन्तु जहर पीके कोई मरना नहीं चाहता, सृष्टि का यह वैषम्य भी तो कोई रहस्य रखता है । सब अमर होके करेंगे क्या, फिर तो वे अपने सिवा किसी के अस्तित्व कोही नहीं मानेंगे।

इसके साथही जहां लाखो मरते है वहां कहीं उनसे अधिक जान भी तो पाते हैं ।

जहर केवल जहर ही नहीं अमृत भी तो है। प्रति दिन सेंकडो मन जहर दवाओ के काम में आता है । जिससे लाखो का भला होता है ।

फिर जहर अपने आप तोशरीर में घुसता भी नहीं, या तो खाने से घुसता है, या सांप वगैरह के काटने से, पहिला कारण तो कोई उत्तर ही नहीं रखता । न हम जहर खायें, न किसी को दें, हुआ निपटारा, रही साप वगैरह के काटने की वात,सांप भी तो किसी को अपने आप विना छेड़े नहीं काटते । छेड़ने पर तो उनका स्वाभिमान उन्हे काटने को बाध्य करता है । हमें भी तो एक चींटा खाकर तिलमिला जाते हैं, बदलेमें एकघूंसा मारना चाहते हैं । विवेकी मनुष्य की यह दशा है, तब वह तो बेचारा पेट से चलने वाला अज्ञानी जीव है हम यहभी जानते है, कि कुछदिन पहले ऋषियों के आश्रमोमें सांप जैसे जहरीलेजीव तपस्वी ऋषियों की जटाओ तक में वर्षों रहते थे. और इन्हेकुछ नकहते थे । फिर आज कल विज्ञानको कृपा सेतो यह सिद्ध होचुका है कि सांपका जहर ठीक तरीके से दिया जाय तो मरणासन्न रोगी को भी मिनटों में सबल करदेता है । फिर जहर तो जगली जड़ी बूटियों मेंभी रहता है जिनसे सेंकड़ो दवाए तैयार होती हैं । हजारो जीवो का भला होता है ।

जहर घातक उसी दशा में है, जबकि वह ठीक और शुद्ध नहीं होता है वैसे वही अमृत होता है । अफीम जहर है. माना, किंतु वही दस्तो के रोकने में रामबाण का काम करता है । हां, अगर ज्यादा खाया जायतो मौतका दरबाजा भी दिखा देता है।

जहर उपयुक्त है लाभप्रद है, यह मानना ही पड़ेगा ।

विष के २ भेद

(१) स्थावर ।
(२) जङ्गम ।

इस तरह बिष २ तरह का होता है, दोनों का विवेचन भी आगे होगा ।

स्थावर

जगली जड़ी बूटियो में जो जहर होता है उसे स्थावर कहते हैं, स्थावर विप१० स्थानो में बिभक्त है । जो अपना २ अलग २ असर दिखलाता है,

स्थावर के १० भेद

(१) मूल विष

कनेर आदि की जड में जो जहर होता है वह मूल विष कहलाता है, इसके खाने से शरीर में ऐंठन, वेहोशी, और प्रलाप होता है ।

(२) पत्रविष

विष पत्रादि के पत्तो में जहर होता है, जिसे खाने से जभाई आती है, कम्प होता है, श्वास होता है।

(३) फलविष

कर्कोटकादि फलो में जहर होता है। जिसके खाने से अडकोषो में सूजन, दाह, और भोजनपर अरुचि होती है।

(४) फूलविष

जिन फूलों में जहर होता है उनके खाने से कै, अफारा, और बेहोशी होती है।

५-६-७ छाल, सार, गोंद, विष

जिनके खाने से मुंह में बदबू आने लगती है, सर में दर्द होता है, कफ गिरने लगता है। और शरीर रूखा हो जाता है।

(८) क्षीर विष

आक आदि के दूध को खाने से दस्त होने लगता है। मुंह में झाग आजाते हैं और जीभ जड़ होजाती है।

(९) धातु विष

जिन धातुओं में जहर होता है। उनके खाने से बेहोशी होती है। तालु में जलन होती है हृदय में पीड़ा होती है।

इन ९ तरह के जहरोमें तत्काल मौत नहीं आती, कुछ समय बाद आती है।

(१०) कन्दविष

१३ तरह का होता है। यह बड़ा जहरीला है, फौरन ही मार देता है।

(२) जगम विष

चलने, फिरने, उड़ने वाले जीव जन्तुओ के विष को जंगम विष कहते हैं।

जगम विषके १६ स्थान है यह १६ जगह रहताहै।

जगम विष के १६ स्थान

(१) दृष्टि में। (९) लार में

(२) श्वास में। (१०) मुंह(दांतो)के काटने में

(३) डाढ़ में। (११) पाद में (गुद वायु में)

(४) नख में। (१२) गुदा में।

(५) पेशाब में। (१३) हड्डी में।

(६) मल में। (१४) डक (रोम में)

(७) वीर्य में। (१५) पित्त में।

(८) आर्त्तव में।(१६) मृत शरीर में।

इन १६ स्थानों में जंगम विष है, जिसका असर किसी भी तरह हो सकता है।

सबसे जहरीले जीव साप समझे जातेहैं, अब उन्हीं की कैफियत सुनिये—

सांपों के २ भेद

(१) दिव्य सर्प।

(२) पार्थिव सर्प।

(१) दिव्य सर्प

वासुक तक्षक आदि सर्पों को दिव्य सर्प कहते हैं। इनकी नजर में जहर भरा है और इनके सांस से कोसो की जमीन जल जाती है, हम लोगो का सौभाग्य है जो इनसे पाला नही पडा।

(२) पार्थिव सर्प

जमीन के सर्प जो हमें काटते हैं, पार्थिव सर्प कहलाते हैं। इनकी डाढ़ में जहर होता है। और हड्डियो में भी।

इनके ५ भेद हैं

(१) दर्वीकर (फणवाले)

(२) मंडली (टिमकी वाले)

(३) राजमंत (लकीर वाले धारीदार)

(४) निर्विष (विष रहित वा थोड़ेविषवाले)

(५) वेकरंज (वर्णशंकर)

चौथे और पांचवे नम्बर के सर्पो का विशेष उल्लेख नही किया गया है। इन पांचो तरह के सर्पो के कुल भेद ८० होते हैं।

पार्थिव सर्पों के ८० भेद

(१) दर्वीकर ।	२६ तरह के होतेहैं ।
(२) मडली ।	२२ तरह के होते हैं ।
(३) राजिमत ।	१० तरह के होते हैं ।
(४) निर्विष ।	१२ तरह के होतेहैं ।
(५) वैकरज ।	१० तरहके होते हैं ।
५	८०

नोट—वैकरज तीन तरह के होते है, उनसे पैदा हुये चित्र, मडली और धारीदार ७ तरह के होते है, इस तरह कुल सख्या १० होती है दिक्कत से बचने के लिये हमने एक ही जगह १० का का उल्लेख कर दिया है।

दश के ४ भेद

(१) सर्पित ।

(२) रदित ।

(३) निर्विष ।

(४ (सर्पाङ्गाभिहत।

(१) सर्पित

सर्पित के माने है पूरी तौर से काटा हुआ जब सांप पूरी तौर से काटता है तो काटी हुईजगह

एक दो या कई दांतो के चिन्ह साफ दिखलाई पडते हैं। दाढ़ ठीक बैठने पर उस जगह से थोड़ा खून भी निकलता है और कुछ सूजन भी होजाती है। इन्द्रियो में तत्काल विकार पैदा हो जाता है।

(२) अर्दित के माने हैं झरोट, सांप मामूली तौर से झरोट मार देता है। या तो उसे पू। अवसर ही नहीं मिलता, या जानबूझ कर ही झरोट मारता है। काटी हुई जगह नीली, लाल, पीली या सफेद हो जाती है, उ स जगह लकीर सी खिची दिखलाई पड़ती है।

(३) निर्विष कोई २ सांप निर्विष होता है। उसमें जहर नही होता, जिससे उसके काटने पर भी दांतोके चिह्न साफ दिखाई देने पर भी कोई विकार दिखाई नहीं पड़ता। हां सांप होने के कारण वह खून में जरूर कुछ खराबी पैदा कर देता है

(४) सर्पाङ्गाभिहत-बहुत से आदमियो को उनका भ्रम ही मारडालता है। जरा भी सर्प के छू जाने पर समझ लेते हैं कि काट गया, नहीं भी छूता है तो भी भ्रम होजाता है, और बहुतो को काटता तो है बिच्छू या मूसा, मगर वे चिल्लाते हैं कि सांप काट गया। इसमें उनका भ्रम ही उन्हे खराब करता है डसने के डर से उनका वायु बिगडता है और वह कुछ न कुछ खराबी पैदा करता है, उनके विचारो के कारण वह जगह जहां सांप छूता है, कुछ सूज भी जाती है, ऐसे भैमियों की भी सख्या कम नहीं है ।

अब उन सांपो के काटने का वर्णन होताहै

दर्वीकर सॉप का काटना

दर्वीकर २६ तरह के होते हैं, यह बतला चुके हैं अनावश्यक जानकर भेदो का उल्लेख नहीं किया जाता, सीधे शब्दों में उनकी पहिचान लिख दी जाती है। फण वाले सांप दर्वीकर होते हैं, यह सीधी पहिचान है उनके सर पर पहिये, हल छत्र, स्वस्तिक और अकुश इनका चिह्न होता है। फण वाले सांपो के काटने पर ये चिह्न होते हैं—

चमड़ी, आंख, नाखून, दांत, पेशाब और दस्त कालेहोजाते हैं। देह में रुखाई आजाती है, शिर में भारीपन जोड़ो में वेदना, कमर,पीठ और गर्दनमें दुर्वलता, जभाई, कम्प, आवाजवैठना,गलेमें घुर घुर होना, जडता, सूखी डकार, खांसी, श्वास हिचकी, शूल, ऐंठन, प्यास, लार बहना, मुंह में झाग आना, सोतो का रुक जाना, वायु का ऊपर की तरफ चलना, ये चिह्न होते हैं। उनके अलावा वायु के और सब विकार हो जाते हैं।

शरीर में सात कला है, इसलिये जहर सातों कलाओं को पार करके वीर्य में घुसता है इसीलिये

जहर के ७ वेग माने गये हैं। एक एक वेग में एक एक कला को पार करता है। (१) वेग में खून को खराब करता है, जिसमें वह काला हो जाता है और देह में चीटियों का चलना मालूम होता है (२) वेग में जहर माम को खराब करता है जिस से देह काली पड़ जाती है, सूज जाती है, और गांठे पड जाती हैं। (३) वेगमें जहर मेद को खराब करता है जिनसे डंक की जगह क्लेद, शिर में भारीपन, और पसीना निकलना है, आंखें भी मिचने लगती है। (४) वेग में जहर पेटमें घुस कर कफ, रस ओज आदि को खराब करता है, जिससे घुमेर आने लगती है मुंह से लार गिरने लगती है, और जोड टूटने लगते हैं। (५) वेग में जहर हड्डियो में घुसता है और बल तथा शारीरिक अग्नि को खराब करता है, जलन होती है हुचकी चलती है, और सन्धियों में भेदन होता है। (६) वेग में जहर मज्जा में घुसता है और ग्रहणी कला को खराब करता है, जिससे भारीपन, दस्त, हृदय पीड़ा और वेहोशी होती है। (७) वेग में जहर वीर्य में घुसता है और व्यान वायु को एकदम कुपित करके सूक्ष्म छिद्रो से कफ गिरने लगता है, उसी समय कमर और पीठ टूट जाती है, हिलना जुलना वन्द होजाता है, मुंह से पानी और शरीर से वहुत पसीना आने लगता है फिर सांस रुक जाती है।

यह ७ भेद है फण वाले सापो के जहर के।

मडली सांप का काटना

मडली सांप धीरे २ काटता है। यह मोटे होते है और देह पर चकत्ते होते हैं। इनकी कान्ति आग की जैसी होती है। इन सापो के काटने पर ये चिह्न होते है।

चमडी, नख, मल, मूत्र, आंखें आदि पीली होजाती हैं। रोगी को ठंड अच्छी लगतीहै, जलन होती है सन्ताप होता है। प्यास, बेहोशी, ज्वर, मद और नाक मुंह, गुदा, लिंग आदि से खून गिरना मांस लटकना, सूजन दंश की जगह का सड़जाना ये चिह्न होतेहैं। सब चीजें पीली दिखलाई पड़तीहैं जल्दी गुस्सा आता है, और पित्त की बीमारियां होती हैं।

इसके भी सात वेगो की कथा सुनिये।

(१) वेगमें खून खराब होके पीला होजाता है। जलन होती है। और देह पीली होजाती है।

(२) वेगमें मांस खराब करता है, जिससे जलन और पीलापन दोनो और भी बढ़ जाते हैं, डंक की जगह सूज जाती है। (३) वेग में मेद खराब होजाता है। जिससे आखें मिचने लगती हैं, प्यास लगती है। पसीने आते हैं, और दंशकी जगह क्लेद होता है। (४) वेगमें कोठेमें घुसकर ज्वर पैदा करता है (५) वेगमें देह में जलन होने लगती है ६—७ वेग में फण वाले सांपो के जहर के वेग के चिह्न होकर रोगी परमधाम को तशरीफ ले जाता है।

राजिमन सर्प का काटना

राजिमन सर्प चिकने होते हैं, उनकी देहपर तिरछी सीधी रेखा होती है। ये अक्सर सफेद होते हैं इनके काटने पर—

चमडी, नख, मूत्र आदि सफेद होजाते हैं, रोमांच होजाता है, शीतज्वर होजाता है आंतों का अकडना दंश के पास सूजन, मुंह से गाढ़े कफ का गिरना, कै वार २ आखो मे खाज चलना गले में सूजन घुर २ शब्द होना, सांस रुकना, अंधेरी आना, और कफ के रोगका होना, येचिह्न होते है। अब इनके भी ७ वेगो का इतिहास सुनिये।

(१) वेग में खून खराब होके सफेद होजाता है, जिससे रोगी सफेद हो जाता है, रोमांच होताहै

२—वेग में मास खराव होता है, सफेदी और भी अधिक होजाती है सर सूज जाता है, और जड़ता होजाती है।

३—वेग मेंमेद खराव होता है, जिससे आंख मिचना, दांतो का खट्टा होना, पसीना आना और नाक तथा आंखो से पानी आना ये चिह्न होते है।

४—वेग में कोठे में जहर घुसता है, जिससे शिर भारी हो जाता है, और गरदन जकड़ जातीहै

५—वेग में जवान वन्द होके शीतज्वर हो जाता है।

छठे और ७वे वेग मे वही चिह्न होके रोगी जहन्नुम रसीद हो जाता है।

छठे ७वे वेग के होने पर रोगी बचता नही है।

सर्प और सर्पिणी के भेद

सर्प स्त्रियो की अपेक्षा सर्पो की आंखे वडी होती हैं, जीभ और मुह भी वड़े होते है, शिर भी वड़े होते हैं और उन्हे गुस्सा भी अधिक आता है, इन वातो को देखकर जाना जा सकता है कि यह सर्प है या सर्पिणी।

हीन विष

इसे दूषी विष भी कहते हैं।

स्थावर हो चाहे जगम, या वनावटी, किसी भी तरह का जहर देह मे जाकर दवा से या और किसी तरीके से निकल जाता है, किंतु उसका कुछ अंश भीतर रह जाता है, वह अश देह मे पड़ा २ पच भी जाता है, जीर्ण भी हो जाता है, किंतु अपना असर दिखलाये विना वाज नही आता। दूषी विष जव देह मे रह जाता है तो आदमी का दस्त और वर्ण पलट जाता है उसके मुह म वदवू आने लगती है, और वह नीरस होजाता है, प्यास कै. मूर्छा, गद्गद्वाणी ये चिह्न होजाते है, और दूषी उदर के चिह्न प्रगट होते हैं, दूषी विष मेद में रहकर कफ वायु के, पक्वाशय मे रहकर वात पित्त के रोग पैदा करता है, जिस धातु मे विष जाता है वही विकार पैदा करता है, जब दूषी विष बिगड़ने लगता है, तो नीद अधिक आना, देह का भारी होना, जभाई, अग का टूटना, रोमांच, अगड़ाई, ये चिह्न होते है, वाद में चकत्ते, अरुचि, हाथ, पांव में सूजन, जलोदर, मूर्छा, विषम ज्वर आदि उपद्रव होते हैं।

मकड़ी का जहर

यह वडा पाजी जहर है, जो धीरे २ अपना असर दिखलाता है। मकड़िया हर एक घरमे होती हैं, और अपना कारनामा सवको दिखलाती है। इसकी कारीगरी वहुत ही श्रेष्ठ और वारीक होती है, कपड़ो में रहने से या और किसी तरह यह काट लेती है, किंतु उसी समय इसका कोई असर नही होता, मकड़ी कई तरह की होती है, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा।

मकड़ी का जहर सहज मेंही नही जाना जाता कई दिनो वादयह अपना फौलादी पंजा दिखलाता है। मकड़ी के काटने पर पहिले दिन थोड़ी खाज चलती है, कुछ भनभनाहट भी होने लगती है और कुछ ददोड़े से भी हो जाते हैं, जिनपर कोई ध्यान नही जाता। दूसरे दिन जडो मे सोजा और वीच मे निचाई दिखलाई देती है, कुछ ददोड़े और होजाते है, तीसरे दिन उसका रग दिखलाई पड़ता है। चौथे दिन जहर बिगडता है, और पांचवे दिन जहर की खरावी से बुखार, सूजन, गर्मी आदि विकार होते है, छठे दिन जहर मर्मस्थानो में पहुँच जाता है, और सातवे दिन सारी देह में घुसकर रोगी को मार डालता है।

जहर की अवधि

मकड़ियो का जहर ३ तरह का होता है।

१—एकदम प्रचण्ड विष।

२—वीच के दर्जे का जहर।

३—साधारण जहर।

इनमें पहिला जहर सात दिन में मार डालता है, दूसरा कुछ दिन बाद यानी १० दिन के भीतर मार डालता है तीसरा १५ दिन में मारडालता है।

सात प्रकार का जहर

मकड़ियां ७ तरह आदमी पर अपना जहर छोड़ती हैं।

१—राल से।

२—नख से।

३—पेशाब से।

४—डाढ़ से।

५—रज से।

६—मल से।

७—वीर्य से।

मकड़ियो की सभी चीजो में जहर होता है। किसी भी तरह वह आदमी पर गिरकर अपना भयंकर प्रभाव दिखलाता है। यह सातों तरह का जहर अलग २ रूप में अपना असर दिखलाता है, क्रमशः वह भी देखिये—

(१) मकड़ी की राल का जहर

चढ़ने पर खाज चलती है, ददोड़े पड़ जाते हैं उनकी जड़ स्थिर और थोड़ी होती है और थोड़ा दर्द भी होता है।

२—नख या पंजे के जहर से

सूजन होती है, खाज चलती है, और ऊंचे २ ददोड़े पड़ जातेहैं, उनसे कुछ धुआ सा निकलताहै

(३) पेशाब का जहर

जिस जगह लगता है, वह जगह बीच में काली और किनारो पर लाल हो जाती हैं और फट जाती है।

४—डाढ़ का जहर

उग्र होता है, काटी हुई जगह कड़ी और विवर्ण होजाती है, स्थिर चकत्ते पड़जाते हैं।

५-६-७-रज, मल और वीर्य के जहर से

पके हुये आंवले या पीलू के जैसा फोड़ा हो जाता है।

मकड़ी कई तरह की होती हैं, उनके नाम के साथ अब उनके जहर का वर्णन किया जाता है।

त्रिमण्डला का जहर

काटने पर काला खून गिरता है, और वह स्थान फट जाताहै, रोगी बहरा होजाता है, उसकी नजर बिगड़ जाती है, और आंखे जलने लगतीहैं।

श्वेता का जहर

सफेद मकड़ीके काटने पर सफेद, और खाजदार फुन्सी होती है, इसमें जलन भी होजाती है, विसर्प, छर्द, मूर्छा और ज्वर भी इसमें हो जाता है।

कपिला का जहर

कपिला मकड़ी के काटने पर आस पास की जगह में तांबे के रंग की फुन्सियांहोजाती हैं, शिर में भारीपन, दाह, अंधेरी और भ्रम होता है।

पीतिका का जहर

पीली मकड़ी के काटने पर फुन्सिया होती हैं, और उनका रंग पीला होता है, आंख में लाली, कै ज्वर और शूल ये चिह्न होजाते हैं।

आलविषा का जहर

काटने पर सरसो जैसी फुन्सियां हो जाती हैं जगह का रंग लाल हो जाता है, तालु में खुश्की होती है, और जलन होती है।

मूत्रविषा का जहर

विसर्प, काला खून बहना, सड़ जाना, खांसी श्वास कै, मूर्छा, ज्वर और दाह ये उपद्रव होते हैं।

रक्त लूता का जहर

पीली फुन्सिया, जलन, छर्द, किनारों कीलाली और खून युक्तता ये चिह्न होते हैं।

कसना का जहर

ठंडा और खून गिरता है, खासी और श्वास हो जाता है।

काली मक्खी का जहर

टट्टी की बदबू वाला थोड़ा खून गिरता है।

ज्वर, मूर्च्छा, वमन, दाह, खांसी और श्वास हो जाते हैं।

अग्निवर्णा का जहर

आग की सी जलन होती है, स्राव बहुत होता है। ज्वर चूंसन, खाज रोमांच, दाह और फोड़े ये भी हो जाते हैं।

सौवर्णिका का जहर

काटने पर झाग आता है, मछली की जैसी गन्ध आती है, और आध्मान होता है। खांसी, श्वास, ज्वर, प्यास, और दारुण, बेहोशी ये भी होते हैं।

लाजवर्णा का जहर

आसपास बदबूदार कच्चा खून झिरता है। दाह, मूर्छा, दस्त, और सर में दर्द ये भी होते हैं।

जालिनी का जहर

जगह फट जाती है। श्वास, तमोगुण की वृद्धि स्तम्भ और तालु में खुश्की ये चिह्न होते हैं।

एणीपदी का जहर

काले तिल के समान चित्ती पड़ जाती है। मूर्छा, प्यास, ज्वर, कै, खांसी और श्वास ये भी होते हैं।

काकांडा का जहर

जगह पीली या लाल हो जातीहै, बड़ी दारुण वेदना होती है।

मालागुणा का जहर

जगह लाल हो जाती है, धुआं की बदबू आती है, दर्द बहुत होता है। जलन, बेहोशी और ज्वर ये भी हो जाते है, जगह फट जाती है।

चूहे का काटना

चूहे का जहर कभी २ बड़ा घातक होता है। साधारण चूहा जिस जगह काटता है, उस जगह का खून पीला पड़ जाता है। चकत्ते उठते है, जलन होती है, बुखार बढ़ जाता है। कोई चीज अच्छी नही लगती और कँपकपी आने लगती है किंतु जब कोई विशेष जहरीला चूहा काटता है तो, बेहोशी हो जाती है, अग सूज जाते हैं, देह का रग बदल जाता, क्लेद, बधिरता, ज्वर' माथे का भारीपन, लार बहना, और खूनी कै होना ये चिह्न होते हैं, इससे आदमी मर जाता है। जो सूजन होती है, उसका आकार चूहे जैसा होता है।

करकटे का काटना

यह एक जानवर है जो कीड़ो की अपेक्षा बडा होता है। जिस जगह यह काटता है,वह जगह काली हो जाती है। या पीली, लाल आदि । इस से दस्त बहुत आने लगते हैं, और मोह होता है

बिच्छू का काटना

बिच्छू मामूली जहर वाले भी होते हैं, और विशेष जहर वाले भी। विशेष जहरीले बिच्छू प्रायः पहाड़ो में होते है, कभी कभी घर में भी रहते है। साधारण बिच्छू के काटने पर आगसी लगती है, फिर जहर वहा से ऊपर चढ़ता है, उस समय अग अग टूटने लगता है बाद मे जहर काटी हुई जगह पर आजाता है, यह क्रिया मिन्टो मे क्या सैकण्डो में हो जाती है। इसके काटने पर जलन बहुत होती है। जब विशेष जहरीला बिच्छू काटता है तो—

काटे हुये स्थान में तीव्र जलन होती है, जहर का असर देह भर में फैल जाता है। हृदय की गति रुक जाती है, जिससे खून इधर उधर नही जा सकता और बेहोशी हो जाती है। सांस बन्द हो जाता है, रोगी की बोली बन्द हो जाती है। वेदना बहुत होती है, मास गल कर गिर जाता है इस जहर से बिरले ही बच पाते हैं। देखते २ रोगी परमधाम को पहुँच जाता है।

कणभ का काटना

कणभ एक कीड़ा होता है, दुःख है इसका पर्यायवाची देशी शब्द हम नही जानते। जब यह कीडा काटता है तो सूजन हो जाती है, शूल,ज्वर विसर्प और कै ये भी हो जाते हैं।

चीटे का काटना

जब चीटा या झिंगुर काटता है तो सारी देह में जड़पना छा जाता है, दर्द बहुत होता है, सारी देह ठंडी सी हुई मालूम पडती है।

मेंडक का काटना

सभी मेंडक जहरीले नहीं होते।

जहरीले मेंडक के काटने पर उसकी डाढ़ का दाग पडजाता है पीली सूजन होती है और उसमें दर्द होता है प्यास लगती है नींद आती है और के होती है।

मछली का काटना

कोई कोई मछली जहरीली होती है, उसके काटने पर जलन सूजन, और वेदना होती है।

जोंक का काटना

जहरीली जोंक के काटने पर जगह सूज जाती है और उसमें खुजली चलती है, बुखार भी हो जाता है, और बेहोशी भी होजाती है।

छिपकली का काटना

छिपकली घरों में बहुत होतीहै। इसके काटने पर जलन होती है, सूजन होती है, काटी हुई जगह में तोडने सरीखा दर्द होता है, सारी देह में पसीना आजाता है।

कानखजूरे का काटना

दूशित जगह पर पसीना आताहै, जलन होती है, और दर्द होता है।

मच्छर का काटना

मच्छरके काटने पर जरा सा दर्द हो जाताहै, खुजली चलती है और जरा सी सूजन भी होजाती है, इसकी तो लोगों को आदत ही पड़ गई है, जिससे कुछ मालूम नहीं पडता कोई २ मच्छर जहरीला होता है तो उसके काटने पर थोड़ा घाव होकर उसमें दर्द होने लगता है, घाव होता है। खुजाने पर।

गिद्ध की जू का काटना

यह जू बड़ी चींटी जैसी होती है इसके काटने पर सम्पूर्ण छेदों से खून बहने लगता है। आख और समटे भी बाकी नहीं रहने।

बिल्ली का काटना

बिल्ली के काटने पर दर्द बहुत होता है वह जगह हरी और कड़ी हो जाती है, बाद में घाव भी हो जाता है।

नोले का काटना

यह वह जानवर है जो साप को पछाड़ता है, यह जल्द काटता भी नहीं है। इसके काटने से देह में दर्द जल्दी ही फैल जाता है, फिर अपने आप ही हट जाता है।

मनुष्य का काटना

मनुष्य के काटने पर कभी २ घाव भी हो जाता है, खासकर उस मनुष्य के काटने पर जिसे पागल कुत्ते ने काटा है घाव जल्द ही हो जाता है और देर में आराम होता है।

बर्र और मौमक्खी का काटना

मौममक्खी को मधुमक्खी कहते हैं। बर्र के काटने पर जगह सूज जाती है, उसमें दर्द होता है, और जलन होती है, छोटे बच्चे को बुखार भी होजाता है, जब बहुत सी बर्रे काटलेती है तो बड़े आदमी को भी बुखार हो जाता है, और कोई २ मर भी जाता है, आखों में काटती है तो आंखें अंधी हो जाती है। मौममक्खी के काटने पर भी ऐसी ही हालत होती है, एक और मक्खी है जिसे भोर भी कहते है। यह बिना छेडे तो काटती नही और छेडने पर काटे बिना रहती नहीं।

पागल कुत्ते आदि का काटना

इसको ऐलोपैथी मे Hydiophetia कहते हैं। गीदड, कुत्ते, रीछ, व्याघ्र, बिल्ली आदि जानवर जब पागल हो जाते हैं, तो आदमियो को काट लेतेहैं, पागल कुत्तेके काटने से आदमी भी पागल होजाता है, जब ये जानवर पागल हो जाते हैं तो इनकी पूंछ सीधी हो जाती है, जो स्वस्थावस्था में

कभी भी नहीं हो सकता । इनके जबड़े और कंधे ढीले पड़ जाते हैं, मुंह से लार बहने लगती है, बहरापन और अंधापन आजाता है, जिससे चाहे जिधर दौड़ते हैं। एक ही पागल जानवर कभी २ बहुतों को घायल करदेता है, और घायलों की दशा बड़ी नाजुक होजाती है, बहुत से तो मर भी जाते हैं। जिस जगह ये जानवर काटते हैं वह जगह एक दम सुन्न हो जाती है और उसमें से बहुत सा काला खून निकलता है। बाद में जहरीले शस्त्र के घाव के होने जैसे चिह्न होते हैं, घाव हो जाता है रोगी पागल हो जाता है, सबको खाने दौड़ता है, और जिसे काट लेता है उसकी दशा भी खराब होजाती है।

जो जानवर काटता है, रोगी उसी का अनुकरण करने लगता है पानी से डरता है इस हालत में रोगी मर जाता है।

विष परीक्षा

ज्यों २ सभ्यता बढ़ रही है, त्यों २ लोगों में अविश्वास, बेईमानी और मारकाट के भाव बढ़ रहे हैं, एक किसी को पानी में जहर मिलाताहै तो एक खाने में ही जहर मिलाता है। कोई वस्त्रों पर जहर छिड़क देता है तो कोई सिगरेटमें जहर मिला देता है। ऐसे राक्षसी व्यापार रोज होते रहते हैं। राजाओं और धनियों के घरों में यह कुकाण्ड इसलिये अधिक होते हैं कि वहां असन्तोष और अनीत तथा लोलुपता का साम्राज्य रहता है।

सुश्रुत में विष परीक्षा अच्छे ढंग से बतलाई है, हम उसी का अनुवाद यहां दिये देते हैं।

विष किन २ चीजों में दिया जाता है, इसके विषय में लिखा है—

पीने के जल में, दतौन में, स्नान के जल में, कंघी, दर्पण आदि में, उबटन में, साबुन में, काथ में, छिड़कने की चीजों में, चन्दन आदि में, माला में, वस्त्रों में, शय्या में, पहिनने के गहनों में, जूतों में, खुरी आदि में, घोड़े हाथी आदि की पीठ में, इत्रों में, सिगरेट आदि में किसी तरह जहर मिला दिया जाता है या लगा दिया जाता है। अब इनमें अगर विष है तो उसकी परीक्षा भी इस तरह कीजिये।

खाने में—

अगर जहर मिलाया गया है तो वह आगपर डालने से चटचट करने लगता है और नीला धूआं उठने लगता है और पास बैठने वालों को वह दुस्सह हो जाती है। धूआ इतना तेज होता है कि आग पास उसका बहुत बुरा असर होता है।

इसी लिये हिन्दू धर्म में पहिले आग पर भोजन डालने की उपयोगी प्रथा है। जहर मिला भोजन देखते ही चकोर की आंखे बदल जाती हैं। जहर मिला खाना खाने से कोयल की मोहनी आवाज बिगड़ जाती है मोर उद्विग्न हो के नाचने लगता है, सारस रोने लगता है और उसे दस्त होजाता है। मक्खियां उसी दम मर जाती हैं।

जब जहर मिला खाना थाली में रक्खा जाता है तो उसकी भाप से सर दुखने लगता है, आंखे चकराने लगतीहै और हृदयमें पीड़ाहोने लगती है जीभ पर अगर वह खाना रख लिया जाता है तो, जीभ कड़ी और रसहीन होजाती है। खालेने पर जब जहर मिला खाना मेदे में पहुँच जाता है तो बेहोशी, कै, दस्त, पेट अफरना, दाह, कम्प और इन्द्रियों का विकार ये चिन्ह होजाते हैं। आगे चलकर जहर जब पक्वाशय में पहुँचता है तो हालत औरभी खराब होजाती है।

इसी तरह चन्दन तेल आदि में, अगर जहर मिलायाजाता है तो उनका रूप बदल जाता है। लगाने पर जहरके चिन्ह दिखलाई पड़ने लगते हैं।

आजकल विष की यह परीक्षा बहुत कम काम दे सकती है, जहर देने के आजकल नये २ तरीके निकलते हैं। तेज दवा में जहर दिया जा सकता है। मल्हम में जहर दिया जा सकता है। फिर आजकल जहर पीना तो लोगों का एक खास काम होगया है।

डाक्टरी से विष का वर्णन

अब जरा ऐलोपथी दृष्टि से भी जहर को देखिये तेजवस्तु का सत्व विष होता है और वह विष ही का काम देता है, प्राकृतिक विषके अलावा कृत्रिम विषो का उपयोग डाक्टरी में बहुत होता है, कुछ विषो का वर्णन यहां किया जाता है। डाक्टरी मे जहर के ३ भेद है।

(१) इरीटेंट। (२) नारकाटिक।

(३) नारकोटीक्यू इरीटेंट।

१ नम्बर का जहर कै और दस्त जारी करता है। २ न० का दिल और दिमाग की शक्ति को नष्ट करके शारीरिक क्रिया को अस्तव्यस्त करता है और ३ न० का दोनो ही काम करता है।

Arsenic सखिया

खाने से आमाशय में दर्द, जलन, कै, उबकाई दस्त, प्यास, गले में ऐठन, खुश्की, सांस में तगी, शरीर का ठडापन और मृत्यु इतने चिह्न पैदा करता है २ घटे से २४ घटे में आदमी मर जाता है यह २ ग्रेन खाने से उपद्रव है अधिक खाने से तो और भी जल्द मौत का वारट आ जाता है।

कुचले का सत

यह १ ग्रेन खाने से ही ऐठन होने लगती है देह टूटने लगती है, और दशा बिगड़ने लगती है, १० मिनट से ६ घटे तकके बीचमें मार डालताहै।

एको नाइटीना

यह सीगीमोहरे का सत है जो $\frac{1}{10}$ ग्रेन खाने से ही डेढ़ घन्टे से २० घन्टे के अदर मारडालता है।

एको नाइटिन्ट

यह सींगी मोहरा है आध ड्रामसे कुछ अधिक खा लेने पर २० घन्टे के अंदर मारडालता है।

इस्ट्री मूनिआर्ट

यह धतूरा है। जो २४ घन्टे के अंदर मार डालता है, इनके लक्षण वे ही होते हैं, जो पहिले कन्द, मूल, फल आदि में कहे जा चुके हैं।

ओपियम—यह अफीम है जो४ ग्रेनसे अधिक खाने पर २४ घन्टे के अदर मार डालता है।

ओकजिलिक एसिड-आधा औंस खाने परदस मिनट से १ घण्टे के अदर आदमी मर जाता है।

बिलाडौना-आधा औस ही २४ घण्टे के अदर मार देता है।

टारट्रामेटिक-२ ग्रेन ही १०-१२ घण्टे के भीतर मार डालता है।

टुबेको-यह वही तमाखू है जिसे लोग खाते हैं आधा ड्राम चन्द घण्टो में मार डालती है।

सलफाइट आफ कापर-यह तूतिया है, जो १ औंस खाने पर ८ घण्टे में मार देता है।

सलफेट आफ जिक-यह यशद का बनाया हुआ सफेद तूतिया है जो १ ड्राम खाने पर ४८ घण्टो मे मार देता है।

सलफ्यूरिक एसिड-यह गंधक की तेजाब हैजो १ ड्राम खाने पर २४ घण्टे से ४८ घन्टे में खातमा कर देती है।

फास फोरस-१ ग्रेनही ६ घण्टे के भीतर ही मारक हो जाती है।

कारबोलिक एसिड-आधा औंस ४ घण्टे के अन्दर मार देता है।

क्रीजोसिवली मेंट-यह रस कपूर है जो ४ ग्रेन खाने पर ४ घण्टे में मार देता है।

कोनाइन–यह बड़ी प्रसिद्ध दवा है जो डाक्टर लोग बुखार में देते हैं। १ ड्राम खाने पर आदमी मर जाता है।

क्लोरोफार्म–१ ड्राम चन्द घन्टों में मार देता है।
कैंथराइडज–४८ ग्रेन ३० घन्टे के भीतर मार देती है।

नाइट्रिक एसिड–यह शोरे की तेजाब है, जो २ ड्राम खाने पर ४८ घण्टे के भीतर मार देती है।

निकस्वामिका–यह कुचला है जो ४ ग्रेन ८ घण्टे के भीतर मार देता है।

हाईड्रोस्यानिक एसिड–१ ग्रेन ही ३० मिनट के अन्दर मार डालता है।

हाईड्रो क्लोरिक एसिड– ८ ड्राम २४ घण्टे में मार देती है।



सहायक पुस्तकें

जिससे निदान लेखन में सहायता ली गई है।

आरोग्यदिग्दर्शन (महात्मागांधी)
आयुर्वेद महत्व (पं० शान्तिप्राम जी शास्त्री)
आकृति निदान (लूईकोने)
प्रसूतितन्त्र (डा० प्रमादीलाल झा)
हमारे शरीर की रचना (डा० त्रिलोकीनाथवर्मा)
चरक
सुश्रुत
माधवनिदान
भावप्रकाश।
योगरत्नाकर।
डाक्टरीचिकित्सा।
तिब्बे अकबर
पारिवारिक चिकित्सा (होम्योपैथिक)
सन्तान शास्त्र (पं० गणेशदत्तजी गौड़)
अष्टांगहृदय
शार्ङ्गधर
चिकित्सा चन्द्रोदय (हरिदासजी वैद्य)
स्त्री रोग विज्ञानम्। (वैद्य,धर्मानन्द जी शास्त्री)

इनके अतिरिक्त आयुर्वेदिक पत्रों के विशेषांकों साधारण अंकोंतथा हिन्दी साहित्य के समायिक पत्रों से भी, मुझे बहुत सहायता मिली है।

शरीर विज्ञान संम्बधी विवरण, के लिये हमारे शरीर की रचना, से सहाय्य मिला है,तिब्बे अकबरी, तो प्रधान सहायक ही रहा है, चरक सुश्रुत निदान आदि तो मेरे जीवन के अङ्ग ही ठहरे।

विनीत—लेखक

इन्हें केवल पुस्तकें ही न समझिये

वल्कि मनुष्य जाति के साथ किया गया महत्वपूर्ण उपकार समझिये
जिन्होने हमारे यहा की एक भी पुस्तक पढी होगी वह खुले दिल
से उपरोक्त वाक्यों को स्वीकार कर चुके होगे।
नवीन लोगो को उनका परिचय करा देना आवश्यक
प्रतीत होता है। अतः साधारण सुनिये।

१—हमारी पुस्तको के काफी स्थाई खरीददार है, जो १) प्रवेश फीस
भेजकर ग्राहक बनते है और पुस्तक जहां प्रेस से निकली
कि उन्हे पौने मूल्य में मिल जाती।

२—इनका इतना प्रचार है कि सभी पुस्तके जिनकी सख्या ६० है कई २ बार छपकर
बिक चुकी है और परीक्षा कोर्सों में भी सम्मिलित हैं।

३—इतनी सम्पतिया विद्वानो की है कि हम प्रकाशित भी करने में असमर्थ हैं।

४—पुस्तको की उपयोगिता पर वैद्य सम्मेलनों से प्रमाणपत्र
और स्वर्णमेडिल प्राप्त हो चुके है इसी कारण पुस्तक
प्रकाशन विभाग ही अलग कर देना पडा है।

५—फिर भी नियम है कि कोई पुस्तक लिखे अनुसार
न हो तो वापिस कर दाम वापिस ले सकते हैं

स्थाई ग्राहक बनने से बड़ा लाभ है, आप भी स्थाई ग्राहक बनले।

एक न एक पुस्तक मगवाकर तो अवश्य देखिये, और लाभ
उठाइये, हमारे कथन की सत्यता देखिये, मुझे विश्वास
है कि दुबारा आप सभी पुस्तके मगाकर
पढ़ने के लिये विवश हो जावेगे।

राजयक्ष्मा (तपेदिक) चिकित्सा	।=)	सिफाउल अमराज	२)	स्नानचिकित्सा	।=)
दमा (श्वास) ,,	।)	सिद्धप्रयोग दोनो भाग	१॥)	चिकित्सकव्यवहारविज्ञान	।)
अर्श (ववासीर) ,,	॥)	सिद्धौषधिप्रकाश	१॥)	पेटेन्टऔषधेऔरभारतवर्ष	१॥)
सीहा (तिल्ली) ,,	।=)	हरिधारित ग्रन्थ	।=)	कोकशास्त्र	॥)
स्त्रीरोग ,,	॥)	औषधिविज्ञान २भाग	१॥)	दीर्घजीवन	।॥)
यकृत सीहा के रोग ,,	।)	वैद्यक शब्द कोष	।)	कर्तव्य शिक्षण	।॥)
मधुमेह (डायावटीज),,	॥)	औषधिगुणधर्मविवेचन	१॥)	ज्योतिषचमत्कार २ भाग	१)
व्रणोपचारपद्धति ,	॥)	भरतीय रसायन शास्त्र	॥)	एकदिन में कवी	।)
अन्त्रवृद्धि ..	।)	विंध्यमहात्म्य	१॥)	आयुर्वेदीयविश्व कोष	१०)